



हिन्दी भाषा और साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास

का० श्रीरामजी कर्मा शुभचिन्तक-प्रकाश

लेखक
श्रीरामजी कर्मा
लेखक
हिन्दू महिला मिशन



स्टुडेंट्स प्रेस

प्रकाश : काशी

प्रकाशक

श्री अविनाश चन्द्र सामन्त

स्टुडेंट्स होटल

पुणे

मुख्य अधिकार १८४६

अधिकार सुरक्षित । केवल टीका-लिखने के विभिन्न शिष्टी सम-
सोचन को छोड़कर अन्य की प्रकाशन की विभिन्न अनुमति
बिना इस पुस्तक का कोई शेष शिष्टी अन्य से
उद्धृत करने का अधिकार नहीं ।

सूचक ५)

मुख्य—

श्री विनोद साहू पुस्तक

प्रसिद्ध हो

१० अतिरिक्ती रोड

इलाहाबाद

आत्म निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक में भाषा विज्ञान, हिन्दी भाषा, और साहित्य तथा साहित्य के अर्थों का विवेचन किया गया है। भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा पर सुप्रसन्न रूप में ही प्रकाश डाला गया है। हिन्दी साहित्य और साहित्य के अर्थों का विवेचन दो दृष्टियों से किया गया है—ऐतिहासिक दृष्टि से, और विवेचनात्मक दृष्टि से। यद्यपि दोनों ही दृष्टियों के विवेचन में उतनी ही दूरी का मार्ग लें किया गया है, जितना, कि सर्वोच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए आवश्यक है, फिर भी यह कहने में संकोच नहीं किया जा सकता, कि उस दूरी में महत्त्वाकांक्षा है। प्रस्तुत पुस्तक का निर्माण मुख्य रूप से विद्यार्थियों के लिए किया गया है। अतः इसमें उन अर्थों को जान बूझ कर बचाया गया है, जो विषय का अनावश्यक रूप से विस्तार करते हैं, और जिनके कारण विषय विद्यार्थी के लिए एक बाल का बन जाता है। विषय और उसकी सामग्रियों की संशोद्धता में विद्यार्थियों की आवश्यकताओं पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया गया है। विषय की स्पष्ट करने, और उसके प्रत्येक बिंदु को साफ-साफ समझने उपस्थित करने के प्रयत्न की मुख्य रूप से चेष्टा की गई है। काव्य से लेकर हिन्दी निम्नतम तक की भाषा और शैली तथा उसके सौन्दर्य का विवेचन सरलता और सुस्पष्टता की ही ध्यान में रख कर किया गया है। विवेचन में जिस भाषा और शैली का उपयोग किया गया है, उसे शक्ति भर दुर्लभता से बचाने का प्रयत्न किया गया है। यथा-शक्ति सरल भाषा और अत्यंत शैली के ही द्वारा विषय के बिंदुओं को सुस्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। इस बात का तो दावा नहीं किया जा सकता, कि इतिहास और विवेचन के क्षेत्र में पुस्तक सर्वश्रेष्ठ होगी। पर यह बात निःसंकोच रूप से कही जा सकती है, कि पुस्तक की नवीनता के लोचों में डालने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक में नवीनता और उपयोगिता के कितने उदाहरण हैं—इसका निर्णय तो विद्यार्थी समुदाय ही कर सकेगा; क्योंकि पुस्तक के निर्माण में जो भी प्रयत्न किये गये हैं, उनका एक मात्र ध्येय विद्यार्थियों की ही आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

पुस्तक की सामग्री की संशोद्धता में कई सम्प्रदाय लेखकों की कृतियों से सहायता ली गई है। इन लेखकों में डा० रामकुमार वर्मा, डा० श्रीराम वर्मा, डा० हजारी

प्रसाद द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्री रामेन्द्र प्रसाद चौध, डा० श्यामसुन्दरदास, डा० मंगलदेव, श्री जनार्दन स्वरूप अग्रवाल और श्री पं० नन्दबुलारे बाजपेयी इत्यादि का मख्य स्थान है। हम इन लेखकों के हृदय से कृतज्ञ हैं, और उनके प्रति अपना आभार प्रदर्शित करते हैं। अन्त में हम अपने विद्वान् और अद्वेय वन्धु डा० राम-कुमार वर्माजी के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं, जिन्होंने अवकाश न रहते हुए भी इस पुस्तक पर दो खम्ब लिख कर मुझ पर अत्यन्त कृपा की है।

आशा है, विद्यार्थी समुदाय में पुस्तक को स्थान प्राप्त हो सकेगा।

अमिक निवास, कटरा
प्रयाग
२२/११/५५

}

विनीत
जीव्यधितहृदय

भूमिका

किसी देश के साहित्य का इतिहास वहीं की सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की किना-प्रतिक्रिया का आकलन है। एक आलोचक के समुदाय साहित्य का इतिहास लिखते समय अनेक समस्याएँ उठ सकती होती हैं। भारतवर्ष में शताधिक वर्षों की परम्परा देखी है, और इसी कारण विषय परिस्थितियों में लिखित प्रचुर साहित्य-राशि का पता हो नहीं चलता। परिचयम स्वरूप साहित्य की परम्पराओं के अनुसन्धान के समय जो व्यवधान बढ़ता है, उसकी विवेचना के लिए लेखक को अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है।

श्री स्वधितद्वय द्वारा लिखित प्रस्तुत ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' इतिहास की परम्परा का नवीन पुष्प है, जिसमें भाषा और साहित्य के विभिन्न अंशों का सुवर्णित और क्रमिक अध्ययन है। पुस्तक की अपनी विशेषता यह है कि श्री स्वधितद्वयजी ने विषय का विवेचन परम्परागत काल-विभाजन के अनुसार न करके, भाषा, काल, गद्य उपन्यास, कहानी, एकांकी, नाटक, निबन्ध आदि की विचार धारा के आधार पर स्पष्ट किया है।

विषय-वर्तिमान सरल और सुखी है। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक निस्सन्देह लाभप्रद सिद्ध होगी, तथा साहित्य-प्रेमी भी इसका उपयोग कर सकेंगे।

श्री स्वधितद्वयजी का यह प्रकाश प्रशंसनीय है। आशा है, हिन्दी-प्रेमी इसे अपनाकर अपनी मुख्य-साहकता का परिचय देंगे।

सकेल,
इलाहाबाद—२
१२-११-६५

}

रामकुमार वर्मा

मुख्य सूची

१.—भाषा विभाग	१
२.—हिन्दी भाषा और उसका विकास	५१
३.—हिन्दी काव्य	६२
४.—गीति काव्य	२६६
५.—हिन्दी गद्य	३४५
६.—कहानी	४६५
७.—उपन्यास	५२४
८.—नाटक	५८७
९.—एकपत्री	६८२
१०.—निबन्ध	७६५

विशेष दृष्टित्व—प्रत्येक अध्याय की विस्तृत सूची उसी अध्याय के प्रारम्भ में देखिए । अध्याय का कुछ संख्या मुख्य सूची में देखिए ।

१

भाषा विज्ञान

विषय सूची

- १—प्रवेश १
(क) भाषा विज्ञान क्या है ? (ख) तुलनात्मक भाषा विज्ञान, (ग) भाषा-विज्ञान या बह्ता, (घ) भाषा विज्ञान और व्याकरण ।
- २—भाषा ७
(क) भाषा की उत्पत्ति, (ख) भाषा और चरमर, (ग) भाषा अर्थात् सम्बन्ध है, (घ) भाषा विज्ञान के कारण, (ङ) भाषा और शैलियों का अन्तर ।
- ३—श्रवण विचार १४
(क) श्रवण, (ख) श्रवण-विचार के अंग, (ग) श्रवण के प्रकार—नाद और दृश्य (ङ) श्रवणों का वर्गीकरण, (घ) स्वर और श्रवणों का वर्गीकरण, (च) श्रवणों का वर्गीकरण, (द) श्रवणों के गुण, (ध) संयुक्त श्रवणों, (न) श्रवण परिवर्तन के कारण ।
- ४—स्पर्श-विचार २३
(क) स्पर्श, (ख) स्पर्श और सम्बन्ध स्पर्श, (ग) सम्बन्ध और श्रवण स्पर्श का वास्तविक सम्बन्ध, (घ) संयुक्त स्पर्श के काम ।
- ५—वाक्य-विचार २६
(क) वाक्य, (ख) वाक्यों के प्रकार, (ग) वाक्य क्यों बदलते हैं ?
- ६—अर्थ विचार २८
(क) अर्थ विचार का विषय, (ख) अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ, (ग) अर्थ परिवर्तन के कारण ।
- ७—भाषाओं का वर्गीकरण ३१
(क) आकृति मुख्य भाषाएँ, (ख) योजनात्मक, (ग) वास्तविक मुख्य, (घ) अन्तिका जगह, (च) दूरस्थित जगह, (ङ) अन्तर्गत महासागरीय जगह (झ) अन्तरीका जगह ।
- ८—भाषा विज्ञान का इतिहास ४३
(क) भारत में भाषा विज्ञान, (ङ) पश्चिम में भाषा विज्ञान ।
- ९—लिपि और उसका विकास ४६
(क) लिपि और उसकी उत्पत्ति, (ख) लिपि विकास की अवस्थाएँ, (ग) चीनी लिपि, (ङ) यूनानी लिपि, (घ) भारतीय लिपि, (च) लिपि ज्ञान, (द) मानी और भारतीय लिपि ।

प्रवेश

संपूर्ण विश्व सम्पन्न है। प्रत्येक दिन एक शब्दों से ही सुंभित रहता है। संपूर्ण सृष्टि में मिलने प्राणी है, उन सब के पास मज्जेका मरुतों को व्यक्त करने के लिए अपने अपने शब्द हैं। सभी अपने अपने शब्दों ही के द्वारा अपने उस हृदय के मांस को, जो भावों और विचारों का स्रोत कहा जाता है, अभिव्यक्त करते हैं। अतः विश्व के रंग रंग का शब्दों की अधिक महत्ता है। भाषा का महान शब्दों ही के द्वारा होता है। शब्दों के द्वारा सुन्दरिण भाषा का विस्तृत व्यापार काल समस्त विश्व में फैला हुआ है। विश्व के समस्त चार्म-क्षेत्र आज भाषा की विश्व सविनी शक्ति से ही संघालित हो रहे हैं। भाषा मिलनी सामर्थ्य शालिनी है, मिलनी उप-योगिनी है, क्या इसका निवृत्त वास्तविक रूप से विश्व का चक्रता है !

विश्व में मिलने प्राणी है, सब के सब अपनी-अपनी भाषा की सम्पत्ति है। उन प्राणियों की बात नहीं, जो भाषा की संघटित होने पर भी मानवों की भाँति उसका उपयोग करने में असमर्थ होते हैं, पर मानव जगत में भाषा के सम्बन्ध में अपने दिव्य विवेचना होती ही रहती है। प्रत्येक सिद्धि और असिद्धिमनुष्य के शरीर पर भाषा की बात रहती है। व्यक्तिगत जीवन में भाषा का महत्त्व तो है ही, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के साधन में भी भाषा का अत्यधिक हाथ होता है। अतः सामा-जिक और राष्ट्रीय उन्नयन-आंदोलनों के साथ ही साथ भाषा के उत्थान और विकास के लिए भी आंदोलन होते ही रहते हैं; वास्तव यह है, कि भाषा मनुष्य की विविध प्रकार की प्रगतिशील, वैभव, और उन्नति की सहायिनी है। अतः भाषा से संबंध रखने वाले सम्पूर्ण ज्ञान का बीच प्रत्येक सिद्धिजन को बड़ी प्रकार होता आवश्यक है।

मानव जीवन का संपूर्ण व्यापार साधन-प्रदान पर निर्भर है। साधन मानव विश्व के कोने-कोने में फैला हुआ है; पर यदि देखा जाए तो उसका समस्त व्यापार एक दूसरे से संबंधित है। मनुष्य ने अपने व्यापार के साधन प्रदान, अपने विचारों के विनिमय, और अपने संबंधों के स्थापन तथा उनके विकास के लिए एक ऐसे महान् पूर्ण साधन का आविष्कार किया है, जो आज उसके जीवन के लिए एक भाषा किसे अत्यन्त संबंध प्रभावित हो रहा है। मनुष्य के उसी आवि-
कहते हैं ! भूत साधन का नाम भाषा है; दूसरे शब्दों में भाषा वह शक्ति है, जो शार्क व्यवस्था की सहायि से बनती है, और जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों का साधन-प्रदान करता है। विचारों के साधन प्रदान के लिए और भी

कई मायम है—बैंगे शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा मन के विचारों को अभिव्यक्त करना, अंगियों और शक्ति-शक्ति के सांकेतिक चिह्नों के द्वारा मन के भावों को व्यक्त करना तथा शक्ति-शक्ति की कठिनाई के द्वारा मनोव्यक्त भावों को एक दूसरे पर व्यक्त करना, परन्तु मनोव्यक्त भावों को व्यक्त करने वाले इन तथा दूसरे अंगों के अंगों को भी हम 'मायम' की शक्ति में रखते हैं। क्योंकि इन भावों और शक्तियों से ही भाव-व्यक्तिकोत्पत्ति मनोव्यक्त भाव व्यक्त किए जाते हैं, परन्तु भाषा कहने का ये शक्ति विभक्त नहीं होती, किन्तु, कि एक भाषा और शक्ति है। भाषा के विभिन्न विधायक, और उनमें व्यवस्थाएँ होती हैं। उनका मूल्य विधायक, और व्यवस्थाओं से साक्षात् होने के कारण सीमित होता है। वह शक्ति होती है, और अन्तर्निहित के गुणों वाली है। अतः हम भाषा केवल उसी को कहेंगे, जो शक्ति होती है, और मनुष्य की शक्ति अंगियों की शक्ति के समान है।

विशेष में किसी भाषाएँ हैं, जो या भाषा प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष दृष्टिकोण है। किसी एक भाषा के अंगों में उनके अनेक अन्तर्गत-व्यक्त की कठिनाई शक्तिव्यक्त होती है। कुछ महान् दुर्लभ भाषाएँ होती हैं, जो प्रत्यक्ष भाषा के अंगों में पाई जाती हैं। जैसे:— भाषा की शक्ति, भाषा का विकास, भाषा की शक्ति वाली शक्ति, और अन्तर्-विशेष, दुर्लभ और शक्तिओं का भाषा पर प्रभाव, अन्तर्गत भाषाओं के अंगों की भाषा वि- शक्ति, और उनके अंगों का विकास, तथा भाषा की शक्ति का भाषा वि- शक्ति। प्रत्यक्ष शक्ति दुर्लभ भाषा के अंगों में भाषा शक्ति होती है। इन भाषाओं का अन्तर्गत रहता है। जो शक्ति होने भाषा के अंगों के अन्तर्गत रहने वाले अन्तर्गत भाषाओं की शक्ति, अन्तर्गत, और अन्तर्गत करने के अन्तर्गत प्रभाव रहता है; दूसरी शक्ति में किसी द्वारा हम भाषा के अन्तर्गत रहने वाली एक शक्ति वाली का अन्तर्गत करते हैं, उसे भाषा शक्ति का भाषा विकास करते हैं।

किसी भी भाषा के वैज्ञानिक अन्तर्गत की ही 'भाषा विकास' कहते हैं। भाषा के अन्तर्गत अन्तर्गत वैज्ञानिक अन्तर्गत में ही शक्ति अन्तर्गत से शक्तिव्यक्त रहती भाषा है। एक ही शक्ति, किन्तु शक्ति हम वैज्ञानिक शक्ति के द्वारा विकास प्राप्त करते हैं। वैज्ञानिक शक्ति के द्वारा हम किसी भाषा के अंगों और उनके दृष्टिकोण का अन्तर्गत अन्तर्गत करते हैं। किसी भी भाषा का वैज्ञानिक और उनके अंगों अंगों शक्ति वाली का अन्तर्गत करने के अन्तर्गत हम उसी शक्ति से अन्तर्गत भाषाओं का अन्तर्गत और अन्तर्गत करते हैं, और एक भाषा के विकासों तथा शक्ति के दुर्लभ भाषा के विकासों तथा शक्ति की शक्ति करते हैं। इनमें अन्तर्गत अन्तर्गत करते हैं। अन्तर्गत अन्तर्गत के द्वारा हम भाषा के वे अन्तर्गत शक्ति होते हैं, जो अन्तर्गत भाषाओं की शक्ति उनके अन्तर्गत है। जो शक्ति होने भाषा, और भाषाओं के वैज्ञानिक अन्तर्गत की शक्ति शक्ति है, अन्तर्गत शक्ति विभिन्न विधानों के द्वारा हम अन्तर्गत भाषाओं के अन्तर्गत पर

हम कहते हुए किसी भाषा के गुण-दोष निर्दिष्ट करते हैं, उसे तुलनात्मक भाषा विज्ञान कहते हैं।

भाषा विज्ञान का महत्व आज के अधिक बढ़िके संबंध है। वह एक ऐसा जगह है, जो मानव के जीवन में अधिक महत्व पूर्ण स्थान रखती है। आज विश्व के भाषा विज्ञान-विद्वान भाषा विज्ञान और उसके विद्वानों के संबंध में विज्ञान का अज्ञान ! कहीं संभावना से अधिक दिखाते रहे हैं। भाषा विज्ञान 'सुदृढ़ विज्ञान' है, या कहा—इस सम्बन्ध में जो वे विशेषज्ञ कहते रहे हैं। 'विज्ञान' और 'अज्ञान' को व्यापारिक प्रकृतियों का संबंध करने के पदचाल संसार के विद्वानों ने पूरी निष्कर्ष निकाला है, कि भाषा विज्ञान को मनुष्य विज्ञान के ही क्षेत्र में ही माना जायित, क्योंकि विज्ञान की धर्मिणी ही भाषा विज्ञान के भीतर ही प्रकृति को शामिल करीति है।

प्रकृति के दो मूल पर ही प्रकृत की प्रकृतियों पाई जाती है। एक प्रकार की प्रकृतियों तो वे हैं, जो मनुष्य द्वारा हैं, और दूसरी प्रकृत की प्रकृतियों में हैं, जिनमें प्रकृति की प्रकृतियों समाविष्ट हैं। मनुष्य द्वारा प्रकृतियों में विचारमत्ता, प्रतिक्रिया, और काल काल इत्यादि का स्थान है। इनकी प्रकृतियों को हम कलात्मक या कला संबंधी प्रकृतियाँ कहते हैं। प्रकृति सम्बन्धी प्रकृतियों में समाविष्ट विज्ञान, वैज्ञानिक विज्ञान, जीवन विज्ञान, और मनोविज्ञान इत्यादि एवम्पूर्ण कहते हैं। इनकी एवम्पूर्णों को वैज्ञानिक प्रकृतियों या विज्ञान संबंधी एवम्पूर्ण कहते हैं। 'भाषा विज्ञान' विज्ञान है या अज्ञान—इसका निर्धारण करने के पूर्व हमें कलात्मक, और वैज्ञानिक प्रकृतियों की प्रकृति पर ध्यान देना होगा। कलात्मक प्रकृतियों में मनुष्य का प्रभाव होता है, पर वैज्ञानिक प्रकृतियों प्रकृति की ही प्रकृति की और देखती है। कलात्मक प्रकृतियों मानवीय प्रकृतियों और कार्योन्मुखों से समाविष्ट होती है, पर वैज्ञानिक प्रकृतियों का संबंध अधिकतर प्रकृति से ही होता है। कलात्मक और वैज्ञानिक प्रकृतियों की प्रकृति की स्थान में एक का जब हम 'भाषा विज्ञान' पर विचार करते हैं, तो बहुत उच्च विज्ञान के ही विचार करते हैं, क्योंकि उसके प्रारंभ, और विकास का संबंध प्राकृतिक विद्वानों से ही सुझाव का है। यद्यपि भाषा के विकास में मनुष्य का ही हाथ होता है, पर वह विकास की प्रकृति के ही स्वरूप सामाविष्ट है। भाषा का विकास मनुष्य के द्वारा होता है, उसमें मनुष्य की प्राकृतिक प्रकृति संबंधित रहती है। एक मनुष्य नहीं कलात्मक प्रकृतियों का निर्माण कर सकता है, नहीं उसके द्वारा किसी भाषा का निर्माण नहीं ही करता। भाषा कदा प्रकृति और प्रकृति की ही और देखती है। उसकी प्रकृति और विकास में प्रकृति ही प्रकृति का ही विचारमान रहती है। अतः 'भाषा विज्ञान' की मनुष्य कला में नहीं, विज्ञान में ही की जाती है।

भाषा के क्षेत्र में 'भाषा विज्ञान' से मिलता जुलता, एक दूसरा शास्त्र है, जिसका संबंध भी भाषा से अधिक संबंध है। उस शास्त्र का नाम है व्यवहार।

भाषा विज्ञान व्याकरण और भाषा विज्ञान के प्राथमिक स्तरीय के और व्याकरण का एक कड़ी कड़ी भाषा विज्ञान और व्याकरण के स्तरों को एकजोड़े में प्रति उपलब्ध हो जाती है। उदा: दोनों को 'व्याकरण' के टीका टीका भाग के रूप में समझा जाता है।

'भाषा विज्ञान' और व्याकरण—दोनों के 'साहित्य' का मुख्य-मुख्य स्तर है। भाषा विज्ञान का स्तर प्रकृति है, किन्तु व्याकरण का स्तर मानव है। भाषा विज्ञान का स्तर स्तर प्रकृति होने के कारण उसकी पक्षों विज्ञान में भी जाती है, किन्तु व्याकरण एक स्तर है, क्योंकि उसकी दृष्टि, और विज्ञान के मानव-वृत्ति का स्तर प्रकृति है। व्याकरण और भाषा-विज्ञान का मुख्य-मुख्य कार्य क्षेत्र भी है। व्याकरण का कार्य भाषा में वाक्यांश और वाक्यांशों का विचार करना है; किन्तु भाषा विज्ञान का कार्य इसके अतिरिक्त है। भाषा विज्ञान के द्वारा भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है। व्याकरण अपना संबंध किसी एक भाषा की भाषा के विशेष रूप से स्थापित करता है, पर भाषा विज्ञान अपनी दृष्टि भाषा के अतीत स्तरों को और ले जाता है, और उसकी जाँच-पड़ताल करता है। व्याकरण का कार्य वहाँ किसी एक विशेष भाषा में ही होता है, वहीं भाषा विज्ञान एक किसी भाषा के संबंध रखता हुआ व्यापक भाषाओं के भी संबंध रखता है, और तुलनात्मक जाँच-पड़ताल करता है। व्याकरण अपनी दृष्टि को निम्नी, उपनिम्नी, और अन्तर्गतों के विश्लेषण तक ही सीमित करता है, किन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि इसके बाद पर जाती है, और वह प्रत्येक स्तर के इतिहास को भी सामने प्रस्तुत करता है।

व्याकरण के दो भेद होते हैं—वर्णमालात्मक, और व्याख्यात्मक। वर्णमालात्मक व्याकरण उसे कहते हैं, जिसके द्वारा सामान्य नियमों की रचना की जाती है। व्याख्यात्मक व्याकरण भाषा के भीतर प्रवेश करता है, और उसके द्वारा भाषा की प्रकृतियों को व्याख्या होती है। व्याख्यात्मक व्याकरण के भी तीन रूप होते हैं—वैज्ञानिक, तुलनात्मक, और सामान्य। वैज्ञानिक व्याकरण के द्वारा हम किसी भी भाषा के पूर्व स्तरों को खोज करते हैं, तुलनात्मक व्याकरण के द्वारा भाषा की सम-कालीन, या उससे पूर्व की सम्बन्धित भाषाओं की तुलनात्मक परीक्षा होती है, और सामान्य व्याकरण के द्वारा भाषाओं के सिद्धान्तों की परीक्षा की जाती है। व्याख्यात्मक व्याकरण वर्णमालात्मक व्याकरण का ही एक अंग है, पर दोनों के धर्मों में भिन्नता है। वर्णमालात्मक व्याकरण वहीं भाषा के बाह्य स्तर तक ही सीमित रहता है, वहीं व्याख्यात्मक व्याकरण भाषा के भीतर प्रवेश करता है, और उसकी व्याख्या करता है। व्याख्यात्मक और विवेचनात्मक होने की के कारण व्याख्यात्मक व्याकरण 'भाषा विज्ञान' के अंतर्गत समझा जाता है।

भाषा विज्ञान और व्याकरण में अधिक अंतर होते हुए भी अधिक समानता है। भाषा के क्षेत्र में दोनों का एक दूसरे से सम्बन्धनात्मक संबंध है। व्याकरण

भाषा विज्ञान किसी भी भाषा के वर्गीकरण कर्त्तों को सम्पत्ति उपलब्ध करता है, किन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि उसके प्राचीन कर्त्तों पर जाती है, और वह उन कर्मियों को विवेचना करता है, किन्हे द्वारा प्राचीन कर्त्तों को वर्गीकरण रूप प्राप्त हुए है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं, कि व्याकरण भाषा विज्ञान के लिए समग्र प्रयत्न करता है, और भाषा-विज्ञान अपनी शक्ति के व्याकरण के द्वारा दृष्टन सामग्री के आधार को प्रतिबुद्ध करता है। भाषा विज्ञान को हम व्याकरण का भी व्याकरण कह सकते हैं।

भाषा विज्ञान का संबंध सम्बन्ध शब्दों से भी बनित रूप से है। उन शब्दों में साहित्य, मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान, भूगोल, इतिहास, भौतिक शास्त्र, उर्ध्व शास्त्र, पुरातत्व, और भाषा विज्ञान इत्यादि उपलब्धनीय हैं। व्याकरण और भाषा विज्ञान के सम्बन्ध को चर्चा ऊपर की जा चुकी है। साहित्य और भाषा विज्ञान का सामयिक संबंध संबंध है। साहित्य अपने प्राचीन आधार से भाषा विज्ञान को समग्र प्रदान करता है, और भाषा विज्ञान इसके बदले में उसे कुछ और व्यक्तित्व करता है। 'मनोविज्ञान' विज्ञान कुलक होने के कारण भाषा विज्ञान की ही और देखा है। 'मनोविज्ञान' को हमारे भाषा विज्ञान के ही द्वारा सुझा है। 'भाषा विज्ञान' को भी 'मनोविज्ञान' से विचारों की रचना प्राप्त होती है। 'भाषा विज्ञान' 'शरीर विज्ञान' का सुझावेको है। 'शरीर विज्ञान' की भाषा विज्ञान से कहा जा नहीं सकता, पर शरीर विज्ञान कुल रूप से भाषा विज्ञान का सहायक है। शरीर के विभिन्न कर्मों द्वारा उपलब्ध शब्दों से ही भाषा का गठन होता है। भाषा के अर्थ में भी शरीर के कर्मों का ही महत्व पूर्ण भाग होता है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में व्यक्ति का महत्व पूर्ण स्थान होता है। व्यक्तियों के आधार, और उनके परिवर्तन पर सब भाषा का अधिक प्रभाव पड़ता है। वह भाषा का संबंध भूगोल से है। उदा: भूगोल की भाषा विज्ञान को अधिक आवश्यकता है। इतिहास भी भाषा विज्ञान का अधिक सहायक है। इतिहास के द्वारा भाषा विज्ञान की इस बात का ज्ञान प्राप्त होता है, कि कौन की जाति देश में किस समय आई, और उसके साथ हीन की कौती तथा भाषा का प्रवेश देश के भीतर हुआ, तथा उसके परिवर्तन अथवा देश की भाषा का भाषाओं की व्यक्तियों, कर्मों, और वाचन-रूपों से क्या परिवर्तन उपलब्ध हुआ। भाषा विज्ञान की इतिहास की सहायता प्रदान करता है। वह सामैतिहासिक काल की सामग्री को प्रस्तुत करके उसके अध्ययन को सुलभ बनाता है। व्यक्ति कौनसी जात जात करने में भौतिक शास्त्र भाषा विज्ञान की सहायता प्रदान करता है। चर्चा के विचार में 'उर्ध्व शास्त्र' भाषा विज्ञान का निरिक्त सहायक है। पुरातत्व व्यक्तियों के लिए मनीन और प्राचीन कर्मों की भाषा विज्ञान से सम्बन्ध प्रस्तुत करता है, और भाषा विज्ञान अपनी विवेचनात्मक दृष्टि से उसकी व्याख्या करके पुरातत्व के प्रभाव को समझ कराता है। महत्व

विज्ञान भी भाषा विज्ञान को बहुत कुछ प्रदान करता है, और इसके बदले में भाषा विज्ञान भी उसकी बहुत कुछ सेवा करता है ।

इस प्रकार भाषा विज्ञान का सभी शास्त्रों से कुछ न कुछ संबंध है; क्योंकि भाषा विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है, जिसके अभाव में किसी का व्यापार पूर्ण नहीं हो सकता । विश्व में जितने प्रकार के शान हैं, वे सभी भाषा की ही ओर लो देखते हैं ।

भाषा

मानव-जगत में भाषा का अधिक महत्व है। विश्व में कितने देश हैं, सब की अपनी पुष्क पुष्क भाषा है। जंगलों में रहने वाली असभ्य जातिर्षा भी अपनी भाषा में ही संसार करती हैं। भाषा मनुष्य की एक प्राकृतिक सम्पत्ति है। मनुष्य जन्म लेने के साथ ही बदन के रूप में भाषा का उन्धारण करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसके जीवन का जो तार बजता है, वह भाषा से ही ध्वनित होता है। मनुष्य अपने विचारों का आदान-प्रदान तथा भाषों का उद्भवन भाषा के ही द्वारा करता है।

मानव-जगत में जिस भाषा का इतना अधिक महत्व है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है, वह एक महत्व पूर्ण प्रश्न है। भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न को लेकर भाषा की विश्व के भाषा-वैज्ञानिकों ने बड़ी-बड़ी आलोचनाएँ की हैं।

उत्पत्ति निश्चित रूप से आज तक यह कोई नहीं कह सका कि सर्व प्रथम भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, पर विद्वानों ने अनुमान के आधार पर उसकी उत्पत्ति के संबंध में कुछ सिद्धांत स्थिर किए हैं। यद्यपि उन विद्वानों में बरस्वर वैपश्य है, पर उनसे भाषा की उत्पत्ति विषयक प्रश्न को समझने में सहायता अवश्य मिलती है। उन सिद्धांतों में महत्व पूर्ण सिद्धांतों के नाम इस प्रकार हैं:- दिव्य उत्पत्तिवाद, अनुकरण मूलकतावाद, मनोभावाभिप्रेक्षकवाद, अनुसृजन मूलकतावाद, श्रम परिहरण मूलकतावाद, विकासवाद और समन्वितवाद।

दिव्य उत्पत्तिवाद आस्तिक वादियों का मत है। इस मत के अनुसार भाषा की उत्पत्ति आदि काल में ईश्वर के द्वारा हुई है। इसी मत के आधार पर, सभी धर्मानुयायी अपने प्राचीन धर्म-ग्रंथों की भाषा की आदि भाषा मानते हैं। वेदों में आरम्भ रलने वालों का कहना है, की वेदों की भाषा संस्कृति देव वाणी है। इसी प्रकार मुसलमान कुरान की भाषा, ख़रवी की ख़ुदा का कलाम कहते हैं। इसाई भी पाइबिल की भाषा की ईश्वरीय भाषा मानते हैं। बौद्धों ने पात्ती को ईश्वर की वाणी की संज्ञा दी है।

अनुकरण मूलकतावाद अनुकरण पर आधारित है। इस सिद्धांत के पोषकों का कथन है, कि मनुष्य की भाषा की उत्पत्ति पशु-पक्षियों की बोली के आधार पर हुई है। उनका कहना है, कि जब मनुष्य ने पक्षियों की बोली सुनी, तो उसने उसी

बोली का व्यवहार करने वाले अपने लिए शब्दों का निर्माण किया। वे इसके लिए प्रयास भी करते हैं। जैसे मनुष्य ने जब किसी वस्तु के 'स्वभाव' शब्द को चुना, तब उसने उसीका अनुकरण करके 'स्वभाव' शब्द को रचना की। इसी प्रकार वायु बरिदियों को बोलने के अनुकरण से ही झड़के, बूझ, खींचल, और गुन्गू आदि शब्दों की रचना हुई। इस विचार, यों ही बरग, और विविधादि आदि शब्दों की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई, और हमें इनके माध्यम से अपने वाचनिक लक्ष्य को प्राप्त कर लिया।

प्रतीत्यर्थपरिचयक शब्द मन के विषयों पर आधारित हैं। इस मंत्र के शीघ्रों का अर्थ है, कि चाहे काल में मनुष्य के मन में भ्रम, खेद, दुर्ग विचार, और ईर्ष्या आदि विचार विविधता के होते हों, और उनके परिणाम उत्पन्न होने में मनुष्य के भीतर से शब्द, शीघ्र, बूझ, झड़, किन्तु भिन्न आदि शब्द निकलें होंगे। शब्दों के दुरु, भिन्न, और पार्श्व आदि शब्द भी इसी प्रकार के शब्द बनार जाते हैं। प्रतीत्यर्थपरिचयक शब्दों के अन्वयानुसार भाषा की उत्पत्ति इसी शब्दों के द्वारा है।

समुद्रजन्य शब्द प्रतीत्यर्थ पर आधारित हैं। यों ही भाषा की उत्पत्ति में इस विचार की महत्त्व होती है, उनका अर्थ है, कि किसी के प्रवाह, बल की दृष्टि, वायु की के विचार, दूरी के अनुकरण, और वायु की के प्रवाह से ही शब्द का प्रतीत्यर्थ होती है, इसी से भाषा की उत्पत्ति हुई है। वे इसके अन्वय में हिन्दी शब्दों के कई शब्द उपस्थित करते हैं। हिन्दी के बज बज, बूझ बूझ, और भज भज आदि शब्द इसी प्रकार के शब्द माने जाते हैं।

अन्य परिचयक मुद्राजन्य शब्दों का अर्थ आचार मान्य है। इस मंत्र के शीघ्रों का अर्थ है, कि चाहे काल में जब मानव परिवर्तन करते-करते शब्द बना होता, तो उसके मुख से निष्पत्ति को दूर करने के लिए "दिने वा क्षिणे", "ये है, हो" "दे वा हुँ" आदि शब्द निकल पड़े होंगे। वे इसके अन्वय में यह अर्थ उपस्थित करते हैं, कि काल भी बीतने, बहाने, और वास्तवों के मुख से शब्द करते समय इस तरह के शब्द निकलते हैं। उनका अर्थ है, कि हमें शब्दों के अन्तर और अन्तर में भाषा की उत्पत्ति का मुख लक्ष दिया हुआ है।

विचार शब्द की उद्भावना निश्चय-मन की अनुसंधान मन पर की गई है। इस मंत्र के अन्तर्गत शब्द निश्चय-मन की ही भाषा की उत्पत्ति का कारण बताते हैं। उनका अर्थ है, कि चाहे काल में मनुष्य के भीतर से ऐसी अवस्था निकलती थी, जो अन्तर्गत और निरर्थक होती थी। मनुष्य यों ही उत्पत्ति और प्रगति को और अवसर हुआ, यों ही उसकी अवस्था की शीघ्र और बूझ होती गई। हमें हमें शब्दों के अन्तर्गत में ही भाषा का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।

अन्तर्गत शब्द का अर्थ निश्चय-मन है। इस विचार के अनुसार भाषा की उत्पत्ति शब्द निश्चय के अन्तर्गत के आधार पर हुई है। वे निश्चय हैं—समुद्रजन्य, आचार्य

व्यंजन, विकार, अनुस्वन और प्रतीक। इस सिद्धांत का सबसे बड़ा योगदान यह है, जो भाषा-विज्ञान का एक आधारभूत सिद्धांत माना है। यह सिद्धांत है, कि भाषा की उत्पत्ति इसी सिद्धांतों की समन्वित क्रिया से हुई है।

'प्रतीक' को छोड़ कर दोष सिद्धांतों की उत्पत्ति व्यवस्था की जा चुकी है। 'प्रतीक' का आधार मनुष्य के शरीर की क्रियाएँ हैं। संसार के संपूर्ण मनुष्यों के शरीरों में, किसी विशेष अवस्था पर एक ही ही क्रिया होती है। जैसे जब मनुष्य की आवाज उठती है, तब उसके मन में ध्वनि ध्वनि की हल्की उत्पत्ति होती है। इस क्रिया में वह जिस शब्द का प्रयोग करता है, संसार की सभी भाषाओं का वह शब्द 'बीह' से ही उत्पत्ति होता है। जैसे हिन्दी का 'बीना', अंग्रेज़ी का 'बिगेर', और संस्कृत का 'विभीति' इत्यादि। यह सिद्धांत है, कि भाषा की उत्पत्ति इस सभी 'ध्वनि' के संयोग से हुई है। सभी भाषा शास्त्री जो यह सिद्धांत के इस मत का प्रयोग करते हैं, कि भाषा की उत्पत्ति अनुस्वन, आत्मविश्रुति, अनुस्वन, विकार, और प्रतीक इत्यादि सिद्धांतों के संयोग से ही हुई है।

भाषा का प्रभाव यदि भाषा के मानव-मन में अवस्था बन के बढ़ता जाता रहा है। तब वह तब बढ़ते बढ़ते जा रहे हैं, तब भाषा का सिद्धांत और अधिक-अधिक बल से बढ़ता ही जा रहा है। उसने वह वह शब्द बढ़ते जा रहे हैं, नई नई विविधता विकसित हो रही हैं, और उसका व्यवहार दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है। प्राचीन सभी और सभी, तथा अन्तिमों में बिना परिश्रम हुआ है, वह कोई नहीं वह करता। भाषा के शब्द, लय, और अन्तिम-अन्तिम निर्यात की क्रिया, और मनुष्यों के पारस्परिक मित्र के कारण बढ़ते हैं। जब किसी भाषा में कोई नया शब्द आता है, तो सभी सभी वह उसका अपनी शब्द बन जाता है, और कुछ दिनों के बाद-तब वह स्वाभाविक रूप से बनता जाता है। तथा मन-मन में

भाषा और उसका व्यवहार होने लगता है। भाषा में इसी प्रकार वह वह बढ़ता है। सभी, और अन्तिमों का समन्वित होता जाता है। एक मनुष्य वह किसी शब्द का प्रयोग करता है, तब उसके शब्दों की तुलना कर उसके साथ बात के साथ ही उसी या उसी शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार एक मनुष्य के शब्द और ध्वनि सामाजिक और राष्ट्रीय भाषा में बनना शुरु हो जाता है।

भाषा का निर्माण किसी एक मनुष्य के द्वारा नहीं होता। भाषा के निर्माण में सभी-सभी व्यक्तिओं का हाथ होता है। भाषा बढ़ा एक के साथ से होता शुरू के साथ बढ़ती है। प्रत्येक और अन्तिमों का भाषा वह प्रत्येक प्रत्येक बढ़ता है, तब उसके अन्तिमों में किसी प्रकार का व्यवहार उपरिष्ठ नहीं होता। भाषा का प्रयोग प्रत्येक ही उसके अपने प्रत्येक का आधार होता है, दूसरे शब्दों में प्राचीन व्यवस्था की नींव वह ही वह वह बनने लगे हैं। वही उस ही बढ़ता है, प्रत्येक अपनी भाषा की विधियों के बनाने का प्रयोग करते हैं। वे मान-

सूत्र पर अपनी भाषा में किसी प्रकार का परिवर्तन करना नहीं चाहते। क्योंकि माता में परिवर्तन करने से उनकी वह प्रकृति हूट जाती है, जो वास्तव में उनके जीवन का सन्तान में जाती आ रही है। इसी बात को ध्यान करके माता साहित्यों में भाषा की परम्परागत संरक्ति का संकेत दी है। क्योंकि किसी एक मनुष्य, समाज, और राष्ट्र के जीवन में परम्पराओं की संरक्ति ही उसका विशेष स्थान होता है।

किन्तु इसका वह अन्तर्गम कहानि नहीं है, कि माता पर किसी का किंचित अधिकार होता है। भाषा का सम्बन्ध विद्या और अनुकरण से है। जैसे सभी कलाओं का

भाषा चर्चित खान खीस कर प्राप्त किया जा सकता है, उसी प्रकार भाषा सम्पत्ति है। जो सीखा जा सकती है। कोई भी व्यक्ति किसी भी माता की

कीस सकता है। किसी एक काल के ही लोग कई भाषाओं सीखते हैं। किसी एक घर के लोग भी कई भाषाओं सीखते, और सीखते हैं। किसी एक घर में यदि कोई हिन्दी सीखती है, तो उसका पुत्र सीखेगी सीखता और सीखता है। उसका पुत्र यदि सीखता सीखता है। उसी का सीखता यदि है, जो आसीस सीखी सीखता है। एक प्रकार एक ही कुटुम्ब में कई भाषाओं सीखी, और सीखी जाती है। सीख में किंचित व्यक्ति के सीख निवारण करते हैं। वे अपनी वैयक्तिक भाषा न सीख कर बीच का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार माता के घरों की अपनी भाषा के स्थान पर उर्दू, हिन्दी, और गुजराती इत्यादि भाषाओं सीखते हैं। इन उदाहरणों से यह प्रगट होता है, कि भाषा अविनाश कष्ट है। कोई भी व्यक्ति प्रयत्न करके किसी भाषा की सीख सकता है, और उसमें सुख ही सकता है, किन्तु फिर भी वह इस बात का दावा नहीं कर सकता, कि वह उसकी सम्पत्तिगत कष्ट है। जो भाषा वह सीख सकता है, किन्तु प्रथम ही वह उसकी रचना नहीं कर सकता। भाषा की रचना समाज के द्वारा होती है, यथा वह व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर समाज और राष्ट्र की ही सम्पत्ति होती है।

यह प्रकार परिवर्तनशील है। संसार में किसी कष्टों हैं, एवं में समय-समय पर परिवर्तन होता ही रहता है। किसी कष्ट का नाम जो कल है, कौनहीं वर्ष पहले उसका वह कल न था, और कौनहीं वर्ष पश्चात् उसका वह कल न होगा। परिवर्तन के महापक्ष के कारण सम्भवतः प्रत्येक कष्ट के रूप में परिवर्तन होता ही रहता है। भाषा की परिवर्तन के महापक्ष में ऐसी हुई रहती है। किसी भी भाषा में किसी ही कल तक परिवर्तन ही चुके हैं। परिवर्तन के कारण उसके कितने ही रूप, वाक्य, और शब्द विभिन्न हुए ही चुके हैं, और उनके स्थान को कितने ही काल, स्थानों, और वाक्यों में प्रकट कर दिया है। भाषा का निरन्तर परिवर्तन सीखता के ही कारण होता है। किन्तु निम्न कारणों से भाषा के क्षेत्र में परिवर्तन उपस्थित होता है—एक तो भाषा साहित्यों में व्यक्तिगत विवेचनाओं की है। उनकी विवेचनाओं का स्वर प्राप्त नहीं है, कि भाषा का निरन्तर कल की परिवर्तन सीखता के कारण होता है, और उसके कई कल कारण

किन्तु कार्यों से भाषा में परिवर्तन उपरिष्ठ होता है, और परिवर्तन के द्वारा वह विज्ञान की ओर आगे बढ़ती है; इस पर अब हम विचार करते हैं, जो हमारे भाषा विज्ञान संबंधित कुछ ऐसे कार्यों का विषय उपरिष्ठ होता है, जिनमें के कारण परस्पर वैयर्थ होता है। इन उन कार्यों को ध्यान की दृष्टि से दो भागों में बाँटते हैं। एक को हम सामंजसिक, और दूसरे को भाषा की सेवा देंगे। सामंजसिक कारण के कारण हैं, जो किसी भी भाषा के जीवन में उसकी सामाजिक प्रति के कारण उत्पन्न होते हैं। भाषा कायदा बाहरी कारण होते हैं, जो लिखित, सामान्य, संस्कृतियों के सम्बन्ध, और कोटियों के मिश्रण आदि से संबंध रखते हैं।

सामंजसिक कारण कई कर्मों से उपरिष्ठ होते हैं, किन्तु हमारे भी प्रतीय, वक्त, उच्चारण, अनुकरण की अनुपूर्वता, और प्रत्यक्ष से उपरिष्ठ होने वाले कारण मुख्य हैं। जब भाषा में उनके कर्मों और कर्मों के कारण बार प्रयोग के कारण विविधता उत्पन्न हो जाती है, और इनके कारण पर वह रूप, और रूप का करते हैं, वह उस परिवर्तन को प्रयोग संबंधी परिवर्तन करते हैं। वह अपने ही भाषा सामाजिक रूप से उपरिष्ठ हुआ करता है। जिनमें का कर्मों पर अधिक वक्त देने के हमारे निर्देशता उत्पन्न हो जाती है, और कुछ दिनों से से प्रभाव प्राप्त से हो करते हैं। इनके मत होने के साथ ही उनके स्थान की भी परिवर्तन, और वह कार्य के होते हैं। इसी की वजह से उत्पन्न हुआ परिवर्तन करते हैं। किसी भी भाषा को बोलने वाली के विचारों में प्रभाव उत्पन्न होता हुआ करता है। विचारों में उत्पन्न होने के कारण उनकी सामाजिक विचारों की बदलाव पड़ती है, जिनके वक्त कल्पन भाषा में भी परिवर्तन होता है। इसी की उपरिष्ठ के उत्पन्न परिवर्तन करते हैं। प्रत्यक्ष अनुकरण के सांकेतिक सम्बन्धों, प्रत्यक्ष, और विचार में सम्बन्ध नहीं होती। वक्त एक ही भाषा के सम्बन्धों, और ध्वनि की उपरिष्ठ कर्मों अनुकरण एक प्रमाण ही नहीं करते। इस सम्बन्ध के कारण भी भाषा में परिवर्तन उपरिष्ठ होता है। इस प्रकार के परिवर्तन की अनुकरण की अनुपूर्वता कर्मों परिवर्तन करते हैं। प्रभाव सामान्य परिवर्तन उत्पन्न करते हैं, जो कर्म से हम प्रमाण में अधिक मात्रा प्रभाव करने के कारण प्रभाव के जीवन में उपरिष्ठ होता है। कहीं एक प्रकार के प्रमाण होते हैं, कहीं भाषा की ध्वनि अपने अन्तिम की सेवा नहीं कर पाती, और कभी कभी हमारे कर्म के होने लगता है।

भाषा कार्यों में अन्तर्भाव, आवाज, ध्वनि, संस्कृति, व्यक्ति की विशेषता, और अन्तर्भाव के सम्बन्ध से संबंध रखने वाले कारण मुख्य हैं। अन्तर्भाव के कारण भी भाषा में परिवर्तन होता है। भाषा का उपरिष्ठ सांकेतिक सम्बन्धों के द्वारा होता है, जो कर्मों और कर्मों से अधिक प्रभावित हुआ करते हैं। ध्वनि का प्रभाव और वक्त पर भी भाषा की सम्बन्धित करता है। उपरिष्ठ प्रभाव के विचारों की कर्मों जीवन निर्वाह के लिए अधिक प्रभाव प्रभाव नहीं पड़ता। उनके साथ संबंध

काम्यो और विचार करने के लिए अधिक समय होता है। अतः उनकी भाषा भी और बड़े-बड़े के विचारों की भाषा से अधिक समझोती होती है। संस्कृत का प्रभाव तुल्य रूप से भाषा पर पड़ा है। किसी भी देश की भाषा उसकी संस्कृति के अनुसार ही बनती और विकसित होती है। विभिन्न जातियों की संस्कृति भी भाषा को प्रभावित करती है। जैसे संस्कृत की तुल्योत्पत्ति के सामाजिक माध्यम से हिन्दी की अधिक प्रभावित किया है। यह ही संस्कृतियों का प्रभाव मिलती है, जब काम्यो, विचारों, और सामाजिक व्यवस्थाओं से परिवर्तन उत्पन्न होता है, जिसके परिणामस्वरूप भाषा भी परिवर्तित होने लगती है। काम्यो का आदान-प्रदान प्रत्यक्ष रूप में होता है। काम्यो में आदान-प्रदान होने के साथ ही काम्यो विचारों में भी आदान-प्रदान होता है, किन्तु इस बात नहीं पाते। सामाजिक व्यवस्थाओं से भी उत्पन्न कर ही जाता है। इस कारणों का भाषा पर अधिक प्रभाव पड़ता है, और वह प्रभावित हो जाती है।

भाषा के विकास और प्रगति पर साहित्यिक भाषा का प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ही प्रमुख भाषा प्रसार के साधनस्वरूप से रहता है, कारण कि इस की स्थिति में भाषा और उसका विकास रहता है, उसी प्रकार की उसकी भाषा ही की स्थिति का है। एक प्रमुख की स्थिति से रहता है, उसकी भाषा में और संस्कृत के काम्यो का प्रभाव सामाजिक ही है। इसी प्रकार एक ही भाषा की भाषा में काम्यो के काम्यो की प्रमुखता रहती है। किताबी, मध्यम, और प्रयोगों की भाषा विचारों तथा भाषाओं की भाषा के प्रमुख होती है।

भाषा का विकास स्थिति से होता है। यही उसे कहते हैं, ही एक ही स्थिति में विकास करने वाले प्रमुखों के द्वारा होती जाती है। किसी एक ही में यही करने वाली भाषा की स्थिति रहती है। यही की स्थिति के अनुसार, प्रत्यक्ष ही स्थिति का प्रभाव होता है। एक बात में ही प्रभाव होता है। इस प्रकार एक ही बात में विभिन्न स्थितियों होती जाती हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रभाव की प्रभाव प्रमुख प्रमुख होती होती है। किसी किसी विस्तृत प्रभाव से ही-ही, हीन-हीन स्थितियों होती जाती हैं।

भाषा का विकास यही स्थितियों से होता है, यही काम्यो में भाषा उनकी स्थितियों से ही किसी एक प्रमुख और वैज्ञानिक प्रमुखों से प्रभाव होती का नाम है। यही स्थिति का भाषा का प्रभाव प्रभाव कहती है, जब उसका ही प्रभाव प्रभावित हो जाता है, और साथ ही साथ उसका प्रभाव भी अधिक बढ़ जाता है। यही के रूप में उसका प्रभाव प्राप्त का प्रभाव एक ही स्थिति रहता है, किन्तु भाषा का प्रभाव प्रभाव करने पर वह ही ही और काम्यो काम्यो प्रभाव भाषा का भी प्रभाव प्राप्त कर लेती है। 'यही' के रूप में वह प्रभावित होती रहती है, किन्तु भाषा का प्रभाव प्रभाव करने पर उसके काम्यो स्थितियों प्रभावित हो जाती है। 'यही' के रूप में वह प्रभाव 'यही' के प्रभाव में होती है, किन्तु भाषा के रूप पर प्रभाव होने पर उसे ही प्रभाव प्रभावित और बढ़ते हैं। 'यही' के रूप में रहने पर उसके प्रभाव काम्यो की स्थिति नहीं होती, इसलिए

उसमें साहित्य का पूर्ण रूप से अभाव रहता है। किन्तु भाषा का स्वरूप धारण करने पर उसका शब्द-क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, और उसमें विविध प्रकार के साहित्य का प्रणयन होने लगता है। बोलियों का अपना व्याकरण भी नहीं होता, पर भाषा व्याकरण के नियमों के साथ चलती है, और उसके रूप में व्यवस्था तथा सुकरता का समावेश रहता है। 'बोली' और 'भाषा' में वैसा ही अन्तर समझना चाहिए, जो एक बालक और वय प्राप्त पुरुष की भाषा में अन्तर हुआ करता है। बालक की भाषा शृंखला हीन, और अस्त-व्यस्तता लिए हुए होती है, पर वय प्राप्त पुरुष की भाषा में एक क्रम, और एक शृंखला होती है। इसी प्रकार बोलियों में शृंखला हीनता और भाषा में क्रम बढ़ता होती है—यही दोनों का अन्तर है।

अनि विचार

भाषा के बोलचाल में अनियों का अधिक महत्व होता है। जब हम किसी को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कोई शब्द बोलते हैं, तब उससे एक प्रकार की अनि अनि निकलती है। इस प्रकार के अनि संकेतों के समूह को ही हम आचारण रूप से भाषा की संज्ञा देते हैं। अनियों का यौग अधिक विस्तृत होता है। उसके भीतर कर्ष, वशों से बनने वाले भिन्न भिन्न शब्द, शब्दों से बनने वाले भिन्न भिन्न वाक्य, और वाक्यों से बनने वाली भाषा इत्यादि सभी का अन्तर्भाव हो जाता है। अनि का वह व्यापक अर्थ है, पर भाषा-विज्ञान में वर्णों के लिए ही अनि का व्यवहार किया जाता है। 'अनि' का दूसरा अधिक महत्व है, कि उसे संकीर्णता की शृंखला में कहने पर भी उसका व्यवहार कई अर्थों में होता है, जिनमें दो मुख्य हैं—माध्य अनि, और अनि माध।

माध्य अनि उसे कहते हैं, जब मनुष्य अपने कुल के निर्दिष्ट स्थान से, निर्दिष्ट प्रयत्नों के द्वारा किसी क्षेत्र को सुस्पष्ट करने के लिए उच्चारण करता है, और सोता उसे उही अर्थ में ग्रहण करता है; संक्षेप में माध्य अनि का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत उच्चारण से होता है। अनि माध में मिलती-जुलती अनेक भाषा-अनियाँ मिली रहती हैं, जिनका संबन्ध नहीं किया जा सकता।

माध्य अनि और अनि माध में क्या अन्तर होता है—इसको सुस्पष्ट करने के लिए हम 'जल्दी' और 'मात्सा' दो शब्द उपनिषत् करते हैं। दोनों ही शब्दों में 'ल' अनि का प्रयोग हुआ है, किन्तु दोनों के उच्चारण की वह हम परीक्षा करेंगे, तो देखेंगे कि दोनों की अनियों में अन्तर है। दोनों की अनियों के अन्तर को जानने के पूर्व वह समझ लेना चाहिए, कि मनुष्य के शरीर की रचना बड़ी अद्भुत है। मनुष्य के शरीर में नाभि के ऊपरी भाग से लेकर मुख तक देखे कण बने हुए हैं, किन्तु हम यदि अनि-कण करें, तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। हम शब्दों का जो उच्चारण करते हैं, उस उच्चारण में इन्हीं अनि-कणों का ही विशेष हाथ होता है। हम जिस शब्द का उच्चारण जिस अनि-कण की सहायता से करते हैं, उसी प्रकार की अनि भी बाहर निकलती है। अब आइए देखें, कि 'जल्दी' और 'मात्सा' के 'ल' का उच्चारण एक ही अनि कण से होता है, या उसमें अंतरात्ता है। 'जल्दी' के 'ल' का उच्चारण जब हम करते हैं, तो उससे जो अनि निकलती है, वह दाँत के दाँत बीच के उभराने से उत्पन्न होती है। किन्तु 'मात्सा' के 'ल' के उच्चारण की

व्यंजि स्वर के मुहूर्त स्थान के साथ समेते से होती है। क्वयि दोनों ही 'ज' को व्यंजि एक ही मुहूर्त देती है, किन्तु दोनों के उच्चारण कर्मों में भी अंतरांतर है, उससे व्यंजि-मात्र एक होने का भी मापक-व्यंजिर्णों ही हो गई है। इसी प्रकार व्यंजि-कर्मों की विनियता, और उच्चारणों की अंतरांतर के कारण कर्मों कर्मों की मापक व्यंजिर्णों ही बना जाती है। सींगरेको, कासी, मुकसी इत्यादि सभी मापकों के सम्यो के उच्चारणों में इस प्रकार की मापक व्यंजिर्णों गई जाती है। एक व्यंजि मात्र में सम्यो मापक व्यंजिर्णों होती है। क्योंकि सब का उच्चारण करने का एक मुख्य पुरुष है। कहा हम यह कहते हैं, कि व्यंजि मात्र एक विद्येय व्यंजि है, जिसने कई मापक व्यंजिर्णों बनाकर रखी है।

'व्यंजि विचार' को व्यंजि शिक्षा का व्यंजि-विज्ञान कहते हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है। इसके द्वारा हम एक बात का समझना करते हैं, कि सचरी व्यंजि विचार को उच्चि किंतु प्रकार होती है, सचरी का वास्तविक के अंग समझना क्या है, व्यंजि क्या कहते हैं, व्यंजि मात्र, और मापक व्यंजि किसे कहते हैं, तथा दोनों में क्या अंतर है, इत्यादि। व्यंजि विज्ञान इसी रास्ते पर अंतरांतर जाता है। इन पक्षों पर अंतरांतर महत्त्व वास्तविक समझना है। इस पर अंतरांतर पक्षों से ज्ञान की अभिवृद्धि होती है, और साथ ही मात्र के सम्यो को समझने में सहायता भी मिलती है।

व्यंजि-शिक्षा के मुख्य रूप में दो अंग हैं—स्थान, और प्रमाण। स्थान से रास्ते व्यंजिर्णों को उच्चि के स्थान से है। प्रमाण यह है, जो व्यंजिर्णों के उच्चारण के लिए वास्तविक होता है। 'व्यंजि' का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें इसके 'स्थान' और 'प्रमाण' का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। व्यंजि-ज्ञान के लिए स्थान का ज्ञान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हम पहले इससे चर्चा कर चुके हैं, कि हमारे शरीर में नाभि के ऊपरी स्थान से लेकर मुँह तक अनेक व्यंजि रूप हैं। ये व्यंजि रूप और मुख नहीं, हमारे शरीर के भीतरी अंतरांतर हैं। व्यंजिर्णों का अर्थोचित कर्तव्य और विनियता इन शरीरावस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ही किया जा सकता है।

हमारे शरीर के जो अवस्था दोन बात में मुख्य रूप से हमारी सहायता करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं:—

क—पेट

ख—नाक

ग—अभिजात [अभिलाष]

घ—व्यंजि लय

च—कंठ पित्त [कंठ का दाह्य भाग]

छ—अंतरांतर

ज—दवाक प्रवाही

८—बंठ खर्च

९—बीछा [कल्लू का लटकता हुआ भाग]

१०—बीमल खल्लू

११—बूझा

१२—बाहु [बिछा का ऊपरी भाग]

१३—बग्न [दोत और बूझा के भाग का भाग]

१४—दंड मूल [दंडों की ओर]

१५—दंड

१६—बीछ

१७—बिछा [बिछानील, बिछाव, बिछोया, बिछा मल्ल या पदम बिछा, और बिछा मूल]

‘बिचियों’ में शरीर के इन्हीं अंगों का महत्व पूर्ण होता रहा है। इन्हीं अंगों के द्वारा ‘बिचियाँ’ बाहर निकल कर हमें सुगन्धि पहुँची है। परंपरा और बिचियों के व्यवहार से यह बात पुरानी है, कि बिचियों की प्रकार की होती है। प्रकार-नाद एक की नाद बिचियों, और दूसरी की स्वाद बिचियों कहते हैं। नाद और स्वाद बिचियों, और स्वाद बिचियों की समझने के पूर्व ‘नाद’ और ‘स्वाद’ का मतलब है, वह जगह प्राप्यक है। शरीर के अंगों में ‘नाद’ और ‘स्वाद’ का एक अंग ही है। वह बाहु के अंग के अंग, अंगों की ओर का अंग पूर्ण बाहर निकलती है, जो उसके अंगों से ही ‘बिचियों’ उत्पन्न होती है, जो ही ‘नाद’ कहते हैं। वह सब अंगों का अंग में एक दूसरे के दूर रहती है, और दूसरी दूर होती है, जो एक अंगों में बाहर निकलने वाली बाहु से अंगों बिचियों का स्वाद कहते हैं। ‘द’ ‘ब’ और ‘ज’ इत्यादि स्वाद बिचियों हैं। ‘ब’ ‘ज’ और ‘ज’ इत्यादि बिचियों कहते हैं ‘द’ ‘ब’ और ‘ज’ के ही कहा है, पर वह नाद बिचियों हैं। हिन्दी और संस्कृत ‘द’ में नाद बिचियों, किन्तु अंगों में वह स्वाद बिचियों के अंगों का नामा जाता है।

नाद और स्वाद बिचियों का अंग बहुत कुछ एक अंग ही होता है। इन बिचियों में ही अंग का नामा जाता है, उनका एक अंग बाहु और अंगों होती है। वह अंगों की बिचियों में अंगों होने के कारण उनकी बिचियों में ही ‘नाद’ और ‘स्वाद’ के अंग में अंगों अंगों ही कहते हैं। नाद और स्वाद-होती ही बिचियों का अंग ही अंगों होती है। पर अंगों के अंगों में अंगों का नामा पाई जाती है। दोनों बिचियों का अंग ही अंगों होती है, एक अंग की दृष्टि में एक ही बिचियों की ही अंगों में अंगों बिचियों का है, जिसमें एक ही अंग, और दूसरी ही अंगों कहते हैं। वह बिचियों का अंगों बिचियों की अंगों के अंगों के अंगों होती है। अंगों के अंगों की बिचियों निकलती है, उनका अंगों ही अंगों के अंगों बिचियों के अंगों नहीं होती। किन्तु अंगों बिचियों के अंगों

मैं जोड़ा बहुत रोषपूर्ण होता है और ज्वनि अपने ही बात उन्मत्त होने वाली ज्वनि है। उसके उन्मत्तता के समय स्वयं निरंतर मुक्त के बाहर निकलता रहता है। निम्न मंडल ज्वनि को अपने उन्मत्तता के उन्मत्तता की कक्षाओं को छोड़ता होता है। मंडल ज्वनि की कक्षाओं पर ज्वनि की ज्वनि दूर तक सुनाई देती है।

सबूतों का मत है कि अक्षरों का नाम है। किन्तु अक्षरों में कुछ भी नहीं है, जो नाम नहीं के अक्षरों का नाम है, और कुछ भी नहीं है, जो नाम नहीं के अक्षरों का नाम है। इस प्रकार अक्षर 'मा' और 'दा' दोनों ही होते हैं। परन्तु अक्षर और अक्षरों में दोनों अक्षरों का अक्षर होता है, वह नहीं है। अक्षरों का 'ह' अक्षर नहीं है। अक्षर अक्षरों का नाम नहीं के नाम का नाम का नाम है, वह होता होता है। इसी प्रकार हिन्दी का 'ह' नाम नहीं है। अक्षर अक्षरों का नाम नहीं के अक्षरों का नाम है, किन्तु अक्षर होता नहीं।

ऊपर उल्लेखित की दृष्टि के लक्षितों के दो विधों की बर्णना की गई है—प्रत्यक्ष, और स्वर । 'प्रत्यक्षों' की समझने के लिए हम पर दो बातें के विचार किया जाना चाहिये था । एक तो स्वरों के उपयोगी लक्षणों के वर्गीकरण का अनुमान, जिससे उनका उल्लेख किया जा सके, दूसरा उनके उल्लेखित की दृष्टि के अनुसार । प्रथम लक्षण की समझने का काम प्रत्यक्षों पर विचार करने के उनके आठ भेद मिले जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं— १ वाक्यत्व, २ वाक्य भाग, ३ पूर्वार्ध, ४ अन्तर्ध, ५ अन्तर्ध, ६ अन्तर्ध, और ७ अन्तर्ध । इसी प्रकार दूसरे लक्षण की समझने का काम प्रत्यक्षों पर विचार करने के द्वितीय के उनके आठ भेद मिले जा सकते हैं—सर्ग, पर्व, सर्ग पर्व अनुवाक्य, वाक्यवाक्य, वाक्यवाक्य, और सर्ग स्वर ।

(४) जो व्यक्ति 'चाकल' नामक स्थान से उत्पन्न होती है, उसे चाकलन कहते हैं।
हिन्दी में 'ह' इसी शब्द की जगह है।

(२) कंड के उभय होने काही भवि की कंडा भवि कहते हैं । कंड भवि का उभयार्थ उस समय होता है, जब बीजक उल्लू का सर्वा विज्ञा के द्वारा होता है ।
 लीङ्गः—'क', 'क' ।

(३) दुर्धन्य ज्वानि उरि कटोते हे, जिसका अन्तःस्थ कटोर तालु के निचले भाग, कटि निचले के द्वारा होता है । जैसे—४, ५, और ५ ।

(४) यमल ज्वनि उस ज्वनि का नाम है, जो कठोर लघु स्वर शिकोनाद से उत्पन्न होती है । प्रयोग—‘य’, ‘ज’, ‘ज’ ।

(५) कर्षण' ज्वनि राशे कहते हैं, जो वायु के अधिकतम मात्र, ऊपरी वस्तुओं, जैसे निम्नानोंक के द्वारा उत्पन्नित होती है । जैसे—'न', कर्षण 'भू' ।

कभी दोनों का प्रयोग एक दूसरे के वर्णन के ही रूप में किया जाता है। व्यक्तियों को समझा रहा-वस्तुओं में अतिरिक्त कुछ, और विशेषार्थ होता है। सारी में वे विशेष-स्वर और स्वर धारण करते और विज्ञा की निमित्त, और अवस्थाओं अग्निषो का के कारण उत्पन्न होते हैं। अतः सारी का वर्णनरूप वर्णनरूप विज्ञा की अवस्थाओं को दृष्टि में रख करके ही किया जा सकता है। विज्ञा की साधारण रूप में तीन अवस्थाएँ होती हैं—एक अवस्था सबसे धारण की है, जो होती होती है, दूसरी सबसे धारण की है, जो होती होती है; और तीसरी मध्य की अवस्था होती है, जो सबसे नीची होती है। तीन को अग्नि की दृष्टि में एक कर कर एक स्वर अग्निषो पर विचार करते हैं, जो उनके तीन रूप होते हैं, किन्तु एक, दूसरा, और मध्य का भिन्न करते हैं।

सारी के उद्धारण में विज्ञा की तीन विधियाँ होती हैं, किन्तु उपरोक्त ऊपर किया का कुछ है; दूसरे स्थानों में एक एक विधियों को विज्ञा की धारण, धारण, और विविध विधि भी कह सकते हैं। विज्ञा की धारण विधि पर विचार करने से सब अग्निषो के तीन रूप प्राप्त होते हैं—एक, दूसरा, और तीसरा। इसी प्रकार विज्ञा की धारण विधि की दृष्टि में एक कर विचार करने से भी सब अग्निषो के चार रूप प्राप्त होते हैं, किन्तु संतुल, धारण, संतुल, विज्ञा और धारण विज्ञा करते हैं। संतुल अवस्था होते करते हैं, जिसमें विज्ञा किन्तु अवस्था के अभावमें सब उपर जाती है। धारण संतुल और धारण विज्ञा एक अवस्था की करते हैं, जिसमें विज्ञा अपनी मध्य विधि में रहती है। विज्ञा अवस्था होते करते हैं, जिसमें विज्ञा अवस्थाओं में भी और जाती है।

अवस्थाओं के संबंध में पहले कुछ प्रकाश आता का कुछ है। उनके आता में ही का भी उपरोक्त किया का कुछ है। वहाँ सब स्वर अग्निषो की अग्नि ही व्यक्तियों के व्यक्तियों का वर्णनरूप का भी अग्नि उपरोक्त किया आता। व्यक्तियों वर्णनरूप का वर्णनरूप करने के पूर्व अग्निषो के मूल वर्ण पर ध्यान देना आवश्यक है। अग्निषो के मूल वर्ण दो हैं, जिसमें एक की धारण, और दूसरे की धारण करते हैं। अग्नि का वर्ण मूल वर्ण होते करते हैं, जिसमें एकाग्र का धारण होने के कारण उत्पन्न होता है। अतः अग्नि मूल वर्ण कह है, जिसमें अग्निषो होती रहती है, और एकाग्र किन्तु अग्निषो के बाहर निकलता है, और उत्पन्न होती होता है। उत्पन्न होने से ही अग्नि अतः अग्नि मूल वर्ण करते हैं। सभी वर्णों की गणना वर्ण अग्नि मूल के अन्तर्गत होती है। किन्तु व्यक्तियों में कुछ वर्ण और कुछ अतः वर्णों की अवस्था के होते हैं। इस प्रकार व्यक्तियों के दो प्रकार होते हैं—अतः अग्निषो, और अतः अग्निषो, फिर अतः के भी दो प्रकार होते हैं—पूर्व अतः, और अतः अतः। इस प्रकार उद्धारण की दृष्टि से व्यक्तियों के आता प्रकाश होते हैं, किन्तु उपरोक्त ऊपर किया का कुछ है।

अतः एक विधि कहें का उद्धारण करते हैं, जो उनके विधि होने एक विशेष

अक्षर की पैदा करती बढ़ती है। उच्चारण की एक पैदा की 'प्रत्यय' बढ़ते हैं। प्रत्यय में शीतर, और बादर दोनों की ही शक्तियाँ काम करती हैं। इसीलिए प्रत्यय के दो भेद हो जाते हैं—आत्मकार, और बाह्य। बाह्य प्रत्यय उसे बढ़ते हैं, जो मूल के बाहर होता है। आत्मकार प्रत्यय मूल के भीतर होता है। 'क' से लेकर 'म' तक पचीस वचन आत्मकार प्रत्यय ही द्वारा उभरते होते हैं। सब उभरने की शक्ति में कर्मप्रत्यय, और दूरी होने वाला वाच्य केम की कमी और शक्तिशाली के कारण भी वचनों के साथ बिदे दिखे गए हैं, जिसके साथ सर्वप्र, सर्वप्र, सर्वप्र, और 'सर्वप्र' मान्य हैं।

सर्वी और सर्वप्र के उच्चारण में भी अंतर होता है। सर्वी का उच्चारण शक्तिशाली के साथ होता है, और वे दूर तक सुनाई देते हैं। इसके प्रतिद्वन्द्व सर्वप्र के उच्चारण अलग होता है, और उनकी शक्ति दूर तक नहीं जाती। सर्वी में भी दोहरे कई रूप हैं, जिसके उच्चारण की शक्ति में अन्तराल होता है। यदि किसी शब्द के अन्त में कोई शक्तिशाली शब्द आ जाता है, तो वह पूर्व शब्द की शक्तिशाली बन जाता है। ऐसे अवस्था में पहले वाले शब्द का शक्ति शब्द के अन्त में उच्चारण होता है। ऐसे सर्वी की 'सर्वप्र' कहा जाता है। सर्वप्र सर्वी की वचन 'सर्वप्र' में ही हो जाती है। हिन्दी में 'व', 'र', 'ल', और 'व' इत्यादि सर्वप्र कहाते हैं।

अनिर्णय विशेष मात्रा पूर्व होती है। अनिर्णय ही वह शक्ति है, जिससे 'गर्भ' और 'वाच्य' दोनों में अनिर्णय सर्वप्र बनाने होता है। 'अनिर्णय' किश प्रकार अपनी अनिर्णय शक्ति को व्यक्त करता है, अथवा वह और के वाच्य है, जिसके के मुख द्वारा अन्त में वह विशेष मुख शक्ति बढ़ती बात है—एक एक शक्ति कावचमक विचारशील प्रत्यय है। अनिर्णय के मुखों और उनकी विशेषताओं पर जब हम विचार करते हैं, तो हमें पता होता है, कि जो ऐसे अवस्था में हुए हैं, जिससे उनकी 'विशेषता' हासिल है। अनिर्णय के वे मुख हैं—माया बाल और सर्वप्रत्यय। अनिर्णय का उच्चारण दुर्गों की शक्तिशाली के होता है। ऐसे कोई शक्ति नहीं, जिससे उच्चारण में हमने से किसी व किसी की बढ़ावका न हो जाती है। यही कारण है, कि उनकी मूल्य अनिर्णय की विशेषताओं में हो जाती है। किसी अनिर्णय के उच्चारण में अन्त की भी मात्रा लगती है, उसे भी मात्राकात बढ़ते हैं। मात्रा बाल और गर्भ में विभक्त है—हल्का, दीर्घ, और लघु। 'क', 'र' और 'ल' हल्का मात्रा हैं। लघुत्व के अन्त होता है, कि एक बार फिरकी अन्त में जिसका अन्त लगता है, अन्त ही अन्त अन्त के उच्चारण में लगता है। यही कारण है, कि हल्का एक शक्तिशाली होता है। 'दीर्घ' के उच्चारण में अन्त का दूरा लगन लगता है, इसलिए वह द्विगुणित होता है। अन्त का द्विगुण अन्त अन्त के कारण लघु विचारित होता है, किन्तु अन्त प्रयोग मात्रा नहीं के ही वचन होता है।

जब हम किसी वाच्य को बोलते हैं, तो बोलने में वाच्य के किसी शब्द पर

जन्मान्त सम्बन्धों की अभेदा विशेष बल देते हैं। इससे कभी कभी उस शब्द के कार्य में जो परिवर्तन हो जाता है। शब्द पर कभी बल देना सरासरी कहलता है। सरासरी हो प्रकार का होता है—संकीर्णायक, और बलायक। संकीर्णायक सरासरी केवल दोष अविवेकी में होता है। इसका बोधा संबंध स्वर-रूपियों के होता है। संकीर्ण के उदाहरण की भाँति इसका बुरा लोभा, या लोभा होता है। संकीर्णायक सरासरी बोधा बहुत सभी भाषाओं में पाया जाता है, पर वैदिक संस्कृत, प्राचीन ग्रीक, चीनी भाषा, संस्कृत, हिन्दी, और आर्यभट्टी भोजपुरी इत्यादि में उसकी प्रचुरता है।

संकीर्ण सरासरी का संबंध केवल के होता है। इससे ही इससे उदाहरण के केवल 'बल' दिया जाता है। जिस वर्ष के काय सरासरी होता है, उस पर 'बल' दिए जाने के कारण वह बल के भी दुर्गति देता है। प्राचीन भाषाओं में 'बल-रत' तथा आधुनिक भाषाओं में 'बल-रत' और 'बल-रत' सरासरी के लिए प्रसिद्ध है।

अभिन्नों के समुदाय की भाषा कहते हैं। भाषा के किसी एक भाग में स्वर, और 'स्वयं'-हीनी ही अभिन्नों काय काय रहती है। हीनी ही अभिन्नों के संकीर्ण के संकुच ही किसी एक भाग की वृत्ति होती है। कभी कभी आधुनिकता अभिन्नों अपने पर हीनी अभिन्नों काय में, किसी विशेष स्थान पर मिल जाती है। इस प्रकार वह कोई भी किसी वृत्ति अभि के मिलती है, तो उसे संकुच अभि कहते हैं। जैसे—'पलक' में 'क' 'ख' 'ग' अभिन्नों काय में मिली हुई हैं। इस प्रकार वह ही अभिन्नों काय में मिलती है, तो उसके एक वृत्ति ही अभि संकुच ही काय कहते हैं।

'संकुच' और अभि-संकीर्ण में कुछ अंतर होता है। 'संकुच' में हीनी अभिन्नों एक दूसरे के मिल जाती हैं, किन्तु अभि-संकीर्ण में अभिन्नों परस्पर न मिल कर केवल एक-दूसरे के संबंध का जाती है। जैसे 'आदर्श' में 'आ', और 'इ' मिलकर एक ही का गत है। अभि-संकीर्ण कई रूपों में होता है। जैसे—'स्वयं' 'स्वयं', 'स्वयं' 'स्वयं', और 'स्वयं' 'स्वयं'। स्वयं का संकीर्ण ही हीन रूपों में होता है। कभी ही ही स्वयं काय में एक दूसरे के मिलती है। वैदिक विज्ञान में हीनी स्वयं का उदाहरण 'आ' के कारण काय दिया जाता है। जैसे—'आदर्श' में 'क' और 'ख' बीच में 'क' के कारण एक दूसरे के वृत्ति है। कभी एक ही स्वयं का संकीर्ण होता है। जैसे—'पलक' में 'क' और 'ख' का संकीर्ण हुआ है। काय एक ही स्वयं काय में मिलती है, तो हीनी का उदाहरण वृत्ति-वृत्ति की होता है। कभी-कभी दो भिन्न स्वयं का जो संकीर्ण होता है। जैसे—'आ'। किन्तु कभी भिन्न स्वयं काय में नहीं मिलती। स्वयं और स्वयं स्वयं का परस्पर मिलना बहुत कम देखा जाता है।

स्वयं और स्वयं का संकीर्ण उदाहरण रूप में होता है। इसके उदाहरणों में भी परिवर्तन नहीं प्रतीत होता। जैसे—'आ' में 'आ', और 'प'। स्वयं कभी स्वर

के पहले आता है, और कभी बाद में। जब यह पहले आता है, तो अलग अलग रहता है। किन्तु जब बाद में आता है, तो स्वर के साथ ही जोड़ा जाता है। 'स्वरो' का संयोग भी साधारण रूप में ही होता है। कभी कभी तीन 'स्वर' तक एक साथ देखे जाते हैं। जैसे—'दिखाऊ'। जब दो 'स्वर' आपस में एक-दूसरे से मिलते हैं, तो उनके संयुक्त स्वर कहते हैं।

जगत की संपूर्ण वस्तुओं में प्रति क्षण परिवर्तन होता ही रहता है। भाषा भी परिवर्तन के चक्र में बँधी हुई है। भाषा में परिवर्तन क्यों की ध्वनियों के ध्वनि परिवर्तन-कारण होता है। क्यों की ध्वनियों जब बदलती हैं, तो तब के कारण भाषा में भी परिवर्तन होता है। क्यों की ध्वनियों में किन कारणों से परिवर्तन होता है; इस पर जब हम विचार करते हैं तो यह बात होता है, कि ध्वनियों में परिवर्तन कई कारणों से उपस्थित होता है। उन कारणों की हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—वाक्, और आंतरिक। वाक् कारण वे हैं, जो राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, और भौगोलिक आंदोलनों के परिणाम से उपस्थित होते हैं। आंतरिक कारण वे हैं, जो भाषा के भीतर अपने ही आप 'स्वराघात' इत्यादि से उत्पन्न होते हैं।

ऐसी बातों के कारणों की विस्तार पूर्वक यदि समीक्षा की जाय तो ये निम्नलिखित रूप में सामने उपस्थित होते हैं—वाक्-बंधों की विभिन्नता, अव्ययश्रृंखला की विभिन्नता, अनुकरण की कमी, अज्ञानता, भ्रम पूर्वक व्युत्पत्ति, बोलने में शीघ्रता, प्रथम साधन, भावुकता, बोलने में कुपितता का प्रयोग, विभाषा का प्रभाव, भौगोलिक प्रभाव, सामाजिक प्रभाव, लिखने का दृष्ट, शब्दों की अधिक लम्बाई, भ्रमशेखर ध्वनियों की अधिकता, सादृश्य, कविता में तुकों की सुविधा, और स्वराघात। ध्वनियों में इन्हीं कारणों से परिवर्तन होता है। वह ऐसे कारण हैं, जो किसी भी भाषा के जीवन में बराबर उपस्थित होते रहते हैं। ध्वनियों में परिवर्तन एक साथ ही नहीं हो जाता। जो भी परिवर्तन ध्वनियों में होता है, मन्द-मन्द गति से होता है। कभी तो वह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, और कभी भाषा के भीतर ही भीतर होता रहता है, जो कुछ दिनों के पश्चात् स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

रूप विचार

भाषा विज्ञान में 'रूप' का प्रयोग शब्द के लिए किया जाता है। अतः 'रूप विचार' में शब्दों पर ही विवेचना की जाती चाहिए; पर साधारण रूप से लोग शब्द 'रूप' को व्याकरण का पर्याय मानते हैं। अतः 'रूप विचार' में साधारणतः व्याकरण का ही विचार किया जाता है। व्याकरण के दो मुख्य वर्ग हैं—शब्द व्याकरण, और वाक्य विचार। शब्द व्याकरण उसे कहते हैं, जिसमें शब्दों का वर्णन रहता है। वाक्य विचार में शब्दों के प्रयोग और उनके अर्थ की विशेष चिन्ता की जाती है।

भाषा विज्ञान में शब्दों का शक्ति महत्व है। शब्दों से ही वाक्य बनता है, और वाक्यों से भाषा का मर्मन होता है। भाषा कला की जो कुछ महिमा है, शब्दों की ही महिमा है। शब्द क्या है, वहाँ रकी बात पर हमें विचार करना है। शब्द उस ध्वनि समूह का नाम है, जिसका कुछ अर्थ होता है, और जिसके संयोग से वाक्य बनते हैं। 'शब्द' दो प्रकार के होते हैं। एक को तो 'शब्द' ही कहते हैं, किन्तु दूसरे को 'पद' कहते हैं। 'शब्द' यह है, जो अपने रूप में सुझ होता है, और विनियमों से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। 'पद' शब्द के प्रतिकूल होता है। शब्द जब सम्बन्ध सूचक विनियमों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है, तब उसे 'पद' की संज्ञा दी जाती है। शब्दों की रचना बाह्योक्तों से पूर्व, मध्य, या 'पर' प्रत्यय जोड़ कर की जाती है। चातुर्विध विचार रहित होती है, और विचारों पर प्रकाश डालती है।

शब्द के दो रूप होते हैं। एक रूप तो यह है, जो वाक्य में शुरू के पूर्व होता है, और दूसरा रूप यह है, जो वाक्य में प्रयुक्त होने पर होता है। अपने प्रथम रूप पद और में शब्द शुद्धावस्था में होता है, किन्तु द्वितीय रूप में उसमें सम्बन्ध पूर्णता आ जाती है। क्योंकि वाक्य में मिलने के पूर्व उसे स्वयं वाक्य के अनुरूप बना लेना पड़ता है। इससे उसका रहस्य खलव दिगढ़ जाता है। शब्द जब वाक्य में शुरू के योग्य बना लिया जाता है, तब उसे 'पद' का नाम दिया जाता है। जब विचार इस बात पर करना है, कि

भावों का प्रदर्शन सम्बन्ध तत्त्व के ही द्वारा किया जाता है । उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुषों के भाव भी सम्बन्ध तत्त्व के ही द्वारा प्रगट किये जाते हैं । संज्ञा में कारकों और लिंग वचन के भाव सम्बन्ध तत्त्व द्वारा ही प्रदर्शित किये जाते हैं । इसी प्रकार लिंग वचन की दृष्टि से विशेषण के भेदों के भाव भी सम्बन्ध तत्त्व द्वारा ही प्रगट किये जाते हैं ।

वाक्य विचार

वाक्यों के लटन में शब्दों का महत्व है। जिस प्रकार वाक्यों के लटन में शब्दों का महत्व है, उसी प्रकार भाषा के निर्माण में वाक्यों का अधिक महत्व है। भाषा वाक्यों से बनती है; दूसरे शब्दों में वाक्य ही भाषा के प्राण हैं। अतः वाक्य वक्ता है, उसके बिना मेघ होते हैं—बढ़ खाना अधिक आवश्यक है। शब्दों के समूह को वाक्य कहते हैं। वाक्य में ही लोग बोलते, और लिखते हैं। वाक्य स्वाभाविक वाक्य रूप से ही मुख से निकलते हैं। यही कारण है, कि लोग वाक्यों की स्वाभाविकता के पर पर प्रतिष्ठित करते हैं। शब्द गढ़े जाने के कारण कृत्रिम होते हैं, किन्तु वाक्य अपने ही प्राण बनते हैं। वाक्य दो भागों में विभक्त होता है। एक भाग को उद्देश्य, और दूसरे को विषय कहते हैं। जैसे 'मोहन जाता है' में 'मोहन' उद्देश्य, और 'जाता है' विषय है।

वाक्य चार प्रकार के होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—सयोगात्मक, प्रतिलिख योगात्मक, अतिलिख योगात्मक, और द्विलिख योगात्मक। सयोगात्मक वाक्यों में सम्बन्ध रूप के प्रदर्शन के लिए शब्दों में परिवर्तन नहीं किया जाता। अतः इस वाक्यों के प्रकार के वाक्यों में शब्द निश्चित स्थान में ही रहते हैं।

प्रकार इनके दृष्टांत उक्त भाषाओं में अधिक प्राप्त होते हैं, जो एक-दूसरे परिवार की हैं। प्रतिलिख योगात्मक वाक्य अपने नाम के ही अनुसरण होते हैं। इनमें कई शब्दों के शब्दांश से एक बड़ा शब्द बनता है; दूसरे शब्दों में एक बड़े शब्द में कई छोटे-छोटे शब्दों के अंश संश्लिष्ट रहते हैं। अधिक संश्लिष्ट होने के ही कारण इनमें व्याख्या की जरूरत के साथ नहीं की जा सकती। अतिलिख योगात्मक वाक्यों में प्रत्ययों के द्वारा मूल शब्द, और सम्बन्ध प्रगट किये जाते हैं। इनके उदाहरण बंदू भाषाओं में अधिक मिलते हैं। द्विलिख योगात्मक वाक्यों में चिन्तकियों की प्रभावशाली होती है। इनके उदाहरण संस्कृत में अधिक मिलते हैं।

वाक्य शब्दों से बनते हैं। शब्दों में विभिन्न कारणों से परिवर्तन हुआ करता है। अतः शब्दों के साथ ही साथ वाक्यों में भी परिवर्तन होता है। वाक्यों और वाक्य रूपों शब्दों का अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है; दूसरे शब्दों में शब्द बदलते हैं? शब्द को ही वाक्य कहते हैं। अतः जिन कारणों से व्यंजिन और रूपों में परिवर्तन होता है, वही वाक्य परिवर्तन के भी मुख्य कारण हैं। वाक्यों के ऊपर विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों का अधिक प्रभाव पड़ता है। जब

दो भाषाओं और संस्कृतियों का मिलन होता है, तो उस मिलन का प्रभाव उनके वाक्यों पर भी पड़ता है। जैसे अँगरेजी और 'फारसी' का प्रभाव स्पष्ट रूप से हिन्दी के वाक्यों पर पड़ा हुआ दृष्टिशोचर होता है। वाक्यों में परिवर्तन होने का कारण विभक्तियों का घिसना भी है। विभक्तियाँ शूनैः शूनैः जब घिस जाती हैं, तो अर्थों में अस्त-व्यस्तता उत्पन्न होने लगती है। अर्थों की अस्त-व्यस्तता को रोकने के लिए वाक्यों में नए नए शब्द जोड़ने पड़ते हैं, जिससे वाक्यों की परंपरा में उलट-फेर हो जाता है। शब्दों पर अधिक बल देने से भी आंशिक रूप में वाक्य परिवर्तित हो जाते हैं। जिस शब्द पर अधिक बल दिया जाता है, धीरे धीरे उसके स्थान में परिवर्तन हो जाता है, और इस प्रकार वाक्य का कम-विकास बढ़ता जाता है। वाक्यों के परिवर्तन पर मनुष्यों की मानसिक स्थिति का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। शांति के दिनों में मनुष्यों के मुख से जिस प्रकार के वाक्य निकलते हैं; अथवा जिस प्रकार के वाक्य वह बोलता है, युद्ध के दिनों में वह उस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग नहीं करता। शांति के दिनों में वहाँ उसके वाक्य अलंकृत शैली के होते हैं, युद्ध के दिनों में वहाँ वह स्पष्ट और सीधे वाक्य ही मुख्य रूप में बोलता है।

अर्थ विचार

अर्थ विचार का महत्व उसके नाम से ही समझ में आता है। भाषा विज्ञान के जिन अंगों की विवेचना अभी तक हम कर आए हैं, वही वस्तुतः देखा जाए तो उनकी सार्थक-
अर्थ विचार कता 'अर्थ विचार' में ही सम्मिलित है। 'अर्थ विचार' भाषा का विषय विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है। अर्थ विचार के अंतर्गत जिस बात की विवेचना किया जाता है, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मत भेद रहा है। कोई-कोई विद्वान अब भी अर्थ-विचार का तात्पर्य शब्दों की ऐतिहासिक व्युत्पत्ति से लगाते हैं, पर अधिकांश विद्वानों की संमति इसके विपरीत है। अधिकांश विद्वान अर्थ विचार को भाषा-विज्ञान की भाँति ही एक विज्ञान मानते हैं। उनका कथन है, कि अर्थ-विचार का विषय भाषा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा उसके विद्वानों का प्रतिपादन करना है। अतएव अस्तित्व के विचारानुसार अर्थ विचार में निम्नांकित प्रश्न सम्मिलित हैं:—'प्रथम यह कि किसी भाषा ने अपने भाषी और विचारों की किन किन सामग्रियों के द्वारा प्रकट किया है, दूसरा यह, कि किसी एक रूप से कितने अर्थों का बोध होता है, और तृतीय यह, कि एक अर्थ कितने भिन्न रूपों में प्रयुक्त हो सकता है ?

इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देना अर्थ विचार का मुख्य विषय है।

अर्थ विचार का अध्ययन एक ऐक्यक विषय है। अर्थ का विकास जिस प्रकार होता है, उसे देख कर मानव-बुद्धि की रहस्यात्मकता का पता चलता है। एक छोटे से बालक में अर्थ का विकास वस्तुतः रहस्यात्मक ही उद्गम से होता है। शीघ्रता का अभाव बालक अपने भाषी की 'एक' 'एक' संज्ञित वस्तुओं में ही व्यक्त करता है। पर वे अक्षर उसके शिष्ट समूचे वाक्य की ही भाँति लगा सकते हैं। वह पहले उनका प्रयोग करने ही शिष्ट करता है, किन्तु धीरे-धीरे जब उसकी बुद्धि विकसित हो जाती है, तो वह अपने वस्तुओं का समस्त अर्थ से जोड़ लेता है। बुद्धि के और अधिक

अर्थ परिवर्तन विकसित होने पर वह उस अर्थ का अनुभव भी करने की दिशा में लगता है। जब-जब होने पर उसका अनुभव प्रीति हो जाता है, और वह ठीक ठीक सब का अर्थ समझने लगता है। अर्थ का विकास सब में इसी प्रकार बुद्धि के विकसित होने पर होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य की बुद्धि विकसित होती जाती है, त्यों-त्यों उसके अर्थ-विकास का ज्ञान भी बढ़ता जाता है।

‘सर्व विचार’ वा सर्व-परिवर्तन को मुख्य रूप से तीन दिशाओं होते हैं—सर्व विचार, सर्व लक्ष्य, और सर्व देश । सर्व विचार उसे कहते हैं, जब हमारी वा सर्व एक हीमित दूसरे से विचार कर अधिक पैल जाता है । सर्व विचार में हमारी के सर्व पर ही मुख्य रूप से प्रभाव दिया जाता है । भारत में बहुसंख्यी के नाम उनके मुखों के ही आधार पर एक लिट, आते हैं । किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् उनके दैनिक सर्षों का लोग हो जाता है, और बहु सर्व ही पर आते हैं । यही बहु सर्व हमें उनके सामान्य को खीर कहते हैं । यहां के लिए ‘सर्षों’ शब्द को लिया जा सकता है । दूसरा सर्व है, ‘सर्षों’, पर जब हमका प्रयोग हर एक प्रकार को सर्षों के लिए होने लगा है । ‘सर्षों’ शब्द भी इसी प्रकार का शब्द है । ‘सर्षों’ के निकले हुए ‘सर्षों’ को ही ‘सर्षों’ कहना चाहिए, किन्तु आज ही सभी प्रकार के ‘सर्षों’ के लिए ‘सर्षों’ शब्द का प्रयोग होता है ।

‘सर्व विचार’ में सर्षों सर्षों का विचार होता है, सर्षों सर्व लक्ष्य में सर्व संकुचित और हीमित होते हैं, दूसरे हमों में किसी शब्द का प्रयोग सामान्य वा विस्तृत सर्व से इतर कोमित रूप में होने लगता है । किसी भी भाषा वा भाषा में उनकी बुद्धि के साथ ही साथ उनके सर्व लक्ष्य को भी बुद्धि होती है । प्रोफेसर ‘सर्व’ के विचारानुसार मानव की समझ की बुद्धि के साथ ही साथ उनकी भाषा में सर्व लक्ष्य की भी बुद्धि हुई है । यहां के लिए ‘सर्व’ शब्द लिया जा सकता है । हमारे में ‘सर्व’ शब्द का प्रयोग सभी बहुसंख्यी के लिए लिया गया है, किन्तु जब हमसे केवल ‘सर्व’ का ही प्रयोग होता है । इसी प्रकार ‘सर्वों’ शब्द का प्रयोग पहले लिया ही, इसी, पैल, और विचारानुसार से संबंधित वा, पर जब उसका प्रयोग केवल ‘सर्व’ के ही सर्व में किया जाता है ।

भारत के साधुसर्व के कारण जब धीरे-धीरे एक सर्व का लोग हो जाता है, और उनके स्थान पर नया व्यवहार होने लगता है, जब बहु सर्षों पैल कहलाता है । यहां के लिए ‘सर्व’ शब्द पर प्रभाव देखा चाहिए । हमारे की पारंपरिक भाषाओं में यह पैल सर्षों शब्द माना गया है, पर जब उसका प्रयोग विस्तृत बदल गया है । जब ही उसका प्रयोग ‘सर्व’ के सर्व में किया जाता है । ‘सर्व’ शब्द भी इसी प्रकार का शब्द है । पहले इसका प्रयोग ‘सर्व’ के सर्व में किया जाता था, किन्तु जब उसका प्रभाव ‘सर्व’ में ले लिया है ।

भाषा और मनुष्य के विचारों का अत्यंत पक्का सम्बन्ध है । विचार मन के मोत होते हैं । मन विचारों और दशाओं के कारण आवेष्टित हुआ करता है ।

सर्व परिवर्तन मन के आवेष्टन को अविविक्त द्वारा सभी पक्ति माना जा के कारण करता है । मन में परिवर्तन होने के कारण विचार कथन बदलते रहते हैं । इसलिए माना में भी कथन परिवर्तन हुआ ही करता है । माना में परिवर्तन हमों के कारण होता है । हमों में परिवर्तन होने के कारण सर्षों में भी परिवर्तन होता है । सर्षों में परिवर्तन होने का मुख्य कारण भाषा-साधन है,

किन्तु कुछ ऐसे सामाजिक, और भौगोलिक कारण भी हैं, जिनका प्रभाव अर्थों के परिवर्तन पर पड़ता है।

अर्थों के परिवर्तन पर मनोविज्ञान का अधिक प्रभाव पड़ता है। मनुष्य का मन उच्च गामी, और 'शुभन्व' का प्रेमी होता है। वह प्रायः अशुभ अवसरों पर भी 'शुभन्व' की खोज किया करता है। उसकी इस प्रवृत्ति का परिणय स्पष्ट रूप से उसके शब्दों के अर्थों में मिलता है। जैसे यदि कोई मर जाता है, तो लोग उसकी मृत्यु-यात्रा के समाचार को 'स्वर्ग गमन' के रूप में प्रगट करते हैं। इसी प्रकार आदर और शिष्टाचार के स्थानों में भी लोग शब्दों को बदल दिया करते हैं, जिसके कारण अर्थों में परिवर्तन होता है।



भाषाओं का वर्गीकरण

संसार में कलित भावार्थ हैं। यदि हम विद्युत की संतुर्ही भावनाओं का अध्ययन करते हैं, तो उनमें परस्पर एक-दूसरे में अधिक अंतर पाते हैं, किन्तु हम वैद्युत में जो उनमें दो वाली में सादृश्य पाया जाता है। उनमें एक की हम संबंध लक्ष्य, और दूसरे की कार्य लक्ष्य पाते हैं। संबंध लक्ष्य का संबंध व्यवस्था के द्वारा होता है। जैसे:—जाना, खाना, और बाना। हम तीनों ही संबंधों में एक ही वाक्य 'य' लगा हुआ है, और उसके द्वारा एक ही संबंध लक्ष्य का बोध होता है। कार्य लक्ष्य में संबंध लक्ष्य की भिन्नता होने पर भी कार्य लक्ष्य में सादृश्य रहता है। जैसे:—जाना, खाना, खाना है, और खानेवा इत्यादि। 'खाना' क्रिया के लक्ष्य भिन्न भिन्न रूप हैं। इनमें संबंध लक्ष्य की भिन्नता है। पर तीनों के कार्य लक्ष्य में साम्य है।

विद्युत की मापानुओं के सम्बन्ध तथा, और कार्य तथा के साथ पर ध्यान देते हुए उन्हें ही क्यों में विमल विद्युत तथा है; जिनमें एक की साक्ष्यि मूल्य, और दूसरे साक्ष्यि मूल्य की परिभाषित करते हैं। साक्ष्यि मूल्य वर्ग में उन मापानुओं को कहना होती है, जिनमें सम्बन्ध तथा की समता पाई जाती है। इसी प्रकार जिन मापानुओं में सम्बन्ध तथा की समता के साथ ही साथ अन्य तथा की भी समता पाई जाती है, उनको जिनकी परिभाषित वर्ग की मापानुओं में भी जाती है।

साधुति ब्रह्मकर्म के विना साधुओं को स्थान दिया गया है, इसमें सम्बन्ध हाथ खीर छर्ने हाथ को समझा नहीं जाती है; दूसरे शब्दों में सम्बन्ध हाथ कितना बड़ा प्रगट किए गए हैं, तथा कितना प्रकट ज्ञानों का साधुओं की सहायता से ज्ञानों का महान् दुष्प्रद है—हाथों का ही कभी-कभी पर कल कर उन्हें एक वर्ग में वर्गित किया गया है। इन साधुओं के महान् पर कल हम विचार करते हैं, तब उन्हें जो ही वर्गों में विभक्त करते हैं, जिसमें एक को आध्यात्मिक, और दूसरे को योगात्मक वर्ग कहते हैं। आध्यात्मिक वर्ग उन्हें कहते हैं, जिसमें ऐसी साधुएँ हैं, जिसमें स्वतंत्र हाथ के सम्बन्ध होते हैं। चौथी भाग इस वर्ग की साधुओं में कई बड़े समझी जाती है। चौथी भाग का प्रत्येक सम्बन्ध महान् हाथ प्रकट है। इसमें हमने ही, जिना विचारकता हुए ही जिना विना सम्बन्ध और छर्ने को प्रकट करने की समझा है। योगात्मक वर्ग की साधुएँ इसके विपरीत होती हैं; योगात्मक वर्ग की साधुओं में सम्बन्ध और छर्ने-छोटी ही कम प्रकटों द्वारा जुड़े हुए रहते हैं।

योगात्मक वर्ग की भाषाओं की सम्मानता उनके योग में होती है; दूसरे समूहों में इनकी प्रकृति में सर्वत्र और जहाँ तक वे योग स्थापित करने की मुख्य भावना रहती योगात्मक है। योगात्मक वर्ग की भाषाओं की प्रकृति की दृष्टि से एक बार उनके तीन भाग किए जा सकते हैं—अविच्छन्न, अद्विष्ट, और विच्छन्न। अद्विष्ट वर्ग की भाषाएँ वे हैं, जिनमें दोनों तत्व एक प्रकार मिलते हैं, कि उनका अलगाव नहीं किया जा सकता। संस्कृत में इसके उदाहरण मिलते हैं। इसके की दो भाग किए जा सकते हैं—पूर्व अद्विष्ट, और अद्विष्ट अद्विष्ट। पूर्व अद्विष्टत्व में दोनों तत्व का योग पूर्ण रूप में होता है, जिसके द्वायांत दक्षिण अमेरिका की वेरोली भाषा में प्राप्त होते हैं। अद्विष्ट अद्विष्टत्व में योग निश्चित रूप में ही होता है, जिसके द्वायांत प्रायः मिलते हैं।

अद्विष्ट वर्ग की भाषाएँ वे हैं, जिनमें दोनों तत्वों का योग एक प्रकार किया जाता है, कि दोनों ही तत्वों की अपनी अपनी सदा भलबली रहती है। इसके की तीन वेद किए जा सकते हैं—पूर्वयोगात्मक, मध्य योगात्मक, और अंत योगात्मक। पूर्व योगात्मक भाषाओं में द्वायांत के स्थान पर उपलब्धों के साथ किया जाता है। इसके द्वायांत अद्विष्टा की बहु परिभार की भाषाओं में मिलते हैं। मध्य योगात्मक भाषाओं में सर्वत्र तत्व योग और अंत में जोड़ा जाता है। इसके द्वायांत प्रकृति समरूप दोनों की भाषाओं में मिलते हैं। अंत योगात्मक वर्ग की भाषाएँ वे हैं, जिनमें सर्वत्र तत्व का योग अंत में ही किया जाता है। अद्विष्ट भाषाओं में इसके द्वायांत प्राप्त होते हैं।

विलक्षण योगात्मक वर्ग की भाषाएँ वे हैं, जिनमें सम्पूर्ण तत्व और वर्ग तत्व एक प्रकार मिलते हैं, कि सर्व तत्व में बिचार उपलब्ध हो जाता है। द्वायांत के लिए, दिन, वेद, और इतिहास शब्द की लिया जा सकता है। यदि इन तीनों शब्दों में 'द्वय' जगत्वा शब्द हो सम्पूर्ण तत्व के साथ रहने पर भी वे बिचार अंत हीभार इस रूप में ही जाते हैं—दैनिक, वैदिक, और ऐतिहासिक इसके द्वायांत संस्कृत और जगदी में बहुत रूप में मिलते हैं।

विलक्षण योगात्मक वर्ग की भाषाएँ की दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं—जम्बुद्वीप, और अहिम्वीप। जम्बुद्वीप की भाषाएँ वे हैं, जिनमें सम्पूर्ण तत्व के द्वारा जोड़ा हुआ भाग सर्व तत्व के बीच में मिलकुल मिल जाता है। इसके उदाहरण जगदी में बहुत रूप में मिलते हैं। अहिम्वीप की भाषाओं में जोड़ा हुआ भाग सर्व तत्व के साथ जाता है। इसके द्वायांत संस्कृत में मिलते हैं।

सम्पूर्ण तत्व और वर्ग तत्व की सम्मानता की दृष्टि से विच्छन्न की भाषाएँ दो भागों में विभक्त की गई हैं—आकृति मूलक, और परिचरिच्छा। आकृति मूलक वर्ग की परिचरिच्छा मूलक भाषाओं पर सम्पूर्ण जाता जा चुका है। अब पूर्ण परिचरिच्छा मूलक भाषाओं की विवेचना की जायगी। परिचरिच्छा मूलक भाषाएँ वे हैं, जिनमें परस्पर शब्दों और वाक्यों की परस्पर-पैठी में अद्विष्ट होते हुए सर्व तत्व

अर्थात् और शक्ति के बहुवचन एक के होते हैं। दोनों के शिरो में भी वाक्य है। जो शिरो बनाने का विषय दोनों में 'त' प्रत्यय के उपसर्ग से पूर्ण किया जाता है।

हेमेटिक परिवार की मायाओं में कई अपनी विशेषताएँ होती हैं। इनमें बहुत सी मन्त्रमयी का होता है। यहाँ की रचना मन्त्रमयी में सब जोड़ कर की जाती है। कभी कभी शरीर के स्थान पर प्रत्ययों, और उपसर्गों का प्रयोग किया जाता है। इस परिवार की मायाओं में अक्सर केवल दो ही शब्दों के मिलते हैं, और वह भी केवल अति साधारण शब्दों में ही। पहले प्रत्ययों की वहायल से ही चली, चली, और वाक्यकारक बनने वाली से, पर जब अन्ततः मायाओं के प्रभाव के मुक्त शब्द जोड़ कर बनाने करते हैं। इनमें पूर्ण और अर्ध-ही ही बना होते हैं। कुछ मायाओं में 'त' या 'अत' प्रत्यय जोड़ कर जो शिरो वाली शब्द बनाने करते हैं। कुछ मायाओं में 'त' में 'य' या 'इ' का रूप वाक्य कर लिया है।

हेमेटिक परिवार में कई मायाएँ वर्गीकृत हैं, जिनमें जाती का महत्व पूर्ण स्थान है। वक्करी, जाली, चूरी, और इसी प्रकार मायाएँ इस परिवार की हैं।

पूरा अष्टादश परिवार की मायाएँ विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई हैं। इनके शिरो में शक्ति पूरा और अष्टादश शक्ति के मूल के क्षेत्र में दूर तक फैले हुए हैं। पूरा अष्टादश परिवार की दो शाखाएँ हैं—'पूरा' और 'अष्टादश'। पूरा शाखा की चिन्ता, शरीर और परिवार इत्यादि मायाएँ मुख्य वाली जाती हैं। अष्टादश की मंगेला, हुनीसी, और इसी इत्यादि मायाएँ मुख्य हैं।

इस परिवार की सभी मायाएँ वर्गीकृत संश्लेषात्मक हैं। इनमें बहुतों की जोड़ कर यहाँ की रचना की जाती है। एक शब्द के स्थान में अधिक प्रत्ययों की वहायल की जाती है। इनमें बहुत अक्षर के प्रभाव होते हैं, जो बहुत बड़े बड़े होते हैं। संभव मानव सर्वशक्ति के अन्तर्गत इस परिवार की मायाओं की सबसे बड़ी विशेषता है। इन अक्षरमय की रूप में एक अक्षर प्राप्त होती है।

एकाक्षर परिवार की चौकी परिवार की जाती है। सर्वशक्ति इस परिवार की मायाओं में चौकी शक्ति का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इस परिवार की मायाएँ एक विस्तृत क्षेत्र में फैली जाती हैं, जो चीन, तिब्बत, थाय, और महा आदि प्रदेशों में दूर तक फैला हुआ है।

इस परिवार की सभी मायाएँ वर्गीकृत हैं। इनमें अक्षर एकाक्षर होते हैं, जो अक्षर की शक्ति होते हैं। अक्षरों का रूप अक्षर एक का ही रहता है। दो शब्द कभी एक में नहीं मिलते। अक्षरों के संबंध का अक्षर शब्द से ही चलता है। अक्षर दो प्रकार के होते हैं—कार्यक, और निर्यक। निर्यक शब्दों के द्वारा ही कार्यक शब्दों का संबंध तथा वर्गीकृत किया जाता है। इनमें अक्षर-क्षेत्र की अधिकता और अक्षर-क्षेत्र का पूर्ण अन्तर्गत प्राप्त होता है।

मिडामी, बोनी, बधी, बलामा, बिहादर कथ दोली, और एचकुन इत्यादि का मुख्य स्थान है। मरीच भाषाओं में बाबानी, बोनिबई, वेदु, जईसाजेरी, और बाग इत्यादि की संख्या की जाती है।

मारोमीच परिवार विश्व के संपूर्ण भाषा परिवारों में अधिक रहा, और कम्प्लि-राली परिवार है। इस परिवार की भाषाएँ कम्पूर्ण यूरोप, अमेरिका, ईथर, कली-मिया, और अफ्रिका के दक्षिण अहिमम होने में देखी जाती है। कता, कविम और संस्कृति में इस परिवार की भाषाओं में अधिक उपस्थिति की है। इस परिवार के सब एक इंडो-कलीमिया, इंडो-कलीमिया, और इंडो-यूरोपियन आदि कई नाम रखे जा चुके हैं। 'मारोमीच' इसका नया नाम है। कुछ लोग इसे 'सर्व परिवार' भी कहते हैं।

इस परिवार की संपूर्ण भाषाएँ पहले संयोगात्मक थी, पर शीघ्र शीघ्र उनका सब बहुत कर फिरोकात्मक हो गया। इनमें एक कदर की बाहुल्य होती है, और यही की रचना बाबानी की लक्षणता से की जाती है। विनियमों का प्रयोग बहुधा की जाने में परिवर्तन करने के लिए किया जाता है। सामाजिक यही की रचना इस परिवार की भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता है।

इस परिवार की संपूर्ण भाषाओं का अध्ययन करने से बात होता है, कि इनमें बहुत कुछ समान है। संस्कृत, कन्नडा, बोक, और लैटिन-आदि के प्राचीन स्वरूपों में यह समानता नहीं मालूम होती या कम होती है। इस समानता की दृष्टि में यह कर इस बात का अनुमान किया गया है, कि प्राचीन काल में कोई एक भाषा दोली अत्यन्त रही होगी, जिसे हम इन भाषाओं की मूल भाषा कह सकते हैं।

आज की लोक, लैटिन, कन्नडा और संस्कृत के स्वरूप की सामने यह कर यह अनुमान किया गया है, कि उस मूल का आदि भाषा का, जिससे ये भाषाएँ निकली हैं, कैसा स्वरूप रहा होगा। विश्वस्य उसमें कन्नडम स्वरूप, संस्कृत स्वरूप, मूल स्वरूप, कन्नडी, कन्नो, कन्नडम स्वरूपों, और कुछ स्वरूपों की अभिप्राय रही होगी। यह क्या कहता है, कि यह विश्व योगात्मक की। उसमें कन्नडम और कन्नो लक्ष-शियों की हुले-मिले होती थे। एक, हि और बहु-शियों की बचनों का प्रयोग होता था। यही की रचना बाहुली में प्रायः शब्द कर की जाती थी। शब्द की मात्र विनियमों और लोच लिङ्ग-वृत्त, ली और मनुष्यक होती थे। संज्ञा, विना, और अत्यन्त वृत्त वृत्त होती थे।

बाहुली की अभिप्राय की दृष्टि में यह कर मारोमीच परिवार दो यों में विभक्त किया गया है—कन्नड वर्ग, और केन्दुम वर्ग। यों के नाम कन्नड का कारण यह है, कि इनके कन्नडम की भाषाएँ हैं, उनमें 'ली' के लिए लक्ष-श्यों में समानता है। जैसे—

कन्नड वर्ग

कन्नड—कन्नड

कली—ली

केन्दुम वर्ग

लैटिन—केन्दुम

कन्नो—कन्नो

फारसी—कद

दिनी—ली

इतिहास—केन्द्री

बोध—देखनी

केन्द्र में वे कई भाषाएँ सम्मिलित हैं, जिनमें केन्द्रीय, अष्टांगिक, लैटिन, ऐरैलिक, विहार, और लोखरी बहने हैं। केन्द्रीय प्राचीन भाषा है। प्राचीन काल में यह पूर्ण के विश्व विश्व स्थानों में बोली जाती थी। अंग्रेज काल में यह प्रायः लैट, बंद इरान, बांग के कुछ जगहों, केन्द्रीय, विहारलैट, बंगाली, इरानी और बांग इत्यादि देशों में बोली जाती है।

अष्टांगिक का अधिक महत्व पूर्ण स्थान है। अंग्रेजी अष्टांगिक की ही एक महत्व पूर्ण भाषा है, जो आज अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रसिद्ध है। इसे जर्मनिक भी कहते हैं। इसकी कई बहने हैं। यूरोप में इसकी तीन शाखाएँ विकसित हुई हैं। अंग्रेजी उनमें से एक शाखा का विकसित अंग है।

लैटिन की इरानी भी बहने हैं। इरानी की भी भाषाएँ लैटिन से ही निकली हुई हैं। इरानियन एक बहुत ही भाषाएँ लैटिन बहुत के रूप में विकसित हैं। यह बहुत ही कई भाषाएँ सम्मिलित हैं, जिनमें इरानी, बंगाली, लोखरी, बांग, पूर्ण-बांग, और लोखरी इत्यादि प्रमुख हैं। इरानी फिलिपी, लोखरी, और अरबिया इत्यादि स्थानों में बोली जाती है। लोखरी बांग के संस्कृत की भाषा है। बांग बांग के प्रमुख रूप से बोली जाती है। पूर्णबांग, पूर्णबांग की, और लोखरी लैट की भाषा है। बंगाली बंगालिया, अष्टांगिकलैटिन अष्टांगिक के कुछ स्थानों की भाषा है।

ऐरैलिक की तीन शाखा भी बहने हैं। इसमें प्राचीन तीन भाषा के साथ ही प्रायः अष्टांगिक तीन तीन प्रेरितों की सम्मिलित हैं। यूरोप की सभी भाषाओं से इसका भारत-इरानी की से अधिक प्रेरित संबंध है। एक शाखा में सम्मिलित भाषाओं के नाम आइसोमिडन, और ऐरैलिक इत्यादि हैं।

विहार भाषा की भाषाएँ विहारकाल की हैं। इसका अधिकतर पैसा से केन्द्र इरान की पूर्ण के भाषा गया है। एक शाखा की भाषाएँ इरान आइसोमिडन की भाषाएँ बोली जाती हैं। क्योंकि इनके बाहर, अष्टांगिक कालों के अन्तर्गत में इरान आइसोमिडन के एक स्थान की सुझाई में प्राप्त हुए हैं।

लोखरी शाखा की भाषाओं का सभी छोटे छोटे क्षेत्रों में प्राप्त हुआ है। 18-20-3 में जर्मन विद्वानों द्वारा इतिहास में एक भाषा की खोज हुई है। प्राचीन काल में यह लोखरी, और लोखरी की भाषा थी। महाभारत में भी लोखरी शक्ति के मनुष्यों का उल्लेख मिलता है।

कद की भी कई भाषाएँ सम्मिलित हैं जिनके नाम एक प्रकार से—इरानी-कद, लैटिक, लोखरी, लोखरी, और बांग।

इरानी भाषा की भाषाएँ अधिक प्राचीन हैं। प्राचीन काल में यह इरानी के इरानी-पूर्व में बोली जाती थी। किन्तु अब इनके प्राचीन रूप का पता नहीं

राजस्थान । इस शाखा की भाषाओं में कल्पनेमित्र ही एक ऐसी भाषा है जिसमें संभव में विचार-सम्बन्धी भाव है । इत्यदिप्र इत्यको कल्पनेमित्र शाखा की कहते हैं ।

वाचिक की ऐदिक की कहते हैं । इसमें तीन भाषाएँ सम्मिलित हैं—वसिष्ठई, सिधुचमी, और लोटी । वसिष्ठई का गुण प्रायः हो चुकी है । सिधुचमी अन्तः के उत्तर पूर्व में—सिधुवाचिका में बोली जाती है । इसका विकास बहुत ही धीरे धीरे हुआ है । यह संज्ञात्मक और द्विचयी कही जाती है । लोटी लोदेमिच की भाषा है । इस पर अभी का प्रभाव यह रूप से दिखाई पड़ता है ।

सौमनेमिच शाखा की भाषाएँ दूरिच के एक मिश्रित क्षेत्र में बोली हुई हैं । वच, वेलीट, गलमिच, कान्देमिच का सम्बन्ध काव, वीदेमिच, वीरमिच, वल्लेमिच, और लामेमिच आदि का क्षेत्र इसी शाखा के सम्बन्धित है । इस शाखा की भाषाएँ तीन भागों में बँटी हैं—पूर्वी, पश्चिमी, और दक्षिणी । कहीं से कहीं में बोली जाती है, पूर्वी भाग की भाषा है । पश्चिमी शाखा में केवल और लोदेमिच आदि भाषाएँ हैं । दक्षिणी शाखा में वल्लेमिच, और दक्षिमिचन की वस्तु की कही है ।

आर्सेनिकन समीमिच की भाषा है । इसमें पूर्वी और पश्चिमी दम्भ अधिक मिलते हैं । इसमें संस्कृत के अभाव ही अर्थवत् भाषा कहा है । ईरानी भाषा का प्रभाव इस पर कुछ रूप से परिलक्षित होता है ।

आर्य शाखा की भाषाओं का जितने के भाषा-दृष्टिकोण में अधिक महत्व है । इस शाखा की भाषाओं में सहित्य और कला के क्षेत्र में अधिक प्रगति की है । वेद, श्री संसार में पहले अधिक उपलब्ध विचार-संभव है, इसी शाखा की वस्तु का भाषा है । 'वेद कावका' दम्भदि महत्व पूर्वी अन्त इसी शाखा की भाषा में मिलते हैं ।

आर्य शाखा की भाषाओं के तीन वर्ग हैं—ईरानी, दक्ष और भारतीय । ईरानी वर्ग की भाषाएँ ये हैं, जो ईरान और उसके समीपवर्ती प्रदेशों में बोली जाती हैं । ईरानी वर्ग की भाषाओं की कई बार सहित्य प्रति प्रगति की है । बिन्दर और पश्चिमी की बहादुरों के इस वर्ग की भाषाओं का सहित्य यह प्रगति हुआ है । फिर भी शिक्षा क्षेत्रों के द्वारा उसके प्राचीन स्वरूप की मात्रा मिलती है । पश्चिमी के वर्ग का 'कवका' के भी उसके प्राचीन स्वरूप का सामान्य मिलता है ।

ईरानी वर्ग में कई भाषाएँ सम्मिलित हैं, जिनमें प्राचीन पारसी, पञ्चकालीन पारसी, सहित्य कावली, लोदेमिच, कुटी, गलमिच, सिधुचमी, पश्चिमी, पारोमिच पारसी, और प्रधान पारसी मुख्य हैं । पारसी, और 'पारसी' की लोदेमिच भी इसमें सम्मिलित हैं ।

दक्ष पारसी और पश्चिमोत्तर पञ्चजन के बीच के क्षेत्र में बोली जाती है । इसका महत्व यह अन्तर का है, कि इसे इस ईरानी और भारतीय के बीच की भाषा

कह सकते हैं। ऐसा जान होता है, कि इसके सोलहों वाली कमी भारत में सम्मान प्रयोगों में कैसे हुए थे, क्योंकि मराठी, सिन्धी, और पञ्जाबी इत्यादि पर इसका बड़ा रूप से प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भारतीय वर्ग की भाषाएँ वे भाषाएँ हैं, जो भारतीयों के बोली जाती हैं। इन वर्ग की भाषाओं का अधिक महत्व है। भारतीय भाषाओं का ही भारत विद्य में अपना एक विशिष्ट स्थान पड़ा है। आज की वेदों, सांस्कृतिक कविता, दार्शनिक, सामाजिक, महाभारत, और विज्ञान क्षेत्रों में उनका भारतीय स्वरूप देखने को मिलता है।

भारतीय भाषा की समझने के लिए इनके तीन भाग किए जा रहे हैं— प्राचीन युग, मध्य युग, और वर्तमान युग। प्राचीन युग में दो भाषाओं का प्रचार था। एक की पहचान और दूसरे की सांस्कृतिक करते थे। प्राचीन भारतीय भाषा में भाषा की भाषा है। जो वेदों में पाई जाती थी। किन्तु धीरे-धीरे वह भाषा अधिक साहित्यिक हो जाने के कारण दुर्लभ हो गई, जिससे इसका और कम हो गया।

ऐहिक की ही संस्कृत करते हैं। संस्कृत का और नाम कम हो गया, उस समय युग में उसका स्थान वाली, और प्राकृत में से लिया। मध्य युग का संस्कृत साहित्य वाली और प्राकृत में ही है। मध्य युग की ही तीन भाषा में विभाजित किया जा सकता है— साहि, मध्य, और उत्तर। साहि भाषा की प्रतिनिधि भाषा वाली और यह प्राकृत है, जिसके अग्रगण्य साहित्य की धर्म-सिन्धियों में मिलते हैं। वाली इस भाषा की साहित्यिक भाषा थी। उसमें कलात्मक साहित्य की प्रचुरता है। मध्यकाल और बीच की वाली में मिलते हैं। प्राकृत के साहित्यिक रूप साहित्य के विकास क्षेत्रों में पाए जाते हैं। मध्य युग की प्रतिनिधि भाषा साहित्यिक प्राकृत है। प्राकृत के कई रूप हैं—हैले मानवी प्राकृत, महाभारतीय प्राकृत, सीलेनी प्राकृत वैशाखी प्राकृत, कई मानवी प्राकृत, और वैष्णव प्राकृत इत्यादि। प्राकृतों में सीलेनी का सबसे अधिक महत्व है। उत्तर भाषा की प्रतिनिधि भाषा की प्राकृत ही थी, जिसने हम साहित्य की कह सकते हैं। उत्तर भाषा में प्राकृत अपनी धिरी हुई अवस्था में थी, और विकास प्राप्त ही नहीं थी।

वर्तमान युग की भाषाएँ वे हैं, जो आज तक बोली जाती हैं। इन वेदों भाषाओं का उद्गम अवश्यता से ही हुआ है। समस्त विचारों के भारतीय देशी भाषाओं के विकास और उन्नयन पर ध्यान देकर उन्हें तीन अवस्थाओं में बाँटा है—प्राचीन, मध्यकाल, और वर्तमान।

वर्तमान अवस्था—

(१) पहिली-दोली वर्ग—१. सींदी, २. सिन्धी।

(२) दूसरी वर्ग—३—मराठी।

(३) तृती वर्ग—४—उत्तरी, ५—पश्चिमी, ६—पश्चिम, ७—पश्चिमी।

मध्यकाली अवस्था—

(४) मध्यकाली वर्ग—८—पूर्वी सिन्धी।

अंतरंग उपसंज्ञा:—

(४) केन्द्र वर्ग—१—पश्चिमी हिन्दी, २—बंगाली, ३—गुजराती, ४—
मैथिली, ५—संथाली, ६—उड़िया, ७—मराठी ।

(५) पड़ोसी वर्ग—१—पूर्वी पड़ोसी, बांग्लादेशी, २—केन्द्रवर्ती पड़ोसी,
३—पश्चिमी पड़ोसी ।

किन्तु आन्तर-सुसंज्ञित कुल में आन्तर-विभक्ति के इस वर्ग को सामक
रखा है । उन्होंने भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है, जो अधिक
सरल और सुविधाजनक है:—

उत्तरी वर्ग—१—हिन्दी, २—उड़िया, ३—बंगाली ।

पश्चिमी वर्ग—४—गुजराती, ५—संथाली ।

मध्य देशीय—६—पश्चिमी हिन्दी ।

पूर्वी वर्ग—७—पूर्वी हिन्दी ८—मैथिली, ९—उड़िया, १०—बैजपुरी, ११—
साम्बली ।

दक्षिणी वर्ग—१२—मराठी ।

डा० गिम्पेन और पड़ोसी के वर्गीकरण पर जब इस विचार करते हैं, तो पठनी
का वर्गीकरण अधिक महत्वपूर्ण जान होता है । क्योंकि उन्होंने मध्य देशीय को मध्य
हिन्दी को ही आचार मान कर बांग्लादेशी का वर्गीकरण किया है । बांग्लादेशी भाषाओं
की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वह सिद्धांत ठीक जान होता है । आन्तर-पड़ोसी में
पड़ोसी भाषाओं की गणनाओं का ही सम्बन्ध माना है । यही कारण कि उन्होंने
पड़ोसी भाषाओं को अपने वर्ग में मान नहीं लिया है ।

प्रस्ताव महासमय के तब में बहुत ही आचार्य और खोजकर्ता समितिक है । वह
काँच हिन्द महासागर, और प्रस्ताव महासागर के दोनों में बहुत दूर तक फैला हुआ
प्रस्ताव महासागर है । इस तरह की वर्गीकरण भाषाओं की बीच परिवर्तन में

गरीब खंड और बांग्लादेशी भाषा है —मराठी परिवार, मलेनेसिया परि-
वार, बालीनेसिया परिवार, पापुआ परिवार, और आस्ट्रेलिया परिवार ।

मराठी परिवार को एंडोनेसिया परिवार भी कहते हैं । वह बहुत प्रायः हीन,
हुमास के एक घंटा, और खोजकर्ता के साथ बात होती जाती है । मलेनेसिया परि-
वार में पिटागन, कैलीनेसी, स्यामली, टोमेही, और सोलोमोनी भाषा भाषाई
संबंधित है । वह चीनी और उसके साथ बात के दोनों में होती जाती है । मले-
नेसिया परिवार में मरीसी, टोमी, कमीई, हवाई, लहिरा, और मार सौजन्य बादि
भाषाई संबंधित है । इनका मूल काल अपने दोनों के ही आधार पर हुआ है ।
यह अपने नाम के अनुसार म्यूकेलिट, टोमा, कलोमा, हवाई, और वाइटी हवाई
छोटे छोटे द्वीपों में होती जाती है । पापुआ न्यूगिनी के कमीनकी छोटे-छोटे द्वीपों
को भाषा है । आस्ट्रेलिया परिवार की भाषाई आस्ट्रेलिया और टोमागिया में होती
जाती है ।

अमरीका खंड के दो भाग किए जा सकते हैं:—उत्तरी और दक्षिणी । दोनों भागों में मिल कर कुल चार सौ भाषाएँ इस खंड में पाई जाती हैं, जिन्हें तीस परिवारों अमरीका में विभक्त किया जा सकता है । इस खंड की भाषाओं का खंड अभी तक पूर्ण रूप से अध्ययन नहीं हो सका है । इसलिए किसी भाषा शास्त्री ने इस खंड की भाषाओं पर अभी तक विशेष प्रकाश नहीं डाला ।

भाषा विज्ञान का इतिहास

भाषा विज्ञान का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भारतीयों में अति प्राचीन काल से ही भाषा-विज्ञान के प्रति लोगों के हृदय में प्रेम, और विश्वास है। भारतीय विद्वानों भारत में भाषा ने जिस प्रकार जीवन के अन्वयान् क्षेत्रों में अपने-आप विज्ञान और अध्ययन का महत्व प्रगट किया है, उसी प्रकार भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी भारतीय विद्वानों की गति रहा है। यह बात स्पष्ट है, कि आज भाषा विज्ञान का जो स्वरूप है, प्राचीन काल में वह नहीं था। प्राचीन काल में व्याकरण के रूप में ही हमारे देश में भाषा-विज्ञान का विकास हुआ था। साधारण रूप से अर्थ, व्यंजि, और शब्दों पर भी विवेचनाएँ मिलती हैं।

हमारे देश में भाषा-विज्ञान का जो महत्व पूर्वी अध्ययन हुआ है, उसके इतिहास की हम दो भागों विभक्त करते हैं। उनमें एक भाग की प्राचीन, और दूसरे की आधुनिक की संज्ञा दी जाती है। प्राचीन अध्ययन का इतिहास वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, पद-पाठों, प्रतिशास्त्रों, निषेधों और निरुक्तों में मिलता है। यजुर्वेद से पता चलता है, कि वैदिक काल में लोगों की भाषा विज्ञान में अच्छी गति थी। क्योंकि यजुर्वेद में कई स्थानों में वाक्यों के विश्लेषण की बात आई है। संहितार्थों, जो वेदों के बाद बनी हैं, भारतीयों के भाषा विज्ञान-ज्ञान के विषय को अपने-अपने उपस्थित करती हैं। यजुर्वेद संहिता में भी वाक्यों के विश्लेषण की बात का उल्लेख है। ब्राह्मण ग्रन्थ संहिताओं के बाद की रचना है। ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्दों के अर्थ और वाक्यों के संबंधों पर ध्यान दिया गया है। पद-पाठों के भाषा-विज्ञान के इतिहास में ब्राह्मण ग्रन्थ ही ऐसे प्रथम ग्रन्थ हैं, जिनमें शब्दों के अर्थ की और ध्यान दिया गया है। पद-पाठों में, किसी रचना संहिताओं के पश्चात् हुई है, भाषा विज्ञान के ज्ञान का और भी अधिक विकास मिलता है। पद-पाठों में संहिताएँ बतों के रूप में परिवर्तित की गई हैं। उनमें वाक्यों के शब्दों की सीधे और समझों के अन्वय पर पुष्प-पुष्प किया गया है। प्रतिशास्त्रों की रचना पद-पाठों के पश्चात् उपचारण सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठानों से बचने के उद्देश्य से की गई है। प्रति शास्त्रों में व्यंजनों के अध्ययन की बात विशेष रूप से मिलती है। निषेधों की रचना वैदिक शब्दों के समुदाय की गई है। यद्यपि आज कल एक ही निषेध मिलता है, पर उससे तत्कालीन विद्वानों के भाषा-विज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। प्रत्य निषेध में शब्दों के पर्याय की एक क्रम

के रचना तथा है। निम्न में निम्न की व्याख्या की गई। कथों की प्रथम-प्रथम रचना इनकी स्मृति की गई है; साथ ही उनके कार्य पर भी विचार किया गया है।

प्राचीन काल के भाषा वैज्ञानिकों में पणिनि, कात्यायन प्राक्खलि, उवाचिन तथा रामन, विवेक बुद्धि, वृद्ध, यदुर्ग, कथार, विवेक कथार, और भी विविध भाषा का नाम प्रथम रूप से किया जा सकता है। इनकी रचनाओं का अध्ययन करने से यह बात प्रतीत है, कि वे भाषा-विज्ञान के महत्त्वपूर्ण लोगों पर प्रथम इतिहास रखते थे।

साधुनि भाषा विज्ञान के अध्ययन का और यूरोपीय संघों के पुरा है। यही यही हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं के संघों में छाई है, यही यही इनकी भाषा विज्ञान के अध्ययन की विधा भी बढ़ती गई है। अब तक हिन्दी तथा साधारण देशी भाषाओं में भी इस अध्ययन में बड़ी महत्त्व पूर्ण प्रयत्न हो चुके हैं। हिन्दी में प्रथम करने वालों में श्री रामन कुम्हार, डा० मंगल देव, डा० वीरेन्द्र वर्मा, डा० बाबुराम सक्सेना, डा० रामानुज, और सुनील कुमार चटर्जी का नाम प्रथम रूप से किया जा सकता है। रामन कुम्हार यथार्थ में ही प्रथमात्मक भाषा-विज्ञान के अध्ययन के मार्ग की प्रस्ताव करने का प्रथम व्यक्ति हैं। चटर्जी के क्षेत्र में बनारसी राज केन का प्रथम प्रयत्न है। इसी प्रकार कई अन्य इतिहास विद्वानों ने, विवेक विवेक भाषा के क्षेत्रों में भाषा-विज्ञान के अध्ययन की प्रति प्रदान की है।

पश्चिम साधुनि भाषा में भाषा-विज्ञान के अध्ययन में पश्चिम भारत में जाने बढ़ा हुआ है, पर वह बात निमित्त है, कि भाषा-विज्ञान का अध्ययन भारत की पश्चिम में अनेक पश्चिम में बहुत समय पर प्रारम्भ हुआ है। जिस भाषा-विज्ञान समय भारत भाषा-विज्ञान के अध्ययन के मार्ग पर भली मति प्राप्त रहा था, इस समय पश्चिम भारत-भारत ही लोक रहा था। प्राचीन काल में यूरोप की सम्प्रदाय का केन्द्र बीच था। तब: सर्व प्रथम बीच में ही भाषा-विज्ञान के अध्ययन का काम ही प्रारम्भ हुआ। पश्चिम में सर्व प्रथम भाषा विज्ञान के काम की महत्त्व कायदा के रूप में मिलती है। कायदा के प्रचार-प्रचारों में इस काम की जाने बढ़ाने का प्रयत्न किया है। कायदा के रूपों में यहाँ केवल भाषा के रूपों के विवेक-विवेक की बात मिलती है, यहाँ प्रचारों के रूपों में पश्चिमों का अन्वेषण भी मिलता है। प्रचारों के प्रचार-प्रचार विद्वानों ने, विवेक नाम विवेक का, लोक अन्वेषण की रचना की। पश्चिम का यही सर्व प्रथम अन्वेषण माना जाता है।

समय की प्रति के कारण अब लोक की सम्प्रदाय का प्रथम हुआ, अब उसका स्थान बीच में हो गया, और उस समय बीच ही पश्चिमों कायदा का केन्द्र बन गया। इस परिचित परिचित के कारण लोक के साथ ही साथ क्षेत्रों का भी अध्ययन किया जाने लगा। क्षेत्रों प्रथम पूर्ण माना की। समय और विवेक भी उसके अनुसूच की। यहाँ यही यही: उसका प्रथम चार यूरोप पर जा गया। यही हिन्दी संस्कृत-रूपों का अनुसूच यूरोप में बढ़ा। पश्चिम के विद्वानों ने बीच, क्षेत्रों और

संस्कृत में अधिक सादर्य देखा, जब उनके आदर्श का ठिकाना न रहा, और वे उस बृह भाषा की खोज में लग्न हो गए, जिससे यह भाषाएँ निकली हैं। पश्चिम के कई विद्वानों ने इस सम्बन्ध में महत्व पूर्ण संवेधानाएँ की हैं, जिनमें श्यो कीरि-लव, हर्जर, और जेनिश इत्यादि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सर्व प्रथम हर्जर और जेनिश ने ही मानव-प्रकृति को समझे रख कर भाषा के जन्म और उसके विकास के सम्बन्ध में अपने मत दिखर किये हैं। अतः यही दोनों पश्चिमी क्षेत्र में भाषा-विज्ञान के अध्ययन के सम्बन्धका भी माने जाते हैं।

भारतीय भाषा-विज्ञान के इतिहास की भाँति पश्चिम का भाषा-विज्ञान सम्बन्धी इतिहास भी दो भागों में बाँटा जा सकता है—प्राचीन और आधुनिक। प्राचीन इतिहास के निरमाताओं में श्री फोरेटिक बाब, श्री एलेक्स गेले, श्री फ्रांज़ोफ, श्री रेस्क, जेकब, ब्रीम, मैक्स मूलर, और हिटनी इत्यादि के नाम महत्व पूर्ण हैं। इन विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में भाषा के अंगों पर प्रकाश डाला है, और उनका विश्लेषण किया है। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की नींव जेकब ब्रीम के द्वारा पड़ी है। सर्व प्रथम ब्रीम ने ही भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए नियम दिखर किये हैं।

आधुनिक युग के विद्वानों में स्टाइ नबल, देनरी स्वीट, आस्टो वेस्टरगन, ड्रान्ग, डरनर, केन्डवत, और वील इत्यादि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने खँगरेजी, फीच, और जर्मन इत्यादि भाषाओं में भाषा विज्ञान के सूक्ष्मजाति सूक्ष्म अंगों पर विचार प्रगट करने का सुलभ प्रयास किया है।

लिपि और उसका विकास

प्रत्येक भाषा की अपनी अपनी लिपि है। लिपि की छोरे मनुष्य का ध्यान किस समय गया—इस सम्बन्ध में कुछ खणिक ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। किन्तु

लिपि और यह निश्चय है, कि भाषा का आविष्कार हो जाने के पश्चात्

किसी व्यक्ति ही मनुष्य का ध्यान लिपि की ओर गया होगा। जब मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्ध का क्षेत्र विस्तृत हुआ होगा, तब अपने मनोभावों को सुदूर-स्थित मनुष्यों पर व्यक्त करने के लिए ही मनुष्य ने लिपि का आविष्कार किया होगा। क्योंकि दूर-स्थित मनुष्यों पर, मौखिक भाषा-द्वारा मनोभाव नहीं व्यक्त किये जा सकते थे।

भाषा के सम्बन्ध में कुछ प्रकार कुछ लोगों का विचार है, कि भाषा ईश्वर प्रदत्त है, उगी प्रकार कुछ लोग लिपि को भी ईश्वर प्रदत्त बताते हैं। उनका कहना है, कि माझी ब्रह्मा की बनाई हुई लिपि है, और उगी के संतुर्ख लिपियों उद्भाषित हुई हैं। पर लिपियों का जो इतिहास हमारे सामने है, उससे पता चलता है, कि लिपि ईश्वर प्रदत्त नहीं, बल्कि भाषा की भाँति ही उसका भी क्रमिक विकास हुआ है।

लिपि के क्रमिक विकास की चार अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं—एक लिपि, रेखा लिपि, चित्र लिपि, और अक्षर। प्रारंभ काल में जब मनुष्य की लिपि की आव-लिपि विकास शक्ती नहीं होगी, तब वह सूत या डोरी में गाँठ देकर को अवस्थाएँ अपने हृदय के भावों को प्रदर्शित करता रहा होगा। कभी कभी खाल के चीनों में विभिन्न रंग की वस्तुएँ बाँध कर इस काम की पूर्ति की जाती रही होगी। मूल अनुमान के प्रत्यक्ष दृष्टांत आज भी चीन में प्राप्त होते हैं। एक लिपि के साथ ही साथ किन्हीं स्थानों में रेखा-लिपि भी रही होगी; अर्थात् किन्हीं किन्हीं स्थानों के मनुष्य रेखाओं के द्वारा भी अपने मनोव्यक्त व्यक्त करते रहे होंगे। आधुन्य में आज भी रेखा लिपि प्रचलित है। 'चित्र लिपि' इन दोनों लिपियों का विकसित स्वरूप है। निश्चय इन दोनों लिपियों के पश्चात् जब मनुष्य के ज्ञान की अभिवृद्धि हुई होगी, तब वह भाँति भाँति के चित्र बनाकर अपने मनो-भावों को व्यक्त करने लगा होगा। चीन, मिस्र, एथारतीयक और मेसोपोटैमियाँ इत्यादि देशों में चित्र लिपि संवन्धी ऐसे दृष्टांत प्राप्त हुए हैं, जिनसे चित्र लिपियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

किन्तु मनुष्य की आन्दोलनशक्ती की पूर्ति बिना लिपियों से ही न हो सकती। इसका कारण यह है, कि मनुष्य अपने भाषों की सीखता के साथ जल्द करना चाहता था। किन्तु भाषों की जल्द करने के एक-एक भाग्य की निम्नलिपि संकेत का इस दिने में अधिक समय लगता था। इस निम्नलिपि में मनुष्य परिवर्तन करने लगा। धीरे-धीरे इस परिवर्तन में ही अक्षर का रूप अक्षर बन गया। कभी प्रथम ध्वनि कुछ अक्षरों की दृष्टि चीन से हुई। पहले यहाँ एक समय के लिए निम्न अक्षर आता था, यहाँ उस चीन में प्रत्येक शब्द के लिए एक निम्न लिपिवाच हो गया। शब्दों के ये निम्न अक्षरवाच नहीं, अक्षरवाच थे। धीरे-धीरे इन अक्षर-लिपियों का विकास होता गया। आगे बढ़ कर इनमें भी वह परिवर्तन प्रतीत हुई, कि प्रत्येक अक्षर वाच के लिए कुछ-कुछ अक्षरवाच-लिपियों की आवश्यकता पड़ती थी, जिससे वाच-प्रदर्शन में अक्षरवाचों का सामना करना पड़ता था। यही कारण है कि निम्न लिपिवाच लिपि नहीं, जो कभी अक्षरों के चित्रण होते थे। कभी-कभी इन लिपियों की संख्या बढ़ती गई। यही भाषा-लिपि चीनी लिपि के नाम से विख्यात है।

यूरोपीय लिपियों का विकास भी निम्न लिपि से ही हुआ है। ऐतिहासिक संवेदनशीलता से कहा सकता है, कि चीन की भाषा ही निम्न लिपि से ही निम्न लिपि का यूरोपीय अधिक विकास हुआ था। निम्न लिपि लिपि के कोन्वर्जन्स लिपियों चीनी की प्राप्त हुई, क्योंकि उस दिनों के चीन निम्न लिपि वाच करने के उद्देश्य से वाच करते थे। कोन्वर्जन्स की ही द्वारा वह लिपि सूत्रन में पहुँची। यूनानियों के कभी-कभी इस लिपि में अधिक उत्पत्ति को, और उसे अक्षरवाच अक्षरों का स्वरूप दिया। यूरोप की संस्कृति लिपियों इस लिपि से निकली हुई है।

मित्र की ही निम्न लिपियों कायें-निम्न से ही चहुँ-चौर अक्षर तथा इस लिपिवाचों में भी उगते इस लिपि की उत्पत्ति किया। इस प्रकार अक्षरों के विकास के युग में भी यही निम्न-लिपि है। ईरानी भाषा का विकास भी निम्न-लिपि के ही द्वारा हुआ है। मेसोपोटामिया के निवासी, जो तुर्मेरी कहलाते थे, निम्न-लिपि में अधिक उद्योग थे। वे सुलतान ईरान पर चीनी से ऐश्वर्य कोर कर अपने भाषों की जल्द लिपि करने के। इस के प्राचीन लिपियों में तुर्मेरी भाषा के चीनी से इस लिपि की उत्पत्ति किया। ईरानियों के प्राचीन अक्षर कोर-अक्षर कहलाते हैं। क्योंकि वे उन्हीं चीन से कोर कर लाते थे।

चीन और मित्र की चीन ही आरम्भ की सम्प्रदाय अधिक पुरानी है। विचारों की वास्तवता, और सुन्दरता में भाषा विज्ञान का एक ही वाच्य है। ऐतिहासिक तथा आधुनिक एक बात के प्रमाण है, कि भाषा का आविष्कार भारतीयों से आदिवासी संसार में सबसे पहले किया था। इसके का भी दावा होता है, कि लिपि के आविष्कार के सम्बन्ध में भी भारतीय पीछे न रहे होंगे। चीन और

मित्र की मूर्ति हो हमारे देश में भी लिपि का काम हुआ होगा, और यह भी-
 धीरे-धीरे विकसित होकर भाषा की लिपियों के रूप में पल्लवित और कुशिता हुई होगी।
 पर इस संबंध का कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक सामने नहीं आ सका है। इतिहास
 के पक्ष परबला है, कि साधुमित्र लिपियों का प्रथम उल्लेख अशोक के लेखों में ही
 प्राप्त होता है। इसके पूर्व कोई लिपि थी, या नहीं—इसके सम्बन्ध में ऐतिहासिक
 ज्ञान अभी सीन तक है।

अशोक के लेखों में मुख्य रूप के दो लिपियाँ पाई जाती हैं। एक की ब्राह्मी,
 और दूसरी की खरोष्ठी कहते हैं। विदेशी विद्वानों का मत है, कि यह दोनों ही
 लिपियाँ विदेशी हैं, पर ऐतिहासिक प्रमाण इस सम्बन्ध के अन्तर्गत मिलते हैं। ऐति-
 हासिक ज्ञानों के पक्ष परबला है, कि ब्राह्मी लिपि भारतीय लिपि है, और उसी के आधार
 की संस्कृत लिपियाँ विकसित हुई हैं। खरोष्ठी लिपि के सम्बन्ध में यह बात अवश्य नहीं
 आ सकती है, कि उसका विकास इस देश में नहीं हुआ है। 'खरोष्ठी' लिपि अभी
 चीन और तुर्किस्तान में प्रचलित थी। यह कुछ आभारतीय लिपि है, और अब
 इसका सीन ही कुछ है।

यह बात है, कि साधुमित्र लिपि का प्रथम उल्लेख अशोक के लेखों में ही प्राप्त
 होता है; पर इसके साथ ही साथ यह भी लग है, कि ब्राह्मी भाषा में अक्षरमय में

लिपि-ज्ञान लिपि-ज्ञान प्रचलित था। 'लिपि-ज्ञान' के प्रमाण आज भी
 प्राचीन पुस्तकों में सुदृष्ट है। बौद्ध विग्रहकों, और कृष्णदीप्य चरित्रों द्वारा
 प्राचीन ज्ञानों में 'साधु' शब्द का कई बार उल्लेख हुआ है। 'साधु' के अन्वयार्थ
 में भी 'लिपि' या 'लिपि' शब्द का प्रयोग मिलता है, किन्तु लिपि की विद्यमानता
 का पता चलता है। प्राचीन भारतीयों की विचार और मान-सक्ति थी इस बात का
 प्रमाण है, कि उन्होंने अवश्यमेव ही लिपि का आविष्कार किया होगा।

ज्यों-ज्यों इतिहास पर नया प्रकाश पड़ रहा है, ज्यों-ज्यों यह ज्ञान भी सामने
 आता जा रहा है। बौद्ध बौद्धों और इसका भी सुझाव है इतिहास के पृष्ठों की
 कदम दिया है। बौद्ध बौद्धों और इसका भी सुझाव है यह ऐसे लेख प्राप्त हुए
 हैं, जो ईसा के कई हजार वर्ष पूर्व के हैं। इन लेखों में कि लिपि का प्रयोग हुआ
 है, यह ब्राह्मी और खरोष्ठी में मिल है, तथा वैदिक भाषा की बात होती है। ईसावाद
 की सुझाव में भी ऐसे लेख मिले हैं, जो लिपि के अक्षरों पर अभिलेख हैं, पत्थी (अक्षरों)
 और मैगल की लपट में भी ऐसे लेख प्राप्त हुए हैं, जो ब्राह्मी के बहुत पहले के हैं।
 यह साधुमित्र लिपि का रूप है इस बात की सामने उपस्थित करती है, कि प्राचीन
 ज्ञान में लिपि ज्ञान का प्रचार आशुमय में अपने विकसित रूप में था।

अशोक के लेखों में दो लिपियाँ पाई जाती हैं—'खरोष्ठी' और ब्राह्मी। 'खरोष्ठी'
 विदेशी लिपि है। अशोक के 'साधुभाषा कर्तृ' और 'अक्षरमय' के लेखों में
 ब्राह्मी और खरो- खरोष्ठी लिपि का प्रयोग हुआ है, पर विदेशी होने के
 बीच लिपियों का प्रमाण इस लिपि का विकास हमारे देश में न हो

‘बँगला’ लिपि भी कई लिपियों का उद्गम मानी जाती है, जिनमें नेपाली, मैथिली, और उड़िया इत्यादि का मुख्य स्थान है ।

इस प्रकार नागरी लिपि का संबंध सभी लिपियों से है । दक्षिण की लिपियों, जिन्हें तुलू, मलयालम, कन्नड़ी, तामिल और तेलगू इत्यादि कहते हैं, नागरी से ही संबंधित हैं । देव नागरी, जो आज हिन्दी में लिखी जाती है, और भारत की राष्ट्र लिपि है, नागरी से ही निकली हुई है ।

२

हिन्दी भाषा और उसका विकास

विषय सूची

- १—भाषा परिवार और हिन्दी ५१
(अ) भारोपीय परिवार, (आ) आर्य कुल ।
- २—भारतीय प्राचीन भाषाएँ ५५
(इ) ऋग्वेद की भाषा, (ई) संस्कृत, (ए) पाषाण, (ऐ) प्राकृत, (ऐं) अपभ्रंश ।
- ३—हिन्दी की जन्य-प्रसूता—शौरसेनी ६०
(ओ) काव्य का मूल स्थान, (औ) मध्यदेश, (क) शौरसेनी ।
- ४—आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ ६३
(ख) पितृवर्ग का वर्गीकरण, (ग) चटर्जी का वर्गीकरण, (घ) सामान्य परिचय—
हिन्दी, (ङ) लहँदा, (च) बंगाली, (छ) गुजराती, (ज) राजस्थानी, (झ) पश्चिमी
हिन्दी, (ञ) पूर्वी हिन्दी, (ट) बिहारी, (ठ) पहाड़ी, (ड) उड़िया, (ढ) बंगाली,
(ण) आसामी, (त) मराठी ।
- ५—हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ ७१
(ब) हिन्दी शब्द की उत्पत्ति, (व) हिन्दी का क्षेत्र, (प) हिन्दी का क्षेत्र नद
क्षेत्र से, (न) पश्चिमी हिन्दी, (प) पूर्वी हिन्दी, (फ) बिहारी, (य) राजस्थानी,
(म) पहाड़ी भाषा, (न) साहित्यिक भाषाएँ ।
- ६—हिन्दी के विकास की गति ७३
(ब) हिन्दी का जन्म, (र) आदि काल, (ल) मध्य काल, (व) आधुनिक काल ।
- ७—हिन्दी का शब्द भण्डार ८६
(श) शब्दात्मक के साधन, (ष) संस्कृत या प्राकृत के शब्द, (स) देशज, (ह)
अनुकरणात्मक, (च) तत्समासा, (घ) कनार्य भाषा के शब्द, (झ) प्रत्य-
यनिष्ठ, (ङ) विदेशी भाषाओं के शब्द ।

भाषा परिवार और हिन्दी

हमारे देश में कई प्रादेशिक भाषाएँ हैं। उनमें बंगाली, गुजराती और मराठी इत्यादि ऐसी भाषाएँ हैं, जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उच्चम नहीं जा सकती हैं, और जिनका साहित्यिक दृष्टिकोण से भी अधिक उच्च स्थान है; किन्तु इन भाषाओं के रहते हुए भी आज हिन्दी का स्थान सर्वोपरि है। आज हिन्दी राष्ट्र भाषा के पद पर आबोध है, और देश में एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक उसकी विजय-वैजय होती चलाई रही है। हिन्दी को जो वह महत्व पूर्ण पद प्राप्त हुआ है, उसका बहुत बड़ा कारण है। हिन्दी ही हमारे देश में एक ऐसी भाषा है, जिसका सीधा संबंध उस संस्कृत भाषा से है, जो विश्व के एक विशेष भाषा परिवार में अपनी महत्व पूर्ण स्थान रखती है। इस सब में यह भी कहा जा सकता है, कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जो विश्व की कई भाषाओं के अधिक निकट है। इसके अतिरिक्त एक दूसरा कारण यह भी है, कि हिन्दी का जन्म और उसका विकास प्राकृतिक दंग से हुआ है। हिन्दी के विकास और उसके क्षेत्र में समय, शक्तियाँ, और संस्कृति का विशेष रूप से योग रहा है। अतः हिन्दी एक ऐसी वैज्ञानिक भाषा बन गई है, जिसमें अनेक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने की शक्ति रहती है।

भाषा शास्त्रियों ने भौगोलिक दृष्टि से विश्व की भाषाओं को चार खंडों में विभक्त किया है—अफ्रीका खण्ड, यूरेशिया खण्ड, प्रशांत महासागरीय खण्ड, और आस्ट्रोनीय खण्ड। अनेक खण्ड में कई भाषाएँ हैं, जिनमें कुछ की मिला कर एक परिवार की स्थापना की गई है। यहाँ हम केवल यूरेशिया खण्ड के एक विशेष परिवार की ही चर्चा करेंगे; क्योंकि हिन्दी का संबंध उसी विशेष परिवार से है।

यूरेशिया खण्ड की भाषाओं की आठ परिवारों में विभक्त किया है—सेनेटिक, काकेशस, मुरात, अल्ताइक, एकादर, द्राविड, आर्य, अफिरिकन् और भारोपीय।

भारोपीय इन परिवारों में आस्ट्रोनीय परिवार की वह परिवार है, जिसका परिवार हिन्दी से अधिक बलिष्ठ संबंध है। भारोपीय परिवार की दो भागों में विभक्त किया गया है—'बैल्कन', और 'एशियन'। इन दोनों ही भागों में चार-चार कुलों की भाषाएँ संवित्तित हैं। इस प्रकार भारोपीय परिवार में आठ कुलों की भाषाएँ संवित्तित हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—आर्य वा भारत ईरानी, आर-

मेमिचर, बाइबेलीबेलिक, कलमेमिचर, डीक, इटैलिक, केमिचर, और रमैमिच वा ज्युडमिच। खार्ब का खाल देरानी की तीन खालाये हैं—माखीन माखार्, देरानी माखार्, और दार। खार्बेखन खार्बेखि का माख है, जिनमें देरानी दार खार्बेखता से दार करते हैं। बाइबेलीबेलिक कुल की खार्बार् वारे एक में पैदा हुई है। कलमेमिचर के बोलने वाले कलमेमिच और डीक में रहते हैं। डीक को देलेमिच भी कहते हैं। इनके प्राचीन इपार्ब 'होमर' के इतिहास और 'जोर्डन' नामक बहाकापी के दार होते हैं। यह बहुत को बालों में खार्बक संस्कृत में मिहली-हुलली है। इटैलिक को कैटिन भी कहते हैं। यह खार्बिक प्राचीन भाषा है। देरानी, डीक, रीक, रमैमिच और पुर्बखल इपार्बि देरानी में की माखार् वीखी जाती है, के कैटिन के मिहली हुई हैं। पुर्बक को खन कभी माखार् को कैटिन से समानित है। केमिचर के बोलने वाले काथैलिक, केक, रमैलैक, मान डीक, जिरेनी और रमैखल के कुछ भागों में मिहल करते हैं। प्राचीन बाक में इसका नाम गल था। खान फल इसका प्राचीन खलन लकी देखने को नहीं मिलता। ज्युडमिच की कलैमिच भी कहते हैं। खार्बेखी और रमैन इपार्बि माखार् इली कुल की है। एडकल, केर, मार्क, मार्क, और काइकरीक की माखार् भी इसी कुल के मिहली हुई हैं।

एक प्रकार माखीन परिवार की माखार् खान कुल में विभक्त है। पछि एक कुलों के नाम पुचक पुचक हैं, और उनके खाने क्षेत्र की खलक-खलन है। बिन्दु खार्ब कुल की देली खलन पुर्ब करते हैं, जिनमें एक माखाली में समानखार् वारे जाती है। उनमें एक महान पुर्ब समानखल बंट खानीन खार्बि है। इस परिवार के कई देली माखार् हैं, जिनमें 'क' इपार्बि की बंट खानीन खार्बि भी की भी रह गई है। देली माखाली में कैटिन, डीक, इटैलिक, डीक, डीक, और वीखाली इपार्बि का नाम लिखा जा सकता है। इनके प्रतिकूल देली भी कई माखार् हैं जिनमें बंटखानीन खार्बि खलन खार्बि 'क' और 'ल' हो गई है। देली माखाली में खलन, खाली, खलन, हिन्दी, कली, और कलमेमिचर इपार्बि का नाम लिखा जा सकता है। 'खलन' और 'केमिचर' भाग की नीव की उन्मूलन के 'क' और 'ल' के वेदाकार लर ही की गई है। 'खलन' भाग के वे माखार् हैं, जिनमें बंटखानीन खार्बि खलन हो गई हैं। यह माखार् खार्बेखल माखीन परिवार के उस कुल की है, जिसे खार्ब खलन खाल देरानी कुल कहते हैं।

हिन्दी इसी खार्ब कुल की भाषा है। माखीन परिवार में खार्ब कुल खलन एक विविध खान रहता है। खार्बिख और कलन का, एक कुल की भाषाओं में खार्बिक खलन रहता है। इस कुल की माखार् तीन खलनलों में विभक्त हैं—देरानी, दार, और खलन। देरानी एक प्राचीन भाषा है, जो मुख्य रूप से देरान में बोलती जाती है। इनके तीन रूप मिलते हैं—माखीन, माख खार्बिख और नई। देरानी का प्राचीन खलन खार्बिखी की बर्ग पुचक। खलन, और दार के खाना भीखल्लों में खलन रहता है।

काल अपभ्रंश के पश्चात् से ही आरंभ होता है । अपभ्रंश से आधुनिक काल की कई भाषाओं का उद्भव हुआ है, जिनमें हिन्दी का स्थान अधिक महत्त्व पूर्ण है । आधुनिक काल की भाषाओं में बंगाली, गुजराती, और मराठी भी अपना विशेष महत्त्व रखती हैं, किन्तु हिन्दी की सरलता और उसकी वैज्ञानिकता ने प्रायः सब के ऊपर अपना सिक्का अमा लिखा है ।

इस प्रकार विश्व की भाषाओं, और हिन्दी के बीच में एक लड़ी है, जो दोनों के बीच में सम्बन्ध स्थापन का काम करती है ।

भारतीय प्राचीन भाषाएँ

हिन्दी के जन्म और उसके विकास के इतिहास को जानने के लिए भारत की प्राचीन भाषाओं और उनके उत्थान-पतन के इतिहास को जानना अधिक आवश्यक अंगवैद की है; क्योंकि हिन्दी के जन्म और विकास की कहानी प्राचीन भाषा भाषाओं के ही उत्थान-पतन के इतिहास से सम्बन्धित है। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय जीवन का शूलपात वैदिक काल से माना जाता है। अतः प्राचीन भाषाओं के इतिहास को जानने के लिए हमें वैदिक काल पर अपनी दृष्टि डालनी होगी। भाषा की दृष्टि से जब हम प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तो हिन्दी के जन्म के पूर्व कई ऐसी भाषाएँ पाते हैं, जिन्हें हम भारत की प्राचीन भाषाएँ कह सकते हैं। भारत की प्राचीन भाषाओं में दिन भाषाओं का नाम दिया जा सकता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—अंगवैद की भाषा, संस्कृत, 'प्राकृत', पाली, और अपभ्रंश।

अंगवैद की आवाजों की भाषा की हम प्राचीन संस्कृत कह सकते हैं। अंगवैद की आवाजों का निर्माण विभिन्न काल में और विभिन्न स्थानों में हुआ था। पर फिर भी आवाजों की भाषा में समझता दिखाई नहीं देती। इसका कारण यह प्रतीत होता है, कि इन आवाजों का उत्पादन और संग्रह किसी एक ही व्यक्ति के द्वारा हुआ होगा, और उसने भाषा में सादर्य उत्पन्न किया होगा। अंगवैद की आवाजों के उत्पादन का स्थान मध्य देश बताया जाता है, जो पूर्वी पंजाब और गंगा के उत्तरी भाग के बीच का क्षेत्र है। अतः यह कहा जा सकता है, कि उन दिनों मध्य देश में उस भाषा का प्रचलन था, जो अंगवैद की आवाजों में है। किन्तु आवाजों की भाषा साहित्यिक है। अब यह प्रश्न होता है, कि फिर उस समय आर्य जनता की साधारण बोल चाल की भाषा क्या थी? निश्चय, साधारण बोल चाल की भाषा आवाजों की भाषा से विभिन्न रही होगी, किन्तु जब तक उस भाषा का कोई स्वरूप प्राप्त नहीं हो सका है। केवल आवाजों में ही उसकी कुछ झलक देखने को मिलती है।

अंगवैद की रचना का काल ईसा के एक सहस्र वर्ष बहुत पहले का माना जाता है। उन दिनों का जो इतिहास उपलब्ध है, उससे उसी भाषा का पता चलता है, संस्कृत जो अंगवैद की आवाजों में है, और जिसे हम प्राचीन संस्कृत भी कह सकते हैं। धीरे-धीरे इस भाषा का अधिक विकास हुआ। किन्तु यह भाषा साहित्यिक

होने के कारण इतनी सीजन थी, कि साधारण बोलचाल की भाषा में नहीं जाती थी। साधारण बोलचाल में पहले से ही बोलचाल की एक अन्य भाषा थी। यहाँ साहित्यिक प्राचीन संस्कृत और बोलचाल की भाषा के संयोग से एक नवीन रूप का उदय हुआ, जिसे लीपिक संस्कृत कहते हैं। लीपिक संस्कृत के प्रकार का वह परिणाम हुआ कि प्राचीन संस्कृत, जो वेद की भाषा थी, विभक्त होने लगी। वेद की भाषा होने के कारण प्राचीन संस्कृत का अधिक महत्व था। यहाँ उसकी सुरक्षा की चोर विद्याओं का स्थान आकर्षित हुआ। 'पाणिनि' ने इस विद्या में सर्वोत्तम प्रभाव किया। प्राचीन संस्कृत की मर्यादा को तो होने से बचाने के लिए पाणिनि ने व्याकरण के नियमों की रचना की, और प्राचीन संस्कृत को नियमों की संकीर्ण में इस प्रकार बद्ध किया, कि उसके स्वरूप के विभक्त होने की आशंका जाती नहीं। पाणिनि ने इसी उद्देश्य के अपने 'अष्टाध्यायी' की रचना की थी। पाणिनि के उद्देश्य से प्राचीन संस्कृत का जो स्वरूप सामने आया, उसी का नाम संस्कृत है। उस भाषा के इतने साफ़ स्पष्ट रूपों और रूप रूपों में प्राप्त होते हैं। 'उपमास्य', 'महामास्य' और अधिष्ठान संस्कृत में भी 'प्राचीन संस्कृत', और 'संस्कृत' का सरल कुछ परिवर्तन के साथ इंग्लिश में होता है। किन्तु वह कहना होगा, कि वह भाषा की कुछ साहित्यिक थी। वह भाषा की दूसरे दिशा में अपने इसी रूप में विद्यमान है। साधारण बोलचाल की भाषा इससे पृथक् थी, किन्तु उसका स्वरूप क्या था, इस सम्बन्ध में इतिहास ज्ञान भी सीन है।

किन्तु वह दो निश्चय है, कि 'संस्कृत' का विचार होने के साथ ही साथ उस भाषा का भी विकास हुआ होगा, जो मूल भाषा थी, और बोलचाल के काम में लगी जाती थी। संस्कृत कुछ साहित्यिक भाषा थी। वह निश्चय है, कि साधारण जन समाज बोलचाल के रूप में इस भाषा का उपयोग न करता रहा होगा। सीन से पता चलता हुआ है, कि उन दिनों संस्कृत के अतिरिक्त विभिन्न शैलियों की थी, जो सर्व साधारण में प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त समाज में एक ऐसी भाषा बोलती का रही थी, जिसके नाम का एक मात्र कारण संस्कृत के शब्दों का बहुत उपयोग था। संस्कृत व्याकरण के विद्वान पंडितों की भाषा बन चुकी थी, वह सर्व साधारण के क्षेत्र में नहीं। सर्व साधारण ने उसे अपनी सामाजिकता के लक्ष्य में बाध करके ही लक्ष्य किया। इस प्रकार वह कहा जा सकता है, कि साधारण बोलचाल में एक ऐसी भाषा उस समय भी प्रचलित थी, जो मूल भाषा और संस्कृत के बहुत उपयोग के संयोग के कारण नहीं थी।

पर एक भाषा का कोई एकल अष्टाधिक के सामान्य बोलचाल के पूर्व देखने की नहीं मिलता। महामास्य कुछ में अपने अष्टाधिक के प्रकार के लिए इसी भाषा को अपनाता था। क्योंकि उन दिनों इसी भाषा का अस्तित्व में अधिक प्रभाव था। महामास्य कुछ ज्ञान प्राप्त होने वाले के कारण इसकी सर्वाधिक अधिक बढ़ गई। किन्तु वह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता, कि वह वाली थी। 'प्राचीन' में इसके स्वरूप को कुछ कुछ महत्व सम्पूर्ण विचारों पड़ती है।

संस्कृत के परन्तार्थ को भाषा समझे जाई, वह 'प्राची' थी। प्राची का सर्व प्रथम परिचय हमें अशोक की बर्म-लिपियों में मिलता है। अशोक के पूर्व भाषा का क्या स्वरूप था, इस सम्बन्ध में निम्नवाक्यक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता; पर अशोक की बर्म-लिपियों के पता चलता है, कि उस समय उत्तर भारत में भाषा के तीन भिन्न-भिन्न रूप थे—बुनी, पश्चिमी, और पश्चिमोत्तरी। मिथुन दक्षिण में भी इसी प्रकार भाषा के अलग अलग रूप रहे होंगे, पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। अब प्रश्न यह होता है, कि किस प्राची का परिचय हमें अशोक की बर्म लिपियों में मिलता है, उसका मूल्य किस प्रकार हुआ। संस्कृत की मूर्ति प्राची की साहित्यिक भाषा है। कई विद्वानों ने इसे सार्व भाषा की राष्ट्र भाषा कहा है। कुछ विद्वान इसे बौद्धान प्रदेश की बोली पर आधारित समझे हैं। 'प्राची' का अन्वयन करने के पता चलता है, कि 'प्राची' में लोगों की बोलियों और साहित्यिक व्यवस्था का सम्मिश्रण है। निम्न प्राची का उद्भव किसी ऐसी बोली के हुआ होगा, जो संस्कृत की साहित्यिकता के काल में 'मध्य देश' के बोली वाली रही होगी।

प्राची का समय ५०० ई० पूर्व के १ ई० पूर्व तक माना जाता है। 'प्राची' का एक स्वरूप निश्चित रूप से नहीं मिलता। अशोक की बर्म लिपियों में जो प्राची प्रकृत मिलती है, उसके कई रूप हैं। इससे यह बात होता है, कि 'प्राची' का कोई निश्चित स्वरूप नहीं मिला हो सके। इसका एक मात्र कारण यह है कि यह अशोक की बर्म-भाषा होने के कारण प्रचार भाषा भी थी। अशोक की सम्पूर्ण बर्म लिपियों में मूल तो 'प्राची' ही है, पर प्रचार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस पर भिन्न-भिन्न प्रादेशिक बोलियों का भी प्रभाव है। इस प्रकार प्राची और विभिन्न बोलियों का वयस्व सम्मिश्रण होता रहा है। इस प्रकार 'प्राची' और प्रादेशिक भाषाओं के सम्मिश्रण से भाषा के भिन्न भिन्न रूपों का मूलन हो गया। कई समय 'प्राकृतों' के नाम से विख्यात है।

प्राकृत रूप भाषा थी। इसके नीचे प्राकृत और केसवा। इसलिए बोद्धे ही हिन्दी में इसकी क्या स्थापित हो गई, और संस्कृत के साथ ही साथ इस। जो प्राची और प्राकृतों में उपलब्ध होने लगा। प्राकृतों में निम्न बर्मों के साथ प्रायः प्राकृत का ही उपलब्ध किया करते थे। प्राकृतों को प्राची और बर्म प्राची में भी स्थान दिया गया। प्राकृतों को सर्व व्यवस्था की दृष्टि पर विद्वानों ने इसके व्यवस्था में एक बाड़े, और संस्कृत की मूर्ति ही प्राकृतों को भी कुछ साहित्य भाषा का स्वरूप प्राप्त हो गया। प्राकृतों का साहित्यिक व्यवस्था प्राची प्राकृत-प्राची में देखने को मिलता है।

संस्कृत भाषाओं का काल १ ई० से ५०० ई० तक है। किन्तु हिन्दी प्राकृत भाषाओं की कला भी उस हिन्दी बर्म व्यवस्था में भाषा का प्रचार था, वह एक विचारार्थी विषय है, निम्नवाक्यक प्राकृतों के प्रथम बर्म व्यवस्था के ऐतिहासिक काल की बोलियों रही होगी। ऐतिहासिक व्यवस्था से जो कुछ प्राप्त हो सका है,

उसके आधार पर कहा जा सकता है, कि उन समय भिन्न भिन्न प्रदेशों के भिन्न भिन्न लेखकों प्रचलित थी, और अनेक प्रदेश की प्राकृत अपनी प्रदेश की बोली से पूर्ण रूप से प्रभावित थी। इन प्रकार विभिन्न लेखकों के प्रचलित होने के कारण प्राकृतों के भी भिन्न-भिन्न रूप थे। प्राकृतों के रूपों के नाम इस प्रकार हैं—पैशाची प्राकृत, शैली प्राकृत, कैकय प्राकृत, चाली नामों के प्रभावित प्राकृत, खरसेली प्राकृत, कर्द सावरी प्राकृत, मागधी प्राकृत, और मगधायी प्राकृत।

पैशाची प्राकृत दार्द्र प्रदेश की भाषा थी। 'पैशाची' का खैराल के जिला शैली में मिलती है। इसका विकास अधिक नहीं हो सका था। 'कैकय' का क्षेत्र पश्चिमी बंगाल था। 'चल' मैथिल और मगधाल के पहाड़ी क्षेत्रों में प्रचलित थी। कुसुम, गौंचाल, पूर्वी बंगाल, और खैरखो उत्तर प्रदेश में खरसेली का क्षेत्र था। मागधी मगध का प्रदेश की भाषा थी। मागधी और खैरखो के बीच की एक और भाषा मिलती है, जिसे कर्द नामसे कहते हैं। इसका विकास तीन भाषों में मिलता है। कर्दोस के जिला शैली की मूल भाषा के रूप से इसी का उपयोग हुआ है। प्राकृत मगधायी मगधाय प्रदेश की भाषा थी।

प्राकृत भाषाओं के विभिन्न साहित्यिक समय थे, जो आज भी प्राचीन भाषों में विद्यमान हैं। व्याकरण के बंकिमों में जिस प्रकार संस्कृत की कठिन नियमों में बीच अचर्यसा दिया था, उसी प्रकार प्राकृत भाषाओं का और होने पर विद्वानों ने उन्हें भी नियमों में बाँध दिया। इसका परिणाम यह हुआ, कि कुछ दिनों के पश्चात् साहित्यिक प्राकृतें सर्व आचार्य की भाषा के तुल्य हो गईं। इस प्रकार एक ही वह प्राकृत भाषाएँ हुईं, जिसका उपयोग केवल विद्वान और पंडित किया करते थे, और दूसरी प्रकार की प्राकृतें वे हुईं, जिसका व्यवहार सर्व आचार्य में होता था, वह प्राकृतें साहित्यिक प्राकृतों का विकास हुआ संभव थी। कलः विद्वानों ने उन्हें अचर्यसा की संज्ञा दी। व्याकरण के कठिन नियमों में बाँधने होने के कारण प्राकृत भाषाओं के विकास की गति मन्द पड़ गई, और बोझी हो दिनों में वे मूल प्राय हो गईं। अचर्यसा भाषाओं के साथ व्यवहार की शक्ति थी; कलः और-वगैरे उनका विकास होने लगा। प्राकृत भाषाओं के द्वारा से अचर्यसा भाषाओं की और भी अधिक वृद्धि प्राप्त हुआ, और बोझी हो दिनों में उनकी व्यवस्था स्थापित हो गई।

अचर्यसा भाषाओं का कल ५०० ई० से १००० ई० माना जाता है। प्राकृत भाषाओं के मूल प्राय होने के पश्चात् अचर्यसा भाषाओं का भी साहित्य के क्षेत्र में प्रयोग होने लगा। इससे अन्वेद नहीं, कि प्राकृत भाषाओं की मूर्ति ही अचर्यसा की साहित्यिक बोलियों के प्रचलित होनी, और उनके भी विभिन्न समय होने, क्योंकि पुनः-पुनः प्राकृतों से पुनः-पुनः अचर्यसाओं का जन्म भी हुआ है, या व्याकरण के बंकिमों और विद्वानों ने साहित्यिक अचर्यसाओं को केवल तीन ही भाषों में विभक्त किया है, जिन्हें नाम इस प्रकार हैं—मागध, काचिक और अचर्यसा। 'मागध' मुख्यतः में मागध प्राकृतों की भाषा थी। कुछ लोगों का मत है, कि मागधी कर्दोस का

नाम 'नागर' के ही नाम पर रक्खा गया है। 'हेमचन्द्र' ने इसके व्याकरण की रचना की है। हेमचन्द्र के मतानुसार 'नागर' अपभ्रंश का जन्म शौरसेनी प्राकृत से हुआ था। ब्राह्म सिंह प्रदेश की भाषा थी। 'उपनागर' ब्राह्म और 'नागर' के बीच की भाषा थी, जिसका क्षेत्र दक्षिणी वज्जराज और पश्चिमी राजस्थान था।

अपभ्रंश भाषाओं से ही भारत की आधुनिक भाषाओं का जन्म हुआ है। भारत की आधुनिक भाषाओं के संबंध में हम आगे प्रकाश करेंगे; यहाँ तो हम पुनः प्राचीन भाषाओं के वर्गीकरण का एक चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। भारत की प्राचीन भाषाओं का जो क्रमिक उत्पत्ति ऊपर हो चुका है, सुविधा और सरलता के लिए उसे हम तीन भागों में इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं:—

क—प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल।

[१५०० ई० पूर्व से ५०० ई० पूर्व तक]

यह वह काल है, जिसमें श्रुतवेद की प्राचीन संस्कृत, और पाणिनि के संस्कृत का प्रचार था।

ख—मध्य कालीन आर्य भाषा काल।

[५०० ई० पूर्व से १००० ई०]

मध्य काल के भी तीन भाग किए जा सकते हैं:—

प्रथम काल—५०० ई० पूर्व से १ ई० पूर्व।

द्वितीय काल—१ ई० पूर्व से ५०० ई०।

तृतीय काल—५०० ई० से १००० ई०।

प्रथम काल में असौक्त की बोली और प्राकृत का प्रचार था। द्वितीय काल साहित्यिक प्राकृतों का युग था। तृतीय काल को अपभ्रंश काल कहते हैं।

ग—आधुनिक आर्य भाषा काल।

[१६०० ई० से आज तक]

इस काल के अन्तर्गत वे आधुनिक भाषाएँ हैं, जो आज भारतवर्ष में बोली जाती हैं, और जिनका जन्म अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है।

हिन्दी की जन्म-प्रसूता—शौरसेनी

आधुनिक भारतीय भाषाओं का जन्म अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है। अपभ्रंश शौरसेनी हिन्दी की जन्म दात्री है। अपभ्रंश भाषाओं में शौरसेनी का संस्कृत से अधिक निकटतम संबंध है। यही कारण है, कि हिन्दी संस्कृत की भी पुत्री नहीं आर्यों का जन्म है। शौरसेनी किछ प्रदेश की भाषा थी, और उसका मूल स्थान संस्कृत से अधिक निकटतम संबंध नहीं था—यह जानने के लिए हमें आर्यों के आदि इतिहास पर ध्यान देना होगा। क्योंकि जब तक हम आर्यों के पारमिक इतिहास पर ध्यान न देंगे, शौरसेनी का बिच स्पष्ट न हो सकेगा।

आज कल अधिकांश लोग इसी बात को मानते हैं, कि भारतवर्ष में आर्यों का आगमन बाहर से हुआ। क्योंकि इस मत के भी बहुत से लोग हैं, कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आये, बल्कि भारतवर्ष में ही रहते थे। आर्य यदि भारतवर्ष में बाहर से आए, तो उनका मूल स्थान कहाँ था, इस संबंध में विद्वानों में अधिक मतभेद है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुसार आर्यों का आदि स्थान हिन्दुस्तान है। लोकामान्द तिलक ने मध्य के किछ नदी प्रदेशों को आर्यों का मूल स्थान माना है। आग्नेय-हिन्दुस्तान के लेखक ने 'सरस्वती' नदी के तटवर्ती स्थानों में आर्यों के प्राचीन निवास-स्थान की बात का उल्लेख किया है। यूरोपीय विद्वान आर्यों का मूल स्थान बाल्टिक समुद्र के आस पास मानते हैं। जो ही, यह निश्चय है, कि आर्यों के मूल स्थान के संबंध में, अभी तक विश्व के विद्वान आपस में एक मत नहीं हो सके हैं। किन्तु आज कल यूरोपीय विद्वानों का ही मत अधिक प्रचलित है। अतः हम भी यहाँ उसी मत को आधार मानकर आगे बढ़ते हैं।

यूरोपीय विद्वानों के मतानुसार, प्राचीन काल में आर्य पूर्व यूरोप में बाल्टिक समुद्र के तटीयवर्ती स्थानों में निवास करते थे। यहाँ संस्कृत आर्यों की भाषा एक ही रही होगी। किन्तु उसका स्वरूप क्या था, इसका पता कुछ भी नहीं चलता। यहाँ जब आर्यों की संख्या बढ़ी, तो एक दल तो यूरोप की ओर गया,

और दूसरा भाग तथा ईशान की ओर फैलकर हुआ। कुछ लोग वास्तविक समुद्र के समीपवर्ती स्थानों में ही यह सब होने, और कुछ उसके आस पास फैल कर के भी सब यह होने। इस प्रकार आधुनिकताओं के अभिभूत होकर ज्ञान विभिन्न स्थितियों में विस्तार पाया, और उनकी भाषा बना संस्कृति में नूतनता उत्पन्न होम है।

ज्ञानों का जो दल ईशान और भारत की ओर फैलकर हुआ, वह कुछ दिनों तो सब ईशान में एक ही साथ रहा। इसके बाद-बाद एक दल तो ईशान में रह गया, और दूसरा भारत की ओर फैलकर हुआ, और भारत में सागर-वंशज के इतिहासों में सब रहा। आर्यभट्ट की आचार्यों का नियोजन, इन्हीं ज्ञानों के द्वारा हुआ है। यह ज्ञान सब भारतवर्ष में आया तो इनकी यही भाषा थी, जो ईशानी दल की थी। किन्तु भारत वर्ष में ज्ञानों का ईशानी ज्ञानों और भारतीय ज्ञानों की भाषा में परिवर्तन सब रहा। फिर भी दोनों की भाषाओं में बहुत कुछ साम्य रहित्योपर होता है। वह 'साम्य' ईशानी की प्राचीन यमों तुल्यक 'अवस्था' और ज्ञानों के प्राचीन यमों ज्ञान 'आर्यभट्ट' की आचार्यों में सब रूप से दिखाने पड़ता है।

ईशान के ज्ञानों का भारतवर्ष में आगमन एक ही बार में न हुआ होता। ऐतिहासिक इनकी के अनुसार ज्ञान भारतवर्ष में दो बार ही समूहों में आया। आर्यभट्ट काय देश की आचार्यों से भी नहीं बात प्रगत होती है। जयन्त बार जो ज्ञान भारतवर्ष में आया है, वे समुद्र की वाटों के मार्गों से आये हैं, और वंशज के ईशान में सब रहा है। किन्तु दूसरी बार ज्ञानों की भी ऐसी भारतवर्ष में आई, वह भिन्नभिन्न और भिन्नभिन्न के परिवर्तन पहली मार्गों से भारतवर्ष में पहुँची, और वास्तविक की ओर उत्तरी और उत्तरवर्ती नदी के समीपवर्ती स्थानों में रह गई। यद्यपि इन नवगत ज्ञानों की भाषा और संस्कृति पूर्वाग्रह ज्ञानों की भाषा और संस्कृति से भिन्न थी; फिर भी वह बहुत ही पके हुए, कि एक किन्तु प्रवेश में ज्ञानों की पड़ी सब गई। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसी प्रदेश की 'मध्य देश' की संज्ञा दी गई है। पहले मध्य देश में कुश, पञ्चाल, और हिमाचल के प्रदेश सम्मिलित थे। किन्तु धीरे धीरे इसकी सीमा हिमाचल और हिन्द के बीच की समुद्री भूमि तक फैल गई।

यही वह मध्य देश है, जहाँ 'संस्कृत' का वास्तविक-वैयक्तिक हुआ था। इसी मध्य देश में एक हीरामेनी समुद्र का जन्म हुआ था, जो हिन्दी की रूप-रचना हीरामेनी आती है। 'वाक्य' और 'वाक्य' की भाषा के रूप में पहले से ही उत्पन्न में विद्यमान थी। समुद्र का आधुनिक के नियमों में अधिक उपलब्ध हो गई तो 'वाक्य' का विकास कई रूपों में हुआ, जिनमें 'वाक्य' और 'सहित्यिक' 'वाक्य' मुख्य है। साहित्यिक वाक्य के मुख्य रूप से आर्यभट्ट ज्ञानों आते हैं— महा-रामेश्वर, हीरामेनी, वाक्य, और ज्ञानों भाषा, कहा जाता है, कि महा-रामेश्वर ज्ञानों ज्ञानों की ओर वाक्य की भाषा थी। 'वाक्य' ज्ञानों वाक्यवाक्य की सम्पूर्णता

के आधार पर ही 'शब्द' का बोधक माना जाता है। शौरसेनी मण्यदेश की भाषा थी। शौरसेनी के संबंध में यह कहा जाता है कि इसका व्यवसाय में अधिक प्रचार था। प्राचीन काल में व्यवसाय को 'शूरसेन देश' भी कहते थे। शूरसेनदेश की भाषा होने ही के कारण इसका नाम 'शौरसेनी' पड़ा। शौरसेनी प्राकृत से ही अपभ्रंश शौरसेनी का नाम हुआ, जो हिन्दी की जन्म दात्री है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

भारतवर्ष की आधुनिक-आर्य भाषाएँ वे हैं, जो इस समय भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों और स्थानों में बोली जाती हैं। इन भाषाओं में कुछ ऐसी भाषाएँ हैं, जो अधिक महत्व पूर्ण हैं। जैसे:—हिन्दी, गुजराती, बंगाली, और मराठी इत्यादि। इन सभी भाषाओं का जन्म अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है। इन ऐसी भाषाओं में कुछ भाषाएँ तो ऐसी हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध अपभ्रंश भाषाओं से है और कुछ ऐसी हैं, जो अपभ्रंश भाषाओं से उत्पन्न आधुनिक भाषाओं से पैदा हुई हैं। जैसे हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जिसका उत्पन्न औरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। वर गुजराती और राजस्थानी आदि ऐसी भाषाएँ हैं, जो हिन्दी से सम्बन्ध रखती हैं। इस प्रकार की कई बोलियाँ और उपभाषाएँ भी पाई जाती हैं, जो अपभ्रंशीय रूप मुख्य ऐसी भाषाओं से निकली हुई हैं।

आधुनिक भाषाओं का साल १००० ई० से आरंभ होता है। आधुनिक भाषाओं के जन्म के पूर्व साहित्य के क्षेत्र में अपभ्रंश भाषाओं की ही मान्यता थी। आधुनिक भाषाएँ उद्भवित होने के बरबाद, धीरे-धीरे विकसित हुई हैं। आधुनिक भाषाओं के जन्म के बरबाद भी साहित्य-जगत में बराबर अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग होता रहा है। इतिहास के पृष्ठों से ज्ञात होता है, कि अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग चौदहवीं शताब्दी तक होता रहा है। अपभ्रंश भाषाओं का यही अंतिम काल था। इस समय की अपभ्रंश भाषाएँ निम्नीय ही ज्ञात होती हैं। क्योंकि इसके पूर्व तेरहवीं शताब्दी के आदि में ही आधुनिक भाषाएँ विकास के क्षेत्र में आ चुकी थीं, और उनका साहित्य जगत में प्रयोग होने लगा था। इस प्रकार आधुनिक भाषाओं के पूर्ण विकास-क्षेत्र में आने पर अपभ्रंश भाषाओं का खोप हो गया, और आज तो केवल प्राचीन ग्रन्थों के पृष्ठों में मिलता है।

भारत की आधुनिक भाषाएँ प्राचीन आर्य भाषा से ही निकली हुई हैं। आर्यों की प्राचीन भाषा के दो रूप प्राप्त होते हैं, जिनका उत्प्रेषण इनके पहले किया जा प्रियर्सन का सुका है। डाक्टर प्रियर्सन ने भारत की प्राचीन भाषा के वर्गीकरण का सुझाव दिया, जिनका आधुनिक भाषाओं के व्याकरण और उनके उच्चारण को दृष्टि में रखकर आधुनिक भाषाओं की तीन भागों में विभक्त किया है—अंतरंग, बहिरंग, और मध्यमर्ती। उन्होंने अपने भागों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है:—

[क] बहिरंग—

१—वहिवमोल्हो वर्ग—१ लईदा, २—सिमी । रहिवी वर्ग—३ मराठी ।

तुवी वर्ग—४ भावामी, ५ बहाली, ६ उदिया, ७ सिद्धी ।

[४] मध्यमो—

मध्यमो वर्ग—८ पूर्वी हिन्दी ।

[५] उत्तरम—

उत्तरमो—९ उत्तरमो हिन्दी, १० बँवारी, ११ तुमगली, १२ मीजी, १३ भगत देवी, १४ राकवाली । बहाली वर्ग—१५ पूर्वी बहाली, अथवा मैवाली १६ देवदगी बहाली, १७ परिचमी बहाली ।

उपरोक्त श्रेणियों की दृष्टि में बोलचाल और बहिरुक्त भाषों की भाषाओं में ऐसी समानताएँ पाई जाती हैं, जिनसे दोनों ही भाषों की भाषाओं का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से प्रकट-प्रकट होकर सामने आ जाता है । उदाहरण के लिए 'व' अक्षर की शिवा का भ्रमता है । 'व' का उच्चारण दंत से किया जाता है । 'व'उच्चारण' भाषा की भाषाओं में 'व' का उच्चारण करने में सामान्य दृष्टि से ही किया जाता है, पर बहिरुक्त भाषा की भाषाओं में 'व' की उच्चारण और बहिरुक्त भाषाओं में 'व' का उच्चारण 'व' और 'व' की शक्ति बिना जाता है । 'वहिरुक्त' भाषाओं में 'व' की 'ह' कर देने की भी विधि है । 'बँवारी' और सिमी के, जो बहिरुक्त भाषाएँ हैं, तथा 'मोह' की 'मोह' बोलते हैं । 'मराठी' में 'व' 'व' ही जाता है । इसी प्रकार ईश्वर में भी उच्चारण की समानता पाई जाती है । परिचमीकर दंत की भाषाओं में 'व' का उच्चारण 'ह' के रूप में किया जाता है ।

इस सम्बन्ध में यह समझ उपस्थित किया जाता है, कि बहिरुक्त भाषाएँ उत्तरम भाषाओं से अधिक निकट हैं । क्योंकि भाषा विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार उत्तरम भाषाएँ इस समय विद्यमानता में हैं, जो भाषा की प्राथमिक अवस्था नहीं होती हैं, किन्तु बहिरुक्त भाषाएँ लोपतावस्था में हैं, जो भाषा के विकास की अवस्था नहीं होती हैं । इससे स्पष्ट यह प्रमाण भी दिया जाता है, कि हिन्दी में सम्बन्धकारक 'व' 'व' और 'व' के चिह्नों से बनता है, जिसका रीति से उत्तरम सम्बन्ध होता है, किन्तु बहाली में भी बहिरुक्त भाषा की भाषा है, सम्बन्धकारक 'व' तथा कर बनाया जाता है, जो रीति का ही एक भाग बन जाता है । इसी प्रकार दोनों की शिवाओं में भी समान है । बहिरुक्त भाषाओं में मध्यमोक्त शिवाओं के उच्चारण रूपों के ही उनके प्रकट और भजन का पैदा प्रकट हो जाता है, किन्तु उत्तरम भाषाओं में तभी प्रकटों में उन शिवाओं का रूप एक समान होता है ।

किन्तु निम्नलिखित के इस वर्गीकरण से उत्तरम बहिरुक्त भाषा नहीं है । उन्होंने मध्यम भाषाओं का सम्बन्ध एक मध्यम दृष्टि से किया है, और उनका वर्गीकरण भी 'मराठी' का एक दूसरे रूप पर है । मराठी मध्यम में अपना वर्गीकरण वर्गीकरण प्रयोग के आधार पर किया है, जो इस प्रकार है—

५—उड़ीया (उड़ीसी), मिथी, २ पञ्जाबी, ३ लहिया ।

६—उड़ीया (उड़ियाँ)—४ गुजराती, ५ राजस्थानी ।

७—सब देशों (सब भा.)—६ उड़ियाँ हिन्दी ।

८—सब (सब)—७ पूर्वी हिन्दी, ८ बिहारी, ९ उड़िया, १० मैसूर, ११ आसामी ।

९—उड़ियाँ—(उड़ियाँ) १२ उड़ीसी ।

पञ्जाबी भाषाओं के सम्बन्ध में हमसे पहले चर्चा का मत है, कि पञ्जाबी भाषाएँ मैसूर, उड़ीया का मत से निकली हुई हैं । वे पञ्जाबी भाषाओं की राजस्थानी का सम्बन्ध मानते हैं । उनका मत है, कि पञ्जाबी भाषाओं का समीकरण राजस्थानी के साथ नहीं किया जा सकता है, बल्कि उन्होंने पञ्जाबी भाषाओं का समीकरण राजस्थानी से करना ही श्रेष्ठ माना है ।

हिन्दी हिंद में सिद्ध नहीं कि दोनों भाषाएँ पर बोलती जाती हैं, इसके बोलने वालों में अधिकतर मुसलमान हैं, बिनाबी संख्या ४० लाख के लगभग होती है । इसके सामान्य परि-
 चय—बिन्ही
 बोलने वालों में मुसलमानों की संख्या अधिक है, उड़िया
 चय—बिन्ही
 इसमें पञ्जाबी उड़ीसी का समीकरण राजस्थानी के साथ होता है ।
 इसकी हिन्दी की पञ्जाबी बिन्ही का ही एक निम्न स्वरूप है । ऐतिहासिक भाषाओं में यह एक पञ्जाबी और पञ्जाबी की गुण गुणों बिन्ही के बिन्ही जाती है ।

हिन्दी की बीच बिन्हीवादी हैं, बिन्ही नाम इस प्रकार है—बिन्हीवादी, बिन्हीवादी, लारी, लारी, और पञ्जाबी । इनमें बिन्हीवादी का मुख्य स्थान है । इसका समीकरण उड़िया क्षेत्र में होता है । बिन्ही के 'बिन्ही' बहुत कम मात्रा में है । पञ्जाबी पञ्जाबी क्षेत्र में बोलती जाती है, जो हिन्दी के उड़िया में है ।

लहिया का क्षेत्र उड़ियाई पञ्जाबी है, जो अब उड़ियाई के समीकरण है । यह लहिया, पञ्जाबी, हिन्द का, और बिन्हीवादी बिन्ही नामों से भी पुकारी जाती है, इसे बोलने लहिया
 बोलों की संख्या ६५ लाख के लगभग बताई जाती है । यह 'लहिया' और मैसूरों से अधिक प्रभावित है । आज बिन्ही प्रदेश में लहिया बोलती जाती है, पञ्जाबी पञ्जाबी में लहिया की केवल दोष कहते हैं, और लहिया बोलती पञ्जाबी तथा केवल 'लहिया' का विकास हुआ है । 'लहिया' में उड़िया का पूर्णतः अभाव है । अन्ततः में यह एक देशी भाषा है, बिन्ही बिन्हीवादी नामों की प्रकट करने की लहिया नहीं है ।

लहिया की पञ्जा बिन्हीवादी हैं, बिन्ही नाम इस प्रकार है—बिन्हीवादी लहिया, उड़िया लहिया, उड़ीसी पूर्वी लहिया, और उड़ीसी बिन्हीवादी लहिया । बिन्हीवादी अधिक उड़ियाई मानी जाती है । यह पञ्जाबी की पञ्जाबी के उड़िया प्रदेश में बोलती जाती है । उड़िया लहिया की गुणगुणों की कहते हैं । उड़िया समीकरण राजस्थानी के साथ बात होता है । उड़ीसी पूर्वी लहिया की बोलती की कहते हैं । उड़िया बिन्हीवादी पञ्जाबी के नाम

से भी निकलता है। यह उल्लेख में इतना जितने उस खोजी जाती है। 'हर्दिया' की लिपि लंबा है।

'पंजाबी' उस भाषा को कहते हैं, जो समूचे पंजाब में बोली जाती है। पंजाब में बोली जाने ली के कारण इसका पंजाबी नाम प्रसिद्ध है। आज कल इसका एक मात्र प्रचारायी साहित्यालय के सम्बन्धित है, जिसे पूर्वी भाग कहते हैं। पंजाब के एक भाग में हिन्दी बोली जाती है, जिसे पश्चिमी भाग कहते हैं। 'हर्दिया' की लिपि ही पंजाबी पर भी 'दर', और 'पेसाबी' का अधिक प्रभाव है। यही कारण है, कि पंजाबी में 'हर्दिया' कुछ भिन्न कई है, और प्रत्येक अलग-अलग सट्टन मान बढ़ता है। कुछ पंजाबी समुदाय के साथ साथ बोली जाती है। इसे बोलीने वालों की संख्या एक करोड़ उपरानित लाख के लगभग है।

'हर्दिया' की 'लंका' लिपि का ही प्रयोग पंजाबी में किया जाता है, जो 'महाकवी' और 'कादर' लिपि में बहुत मिलती-जुलती है। किन्तु तुलसी ने इस लिपि का सुधार किया था। यही सुधरी हुई लिपि आज तुलसी की नाम से प्रसिद्ध है।

कुछ पंजाबी में वैदिक संस्कृत के शब्द प्राप्त होते हैं। पर जो पंजाबी मिश्रित है, उस पर उर्दू का प्रभाव है। इसका एक मात्र कारण यह है, कि उर्दू से प्रभावित पंजाबी के क्षेत्र में मुसलमानों की संख्या अधिक है। पंजाबी में थोड़ा साहित्य भी पाया जाता है।

पंजाबी की विभाषा 'बोली' कई विभाषा और समूह जितने में बोली जाती है। 'बोली' की लिपि का नाम 'लम्बी' है, जिसे उल्टी भी कहते हैं।

तुलसी का क्षेत्र तुलसीय भाषा है। यही, अर्थात्, और साहित्यिक ही विभाषा में ही तुलसीय भाषा प्रयोग होता है। बहुत से लोग भी तुलसीय बोली हैं, और तुलसीय

विभाषा के नाम-बोली में उल्लेख प्रयोग करते हैं। यही इसका ही क्षेत्र तुलसीय विभाषा को जाता है। इसे बोलीने वालों की संख्या एक करोड़ की लाख के लगभग बताई जाती है।

'तुलसीय' बोली, और साथ देरी-बोलियों से अधिक प्रभावित है। इसका साहित्य भी अच्छा कुछ का कुछ है। यही 'तुलसीय' 'देव भाषा' लिपि में ही लिखी जाती थी, किन्तु आज कल इसकी लिपि कभी से मिलती-जुलती है, जो देव भाषा का विकृत रूप मान बढ़ती है।

'राजस्थानी' उस भाषा को कहते हैं, जो राजस्थान में बोली जाती है। 'राजस्थानी' का क्षेत्र पंजाबी के दक्षिण में बढ़ता है। 'राजस्थानी' का अपना कोई अलग साहित्य

साहित्य नहीं है। राजस्थानी को हिन्दी की एक उपभाषा माननी चाहिए। आज की राजस्थानी कल्प देव की उस प्राचीन भाषा का ही एक विकसित रूप है, जो दक्षिण-पश्चिम में प्रचलित थी, और जिसे हिन्दी यह कहते हैं। राजस्थानी का सट्टन हिन्दी से ही हुआ है। तुलसीय उल्लेख विभाषा की लिपि

बोझी है। वही कारण है, कि राजस्थानी और गुजराती में अधिक संस्कृत है। क्योंकि दोनों ही हिन्दी की विभाषाएँ हैं। किन्तु आज कल दोनों में अधिक भेद हो गया है, जिससे दोनों का सम्बन्ध-सम्बन्ध संतुष्ट साहित्य हो गया है। आज कल दोनों में सर्वत्र एक के साहित्य की रचना हो रही है। पर राजस्थानी का साहित्यिक क्षेत्र आज भी हिन्दी की ही भाँति है। इसका प्राचीन साहित्य 'विष्णु' और पुरानी कालावली में है।

राजस्थानी की कई विभाषाएँ हैं, जिनके नाम मेवाती, मारवा, मारवाड़ी, और बज्जरी आदि हैं। राजस्थानी की ही शक्ति है—मारवाड़ी और देवनागरी। दैनिक काम-काजी में मारवाड़ी लिपि का व्यवहार होता है। कुछमें और समाचार पत्र इत्यादि देवनागरी लिपि में छपते हैं।

पश्चिमी हिन्दी उस भाषा को कहते हैं, जो मेरठ और बिजनौर के आस-पास बोली जाती है। इसके दो स्वरूप हैं। एक स्वरूप की यह है, जिसका साहित्यिक हिन्दी के नाम से सम्बन्ध स्वीकृत हो रहा है, और दूसरा स्वरूप 'उर्दू' के नाम से विख्यात है।

इसमें कई शैलियाँ भी सम्मिलित हैं, जिनमें ब्रजभाषा, अवधी, बँगाल, कन्नड़ी, और बुन्देली इत्यादि का प्रमुख स्थान है। आज कल कहीं कहीं का साहित्य-काल में पश्चिमी हिन्दी को अपना है, किसी समय ब्रजभाषा का भी बड़ी स्थान था। अवधी का प्रमुख भी कुछ दिनों तक हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में था। बँगाल, कन्नड़ी, और बुन्देली इत्यादि क्षेत्रों का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है। उर्दू कुलस्थानी की भाषा है, और कुलस्थानी में ही उसका प्रचार भी है।

पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र उसके नाम से ही समझ में आता है, अर्थात् वह उत्तर प्रदेश की भाषा है, जो पश्चिमी हिन्दी के पूर्व में बहता है। इसकी सीमा 'विहारी' से मिली हुई है।

पूर्वी हिन्दी की कारण है, कि कुछ लोग इसे 'अर्द्धविहारी' भी कहते हैं। वह कुछ भाषा में पश्चिमी हिन्दी से मिलती है, और कुछ भाषा में विहारी से; इसलिए कुछ लोग इसे विहारी और पश्चिमी हिन्दी के बीच की भाषा भी कहते हैं। इसकी तीन विभाषाएँ हैं—अवधी, भोजपुरी, और कुशीनपुरी। अवधी वह भाषा है, जो कदम्ब प्रांत में बोली है। 'अवध' के नाम पर ही इसका नाम 'अवधी' पड़ा है। प्राचीन काल में अवध का नाम कोशल था। इसलिए प्राचीन काल में 'अवधी' की 'कोशली' कहते थे। 'देवनागरी' अवधी की लिपि है। 'लिपि' के लिए कभी-कभी 'देवी' का भी प्रयोग किया जाता है। कोशली कुशीनपुरी की भी अवधी में ही अभिमानपरिग्रहण की रचना की है।

'विहारी' के यह लोग सोचते हैं, कि वह बिहार प्रांत की भाषा है। इसमें संदेह नहीं, कि 'विहारी' मुख्य रूप से बिहार के उस सुनि-प्रांत की भाषा है, जो कभी विहारी नामक अवध-प्रांत का क्षेत्र था, पर 'विहारी' का बहुत कुछ सम्बन्ध उत्तर प्रदेश से भी है। इसका क्षेत्र उत्तर प्रदेश में गोरखपुर-बनारस सम्मिलित

में दूर तक फैला हुआ है। बिहारी भाषा में छोटा भागपुर में भी इसका प्रयोग होता है।

'बिहारी' की उत्पत्ति भाषा-अवस्था से है। यही कारण है, कि इसका मैगला, उड़िया, और कन्नड़ी से अधिक परिचित सम्बन्ध है। क्योंकि इन भाषाओं की उत्पत्ति भी भाषा-अवस्था से ही हुई है। बिहारी की तीन विभाधाएँ हैं—मैथिली, मगही, और मोरभुयी। मैथिली भाषा के उत्तर में दरभंगा के समीपवर्ती स्थानों में बोली जाती है। मोरभुयी मोरभंगपुर अथवा समिहपुरी, और पञ्चजन नामक भिन्ने में व्यवहृत होती है। मगही का केन्द्र नगदा और नवा है। 'बिहारी' की इन तीनों विभाधाओं में पारस्परिक सम्बन्ध है। 'मगही' और 'मैथिली' में परस्पर समानता है। पर मोरभुयी इन दोनों से अधिक भिन्न है। मोरभुयी की विभक्त की देखा जाये तो पटली कोटेश्वर उसे 'बिहारी' के सम्बन्ध में नहीं मानते। इसका कारण है, कि मोरभुयी का अपना पुष्प साहित्य है।

बिहारी में तीन शिथिलों का प्रयोग किया जाता है—देवनागरी, देवी, और मैथिली। देवनागरी का प्रयोग मुख्यतः सम्मन्धी भाषों में किया जाता है। साधारण रूप से शिथिल-बढ़ने के समय में 'देवी' का प्रयोग किया जाता है। मैथिली साधारण 'मैथिली' का व्यवहार करते हैं।

साहित्यिक भाषाओं में कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जो पहाड़ी भाषों में बोली जाती हैं। इन भाषाओं की पहाड़ी भाषाएँ होती हैं। पहाड़ी भाषाएँ पञ्जाबियों के अधिक पहाड़ी भिन्नता गुण होती हैं। इनमें साहित्य का सम्बन्ध है। साहित्य के नाम पर इनमें केवल नाम गीत, और लोक-गीत पाए जाते हैं। सामान्य बिहारी पहाड़ी भाषाएँ कई जाती हैं, उनमें इन तीन भाषों में विभक्त कर सकते हैं—केरवाली पहाड़ी भाषा, परिचामी पहाड़ी भाषा, और पूर्वी पहाड़ी भाषा। केरवाली पहाड़ी कुमाऊँ और गढ़वाल के जिलों में बोली जाती है। 'कुमाऊँ' और 'गढ़वाली' इससे ही विभाधाएँ हैं। यह देवनागरी लिपियों में लिखी जाती है। परिचामी पहाड़ी का क्षेत्र बिहारी है। इसमें कई शिथिलों सम्मिलित हैं। इसकी विविध शिथिलों उत्तर प्रदेश में शिथिल विभाजन, विभक्त पहाड़ी, और कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्रों में बोली हुई हैं। इससे कई विभाधाएँ हैं, जिनमें कोलकाता, कुमाँ, और पञ्जाबी साहित्य सम्बन्ध हैं। पूर्वी पहाड़ी केवल में बोली जाती है। मैगला में बोली जाने के कारण इसे लोग 'मैगली' भी कहते हैं। कुछ लोग इसे पञ्जाबी, कश्मीर कश्मीर के नाम से भी बुलाते हैं। यह नामी लिपियों में लिखी जाती है। इसमें नये ढंग का साहित्य भी पाया जाता है।

उड़िया उस भाषा की कहते हैं, जो आज तक उड़ीसा में बोली जाती है। भारतीय भाषा में उड़ीसा 'उड्डाल' के नाम से अधिक था। उन दिनों उड़िया का नाम उड़िया या 'उड्डाली' अथवा सीढ़ी था। आज तक अधिकतर उड़िया नवीन उड़िया नाम ही सम्मिलित है। उड़िया में मगही, मैगला, और कोलकाता

बंगाली भाषा के सम्य अर्थिक स्थिति हैं। इसका एक मात्र कारण राजनीति है। बंगाल के विभाजन के कारण मुसलमानों का राज्य बंगाल में 'उद्दिष्ट' बंगाली के अधिक प्रभावित हो। इसलिए उसमें बंगाली के सम्य अधिक का वार है। बंगाली राज्य का नाम में उसमें बंगाली के सम्य प्रवेश कर गए। बांग्लादेश में उद्दिष्ट पर हीलों का राज्य का। बांग्लादेश के भीलों राजाओं में भी कुछ दिनों तक उद्दिष्ट पर राज्य किया का। इसलिए उद्दिष्ट के भीलों, और बंगाली के सम्य भी जा गए हैं।

उद्दिष्ट की स्थिति बंगाली के विकास में हुई है, पर वह अधिक बर्तन है। उद्दिष्ट में सम्य अधिक की अधिकता है। उद्दिष्ट और बंगाली के सम्बन्ध में अधिक सादर्य भाषा जाता है। एक सादर्य को देख करते बंगाली के कुछ विद्वान उद्दिष्ट को बंगाली की पुत्री मानते हैं। पर वह बात सम्य हीन मान्य होती है, क्योंकि इतिहास में वह बात प्रमाणित है, कि उद्दिष्ट और बंगाली दोनों का ही सम्य मान्यता कावर्तन से हुआ है।

बंगाली उस भाषा की कहते हैं, जो बंगाल में बोली जाती है। इसके दो भाग हैं—पूर्वी, और पश्चिमी। पूर्वी बंगाली जिस क्षेत्र में बोली जाती है, वह आज तक बंगाली राष्ट्रियता के सम्बन्ध में। पश्चिमी बंगाली बंगाली नदी के उत्तरी स्थानों में बोली जाती है। सम्य पूर्वी और पश्चिमी—दोनों में सम्य है, पर दोनों में ही बंगाल के सम्य सम्य अधिक परिवर्तन से गए होते हैं। साहित्य क्षेत्र में आज तक जिस बंगाली का प्रयोग होता है, वह पश्चिमी बंगाली का ही एक विकसित स्वरूप है। 'बंगाली' स्थिति केम भाषा का ही सम्बन्ध है, पर उच्चारण में सम्य है। 'बंगाली' में 'क' का 'ख' और 'ग' का 'घ' हो जाता है। बंगाली में साहित्य अधिक प्रयोग करने का से गए जाता है।

'बंगाली' की आत्मा भी कहते हैं। इसके नाम से जात होता है, कि वह आत्मा उद्दिष्ट की मता है। आत्मा के विचारों से आत्मिया कहते हैं। 'आत्मा' और 'बंगाली' के सम्बन्ध में सादर्य है, इसलिए 'उद्दिष्ट' की स्थिति आत्मा की भी कुछ क्षेत्र 'बंगाली' की पुत्री मानते हैं, पर उद्दिष्ट की स्थिति आत्मा का भी उही मान्यता का से सम्य हुआ है, जिससे बंगाली उद्भवित हुई है। अतः आत्मा और बंगाली का सम्बन्ध सम्बन्ध मजबूती का है। आत्मा से बंगाली का साहित्य अधिक उच्च है। 'आत्मा' में भारतीय ऐतिहासिक सम्य अधिक पाये जाते हैं।

बंगाली वह भाषा है, जो मध्यस्थ भाषा में बोली जाती है। पश्चिम पूर्वी और उत्तरी भाषा बंगाली जाने वाली 'बंगाली' ही ऐतिहासिक भाषा के रूप में विकसित बंगाली है, पर उसका क्षेत्र सम्य अंत के पूर्वी क्षेत्र उसके आठ पाठ के स्थान, पश्चिम, तथा सम्य अंत के दक्षिण स्थित हैं। बंगाली मध्यस्थता कावर्तन से विकसित हुई है। इसकी तीन विभाजन हैं—बंगाली, बंगाली, और बंगाली। बंगाली

पूना के आस पास बोली जाती है । यह सबसे अधिक टकसाली समझी जाती है । इसी को साहित्यिक भाषा होने का गौरव प्राप्त है । 'कोकणी' दक्षिण कोकण प्रदेश में बोली जाती है । 'कराची' करार प्रांत की भाषा है । इनके अतिरिक्त मराठी की एक और बोली है, जिसे 'इल्मी' कहते हैं । यह द्राविड़ मिश्रित है, और बस्तर में बोली जाती है ।

हिन्दी और उसकी उपाधारी

आज हम अपनी राष्ट्र भाषा 'हिन्दी' के लिए जिस 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग करते हैं, उसका जन्म किस प्रकार हुआ है—यहाँ हम इसी बात पर प्रकाश डालेंगे। 'हिन्दी' शब्द संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि को प्राचीन भाषारों की उत्पत्ति है, और इनमें जो प्राचीन ग्रन्थ हैं, उनका अब हम अध्ययन करते हैं, तब कहीं भी 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग नहीं पाते। इतिहास से बात होता है, कि 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग मुसलमानों के आगमन के पश्चात् से होने लगा है। मुसलमानों ने सर्व प्रथम भारतवर्ष के सिन्धु प्रदेश में प्रवेश किया था। 'सिन्धु नदी' और 'सिंधी' आदि संस्कृत के शब्द ही उन्हें पहले बहुत बोलने पड़े थे। निश्चय है कि भारत की ओर से आने वाले मुसलमान 'सिन्धु' और 'सिंधी' का उच्चारण ठीक-ठीक न कर पाए होने। उन्होंने 'स' का उच्चारण 'ह' के रूप में किया। इस प्रकार 'सिन्धु' से 'हिन्द' और 'सिंधी' से 'हिन्दी' शब्द बन गया। भारत में 'हिन्दी' या 'हिन्दी' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। 'हिन्द' का प्रयोग 'भारत' में हिन्दुस्तान के लिए किया गया है, और 'हिन्दी' का प्रयोग उस भाषा के लिए हुआ है, जो हिन्दुस्तान में बोली जाती है। इस प्रकार हिन्दी शब्द के अन्तर्गत वे सभी भाषारों सम्झी जाती थीं, जिनका उस समय हिन्दुस्तान में प्रयोग होता था। किन्तु कालांतर में इसका प्रयोग मध्यदेश की उस भाषा के लिए किया जाने लगा, जो उत्तर भारत के मध्यदेश के हिन्दुओं की मुख्य भाषा थी। आजकल 'हिन्दी' का प्रयोग मध्यदेश की उस साहित्यिक भाषा के लिए ही किया जाता है, जिसका क्षेत्र दूर दूर तक फैला हुआ है।

हिन्दी का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। इसकी सीमा पश्चिम में अटलमेर, उत्तर पश्चिम में खजाला, उत्तर बिमला से लेकर नैपाल के पूर्वी ओर तक के पहाड़ी प्रदेश हिन्दी का पूर्व में भागलपुर, दक्षिण में रायपुर, तथा दक्षिण पश्चिम में लखनौ क्षेत्र तक पहुँचती है। यह हिन्दी की एक प्रतिनिधि सीमा है; वास्तव में बात तो यह है, कि आज हिन्दी का क्षेत्र बहुत दूर तक फैल गया है। आज भारतवर्ष का देश कोई प्रान्त नहीं, जहाँ हिन्दी अपने वास्तविक रूप में बड़ी तिली, और बोली न जाती हो। हिन्दी की कई विभाषारों और बोलियों हैं, जो हिन्दी के मुख्य क्षेत्र में प्रचलित हैं। उनमें जो मुख्य हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—बिहारो, राजस्थानी,

पूर्वी हिन्दी, और बहाली हिन्दी इत्यादि । इन विभाषाओं की भी बोलियाँ हैं, जैसे बिहारी की मोरपुरी, मगही, फैजली, रामगहनी की भागवती, मेवाती, और पूर्वी हिन्दी की खण्डी, बजेली, और कुशीमनड़ी इत्यादि । हिन्दी बोलने वालों की संख्या १२ करोड़ के लगभग बताई जाती है । यह भाषा की यह संख्या बढ़ कर और भी अधिक हो गई है ।

हिन्दी के क्षेत्र में मुख्य रूप से चार भाषाएँ बोलੀ जाती हैं—बिहारी, रामगहनी, मगही, और पूर्वी हिन्दी । कुछ लोग हिन्दी की इन विभाषाओं को सामान्य रूप **हिंदी का क्षेत्र** का इस बात का प्रतिपादन करते हैं, कि हिन्दी केवल उस वर्ग के अर्थ में **सूत्रि** शब्द की भाषा है, जिसे प्राचीन काल में **सम्भ** देश का राजा **जयसिंह** कहते थे । कुछ लोग हिन्दी की विभाषाओं को ही **हिंद** में रख कर **'हिन्दी'** की दो भाषों में भी विभक्त करते हैं—**पश्चिमी हिन्दी** और **पूर्वी हिन्दी** । वे पश्चिमी हिन्दी को ही **'हिन्दी'** मानते हैं । पर इतिहास इसके विपरीत है । इतिहास के यह बात ज्ञात होती है, कि हिन्दी की संसृष्ट विभाषाएँ हिन्दी में समाविष्ट हैं । हमने बयान नहीं, कि अपने समय काल में हिन्दी कन्नड़ की भाषा को, पर उसके परभाव ही उसका क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया । साथ ही उसका साहित्यिक स्वरूप इतना केवलासी है, कि उसकी सभी उपभाषाओं में उसकी मति में अपने की पूर्ण विष्ट है । साथ नवीन अर्थ में हिन्दी का क्षेत्र इन संसृष्ट भाषाओं की भाषा साहित्य, यहाँ उसके निकली हुई उपभाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं ।

हिन्दी की कई उपभाषाएँ हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, रामगहनी, और बहाली इत्यादि । यद्यपि इन विभाषाओं का पश्चिमी हिंदी **समस्त** प्रथम साहित्य है, पर यह पर हिंदी के ही क्षेत्र में पूर्वी हुई है । हिन्दी के साहित्यिक स्वरूप का इन सब पर सर्वत्र साहित्य है । यहाँ इन सब एक करके इनकी विवेचना करेंगे । सर्व प्रथम हम पश्चिमी हिन्दी की लेते हैं । पश्चिमी हिन्दी की तीन विभाषाएँ हैं—**कड़ी बोली**, **गँगा**, **सम्भ**, **कड़ीली**, और **कुदेसी** । कड़ी बोली के तीन रूप मिलते हैं—**उत्तर हिन्दी**, **उर्दू**, और **हिन्दु-गहनी** । अतः कड़ी-बोली के साथ ही साथ इन पर भी विचार करना आवश्यक होगा ।

कड़ी बोली हिन्दी की मुख्य उपभाषा है । साथ हिन्दी का **संसृष्ट** साहित्य कड़ी बोली में ही है । साथ कड़ी बोली अपने निरन्तर और उच्च स्तर में है । साथ हिन्दी के साहित्यिक पर का जीवन कड़ी बोली की ही प्राप्त है । पर सर्वप्रथम भाषा शास्त्री कड़ी बोली उस बोली को कहते हैं, जो रामपुर मिर्जापुर, मुगदाबाद, मिर्जापुर, मेरठ, मुजफ्फरपुर, बदायुँ, देहरादून, जंमशेद, कलकत्ता, और पटिवाला विभाग के पूर्वी भाग में बोली जाती है । हमने कन्फेड नहीं, कि पूर्व अर्थ में कड़ी बोली का यही क्षेत्र है, पर साथ ही कड़ी बोली अपने क्षेत्र से बाहर निकल कर दूर दूर तक फैल गई है । कड़ी बोली अपने मूल अर्थ में किन स्थानों में बोली जाती है, उन स्थानों में मुख्यतः की संख्या अधिक है । इसलिए कड़ी बोली में अरबी

और नामों के शब्दों का प्रचुर रूप से प्रयोग है पर इन सभी शब्दों का प्रयोग सर्वत्र समान और समुचित रूप में किया जाता है।

सबो बोली का विकास औरतोंकी अप्रसन्नता से हुआ है। दोनों का जो एक पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके चलते सभी की संख्या २२ लाख के लगभग है।

अब इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि सबो बोली के तीन रूप हैं—उच्च हिन्दी, उर्दू, और हिन्दुस्तानी। अब हम इन पर भी विचार कर लेना ठीक होगा।

उच्च हिन्दी उच्च सबो बोली को कहते हैं, जिसमें संस्कृत के लगभग सभी की उपस्थिति होती है। यह लगभग सभी की अधिक प्रयोग उच्च हिन्दी में होता है। यही वह हिन्दी है, जिसे साहित्यिक हिन्दी कहते हैं। साहित्यिक हिन्दी की जो कार्यवाही उच्च हिन्दी से होती है, उच्च बोली उच्च हिन्दी है। यह किसी भी भाषा की प्रयोग करते हैं। यही भाषा उच्च भाषा के रूप पर भी प्रयोग है।

उर्दू हिन्दी सबो बोली के उच्च स्तर का नाम है, जिसमें सभी और सभी के लगभग तथा यह लगभग सभी की उपस्थिति होती है। सबो बोली के दो स्तर हैं। एक स्तर तो वह है, जिसमें संस्कृत के लगभग और यह लगभग सभी की उपस्थिति होती है। इस स्तर की उच्च हिन्दी कहते हैं। दूसरा स्तर यह है, जिसमें सभी-सभी के लगभग और यह लगभग सभी की उपस्थिति में पाये जाते हैं। सबो बोली के इस दूसरे स्तर को ही उर्दू कहते हैं। उच्च हिन्दी और उर्दू-दोनों का प्रचार एक ही है। दोनों के व्यवहार के सभी में भी बहुत कम अंतर है। किन्तु दोनों का प्रचार प्रयोग, और प्रचार एक दूसरे के विपरीत व्यवहार में होता है। उच्च हिन्दी साहित्यिक हिन्दुओं में ही व्यवहार होता है। वह प्रचार रूप से संस्कृत और भारतीय संस्कृति की ओर देखती है। इसके अलावा और निर्माण में भारतीय तथा विश्व है, पर उर्दू इसके विपरीत मुसलमानों में ही व्यवहार होता है। परिचयी सभी के कुछ हिन्दुओं, और भारतीय बोली के प्रचारों में ही उर्दू का प्रचार है। उर्दू के अलावा और निर्माण में उच्च स्तर का अधिक प्रचार है, जिसे प्रचार की प्रयोग करते हैं। उर्दू अपने प्रचार प्रचार के लिए सभी और सभी की ओर देखती है। यही कारण है, कि उच्च हिन्दी और उर्दू दोनों का व्यवहार एक दोरे पर ही दोनों के साहित्यिक व्यवहार, उच्च उर्दू, और सभी में अधिक अंतर है।

'सबो बोली' के इस दूसरे स्तर, उर्दू का नाम फिर प्रचार हुआ—यह एक विचारणीय बात है। हम यह कहते हैं कि सबो बोली वह बोली है, जो दिल्ली, मेरठ, और दिल्ली के पास-पड़ोस के लोगों में बोली जाती है। वह प्रचार में रखने की बात है, कि सबो बोली के उच्च, हिन्दी रूप का विकास बहुत ही तेज हुआ है। किन्तु उच्च हिन्दी की नींव ही वह रही थी, उच्च हिन्दी की सबो बोली का, उसके अपने क्षेत्र में अधिक प्रचार का। मुसलमानों का प्रचार अब दिल्ली में हुआ, तो

उनके सामने निम्न ही भाषा का प्रश्न उपस्थित हुआ होगा : क्योंकि भाषा में सामे वाले तुलनात्मकी की भाषा पारसी, तुर्की और अरबी थी। उन दिनों राज्य का केन्द्र भी दिल्ली में ही था। वहाँ दिल्ली में रहने वाले तुलनात्मकी में, दिल्ली की प्रतीय-पत्नी वजह से अथवा कोई स्थापित करने के लिये जल्दी भाषा—सही होती के हमारी की अथवा प्रत्यक्ष किया होगा। इस प्रकार लड़ी बोली और पारसी पारसी तथा तुर्की के शब्दों के सेत में एक नई भाषा का विकास हुआ। सर्व प्रथम यह नई भाषा बीबी लिखाई में बोली जाती थी। यह विकास भाषा थी, यहाँही इसका विकास कोई निश्चित निश्चित नहीं था। विकास भाषा होने ही के कारण इसका नाम 'उर्दू' पड़ा, क्योंकि तुर्की भाषा में उर्दू का अर्थ बाजार होता है। पहले इसका प्रचार तुलनात्मक लेखकों में था, किन्तु इसके पश्चात् धीरे धीरे उन हिन्दुओं में भी उर्दू का प्रचार हो गया, जो लड़ी वजह में पहले थे, या अथवा इसका तुलनात्मकी के अधिक प्रचार होता था, क्योंकि तुर्की और अरबी की कौनसा इस भाषा के द्वारा हमारे वास्तविक करने में सहायता होती थी। 'उर्दू' शब्दों द्वारा प्रसार थी, इसलिए इसका सीधे प्रचार हो गया। तुलनात्मकी प्रथम काल में उर्दू की अधिक सीधे प्रचार था। तुलनात्मकी में स्थापक रूप से इसका प्रचार की था ही, यम काल में भी इसका अधिक प्रचार होता था। बीबीली के प्रचार काल में भी उर्दू की प्रचार पूर्ण रूप प्राप्त था। देश के विस्तार के पश्चात्, साहित्यिक में इसे प्रचारण का भी प्रचार हुआ है।

उर्दू के दो रूप हैं—एक दिल्ली लखनऊ की प्रथम शब्दों के गरी बूने उर्दू, और दूसरी फैराबादी उर्दू। लखनऊ और दिल्ली आदि स्थानों की उर्दू अधिक अधिक होती है; क्योंकि उसमें पारसी के लक्षण शब्दों का प्रतीय अधिक होता है। इनके प्रतीयक एहिण्ड फैराबाद की उर्दू, जो हिन्दी बदलती है, अधिक सरल होती है। इनमें पारसी शब्दों का प्रतीय बहुत कम होता है।

हिन्दुस्तानी लड़ी बोली का एक तीव्र रूप है। इसका वास्तविक स्वरूप क्या है, यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है। वास्तव में ऐसा था तो वहाँ हिन्दी की ही 'हिन्दुस्तानी' कहते हैं। सर्व प्रथम 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रतीय बीबीली में किया था। 'हिन्दुस्तानी' शब्द के बीबीली का प्रतीय इस भाषा में था, जो देश लखनऊ हिन्दी में बोली सरल भाषा में लिखी जाती थी, जिसमें उर्दू के शब्द अधिक होते थे। इस प्रतीयक वास्तविक में 'हिन्दुस्तानी' में एक प्रचार ही रूप प्रचार कर दिया है; यहाँही इसकी लिखि तो अब भी देखागयी हो है, पर अब इसमें 'पारसी' के शब्दों की अधिकता रहती है। वास्तविक 'हिन्दुस्तानी' लोग उस भाषा को कहते हैं, जिसमें संस्कृत के लक्षण और शब्द लक्षण शब्दों का पूर्ण रूप से प्रभाव है।

वर्तमान 'हिन्दुस्तानी' की रूप लिखकी भाषा यह कहते हैं। क्योंकि इसमें संस्कृत, अरबी, पारसी और बीबीली आदि सभी भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं। कुछ लोगों ने 'हिन्दुस्तानी' में अपने भाषी को प्रचार करने का प्रयत्न किया है, पर उसमें

और उसके साथ वह के स्थानों में बोली जाती है। प्रसिद्ध मछ बाबू दादू दयाल और उनके मित्रों ने अपनी बाबियोंकी रचना इसी में की है। जयपुरी की एक दूसरी रचना भी है, जिसे हाड़ीली कहते हैं। हाड़ीली का संबंध सीर बूँदी राज्य है। रोसी की मिलाकर जयपुरी की बोलने वाली की संख्या १० लाख के लगभग है।

बैजली पर जयभाष का प्रभाव है। इसका प्रभाव कोई साहित्य नहीं है। यह एक बोली भाष है, जो सतनर राज्य और पूर्वी बंगाल के दक्षिण और, गुडगाँव जिलों में बोली जाती है। इसके बोलने वाली की संख्या १५ लाख के लगभग है।

मालवी कुम्हल जलो से बहुत कुछ मिलती जुलती है। उसका तुल्य केन्द्र इन्डौर राज्य है। इसके बोलने वाली की संख्या ४४ लाख के लगभग है। यह भी केवल एक बोली भाष है। साहित्य का इसमें पूर्ण रूप से अभाव है।

पहाड़ी भाषाएँ ये हैं, जो पहाड़ी जगहों में बोली जाती हैं। इसके तीन भाग हैं—परेवाली पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, और पूर्वी पहाड़ी। इनके सम्बन्ध में 'साहित्यिक पहाड़ी भाषा' भारतीय भाषाएँ नामक सीरीस में बहुत प्रकाश डाला जा चुका है। पहाड़ी भाषाओं में पूर्वी पहाड़ी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें साहित्य की रचना हुई है। पूर्वी पहाड़ी की ही मैथिली भी कहते हैं। मैथिली का मुख्य केन्द्र बागमती है।

हिन्दी की उपभाषाओं में कुछ ही ऐसी भाषाएँ हैं, जिन्हें हम साहित्यिक भाषाएँ कह सकते हैं। वे हैं—बघेली, मग, जिलाह, पड़ी बोली, और उर्दू। एक उर्दू की साहित्यिक

बोद्ध कर सभी उपभाषाओं पर हिन्दी का आधिपत्य है। भाषाएँ हिन्दी की सही बोली आज सभी उपभाषाओं के क्षेत्र में विद्यमान हैं। उर्दू पर भी सही बोली का आधिपत्य है। आज हिन्दी के साहित्य का प्रचार 'सही बोली' में ही हो रहा है। हिन्दी की सही बोली ही आज भारत की राष्ट्रभाषा के रूप पर आश्रित है।

हिन्दी के विकास की गति

हिन्दी आज भारत की राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन है। आज उसके जीवन का स्वर्ण काल है। आज भारतभर में कंठ-कंठ से उसकी कीर्ति का गान निकल रहा है। उसकी के इस युग तक पहुँचने में हिन्दी को कितने दुःख-मार्गों को पार करना पड़ा है, और कितने ही घात-प्रतिघातों के संकरे मार्गों से उसे निकलना पड़ा है—इस पर अब हम विचार करते हैं, तो यह मानना पड़ता है, कि हिन्दी, भाषा के स्वाभाविक गुणों से सम्पन्न है। वह अपनी स्वाभाविक शक्ति और गुणों के बल से ही सङ्कीर्ण मार्गों को पार कर सकी है, और उन्हीं के कारण वह आज राष्ट्र-भाषा के पद पर भी आसीन है।

हिन्दी का जन्म कब हुआ—यह एक विचारयोग्य विषय है। यह तो निश्चय है, कि हिन्दी का जन्म उस अप्रकृत्य औरतैनी से हुआ है, जो प्रायः देश की भाषा हिन्दी का थी; पर उसके जन्म के समय के सम्बन्ध में अभी तक ठीक-ठीक ज्ञान निश्चय नहीं हो सका है। हिन्दी के जन्म-काल के निर्णय के सम्बन्ध में हमें उन काल के उन साधनों पर दृष्टिपात करना होगा, जो इस समय ऐतिहासिक साधनों के रूप में प्राप्त हैं। उन ऐतिहासिक साधनों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं:—

क—प्राचीन शिला लेख, और ताम्र पत्र।

ख—अपभ्रंश काल की रचनाएँ

ग—चारण काल।

घ—हिन्दवी, अथवा पुरानी सङ्गी बोली।

प्राचीन शिला लेख और ताम्र पत्रों में जो कुछ सामग्री प्राप्त है, वह अधिक अपर्याप्त है। इस दिशा में अभी अधिक अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। अतः इसके द्वारा हिन्दी के जन्म-काल के सम्बन्ध में कुछ भी विवेचन नहीं किया जा सकता। अपभ्रंश काल ५०० ई० से १००० तक माना जाता है। इस अपभ्रंश काल में यह देखना है, कि क्या हिन्दी का जन्म हुआ या ? इतिहास में यथा चलता है, कि हिन्दी के उदय का प्रारम्भ अपभ्रंश काल के आदि चरण में ही हो गया था। इसके पूर्व वह उल्लेख किया जा चुका है, कि हिन्दी की उपभाषाओं में एक विभक्त विहारी भी है, और उसकी एक बोली का नाम मगही है। ईसा की आठवीं शताब्दी

में ही उस कविों ने अपनी ये रचना की थी, जो अपने को 'सिद्ध' कवि कहते थे। यह कवि भाषा के द्वारा सिद्ध प्राप्त करने वाले एक विशेष कथासुगामी भाषक थे। उनकी रचनाओं के पता चलता है, कि उनके पहले वे ही 'नवही' के रूप में हिन्दी का सुलाल ही हुआ था। सिद्ध कवियों का समय १००० ई० के ११०० ई० तक माना जाता है। सिद्ध कवियों की मन्त्रा कथारि कथामय मन्त्रा है, पर उनमें स्पष्ट उदा परिचय के बिना दृष्टिनेत्र होती है, अर्थात् उनकी भाषाओं से स्पष्ट यह बात होता है, कि एक नई भाषा में काम किया है, और यह भाषा हिन्दी के साहित्य और ओई नहीं है। सिद्ध कवियों की रचनाओं के साहित्य कथामय काल की और की नई रचनाएँ हमें मिलती हैं। पर उन रचनाओं पर कथामय का ही साहित्य प्रमाण प्रमाणित होता है। हिन्दी के काम की विवेचना की दृष्टि से कथामय काल की जिस रचना पर विचार किया जा सकता है, वह है हेमचन्द्र रचित 'सिद्धाय देव व्याकरण'। हेमचन्द्र की मृत्यु १२०० ई० में हुई थी। काल उनकी रचना का समय इसके पूर्व का ही माना गया। हेमचन्द्र के व्याकरण की भाषा में स्पष्ट होते स्पष्ट मिलते हैं, जो कथामय भाषा के नहीं हैं। हेमचन्द्र के व्याकरण की रचना काल में, यह स्पष्ट है, कि हिन्दी का समय ही हुआ था। १२०० ई० का एक और ग्रन्थ मिलता है, जिसका नाम 'सुमान पाल दशिनेत्र' है, और जिसके लेखक का नाम तीन प्रमाणार्थ है। इस ग्रन्थ की भाषा में भी हिन्दी की झलक मिलती है। सबसे बड़ा प्रमाण की कथारि मन्त्रा और नई कवि की कथारि है। मन्त्रा मन्त्र का समय १२५५ ई०, और 'चन्द' का समय १२५८ ई० माना जाता है। 'मन्त्रा मन्त्र' और 'चन्द' की रचनाओं की भाषा की यह हम कभी-कभी करते हैं, पर हम उनकी भाषा में स्पष्ट रूप से लड़ी बोली के रूप पाते हैं। चन्द काल के इन दोनों ही कवियों की भाषा की रचना पर स्पष्ट में ही यह निश्चय हो जाता है, कि हिन्दी का काम इनके बहुत पूर्व ही हुआ था। लड़ी बोली का प्रथम कवि 'अमीर खुसरो' माना जाता है। अमीर खुसरो का समय १२५५ ई० के १३५५ ई० तक माना जाता है। अमीर खुसरो की रचनाओं से भी यह बात चलता है, कि हिन्दी का काम इनके बहुत पूर्व ही हुआ था; क्योंकि उनकी रचनाओं में लड़ी बोली के विशिष्ट लक्षण मिलते हैं।

हिन्दी के काम के संबंध में अभी तक किए गए सभी पर विचार जाता या हुआ है, इनके आधार पर निश्चय रूप से यह कहा जा सकता है, कि हिन्दी का काम १००० ई० के आस पास ही हुआ था। कवि हिन्दी के काम का सुलाल इसके बहुत पहले ही हुआ था, और यह समय सिद्ध कवियों का समय माना जा सकता है, पर १००० ई० के आस पास का समय ही ऐसा समय है, जिसमें हिन्दी के सफल का पता स्पष्ट रूप से लगता है।

हिन्दी के विकास की हम तीन चरणों में विचार कर सकते हैं—

१—आदि काल—१००० के १५०० ई० तक।

से हिन्दी की गति प्रभावित हो उठी। इस काल में केवल कुछ गौर-काव्यों की सुधि ही लगी है। इन और कान्हीं की भाषा ही प्रचार की है। एक प्रकार की भाषा से कुछ गद्यकाव्यों का प्रचार भी है, और दूसरे प्रकार की भाषा साहित्यिक है। प्रथम प्रकार की भाषा में शब्दों के शब्दों की व्यवस्था है। यही वाक्यों की प्राचीन भाषा है, जिसे दिवस कहते थे। दूसरे प्रकार की साहित्यिक भाषा में प्राचीन शब्दावली, और कहीं-कहीं का पंचमी का प्रयोग है। यह भाषा विद्वानों के नाम से प्रसिद्ध थी। इसका हिन्दी से सम्बन्ध पवित्र सम्बन्ध है। मुसलमान सभी दिवस में शिष्ट भाषा है। यही कारण है, कि उनके हिन्दी का साहित्य प्रचार करते हैं।

हिन्दी के विकास का दूसरा काल मध्यकाल है, जो १५०० ई० के आरम्भ-काल से आरम्भ होता है। भाषा की दृष्टि से इस मध्यकाल की तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं—प्रारम्भ, मध्य, और अन्त। यह कहते हैं कि यह भाषा है, कि साहित्य ने हिन्दी लोक-भाषा की कहीं तक परिवर्तन करने में की। यह सब है, कि इन दिनों हिन्दी की गति प्रभावित हो उठी थी, पर प्रकृत काल में शब्दों के प्रयोग में प्रत्यक्ष प्रभाव ही ही रहा था। मुसलमानों के शासन-काल के कारण उन दिनों काल में पारी और विद्वानों की व्यवस्था हुई नहीं थी। विद्वानों की इस भाषा की दूर करने में, शब्दावली कालों में प्रत्यक्ष योग दिया। शब्दावली कालों में कान्हीं कान्हीं के द्वारा बड़ी शब्दावली का प्रचार किया, यहाँ उन्होंने प्रभावशाली रूप से काल की प्रवृत्ति, और और भाषा की और बढ़ने की प्रवृत्ति दी। इसके लिए साधु-कालों में जिस भाषा की प्रवृत्ति किया, वह काल की भाषा थी। उन दिनों काल में कई विचारार्थ शब्दों लगे थे। जैसे—शब्दावली, पंचमी, कहीं-कहीं, कान्हीं और शब्दावली इत्यादि। साधुकाव्यों में कान्हीं शब्दों के प्रचार के लिए हिन्दी शब्दों की विचारार्थों से शब्द प्रवृत्ति किया। शब्दावली कालों की रचनाओं में यह विभिन्न भाषा शब्द-शब्द दिखाई पड़ती है। काल की रचनाओं में भी इसी विभिन्न भाषा की व्यवस्था मिलती है।

काल इस विभिन्न भाषा के और पर लगे दिखाई पड़ते हैं। काल के प्रभावशाली भाषा का यह वर्तमान काल है, जिसे हम कालों का वर्तमान कहते हैं। काल की रचनाओं में भी कालों की व्यवस्था दिखाई देती है। काल के बाद कालों में कालों का प्रचार कर दिया। इन दिनों एक दूसरी काल में प्रभावशाली, और कालों की का भी कालों-कालों प्रभाव को रहा था। कालों की कालों की कालों की, किन्तु शब्दावली कालों के प्रभाव ही प्रभाव रही थी। काल के प्रभावशाली कालों और कालों में कालों की प्रवृत्ति किया। शब्दावली कालों का भी कालों में प्रभावशाली कालों पर थी। कालों की कालों कालों की भी कालों में कालों की भी, पर उनके प्रभावशाली भी भाषा प्रभाव कालों की कालों की है। इसका कारण यह है, कि उनके प्रभावशाली भी प्रभावशाली का काल उन कालों में हुआ था, जिसकी भाषा कालों की। काल शब्दावली कालों की कालों की कालों की

बोली की स्थापना की। उनके जीवन काल में ही, उन्हीं के द्वारा प्रतिष्ठित होकर सड़ी बोली प्रगति के मार्ग पर चलने लगी थी। उनके समकालीन पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बाल कृष्ण मट्ट, और पं० माधव प्रसाद मिश्र इत्यादि ने हिन्दी सड़ी बोली की अधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द के आंदोलन से भी हिन्दी सड़ी बोली को अधिक गति प्राप्त हुई। मुख्य कला में प्रचार और अँगरेजी के संपर्क को पाकर हिन्दी सड़ी बोली प्रगति के पथ पर दौड़ने लगी। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उसे अप्रसर होने के लिए नव शक्ति प्रदान की। इस प्रकार कुछ ही दिनों में सड़ी बोली हिन्दी की मुख्य साहित्यिक भाषा बन गई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पूर्व साहित्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा का राज्य था। सड़ी बोली का प्रचार होने पर 'ब्रजभाषा' की गति मन्द तो पड़ गई; किन्तु कुछ दिनों तक उसके लिए भी जीया प्रयास होता रहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने स्वयं ब्रजभाषा में कविताएँ की हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के परचारु हरिऔध, पं० श्रीधर वात्सल, और 'रत्नाकर' इत्यादि कवि भी ब्रजभाषा के माधुर्य श्रोम को संवरण नहीं कर सके हैं; पर उनका प्रयास उन्हीं तक सीमित रह गया है। सड़ी बोली की आज जो वैजगामी धारा बह रही है, उसमें उनका वह प्रयास एक बूँद ही की भाँति झल होता है।

किन्तु ब्रजभाषा अब भी बोली के रूप में अपने स्थान में मौजूद है। इसी प्रकार अजमेरी, राजस्थानी, और बिहारी इत्यादि हिन्दी की विभाषाएँ और बोलियाँ भी पहले की भाँति ही अपने स्थानों में बोली जाती हैं। बोल बाल के रूप में इन सभी विभाषाओं और बोलियों का अपने अपने क्षेत्रों में प्रयोग होता है, पर इन सब के क्षेत्र में भी साहित्यिक पद का गौरव सड़ी बोली को ही प्राप्त है। 'सड़ी बोली' इन भाषाओं को जीवन देती है, और वह स्वयं भी उनसे जीवन और चेतना ग्रहण करती है। यद्यपि इन भाषाओं और बोलियों के स्वरूप में परिवर्तन होता जा रहा है, पर वह तो ठीक ही है, कि वे इस समय भी अपने पूर्ण अस्तित्व में हैं।

हिन्दी का शब्द-भण्डार

किसी भी भाषा की परीक्षा उसके शब्दों से ही की जाती है। जिस भाषा में जितने ही अधिक शब्द होते हैं, दूसरे शब्दों में जिस भाषा के शब्द-भण्डार में मिलने ही अधिक मनोभावों को व्यक्त करने वाले शब्द पाए जाते हैं, वह भाषा उसकी ही अधिक समृद्ध, और शक्ति शालिनी मानी जाती है। इस दृष्टि से जब हम हिन्दी की आलोचना करते हैं, तो हमें यह मानना पड़ता है, कि हिन्दी का भंडार शब्दों के लिए अविश्व पर्याप्त है। हिन्दी के पास शब्दों की उत्पन्न करने वाले इतने अधिक साधन हैं, कि उनके द्वारा वह किसी भी भाष के लिए शब्दों की सृष्टि कर सकती है।

हिन्दी के पास शब्दों की उत्पत्ति के लिए कई साधन हैं। इन साधनों में सबसे बड़ा साधन तो संस्कृत भाषा है। हिन्दी संस्कृत की पुत्री मानी जाती है। संस्कृत ऐसी भाषा है, जिसमें शब्दों की सृष्टि की असीम शक्ति है। एक तो संस्कृत में स्वयं अधिक शब्द हैं, दूसरे उसमें शब्दों के सृजन की अपूर्व शक्ति है। अतः हिन्दी को शब्दों का अभाव कभी प्रतीत न होगा। हिन्दी के शब्दाभाव की पूर्ण करने के लिए संस्कृत के पास शब्दों का अक्षय कोष है। शब्दों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए हिन्दी के पास दूसरा साधन उसकी विभाषाएँ, और शैलियाँ हैं। यह सत्य है, कि विभाषाएँ और शैलियों ने साहित्य की दृष्टि से शक्तिशाली शब्दों का अभाव होता है, पर हिन्दी की कई ऐसी विभाषाएँ हैं, जो साहित्य की दृष्टि से अधिक महत्व पूर्ण हैं। इन विभाषाओं में ऐसे शब्दों की कमी नहीं है, जो हिन्दी में पहुँच कर उसकी शोभा की बढ़ा सकेंगे। इन विभाषाओं के न जाने कितने शब्द हिन्दी के साहित्य-भण्डार में आ चुके हैं, और इसी प्रकार बराबर आते ही रहेंगे। हिन्दी की शैलियाँ भी हिन्दी शब्द-भण्डार की भरने में यही सहायिका हैं। शैलियाँ अपनी मुख्य भाषा के लिए शब्दों की सहाय का काम करती हैं। हिन्दी की शैलियाँ जब तक न जाने कितने शब्दों की सहाय कर हिन्दी के शब्द-भण्डार में पहुँचा चुकी हैं।

किसी भी भाषा के शब्द-भण्डार की जब हम परीक्षा करते हैं, तब हमें मुख्य रूप से उन साधनों पर ध्यान देना होता है, जिनके द्वारा शब्द किसी भी भाषा में आते

शब्दज्ञान

हैं। भाषा-विज्ञान के इतिहास के पत्र चलता है, कि किसी

के साधन

भी भाषा में शब्द निम्नोक्त साधनों से आते हैं:—

क—उन प्राचीन भाषाओं से जिनसे उस भाषा का सम्बन्ध होता है ।

ख—उन विदेशी भाषाओं से, जिनसे समय-समय पर उसका सम्बन्ध स्थापित होता है ।

ग—विभाषाओं और श्रेणियों से ।

हिन्दी शब्द-संसार में आज जो शब्द हैं, वे जो इन्हीं भाषाओं के द्वारा हिन्दी में आये हुए हैं । इन सब पहले कह चुके हैं, कि हिन्दी में शब्दों का अभाव नहीं है । हिन्दी के शब्दों को हम विवर्णित वर्गों में बाँट सकते हैं—

क—संस्कृत या प्राकृत से आये वाले शब्द ।

ख—ऐराज शब्द ।

ग—अनुभवसंगत शब्द ।

घ—द्विज ।

च—उपमानात्मक ।

छ—सर्ग-सङ्घर्ष ।

ज—अन्य भाषाओं से आये वाले शब्द ।

झ—प्रतिष्ठापित शब्द ।

ड—विदेशी भाषाओं के शब्द ।

संस्कृत या प्राकृत के जो शब्द हिन्दी के शब्द-संसार में आये हैं, वे दो प्रकार के हैं—एक प्रकार के शब्दों को हम ललित, और दूसरे प्रकार के शब्दों को उद्भव संस्कृत या प्रा- कहते हैं । ललित शब्द उन शब्दों को कहते हैं, जो संस्कृत कृत के शब्दों से निकल कर आये विद्वत् और वास्तविक रूप में हिन्दी साहित्य में व्यवहृत होते हैं । हिन्दी-साहित्य में ऐसे शब्दों की संख्या अधिक परिमाण में है । ऐसे शब्दों की संख्या दिनों दिन और भी अधिक बढ़ती जा रही है । इसका एक मात्र कारण हिन्दी की गौरी आनन्दकराव है । समय और विधि के अनुसार हिन्दी की नयी नयी आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही हैं, वह संस्कृत से नए नए शब्दों की उद्भव करती जा रही है । कुछ विद्वान् ऐसे हैं, जो जान-बूझ कर अपनी भाषा में ललित शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं । इस प्रकार ललित शब्दों की संख्या, हिन्दी के शब्द-संसार में दिनों दिन अधिक बढ़ती जा रही है । ललित शब्दों का प्रयोग दो तरह के किताबें करते हैं । अधिकतर ललित शब्दों का प्रयोग संस्कृत की विधि में ही होता है, पर कुछ ऐसे भी ललित शब्द हैं, जो हिन्दी में प्रयुक्त होने पर हिन्दी के शब्दों के अनुशासन में आ जाते हैं । जैसे—राज, विरा, और लक्ष्मी ।

उद्भव शब्द उन शब्दों को कहते हैं, जो संस्कृत से आये हिन्दी में न मात्र प्राकृत के होते हुए आये हैं । जैसे—सर्प और आनन्द-इत्यादि । उद्भव शब्दों का प्रयोग साहित्य में बहुत कम होता है । जो भी उद्भव शब्द साहित्य में हैं, वे दिनों दिन निकलते जा रहे हैं । कदाचित् श्रेणियों में उद्भव शब्दों की प्रचुरता है । उद्-

ही ! उनकी कृपा देकर शब्दों में भी नहीं की जा सकती । जैसे — 'मीठा' । इसका भाई बड़बामास जो किन्तु 'मीठी' है, जो 'ई' मान्य होने से बनता है । पर 'मीठा' कसम है, या लक्षण, और या देश-क—कह कुछ नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार के शब्द भी हिन्दी में अधिक प्रचलित हैं । इस प्रकार के शब्दों को 'बड़ लक्ष्यभास' कह सकते हैं ।

हिन्दी में ऐसे शब्द भी प्रचलित हैं, जो कानून भाषाओं के हैं । प्राचीन काल में कानून भाषाओं के कुछ शब्द संस्कृत में जा गए थे, और संस्कृत में ही उनका आत्म-आधार भाषा मन हिन्दी में हुआ है । हिन्दी में ऐसे शब्दों का प्रयोग के शब्द 'कसम' और 'उद्भव' के ही रूप में किया जाता है । इस्लाम आदि भाषाओं से हिन्दी में जो शब्द आये हैं, उनका प्रयोग तुरे पर में किया जाता है । हिन्दी का 'मिठा' शब्द आदि भाषा से लिया गया है । आदि भाषा में इसका कुछ रूप 'मिठी' है, जिसका अर्थ पुन होता है । किन्तु हिन्दी में इसका प्रयोग 'कुछ के अर्थ' के लिये किया जाता है ।

हिन्दी में ऐसे शब्द भी प्रचलित हैं, जो शब्दों की आदि से उत्पन्न हुए हैं । ऐसे शब्दों को हम प्रति चालित शब्द कह सकते हैं । जैसे—'बीड़ा-बीड़ा' । 'बीड़ा' प्रतिचालित बीड़ा की आदि से उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार के शब्द बंगाली, मराठी, और गुजराती इत्यादि प्राचीन भाषाओं में मिलते हैं । भाषा शास्त्रियों का मत है, कि प्रति चालित शब्दों की यह प्रकृति हिन्दी तथा अन्य प्राचीन भाषाओं में आदि भाषाओं से बहुत की गई है ।

हमारे देश पर विदेशियों के बराबर आक्रमण हुए हैं । प्राचीन काल से लेकर यह एक विदेशियों के कई वर्ष हमारे देश में रहा चुके हैं । उनकी संस्कृति विदेशी भाषा— और भाषा का हमारे देश की संस्कृति और भाषा पर भी के शब्द अधिक प्रभाव पड़ा है । प्राचीन काल में जो भी आदि भाषाओं में आई, उनकी संस्कृतियों और भाषा इस समय हमारे देश की संस्कृति और भाषा के रूप में समर्थ हो गई है । इसलिए उनका कुछ कम नहीं हुई है पर इतिहास नहीं होता । पर सुलभ और विविध संस्कृति तथा भाषा का समग्र इस समय एक रूप से हमारे देश की संस्कृति और भाषा पर दिखाई देता है । इसका कारण यह है, कि इन दोनों ही संस्कृतियों, और भाषाओं के विचारों की साधन-सहायनी में ही जिस हुए भाषा से बिना हुई है । संभव है, कालांतर में इनका प्रभाव भी हमारे देश की संस्कृति और भाषा में उनी प्रकार मिली हो जाय, कि प्रभाव की प्राचीन भाषाओं की संस्कृतियों और भाषाओं में ही हो चुकी है ।

बीदेही, और सुलभ संस्कृति का प्रभाव इस समय एक रूप से हमारे देश की संस्कृति पर अत्यन्त हुआ दिखाई देता है । संस्कृति की तरह हमारे देश की भाषाओं में बीदेही, बनरी, घण्टी, तथा सुनी आदि विदेशी भाषाओं के

प्रभावित है। हिन्दी में 'ऑंगरेजी' और 'अरबी' पदों तथा तुर्की के अनेक शब्द प्रचलित हैं। 'ऑंगरेजी' का राज्य लगभग तीन सौ वर्ष तक भारतवर्ष में रहा। इतने दीर्घ समय तक भारतवर्ष में रहने के कारण 'ऑंगरेजी', और भारतीय जनता का सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ गया था। 'ऑंगरेजी' के बहुत से शब्द हिन्दी में आ गए हैं, और जहाँ-तहाँ इस प्रकार कुल-मिल गए हैं, कि उनका निष्काटना अधिक कठिन का काम होता है। 'ऑंगरेजी' के अनेक शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं। जैसे—इंजिनेयर, कलर, कान्फेस, कान्फ, कालिग, गलट, गार्ड, कमिटी, वरीष्ठान, बटन, मजिस्ट्रेट इत्यादि। 'ऑंगरेजी' शब्दों की भीति कुछ पुर्तगाली और फ़ारसी शब्द का प्रयोग भी हिन्दी में होता है। जैसे—मेदाग, चाबी, और तंबाकू इत्यादि। 'फ़ारसी' और 'तुर्क' इत्यादि फ़ारसी भाषा के शब्द हैं। 'तुर्क' का हिन्दी में 'तर्क' से सामान्य तुलना है।

सङ्गरेषों के पूर्व भारतवर्ष पर मुसलमानों का राज्य था। मुसलमानों का आक्रमण सन् १००० ई० से भारतवर्ष में आरंभ हो चुका था, और लगभग छः सौ वर्षों तक उनका भारतवर्ष से शासन चल में सम्बन्ध था। भारत में आने वाले मुसलमानों में अरबी, फ़ारसी, तुर्की और पर्सो इत्यादि भाषाओं का प्रचार था। अतः परिणाम स्वरूप अरबी, फ़ारसी, तुर्की और पर्सो इत्यादि भाषाओं के शब्द भारतीय भाषाओं में आ गए हैं। मध्यदेश की भाषा होने के कारण हिन्दी में इस प्रकार के शब्द अधिक संख्या में पाये जाते हैं। जैसे—आका, गलीचा, टुक, चारु, बीरी, बेग और बहादुर इत्यादि।

हिन्दी में जो भी विदेशी शब्द आए हैं, अब वे हिन्दी के बन गए हैं। इन संस्कृत शब्दों पर अब हिन्दी का प्रभाव है। इन शब्दों का प्रयोग हिन्दी में, हिन्दी की विधि से किया जाता है। इनमें बहुत से ऐसे शब्द हैं, जिनका रूप अब बदल गया है। कुछ दिनों के पश्चात् इनका रूप इतना बदल जायगा, कि उनकी सत्ता का आभास भी कठिनाई से ही हो सकेगा। भाषा विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार वे धीरे-धीरे हिन्दी के रूप में मिलान हो जायेंगे।

हिन्दी काव्य

विषय सूची

१—साहित्य का मूल, स्रोत

६१

(अ) साहित्य और मानव हृदय, (आ) मानव हृदय और सौंदर्य प्रियता, (इ) साहित्य के दो स्वरूप, (ई) साहित्य और भाव, (उ) साहित्य और कला, (ऊ) साहित्य और जगत, (ए) साहित्य और देश साहित्य की अपनी विशेषताएँ, (ऐ) भारतीय जीवन की विशेषताएँ, (ओ) भारतीय जीवन और हिन्दी साहित्य ।

२—काल विभाग

६६

(औ) हिन्दी साहित्य के चार काल-विभाग, (अं) संक्षिप्त काल ।

३—संक्षिप्त काल

१०१

(अः) नामकरण का कारण, (क) युग का विचार प्रवाह, (ख) संक्षिप्त काल का साहित्य, (ग) सिद्ध साहित्य, (घ) जैन साहित्य, (ङ) नाय साहित्य, (च) लौकिक साहित्य—शृङ्गार, मनोरंजन और प्रेम, (छ) संक्षिप्त काल के साहित्य का सिद्धान्त-संक्षेप ।

साहित्य का मूल स्रोत

साहित्य और मनुष्य का अत्यधिक निकट का सम्बन्ध है। मेरा अपना यह मत है, कि मनुष्य अपने जीवन के आदि काल से ही साहित्यिक है। साहित्य के जन्म पर आश विषय में जो समझ पाई जाती है, वह मानव हृदय की ही देन है। मानव हृदय में, विभिन्न विकारों के रूप में समय-समय पर जो विचार निकलते रहते हैं, उन्हीं के व्यवस्थित रूप-रूप का ही नाम साहित्य है। मानव हृदय अनन्त विचारों, और अनुभूतियों का भंडार है। साहित्य के रूप में आज मानव हृदय के जो विचार और अनुभूतियाँ हमें मिलती हैं, वे इतनी विराल हैं, कि सामान रूप वाली विष्णु भी उनके खोर-खोर का पता अपने खंभों से नहीं लगा सकते। किसी नई नई अनुभूतियों और विचार अभी मानव हृदय से निकलेंगे, और बराबर निकलते रहेंगे—इसका भी अनुमान कोई बिकालक, और बिकाल दृष्टा नहीं लगा सकता।

मनुष्य क्लिप्तमनस प्राणी है। वह बराबर सोचता, समझता, और विचार करता है। बिनाम उसका स्वभाव है। वह जगत् को देख कर सोचता है, जगत् की वस्तुओं साहित्य और को देख कर सोचता है, दूरियों को देख कर सोचता है, मानव हृदय और स्थितियों को देख कर सोचता है। सोचना और विचार करना ही उसके जीवन का व्यापार है। सोचने और विचार करने से उसके हृदय में विभिन्न प्रकार के मनोविकारों का जन्म होता है। कभी वह क्रोध से उन्मत्त हो जाता है, तो कभी प्रेम से विभोर हो जाता है। कभी कभी दया और सहानुभूति उसके प्राणों को विकला देती है। इसी प्रकार नाना प्रकार के मनोविकार उसके हृदय में बराबर उठते ही रहते हैं। मनुष्य के हृदय में जब इन विकारों का जन्म उठता है, तब वह अपनी वाणी के द्वारा उसे व्यक्त करता है। इन्हीं विकारों को ही वह भाषा के मूल में भी पहुँचाता है। इससे उसके हृदय को आनन्द प्राप्त होता है, और दूसरे लोग भी उसके विचारों से लाभमत्त हो जाते हैं।

मनुष्य आदि काल से ही इसी प्रकार अपने विचारों को प्रकट करता चला आ रहा है। विचारों को प्रकट करने की प्रवृत्तियाँ मनुष्य के स्वभाव के भीतर हैं। विचारों को प्रकट करने की मानव-प्रवृत्तियों ने ही साहित्य को जन्म दिया है। आज जो साहित्य हमारे संमुख है, उसका कारण मनुष्य की ये प्रवृत्तियाँ ही हैं, जिनसे विचार होकर वह अपने विचारों को प्रकट करता है। यथार्थ का साहित्य भी इन्हीं प्रवृत्तियों का

प्रतिपाद्य होता है। इस प्रकार हम यह समझे हैं, कि साहित्य का मूल स्रोत मनुष्य की विचार प्रवृत्ति करने की प्रवृत्तियों में निहित हुआ है।

किन्तु केवल 'विचार' और 'साहित्य' में अधिक अन्तर होता है। 'विचार' यहाँ शरीर का एक दीर्घावस्था है, यहाँ 'साहित्य' माधुर्य है। 'विचार' यहाँ एक स्वेयं भाव है, यहाँ 'साहित्य' लौकिकता, और मोहि-मोहि के कुलो से मूल हुआ है, दूसरे शब्दों में साहित्य 'रसमय', 'सुन्दर', और प्राणमय है। जो तो मनुष्य के हृदय से कल्पित प्रचार के विचार निकलते हैं, पर हम इन सभी 'विचारों' को साहित्य की श्रेणी नहीं दे सकते हैं। साहित्य को संचित मनुष्य के दुन्दी विचारों की मिलती है, जो सुसंस्कृत, लभ्य, प्राणमय और सुन्दर होती हैं। मानव प्रकृति का प्राणमय करने के माध्यम द्वारा वह यह चलाता है, कि लौकिक विचारों की प्रकृति मानव में और साहित्य के ही है। एक और यहाँ उसमें विचारों की लौकिक विचारों के अन्त करने की प्रकृति बड़े जाती है, दूसरी और उसमें लौकिक विचारों और 'लभ्यता' की भी प्रकृति बड़ी जाती है। मनुष्य करने जीवन के साहित्य के ही करने विचारों की सुसंस्कृत, सुन्दर, और 'रसमय' बनाता जाता था रहा है। 'साहित्य' में मानव के सुन्दर, प्राणमय, और लभ्य विचारों का ही प्रचार हुआ है। साहित्य का मूल उद्देश्य ही है सात्विक। जो विचार ही सात्विक करने विचारों की 'रस' में प्रेरित है, वह उनका ही सात्विक साहित्य के उद्देश्य के सम्बन्ध प्रकृत है। पर मनुष्य यह समझता और संस्कृति के अन्त निर्मा करता है। वेद और काल का भी इसके अन्त प्रभाव पड़ता है। विचार के साहित्य में जो मानव-विवेकता इतिहासकार होती है, उसका एक भाग कारण समझ और संस्कृति की विचारों तथा वेद और काल की विविधता है।

इस प्रकार मनुष्य के विचारों के दो वर्ग हो जाते हैं। एक वर्ग में ही मनुष्य के वे विचार हैं, जो केवल विचार मात्र रहते हैं, और दूसरे वर्ग में वे विचार होते साहित्य के हैं, जो काल, सुन्दर, और प्राणमय होते हैं। साहित्य के ही लक्ष्य प्राणमयों के मानव की दुन्दी दोनों प्रकृतियों की दृष्टि में एक पर साहित्य की ही यहाँ में विचारित विचार है—आय वह, और कला वह। मान और कला-दोनों ही के मूल में मानव के मन के विचार हैं, पर दोनों का अन्त प्रथम-प्रथम अन्त, और प्रथम-प्रथम द्वेष है। यद्यपि साहित्य की शरीर दोनों के ही संयोग के निर्मित होता है, और साहित्य शरीर की रचना के लिए दोनों का संयोग अनिवार्य ही है; पर वास्तविकता के कारण साहित्य की रचना में दोनों का संयोग मात्र समान रूप के नहीं हो पाता। साहित्य की रचना में कभी आरंभ वह प्रथम ही जाता है, तो कभी कला वह। मानव में साहित्य बड़ी सुन्दर, और मोह है; जिसके दोनों ही यहाँ का अधिक रूप के निष्कर्ष होता है।

मनुष्य मानव मात्र ही है। उसके हृदय की कथाएँ होती हैं, कि उसके भावों के स्रोत निरन्तर बहता ही रहते हैं। भावों के वह स्रोत वास्तविकता, और हमारे के

साहित्य का एक पुराने है। कवि सभी मनुष्यों के हृदय में जीत करते और भाव है, पर उनकी अनुभूति और उनका योग केवल उस हृदय को ही होता है, जिसे हम कवि का क्षेत्र का हृदय कहते हैं। एक किसी विशेष कला को देख कर सामान्य हृदय का व्यक्ति केवल 'आह' 'उह' करते ही रह जाता है, पर कवि हृदय का मनुष्य उनका हृदयगत करता है, और भाव के रूप में उसे बाहर निकालता है। कवि का क्षेत्र हृदय के विस्तार हुआ यही भाव साहित्य की संरचना होता है। साहित्य के क्षेत्र में भाव का अधिक स्थान होता है। जिस साहित्य में हृदय की जितनी ही अधिक गहराई का भाव होता है, वह साहित्य उतना ही अधिक दीर्घ और स्थायी होता है। इसके साथ ही साथ वह कदा भी अधिक उचित, और सफ़ल होता, कि जिस साहित्य में जितने ही अधिक परमोन्नत भाव होंगे, वह साहित्य उतना ही अधिक परमोन्नत, उन्नत, और अद्भुत समझा जाएगा। साहित्य की अंतिम भाव की ही ओर देखनी है। कहा करना पड़ेगा, कि भाव साहित्य का प्राण होता है।

भाव के जितने रूप होते हैं—कुछ खल नहीं का सकता। जिस प्रकार प्रकृति के रूप में अनेक प्रकार की वस्तुएँ पाई जाती हैं, उसी प्रकार मानव हृदय में भी मानव प्रकृति के भाव अनेकानिहित रहते हैं। भाव अनेक प्रकार के होने के साथ ही साथ अधिक विविध भी होते हैं। भावों के वैविध्य का कारण मानव-प्रकृति है। मानव प्रकृति और प्रकृति विविधताओं का संसार है। साहित्य में भी वैविध्य है, उसका कारण मानव प्रकृति की विविधता ही है। साहित्य में अनेक कला भी मानव प्रकृति की अनेक कला के ही कारण पाई जाती है। साहित्य के अनेक प्रांग और उपांग हैं। जैसे—कविता, कहानी, नाटक, और उपन्यास आदि। साहित्य के इन प्रांगों और उपांगों का एक मात्र आधार मानव प्रकृति की अनेक कला, और उसका वैविध्य है। पर इस अनेक कला और वैविध्य में भी भाव एक ऐसी शक्ति है, जो सभी प्रांगों और उपांगों की परस्पर सम्बन्ध फिर दूर रहता है; दूसरे शब्दों में भाव ही एक बाध है, जो सब की अनेकतराई और वैविध्य में साम्य स्थापित करे रहता है। कहा यह करना ही सकता है, कि भाव साहित्य का एक प्राण होता है।

भाव और कला-रूपों का सम्बन्धगम्य संबंध है। भाव के द्वारा हम अपने हृदय की रन्ध्रों, निचारी और आर्त-प्राणों को व्यक्त करते हैं। कला हमारे निचारी साहित्य को सुधारण का सत्य प्रदान करती है; दूसरे शब्दों में हम कला और कला के द्वारा अपने निचारी में जीवन और अमरत्व उत्पन्न करते हैं। साहित्य कला में भाव के साथ ही साथ कला का भी अधिक स्थान है। यदि भाव साहित्य का प्राण है, तो कला उस प्राण की चरम करने वाला शरीर। साहित्य क्षेत्र में भाव, कला के भीतर अंतर्निहित रहता है, पर भाव की सुश्रुति और प्रसन्नता बनाने का साथ कला ही के द्वारा होता है। कला ही के द्वारा भाषा में शब्दों का उचित संयोजन और संयोजन किया जाता है। कला ही भाषा की प्रौढता की और प्रचंडता

बनाती है, जिसके भीतर भाव प्रकट कर अपनी अनुभूति को प्रस्तुत करता है। भाव का सम्बन्ध साहित्य में उसके संतुलन से होता है। कला साहित्य के मूल कला का सम्बन्ध बनाती है; दूसरे शब्दों में कला का सम्बन्ध भाव, ऐसी और भाव के होता है। भाव, ऐसी और भाव में सम्बन्ध तथा सीमावर्ती कला के दो भाग उत्पन्न होती है।

कला और भाव की विवेचना से यह स्पष्ट होता है, कि साहित्य का क्षेत्र साहित्य सम्बन्ध है। साहित्य की रचना करा करने हुए है, और कला करने वाली होती है। यदि साहित्य इन विषय के साहित्य की समीक्षा करें, तो हम यह देखेंगे, कि और कला 'कला' और 'भाव' के क्षेत्र में उसके अन्तर्गत किन्ता सम्बन्ध है; कला सम्बन्ध के साहित्य की यदि हम दृष्टिकोण के क्षेत्रविषय, और भाव के क्षेत्र से दृष्टिकोण के क्षेत्रविषय करें, तो हमें यह पता चलेगा, कि यद्यपि दोनों की अपनी अपनी दृष्टि-दृष्टि अपनी विवेचनाएँ हैं, पर फिर भी दोनों में ही कला और भाव के क्षेत्र में एक ही सम्बन्ध बिना है, इसी ही नहीं बल्कि हमें इस बात का पता चलेगा, कि दोनों का ही भाव और दोनों की 'कला' 'कला' की ही दिशा की ओर का रही है। दोनों ही की कला का एक ही उद्देश्य है—विचार, विचार, और सुन्दर। हमें यह स्पष्ट होता है, कि साहित्य की भावना साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में विद्यमान है। यद्यपि विचार के क्षेत्रों में अन्तर्गत साहित्य, संसार, और अन्तर्गत विचारएँ हैं, पर फिर यह नहीं कह सकते, कि साहित्य इन विचारों की विचारमयता में भी कर में सम्बन्ध स्थापित किये हुए है। भाव के क्षेत्र के साहित्य सम्बन्ध में भी साहित्य और ऐसी है, पर साहित्य की ही देन है।

यह स्पष्ट है, कि भाव और कला के क्षेत्र में विचार के संदर्भ साहित्य में सम्बन्ध है, पर इसके साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है, कि प्रत्येक देश के साहित्य में अपनी कुछ साहित्य और विवेचनाएँ होती हैं। प्रत्येक देश की मौलिक विधि देश साहित्य और अन्तर्गत में अधिक अन्तर्गत होता है। मौलिक विधि का अपनी और अन्तर्गत का समुच्चय के विचारों और संस्कृति पर साहित्य विवेचनाएँ समान पदार्थ है। साहित्य समुच्चय के संस्कृतिक विचारों के ही संसार की बहते हैं। अतः प्रत्येक देश के साहित्य का अन्तर्गत उसके सामाजिक विचारों के ही आधार पर हुआ करता है। जिस देश के समुच्चय के विचार प्रसार के विचार हुआ करते हैं, उस देश का उसके अन्तर्गत पर साहित्य की होता है। प्रत्येक देश के साहित्य में उसके संस्कृति और उसके अन्तर्गत विचारों के अन्तर्गत की विचार साहित्य क्षेत्र में एकत्र होते रहते हैं, वे उसकी अपनी सम्बन्ध होती हैं। उसकी समीक्षा करते हम यह स्पष्ट करते हैं, कि उस देश का साहित्य की अपनी विचार प्रसार की और अपनी विवेचनाएँ हैं। प्रत्येक देश की अपनी इन विवेचनाओं पर अधिक करें हुआ करता है।

युद्ध और भाव के साहित्य की यदि हम समीक्षा करें, तो हमें यह स्पष्ट होगा

विशेषतः प्रायः सब से दिखती रहती है। यूरोप और भारत के साहित्य में बड़ी मात्रा और भाव के क्षेत्र में साम्य है, यहाँ दोनों की अपनी मुख्य मुख्य विशेषताएँ हैं। यूरोपीय 'कला', और साहित्य यहाँ मौलिकता की ओर उन्मुख है, यहाँ भारतीय साहित्य और कला में साम्प्रदायिकता या आदर्श मान्यताओं का समावेश है। इसका मुख्य कारण हमारे देश की भौगोलिक स्थिति और सभ्यता है। हमारे देश की भौगोलिक स्थिति और सभ्यता जीवन के अधिक अनुकूल है। इसलिए यहाँ के मनुष्यों की जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति से अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ता। वे अपना अधिक समय दूसरे विषय और सामाज्य में ही व्यतीत करते हैं। यही कारण है, कि हमारे देश की 'कला' और साहित्य में साम्प्रदायिक मान्यताओं का अधिक समावेश है। इसके अतिरिक्त यूरोपीय मनुष्य भौगोलिक स्थिति और सभ्यता की विशेषता के कारण जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरंतर प्रकृति से ही संघर्ष करते रहते हैं। उनके जीवन का अधिकांश समय निरंतर अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की विधा में ही व्यतीत होता है। यही कारण है, कि उनकी कला और उनका साहित्य मौलिकता की ओर उन्मुख है।

प्रत्येक देश की अपने साहित्य की राष्ट्र और साहित्य-मूल विशेषताओं पर गर्व हुआ करता है। कभी-कभी इन विशेषताओं में परिवर्तन भी होता है। जब कभी देश में किसी बड़ो बलि या संस्कृति का आवरण होता है, तो साहित्य की विशेषताओं पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। किन्तु अधिकतर साहित्यी दक्षिण पर, अपने साहित्य की भारतीय विशेषताओं की रक्षा का प्रयत्न करती हैं। कभी कभी समय और स्थिति के अनुसार भी साहित्य में परिवर्तन उपनिबत होता है। किन्तु वह परिवर्तन प्राचीनता के ही आधार पर किया जाता है। यही विशेषताओं के प्रयत्न होने पर भी प्राचीन विशेषताएँ अनुपस्थित रहती हैं। अधिक और भारत साहित्यी अपने साहित्य की प्राचीन भारतीय विशेषताओं की जीवन का महा मन्त्र समझती हैं। वे कवि और परिवर्तन के भौतीरी से भी उसकी रक्षा करती हैं, और अपने जीवन के कष्टमय के लिए उनके साहित्य की बनाये रहती हैं।

'साहित्य' और भारत जीवन का विशेषण करने से वह बात प्रगत होती है, कि वह भाषा अधिक जीवन पूर्ण होती है, जिसने भारतीय साहित्य के मुख्य करने की भारतीय जीवन सभ्यता अधिक होती है; दूसरे स्थानों में जो अपने मुख्य की विशेषताएँ की विशेषता के राष्ट्र की भाषा का निर्वाचन करने में सहम होती है। इस दृष्टि से जब हम हिन्दी पर विचार करते हैं, तो हम उसे एक व्यापक और शुद्ध भाषा पाते हैं। 'हिन्दी' का नाम 'संस्कृत' और 'प्राकृत' के द्वारा है। 'संस्कृत' और 'प्राकृत' वह दोनों ऐसी भाषाएँ हैं, जो मुख्य रूप भारत की भाषा का निर्वाचन जाती रही हैं। 'प्राकृत' की संस्कृत जीवन सम्बन्धी विशेषताएँ 'संस्कृत' और 'प्राकृत' में निव्यपन है। 'संस्कृत' और 'प्राकृत' के प्रकृत होने के कारण 'हिन्दी' में भी वह मौलिक और व्यापक है, जो राष्ट्र की भाषा के निर्वाचन के लिए

सामयवशक बनती जाती है। 'संस्कृत' और 'प्राकृत' की संतुष्टी सम्बन्धि उपस्थापिकता के रूप में हिन्दी की उत्पत्ति है। हिन्दी की इस सर्व-व्यापकता को देख करके ही उसे राष्ट्र-भाषा के पद पर स्थायी किया गया है।

हिन्दी का साहित्य इस समय हमारे सामने है, उसकी समीक्षा करने में यह बात भी होता है, कि हिन्दी के साहित्य में राष्ट्र की भावना प्रतिबिम्बित हो रही है। समाज की समस्याओं को राष्ट्रीय विशेषताएँ हैं, और इनके द्वारे भारतीय विद्वान के इतिहास में साहित्य की भावना है, उनका विशिष्ट हिन्दी-साहित्य में पर्यवेक्षित रूप से हो रहा है। अतः, अब यह देखें, कि भारतीय जीवन की अपनी विशेषताएँ क्या हैं। भारतीय एक धार्मिक देश है। धार्मिक भावनाओं का सुन्दर रूप में विकास भारतीय में हो चुका है। धर्म और जीवन दोनों ही हमारे देश में कुछ मिल गये हैं। समाज, राजनीति, और व्यवस्था दोनों में हमारे देश में धर्म का प्रभुत्व है। वैदिक-ग्रन्थों से लेकर जीवन के अन्त और मृत्यु तक धर्म का प्रभुत्व है। हमारे देश की यह पक्षी विशेषता है, जो विद्वान के इतिहास में नहीं और नहीं दिखाई पड़ती।

धार्मिक होने के कारण हमारा देश अपने साहित्य-सम्पत्ति का है। 'आत्मा' और 'परमात्मा' की ओर हमारे देश में ही सबसे अधिक धर्म है। आध्यात्मिक होने के कारण हमारे देश में मानव हृदय की सद्गुणों का भी अधिक विकास हुआ है। दया, करुणा, और त्याग-हृति आदि सद्-गुणों का विकास विकास हमारे देश में हुआ है, उन्मा अन्त और नहीं नहीं दिखाई पड़ता।

मानवीय जीवन की पूर्ण विशेषता उसकी समन्वय की भावना है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय की यह भावना दिखाई देती है। धर्म, समाज, कार्य, राजनीति, और साहित्य-प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय का विकास हो गया। मानव-भावना सुन्दर प्रतीत होता है। धर्म के क्षेत्र में भक्ति, धर्म, और मान का सर्वोच्च समन्वय दिखाई देता है। जीवन के क्षेत्र में सत्त्व-भावना का विकास दिखाई देता है। इसी प्रकार समाजिक क्षेत्र में सत्त्व-भावना का समन्वय है। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी समन्वय का विकास हुआ है। साहित्य के क्षेत्र में मानव-हृदय की विशेषता प्रगुणों, जैसे—दर्प, शोक, दुःख, सुख, ज्ञान और मान का विकास मानव के ही रूप में किया गया है। इसी प्रकार कला और साहित्य के क्षेत्र में भी समन्वय का प्रतिपादन मिलती है।

भारतीय जीवन की हीरो विशेषता है, उसकी मानवता। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानवता पूर्ण रूप में प्रकटमान है। मानवता के अन्तर्गत है, अनुकूल। प्रत्येक कला की अनुकूलता की दृष्टि से ही देखकर भारतीय जीवन की मानवता है। भारतीय जीवन में मानवता होने के कारण उसने आध्यात्मिकता की भावना भी साहित्य है। आध्यात्मिक होने के साथ ही साथ भारतीय जीवन-संस्कृति और मानव है। शरीर और कला के क्षेत्र में—हमारे देश में अधिक उन्नति की है।

और अमली महर्षिजी वहाँ ने काल के क्षेत्र में संशोधन की शताधना कड़ी सम्पन्न में की है।

प्रकृति का चित्रण भी हिन्दी के साहित्य में हुआ है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, कि भारतीय जीवन की विवेकवाचक पूर्ण रूप से हिन्दी-साहित्य में प्रतिबिम्बित हो रही है; दूसरे शब्दों में भारतीय जीवन के अनुकूल ही हिन्दी साहित्य निर्मित हो रहा है। 'भारतीय जीवन' और हिन्दी साहित्य पर अब हम विचार करने हैं, तो यह बताने हैं, कि हिन्दी साहित्य का विकास भी भारतीय जीवन के उत्थान पतन के साथ ही साथ हो रहा है। हिन्दी साहित्य के चार युग — वीरगाथा काल, भक्ति काल, रीतिकाल और आधुनिक काल का निर्माण भारतीय जीवन के अनुकूल ही हुआ है। भारतीय जीवन जब विदेशियों के आक्रमण से क्षिप्त मिला रहा था, हिन्दी साहित्य का वह आदि काल था। आवश्यकता के अनुरूप उस समय वीर भाव पूर्ण कविताएँ रची गईं। इन वीर भाव पूर्ण कविताओं के काल को ही 'वीरगाथा काल' कहते हैं। इसके पश्चात् देश के जीवन में 'निराशा' और दुःख का वातावरण फैलता है। इस स्थिति के अनुरूप ही साहित्य के भीतर धार्मिक भावनाओं का विकास हुआ है, जिसे भक्ति काल कहते हैं। भक्ति काल के पश्चात् देश में शान्ति और स्थिरता दृष्टिगोचर होती है, जो 'शृंगार' के रूप में साहित्य के अन्तर्गत अभिभूत हुई है। यही शृंगार भावना साहित्य में रीतिकाल के नाम से प्रसिद्ध है। रीतिकाल के पश्चात् देश में यह जीवन का संचार होता है। सामंतीय सम्पदा और संस्कृति के संघर्ष से जीवन में नई चेतना का उदय होता है। 'साहित्य' में भी जीवन की नई चेतना व्यक्त होती है। तभी 'चेतना' के जागरण के परिणाम स्वरूप साहित्य में 'आधुनिक काल' की सृष्टि हुई है। आधुनिक युग नवीन चेतनाओं का युग है। आज के हमारे जीवन में नवीन चेतनाओं की एक झड़ार सी आ गई है। यद्यपि इन संपूर्ण चेतनाओं में 'जीवन' और श्वाविक्रम नहीं है, पर युग के अनुरूप उनका प्रवेश हमारे जीवन में होता आ रहा है। ज्यों ज्यों उनका प्रवेश हमारे जीवन में होता आ रहा है, त्यों त्यों उनकी छवि भी साहित्य में उतरती आ रही है। आत्मवाद, प्रयोगवाद, और प्रगतिवाद इत्यादि इनही नवीन चेतनाओं का फल है। नवीन चेतनाओं से उत्पन्न यह 'नई' साहित्य के प्रवाह में कहीं तक आगे बढ़ सकते, कुछ कहा नहीं आ सकता, पर साहित्य तो हमें अपने प्रवाह में लिपट हुए आगे बढ़ा आ रहा है।

काल-विभाग

विश्व का प्रत्येक साहित्य दो भागों में विभक्त है—कविता, और गद्य। विश्व के साहित्य का मन्थन करने से यह बात ज्ञात होती है, कि प्रत्येक भाषा के साहित्य में सर्व प्रथम उस रचना का आविर्भाव हुआ है, जिसे हम 'पद्य' या कविता कहते हैं। हिन्दी भाषा के साहित्य में भी सर्व प्रथम 'रचना' के रूप में 'कविता' का ही विकास हुआ है। अतः हम सब प्रथम हिन्दी-कविता के ही इतिहास और उसके विकास पर प्रकाश डालेंगे।

साहित्य जन समाज के हृदय का प्रतिबिम्ब होता है। जन समाज के हृदय में किस प्रकार के विचारों का उदय होता है, उसी के अनुसार उसके साहित्य का भी निर्माण होता है। 'हिन्दी' के जन्म से लेकर और आज तक उसकी जनता के हृदय में विचारों का किस प्रकार परिवर्तन हुआ है, और किस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक और साम्प्रदायिक स्थितियों ने उसके जीवन को आदिश्लित किया है—इसका पता हमें हिन्दी साहित्य के इतिहास से भली भाँति लग जाता है, क्योंकि जन-समाज के ये संदर्भ विचार हिन्दी साहित्य के कोष में सुरक्षित हैं।

साहित्य कोष में सुरक्षित जन समाज के उन विचारों की जब हम समीक्षा करते हैं, तो हम उन्हें चार भागों में विभक्त करते हैं—आदि काल, या बीर भाषा काल हिन्दी साहित्य (सन्वत् १०५०—११७१), पूर्व मध्य काल या भक्ति के चार काल-काल (११७५—१७००), उत्तर मध्य काल, या दीक्षि-विभाग काल (१७००—१९००), आधुनिक काल या गद्य काल (१९००—१०१०)। इसका तात्पर्य यह है, कि सन्वत् १०५० से लेकर ११५० तक जन समाज की चित्त वृत्तियाँ बीर भाषों की ओर मुख्य रूप से उन्मुख थीं। इसके पश्चात् ११७५ से उनके जीवन में परिवर्तन उपस्थित हुआ, जो १७०० तक मजि-माकनाओं के रूप में जन समाज के हृदय को आदिश्लित करता रहा। १७०० के पश्चात् पुनः परिवर्तन उपस्थित हुआ; परिश्राम स्वल्प जीवन का प्रवाह गहवार की ओर हुआ, जिससे साहित्य में भी शृंगारिक भावनाओं का समावेश हुआ। सन्वत् १९०० तक शृंगारिक भावनाओं जीवन में बनी रहीं। इसके पश्चात् जीवन में पुनः विचारों की खींची उठी, जिसके परिश्राम स्वल्प आधुनिक काल की शक्ति हुई।

कमल की चित्र कृत्तियों की दृष्टि से साहित्य की हमारे चार काशी में विभक्त किया है—यही 'चार काश' विश्व भर हिन्दी-साहित्य के नमूने इतिहास की सृष्टि करते हैं; दूसरे शब्दों में इन्हीं चारों काशी की समष्टि की हिन्दी साहित्य का इतिहास कहते हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है, कि चौर भाषा काश में कमल की चित्र कृत्तियों केवल चौरास की ही चौर अनुसूत की; दूसरे शब्दों में चौर भाषा काश में केवल चौर भाषों का ही विशिष्ट हुआ। अनेक काश की रचनाओं की समीक्षा करने से यह ज्ञात होता है, कि अधिक काश में 'काश' की तुल्य भावनाओं के अतिरिक्त भी रचनाएँ हुई हैं। जैसे—चौर भाषा काश में ऐसी भी रचनाएँ हुई हैं, जिन्हें हम मूलभाषिक रचनाएँ कह सकते हैं। इसी प्रकार रीतिरिवाज में भी ऐसी बहुत सी रचनाएँ हुई हैं, जो चौर भाषों से लड़ीत हैं। फिर यह ज्ञान उदभूत है, कि साहित्य के इस काश-विभाग का आधार क्या है। इसका उत्तर साहित्य के प्राचीन 'काश-विभाग' के नाम में ही समाहित है। विश्व विभाग का भी नाम रखा गया है, उद्योग यह समझीता है, कि यद्यपि उस काश के अन्तर्गत कव-कला की चित्र कृत्तियों का तुल्य भावनात्मक होना भी था, किन्तु उनमें चौरास, या भक्ति, या रीति, और या नवीन चेतनाओं का तुल्य रूप के समावेश था। विश्व काश की चित्र कृत्तियों में विश्वी प्रकृति यही है, उन्हीं के आधार पर हम 'काशी' का नाम रखा गया है।

यों ही हिन्दी-साहित्य का इतिहास चार काशी में ही विभक्त है, पर जब हम हिन्दी के साहित्य का दृष्टि टाकते हैं, तो ज्ञात होता है, कि साहित्य काश के बहुत पूर्व से संविकलित हिन्दी भाषा में रचनाएँ ऐसी चली आ रही हैं। यद्यपि इन रचनाओं की न तो कोई मूलकता है, और न साहित्य की दृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य ही निहित है किन्तु फिर भी इसका तो निश्चित ही है, कि हिन्दी के विकास में उनसे अधिक सहायता प्राप्त हुई है। एक साहित्य के विचारों के लिए इन रचनाओं के संरक्ष में भी काम प्राप्त करना अधिक आवश्यक है, क्योंकि इसका नाम प्राप्त करने बिना चौर भाषा काश की रचनाओं की भाषा और रीति का माली गति बीच न ही संभव।

चौर भाषा काश के पूर्व की इन रचनाओं की इन संविकलित की रचनाएँ कहिये, क्योंकि ये रचनाएँ विश्व काश में हुई हैं, यह भाषा और रीति की दृष्टि से संविकलित समझा जाता है, क्योंकि उन दिनों साहित्यिक चरित्रका यदि कम कम कम समाज के जीवन के सिद्धांत से नये मिलकती आ रही थी, और उसके स्थान की इन समाज की भाषाएँ, जिन्हें हम कहेंगे, और 'अभिव्यक्ति' रचनाएँ कह सकते हैं, बहुत बढ़ती आ रही थी। 'भाषा', रीति के इसी संविकलित में उन रचनाओं का निर्माण हुआ है। इसी लिए हम उन्हें अनेक काश की रचनाएँ कहते हैं।

सन्धि काल

हिन्दी साहित्य का शुरुआती पूर्ण इतिहास बीरसाहा काल से प्रारम्भ होता है। किन्तु हिन्दी भाषा में रचनाएँ बीरसाहा काल के बहुत पूर्व से होती चली आ रही हैं। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से इन रचनाओं में स्थापित नहीं है। पर भाषा और शैली के विकास में उनसे अधिक सहायता प्राप्त हुई है। अतः हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अध्ययन में इन रचनाओं का भी अधिक महत्व पूर्ण स्थान है। इन रचनाओं को हम 'सन्धिकाल' की रचनाएँ कहते हैं।

'सन्धिकाल' नाम से एक अर्थ किया हुआ है। भाषा के इतिहास में इस काल का उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी के जन्म के पूर्व अथवा 'अ' भाषाओं का नाम करण आधिपत्य था। जिस युग की हम बात कर रहे हैं, उस समय का कारण दो प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थी। एक तो साहित्यिक अथवा 'अ' थी, जिसका सम्मान केवल विद्वत् समाज में था, और दूसरी वे लोकियाँ थी, जो जन समाज में प्रचलित थी। सभी-सभी साहित्यिक प्राकृत में अधिक बुरावता का स्वरूप धारण कर लिया और वह जन समाज से बिलकुल दूर हो गई। जन समाज से दूर होने के कारण उसकी शक्ति क्षीय होने लगी। उस अथवा 'अ' का तो ह्रास होने लगा, और दूसरे जन समाज में प्रचलित लोकियाँ सुसंस्कृत होकर उसकी ओर आकर्षित होने लगी। परिणाम स्वरूप 'लोकियाँ' अथवा 'अ' से हिन्दी का जन्म हुआ। जिस प्रकार लोकियाँ अथवा 'अ' से हिन्दी का उद्भव हुआ, उसी प्रकार मागधी और नागर अथवा 'अ' भाषाओं ने भी अर्थ मागधी इत्यादि जन भाषाओं का जन्म हुआ, और इन्हीं में रचनाएँ होने लगी। एक ओर तो अथवा 'अ' भाषाओं में, जो सभी-सभी लोकियाँ होती आ रही थी, रचनाएँ हो रही थी, और दूसरी ओर अर्थ मागधी इत्यादि भाषाओं में भी रचनाएँ होने लगी, जो अथवा 'अ' से उत्पन्न होकर बढ़ रही थी। इस प्रकार लगभग युग की रचनाओं में दो दो लोकियाँ और दो दो भाषाओं का संगम दिखाई देता है; इसीलिए इन रचनाओं को हम सन्धिकाल की रचनाएँ कहते हैं।

आज हम जिसे हिन्दी कहते हैं, उसका प्रारम्भिक स्वरूप हमें मागधी में मिलता है। यही कारण है, कि हम हिन्दी साहित्य के इतिहास की लकी को अर्थ मागधी की उन रचनाओं से जोड़ते हैं, जो बीरसाहा काल के पूर्व उत्पन्न की गई थी। हिन्दी

का विस्तार होने पर कार्य सामग्री इत्यादि का समर्थन उसमें समायोजित हो गई, इत्यादि उसकी साहित्यिकता कायम रही न बढ़ सकी। साथ अपने क्षेत्र में विस्तार बोली के रूप में विद्यमान है। उनके साहित्यिक विस्तार पर हिन्दी की ही आलोचक होने का योग्य दावा है।

संवि कास संवत् ७५० के लेकर १२०० तक माना जाता है। संवि कास की यदि हम धार्मिक और साम्प्रदायिक युग की संज्ञा दें तो असुविधा न होगी। संवि कास युग का संवि कास के धार्मिक क्षेत्र में तीन प्रकार की मान्यताएँ विचार-विवाद की—बीड़, वैष्णव और साधु-कव्यदाय। संवि कास का पूर्ण साहित्य इन तीनों धार्मिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व है। साथ हम यहाँ तीनों ही धार्मिक इतिहासों पर कुछ रूप से प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

बीड़ धर्म के संस्थापक महात्मा कुड़वे। ईसा के ४८३ वर्ष पूर्व महात्मा कुड़वे ईश्वर धर्म की नींव डाली थी। इस धर्म की आधार-शिला साक्षात्, महाशक्ति, समता और दुःख-रहित निर्वाण की प्राप्ति थी। सभी समे: बीड़ मत का व्यवस्था प्रकार हुआ। एक प्रकार के यह धर्म की के कई देशों का धर्म माना जाने लगा। धार्मिक मान्यता ही होने के कारण समे: समे: इनके मूल में परिवर्तन की उपस्थिति होने लगी; परिवर्तन स्वयं ईसा की पच्चीस शताब्दी में यह ही व्यवस्था में विभाजित हो गया—'महाभारत', और 'हीन धर्म'। 'महाभारत' के रूप में बीड़ धर्म में लौकिक धर्मों का भी समाविष्ट किया गया; और निर्वाण प्राप्ति के लिए संसार की मजदूरी की प्रयत्नशील हो गई, साथ ही धर्म-विरोध की भी उदाहरण मिला। पर 'हीन धर्म' के रूप में बीड़ धर्म की मूल भावना को प्रकट करने लगा। 'हीन धर्म' का अर्थ 'छाया-धर्म' 'विद्वान्' और अज्ञान की बहाना बनाता पर ही निरवस्था था। पर जाने क्या कर जब महाशक्ति और सुमरिष्ठ भद्र का सावित्रीय हुआ, तब बीड़ धर्म की धार्मिक धर्मों का समता बनाया गया। कुछ साल में कई भाग्यशाली राजाओं ने भी बीड़ धर्म के धर्म में 'साक्षात्कार' उपस्थित की। राजाधाराओं के वैदिक धर्म प्रविष्ट के प्रकाश और इनके हीन धर्म के बीड़ धर्म की प्रविष्ट के मार्ग ही व्यवस्था का कर दिए, जिससे बीड़ धर्म एक प्रकार से निरवस्था-का हो उठा।

पर बीड़ धर्म के साधकों ने धर्म न छोड़ा, उन दिनों धर्मों और हीन मत का देश के प्रचार हो रहा था। जब समाज का सामर्थ्य की धर्म धर्म हीन मत की ओर बढ़ता जा रहा था। इसका कारण हीन मत की सामर्थ्य पूर्ण साक्षिण्य थी, जो राज्य, मन्त्र, और साक्षिण्य इत्यादि के द्वारा उत्पन्न की जाती थी। 'बीड़मत' के साधकों ने भी अपने मत के प्रचार के लिए राज्य, मन्त्र, और साक्षिण्य इत्यादि की सहायता ली। इसका ही नहीं, धर्म की निरवस्था के लिए बीड़ मत ने धर्म, समाधि, और साक्षिण्य साक्षिण्य की विधि के लिए भी प्रकाश किया जाने लगा। एक प्रकार बीड़मत धर्मों के द्वारा विद्वान् प्राप्त करने वाली का एक हीन धर्म मिला। जो हीन धर्मों के द्वारा विद्वान् प्राप्त कर लेने के, वे विद्वान् धर्म जाते थे। इन विद्वान् में 'कई देशों हीन

दूर है, किन्तु ललित में रचनाएँ भी की हैं। इन्हीं किताबों की ही रचनाएँ ललित के क्षेत्र में 'विद्वत्-ललित' के नाम से विख्यात हैं।

उन्हीं उन्हीं बीड़ बनीं कालों और कालों का केन्द्र बन गया। 'महाभारत' के सारे विद्वान् लोग ही गए, और उनके स्थान पर 'अथर्वशास्त्र' की प्रति आगम्य हुई। 'महाभारत' महाभारत के सबसे बड़े भागों में है। उनका प्रमुख केन्द्र दक्षिण का भी नहीं था। उनका भाग में का बीड़ बनीं का किलकुल अनुमान हो गया, जो भी नहीं हो बीड़ों की रचना का अनुमान केन्द्र था। ईसा के ५५० ई० के लगभग महाभारत में देवकी चक्र के रूप में 'अथर्व' और 'मैत्रेय' का सम्बन्ध दिया गया। इस प्रकार 'अथर्वशास्त्र' 'अथर्वशास्त्र' के रूप में परिचित हुआ। वह 'अथर्वशास्त्र' सम्बन्ध ही नहीं बल्कि एक चक्रावली, और इसके रचनाएँ इसका भी पूर्ण रूप से कायम पान हो गया।

'विद्वत्-काल' के क्षेत्र में एक और बीड़ मत की आया वह रही थी, जो दूसरी और तैत्तिरीय धर्म का प्रवाद की लोगों के हृदय की आस्थाधित कर रहा था। बीड़ और तैत्तिरीयों की धर्मों का सम्बन्ध स्पष्ट भावपूर्ण हो है, वह बीड़ धर्म की अनेकानेक धर्म धर्म हिन्दू धर्म के आधिकारिक अधिकृत है। तैत्तिरीय धर्मों के अनुसार तैत्तिरीय धर्म की स्थापना और 'कुलधर्म' के द्वारा हुई है। इन 'कुलधर्म' में ही धर्मों पर अन्य क्षेत्र धर्म प्रथम धर्म का प्रसार किया। 'आदि' कुलधर्म का नाम प्रतिष्ठित था, किन्तु ललित की 'धर्म' और 'अथर्व' के नाम की विद्या की थी। कुलधर्म के रचनाएँ प्रथम देव का आधिपत्य हुआ, जिसके द्वारा धर्म की स्थापना हुई। प्रथम देव की अनेक धर्मों का नाम आया था। उन्होंने अपने धर्मों के लिए एक विधि का निर्धारण किया, किन्तु 'अथर्व' विधि कहते हैं। उन्होंने अपने धर्मों के धर्मों के नाम की धर्म 'अथर्व', और 'अथर्व' की भी विद्या की। तैत्तिरीय धर्मों के अनुसार 'अथर्व' और 'अथर्व' का सम्बन्ध प्रथम प्रथम प्रथम देव के ही द्वारा हुआ है। प्रथम देव के रचनाएँ तैत्तिरीय धर्मों में शीर्षकों के रूप का उपलब्ध है। काय एक कुल २५ विधियों हुए हैं, किन्तु ललित प्रथम देव द्वारा स्थापित धर्मों के प्रकार और प्रकार में बहुत सारा धर्म दिया है। महाभारत शीर्षकों शीर्षकों में, किन्तु ललित द्वारा देव धर्म का सम्बन्ध पूर्ण और अर्थपूर्ण संरक्षण हुआ है।

तैत्तिरीय धर्म का विद्वान् 'अथर्वशास्त्र', और आनन्द है। तैत्तिरीय धर्मों में देवता की चित्र के आनन्द के ही रूप में स्वीकार किया जाता है। तैत्तिरीय धर्मों में देवता एक आदर्श धर्म है, जिसका संसार के कोई संरक्षण नहीं है। जो धर्म का निश्चय न मान कर, एक विद्वान् और धर्म 'अथर्व' के ही रूप में माना जाता है। 'अथर्व', 'अथर्व', और महाभारत की, तैत्तिरीय धर्मों के मुख्य रूप में प्रतिस्थापना की गई है। धर्मों धर्मों के 'अथर्व' और 'अथर्व' की संरक्षण प्रदान की गई है। 'अथर्व' की धर्म स्थापना तैत्तिरीय धर्म की अपनी विधि कहते हैं। तैत्तिरीय धर्मों के विद्वानों के अनुसार धर्मों की छोटी से छोटी धर्म में भी अथर्व की प्रति है। अतः तैत्तिरीय धर्मोंधर्मों की छोटी से छोटी

बीज तथा वनस्पतियों के प्रति भी 'दया' विस्तृत रूप में व्यक्त होती है। 'साहित्य' तीन चर्यों की प्रधान कल्प है। 'भाव', 'साहित्य', और 'ब्रह्म सदन' पर ही तीन चर्यों की संरक्षा सही की गई है। अतः ही, हमारे ने अपनी उत्पत्तियों से एक संरक्षा की और भी अधिक सुदृढ़ बनाया। उन्होंने तीन चर्यों की एक असीम दृष्टि से संसार के समस्त उपनिषद् किया। उनके प्रयत्नों से तीन चर्यों अधिक व्यापक और अधिक ही बन गया। उन्होंने नर-मोह की विचारण, मानवता की एक भूमि पर ही अपने चर्यों का संरक्षण किया, और 'दया' तथा 'कल्याण' की और से सब की निर्णय कर एक में मिलाने का प्रयत्नपूर्ण प्रयत्न किया।

सर्वप्रकार से एकताई से भाव संरक्षण का भी और देखने की निराला है। 'भाव संरक्षण' का साहित्यिक विचार प्रसार हुआ—एक संरक्षण में लोगों में प्रवेश है। कुछ लोगों का कहना है, कि लोगों की 'व्यवहार' व्यवस्था ही भाव संरक्षण के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। पर 'व्यवहार' और भाव संरक्षण के सिद्धांतों की सर्वोच्च चर्यों पर ही भी अधिक प्रतिष्ठित और प्राप्त होता है। 'व्यवहारियों' में सर्वोच्चता की व्यवस्था की। उनका 'साहित्य' इत्यादि में अधिक विस्तार पा। पर भाव संरक्षण ईश्वरता की प्रतिष्ठित पर प्राप्त किया गया है। भाव संरक्षण में साहित्यिक इत्यादि का ही विशेष निराला है। ऐसा मान होता है, कि 'व्यवहारियों' की विस्तृति के प्रतिष्ठित प्रयत्न ही भाव संरक्षण की प्रतिष्ठित हुई है, क्योंकि व्यवहारियों की बहुत ही सारी भाव संरक्षण में गई की जाती है। भाव संरक्षण का प्रसार सर्व साधारण में अधिक न ही गया। इतना बताने पर है, कि भाव संरक्षण 'योग' से प्रभावित है, और उसमें सही निराला प्रतिष्ठित है, जो सर्व साधारण के लिए अधिक सुदृढ़ होने के साथ ही साथ व्यवस्था की है। जैसे:—व्यवस्था की गईन का सर्वोच्चता बनना, और विविध रूपों में प्रवेश करना प्रयत्न।

भाव संरक्षण के साहित्यिक साधनों में सर्वोच्चता की गई जाती है। सर्वोच्चता की सर्वोच्चता में सर्वोच्चता की गई जाती है। यहाँ हम उन विविधताओं पर प्रकाश नहीं करते, यहाँ ही हम केवल इतना ही कहेंगे, कि सर्वोच्चता की एक सर्वोच्चता प्रयत्न में। उन्होंने विचार चर्यों का मत का प्रयत्न किया, वह भाव चर्यों के साथ से प्रतिष्ठित है। भाव संरक्षण के साधारण प्रयत्न किया है। अतः भाव संरक्षण ही सर्वोच्चता की व्यवस्था बनाता है, और उसमें से सर्वोच्चता विविधता गई जाती है, निराला प्रयत्न किया से है।

'भाव संरक्षण' एक, और योग का संरक्षण है। 'भाव' में 'योग' और साथ ही ही बहुतसा प्रयत्न की जाती है। 'भाव' संरक्षण में 'भाव' का सर्वोच्चता 'भाव' के रूप में किया जाता है। इस प्रकार भाव संरक्षण में 'भाव' की प्रभावता प्रतिष्ठित की गई है। भाव के साधनों में 'भाव' की प्रभावता दिया गया है। पर 'भाव' गुण की प्रभावता के बिना नहीं हो सकता। अतः गुण का भाव संरक्षण में अधिक प्रभावपूर्ण स्थान है। गुण की प्रभावता से 'भाव' भाव 'भाव' भाव का प्रभाव

प्रयत्न है। इन्द्रिय विषय के साथ ही साथ आत्मीय और मन की शुद्धता पर भी अधिक जोर दिया गया है।

निवेदनाथजी, जो नाम संवत्सरा के प्रलेख हैं, एक काली कवि हैं। उन्होंने कई कालों की रचना की है, जो संस्कृत में हैं। वह एक समय राम नामों संस्कृत में होने के बाद उनके मत का नहीं मालूम प्रचार में हो गया। यद्यपि उन्होंने संस्कृत की सीढ़ि का मत नहीं छोड़ा किन्तु, और उनके रचनाओं की। उस समय की मन नामों में, जिसे हम दिनों का कहें, हम यह कहते हैं, उनमें मिली हुई कई रचनाएँ मिलती हैं। उनके वचनात् नाम संवत्सरा के कुछ और कालों में भी अपनी रचनाओं के द्वारा उनके मत का प्रचारण किया है।

साहित्य बनता है विचारों का प्रतिबिम्ब होता है। उन समान में जिस प्रकार के विचारों की प्रमुखता होती है, उसी के आधार पर उसके साहित्य का भी निर्देशात्मक साहित्य होता है। सम्यक काल के उन समान के विचारों की सम्यक्ता का साहित्यिक परावरण कर हम उसके साहित्य की सम्यक्ता समझते हैं, वह हम उसके साहित्य की नींव समझते हैं। नींव कहाँ पड़ेगी—१ किंवदन्ति, २ गीत साहित्य, ३ नाय साहित्य, ४ शृंगार साहित्य, ५ मनोरंजन साहित्य। किंवदन्ति यह है, किन्तु सत्यतः सौंदर्य साधनसमय किंवदन्तियों के द्वारा निर्मित हुआ है। इसी प्रकार गीत साहित्य गीत साधनसमय सम्यक्ता के द्वारा निर्मित हुआ है। 'नाय शृंगार' के सदैव सम्यक्ता से भी सम्यक्ता के आधार के किंवदन्तियों की हैं। उसी की सम्यक्ता 'नाय साहित्य' के नाम के प्रतिबिम्ब है। 'शृंगार साहित्य' शृंगार सम्यक्ता का सुन्दर। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है, कि शृंगार सम्यक्ता सम्यक्ता साधनसमय के प्रतिबिम्ब का। यद्यपि सम्यक्ता सम्यक्ता से साधनसमय की प्रमुखता की, वह लौकिक प्रतिबिम्ब की भी इसका सम्यक्ता सम्यक्ता। 'सम्यक्ता' के साहित्य के सम्यक्ता का लौकिक प्रतिबिम्ब भी प्रमुखता है, की शृंगार, गीत, शृंगार मनोरंजन के रूप में प्रतिबिम्ब हुआ है।

सिद्ध बहिरंग का मुख्य सिद्ध कथनों के द्वारा देखा है। सिद्ध बहिरंगों में सबसे कमजोरों में सबसे ज्यों का प्रभावित किया है। इन कथनों की संख्या भी होती

सिद्ध संहिता के लगभग है, पर उनमें बीरह प्रबल है, जिससे नाम इस प्रकार हैं—१ लहरा, २ खमना, ३ गुग्गुला, ४ लुरा, ५ भिल्ला, ६ विमिला, ७ रायिका, ८ मुकटोला, ९ कुकुली, १० कमीला ११ कण्ठा, १२ मीनका, १३ मिनीका, और १४ बालिका । इन सिद्ध कवियों में लहरा, गुग्गुला, लुरा, और भिल्ला इत्यादि सिद्ध कवियों की रचनाएँ आज भी मिलती हैं । 'लहरा' आदि सिद्ध कवि हैं । इसका समय व० १४० निश्चित किया गया है । इसने अपनी रचनाओं में पंक्तियों की चतुर्धरा आठों दूर आत्यंतिक साधना पर बात प्रकर किया है । 'खमना' दूसरा सिद्ध कवि है । इसका समय संस्कृत ८३७ के लगभग माना जाता है । इसकी रचनाओं में बहुत बड़ी भावनाओं का उन्मेष हुआ है । इसकी

उत्तर रोम सिद्ध कवियों की रचनाओं में भी बहुत बड़ी मात्राओं, और अन्य भाषा की विविधों का बर्तन मिलता है।

सिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में अन्य और 'दूरबीन' पर प्रकाश डाला है। किसी-किसी सिद्ध की कबी से बहुत बड़ा या भी प्रसिद्ध हुआ है। किसी किसी ने योग रूप में राजधानियों के योग रूप और उनके मत तथा वैचार का भी प्रतिपादन किया है। पर अधिकतर कवियों ने, राजधानियों के युग होकर सदाचार की ही रक्षा की है। 'सिद्धांत' ने उत्तर के लिए भी दूर करने के लिए उत्तर के अर्थों की संरक्षित व्यवस्था की है, किन्तु यदि बहुत दृष्टि से उनकी रचनाओं का अध्ययन किया जाए तो उनके सदाचार की ही मर्यादा मिलती है। अधिकतर सिद्ध कवियों की दृष्टि 'महापुरुषवाद' की ही ओर है; जिसकी दृष्टि 'महा' और उपाय के योग से होती है, और जिसे हम आदर्श मान्य देखकर भी ही संज्ञा दे सकते हैं।

सिद्ध कवियों का आधिभारिक सिद्धांत सामाजिक वास्तव और सिद्धांतों के साथ साथ हुआ था। उन दिनों इस प्रदेश की सीमा कई भागों में, जिसका उद्भव भारतीय साम्राज्य के हुआ था। उन्हें मान्य ही इन दिनों कला की सीमा थी। सिद्ध कवियों की अपने मत का प्रचार कला में करना था। कला उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए अपने भावों की ही बना। उनकी संतुष्ट रचनाएँ कई भागों में ही पाई जाती हैं।

सिद्ध कवियों ने अधिकतर रचनाएँ आधिभारिक विषयों पर की हैं। कला उनकी रचनाओं में मुख्य रूप से कला रूप का आधिभारिक हुआ है। किसी किसी सिद्ध कवि ने, कदाचित् और वैचार की भाषा की है, कदाचित् एक प्राकृतिक हुआ है। कदाचित् बहुत बड़ी मात्राओं में भी अचार, रस की महत्त्व देने की मिलती है। 'रस' की दृष्टि के विचार करने पर सिद्ध कवियों की रचनाएँ कला-रस उत्तर अर्थों, कलात्मक साहित्यिक 'रस' के लिए उनकी रचना हुई ही गयी है। उनकी रचना का अर्थ है, 'साधनात्मक', और अपने अर्थ में नहीं, कि 'साधनात्मक' सिद्ध कवियों की रचनाओं में प्रतीत रूप से मिलता है।

सिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं के लिए सिद्ध प्रचार का बल भी प्रदात किया, उनके प्रचार उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए कला के 'महा' की समझा। सिद्ध कवियों की कला रचनाएँ कला में हैं, किन्तु हम 'लोक' के लोक कह सकते हैं। 'लोक' के अतिरिक्त उन्होंने 'लोक', 'बीच', और 'बीच' जैसे लोक विषयों में भी रचनाएँ की हैं, जो कलात्मक पूर्ण संज्ञा दिते या सकते हैं। किसी-किसी सिद्ध कवि ने बहुत बड़ा भी प्रतीत किया है।

महावीर स्वामी के पञ्चाङ्ग केन धर्मशुद्धियों में कई ऐसे लोक और महापुरुष हुए हैं, किन्तु उनकी रचनाओं के द्वारा केन सिद्धांतों का प्रचार किया है। हिन्दी भाषा केन साहित्य के प्रचार और प्रसार में इन केन लोक और कवियों ने

अधिक उदात्तता प्राप्त हुई है। यद्यपि जैन कवियों और कवित्रियों की संख्या अधिक है, पर हम नहीं देखते उन्होंने के नामों का उल्लेख करने, किसीने जैन साहित्य के निर्माण में अधिक योग दिया है। ऐसे उल्लेखयोग्य व्यक्तियों में स्वर्णदेव, आचार्य देव सेन, मादहचरण, महाकवि गुणदेव, पद्मचरण, मुनिग्रामसिंह, श्री समय देव सूरि, देवचन्द्र और सोमचन्द्र सूरि इत्यादि का नाम मुख्य है।

स्वर्णदेव जैन साहित्य के प्रथम कवि हैं। इनका समय विजय की साठवीं शताब्दी के आस पास माना जाता है। उन्होंने 'पद्म चरित जैन रामायण' की रचना की है, जिसका जैन साहित्य में अधिक उच्च स्थान है। जीवन की विविध दशाओं का वर्णन भी इनकी रचनाओं में मिलता है। आचार्य देव सेन की रचना का समय संवत् ११०० के आस पास माना जाता है। उन्होंने 'दर्शन चार' नामक एक विशेष ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें जैन धर्म के सिद्धांतों का कुदृष्टता के साथ प्रकाश डाला गया है। 'महाप्रबन्ध' देव सेन आचार्य के विरचित है। इनका समय दशवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। उन्होंने इतिहास पुराण की रचना की है, जो १५०० श्लोकों में है। महाकवि 'गुणदेव' अतिमाहाती कवि और बहुत बड़े पवित्र हैं। इनके द्वारा 'सामकुमार चरित' की रचना हुई है। पद्मचरण का समय दशवीं शताब्दी में माना गया है। उन्होंने 'महामा दण कथा' नामक ग्रन्थ की रचना की है। मुनिग्राम सिंह का समय १५५० के आस पास माना जाता है। इनकी रचनाओं में महाभारती मान-माहों की बहुत प्रशंसा की मिलती है। उन्होंने 'दोहा' और 'श्लोक' में आत्मविवेक विषयों पर ही रचनाएँ की हैं। इनकी रचनाओं का दृष्टि कोश अष्टम, महाप्रबन्ध, और विस्तृत है। श्री समय देव सूरि का समय स. १५०० के आस पास है। उन्होंने कई कवियों को टीका की है, और उन पर व्याख्याएँ भी लिखी हैं; इसलिये इन्हें आचार्य-वद का नाम दिया गया। 'देवचन्द्र' का समय संवत् १२५० के आस पास है। यह प्रसिद्ध जैन आचार्य हैं। उन्होंने 'विजय देवचन्द्र चन्द्रानुशासन' नामक महाप्रबन्ध ग्रन्थ की रचना की, जो अधिक प्रसिद्ध है। सोम चन्द्र सूरि एक जैन पवित्र हैं। उन्होंने महाप्रबन्ध में एक चरण की रचना की है, जिसका नाम 'कुमार चरित शीत' है।

इन जैन कवियों में जिस साहित्य की रचना की है, यही जैन साहित्य के नाम में प्रसिद्ध है। जैन साहित्य सिद्ध साहित्य की तरह चर्कोले नहीं है। जैन कवियों की दृष्टि नहीं आती किन्तु की और नहीं है, यहाँ उन्होंने अधिक विषयों का जो प्रस्तावना किया है। जैन कवियों ने आत्मविवेक विषयों का विषय करने के साथ ही अन्य जीवन के विविध समस्याओं का जो प्रबन्ध किया है। सांसारिक वस्तुओं पर भी जैन कवियों ने प्रकाश डाला है। जीवनको की जीवनियों की उन्होंने लिखे हैं, और आत्मिक कर्मों का अनुवाद भी उनके द्वारा हुआ है। महाप्रबन्ध की कथा भी जैन कवियों ने लिखी है। जैन साहित्य में वेम कथाएँ भी विविध रूपों में मिलती हैं।

इस प्रकार जैन साहित्य बहुत बड़ा है। प्रस्तावना की दृष्टि से हम उसके विषयों को

नाम साहित्य की शक्ति करने, जहाँ में मालेन्द्रनाथ, गङ्गिनी नाम, चर्चिताय, मालेन्द्रनाथ, मद्रुनाथ और गोपीचन्द्र नाम का भी नाम आता है। मालेन्द्रनाथ की गीतलताय की के गुण थे। उनमें योग की कलात्मिक शक्तियाँ थी। सभी एक उसकी एक पुस्तक का पता लग जाता है, जो संस्कृत में है। किन्तु वह जो कभी एक कथा में नहीं आता। गङ्गिनीनाथ कोमलनाथकी के शिष्य थे। इनका समय ऐसी शास्त्री के साथ चल माना जाता है। चर्चिता नाम की गीतलतायकी के शिष्यी में थे, और जहाँ के माधव थे। मालेन्द्रनाथ गोपीचन्द्र नाम के गुण थे। उनमें योग की कलात्मिक शक्तियाँ थी। 'मद्रुनि' का ही नाम मद्रुनाथ था, वह कालावर के शिष्य थे। गोपीचन्द्र मालेन्द्रनाथ के शिष्य थे। इनोंने राज्य-वैभव को छोड़ कर योग-साधन में अपने जीवन की समस्त शक्ति दे दी।

नाम साहित्य वैराग्य और योग का साहित्य है। नाम साहित्य के सभी कविों में 'योग' की आत्माय मान कर 'केलाय' और 'योग' का ही विषय किया है। योग में भी इन योग उनका मुख्य विषय है। इनके साहित्य में 'दक्षिण विद्या' की बात बहुत कर के मिलती है। मन और ज्ञान की साधना पर उन्होंने अधिक बल दिया है। इनके साहित्य में 'मन', 'चर', 'गुण', 'गङ्गिनी' और 'निर्दिष्ट' आदि शब्दों का प्रयोग बार बार हुआ है, जिनसे उनकी व्यक्तित्वबलता भी स्पष्ट होती है।

इसी एक साहित्य के धार्मिक साहित्य पर ही प्रकाश आता आता है। अब यहाँ धार्मिक दृष्टि कोश पर भी प्रकाश कर के प्रकाश आता आता है। जिन दिनों किन्हीं लौकिक साहित्य- और जैन साहित्य की रचना हो रही थी, इसी दिनों मुन्ना, मनीरज और मेन प्रकाश देते भी लोग थे, जिनका दृष्टि कोश पूर्णतः लौकिक था। यह किन्हीं और जैन कविों में भी, इनके शब्दों पर माना के रूप में गयी, उसकी वृत्त-रूपा, और इनके द्वारा नाम तथा दृष्ट-विशेष का विषय किया है। यद्यपि इनके इस विषय में आध्यात्मिक दृष्टि की ही मान्यता है, किन्तु फिर भी उनसे यह भी स्पष्ट हो है, कि वे जगत के जड़ मन्दार और जैन थे, जिनसे मोक्ष प्राप्त करते हैं, पूरा रूप से परिचित थे। इनके विषय में उनके परिचय की पूर्णता का ही आभास मिलता है। जैन और किन्हीं कविों के साहित्य की कई ऐसे कवि हुए हैं, किन्तु जिनके लौकिक दृष्टि कोश की ही आधार मान कर अपने साहित्य का रचना किया है। ऐसे लोगों के अनुसंधान, कर्म, और जैन साहित्य को भी नाम सुनने हैं।

अनुसंधान का समय संवत् १०६० के आस-पास माना जाता है। यह यद्यपि अनुसंधान था, पर इसकी आत्मा किन्हीं संस्कारों में पूर्ण रूप से दीक्षित थी। इनका एक ग्रन्थ लिखित है, जिसका नाम संदेश प्रकाश है। इसमें विविध श्रुतियों के आधार पर विशेषियों के संदेश का वर्णन उद्दीप्त रूप से किया गया है। 'कर्म' का समय संवत् ११०० के आस-पास है। यह दृष्टाती कवि था। इसकी बहुत ही श्रुत रचनाएँ मिलती हैं, जिनमें गङ्गाधर नामनाथों का विषय है। 'जमीर सुखी' में हिन्दी की

नाम साहित्य की शुरुआत 'माली' में मल्लेन्द्रनाथ, साहिबी नाम, चर्मनाथ, ज्योत्स्ननाथ, प्रह्लाद और मोक्षचन्द्र नाम का भी नाम आता है। मल्लेन्द्रनाथ की मोक्षनाथ की के सुत्र से। उनमें योग की छातीनिक समित्तों की। इसी एक उसकी एक तुलना का एक एक एक है, जो संस्कृत में है। किन्तु वह भी इसी एक प्रकार में नहीं आता है। साहिबीनाथ मोक्षनाथकी के शिष्य से। इसका समय तेरवी सताब्दी के आस पास माना जाता है। चर्म नाम की मोक्षनाथकी के शिष्यी के से, और जालि के वादक से। ज्योत्स्ननाथ मोक्षचन्द्र नाम के सुत्र से। उनमें योग की छातीनिक समित्तों की। 'प्रह्लाद' का ही नाम प्रह्लाद था, वह बालाचर के शिष्य से। मोक्षचन्द्र ज्योत्स्ननाथ के शिष्य से। इनमें एक-दूसरे की शुरुआत योग-शास्त्र में अपने अपने की मालीत किया है।

नाथ साहित्य वैराग्य और योग का साहित्य है। नाथ साहित्य के सभी कविओं में 'सिद्ध' की आदित्य मान का 'वैराग्य' और 'योग' का ही विषय किया है। योग में भी इस योग उसका सुत्र विषय है। उनके साहित्य में 'सिद्ध' 'विद्य' की बात मालीत से मिलती है। मन और प्राण की शक्ति पर उन्होंने अधिक बल दिया है। उनके साहित्य में 'पद', 'पद', 'कृति', 'वाक्य' और 'विचार' इत्यादि इनकी का प्रयोग कर कर हुआ है, जिससे उनकी व्यक्तित्वता भी एककी है।

हिन्दी एक संस्कृत के शक्ति साहित्य पर ही प्रभाव डाला गया है। यह वही शक्ति शक्ति शक्ति पर भी प्रभाव कर से प्रभाव डाला गया। फिर हिन्दी सिद्ध शक्ति साहित्य- और वैराग्य साहित्य की रचना हो रही थी, इसी दिनों श्रद्धा, मनोरंजन सुत्र ऐसे जो लोग थे, जिसका शक्ति शक्ति पूर्वतः शक्ति था। सर्व सिद्ध और वैराग्य कविों में भी, उनके शक्तियों पर माना के रूप में माली, उनकी शक्ति-प्राप्त, और उनके द्वारा प्राप्त तथा शक्ति-विषय का विषय किया है। अतः उनके इस विषय में आध्यात्मिक प्रवृत्ति की ही प्रभावता है, किन्तु फिर भी उसके वह ही प्रभाव ही है, कि वे शक्त के इस प्रकार की-रूप के, जिसे मोक्ष प्राप्त करते हैं, प्राप्त रूप के अनिवार्य से। उनके विषय में उनके शक्ति की पूर्वता का ही आभास मिलता है। वैराग्य और सिद्ध कविों के शक्तिशक्ति की कई ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने शक्ति शक्ति शक्ति की ही आचार मान कर अपने साहित्य का प्रभाव किया है। ऐसे लोगों में प्रह्लादनाथ, चर्म, और चर्मनाथ सुत्रों का नाम सुत्र है।

प्रह्लादनाथ का समय संवत् १-५० के आस पास माना जाता है। वह अतः प्रह्लादनाथ था, पर इसकी आभास हिन्दू संस्थाओं में पूर्ण रूप से दर्जित की। इसका एक एक प्रवृत्ति है, जिसका नाम शक्ति शक्ति है। उनमें शक्ति शक्ति के आचार पर शक्तिशक्ति के शक्ति का प्रभाव उद्भव से किया गया है। 'चर्म' का समय संवत् ११०० के आस पास है। वह एककी कवि था। इसकी बहुत ही शक्ति शक्ति मिलती है, जिसमें शक्ति शक्ति शक्ति का विषय है। 'चर्म' सुत्रों में हिन्दी की

सही सीढ़ी से चढ़ना पड़े है। हिन्दी भाषा के इतिहास में अमीर खुसरो की रचनाएँ अविनाशमान रहती हैं। उसका साहित्य विशेष और मशहूर बन की शृष्टियों से परिपूर्ण है। अमीर खुसरो के समय के भाषा वास्तव्यो संवत् १३५३ में एक और बलि हुआ है, जिसका नाम तुलना दाऊद था। तुलना दाऊद ने उसी समय एक ऐसा कथा लिखी थी, जो 'चंदौदास' के नाम से प्रसिद्ध है। इस रूप में हम 'दाऊद' की ही 'मेरा करेणदा' का बल्लभ कह सकते हैं। यद्यपि दाऊद की रचना काफी तक उपलब्ध नहीं हो सकी, और उसके संबंध में वह भी विद्वान् पूर्णक नहीं बता पा सके, कि उसकी प्रेम-कथा का मुख्य सामाजिकता की ओर है, या नहीं, किता, कि उसके दरवाजे बहिरी सुकुल, मंजल, और बानसी इत्यादि प्रेम-वातावरणक बहिरी की कथाओं का है, पर साहित्य के इतिहास में उसका अस्तित्व होने के कारण इतना ही विद्वान् ही है, कि उसके रूप प्रथम प्रेम-वातावरणक भाषा की शृंगार की। यदि उसके दरवाजे बहिरी से ही उसके ही मार्ग का अनुसरण किया हो तो आश्चर्य क्या।

सौंदर्यात्त में मुख्य रूप से दो प्रकार का साहित्य पाया जाता है। एक धार्मिक, और दूसरा लौकिक। धार्मिक साहित्य की तीन रूपों में विभक्त है। धार्मिक साहित्य का सन्धि काल के एक रूप ही वह है, जो सिद्ध कवियों के द्वारा सृजित साहित्य का हुआ है, दूसरा रूप वह है, जिसका निर्माण तीन कवियों के द्वारा हुआ है, और तीसरा रूप वह है, जिसने दुष्टन में वाच संवदाय के कवियों ने वाच लिखा है। लौकिकता का धार्मिक साहित्य अपने प्रथम रूप में अतिविशाल है। उसका निर्माण आदि संकलनार्थ के द्वैत धर्म को प्रतिबिम्बित करने हुआ है। इसलिये उसने विशेषतः वाचवाच्य भी पाई जाती है। कहीं कहीं तो उसने एकल कविक विशेष पर गया है, कि लौकिकता और अद्वैतता एक उसने विशेष ही-वर्ग है। दूसरा रूप, जिसका निर्माण तीन कवियों के द्वारा हुआ है, प्रथम रूप के नाम ही वाच मिलित हुआ है। किन्तु उसने सांसारिकता, सदाचार, और वैश्विकता है। उसका मुख्य भिन्न विशेष लक्षण की ओर है, और वह, लक्षण है वह तथा आत्म। तीसरा रूप, जो वाच कवियों के द्वारा बलि हुआ है, धार्मिक गुण और अतिरिक्त है। यद्यपि एक हीरने रूप का प्रथम प्रथम रूप के ही आचार पर हुआ है, पर तीसरे रूप में वह विशेषता है, कि उसका लक्षण सदाचार और वैश्विकता है। लौकिकता के धार्मिक साहित्य के इन लक्षणों में कुछ बातों में समता, और कुछ बातों में असमता है। यहाँ तक दोष और भावनाओं का प्रश्न है, जोसे में उपलब्ध है, दोनों ही संश्लेषण के प्रथम है, और दोनों ही अंध निराशा की तथा श्रद्धा में कामना नहीं रहते। किन्तु दोनों का ही लक्षण प्रथम-प्रथम है। सिद्ध साहित्य श्रद्धा की और समुक्त है, तीन साहित्य में प्रकृति और मिथुनि-दोनों ही भावनाओं का समावेश है, पर वाच साहित्य में केवल मिथुनि भावना ही विशेष रूप से पाई जाती है। लौकिक दृष्टि कोच अपने अपने दृष्ट पर दोनों में ही विद्यमान है।

परि भाषा के साहित्य निर्माताओं का केन्द्र ही स्थानी में था है—वाचदा,

और गुच्छत । अतः उनकी भाषाओं के दो स्वरूप भी हो गए हैं। यद्यपि इस इन दोनों स्वरूपों को ही गुजानी हिन्दी ही कहेंगे; पर यह तो सच है, कि दोनों का विशाल पृथक् पृथक् स्थानों में हुआ है, और दोनों में विभिन्नताएँ भी हैं। किन्तु कवियों का केन्द्र नासंश था । अतः उनकी भाषा में अर्द्ध भाषाओं के रूप विशेष रूप से मिलते हैं । तीन कवियों की रचनाओं का समान विशेष रूप से गुच्छत प्राप्त में हुआ है । अतः उनकी रचनाओं में नागर अवस्था के रूप अधिक मिलते हैं । साथ साहित्य का समान विचार, संसार, जगत्प्रेम, और रासकृताने के रूप का भी हुआ है । अतः उसने भाषाओं, और दोनों, साथ और कहीं कहीं इत्यादि के रूप भी मिलते हैं ।

'रस' के क्षेत्र में साहित्य रस का ही साहित्य में परिचायक हुआ है । संविद्याल के कविता की मुख्य प्रवृत्ति विवृति की ही और थी । अतः उनकी रचनाएँ मुख्य रूप से 'साहित्य' की ओर ही अभ्युत्थ हैं । किन्तु कवियों की रचनाओं में 'साहित्य' के साथ ही साथ गूढ़तर रस भी मिलता है । क्योंकि उनका समय बहुत कुछ प्रवृत्ति की ओर भी था । किसी किसी किन्तु कवि ने तो प्रवृत्ति की ही अपने काम का मुख्य आधार बनाया है । वह किन्तु का भाव है, वहीं गूढ़तर रस का परिचायक मुख्य रूप से हुआ है । संविद्याल के उत्तरार्ध में अमर सुन्दरी, सुन्दर, और अमर नामक ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने गूढ़तर रस की ओर मुख्य रूप से ध्यान दिया है । कहीं कहीं इतना और अर्द्ध-सुत रस की भी आकर्षणता मिलती है ।

संविद्याल हिन्दी-कविता का प्रारम्भिक काल है । अपने इस प्रारम्भिक काल में हिन्दी कलात्मक दृष्टि कोश से ग्रहण की । यदि हम संविद्याल की रचनाओं पर रस, भाषा, शैली, अलंकार, और छन्द की दृष्टि से विवेचन करें, तो निराश ही होना पड़ेगा; क्योंकि हिन्दी-कविता के उस शैक्षणिक काल में लोगों का ध्यान सभी 'कला' की ओर आकर्षित ही नहीं हुआ था । अतः संविद्याल की सम्पूर्ण रचनाओं में 'भाषा-विशेषज्ञ' ही विशेष रूप से पाया जाता है । किन्तु इसमें भी समझें नहीं, कि कविता के साथ ही साथ 'कला' भी चल रही थी । वहीं भाषा और रस के क्षेत्र में 'कला' चल रही थी, वहीं 'छन्द-कला' में भी समझें नहीं, कहीं कहीं कला का प्रादुर्भाव ही रहा था, जिसकी मलाफ़ हमें संविद्याल की रचनाओं में मिलती है । छन्द और शैली की दृष्टि से संविद्याल की रचनाएँ दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं । एक वर्ग में जो वे रचनाएँ आती हैं, जो शीत शैली में लिखी गई हैं, और जिन्हें 'कवीर्णित' कहते हैं, और दूसरे वर्ग की वे रचनाएँ हैं, जो 'शैली' में आकर्षण की गई हैं । संविद्याल में मुख्य रूप से इन्हीं दोनों शैलियों का प्रयोग हुआ है, पर किसी किसी ने बीरार्थ, गार, मोहक और सुन्दर आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है । कौनार्थ का प्रयोग अधिकतर कवियों की रचनाओं में मिलता है ।

वीर गाथा काल

वीर गाथा काल का समय संवत् १०५० से १३७५ तक माना जाता है। इसे खादि काल, या चुरस काल भी कहते हैं। हिन्दी कविता का यह प्रारम्भिक युग वीर गाथा काल- था। यह युग सन्धि का युग था; अर्थात् इसमें दो नाम करस का भाषा, और शैलियों का संघर्ष चल रहा था। एक भाषा और एक शैली वह थी, जो अपभ्रंश में थी, और जिसका प्रयोग विद्वानों के ही द्वारा होता था, और दूसरी भाषा तथा शैली वह थी, जो देश भाषाओं के रूप में जनता में व्यवहृत हो रही थी। ठहर अपभ्रंश में विद्वानों के द्वारा रचनार्थ होती थी, और द्धर कुछ ऐसे लोग भी थे, जो देश भाषाओं में भी कवितार्थ किया करते थे। द्धरि देश भाषाओं में रची जाने वाली कविताओं का विद्वानों के समाज में आदर नहीं होता था, पराउन्हीं जनता का पता प्राप्त था। अतः विद्वानों के द्वारा उन्नेचित होने पर भी उनका रनी-रनी- विकास होने लगा।

देश भाषाओं में रची जाने वाली कवितार्थ दो प्रकार की थी—धृंगार और नीति विषयक, तथा वीरता पूर्ण। इनके कवि जनता के बीच में रहने वाले कवि होते थे, जो चारस या 'भाट' कहलाते थे। इनकी पहुँच बड़े-बड़े राजदरबारों तक थी। वे राज-दरबारों से संचित होते थे। वे राज-दरबारों में अपनी शृंगार, नीति, और वीरता मूलक कवितार्थ अपने आश्रय दाताओं को सुनाया करते थे। इनकी शृंगार और नीति पूर्ण कवितार्थ रोहो थे, और वीरता पूर्ण रचनार्थ खम्प में हुआ करती थी। इनकी वीरता पूर्ण कवितार्थ बड़ी शूर्तिमयी और प्रायः सकारिणी हुआ करती थी। वे युग के अनुकूल अपने आश्रय दाताओं—राजाओं को उनकी वीरता, उनके पराक्रम, और उनके शौर्य की प्रशंसा में कवितार्थ सुन कर उनके भीतर वीर भाव उत्पन्न किया करते थे। उपरिप्रायः उनकी रचनाओं को अपने पुस्तकालयों में सुरक्षित रखते थे, और उनके उत्तराधिकारियों को भी अपना आश्रय प्रदान करते थे।

सामान्य लोग ही क्यों तक, इन्दी के खादि काल में यह परंपरा जारी रही। इस परंपरा में 'वीर भाषा' की मुख्य रूप से प्रचलनता थी। यही कारण है, कि इस परंपरा के युग को 'वीर गाथा' काल कहते हैं।

साहित्य कला की कलात्मिकता का प्रतिनिध होना है। जब साहित्य के भीतर जिस प्रकार की चेतना और विचार सामना होती है, उसी के अनुसार उसके साहित्य का सामाजिक और निर्वाण भी होता है। अतः बीर भाषा काव्य के साहित्य सामाजिक स्थिति की प्रति-निधि को सामने के लिये उस युग की सामाजिक और सामाजिक परिस्थितियों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। वह युग कान्ही राजपूतों के उत्तरादी का युग था। राजा हर्ष वर्धन की मृत्यु हो चुकी थी। हिन्दुओं के साम्राज्य का जो सूर्य चमकी छोड़ भस्मित हो रहा था, अब अस्त हो चुका था। देश के नीचत रूप देश छोड़ यन्त्रि साहित्यी कला न थी, जो संस्कृत देश की कान्ही राजपूत के बंसे रहती। अतः देश की दुःखों में रीत गया, और विविध राज्यों की सामना हुई। इन राज्यों में छेमा, गडौन, बीहान, कासगुज, और बंदेल आदि दुःख थे, जिनकी राजधानियाँ दिल्ली, कन्नौज, कन्नौर, आर, और काश्मिर, इत्यादि राज्यों में थी।

जबकि मुसलमानों का सामना सन् १२१ में ही हिन्द के राज्यों प्रदेशों में हुआ था, और उसके पश्चात् उनका साम्राज्य भी होने लगा था, पर उस समय हिन्दु सामन कला प्रकाश की। अतः मुसलमान कुछ दिनों तक हिन्दु के राज्यों प्रदेशों के लिये न बढ़ सके। हिन्दु के राज्यों प्रदेशों में भी, उनकी सामन स्थापित करने की सामनाई हुई न हो सकी। जबकि उनके सामनों के हिन्दु जीवन में किसी उत्पन्न कर दी थी, पर वे हिन्दु संस्कृति की दीक्षा को विना न सके थे। पर हिन्दुओं के हृदय पर उनका मार्गक हुआ। दूसरी ओर हर्ष वर्धन की मृत्यु के पश्चात् हिन्दुओं की सक्रिय विचार-विचार हो गई। उन्हें और समाज के नियमों के नाम पर हिन्दुओं के भीतर ऐसी निरुत्थित सक्रियता हो गई, जिससे हिन्दु जीवन सक्रिय हो गया। अतः समस्त हिन्दुओं के भीतर निर्वाण सक्रियता हो गयी। 'चर्म' और समाज के नियमों को लेकर, सामन में ही निर्वाण को लहर उत्पन्न हो गई। बीर, काव्य, और वैष्णव, जो देश के उत्पन्न थे, सामन में विवादी में बोल गये, और वह भूत बँटे, कि उनकी सामना की विमृष्टि में उनके विवाह की दीक्षा हो रही है।

इसी समय हिन्दुओं का विवाह, जब साम्राज्य के का में उत्पन्न-विचार की ओर के दीक्षा गया। यहूदु सामन की वे सामन्य पर लला सामनाई करते हिन्दुओं के जीवन की मय प्रकाश कर दिया। उसने यन्त्रियों को लला, यन्त्रियों की लला, और लला को बंदी किया। यन्त्रु फिर भी देशी राज्यों की विवाह मय न हुई। अतः मुसलमानों के हमले पर हमले होते जा रहे थे, और फिर देशी राज्यों सामन में ही एक दूसरे के युग का कर एक दूसरे के सामना की सामना में अंतम में। देशी राज्यों की इस युक्ति सामना का सुझावों में सामन उत्पन्न, उसने सामन्य पर बार बार सामन्य करते सामन के बहुत से नू सामन उत्पन्न कर दिए। दिल्ली के बीहान राजा गुर्बीराज ने सक्रिय बार सुझावों की देश के बाहर विवाहों का संकल्प किया,

पर इस बार अपने संकल्प में वह कुलधर्म न हुआ। सामाजिक और जन वेदी के कारण पुनर्विवाह की परम्परा हुई। पुनर्विवाह के स्थापित कराई होने के साथ ही साथ हिन्दुओं की भाषा बस्य हो उठी। देश में चाहे और संसार में केवल संसार तक मुसलमानों की शासन बस्य स्थापित हो गई। मुहम्मदगोरी ने राजे राजे करीब सत्तरादि राजों का भी, जिन्होंने पुनर्विवाह के विषय उनकी सहायता की थी, दण्ड कर लिया। मुहम्मदगोरी के बचनानुसार चाहे और मुसलमानों का शासन का गया। मुसलमानों का शासन सत्तराह की राजा से हिन्दुओं के जीवन को व्यस्त करने लगा। पुनर्विवाह के हिन्दू राज्य की भी, जो एक राजाजाली और संगठित राज्य का, बचन-शासन का स्थापित होता गया। मुहम्मद गौरी के बचनानुसार ही पुनर्विवाह पर भी शासन होने लगा। मुहम्मद गौरी ने पहले ही पुनर्विवाह पर शासन का किया था। राज्य में अलाउद्दीन खिलजी ने इसे पूर्ण रूप से व्यस्त कर दिया। इसी प्रकार बालास, बहीरा, और ग्वालियर राजादि सभी हिन्दू राज्यों पर मुसलमानों की विजय-पराका प्रदर्शने करी, और हिन्दुओं की भाषा का स्थापित हो गया।

मुसलमानों के शासनपर और विजय के कारण बिल प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन हुआ, इसी प्रकार सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र में भी परिवर्तन का पाद हुए रहा था। हिन्दू साम्राज्य का सत्ता होने के साथ ही साथ बौद्ध धर्म का और ही गया, और उसके स्थान पर पुनः वैदिक धर्म की स्थापना हुई। इसी धर्म के समय में ही वैदिक धर्म की विजय बालास प्रदर्शने करी थी। पर हिन्दू साम्राज्य का सत्ता और विवेचनों के शासनपर के कारण धर्म-राजि संसार में भी समस्तसत्ता उत्पन्न हो गई। देश, राजा, और वैदिक, जो वैदिक धर्म के मुख्य धर्म के, शासन में ही विचारों के शासन हो गए, जिससे अन्तर मनोवाचिन्म पैदा हो उठा। समस्तसत्ता राजाओं से, जो क्षत्रिय से, देश और राजा सभी की सत्ताका, जिससे उनके विचार में अधिक सहायता प्राप्त हुई। समाज की समस्त क्षत्रियों के ही क्षत्र में थी। समाज से ही क्षत्रियों की और राजा समस्त से। उनमें साम्राज्य और वैशासिक की सत्ता विवेचन रूप से थी। उनकी क्षत्रियों की बीजाक्षरी और प्रति सहायता थी। राजाओं में बर्तों का गुण था, बर्तों उनमें सुखधर्मों की थी। उनकी सुखधर्मों से सत्ता बर्तों सुखधर्म उनका वैदिकसत्ता मोह था। जे जाने व्यक्तिसत्ता सुखी, और क्षत्रियों की सत्ता धर्म के क्षत्रियों की सत्ता नहीं देते थे; परिक्षाम सत्ता उनमें सत्ता से संकल हुआ ही करते थे, जिससे देश और सत्ता के मुख्य क्षत्रियों में सत्ता-वार सत्ता स्थापित होती थी।

क्षत्रिय राज्य सत्ता के कारण अपने की क्षत्रिय सत्ताओं से। क्षत्रियों का शासन-विचार क्षत्रियों का। धर्म के क्षेत्र में क्षत्रियों की ही सत्ता थी। समाज में सत्ता हुआ भी क्षत्रिय अपने की सत्ता से क्षत्रिय सत्ताओं से। समाज से सत्ता और सत्ता प्राप्त करना ही उनका क्षत्रिय था। समाज के क्षत्रिय धर्म के क्षत्रियों की से क्षत्रिय सत्ताओं से।

उसी प्रकार किंगड यह भाषा है, जो अपनी बलिदानों के 'बीर' और 'वीर' भाव का हृदय में समावेश करती है। जो हो, 'किंगड' एक आधुनिक भाषा है, और उसका महत्व पूर्ण स्पष्ट है। 'किंगड' भाषा देश की भाषा का नाम है, जो वह प्रदेश में बोली जाती थी।

बीर बाबा काज का साहित्य दो कालों में विभक्त है—प्रथम काल के साहित्यिक रूप में, बीर बाबा कालों के रूप में । सर्व प्रथम हम उस साहित्य पर प्रथम प्रकाश डालना चाहेंगे, जो प्रथम काल के रूप में है । बीर बाबा काज का प्रथम प्रकाश काल सुवर्ण काल है, जिसके ऐतिहासिक नाम दशमाल विभव है । 'सुवर्ण काल' में बिबीर के द्वितीय सुभाष, जो, जिसका समय विजयी ई० १७७०-१७७५ तक माना जाता है, बीरबाबों का वर्णन था । बिन्दु यह प्रति 'सुवर्ण' है । काज दशवीं की प्रति प्राप्त है, इसमें महाप्रताप अक्षयविंद तक का वर्णन है । दूसरे बात यह है, कि 'सुवर्ण काल' की मौलिकता विस्तृत हो गई है, बीर इसमें नवीन साहित्यिकों जोड़ी गई है । मौलिक 'सुवर्ण काल' किताब का नाम था—दश संभव में विजयवाक्य का जो कुछ पढ़ी गया था कथना ।

[illegible]

दुग्धोत्पाद एसे कतिपय एक प्रकल्प सामान्य है, पर उसकी कल्पना समझने की जरूरत है।
माराष्ट्र जैसे प्रकल्प सामान्य की कोर्ट में नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है, कि
उसमें प्रकल्प सामान्य की कोर्ट में नहीं जाई जाती। प्रकल्प सामान्य में जिस प्रकार
सोपान का बहुमुखी विषय प्रस्तुत किया जाता है, उस प्रकार की कोर्ट में प्रकल्प दुग्धोत्पाद
एसे में नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त एसे में केवल दुग्धोत्पाद के अतिरिक्त सोपान
का प्रतिनिधित्व है, फिर भी वाणिज्य के क्षेत्र में एसे का महत्व है। उसकी कल्पना
की जाती है। उसका विषय विचारण करने में एक का समर्थन है।

राष्ट्रों के सम्बन्धित कानून अन्तर्गत और राष्ट्रों के संरक्षण में कई प्राविधिक सम्बन्धित हैं। जहाँ जहाँ है, कि कानून गुणवत्ता का सम्बन्धित नहीं था, और उसके साथ राष्ट्रों में

साथ भी रहता था, पर राखी की भी उल्लिखी उपलब्ध है, उसका वर्णन करने से यह पता चलता है, कि वह एक कवि की कृति नहीं है। राखी में कई चरित्रांशों और संदर्भों का भी उल्लेख है। उन संदर्भों और चरित्रांशों को आधार मान कर यदि कुछ निर्माण करने का प्रयत्न किया जाता है, तो उनमें कैपटीन और 'पैकन' नाम जाता है। कदा: यह नहीं कहा जा सकता, कि काव्यमान 'राखी' में कितना अंश चन्द्रमोहारी का है, और कितना उसके चरित्रात् जोड़ा गया है। इस बात की पुष्टि राखी के छन्दों से भी होती है। राखी में प्राचीन काल के लेकर काव्यमय भाव एक के छन्द मिलते हैं। इससे यह बात और भी निश्चित मान पड़ती है कि राखी में श्रेष्ठ का अंश बहुत है।

बीर भाषा काव्य के प्रथम काव्यों के रचयिताओं में यह कैपटीन, मधुकर, सारंग पर और नरसिंह का भी नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। यह कैपटीन कवचन्द्र का दूसरा नाम था। उसने कवचन्द्र प्रभाव नामक प्रथम काव्य की रचना की है, जिसमें कवचन्द्र के चरित्र का गुणवत्ता है। मधुकर ने कवचन्द्र का चरित्रात् की रचना की है, जो कवचन्द्र के ही गुण मान कर आधारित है। इसी प्रकार सारंग पर ने इसी नाम और नरसिंह ने विभव नाम राखी लिख कर प्रसिद्धि प्राप्त की है।

बीर भाषा काव्य के प्रथम काव्यों के अतिरिक्त बीर राखी के रूप में भी एकनाई की गई थी। बीर राखी के रूप में भी प्रथम रचना मिलती है, यह कैपटीन राखी और गीत है। कैपटीन राखी के रचयिता का नाम नरसिंह यादव था, जो कैपटीन का ही सम्बन्धीन था। कैपटीन राखी की रचना वर्ष १९१५ में हुई थी। यह ही राखी का एक अंशमय रूप है। यह राखी में विस्तारित है, इसके कुछ नामक भागों में गीत देव है। इस में कैपटीन के भावना के बीचमान प्रचार की कथा राखी के विवाह और विवाह के चरित्रात् किसी बात से सम्बन्ध होकर उड़ीया चरित्रात् की कथा का वर्णन है। कथा का विस्तार अतीव्याप्त रूप से किया गया है। कथा की सीलिकता पर विचार करने से यह प्रत्यक्ष होता है, कि उसका प्राथमिक अंश काव्यमय है। क्योंकि इतिहास से प्रत्यक्ष होता है, कि कैपटीन देव के ही वर्ष पूर्व ही महारा के प्रचार नाम बीच का अन्वेषण ही प्रथम था। कदा: उसकी कथा के बीच बीच देव के विवाह की बात कथित मान पड़ती है।

कैपटीन देव राखी पर गुण की छाप भी पड़ी है। उसी छाप में सीर का विवरण है, और न किसी गुण का ही वर्णन किया गया है। एक प्रकार से इसमें अतिरिक्त गीत है, जो बहुत ही इसके और निरर्थक के हैं। इसकी भाषा भी अतिरिक्त न होकर प्राचीन है।

बीर राखी के रूप में दूसरा कथा काव्य अंश है। काव्य अंश की रचना किसी द्वारा हुई है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर कदा: मुक्ति के आधार पर सीर इसके रचयिता का नाम अतिरिक्त बताते हैं। कुछ लोगों का कथन है, कि

आलु संत वन्द करदाई कुल पुन्नीराव राखे का ही एक संत है। पर पुन्नीराव राखे और आलु संत पर विचार करने से दोनों में अन्तर जान पड़ता है। क्योंकि पुन्नीराव राखे से 'महोबा' संत का जो वर्णन है, उसके 'आलु संत' बहुत कुछ मिलता-जुलता है, पर दोनों में अधिक अंतर है। पुन्नीराव राखे से शिष्टो व उत्कर्ष का विचार है, पर 'आलु संत' से महोबा के उत्कर्ष के विषय खींचे गए हैं। पुन्नीराव राखे पुन्नीराव के जीवन और उसके बीरताओं को साधारण भाव से चित्रित हुआ है, पर आलु संत की रचना का आधार कबीर का गौरी राखे वचनबंध, और महोबा का चन्देस राखे वचन है। दोनों की मार्ग, और वर्णन शैली में भी अधिक अन्तर है। अतः 'आलु संत' की सत्यता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता।

'आलु संत' में महोबा के दो अतिशय शीघ्र के जीवन का वर्णन किया गया है। वे अतिशय शीघ्र हैं—'आलु' और 'उदल'। दोनों ही महोबा के चन्देस राखे वचन के हवाले से कहे हैं। आलु संत इनकी ही शीघ्र, और बीरताओं से प्रेरित किया गया है। इनके शीघ्र को हीराली, और आश्चर्य है। इनके शीघ्र का अन्तर भाव में सर्वोच्च अन्तर है। अन्तर के दिनों में, प्रति-प्रति में आलु संत के हीराली शीघ्र माने जाते हैं। क्योंकि इन शीघ्रों में सदिग्विषय नहीं है, पर इन बातों से कलौजार नहीं किया जा सकता, कि वे आश्चर्य हैं, और इनमें दुष्ट की आदिगति करने की क्षमता है।

'आलु संत' के जो शीघ्र इस समय मिलते हैं, उनमें अनेक वास्तविक शीघ्र हुए रहे गए हैं; वह हीराली-हीराली कुछ नहीं का सकता। शीघ्र शीघ्र के कारण इनमें अनेक प्रकार के शीघ्र हुए गए हैं। इनके शीघ्र अनेक रूपों में प्रकटित हैं। इनके शीघ्र में अतिशय शीघ्र, और अतिशय के शीघ्र तथा शीघ्रों के वर्णन में अतिशय शीघ्र के अतिशय भी पाई जाती है।

श्री राधा काल की समाप्ति के साथ ही कला की शीघ्र काल की भाषा में वास्तविकता का अन्त वचन दिया जा, और इनमें कुछ कुछ रचनाई भी की जाने लगी रचनाई सभी की। कला की शीघ्र काल की भाषा में रचनाई करने वालों में अनेक शीघ्र, और अतिशय का नाम उल्लेखनीय है। अनेक शीघ्रों शिष्टो का शिष्टो का। अन्तर समय संत १२२० के बाद का नाम अन्तर है। वह शीघ्र का शीघ्र और अतिशय शिष्टो का। अन्तर कला की शीघ्र काल की भाषा में शीघ्र, अतिशय और अतिशय शिष्टो का। अन्तर वास्तविक शीघ्र शीघ्र इन रचनाओं का कुछ भी नहीं है; पर भाषा के अतिशय में शीघ्रों की रचनाओं का अतिशय है।

विवादी शिष्टो के शिष्टो में। अन्तर रचनाओं में अतिशय शीघ्र का नाम अतिशय है; पर अन्तर की शीघ्र शीघ्रों के अन्तर शिष्टो है, जो शीघ्र

की उपलब्धिशीं कहे जाती हैं। अतः हिन्दी भाषा के इतिहास में उनकी रचनाओं का भी स्थान है।

बीर भाषा का काल का संतुष्ट साहित्य बीरता के स्तरों के पर्यन्तों है। संतुष्ट साहित्य का संभव करने पर उसमें एक प्रवृत्ति मिलती है—राजाओं का वर्णन।

बीर भाषा का काल के	साहित्यिक कविता में सामने सामने राजाओं की बीरता,
साहित्य का सिद्धान्त	बीर उनके शौर्य के विषय के रूप में उनका वर्णन
कोकम	ही किया है। वर्णन में साहित्यिकता का अंश कम

बीर काल का साहित्य है। उनकी प्रवृत्ति सुद्धों में वर्द्धित करने सामने सामने राजाओं के शौर्य का कतिरंजन पूर्ण विषय करने ही की बीर है। कतिरंजन पूर्ण विषय करने में वे ऐतिहासिक कालों की भी उल्लेख कर-बैठे हैं। उनका पूर्ण ज्ञान कतिरंजन में विषय करने की ही बीरता, अतः उन्होंने संवत्, विभिन्न, और कालों के रूप पर भी बहुत कम स्थान दिया है। वहीं वहीं विभिन्न, और कालों का वर्णन मिलता है, वहीं भी कालों में ही साहित्यिक अर्थ मिल गया है।

बीर भाषा का काल की मुख्य प्रवृत्ति सामने सामने के शौर्य का कतिरंजन पूर्ण विषय करने की बीर ही रही है, पर वहीं वहीं एक दूसरी प्रवृत्ति मिलती है, बिना हम नृणात्मिक प्रवृत्ति पर कालों हैं। यद्यपि नृणात्मिक प्रवृत्ति के रूप में भी सामने सामने के शौर्य वर्द्धन की ही माफता है, पर जब शौर्य वर्द्धन में भी उनकी नृणात्मिक प्रवृत्ति का काल मिलती है। अतः यह कहा जा सकता है, कि बीर भाषा का काल में बीर वर्द्धन की प्रवृत्ति के साथ ही साथ नृणात्मिक वर्द्धन की भी प्रवृत्ति थी।

बीर भाषा का काल भी संतुष्ट रचनाएँ विभिन्न भाषा में हुई हैं। उन समय विभिन्न ही उन स्थानों की भाषा थी, जिन स्थानों में बीर भाषा का काल के साहित्य का निर्माण हुआ है। बीर भाषा का काल का साहित्यिक साहित्य राजस्थान में ही निर्मित हुआ है। अतः 'विभिन्न' में राजस्थानी भाषा के स्तरों का मिश्रण सामाजिक ही है। उन दिनों पुन की माँग बीरता की थी, और विभिन्न कालों सामाजिक प्रवृत्ति के कारण बीरता के लिए वहीं उल्लेख की। अतः राजस्थान के चारों ओर कविता में अपनी रचनाओं में विभिन्न भाषा का ही प्रयोग किया। पुन की माफताओं के अनुसार काल होने के कारण बीर भाषा का काल में विभिन्न का साहित्य विभिन्न हुआ, पर वहीं का काल वर्द्धन होने के साथ ही साथ उनकी रति मन्द पक्ष पर निष्पन्न हो गई।

बीर भाषा का काल का मुख्य रस बीरता है। पर वहीं वहीं नृणात्मिक रस भी बीरता-रस हुए हैं। नृणात्मिक के दोनों ही रूप-स्वरूप और विभिन्न बीर भाषा का काल के साहित्य में मिलते हैं। पर इनका विभिन्न स्वरूप काल के न होकर 'बीर रस' के स्वरूप ही हुआ है। सुद्धों के वर्द्धन में वहीं वहीं बीर बीरता रस की माफता हुआ है। साहित्यिक अर्थ विभिन्न भाषा के अर्थ है, किन्हीं दूध, माफता, और कतिर इत्यादि करते हैं।

भक्ति काल

भक्ति काल संवत् १३०३ से १७०० तक माना जाता है। जिस प्रकार वीर गाथा सरस अपनी वीरता पूर्ण रचनाओं के लिए प्रसिद्ध है; उसी प्रकार भक्तिकाल अपनी भक्ति काल के उद्भव भक्ति विषयक रचनाओं के लिए प्रसिद्ध है। भक्ति का कारण का यह नाम भी इसी लिए पड़ा है, कि इस काल में विशेष रूप से भक्ति विषयक ही रचनाएँ हुई हैं। सभी तक जिस हिन्दी में वीर रस से ज्ञात प्रीत रचनाएँ होती थीं, उसमें सहसा भक्ति विषयक रचनाएँ किस प्रकार होने लगीं, और जिस प्रकार एक नवीन युग की सृष्टि हुई, इस पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है।

वीर गाथा काल में इस काल पर प्रकाश डाला जा चुका है, कि उस समय देश पर यवनों के आक्रमण हो रहे थे। चौदहवीं सताब्दी तक देश में यवनों के आक्रमणों का सामना किया। उसके पश्चात् देश में निर्जीवता बौढ़ गई। जो देशी राजा अभी तक यवनों के आक्रमण का सामना कर रहे थे, वे वा तो लड़ते लड़ते थक गए, और वे उनकी शक्ति विशेष हो गई। देशी राजाओं में मुसलमानों से युद्ध करने की भावना समाप्त हो हो गई। देशी राजाओं में युद्ध की भावना समाप्त हो जाने के कारण अब उन्हें 'वीररस' की कविताओं की आवश्यकता भी न रही। अतः अब तक उनके दरबारी में जो वारण और माद वीर रस की रचनाएँ किया करते थे, उनके लिए द्वार बंद हो गया। इस प्रकार हिन्दु की 'वीररस' की कविताओं के निर्माण का एक प्रकार से अन्त हो गया।

द्वार देशी गुप्तियों में पराक्रम की भावना का संचार हुआ, और ऊपर यवनों के आत्माचार में संशय लग गए। विरोध की भावना की समाप्ति के साथ ही साथ यवम चारी और देश में फैल गए; और लूट-खसोट मचाने लगे। हिन्दी में मुसलमानों का शासन स्थापित हो ही चुका था। सभी कभी बिहार, बंगाल, कन्नौज, काशीबर, और आजमेर इत्यादि स्थानों में भी मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया। संयुक्त देश में एक राज स्थान ही ऐसा था, जो समय समय पर यवनों से मोर्चा लिया करता था। पर पारस्परिक फूट और स्वार्थ-परता के कारण, स्वाधीनता के पक्ष में अधिक आहुति देने पर भी उनके सफलता के दर्शन न हो रहे थे। अतः हिन्दुओं के भीतर निराशा और दैन्य की भावना बढ़ती ही जा रही थी। ऊपर

वर्गों का आर्थिक और सामाजिक स्तर की नीति उभार रहा था। हिन्दू जीवन की, जब वर्गों के बीच वर्गों की निम्नी उभार की संरक्षित भाषा के रूप में रही, तब उसका भाषा 'देशीय' की ओर आकर्षित हुआ। 'विदेशी' और वीर्यवान् भाषा के जाने बाद का निम्नी ओर से कोई उभार न देता कि 'देशीय' का बहाल किया; वह अल्पकाल में मरि की भाषा के रूप में रहा, और वीर्यवान् उसका विकास होने लगा। भाषा के मरि भाषा पूर्ण रूप का सहित के उभार की प्रतिफल रहा, और 'मरि भाषा' का उभार हुआ।

मरि भाषा की रचनाओं पर विचार करने के पूर्व उसकी राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक स्थिति पर विचार कर लेता। सामाजिक व्यवस्था है। क्योंकि मरि भाषा राजनीतिक, सामाजिक की रचनाएँ पूर्ण रूप से उनसे प्रभावित हैं। वहीं और धार्मिक स्थिति वह राजनीतिक स्थिति का प्रत्यक्ष है; उसका कुछ बिना बिना बर्णित किया जा सकता है। फिर भी उसे और भी अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से कुछ विचारों और भी उभारों की जा रही है। जब देश की हिन्दू राज्य व्यवस्था के रूप में के अधिकार में आ गई, तो हिन्दुओं की स्थिति द्वितीय-वर्ग की गई। वीर्यवान् दुर्लभताओं का आग्रह करने लगा। वही पूर्ण हिन्दू राज्य जीवन के रूपों में जाने लगे। अन्तर्गत विचारों और भाषा के हिन्दू रूपों पर अधिकार स्थापित करके दक्षिण भाषा के रूपों पर भी अधिकार करने लगा। उसने राष्ट्रीय दक्षिण भाषा के, देवनागरी, पलिगपुर, बरगल, बरगल और बर्गलक इत्यादि रूपों पर अधिकार स्थापित कर दिया। निम्न गरीबों के कुछ हिन्दू राज्य की रूप में, वे भाषा की निम्नी में भाषा के। सामाजिक और विचार रूपों में हिन्दुओं की रूप अन्तर्गत की, पर भाषा विचार उन पर अधिकार की की रही है, और वर्गों का आर्थिक उन पर भी पूर्ण रूप से रहा था। इस प्रकार राजनीतिक भाषा में भारी और वर्गों का आग्रह रहा था। वर्गों के रूप में भाषा की रूप अधिकार उभार हो उठी की, कि वे भाषाओं पर रूप करेंगे। अन्तः रूप उनका भाषा अन्तर्गत की और रूप था। रूप के रूप-रूप पर रूप लगे थे, और अन्तर्गत की रूपों से निम्नी और वीर्यवान् भाषा के रूपों पर रूप करने वर्गों में वीर्यवान् करके भाषा संरक्षित करने में संलग्न थे। वर्गों की इस विचार के बारे में भाषा में रूप का रूप उभार कर रहा था। पर हिन्दुओं के रूपों उनके अधिकार का कोई उभार न था। हिन्दू पूर्ण रूप के विचार और विकास थे। उनमें एक ही ही हुआ की। विचार के रूप कुछ एक ही की, वे वर्गों के विचार कर रूप-रूप में संलग्न थे। भारी और निम्नी और देश का अन्तर्गत रूप हुआ था। निम्नी और देश के रूप अन्तर्गत में लगे की भाषा देश की ओर गया, और लोग 'बाहिमार्ग', दुर्लभ उभार। भाषा का रूप 'बाहिमार्ग' की मरि भाषा की रचनाओं में प्रकटित हुआ है।

राजनीतिक भाषा की नीति की रूपों के रूप में भी निम्नी का भाषा-रूप

'मिर्तु'श' पन्थ सामाजिक पन्थ है। कबलि यह पन्थ लाल के शिरद बरत, खीर कुलेष नहीं है, पर इससे लाल का समानेका बखरप हो सकता है। इस पन्थ का जो इतिहास सामने है, उससे यह बहुत ज़ोर है, कि इसका आधार मानवता और ईश्वर की समता है। कबलि 'मिर्तु'श' का इतिहास सामाजिकमान में अधिक प्राचीन है, पर हिन्दी-सहित में उसका प्रवेश मिला प्रचार हुआ—इस वर्ष केवल इसी मर पर प्रवेश जालेंगे। 'मिर्तु'श' पन्थ के लोग की चलाक होने लगे प्रथम व्यवहारियों में मिलती है। कबलि व्यवहारियों में ज़ेद प्रचार की विद्युतियों की, पर उनमें कुछ ऐसी भी बारी की, जिन्हें हम अच्छी बड़ कहते हैं, वेते उनका द्वार सभी जातियों के लिए खुला हुआ था। 'नाथ कबी' साधुओं ने यह मानना और भी अधिक विश्वित हुए। कबलि नाथ की कोमियों के सामान्य देखा 'शिव' के, पर 'शिव' की मानवता को बना 'मिर्तु'श वादित' में प्रचल हो जाती है, यह बात हीन मर के सिद्धांतों के ज़रूर भीति मिलीरहित है। नाथ लम्बी कोमियों ने 'मिर्तु'श वाद' का अधिक प्रचार किया। नाथ संघराय के सिद्धांतों से मिर्तु'शवाद की ही पुष्टि होती है। इसी समय एकेद्वार बाही तुलनाकारी का-सामान्य मानवत्व में हुआ, और उससे एकेद्वार वादित का प्रभाव भी नाथ संघराय के कोमियों पर पड़ा, जिससे उनके उस मर की, जो मिर्तु'श वाद के समान था; दूसरे कबी में जिते हम 'मिर्तु'श पन्थ की बड़ कहते हैं, अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। नाथ कबी कोमियों के प्रभाव में तुलनाकारी की एकीकरण बाही मानना के मिला कर एक पन्थ ही लक्षण प्राप्त कर लिया। कबलि इस मरीन लक्षण की हम दूरों कोष मानवता ही मानते हैं, किन्तु इसमें कन्देह नहीं, कि उस पर तुलनाकारी के एकेद्वार वाद का प्रभाव खरप था है। मरि का यह मरीन लक्षण, जो नाथ रणियों के द्वारा विश्वित हुआ, अपने हीन का समीक्षा था। इसमें जाति भीति, नीच ऊँच, कम बाल, और लक्षण के लिए भिन्न स्थान नहीं था। यह सब के लिए तुलना था। इसलिए हम इसे सामान्य मरि लक्षण की बड़ कहते हैं। महापद् के प्रसिद्ध भक्त मानदेव के, जिसका आध्यात्मिक संघ १५१६ में हुआ था, इस सामान्य भक्ति-धर्म की और भी अधिक क्षेत्र प्रदान किया। किन्तु वास्तविक रूप में लाल हम जिते मिर्तु'श पन्थ कहते हैं, उसका प्रवेश कबीरदासजी के ही द्वारा हुआ है। कबलि कबीरदासजी ने मनुष्यवाद की चलाक भी मिलती है, पर इसमें कन्देह नहीं किया का करता, कि मिर्तु'शवाद के सिद्धांत एवं प्रभाव उनकी के द्वारा विश्वित हुए। उन्होंने लाल प्रथम कबी सांख्य और चलाचारी के प्रभाव पर पर सांख्यिक लक्षण पर लाल दिया। कबलि कबीरदासजी के पूर्व नाथ कबी कोमियों के द्वारा संरक्षणा का संकेत ही हुआ था, किन्तु उनकी और कबीर की लक्षणलक्षण में अंतर है। उनकी लक्षण में ज़रूर द्वार यह की प्रभाव पाई जाती है, जहाँ कबीरदासजी की लक्षण प्रेम लाल पर आधारित है।

शिशु'ए' नाम कबीरदासजी के द्वारा दी कर्तों में मिलकत हो गया है—'जाय वर्गी', और होय वर्गी । जाय की आवाज मान कर किन कर्तों में रचनाएँ की है, उन्हीं की हम

के क्षेत्र में जिस प्रेम की कृति की थी, उसका सामाजिक आधुनिक स्त्री कवियों की ही रचनाओं में मिलता है। प्रलय और ज्ञान रचने के कारण कबीर की रचनाओं में भी प्रलयवाद की शक्ति हुई है, पर कबीर की रचनाओं में 'प्रेम' के शब्दों की अपेक्षा 'ज्ञान' के शब्दों की ही अधिक प्रचलता है। 'प्रेम' के सामाजिक तन्मयी का विकास तो कृती कवियों की ही रचनाओं में प्राप्त होता है। कृती कवियों ने लौकिक प्रेम कथाओं के आधार पर आलोचिक प्रेम का विवरण करते ही बहुतों और प्रलयवादी दृष्टि से किया है। कृती कवि कवनि मुखमयान थे, पर उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए कदाचित् और कदाचित् हिन्दुओं के चरों से ही ली है। उन्होंने हिन्दू देवी-देवताओं का विवरण भी किया है। इसके कृती कवियों के द्वारा भी विरासत प्राप्त होती है, और साथ ही वह भी आभासित होता है, कि कवनि उनका धर्म विदेशी था, पर वे भारतीयता के रंग में रंगे हुए थे। कृती कवियों ने अपने प्रेम की कदाचित् हिन्दू दृष्टिवादी और पुराणों के प्रत्यक्ष की है पर उन कदाचित् ने इन्होंने कल्पना का संमिश्रण भी किया है। वह कदाचित् प्रेम की भावना से परिपूर्ण है, किन्तु प्रेम की 'वीर' का आलोचिकता के साथ विकास हुआ है। हिन्दी काव्य में 'प्रेम की वीर' की आलोचिक दृष्टि के विकास करने वाले कवियों की ही श्रेणी की शायद के कवि कहते हैं।

समुद्र पन्थ के प्रसंगिक स्वामी रामानुजाचार्य की है, किन्तु आधुनिक संसार १८५३ के आस पास दक्षिण में हुआ था। एवं प्रथम स्वामी रामानुजाचार्य ने ही भारत के उस क्षेत्र की भी ज्ञान कवी योगियों के द्वारा से मिलता कर ज्ञान के क्षेत्र में वह रहा था, समुद्रवाद की ओर गिरा। उन्होंने आलोचिक पद्धति से समुद्र मन्थि का विवरण किया। उनकी मन्थि के केन्द्र श्रीरामचन्द्रजी थे। इस प्रकार समुद्र मन्थि की राम राजा श्रीरामानुजाचार्य की के ही उद्भवित हुई। कवनि हिन्दी काव्य में भी रामानुजाचार्य की भी राम मन्थि प्रत्यक्ष रूप से देखने की नहीं मिलती, पर वह तो वास्तव ही प्रमाण, कि किन्तु राम मन्थि का विवरण हिन्दी-काव्य में हुआ है, उसका श्रीरामचन्द्र स्वामी रामानुजाचार्यकी के ही द्वारा हुआ है।

स्वामी रामानुजाचार्य की के द्वारा प्रवर्तित समुद्र पन्थ की ओर रचने रचने बनता आकर्षित होने लगी। इसका कारण यह था, कि उसमें जनता के जीवन की कुछ-कुछ की बातें थी। इसके आधारे स्वामी रामानुजाचार्य की से किन्तु राम की अपनी मन्थि का केन्द्र मान कर अपने कव्य का प्रचार किया, वे राम शक्ति और सम्राट के जैसे व्यवहार में, जो दुष्टों में व्यवस्था बनता का उद्धार कर सकते थे; प्रकृत्य बनता स्वामी रामानुजाचार्य की के समुद्र पन्थ की ओर आकर्षित हो उठी। किन्तु हिन्दी दक्षिण में समुद्र पन्थ के रूप में राम शक्ति ने कम किया, उन्हीं दिनों का उनके आस पास ही पूर्व में बलदेव और विद्यावर्ति की वादी के रूप में कृष्ण मन्थि दुर्भित हो गयी थी। इस प्रकार समुद्र मन्थि की [राम काव्य के साथ ही साथ कृष्ण काव्य भी प्रवर्तित होने लगी।] और भारत में राम शक्ति के प्रसंगिक स्वामी रामानन्द

हैं, जो स्वामी रामानुजाचार्य की की विष्णु परम्परा में हैं। स्वामी रामानन्द की ने राम की विष्णु का आकाश मान कर उत्तर भारत में उनकी कवि का प्रचार किया, जिसके परिणाम स्वरूप श्रीरामजी तुलसीदास जैसे सर्वोच्च रामोपासक कवियों का आधिपत्य हुआ।

स्वामी रामानन्द की ने राम की विष्णु का आकाश मानकर अपने संघदास की संस्थापित किया। उन्होंने जिस संप्रदाय का प्रवर्तन किया, वह रामानन्दी संघदास के नाम से विख्यात है। इस संघदास ने कई ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने हिन्दी भाषा में रचनाएँ की हैं। रामानन्दी तुलसीदास रामानन्दी संघदास के ही कृत हैं। श्री कृष्ण कीर्ति का उच्चार श्री अष्टमाचार्य की के द्वारा हुआ है। जिस प्रकार रामानन्द की ने उत्तर भारत में राम के सर्वोच्च विष्णु और सर्वोच्च कन द्वारा कनसा के द्वारा की विष्णु का किया, उसी प्रकार अष्टमाचार्य की ने श्री कृष्ण के नाम पर से कनसा के द्वारा की स्थापित कर दिया। अष्टमाचार्य की के परम्परा इस परम्परा में एक से एक ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी कृष्ण कवि की तरह श्री राम कविओं से कनसा के द्वारा में सर्वोच्च आनन्द का रस पीना दिया। गुरुदास गुरुदास की गुरु परम्परा के कवि कविओं में हैं।

संक्षेप रूप में कवि कनसा का दृष्टि साहित्य की गुरु में विवक्षित है—विष्णु की श्री कृष्ण। विष्णु की की की कन है—रामानन्दी और रामानन्दी। कन की आचार मान का बिना कनसे ने रचनाएँ की हैं, उन्हें रामानन्दी आकाश के कवि कहते हैं। इस आकाश के कवि कविओं में रामानन्दी का सर्वोच्च स्थान है। जिस कवि कविओं में राम की श्री की आचार मानकर रचनाएँ की हैं, उनकी कनसा रामानन्दी आकाश के कविओं में की जाती है। अधिक गुरुदास कविों इस आकाश के कवि कविओं में सर्वोच्च कवि माने जाते हैं। विष्णु की कीर्ति कृष्ण की की आकाशी में विवक्षित है—राम कनसा, श्री कृष्ण कनसा। जिस कवि कविओं में श्री राम की कवि की आचार मान कर रचनाएँ की हैं, वे राम कनसा के प्रवेश माने जाते हैं। रामानन्दी तुलसीदास की का राम कनसा के प्रवेशों में सर्वोच्च स्थान है। कृष्ण कवि की आचार मान का कनसा की माता भिरोसे वाले कवि की कनसा कृष्ण कनसा के निर्माताओं में की जाती है। कृष्ण कनसा के निर्माताओं में गुरुदास की सर्वोच्च कनसे जाते हैं।

रामानन्दी आकाश विष्णु कनसा पर स्थापित है। वह राम मानवीय विद्वान का ज्ञान है। इस ज्ञान के द्वारा उस 'ज्ञान' की कनसे, कनसे, और ज्ञान कनसे का ज्ञानानन्दी ज्ञान विष्णु कनसा है, जो अविनाश कनसा में स्थित है। उसे

रामानन्दी के कवि ज्ञान कनसे के लिए न तो अविनाश कनसा का आचार माना है, और न ही कनसा की। रामानन्दी आकाश के कवि कविओं में उनकी कवि के मार्ग में सर्वोच्च कनसा की कनसेराम की है। उन्होंने सर्वोच्च कनसा की आकाशी काये कनसा की कनसा, राम की कविना, और रामानन्दी की ही कनसा आचार माना है। उनके कवि की कवि के मार्ग में राम ही एक देश कनसा

है, जिसे उन्होंने स्वीकार किया है। वेम ने भी इन्होंने का उन्होंने खरिफ कायम बरदा किया है।

कबीर का नाम इस वाक्यांश के अन्तिम में सर्व प्रथम आता है। कबीर का जन्म यह हुआ, इस संदर्भ में विद्वानों के विभिन्न मत हैं, फिर भी इसका जन्म संवत् १५०४, शीत माना जाता है। कबीर के जन्म के संलय में जो निम्नलिखित घटित हैं। कोई कोई यथोक्ति स्वल्प आनन्द-काल-दश पर आश्रित होने की बात कहते हैं, और कोई कोई शीत कहते हैं, कि उनका जन्म किसी विषय आश्रितों के गर्भ में हुआ था, जो ही इस बात की सभी लोग स्वीकार करते हैं, कि कबीर का जन्म शीत शीत नामक कुलारे के द्वारा हुआ था।

कबीर के दूर में वाक्यांशका में ही मन्त्र के अंगुर अंगुरित हो उठे थे। वे बड़े बड़बुद और अधिक बड़बुद के थे। काहु कालों के साथ गुना, और उनके उपदेशों से ज्ञान उठाना ही उनका मुख्य काम था। हिन्दू धर्म के प्रति उनके दूर में अधिक विषय थी। बड़े होने पर इसी विषय के परिष्कार स्वल्प उन्होंने कबीर में आनीयमा नन्दको विष्णुता बरदा की थी।

कबीर के दूर में आश्रितिक ज्ञान की श्रेष्ठि थी। उनके वाचिनी और वाचिनी में वेही तथा आश्रितों का निम्न में मिलता है। उनके कई वरी में शीतक शिवाजी का निम्नवा बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। उन्होंने देवर, महा और शीत नर दश अर्थात् शीतक की शीति ही विचार किया है। कबीर का यह ज्ञान स्वयंभूत था। यही कारण है, कि उनके एक अन्तर का जन्म और आश्रितिकता अस्वीकार होता है।

कबीर बहुत बड़े पर्यटक थे। वे आनन्द प्राप्त होने पर प्रायः शीत शीत की वादार्थ किया करते थे, और हिन्दू शीत तथा सुन्दरतम कबीरों के उपदेश का ज्ञान उठाना करते थे। इस संदर्भ से कबीर की बहुत बड़ा ज्ञान हुआ। दश की उन्हें प्राप्त की विभिन्न आश्रितों का जन्म का ज्ञान हुआ, और दूर में उनके दूर में जो प्राकृतिक ज्ञान की श्रेष्ठि थी, उनके निम्नवा होने का कारण प्रतीत हुआ। कहता न होता, कि कबीर की हिन्दू शीत और सुन्दरतमों के गर्भ जन्मों का ज्ञान काहुजी और आश्रितों के अन्तर्गम में ही प्राप्त हुआ था।

कबीर की बहुत शीत १५०४ में जन्म में हुई थी। बहुत के समय उनकी जन्मवा दश की वर्ष से जो अधिक बरदा जाती है।

कबीरदास अन्तर्गत नहीं थे। उनके द्वारा किसी विशेष ज्ञान की रचना नहीं हुई है। वे नर और वाचिनी की रचना करते थे, और धूम-धूम का जन्म की उपदेश दिया करते थे। कबीर की बहुत के वाचार्थ उनके हिन्दू में उनके पदों, शीतों, वाचिनी और शीतों का संकलन किया, किन्हीं शीत कहते हैं। शीत के जन्म-नाम हैं—श्री, नन्द, और शीत। शीत के अन्तर्गत की कबीर के जन्म से संश्रुति प्राप्त में मिलती है, किन्तु कबीर की रचना में उपदेश है। कई दश

विभिन्न गुणों की चटई गई हैं, जिनमें कबीर की रचनाएँ हैं, पर उनकी भाषा सर्वोपलब्ध और बेबाध है। उनके चट्टों में काल्पनिक नहीं भाषा भाषा।

अभिज्ञ के क्षेत्र में कबीर का अधिक महत्त्व है। उन्होंने अपनी अभिज्ञ के द्वारा यमिनी जगत में एक कृपण और तल्लोचन 'आदर्य' की छवि की है। वह कृपण होते हुए भी सर्वथा आशीर्वाद है। उसने योग, विचारण और ज्ञान का संमिश्रण है। अतएव वह विदुषः वाद पर आधर्यवर्त है, पर उसने कृपण भाव की मलमल भी मिलती है। कबीर की अभिज्ञ की हम एक देखा देना करना वह कहते हैं, जिनमें आकाशीन समाधि में प्रतिबलित स्वामी रामानन्द का मनिकानन्द, रामानन्द का दशैश्वर्यवाद, नाथ योग का इश्वरीयवाद, और बुद्धिजी का ज्ञान तथा योग वाद विद्यत कर एक ही भाषा है।

कबीर दशैश्वर्यवादी के। उनका दशैश्वर्यवाद विदुषाशीर्वाद का। कबीर के दशैश्वर्यवाद और ज्ञान में कुछ भी अन्तर नहीं है। उनका दशैश्वर्यवाद ज्ञान के रूप में अन्ततः विदुषः में परिणामित है। कबीर का दशैश्वर्यवाद वाद यद्यपि विदुषाशीर्वाद है, पर उन्होंने अपने शैश्वर्यवादि के जिनके कुछ कारण बताए हैं, जिनमें कुछ दूसरा, कबीर इश्वरीय का कारण पूरी स्थान है।

'कबीर' यमिनी की उनका सम्मेलन के 'अश्वत्थामादी' पर पर है, यद्यपि उन्होंने अपने 'राम' के विभिन्न प्रकार का संबंध स्थापित करके उनके साथ 'कबीर' किया है। यही उन्होंने 'राम' की अन्ततः विदुषः मानकर उनके साथ विचार संबंध स्थापित किया है, और यही वह बताता है कि उनका विचारण—'राम' शीर्षों की विदुषः द्वारा प्राप्त हो सकता है। यही अभिज्ञ के अनुसार में कबीर की 'कबीर' गई नबेही दुर्लभ का अन्तर वाद्य करके अपने विदुषः के संबंध का कुछ कुछ छोड़ है तो यही विवेचिनी की भीति इच्छाकर बन रही है, यद्यपि वह, कि 'राम' का वाकिरूप प्राप्त करने के पश्चात् कबीर ने विभिन्न दृष्टि शीर्षों के उनके साथ अपना संबंध स्थापित किया है। अपने सम्मेलन की तल्लोचनता के लिए 'कबीर' ने विभिन्न कालों का आशय किया है, यही-यही उनके अन्तः इतने विविध है, कि सर्व वादवादा की बुद्धि के परे हो करते हैं। और जोग उन्हें कबीर की 'अश्वत्थामादी' वह बन सम्मेलन का किया करते हैं। इसी अश्वत्थामादी की विदुषों ने 'कबीर' के 'अश्वत्थामादी' के नाम के अतिरिक्त किया है।

कबीर का अश्वत्थामादी यही अधिक उल्लेख और यही अधिक विदुषः है। यही यही उन्होंने अधिक मान-विशेष होकर 'अश्वत्थामादी' के सम्मेलन स्थापित करने का प्रयास किया है, और ने अधिक आत्म-विदुषः हो गए हैं, यही उनका संबंध औचिक दृष्टि से अधिक आत्ममय हो गया है। यही यही तो वह इच्छा अधिक आत्ममय हो गया है, कि जब तक वह बन में बुद्धि का रूप नहीं होता। कबीर ने अपने 'संबंध' को वाता यही में प्रकट किया है, किन्तु उन कालों में 'कबीर' की ही अधिक आत्ममय है।

संमिश्र है। उन्होंने विभिन्न भाषाओं के शब्दों की सहायता से अपने लिए एक नुसल भाषा का निर्माण किया है। कबीर की यह भाषा नहीं सरल, और न ही गहन है। सीधे की दृष्टि से उसमें समान अभाव है, पर शब्दों के 'खोज' और प्रभाव पूर्णता के कारण यह नहीं समझने योग्य लगती है। उसमें सरल, और सीधेपन की भाषा की विशेषता है।

कबीर की भाषा में विभिन्न प्राचीन भाषाओं के शब्दों का संमिश्रण है। जैसे— ब्रजभाषा, कन्नड़, ओड़िया, अवधी, गुर्जर, हिन्दी, पार्सी, फारसी, उर्दू, पञ्जाबी, और संस्कृत इत्यादि। कबीर एक बात से, और एक के रूप में संवेद्य थे। उनका उद्देश्य समाज में सामिक भावना का प्रसार करना था। वे अपने उद्देश्य, और सिद्धान्तों के प्रसार तथा प्रसार के लिए विभिन्न स्थानों की यात्राएँ किए करते थे। उनके लिए वह साधन-धन का, कि वे अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अधिक स्थान की 'खोज' में हो। रचनाएँ करें, जिससे उस स्थान की संस्था उनके उद्देश्यों और सिद्धान्तों की सही प्रति समझ सकें। कबीरदासजी ने नहीं किया था। उन्होंने विभिन्न स्थानों की यात्राएँ की, और वहाँ की महिलाओं के शब्दों की अपनी रचनाओं में स्थान दिया। बहुत ही महिलाओं के शब्द कबीर की इन कन्नड़ी और कन्नड़ी से भी प्राप्त हुए हैं, जिसके संबंध में वे मान्य रहा करते थे।

कबीर ने अपनी दृष्टि के अनुसार ही शब्दों का प्रयोग किया है। शब्दों के प्रयोग में उन्होंने शब्दों की सुझाव पर अधिक ध्यान न देकर हृदय भाषी पर ही अधिक ध्यान दिया है। संस्कृत, उर्दू, और पार्सी के शब्दों को उन्होंने सीधा-मरोड़ी की अभिव्यक्ति है। शब्दों के लोक-मरोड़ी से कबीर का मान्य हुआ की दृष्टिकोण रहा है, पर इन शब्दों का जो विकृत रूप सामने है, उससे तो बड़ी बात होता है, कि कबीर ने इन शब्दों को लोक पर उन्हीं तरह बोलने की चेष्टा की है। शब्दों की लोक-मरोड़ी से कबीर की भाषा की कठिनाईपूर्णता यह हो गई है, पर हमने कबीर नहीं, कि वह एक लोक-मरोड़ी से कलक बन गई है, और कई साधारण के लिए अधिक उपयुक्त हो गई है।

कबीर के कठिनाईपूर्ण शब्दावली शब्दा में और भी कई कम हुए हैं, जिसमें परमेश्वर, गुरुदेव, गुरुदेव, गुरुदेव और गुरुदेव इत्यादि का प्रयोग स्थान है।

परमेश्वर कबीरदासजी के शिष्य थे। उनका नाम रमेश १५२३ के साल परमा जाता जाता है। यह रमेशेश्वर के शिष्यों थे, और अधिक प्रभावशाली थे। पार्सी में उनका स्थान गुरुदेवतात्वा की ही और था। यह प्रायः तीनों नामावली किया करते थे, और बहुत-कन्नड़ी का स्थान हृदय सीधे बन करते थे। एक बार वह बहुत और कन्नड़ी की भाषा में गए। इसी भाषा में उनकी कबीरदासजी से 'मैं हूँ'। कबीरदासजी की गुरुजी, और उनके उपदेशों का परमेश्वर की के हृदय पर अधिक

प्रभाव रहा, परिणाम स्वयं से कबीरदासजी से सीखा लेकर उनके शिष्य हो गए।

कबीरदासजी की मृत्यु के पश्चात् परमहंस हो उनकी कड़ी के उत्तराधिकारी हुए। उन्होंने अपनी बहुत संघन पुस्तक दी थी। बीस वर्ष तक वह कबीरदासजी की नहीं पर विराजमान रहे; इसके पश्चात् संवत् १५६० के आस पास इनका स्मरण हो गया।

परमहंस ने कई कर्मों की रचना की है। इनकी रचनाओं का शब्द-शरीरों से अधिक सम्बन्ध है। इनकी रचनाएँ कबीर के अधिक प्रभावित हैं। अतः कबीर की रचनाओं में इनकी अविवक्षित रचनाएँ मिल गई हैं। कबीर की शक्ति ही इनकी भी 'मिरा-बाच' का अधिक विषय है। कबीर की तरह इनकी रचनाओं में शुद्धता नहीं है। इनकी रचनाएँ सरल, और सरल हैं। पूर्ण भाषा का प्रयोग इनकी रचनाओं में अधिक मिलता है। इनकी कवियोंक्यों कड़ी मूलक और शक्ति है, जो श्रेष्ठ के रूप से अभिव्यक्त है।

इनके उपासक इनकी में 'कुल विधान' का अर्थ महत्वपूर्ण स्थान है।

गुरुनामक किन्हीं नामक देव की कहे हैं, जिस संवाद के संभावक हैं। लिखी में, ईश्वर के रूप ही उनका आधार सम्बन्ध है। वे एक गुरुविद् महात्मा, और गुरुविद् हुए शब्द थे। यद्यपि कबीर की शक्ति ही नामक देव की विद्या-दीक्षा बहुत अलग ही हुई थी, पर उनके हृदय में नाम की असीमित शक्ति थी।

गुरु नामक एक असीमित महापुरुष थे। अतः उनके सम्बन्ध में किंवदन्तियाँ भी अधिक प्रचलित हैं। कहा जाता है, कि वे महापुरुष स्वयं के अनुसार थे, और उनकी कला से ही असीमितता प्राप्त थी।

गुरु नामक देव का नाम संवत् १५२५ में लखौर विज्ञानगीत कवियों नामक गीत में हुआ था। उनके पिता का नाम कालू, और माता का नाम तुला था। उनके पिता पाषाण थे; और कुछ महात्मा तथा विद्वानों का भी काम करते थे। गुरुनामक में ही नामक के द्वारा वे शक्ति की शक्ति विस्तार कड़ी थी। वे प्रायः गीत गूँथे, और शब्द-शरीरों तथा कबीरों का सम्बन्ध दृष्टि करते थे। यद्यपि उनके घर के शत्रुओं उनके एक साथ से अवगत थे, पर वे फिर भी शब्द-शरीरों के साथ की शक्ति के लिए तैयार नहीं होते थे। उनका घर घर के काम-काजों में निरत नहीं हुआ था। कभी कभी वे घर का अपना पैसा भी शब्द-शरीरों के बीच में खर्च कर दिया करते थे। उनके इस सम्बन्ध से शक्ति का उनके पिता ने उन्हें सीखा करने के लिए अत्यन्त मेहनत दी। इसी बीच में उनका विवाह भी हो गया और समय वाक्य ही गुप्त भी जायज हुए, किन्तु नाम अशुद्ध, और असीमित थे।

गुरुनामक देव सीखी करते हुए भी अपना नाम ईश्वरेश्वर में ही व्यक्त करते थे। वे दिन में ही सम्बन्ध के नाम अपने शक्ति कबीर का पालन करते थे; और रात में गीत कवियों नामक करते थे। एक बार वह वे केन नहीं में जाने कर रहे

है, उन्हें सातवाहन उल्लास हुआ, और उन्होंने ज्योति के रूप में ऐश्वर्य का अनुभव करने लगा। वे लौकिकी छोड़ कर परैयन करने लगे। उन्होंने चारों ओर अपने विद्वानों का प्रचार किया। अन्त में संवत् १५८५ में, कलकत्ता में उल्लास महा प्रस्थान हुआ।

गुप्तनाथ ने कविताओं और पदों की रचना की है। उन्होंने पद और कविताओं 'बंन वादन' में संग्रहीत हैं। इनके कविताग्रंथ पदों और कविताओं की माला गजरायी है। कुछ में हिन्दी का भी प्रयोग हुआ है, कुछ पदों की भाषा बड़ी लीची लड़ी, और सरल है।

महदुर्गाजी की का कल्प संवत् १६६२ में इलाहाबाद स्थितोत्पीत 'बदा' नामक स्थान में एक लकी पंच में हुआ था, इनके पिता का नाम सुन्दरदास था। बाल्यकाल में ही महदुर्गाजी के हृदय में कवि के लक्षण उत्पन्न हो गये थे। वह कविता उदार और समाह्व है। उनकी उद्देश्यता और दृष्टिकोण के सम्बन्ध में कलेक विद्वत्सिद्धि प्रचलित है। १-२ वर्ष की अवस्था में, संवत् १७१६ में इन्का समीक्षा की गया।

महदुर्गाजी की के द्वारा रचित दो बंन मिलते हैं—'बंन वीच', और 'समाह्वकार लीला'। 'बंन वीच' के बंन अंश और वैराग्य का विषय है। 'समाह्वकार लीला' में भी समाह्व की भी कथा का वर्णन किया गया है। दोनों ही कल्प कविता में ही हैं, जिनमें कल और सुन्दर लीला का उपाह्व पाया जाता है। इनकी रचनाएँ हिन्दी और गुजराती दोनों में ही समान हैं। वह अपना उद्देश्य दोनों ही कविताओं में दिख करते हैं। इतिहास उनकी भाषा में लकी-पारसी के शब्दों का कविता प्रयोग हुआ है। इनकी रचना लकी के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने कविताओं की भी रचना की है, जिनमें स्वयंसेवक और सुन्दर पद विचार का पद होते हैं। इनकी कुछ रचनाएँ लकी लीला में भी हैं, जो बड़ी सरल हैं।

दुर्गादुर्गाजी का कल्प संवत् १६५५ में गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान में हुआ था। इनकी जाति के सम्बन्ध में दो-तीन प्रकार के मत पाए जाते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार वह गुजराती समाज में, और कुछ लोग उन्हें कुर्बानि मानते हैं। कुछ लोगों का कल्प है, कि दुर्गा जाति के लकी में, और और बनाया करते हैं, जो ही 'दुर्गा' एक लकी में हुए कल में, और लकी समाज में उनका कविता संग्रह था। 'दुर्गा' में कले लीला में पद रचनाओं की रचना की थी।

'दुर्गा' कविता कल्प के अनुसार भी कहा है, पर उन्होंने लकी दुर्गा समाज पंच बताया है। उनका बताया हुआ पंच 'दुर्गा कल्प' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कल्प के अनुसार 'दुर्गा' की विचारों के रूप में मानते हैं। लकी-पारसी में उनकी कथा नहीं है। 'लकी', 'लीला' 'लीला' का समाह्व नहीं करते, 'दुर्गा' कविताओं में दुर्गा की लकी कविता प्रसिद्ध है, जो लकी की कविताओं से मिलती-जुलती है। इनकी कविताओं में

एक भाव के लक्ष्य कवियों ने मुख्य रूप से इन्हीं की अपनी रचनाओं का आशय बनाया है। उनका एक मात्र लक्ष्य निर्गुण भक्ति है। उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए ऐसे ही विषयों को चुना है, जिनसे इनकी भक्ति की बल प्राप्त हो सकता है।

एक भाव के प्रवेशकों का ध्यान मुख्य रूप से निर्गुण भक्ति की ही ओर था। उन्होंने केवल भक्ति राग में ही हीन का रचनाई की है। उनका ध्यान कर्म-सौन्दर्य की ओर मिलानुत्तर न था। यही कारण है, कि उनकी रचनाओं में वाच्य कल्याण के लक्ष्यों का विकास बहुत कम हो ही गया है। उनका ध्यान जिसका भावों के प्रत्यक्ष की ओर रहा है, उनका भाव और भाषा सौन्दर्य की ओर नहीं। उनकी रचनाओं की भाषा बहुत ही साधारण और सरल-सुलभ की है। यही तक ही गया है, उन्होंने अपनी रचनाओं में सरल और स्वाभाविक भाषा का ही प्रयोग किया है। इसका कारण यह है, कि उन्होंने अपनी रचनाई काँच साधारण के लिए लिखी है। उन्होंने अपनी रचनाओं की रचना विभिन्न भाषाओं में की है। इसलिए उनकी रचनाओं में विभिन्न भाषाओं के भी शब्द पाए जाते हैं।

एक भाव के प्रवेशकों ने अविचार, गैर-परी की ही रचनाई की है। अतः यदि इसका कारण यही मान सकते हैं, कि गैर-परी का लक्ष्य पूर्ण-वैयर्थ्य ही जाते हैं, और इनसे एक प्रकार का आकर्षण भी रहता है। लिखाओं के प्रकार और प्रकार की इति के ही एक भाव के सभी कवियों ने गैर-परी के रचनाई की है। गैर-परी के बाद ही अन्य एक कवियों ने अविचार प्रयोजित रहा है, यह देखा है। अन्य के नाम पर 'देहा' ही वह अन्य है, जिसका वह प्रथम हिन्दी भाव में दर्शन होता है। अविचार कवियों ने 'देहा' में रचनाई की है। किसी-किसी ने बीमार, मन-रुका, और 'मृत्यु' इत्यादि इन्हीं का भी प्रयोग किया है।

एक भाव के सभी कवियों ने निर्गुण भक्ति की ही लक्ष्य मान कर रचनाई की है। उनकी रचनाओं के सभी विषय भी इस प्रकार के हैं, जिनसे निर्गुण भक्ति प्राप्त की जा सकती होती है। उनकी सभी रचनाई भक्ति राग से प्रभावित है। अतः उनकी रचनाओं में 'भाव' राग का ही मुख्य रूप से आकर्षण हुआ है। किसी-किसी की रचना में यही प्रत्यक्ष के रूप में 'विचार' 'विचार', 'समी', और 'दुःख' के भावों का विकास हुआ है, यही 'मृत्यु' राग की भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। 'मृत्यु' राग के दो रूप होते हैं—'मृत्यु' और विवेक। 'मृत्यु भाव' में 'मृत्यु' की ही सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यही यही विवेक का विषय हुआ है, मृत्यु और सामाजिक रूप में हुआ है। यही-यही बीमार, और मृत्यु राग की भी सर्वोच्च इतिहास होती है।

निर्गुण भक्ति की दूसरी शक्ति, जिसे प्रभावशीलता कहते हैं, प्रेम के लक्ष्य पर आधारित है। इस शक्ति के कवियों की कुछ लोग 'प्रेम भाव' और कुछ लोग प्रेमभावशीलता 'प्रेम भाव' के प्रवेश भी करते हैं। निर्गुण-भक्ति के कवि का वह दूसरा प्रवेश, जिसमें प्रेम का एक गुण हुआ

है, वेम्बारी और कृत्तियों की प्रेम प्रवृत्ति के मिल कर उत्पन्न हुआ है। यद्यपि न होना, कि प्रेम-पंक्ति मातृवर्ग की प्राचीन संज्ञा है। मुक्तकालों के आगमन के पूर्व भी वायु-वर्मात् में इसका विकास देखने को मिलता है। जिस दिनों कवियों का साम-मण हो रहा था, उन दिनों भी वेम्बारी की प्रेम-पंक्ति के रूप में इसका विकास देखने को मिलता है। उन दिनों भी, जब कि कवय हाथ में उल्लार लेकर पिटोह बनता की कवये कव्य-बाटी की साथ में खींच रहे थे, कवियों ऐसे वायु कण थे, जो कव्य-बाटी कवियों के प्रति भी कवये हृदय में दूर्वाच नहीं उत्पन्न होने देते थे; इसी प्रति-कूल में कव्य-बाटी कवियों की भी कवये हृदय का योग हो पाता करते थे। उधर कवय हाथों में भी ही उल्लार के लीन थे। एक उल्लार के लीन हो वे थे, जो कव्य-बाटी की पेटिका पर बैठ कर पिटोह कवया की पक्ति देना ही कवयार्थ समझते थे, और दूसरे प्रकार के लीन थे वे, कवियों हृदय में प्रेम के कवय थे। ऐसे लीन उध कृती विचार बाट के प्रेमित थे, जिसकी योग प्रेम पर कवियों के ही नहीं पुरे है। कई कृती कवियों का आगमन भी मातृव में ही हुआ था, जो कवियों में कृती सत् का प्रचार कर रहे थे। हिन्दू कवियों की कविप्रवृत्ति, और कृती कवियों के प्रेम में ही कवय हाथों के हृदय में परिवर्तन की लहरें उत्पन्न थीं, और वे हिन्दुओं के साथ मिल-जुल कर रहने की दृष्टि प्रगट करने लगे।

हिन्दी काव्य में शिर्षकाव्य का यह प्रवृत्ति प्रगट, कितने प्रेम-प्रगट करी है, हिन्दू कवियों की कविप्रवृत्ति, और कृती कवियों के प्रेम में ही उत्पन्न हुआ है। हिन्दी काव्य में सर्व प्रथम इसका परिचय आरम्भ काल में मिलता है। उस समय अला-उद्दीन किल्लों का शासन था। 'अलाउद्दीन किल्लों' का शासन दिल्ली के लिए अधिक है। उसके शासन काल में हिन्दुओं पर कई ऐसे कर लगे थे, जिसका समर्थन कीर्ति भी मानवीय मान्य नहीं कर सकता। एक और ही अलाउद्दीन के शासक-कार का काल काल रहा था, दूसरी ओर उसी के शासन की क्षात्र के योधि हुआ 'दिल्ल' ने 'कन्दामर' की रचना करके हिन्दुओं की यह विचार प्रेषित, कि कभी कवय अलाउद्दीन की पंक्ति नहीं है।

'कन्दामर' प्रथम काव्य है, जिसमें प्रेम की भावना का विकास हुआ है। कवयि 'कन्दामर' की रचना के बहुत आगेवर्त प्रेम-काव्यों की रचना का काल आया है; पर इसमें कन्देह नहीं किन्तु यह सकता, कि प्रेम कन्दामर काव्य का उत्पन्न सर्व प्रथम 'मुक्तकाल' के ही उत्पन्न हुआ है। कवयि कवयों प्रेम काव्य के रचयिताओं में सर्व कीर्ति माने जाते हैं, पर उनके पूर्व कई ऐसे मुक्तकाल रचयकार ही चुके हैं, जिन्होंने कवयार्थ प्रेम-काव्यों की रचि की है। उनमें कुतुबुन और नमन दशरथि का नाम विशेषतः है।

कुतुबन सेल कुतुबन के कवि थे, जो दिल्ली सल्त के थे। यह बीमपुर के राजा कुतुबशाह के आश्रित थे। इसका काव्य संवत् १३५० के आरम्भ-काल माना जाता है। इन्होंने 'दुवाकरी' नामक एक कवयार्थ काव्य की रचना की है, जिसमें प्रेम के कव्यों

का गुणगान के साथ निराला हुआ है। 'मृगशर्मा' सौमिक यौग पर आधारित है, जिसके नाम चन्द्रशेखर के राजा का पुत्र, और कालानुर के राजा की राज कन्या है। दोनों कन्या कवचि सौमिक है, पर उसमें कालीकिका के वर्णन संकेत प्राप्त होते हैं। नाम की दृष्टि से 'मृगशर्मा' का स्थान मिश्रशर्मा का है, पर उसमें यौग की परम्परागत भाषाशैली का निराला अभाव हुआ है, जो वैदिकता के चित्र की तरह लगती है।

इसकी भाषा काली, और सुन्दरी से तथा चौमारों से।

संस्कृत का ढोल कहीं उत्पन्न हुआ है—इस संबंध में काफी एक कुछ भी कहा नहीं हो सका है। इसकी शिली हुई केवल एक रचना मिलती है, जिसका नाम 'मधु-माशर्मा' है। 'मधुमाशर्मा' की कथागत यौग काव्य है, जिसके नाम कालेश के राजा का पुत्र मनीष, और मद्राल की राजकुमारी मधुमाली है। दोनों के ही पारम्परिक यौग की शैली 'मधु माशर्मा' की रचना हुई है। 'मृगशर्मा' की कवचि 'मधु माशर्मा' में कालाशर्मा की संरचना, और शाली की निराला अधिक है। कवचि कवि ने काला का अधिक आत्मन प्रकट किया है, पर उसकी कथाशाली ने बाधविधायक है, जो हृदय की लय करती है। 'मधु माशर्मा' के प्रति राजकुमार का विषय हृदय में अनुपम शाली की लय करता है। निराला की दृष्टिकोण का विषय इस प्रकार किया गया है, जिसमें वैदिकता के चित्र की तुलना होने में बढ़ावा मिलती है।

महिक मुहम्मद शाली यौग काव्य के पञ्चालीनों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। शाली का जन्म १६१६ ईस्वी. वर्षीय १६२८ ई. में राजपूतों जिने के राज्य नामक राज्य में हुआ था। शाली ने पैदा होने ही के समय ही यौग 'शाली' कहते हैं।

शाली तुलना और एक शक्ति के कवि थे। उन्हें शान से भी कम तुलना देना था। शाली का कहना है, कि शाली कालाशाला में शक्ति का बढ़ावा यौग के पवित्र हुए थे, जिसमें उनका शरीर विकृत हो गया था, और वे एकमेव तथा अथवा से रहित हो गए थे। शाली ने स्वयं अपने मन का सर्वत्र विकसित पक्षियों से किया है—

'मुहम्मद बारी मिलि लता, एक साजन एक कौशिक।'

शाली ने माता-पिता का उनकी वास्तविकता में सर्वश्रेष्ठ हो चुका था। शाला यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता, कि उनकी शक्ति कहीं और भिन्न प्रकार हुई, किन्तु उन्हें हिन्दू धर्म के पारम्परिक विचारों का अधिक ज्ञान प्राप्त था। वे धर्म से ही ईश्वर मान, और शाला प्रकृति के थे। कहते हैं, कि शाली का विचार हुआ था, और उनके पुत्र भी थे। किन्तु वे अन्तर्गत के यौग एक घर पर गए, जिसमें शाली के हृदय की अधिक आशाएं लगी, और वे निराला होकर शाली के मन में हृदय-उत्तर परंपरा करते लगे। शाली अपने समय के उत्कृष्टों के शरीर थे। शाली और शाला अधिक मान था। शाली के राजा, शाली की उन पर अधिक आस्था थी।

जीवन के अन्तिम दिनों में काफ़ी ज़ख्मेज़ी में कुछ दूर एक कम में रखा करते थे । वहाँ उनकी मृत्यु हुई ।

काफ़ी इसकीश कान्ही के रचनाकार माने जाते हैं । पर इस समय उनकी जीन ही कुतियाँ उपलब्ध हैं—पञ्चावत, कलकल, और काफ़ीर कलाप । 'पञ्चावत' काफ़ी की सर्व श्रेष्ठ रचना है । गुणवत्ताओं के मध्य मध्यों में इसका अधिक स्थान है । काफ़ी के लेखानुसार उन्होंने इसकी रचना १५४० दिवसी में की थी । इसमें काफ़ी-काफ़ी १० मकलमों से जो का प्रयोग किया गया है । किन्तु यहाँ हमारे के अर्थों में काफ़ीय काव्य-वर्णन का ही अनुसरण किया गया है ।

यह कथालयक काव्य है, पर फिर भी इसमें प्रकल्प काव्य नहीं कहा सकते । क्योंकि यह कर्तव्य नहीं है । काफ़ी में इसकी कथा भारतीय इतिहास से ली है, जिसके पात्र विहीर के राजा जैन जैन, और विहीर जीव की राज कथा पञ्चावती है । दोनों के ही जैन को लेकर पञ्चावत का जीवन किया गया है । 'पञ्चावत' में विश्व जैन का चित्रण हुआ है, यह विहीर भारतीय जैन है । किन्तु उस पर काफ़ी की जैन-कल्पनियों का भी प्रभाव है ।

काफ़ी में 'पञ्चावत' की जैन कथा में भारतीय और कालीकला का संमिश्रण किया है । उसके जैन के अर्थों में भारतीय पद और, और भारतीय प्रमाण है । उन्होंने 'जु'वन, काफ़ीयन इत्यादि का बहुत कम प्रयोग किया है । इसके विनोद मय की कदम, और हर्ष का बार-बार उल्लेख मिलता है । इसका ही नहीं, उन्होंने काफ़ी जैन पद्धति में भारतीय और काफ़ी-काली के ही काफ़ीयों का संमिश्रण किया है । उनकी जैन पद्धति में काफ़ी काफ़ी के इन्हों के काफ़ीयन काफ़ी मकलमों के जैन स्वभाव की प्रमाणता है, वहाँ उनके काफ़ी के लोक-व्यवहार संलग्न स्वभाव की भी प्रमाणता है । काफ़ी की जैन कथा पञ्चावत और गूढ़ होते हुए भी जीवन के विविध क्षणों पर प्रकाश डालती है, और परिचरित तथा काफ़ीयन विषयों को भी इसमें सामने उपस्थित करती है । उसके माध्यामक, और व्यवहारमय-रसों ही रसों का प्रयोग है ।

काफ़ी की जैन कथा यहाँ पूर्ण जीवन की कथा नहीं है, किन्तु फिर भी इसमें ऐसे प्रकाश हैं, जो जीवन के विविध क्षणों पर प्रकाश डालते हैं । काफ़ी का जैन एक होकर भी कई कालों का प्रमाण है । जैसे—जैन का जैन, गूढ़ से जैन, श्री से जैन, और पति का जैन इत्यादि । उसके जैन में सामान्य जीवन की ही प्रमाणता है । पति और श्री का काफ़ी जैन 'पञ्चावत' के शीर्षक पद में अतिव्यक्त रूप में विनियोजित हुआ है ।

काफ़ी का शीर्षक जैन कालीकला के पति है । उन्होंने काली 'काफ़ीयन कला' की ही कथन मान कर अपने जैन का प्रदर्शन किया है । जैन उनकी रचनाओं में रहस्यमयी भावनाओं का विकास हुआ है । हिन्दी काल में सर्व प्रथम काफ़ी की रचनाओं में 'रहस्यवाद' का प्रकाश देखने को मिलता है । काफ़ी में गालुका का अभाव था । इसलिए उनका रहस्यवाद एक स्वयं का मत होता है, जो 'विहीर'

और हारीश का सम्बन्धित है। इसके प्रतिपक्ष भाषणी की रचनाओं में जलमय का विषय सदा और आत्यन्तिक रूप में हुआ है। इसका कारण यह है, कि भाषणी उस क्षुब्ध मन के अनुयायी थे, जिनमें रहस्य-भावना पूर्ण रूप से विद्यमान थी।

भाषणी का रहस्यवाद दो स्तरों में प्रतिबिम्बित हुआ है। उनकी रहस्य भावना का एक रूप तो यह है, जहाँ उन्होंने परमात्मा को विषय के रूप में देखकर उसकी सम्पन्न शक्ति, और माधुर्य का संसार में अनुभव किया है, और दूसरा रूप यह है, जहाँ उन्होंने दुःख के संसार के सिधे प्रकृति की उत्पत्ति या उसकी विप्लव-विवरता का अनुभव किया है। इस दूसरे प्रकार की रहस्य भावना का उनमें अधिकांश विरक्त भाषा बोलता है। उनके 'पद्यावत' में यही जल-भावना अपनी विरोधता के साथ विद्यमान है। उन्होंने अपनी पूर्ण परमात्मा के साथ प्रकृति और उसके स्थायीता का बहुत बड़ा संबंध स्थापित करके व्यक्तित्व किया है। वे प्रकृति के स्थायीता और उसके विनाशकारी में किसी अनुरूप सीमा का दर्शन करते हैं।

भाषणी के सभी भाष 'लौकिक' हैं। पर उन्होंने सभी भाषों के द्वारा 'अलौकिकता' की दृष्टि की है। उनके भाषों में जो 'लौकिक' है, वह इस सम्बन्ध का या 'वीर्य' है, जो 'अद्वय' और 'अमर' है। भाषणी प्रकृति के सत्य-सत्य में उसी अद्वय लौकिक का दर्शन करते हैं। वे उसे प्रकृति के सत्य रूपों, और उसके विनाशकारी में देखते हैं। उनके जीवन की निष्ठा है, वह उसी के लिए है, और उनके जीवन मिशन का जो आशय है, वह उसी के मिशन का आशय है। भाषणी का प्रत्येक साधन 'प्रतीक' है। प्रत्येक यहाँ एक संकेत बिन्दु उपस्थित करता है। उनके अनुभव की प्रेम और निष्ठा की कथा प्रकृति तथा दुःख के बीच की कथा है, जो यही अनुभव के साथ विच्छिन्न की गई है।

भाषणी कुदृष्ट व्यक्तित्व के। अति-दुःख में उन्होंने प्रेम की ही रास्ता उपस्थित की, उसी के कारण उनका नाम हिन्दी-काल में आधुनिक साहित्य है। भाषणी की भावना का ही स्वरूप है—एक बाधा, और दूसरा सांसारिक। बाधा का ही भाषा, जीवन, मृत्यु, और अन्तर्भाव समाविष्ट करते हैं। भाव का सांसारिक स्वरूप शक्ति की अनुभूति, भाषा, और अनुभवों से बनता है। भाषणी में भाव के बाधा, और सांसारिक-हीनों ही स्वरूप की विशेषताएँ विद्यमान हैं। भाषा, ज्ञान, मृत्यु, और अन्तर्भावों की दृष्टि से ही भाषणी की रचना अन्तर्भाव है, पर उनकी मर्त्य, विप्लव, कि सांसारिक स्वरूप के कारण। भाषणी के भाव का सांसारिक वह अधिकांश प्रभाव है। बाधा का ही उसका अन्तर्भाव अन्तर्भाव है, पर उसका सौंदर्य सांसारिक का ही सौंदर्य के समस्त अधिकांश का ही सत्य है।

भाषणी प्रेम-प्रधान व्यक्ति है। प्रेम ही उनकी भावना-कला का आधार है। प्रेम के स्वरूपों का विवेक करने में ही उन्होंने अपनी अनुरूप प्रतिभा का उपयोग किया है। उनकी प्रेम की अनुभूति यही अन्तर्भाव है। उनकी अनुभूति में भाव का ही स्वरूप और अन्तर्भाव है। उन्होंने प्रेम की उनके जीवन पैठ का देखा है।

उनके शब्दों में, उनकी भाषा में प्रेम बोलता है। उनकी प्रेम की पीड़ा कहीं सम्पीत नहीं है। वह ऐसी पीड़ा नहीं है, जो मनुष्य की क्षमता की सीमा अतिक्रम करती है, वह ऐसी पीड़ा है, जो मनुष्य की ऊपर उठती है, और उसके हृदय में वरिष्ठ भाव-भावों का संसार करती है। उसके कर्त्तव्य है, त्याग है, का सहिष्णुता है, पुनरापन है, सम्ममता है, और सीमता है। उसे देख कर, उनकी कथाओं की सुन कर, मनुष्य ही नहीं, बल्कि एक कर्त्तव्य बढाते हैं। उनके अधिकांश विशेष बात की यह है, कि उनके प्रेम की पीर, सीमित न होकर असीमित है। वह प्रीति के रूप में एक अनोख सत्य, और सीढ़ी की हमारे सामने कहीं कुशलता के साथ उपस्थित करती है।

काव्य की अनुभूति का बड़ा प्रसार है। वे बड़े मादुर थे, उन्होंने अपनी मादुर-काव्य के लीं कि वे ही अपनी अनुभूति की सारा कर अधिकांश दिग्गज बना दिया है। उन्होंने हृदयों का विषय कहीं सफलता के साथ किया है। प्रकृति के विविध कर्त्तों के विषय के उनका परभावता बरा बड़ा है। नदियों, वृक्षों, पत्तों, और पर्वतों का विषय उन्होंने कहीं सफलता के साथ किया है। प्रकृति का सम्पूर्ण ही उन्होंने मानव-हृदय में बोधा है। काव्यी शब्दों में प्रकृति का कैसा सम्पूर्ण मानव हृदय के ऊपर चला है, और उसके सम्पूर्ण से मानव-हृदय के भीतर चित्त चित्त प्रसार के साथ उठते हैं—एक ही पूर्ण सत्य के उनके शब्द मादुरों के विषय में मिलती है। उन्होंने प्रकृति के साथ मानव हृदय का सम्पूर्णता के सम्पूर्ण सम्पूर्ण स्थापित किया है।

काव्य की भाषा कहीं सरल और सुलभ है। वह ऐसी काव्यी है। उनमें काव्यी के दोनों कर्त्तों-पूर्व काव्यी और पश्चिमी काव्यी का प्रयोग हुआ है। वह काव्यी पूर्ण काव्यी में अधिकांश सम्पूर्ण जान बढते हैं। क्योंकि उनकी एकताओं में पूर्ण काव्यी ही के शब्द अधिकांश मिलते हैं। उन्होंने पूर्ण काव्यी की विधाओं, और उनकी विधाओं का भी अधिकांश प्रयोग किया है। उन्होंने देते ही शब्दों का प्रयोग किया है, जो अधिकांश प्रचलित नहीं थे। अत्यन्त सरल शब्दों के प्रयोग के कारण उनकी भाषा में विशिष्टता उत्पन्न हो गई है, और उनकी संवेदना वह हो गई है।

पूर्व काव्यी के साथ ही साथ काव्यी में पश्चिमी काव्यी के लिए कथनों, और उसके शब्दों का भी प्रयोग किया है। काव्यी की वह दोनों ही प्रकार की मादुर, सीढ़ी-पाल की, और बहुत सीढ़ी वाली है। उनकी भाषाओं में सामाजिक नहीं का प्रयोग की बहुत कम मिलता है। उनकी भाषा में दोनों अधिकांश नहीं के समाप्त नहीं है। कथनों में अधिकांश अनुभव समाप्त हो का प्रयोग उनकी भाषा में मिलता है। उन्होंने काव्यी का प्रयोग संस्कृत की शैली के न करके काव्यी की शैली के किया है। उनकी भाषा में मादुर और सम्पूर्ण है।

काव्य की शैली काव्यी शैली है। वह की शैली में प्रभावित है। कुछ ही उस पर कहीं कविता का सम्पूर्ण बड़ा है, और कुछ शब्दों के प्राचीन कविता का, वह वह सर्वथा सीमित है, और उस पर काव्यी के सम्पूर्ण की शृंगार है। वह कहीं काव्य, मादुर, और हृदय पश्चिमी है। शैली सीढ़ी काव्यी के शब्द है। कविता

और कविताओं का भी जायसी ने कान्हाई शैली में कव्हेय किया है। कविताओं के कव्हेयके कारण जायसी की शैली में अधिक सरलता आ गई है।

जायसी के पूर्व कबीर ने हिन्दुओं का एक ही प्रचार किया था। इसलिए वह समाज-विक है, कि जायसी के ऊपर कबीर का प्रभाव पड़े। जायसी और कबीर दोनों में कई बातों में साम्य और वैरम्य है। जायसी और कबीर दोनों ही कुशलमान हैं। दोनों ही के हाथ हिन्दी बाल्य का कुन्दर खिलार हुआ है। पर काम्य कहा की दृष्टि से दोनों की रचनाओं में अधिक अंतर है। कबीर में काम्य कला की कव्हेया कुशर की भावना अधिक है। जायसी में 'कुशर' और उपदेश की भावना का पूर्णतः अभाव है। कबीर कवि की कव्हेया सुधारक, और धार्मिक है। उनकी रचनाओं में बीमल कटुदृष्टि और एक कलवाली का अभाव है। भाषा और कान्हाई का ललित्य भी उनकी रचनाओं में नहीं है। 'एक' और 'कलवाली' की सम्मिलित बीमलता कबीर की रचनाओं में नहीं मिलती वहीं कबीरों। इसमें संदेह नहीं, कि कबीर की रचनाओं में कवि विद्वानों का प्रतिपादन हुआ है, पर एक प्रतिपादन में किसी कवि की कान्हाई नहीं, कान्हाई किसी सुधारवादी धार्मिक की भाषा का उपयोग हुआ है। उसमें मोक्षता और कटुता है। वह लक्ष्मी-लाली मनुष्यों के द्वारा की बात ही करके भी उनके द्वारा की नहीं कर कबीर। क्योंकि वह कटुता है। इसके प्रतिपक्ष जायसी कवि है। जायसी कवि के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। जायसी की रचनाओं में काम्य-कला का पूर्ण विकास हुआ है। भाषा, भाव, कान्हाई, कलवाली, और एक प्रतीक दृष्टि से जायसी की कवि विद्व होते हैं।

कबीर ने कुशर का विषय किया है। उनकी भावना के कारण और कटुता है। उन्होंने समाज के उन मन्त्रियों की कुल कर निन्दा की है, जिसका मन उनके 'मूर्खों' के विरुद्ध था। उनका कान्हाई में वेम ही वेम है। जायसी अपने कविताओं का भी सम्मान करते हैं। यही कुशर कबीर होने पर भी जायसी के मन में कटुता नहीं था। वे कान्हाई की और विद्वानों का प्रचार करने के लिए किसी विशेष संवसार की भी भावना नहीं करते। वे वेम पूर्वक लम्बे मिलते हैं, कान्हाई बात सुनते हैं, और एक की सम्मिलित की प्रवृत्ति करते हैं। वे कान्हाई कान्हाई की कव्हेया कटुता में प्रवेश करते हैं, और एक की एक ही कान्हाई की 'कान्हाई' मानते हैं। जायसी के कान्हाई का दृष्ट कबीर मनुष्य है। कान्हाई उनकी रचनाओं में धार्मिकता है, और वे एक की एक काय्य एक से नहीं हुई हैं, पर उन्होंने उसे एक दृष्ट के सामने उपस्थित किया है, कि उसमें कान्हाई मनुष्य का गया है। उन्होंने 'कटुता' की कान्हाई को रचना करने काय्य को मनुष्य के अधिक निकट ला दिया है। जायसी के बीच में भी समाजिक सम्मिल है, जायसी ने एक के विषय में कान्हाई प्रतिपादित का उपस्थित किया है, और एक एक में उन्होंने वह काम कर दिखाया है, जिसका कबीर कान्हाई देखा करते थे।

कबीर कान्हाई थे, उपदेशक थे, और एक-एक के उपदेश थे। हिन्दुओं के धर्म-कान्हाई का भी उन पर अधिक प्रभाव पड़ा था। पर जायसी की भाँति उनमें वेम की

भावना नहीं की। कबीर मिथुंसागर का विहीन पीपले ही वह सागर, पर हिन्दुओं और मुसलमानों के दृष्टियों को वे विनोदित न कर सके। दूसरे बावली के 'प्रेम' ने सबसे विनोदित कर दिया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बावली की रचनाओं में एक-दूसरे से ही बच रहे। बावली खुली कवि थे। प्रेम ही उनके काव्य का आधार था। हिन्दुओं के दर्शन से वे, नवी अधिक प्रभावित थे, पर इनमें कुछ विदेशीयन भी हैं, जो कबीर से मिलकूल नहीं है। कबीर यहाँ विद्युत् मानवीय हैं, यहाँ बावली में खुली मननवी रोनी और उनके विचार भी बच जाते हैं।

सममान बाबलुर के निवासी थे। उनके पिता का नाम योद्धा हुसैन था। उन्होंने १५२३ ई. में 'विद्यावती' की रचना की, जो एक कथात्मक प्रेम काव्य है। 'विद्यावती' की रचना बावली के ही पर-विद्यो पर हुई है।

उत्तमान के परचातु और कई खुली कवियों ने बावली का ही पराजुवरण करके प्रेम काव्य की रचना की है, जिनमें 'देवताली', 'अभिप्राय', और 'दुनुद्वन्द्व' का नाम उल्लेखनीय है।

मिथुंसा कव्य के प्रेमावली कवियों की रचनाओं का अध्ययन करने पर यह बात होता है, कि उनकी रचनाओं का एक मात्र आधार प्रेम है। सभी कवियों ने प्रेम का प्रेमावली आधार के ही विचार किया है। अपने प्रेम की परिपुष्टि करने साहित्य का मिथुन के लिए उन्होंने अधिक प्रेम बघाई खुली है। वे प्रेम की बघाई आधारभूत न होकर ऐतिहासिक हैं।

इन प्रेम की कथाओं की खुली में उन्होंने सबसे अधिक विवेचना यह प्रदर्शित की है, कि कवि ने मुसलमान थे, पर उन्होंने वही प्रेम बघाई हिंदू इतिहास से प्रभाव की है। इससे उनके प्रेम की विद्युत् और भावना प्रगट होती है। ही वक्ता है, कि उस पराजुवरण में जो कलहिलुता और कर्मावता का प्रगट था, उन्होंने हिन्दुओं के इतिहास के प्रेम बघाई प्रगट करके हिन्दुओं और मुसलमानों के पराजुवरण के मिथुन का प्रगट किया है, पर उनके काव्य में वही की उपदेश का मात्र इतिहास नहीं होता। इतिहास उनके प्रेम की विद्युत् प्रेम ही बघाई संगत होता। उन्होंने हिंदू इतिहास से अपनी रचनाओं के लिए बघावक प्रगट करके अपनी विचार दृष्टि और इतिहास उद्घाटन का परिचय दिया है। एका ही नहीं, उन्होंने हिंदू देवी देवताओं का भी वर्णन किया है, और उससे 'कलीकला' की ओर भी संकेत किया है। कवि उनके प्रेम कवियों में खुली विद्युत् का ही मुख्य रूप से प्रगटन किया गया है, पर इस पर भारतीय देवता की छाप भी है। खुली कवियों का 'दुर्ग' लक्षण कलीकला का ही होता है। उन्होंने अपने समूह 'कलीकला' काव्य की अपनी कलीकला का ही विचार किया है। उनकी प्रेम कवियों की कलीकला के प्रगट में कलीकला की ही खुली कली है। अपनी प्रेम कथाओं में उन्होंने प्रेमी कवियों, कवियों, और प्रेमी का वर्णन किया है, जिससे उनकी प्रेम बघाई पराजुवरण पर गई है, और कलीकला के लिए अधिक कली है।

जैम काव्य के सभी कवियों की यदि हम जानकारी कर लें तो अनुचित न लगे। उन्होंने अपनी रचनाओं में मरिचक्य के सभी की संवेष्टा गुण के सभी के ही अधिक भूम किया है। यही कारण है, कि उनकी रचनाओं में व्यंग्य और मधुरता की प्रचुरता है। रचनाओं का विषय 'जैम' होने के कारण उनके कव्यों में भ्रमर रस की ही अधिक संवेष्टा हुई है। भ्रमर रस के ही वर होते हैं— संयोग और विवेक। सभी कवियों का जैम काव्य गहनत्वपूर्ण है, इसलिए उसमें भ्रमर के विवेक वर की अधिक अभिव्यक्ति हुई है। भ्रमर के अतिरिक्त शयन-रस कीमत और भ्रमर हानादि रसों की भी उपयोगता हुई है, किन्तु इनकी अवसररूप से किसी कथा की मनोरंजनता में अभिप्रेरित होती है, उनकी 'रस' की संवेष्टा नहीं होती। अतः इनका अभिव्यक्ति होने पर भी यही के ही कारण है।

जैम काव्य के सभी कवियों की एक ही शैली है। यद्यपि उनकी शैली में भ्रमरविषय विचार के लक्ष्य विद्यमान है, पर उनका मार्ग एक ही है। उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए दो ही शब्दों की चुना है—'दोहा' और 'चौपई'। जैम काव्य के सभी कवियों में 'दोहा' और चौपई में ही रचनाएँ की हैं। उनकी कव्यविशेषता शैली 'दोहा' और 'चौपई' ही के लक्ष्य में एक ही अधिक आकर्षक और दूर तक साहित्यी बन गई है। 'दोहा' और 'चौपई' की प्रकृति पर ध्यान देकर ही उन्होंने भाषा का चुनाव किया है। उनकी भाषा कवची है, जिसके साथ 'दोहा' और 'चौपई' का संयोग कदा स्वाभाविकता के साथ स्थापित हुआ है। उनकी कवची कड़ी कला और लाल है, उसमें अधिकतर व्यंग्यारुप शब्दों की ही स्वाद दिष्ट वश है। सामाजिक न्यायविहीनता की उनमें प्रभाव है।

विष्णुदास शास्त्री के कवियों के प्रकाश सब हम उन कवियों, और उनकी रचनाओं पर प्रकाश करोगे, किन्तु वरुण शास्त्री के कवि करते हैं, वरुण शास्त्री ही शास्त्रीओं में विभक्त है—राम भक्ति शास्त्री और कृष्ण भक्ति

राम भक्ति शास्त्री शास्त्री : राम भक्ति शास्त्री, वर है, जिसके कवियों के ही रामचन्द्र की भक्ति को मुख्य आधार मान

कर रचनाएँ की हैं। राम भक्ति शास्त्री की रामचन्द्रकी की भक्ति पर प्रकाशित है। ही रामचन्द्रकी की भक्ति के प्रतीक सभी रामचन्द्रकी मूर्ति करते हैं। रामचन्द्र में सर्व प्रथम रामसीतामनन्द ने ही राम भक्ति कायी किया था। सभी रामानन्द कवि सभी रामानन्दानन्द के शिष्य थे, पर भक्ति के सिद्धान्तों की लेकर उनका उनके अनुकूलिनों से संबंध हो गया, जिससे वह वरुण से उत्तर भाग में बने लाल, और सभी रंग से राम भक्ति का प्रचार करने लगे। उन्होंने राम भक्ति के प्रचार के लिए एक सभी रामदास की स्थापना की, जिसे रामानन्दी रामदास करते हैं। रामानन्दी रामदास के आग्रह ही रामचन्द्र हैं, ही विष्णु के अवतार और परमेश्वर रामदास हैं। वे नाम, रूप, और गुण से संतुष्ट होने पर भी नाम रूप और गुण से वर हैं। उनका विचार एक है—विचार का सर्व क्षेत्र है, जिसमें

कम्यूनिस्ट' भ्रष्टाचार समाधिष्ट है। स्वामी रामानन्द ने काले इस साम्राज्य की स्थापना करने जर्मन की विश्वासता का संकेत दिया है, और उन्होंने उन कैबिनेटों के पुनर्गठन का एक सार्वजनिक कदम उठाया, जो काले तब द्वारा और देश की भाषा की भाषा को प्रति तथा लोक लोक के लोगों के ने रद्द करने वाले गले का रहे के।

[illegible]

राम मन्त्रि शाखा के कमिटी में वास्तामी तुलसीदासजी का सर्वोच्च स्थान है।
 वास्तामी तुलसीदास जी का जन्म संवत् 1255AD, के काल वास राजापुर में हुआ था।

राज्य भक्ति शास्त्रा ॥ वास्तविकता में उन्हें कभीक कठिनदर्शी ठहानी पड़ी
के कवि ॥ नीं । उनका वास्तव-जीवन कुछ महाभारतकी के द्वारा
पुष्टा था । महाभारतकी वे ही दृष्टिमें सर्व जगत् की राज्यकदवी की क्या नो दृष्टी
की । वही के यह फिर काशी क्यों गए । काशी में कई वर्षों तक रह कर इन्होंने वही
और शास्त्री का अध्ययन किया । इसके पश्चात् राजापुर लौट आए । वही 'रत्नावली'
के नाम इनका कविग्रन्थ पुष्टा । कई वर्षों के पश्चात् इन्हें विधि उत्पन्न हो
गई, और वह घर के निवृत्त गए । इन्होंने राज्य भक्ति में कर्मर हीकर काशी,
झरिया, और बिष्णुपुर आदि स्थानों की यात्राएँ की । संवत् १६८० में, काशी में
काशी घाट पर इनका समाधिस्थ हो गया ।

तिलासीली श्री रामचन्द्रजी के अत्यन्त महा थे । इन्होंने श्री रामचन्द्रजी की मूर्ति में अत्यन्त होकर कई जगहों की रचना की है । इनका कुपशिष्ट काव्य रूप श्री

धर्म का हीरकचक्र नहीं हो सका । यमराज दुःख हीरकचक्र है, और इसलिये हीरकचक्र है, कि उसकी पीठा में सम्यक्वाद की विराट् चैत्र है । बुद्धदेव की हीरकचक्र है, क्योंकि उसमें भी सम्यक् की भावना है । गौतमी तुलसीदासों की साहिबों के हीरक चक्र तक सम्यक्वादी है । उनका रामचरितमानस सम्यक्वाद की ही विराट् चैत्र है । उन्होंने अपने रामचरितमानस में विभिन्न परिचितियों का सम्यक् चित्र है । उन्होंने लोक के जय राजा, अहिंस्य के जय वैष्णव का, विदुषों के जय कपुल का, भक्ति के जय ज्ञान का, कर्म के जय ज्ञान ज्ञान का, सत्य के जय चक्राक्ष का और बलि के जय ज्ञान का सर्वत्र स्थापित किया है । उनके इस सर्वत्र स्थापन में स्थान, वेम और कल्याण की भावना है ।

गौतमी तुलसीदासों का जन्म धार्मिक है । उनके धर्म का क्षेत्र अधिष्ठा विराट् है । उनके धर्म के क्षेत्र में सर्वत्र विराट् विराट् करता है । वे विराट् के क्षेत्र में मानवी के हृदय में राम की तुल्य स्थिति का दर्शन करते हैं । पर फिर भी वे विराट् हैं, और सम्यक् धर्म पर आधारित रहते हैं । वे सम्यक् धर्म की इसलिये तक नहीं मानते, कि वह उनके धर्म का धर्म है, परन्तु वे इसलिये उनके सर्वोच्च मानते हैं, कि उसमें विराट् कल्याण की भावना है । वे अपने सम्यक् धर्म के विराट् क्षेत्र में वैष्णव, हीन, क्षत्रिय, वीर और ज्ञान ज्ञान रखते देखते हैं । उनके सम्यक् धर्म से कोई दुष्क नहीं है । उनके राम उनके सम्यक् धर्म के अधिष्ठा हैं । वे विदुषों की हैं, और कपुल भी हैं । वे ही ज्ञान हैं, वे ही विराट् हैं, और वे ही विराट् हैं । वैष्णवों के भी, और राजाओं के भी विराट्मान है । इसमें एक ही हीरकचक्र धर्म विराट् की मेरु का है ही उन्होंने यमराज विराट् की भूमि भूमि-वर्षा की है, और विराट् विराट् में स्थित का भी अधिष्ठापन किया है । इस प्रकार गौतमी की वे सम्यक् धर्म के विराट् क्षेत्र में सम्यक् मत मतों की और सम्यक् में प्रचलित विभिन्न धर्मों की समिलित करके सम्यक् हीरकचक्र का रूप करने का प्रयत्न किया है, और उनके हीरकचक्र का सम्यक् प्रदान किया है ।

महावीर के रूप में तुलसीदासों की महत्त्व प्रदान की है । वे ज्ञान हैं, कर्म हैं । उनकी भक्ति और उनकी कल्याण अधिष्ठा की है । उनकी अधिष्ठा भक्ति और उनकी कल्याण ही अधिष्ठा के रूप में प्रदान की है । उनकी भक्ति के हीरकचक्र, उनकी कल्याण के हीरकचक्र है, वे ही हीरकचक्र अधिष्ठा की सर्वोच्च क्षेत्र और अधिष्ठा है । विराट् प्रकार उनकी भक्ति और उनकी कल्याण के हीरकचक्र का मान विराट् है, उनकी कल्याण उनकी कल्याण की हीरकचक्र के लिए है । उन्होंने सम्यक् कल्याण रचना की है । उनके कल्याण कल्याण और पर विराट् में कोई कल्याण नहीं है । उनका कल्याण कल्याण ही दूसरे सम्यक् में पर विराट् और हीरक विराट् है । उन्होंने अपने कल्याण में विराट् राम के कल्याण का विराट् किया है, वे अपने हीरकचक्र की प्रतिभूति है ।

गौतमी तुलसीदासों की भी अधिष्ठा में विराट् और हृदय का अधिष्ठा है । पर

विश्व ठाढ़ बर्बर की बर्बित में बुद्धिवाद का जन्मिक विकास हुआ है, उस तरह का बुद्धि विकास योगवादी की भी बर्बित में नहीं है। उनकी बर्बित में बुद्धि की अपेक्षा हृदय की प्रबुद्धता है। उन्होंने बुद्धिवाद का खला गढ़ी तक बसाया है, वहीं तक उन्हें उछले जम्मी भक्ति की पुष्ट करने का सत सत हो सकता है। उनका हृदय बाद जन्मिक विमूढ़ है। उन्होंने ज्योति की भावना न होकर सम्यक् की भावना है। उनसे जो पैदा है, जो उग्रपुरुष है, वह सम्यक् के लिए है। उनके बुद्धिवाद में संकीर्णता नहीं है। वहीं वे ज्ञान के क्षेत्र में विचल है, वहीं की उनका अत्यन्त अधिक विचार और आदर्शवाद है। उनका ज्ञानवाद में उनके हृदय बाद की ही भाँति लोक-कल्याण की ओर उन्मुख है।

वार्त्तिकवादी हिंसे से भी मोक्षवादीकी मजहूर है। उन्होंने समाज के भीतर मजहूर गरिब की स्थापना की है। उनके साम्यवादीभावना का अत्यन्त गरिब मजहूर है। किसी में स्वयं की महानता है, जो किसी में कम की। किसी में सर्वोत्थ की महानता है, किसी में बौद्ध, और विश्वास की। किसी में कर्म और दण्ड की महानता है जो किसी में दुराचार और लोक-कल्याण की। तत्पर्य यह, कि उनका एक गरिब में ऐसा नहीं है, जिसमें कोई न कोई महानता न हो। उनके 'राज' की मजहूर गरिब के भंडार है। मोक्षवादी तुलसीदासकी ने अपने राज के मजहूर बरिबी के द्वारा ही समाज की अनेक कल्याणकारी दिशाओं की ओर चलने के लिए प्रेरणा की है। उन्होंने समाज के भीतर राम-नाम का प्रचार किया, और उनमें मिलसार्य कर्म की भावना उत्पन्न की। इसके साथ ही साथ उन्होंने समाज की सर्वोत्थ-व्यवस्था की ओर उन्मुख किया। सर्वोत्थ राज्य के मार्ग में, उन्होंने समाज की सेवा के साथ अनेकानेक विन-विनी के पुत्र करना भी सिखाया। उन्होंने बर्ब, सत्य, और स्वयं के लिए समाज के भीतर ज्ञान, और बलिदान की पराजयगत भावना भी उत्पन्न की।

मोक्षवादी तुलसीदासकी हिन्दी के मजहूरि है। उन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में काम कीति प्राप्त की है। अन्ततः बरिबी की भाँति उनके भी ज्ञान के ही सत्य है — ब्रह्म और ज्ञानरहित। ज्ञान के साथ अन्ततः में भाव, ज्ञान, और अर्थकार इत्यादि पाते हैं। ज्ञान का सांकेतिक अन्ततः वह भाव है, जिसे ज्ञान की सत्यता कहते हैं। मोक्षवादी तुलसीदासकी के ज्ञान का ब्रह्म और सांकेतिक-दोनों ही अन्ततः अधिक प्रबल है। ज्ञान के दोनो ही अन्ततः का सीद्ध उनको रचनाओं में पूर्ण भाषा में साफ जाता है।

मोक्षवादीकी मजहूरि है। उनकी बर्बित का आधार बर्बित की विद्वत्ता है। उनकी बर्बित, और उनकी भक्ति-विद्वत्ता में कोई अन्तर नहीं है। उनकी बर्बितकी के राज-राज में उनकी वह ज्ञान विद्वत्ता है, जो राज की भक्ति में समर्थ हो गई है। उनकी रचनाओं में भी समर्थता है, जो संतकता है; वह इसी का परिचाय है। उन्होंने राम-भक्ति के अन्ततः में हृदय करके ही अपने ज्ञानों की रचना की है। जिस अन्ततः उनकी भक्ति बर्बित है, जिस अन्ततः उनकी राम का गरिब बलिदान भाव है, उसी

[illegible]

हुआही-हवाही के भाषी में बड़ी कठोरमया और नविमता है। उन्होंने यहाँ विश्व मान सम्बन्धितत्व किया है, बड़ी उत्पन्नता के साथ किया है। मला हीने के भाष्य इनमें अतिथि सम्मिलित है। उनकी सम्मिलितता के ही ने मानव-द्वय के भीतर बैठ लगे हैं, और भीतर के दुष्का विघटन कर बाहर रहने के समर्थ हो लगे हैं। मानव-द्वय के सम्मिलित भाषी पर इसका प्रभावितत्व है। वे प्रेम के भी पूर्ण परिचित हैं, और कठोरता से भी। वे अनुमान की भी समर्थ हैं, और वैज्ञानिक की भी। संयोग से भी उनकी निबन्धता है, और वैज्ञानिक से भी; सामर्थ्य यह है, कि वे मानव द्वय से पूर्ण रूप से परिचित हैं। उनकी सम्मिलितता बड़ी प्रगल्भ, और सम्मिलितता है। भाषी का विश्व अतिथि करने में वे अतिथि प्रगल्भ हैं। उन्होंने यहाँ विश्व मान का विश्व किया है, बड़ी उत्पन्नता के साथ सम्मिलित कर दिया है। उनके भाष्य-कर्मों में न कहीं कठोरता की उत्पन्नता है, और न कहीं अतिथि-कर्म की सम्मिलितता। उनके भाषी का सम्मिलित बड़ा ही संयोग और सम्मिलित पूर्ण है। उनके भाषी भी प्रगल्भ करने वाले सम्मिलित हैं। उनके सम्मिलित भीतरने में साथ रहते हैं।

सौमनासी की का मानव हृदय पर पूर्ण अधिपत्य है। उन्होंने मानव हृदय के सौन्दर्य भावों का अधिपत्य बना दिया है। उनके समस्त कविता विशेष रस पर आधारित नहीं हैं। मानव हृदय में कितने प्रकार के 'रसों' का उद्बोध हो सकता है, उसकी रचनाशैली में वे सभी रस पूर्ण भाषा में प्राप्त होती हैं। आकाशों के काल के अंतर्गत भी यही की कल्पना की है—सुगंध, कदम्ब, अमृतक, नीलमय, रौद्र, हृदय, नीर, वातावरण, और कदम्ब। सौमनासी तुलसीदासजी का समकालीन मानव रसों का संसार है। इन समस्त रसों के सहायी और सहायी भावों का भी उनकी रचनाशैली में पूर्ण विकास हुआ है। उन्होंने जिस रस की कहीं भाषा नहीं है, वहाँ उसका एक एक-एक कदम पर दिया है।

नौसानी तुलसीदासजी ने प्रथम और सुकस-प्रेमी ही जगद के राजों की रचना की है। उनका प्रथम भाव रामचरितमानस अधिक उचित है। भावों और रसों की दृष्टि से रामचरित मानस अत्यन्त उत्तम है, उसका ही यह कथा की दृष्टि से भी अधिक उत्तम है। रामचरितमानस में कथा का विकास पूर्वत के साथ हुआ है। आदि में लेकर अंत तक कथा का विकास बढ़ रहा है। उनका वेग यही भी दिखित होता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। उन्होंने-सगरी मूल कथा के बीच-बीच में बहुत ही चटपटी, और उपकथाओं का जो सम्मिश्रण किया है। यह सम्मिश्रण हमने स्वामि-किन्तु और उपकथा के साथ किया गया है, कि वे उनकी लय बहनाई और

उपकथार्थें मूल कथा का ही एक चित्र बन गई हैं। मूल कथा में चरित्राच्छी और उपकथाओं का संविविष्टान करते हुए मोक्षार्थी की मूल कथा की गहरी भूलसे। उनकी दृष्टि में मूल कथा की प्रभावशाली और उत्तम महत्व सर्वत्र प्रमुख रूप में ही बना रहता है। उन्होंने मूल कथा के अन्तर्गत की बदलाने के लिए ही उपमेय चरित्राच्छी और उपकथाओं का संविविष्टान किया है। वे कहना किसी चरित्र का सर्वत्र अपनी मूल कथा के साथ नहीं सम्बन्धित कर देते। उन्हें सब देना करना होता है, सब के सभी विपुलता के साथ अपनी मूल कथा के उत्तर और पूर्ण भाव के उत्पन्न की स्थापित करते हैं, और बीच में उस चरित्र को एक प्रकार स्थापित कर देते हैं, कि वह मूल कथा का एक चित्र बन जायें, और कथा के अन्तर्गत की बदलाने में अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है।

मोक्षार्थी मूलकथाओं का प्रभाव भाव सभी रूपों में संशुद्ध है। कथा, संवाद, चरित्र चित्रण इत्यादि दृष्टि में वह प्रमुख है। जिस प्रकार उसमें कथा का प्रभुत्व प्रभाव है, उसी प्रकार उसमें संवाद, और कथोपकथन की स्वाभाविकता भी है। उनके सभी संवादों में नाटकीय कला का प्रभुत्व विद्यमान होता है। उनके संशुद्ध कथोपकथन और संवाद स्वयं और परिचित के ही प्रमुख हैं। उनके सभी चरित्र चरित्रों का है, जो सभी कुरातता, और मार्मिकता के साथ भाव में सब जीत करते हैं। संभव, और कर्तव्य उनके चरित्रों का लक्षण है। चरित्रों के चित्रण में उन्होंने सभी बहुत प्रदर्शित की है। उनका कोई भी चरित्र सभी स्वाभाविकता का उत्पन्न नहीं करता। उन्होंने केवल चरित्र ही चरित्र नहीं उपस्थित किए हैं, बल्कि देते ही चरित्र उपस्थित करते हैं, जो मिश्रणों के बहुत ही वातावरण हैं; पर इन वातावरणों की दृष्टि के चरित्रों के उपस्थित करने में भी उनका अर्थ ही प्रभाव है; सब उनमें भी महानता का गौरव है।

मोक्षार्थी चरित्रों में भी अधिक कुरातता है। उन्होंने अपने सामर्थ्यशाली में अपने विविध, अपने भावों की दृष्टि, और अपने भावों स्वयं का चरित्र किया है। वे प्रकृति और मानव-जीवों के ही मार्मिक चरित्र हैं। जिस प्रकार प्रकृति के विविध चरित्रों की उन्होंने देखा है, उसी प्रकार मानव के विविध चरित्रों का भी उन्हें साथ है। सामर्थ्यशाली में, विविध चरित्रों में उन्होंने प्रकृति का भी महान् चित्रण किया है, उसमें उनकी प्रभावशाली प्रभाव होती है। वे प्रकृति के साथ स्वयं की ही देखा कर साथ नहीं हो जाते। वे उसके भीतर भी प्रवेश करते हैं, और उसमें उस अन्तर्गत का दर्शन करते हैं, जो प्रभाव है, जलौकिक है। वे प्रकृति की भावों को सब नहीं समझते। प्रकृति और मानव-जीवों की प्रभावशाली का उन्होंने पूर्ण रूप में प्रमुख किया है। वे मानव जीवन और उसकी परिचितियों के भी पूर्ण चरित्र हैं। मानव के भाव की संशुद्ध दृष्टिओं का उन्होंने सामर्थ्यशाली में चित्रण किया है। उनकी-चरित्रों में मानव की संशुद्ध दृष्टिओं का ही एक चित्र है। सभी

कारण है, कि हम योगियों पुस्तकालयों की मांग कम कर प्रतिनिधि बन सकते हैं।

बीजवाणीजी के राज्य का राजा स्वयं भी अधिक व्यापक, और आकर्षक है। उन्होंने अपनी रचनाओं में निम्नलिखित कानों का प्रयोग किया है। बीजवाणी और रोहि में उन्हें सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। उनके समकालीनमान्य में बीजवाणी और रोहि ही सबसे अधिक संख्या में मिलते हैं। बीजवाणी और रोहि के अतिरिक्त उन्होंने रींगल, रंगमय, मादुरल, मिनीमिड, मालिनी, और गुनगुन प्रकाश इत्यादि कानों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने ऐसे कानों का भी अधिक प्रयोग किया है, जो बीजवाणी स्वयं हैं। 'बीजवाणी' और 'विजय पत्रिका' के उनके बीज बहुत ही मिय हैं। आज-कालों की बीजवाणी में उनकी रचनाओं में सुधारण के लक्ष्य हैं। समकालीनमान्य में प्रायः सभी प्रकार के कानोंका प्रयोग मिलते हैं। 'बीजवाणी' की रचना केवल कानोंका प्रयोग के ही लिए हैं। उनकी उपमाएँ और कान भी अति-लक्ष्य हैं। अतिरिक्त स्वयं का प्रिय उन्होंने कभी मालिनीका के लक्ष्य अंकित किया है।

नीरवामी हृत्तबीहासमी भाषा के बलिष्ठ थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में ही ब्रम्ह की भाषा का प्रयोग किया है—उक्त कवली, और दूसरी गम। पर इन भाषाओं की तुलना और उसके लालित्य की और उनका ध्यान कम करने पड़ता है। भाषा हीनता की कमेड़ा उनका ध्यान भाषा-विशाल की और खिंचता है। यही कारण है, कि उन्होंने भाषा के परिमार्जन, और उसके सुश्रवण में अपना अधिक समय नहीं लगाया। यही भी उनका एक बड़ा दोष है, उन्होंने उन्हें ही दिया है। यहाँ के निर्वाचन और सङ्ग्रह में उन्होंने केवल इसी बात का ध्यान रखा है, कि उनके यहाँ ब्रम्ह उसके भाषी की आँखों के नीचे में अधिक सहायक सिद्ध हो सके। उन्होंने यद्यपि संस्कृत के उत्तम शब्दों का अधिकप्रयोग किया है, पर उनकी भाषा की भाषाओं की तरह नहीं है। उन्होंने कई भाषाओं से कदाचित् और मुहावरों केकर उनका अपनी भाषा में उचित और उपयुक्त प्रयोग किया है।

[illegible]

केदार रीति काव्य के आचार्य बड़े होते हैं। कुछ लोगों का कथन है, कि केदार रीति काव्य के अन्तर्गत नहीं है। किन्तु इसका महत्त्वार्थ नहीं, कि केदार के पूर्व किसी ने रीति-शास्त्र पर लिखने का प्रयत्न नहीं किया था। केदार के पूर्व कई ऐसे रचनाकार हो चुके हैं, जिनोंने साहित्य शास्त्र के अंशों पर प्रकाश डाला है। शिव-सिंह सेन के कथनानुसार १००० क्रिस्ताब्द में पुष्प वाचक कवि हो चुका था, जिसने कालचुर शास्त्र विषयक एक ग्रन्थ की रचना की थी। गीत कवि ने भी कालचुर के दो छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे-ने। अन्तर के राजस्य काल में दो और पुस्तकों की रचना हुई थी, जिसका नाम 'शृंगार कवच', और 'हित लोचिनी' है। 'हित लोचिनी' में रीति का निरूपण किया गया है। 'शृंगार कवच' में शृंगार रस का वर्णन है। अन्तर के ही समय में 'चौम' ने कवि कुन्दो ने नायिका मेरु लिखा था। अन्त केदार के बड़े भाई कालचुर ने 'नव हिता' और दूसरा विचार पर एक ग्रन्थ की रचना की थी। पर साहित्यिक दृष्टि से इन कर्मों का कोई बहुत नहीं था। ये सभी ग्रन्थ साहित्य शास्त्र संबंधी बहुत प्रकाश काय थे। इस दिशा में सर्व प्रथम सुशोभितकारी प्रकाश केदार ने ही किया। केदार ही सर्व प्रथम उस भाग की ओझने में समर्थ सिद्ध हुए, जो काली रस कविता के नाम से साहित्य के अन्तर्गत शुद्धशुद्ध रही थी। इसलिये हम केदार को ही रीति प्रकाश का प्रवर्तक, और प्रथम आचार्य मानते हैं।

केदार हिन्दी साहित्य के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उनकी रचनाओं में कविता कला, और आचार्यत्व अधिक है। उन्होंने साहित्य-शास्त्र पर कर्मों की रचना तो की ही, साथ ही साथ ही कालचुराचार की और भी सीखा। उनकी रामचरित काव्यकारों के सभी कर्म हैं। उन्होंने अपनी रामचरित में बहुत के अलंकारों का प्रयोग किया है। संस्कृत के अलंकारों का भी प्रयोग उन्होंने रामचरित में किया है। वाच, माध, अलंकार, और साहित्यिक इत्यादि संस्कृत के महाकविओं की कल्पनाओं की रामचरित में व्याप्त देख कर उन्होंने अपनी समस्त विद्वत्ता का परिचय दिया है। अपने हृदयगत भावों का वर्णन करने के लिये उन्होंने निराल शास्त्र के सभी कर्म समाप्त कर जाते हैं। ऐसा कोई कर्म नहीं, जिसका उदाहरण उनकी रामचरित में न मिलता हो। अलंकारों और कुन्दो के अन्तर में यह घर उन्होंने समस्त कविता की उद्देश्य की है। उनकी दृष्टि सर्वत्र जग की ओर से उदासीन दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत वे सर्वत्र जग में अलंकारों, कुन्दो, और कर्मों के द्वारा समाचार उत्पन्न करते हुए दृष्टिसेकर होते हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता निश्चय नहीं है, कि कोई उनके कर्म नेगी कर्मों को यह घर करना हान्य नकल हो; पर उन्हें इस बात की पूर्ण चिन्ता है, कि उनके हृदय पर उनके गंभीर साहित्य का कथन प्रकाश रहे। साहित्य का प्रकाश प्रकाश करने के लिये उन्होंने अपने जग में कविता के कविता कर्मों का प्रयोग किया है। कविता अग्रचरित कर्मों और दूसरे अलंकारों की समस्त के कारण उत्पन्न जग कविता सुन्दर रस

गया है। इतना दुःख कम गया है, कि उसके कारण लोग उन्हें कठिन काम का सेव करते हैं।

केदार की कान्ठ कला पर उनके आचर्यत्व की पूर्ण श्रृंगार है। वे सर्व वस्तु आचार्य हैं, और यदि उनके घरवाले। उनकी रचनाओं में कान्ठ का समस्त अधिक है, और यदि भी कान्ठ का समस्त। उनमें प्रतिभा है, बाल्य, वैदग्ध्य है, और प्रशंसित वादित्य है। पर उससे भावपूर्ण नहीं है। यहाँ वे मानों के क्षेत्र में उतरे हैं, यहाँ वे कान्ठल सिद्ध हुए हैं। क्योंकि यहाँ भी उन्होंने अपने वादित्य के प्रदर्शन में ही कान्ठ की प्रतिभा का उपलब्ध किया है। वे सर्वत्र गतिमान का ही अनुसरण करते हुए वादित्यकार होते हैं। उन्होंने कान्ठ की और कहीं नहीं उतरी है। यही कारण है, कि उनकी रचनाओं में दुःखता और नीरसता है। उनकी कान्ठनाओं और वक्त्रनाओं में सर्वत्र उनकी कान्ठ-हीनता विद्यमान है।

केदार की रचनाओं में केवल कान्ठकार ही वाच्यकार है। रचनाओं में कान्ठकार जातक करने के लिए उन्होंने बहुत से ऐसे कालकारों का आश्रय लिया है, जिनका प्रचलन हिन्दी में नहीं था। संस्कृत के कई बड़े-बड़े कवियों के कालकारित्व वाक्यों की उन्होंने कहीं का भी कान्ठ रचनाओं में रक्त किया है। इनका ज्ञान कालकारों और कान्ठों का ही सीमित है। उनकी रचनाओं में कान्ठ जीवन की विस्तृतता नहीं नहीं कान्ठ। जीवन की परिचितियों, और कान्ठकारों के उनकी रचनाओं का कोई संबंध नहीं है। मान्य कान्ठ की कान्ठों से वे विस्तृत कालकारित्व हैं। प्रकृति से भी उन्हें कोई रस नहीं है। प्रकृति से उन्हें कोई सीन्दरी दिखाई नहीं देता। यहाँ उनके कान्ठों का स्वभाव बगल कान्ठों है, और उदीयमान अधिविमान कान्ठ कान्ठिक का सीमित मरे कान्ठ का स्वभाव उपलब्ध कान्ठ है। हाँ, उनकी रचनाओं में कान्ठ-कारों की अधिकता है। उन्होंने कान्ठ कान्ठों का कान्ठ किया है, जिसमें कान्ठों और कान्ठ की हैं। उनमें कान्ठ कान्ठों के लिए है, उनके कान्ठकारों में उनकी कान्ठ-कान्ठों दर्शनीय है।

'रामचंद्रिका' केदार की कान्ठकृत रचना है। कान्ठों में उनकी रामचंद्रिका की कान्ठ का विस्तार पूर्ण कान्ठों है, पर उसके कान्ठकार से ऐसा सात होता है, मानों का कान्ठों के उदाहरण के लिए रस कान्ठों का कान्ठकृत कान्ठ कान्ठ ही। कान्ठों की कान्ठों के उनके कान्ठों का ही कान्ठ कान्ठों वादित्य। कान्ठों के कान्ठकार कान्ठों का कान्ठ कान्ठों का कान्ठ कान्ठों है, कि कान्ठों रामचंद्रिका की कान्ठ कान्ठों का ही कान्ठ कान्ठों रहे। उपलब्ध कान्ठों की कान्ठकारों, और कान्ठों के कान्ठों में कान्ठ कान्ठों की कान्ठों के कान्ठों कान्ठों कान्ठों ही कान्ठों, और कान्ठों रामचंद्रिका की कान्ठ कान्ठों प्रदान किया, जो कान्ठ कान्ठों कान्ठों है।

केदार की रामचंद्रिका की भी कान्ठों की कान्ठों कान्ठों है, जो रामचंद्रिका की कान्ठों के ही कान्ठों कान्ठों है। कान्ठों की कान्ठों के कान्ठों कान्ठों कान्ठों की रामचंद्रिका का कान्ठकार कान्ठों है। कान्ठों प्रदान कान्ठों कान्ठों है, कि कान्ठों कान्ठों कान्ठों है।

उसमें राजाशाह लखी का इलाका शामिल है, कि किसी का मन उनके पढ़न-पाठन में नहीं लगता। केवल की निरोद्धता कति बहुत ही परिमित है। मानव जीवन के बाह्य लक्षण की ओर कहीं कहीं उनको दृष्टि गई है, पर प्रकृति में सम्मिश्रित जीवन के वे दूरतः अवशिष्ट हैं। यहाँ कहीं जीवन की मित्र-मित्र दृष्टांशों की ओर उनकी दृष्टि गई है, उनमें मातृकता उत्पन्न हो गई है। पर उनकी या मातृकता भी अधूर्ण है। गर्म लखी पड़नाओं का निवास करने में उन्होंने कहीं भूलों की हैं।

केसव भी श्री रामचन्द्रजी के लक्ष्य हैं, पर उनकी भक्ति और सीमासीमा की भक्ति में अतिरिक्त अंतर है। सीमासीमा की भक्ति में वहाँ लगभग और विशेषता है, वहाँ केसव की भक्ति में उपद्रव-लक्ष्य है। केसव की रचनाओं में ऐसा प्रतीत होता है, कि उनमें भक्ति की विधायिका नहीं थी। क्योंकि वे अपनी रामचन्द्रिका में वहाँ भी भक्ति में विशेष और अलग नहीं दिखाई देते। उन्होंने राम का चरित्र वर्णन करते हुए वहाँ भी ऐसी विधि नहीं उल्लेख की है, जो सीमासीमा की। उनका चरित्र वर्णन बहुत ही सामान्य है। वे राम की मर्त्यता की भी रक्षा नहीं कर सके हैं। चरित्र के सभी रसों को व्यवस्थित से उन्होंने नहीं किया है। वर्णनों के समानुपात पर उनका ध्यान ही नहीं था वरना है। परिश्रम स्वयं वही तो वर्णन करने लगे लगे ही गया है, कि मन में अब उनका होने लगती है, और वही हमने छोड़े हैं, कि उनका भाव-सीमा ही यह ही गया है। केसव का भाव-सीमा की और मिलकत ध्यान ही नहीं था। वे स्वतन्त्रतावादी नहीं थे। अमलदार की दिशा में उन्हें एक अलग लक्ष्य प्राप्त हुई है।

[illegible]

केदार के शब्दों का प्रभाव और उसकी रचना से उपपन्नता का ज्ञान है। उनके शब्द विचार होने के साथ साथ मान-सम्बन्धता से भी युक्त है। उनका रचना में उचित रूप से नहीं हुआ है। शब्दों का उचित संश्लेष न होने के कारण उनकी

के पूर्व स्वामी रामानन्द कन्या के मात में एक देवी बुद्धिभूमि बना चुके थे, जो गोलामी तुलसीदासजी की भक्ति के लिए बड़ी अनुकूल थी। स्वामी रामानन्द स्वयं रामोत्तमक थे। उन्होंने राम भक्ति का अन्वेष कन्या की बड़ी प्रभावपूर्णता के साथ किया था। उनका अन्वेष कन्या के हृदय में सूँभ रहा था, और कन्या दिनों दिन राम भक्ति की ओर आकर्षित हो रही थी। इसी समय गोलामी तुलसीदासजी का आधिपत्य हुआ। गोलामी तुलसीदासजी की भक्ति के विकास के लिए पहले के ही बुद्धिभूमि तैयार थी। अतः गोलामी तुलसीदासजी की भक्ति में बहुत कम वर, और परिश्राम लेकर राम भक्ति का प्रचार प्रवर्धन में लगे पड़ा। गोलामी तुलसीदासजी के राम-भक्तितान्त्रिक के राम भक्ति के प्रचार की रीतने में सबसे अधिक सहायता प्राप्त हुई। श्री रामचरितमानस में राम भक्ति की भावना के आधार में बहूँधा दिया। आज भी मानस के द्वारा ही राम-भक्ति के प्रचार और प्रसार में सर्वाधिक सहायता प्राप्त हो रही है।

किन्तु दिनों राम भक्ति स्वामी रामानन्द से प्रेरणाग्रत वाकर प्रवर्धित और पुनित हो रही थी, उन्होंने दिनों कृष्ण भक्ति के साक्षात् में भी वर-वर नये और दृढ़ लग रहे थे। कृष्ण भक्ति की प्रेरणाग्रत प्रदान करने वाले स्वामी बल्लभाचार्य थे। जिस प्रकार स्वामी रामानन्द ने गोलामी तुलसीदास की राम-भक्ति के लिए पुष्टि भूमि तैयार की थी, उसी प्रकार बल्लभाचार्यजी ने कृष्ण भक्ति की एक देवी बुद्धिभूमि तैयार की थी, जो तुलसीदासजी की कृष्ण-भक्ति के लिए बड़ी अनुकूल थी। एक प्रकार राम भक्ति, और कृष्ण भक्ति का प्रचार साथ ही साथ चलता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार माने जाते हैं, पर दोनों की भक्ति दृष्टांशों में अधिक अंतर है। राम काल के प्रेरणादात्री ने राम की भक्ति दैत्य और रामस मात के की है, पर कृष्ण की भक्ति में 'अपरा' और जेस भाव की प्रवर्धन है। 'राम' और कृष्ण दोनों ही कान्ही की भाषा भी पुनक-पुनकही। राम काव्य की भाषा 'काव्यी' और कृष्ण काव्य की भाषा गज है। दोनों के दृष्टिकोण में भी अधिक अंतर है। राम काव्य में जीवन पूर्ण रूप के प्रतिनिधित्व मिलता है, वेला है, पर कृष्ण काव्य में वह दर्शाती है। दोनों का अपना पुनक-पुनक क्षेत्र, और अपनी पुनक पुनक विशेषताएँ हैं। यद्यपि दोनों ही एक 'दूल' की दो सातकार्य हैं, पर दोनों की मन्त्रालिनी और वरमन्त्राली में अधिक अन्तर है।

राम काव्य का आधार भी रामचन्द्रजी का चरित्र है। गोलामी तुलसीदासजी राम भक्ति-साक्षात् के प्रतिनिधि बनते हैं। गोलामी तुलसीदासजी के 'पूर्व' राम कथा का विकास 'बाह्यीति रामायण' और 'अध्यात्म' रामायण में ही हुआ था। 'राम कथा' इनके प्रतिष्ठित थी और कई रूपों में गई जाती है; पर 'राम कथा' के लिए यही दोनों रूप देते हैं, जो प्रतिनिधि बने का सकते हैं। गोलामी तुलसीदास ने अपनी राम कथा का पुनक इन्हीं दोनों कान्ही के आधार पर किया है। उनकी राम कथा 'बाह्यीति रामायण' की अपेक्षा 'अध्यात्म रामायण' पर अधिक आकलनित है। तुलसीदासजी

की राम कथा सर्वांग और संपूर्ण है। उन्होंने कथा का संश्लेषन नयी विधि के साथ किया है। उनकी राम कथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से होती हुई पूर्णता की ओर गमन कराती है। उन्होंने अपनी 'राम कथा' में लोकजीवन आर्थिक विद्यामयी का समावेश किया है। उनकी 'राम कथा' में दर्शन के सिद्धान्त भी उभर आते हैं। शैक्षिक दृष्टि से भी उनकी 'राम कथा' सुसज्जित है। इस प्रकार उनकी राम कथा में जीवन अपने सम्पूर्ण दृष्टिकोणों के साथ प्रतिबिम्बित हुआ है। यही कारण है, कि उनकी राम कथा जीवन का एक विशिष्ट रूप बन गई है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने कालों का निर्धारण इसी राम कथा के आधार पर किया है। गोस्वामीजी के वृत्तान्त के राम भक्ति शास्त्र के कविों ने गोस्वामी जी का ही अनुसरण किया है। यद्यपि उनके कालों में गोस्वामीजी की 'राम कथा' अपनी पूर्णता के साथ अभिव्यक्त नहीं हो सकी है, पर इससे स्पष्ट है, कि गोस्वामीजी के दरवाजे कविों ने रामचरित के लिए गोस्वामीजी की ही अवलोक्य इदार्थक माना है। राम राज्य के सभी कविों ने विलक्षण प्रकार 'राम चरित' की आधार स्तम्भ बन अपने कालों की रचना की है, उन्हीं प्रकार उनके कालों के क्षुब्ध भी अपना रस ले रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने यद्यपि क्षुब्ध, शोक, दर्शन, विलाप, शोक, शोकिका पर, और शोकिका इत्यादि कालों में रचनाएँ की हैं, पर इनका मुख्य क्षुब्ध 'दोष' और 'बीबाई' ही है। इनके भी रामचरितनामक की रचना दोष, बीबाई, और शोकिका में हुई है। तुलसीदासजी के अग्रेगी कविों ने अविवक्षित इसी क्षुब्ध की अनुसरण है। राम भक्ति शास्त्र के कविों ने केवल ही एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने क्षुब्ध के क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदासजी का अनुसरण नहीं किया है। केवल ने अपनी राम चरितका के निरालोच से अपने आर्थिक क्षुब्धों का प्रयोग किया है, कि उनकी राम चरितका विमल का एक रूप बन गई है। अन्तर्गत की दृष्टि से भी केवल का नाम तुलसीदासजी के नाम से पुनः है। क्षुब्धों की भाँति ही केवल ने अपनी रामचरितका में अन्तर्गत की की प्रति रचा दी है।

राम भक्ति शास्त्र के सभी कविों ने ही मायाजी में रचनाएँ की हैं — 'अवधी' और 'ब्रज'। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी, की इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं, 'अवधी' और 'ब्रज' में ही अपनी रचनाओं का प्रचार किया है। गोस्वामीजी की 'अवधी' यही क्षुब्ध, शोक, और 'ब्रज' है। 'ब्रज' की अनेक गोस्वामी तुलसीदासजी की 'अवधी' में आर्थिक प्रयत्न प्राप्त हुई है। गोस्वामीजी की अवधी में गोस्वामी, गुनगारी, विलाप, और मण्डली इत्यादि मायाजी के भी उद्भव मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी के अग्रेगी कविों ने, माया के क्षेत्र में भी गोस्वामीजी का ही अनुसरण किया है। केवल ने ब्रजभाषा में रचना की है। उन्होंने रामचरित का सर्वत्र ब्रजभाषा में करते गोस्वामी तुलसीदासजी की भाव-राज्य को मानने से जैसे आलोचना-का कर दिया है। उनकी ब्रजभाषा पर स्पष्टतः कुन्दलसौखी का प्रभाव है।

'राम राज्य' 'दोष' और 'दोष' भक्ति पर आधारित है। राम भक्ति शास्त्र के

सभी कवियों ने मर्मित के राज्य प्राप्त कर ही साधक बना दिया है। मोरारजी तुलसीदास को ही राज्य और देश मर्मित के अधिकारी है। 'देश' और राज्य नाम के अनुसूत ही 'राम काव्य' में साँत रात को उभित हुई है। मोरारजी तुलसीदासजी के राम-चरितमारण में नववि सन्नी नहीं की अवधारणा हुई है, पर 'साँत रात' उनसे विशेष रूप से प्रकटित हुआ है। मोरारजी तुलसीदास के नवरात्री कवियों की रचनाओं में की सर्वत्र 'रात' ही एक बात होता है। 'रात' का के साथ ही राम नहीं नहीं गुंवार रात की भी प्रधानता मिलती है। पर वह गुंवार, वह गुंवार नहीं है, जो रीति-काज की रचनाओं के साथ आता है। एक गुंवार में भी साँत रात, और रामोक्त-सा है।

कृष्ण मर्मित राधा के प्रसन्नक लामो ब्रह्माचार्यजी हैं। नववि कृष्ण-मर्मित राम मर्मित के साथ ही साथ अनुकूलित हुई, पर उनके वास्तविक प्रचार और प्रचार का एक कृष्ण भक्ति लामो ब्रह्माचार्य की के ही साथ प्राप्त हुआ है। लामो और लामो ब्रह्माचार्य की का नाम संवत् १५१५, और संवत् संवत् १५५५ में हुई थी। मर्मित के इतिहास के गद्य चलता है, कि लामो ब्रह्माचार्य की के बहुत पूर्व के कृष्ण मर्मित काल के रूप में विद्यमान की। कर्मदेव और विद्यापति इत्यादि कवियों ने कृष्ण मर्मित के प्रति होकर साहित्य की वर्तना भी की थी। पर सभी एक कृष्ण मर्मित के लिए कोई निश्चित रूप नहीं बन सका था। सर्व प्रथम लामो ब्रह्माचार्य की ने ही एक दिशा में प्रसन्ननीय कार्य किया। लामो ब्रह्माचार्य की के पूर्व राम भक्ति का अधिक प्रचार ही हुआ था। लामो रामानन्द ने कला के क्षेत्र में लक्षित होकर, कला के रूप की विष्णु के इतिहास 'राम' की भक्ति के रात से लक्षित कर दिया था। मोरारजी तुलसीदासजी ने राम भक्ति के 'रात' की और भी अधिक प्रचार का एक दिया। उन्होंने की तुलसीदासजी की रचना करके, कला के रूप पर राम-भक्ति की काल रूप की प्राप्त की। इसी दिनी लामो ब्रह्माचार्य की का अधिकारी हुआ। उन्होंने भी कृष्ण की अपनी मर्मित का साधारणतः एक सर्वत्र भक्ति रूप का प्रचार किया की ब्रह्म रामानन्द के नाम से प्रकट हुआ। ब्रह्माचार्य की के कृष्ण, रामानन्दजी के राम की मति ही प्रकट प्रमाण है। वे संवत् तुलसी में परिपूर्ण हैं। उनकी सीमाएँ मिल हैं। वे लामो वैकुण्ठ में निवास करते हैं, और कर्मप्रचार की सीमाएँ करते हैं। की कृष्ण का लामो वैकुण्ठ विष्णु लोक से ऊपर है, जिसमें सन्त, कर्मज, और कृष्ण विष्णु का मिल रूप में मिलित है। लामो ब्रह्माचार्य की ने देते की कृष्ण की मर्मित के लिए केवल-साधना की ही तुल्य काल पोषित किया है। उन्होंने जोर की की कृष्ण रूप तक की मर्मित के लिए केवल पूर्ण भक्ति का ही उपदेश किया है।

लामो रामानन्द की सीमा ही ब्रह्माचार्यजी ने की अपने रात के प्रचार के लिए कर्मज लामो की सीमा, की। अपने विचारों के प्रचार के लिए उन्होंने उपदेश की

दिए, और कभी की रचना भी की। उन्होंने अपने मत का प्रचार करते हुए, राम-भक्ति का तो विशेष बड़ी किया, पर उन्होंने ब्रह्माचार्यजी के निर्दुष्ट मत का बहुत बरकरार किया; साथ ही उन्होंने कृष्ण भक्ति पर बल देते हुए 'विश्व भक्ति' की परम्परा बनाने का भी प्रयत्न किया। स्वामी रामानन्द, और स्वामी ब्रह्माचार्य जी के उपासी से राम और श्री कृष्ण की भक्ति का प्रचार हो हुआ, पर उनके साथ ही विश्व भक्ति की ओर से लोगों में उदासीनता बढ़ गई। स्वामी रामानन्द, और स्वामी ब्रह्माचार्यजी के पश्चात् जिस साहित्य का प्रचार हुआ है, उसमें विश्व की राम और 'कृष्ण' के भक्त के रूप में ही बहुत दिया गया है, इसका परिणाम यह हुआ है, कि विश्व और भक्ति की भक्ति के प्रति लोगों में उदासीनता उत्पन्न हो गई, जिसके परिणाम स्वरूप हमारे में कुछ जान, कुछ देख, कुछ भक्ति, और भक्ति का ज्ञान होने लगा। लोगों में मधुर भाव की उपलब्धि की अभिवृद्धि हो गई, और लोग भक्ति के मार्ग पर एक प्रचार से प्रभावित हुए। इससे संदेह नहीं, कि स्वामी रामानन्द और स्वामी ब्रह्माचार्य जी से भक्ति के कुछ रूप की ही सामने उपस्थित किया था। पर हमें भी संदेह नहीं, कि उनके पश्चात् उनके अनुयायियों ने मधुर उपायों से मीठे उपायों का दिया, जिसके परिणाम स्वरूप हमारे में भक्ति-भक्ति की विह्वलियों उत्पन्न हो गई, और साथ ही हीरी ही का रही है।

स्वामी रामानन्दजी के पश्चात् जिस प्रकार राम-भक्ति की लोकप्रियता हुई थी वह अधिक बड़ा बात हुआ, उसी प्रकार स्वामी ब्रह्माचार्यजी के पश्चात् राम-भक्ति की वे कृष्ण भक्ति के प्रचार में अधिक योग दिया। स्वामी ब्रह्माचार्यजी ने रामानन्दी ब्रह्मसंस्था की नीति जिसके अन्तर्गत राम की रचना नहीं की, पर कृष्ण-भक्ति के प्रचार में उनके बड़े योगदान हुआ वहीं कार्य प्रारम्भ हुआ है, जो राम-भक्ति के प्रचार में रामानन्दी ब्रह्मसंस्था की भी रामचरित्रमाला के द्वारा हुआ है। यद्यपि यह, कहेर, और सिद्धान्त-प्रतिपादन में दोनों कभी भी अधिक विनिवृत्त है, पर हमने अपने क्षेत्र में प्रचार के कार्य पर दोनों ही उपायों की से करते हुए इतिवृत्त होता है। यद्यपि भी रामचरित्रमाला 'सुखात्म' की कल्पना करता है अधिक लोक प्रिय है; पर कृष्ण मन्त्री में उत्पन्न उत्पन्न हो जाता है, जिसका राम भक्ती में भी रामचरित्र मान्यता का। यही कारण है, कि सुखात्म और उनके सुखात्म का कृष्ण-भक्ति साहित्य में अधिक आदर स्थान प्राप्त है। सुखात्म की प्रतिनिधित्वमन्दास, कृष्णदास, रामानन्ददास, कुम्भदास, बह्मदास और और स्वामी कर्तव्य और भी देव लोग हुए हैं, जिन्होंने अपनी भक्ति पूरे रचनाओं के द्वारा कृष्ण साहित्य की उत्पत्ति करने का प्रयत्न किया है।

कृष्ण नाम का लुपित विचार यद्यपि स्वामी ब्रह्माचार्यजी के पश्चात् ही मुख्य रूप से हुआ है, पर उत्पन्न साधारण जनता की बाढ़ों में ही इतिवृत्त होता है।

कृष्ण भक्ति राजा अतः कृष्ण नाम का प्रारम्भ जनता में ही मान्यता प्राप्त होता है। जनता के अन्तर्गत में सामाजिक

उन्होंने दूरव के उम्माद के खींचे में ही टाल कर अपने बीबी की रचना की है।

उनके बीच राधाकृष्ण के प्रेम के बीच हैं। यद्यपि उनका राधाकृष्ण सम्बन्धी प्रेम व्यक्ति पर ही आधारित है, पर वह लौकिकता की ओर अधिक उन्मुख है। उन्होंने प्रेम के उम्माद में दूब कर राधाकृष्ण का जो चित्र उकेर दिया है, उसमें राधा का रंग अधिक दिखाई देता है। उनके चित्रण में कृष्ण एक उस नायक की भाँति हस्तिनापुर होते हैं, जो सीमर के उम्माद में संन्यस, और मर्त्याश्रमी की श्रृंखला की भी लोढ़ने में एक मात्र संश्लेष नहीं करता। राधिका का चित्रण भी एक उत्तराधिकारी की ही छाया है, जो सीमर के उम्माद में उन्मत्त बन कर मर्त्याश्रमी की श्रृंखला की लोढ़े वाली है। इस प्रकार विद्यापति के प्रेम में राधा का ही प्रेम अधिक देखने को मिलता है। वास्तव में बात तो यह है, कि वे प्रेम और कामन्द में एक दूसरे को मिलाते हैं, कि उनका भाव ही इस ओर नहीं जा रहा है। प्रेम, कामन्द और लौकिक के चित्रण के लिए कल्पनाओं की शीश में ही वे अधिक जगमगा दिखाई देते हैं।

विद्यापति का एक श्रृंगार रस है। सादर के लेकर सन्त उस के श्रृंगार रस में डूबे हुए हैं। उन्होंने राधा कृष्ण के प्रेम का चित्रण श्रृंगार रस की दृष्टि से किया है। उन्होंने राधा कृष्ण के प्रेम के चित्रण में गजद्विज, अभिचार, और नायक-साधिका के नाम आधार की भी अधिक महत्व दिया है। भक्त, भक्त्यन्त, कर्तव्यन्त, और अर्थात्त राधापति के चित्र भी उनमें प्रमुखतापूर्वक से मिलते हैं। लौकिक श्रृंगार की प्रभावशाली होने ही के कारण उनका राधाकृष्ण संबंधी प्रेम राधा की ही मोह में अन्तर्गत परिपुष्ट हुआ है।

सुरदास का राधा कृष्ण काव्य के स्वरूपों में सर्वोपरि है। सुरदासों का समय सन् १५५२ के आस पास, मधुवा जामरा की गढ़क पर विजय-सन्तान नामक रचित में होना माना जाता है। इनके चित्र का नाम रामदास बा, जो राजपूत राजपूत है। सुरदासों का काल-विवरण मिल सकना दुर्लभ, और उन्होंने मिलते विद्यापति की — इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। अनुसन्धान से प्रेरित इतना ही पता ही जाता है, कि वह काशी के गढ़वाट पर रहते थे, और अपने कुलजित पदों की श्रम पूरे के श्रम पर उत्तर कर अपना जीवन व्यतीत किया करते थे। गढ़वाट पर ही उनकी पञ्चभाषाश्रमी से भेंट हुई। स्वामी पञ्चभाषाश्रमी उनके कुलजित पदों की कुलकर्त अधिक जगमगाते हुए। उन्होंने सुरदासों को अपने राजम संन्यस में दीक्षित कर दिया, और उन्हें यह संन्यस दी, कि वे श्रीमद्भागवत की पद्या की प्रेम पदों के रूप में परिनिर्जित करें। सुरदासों का श्रृंगार उन्हीं की कला का परिणाम है।

सन् १६२० के लगभग गजद्विज नामक रचित में सुरदासों का वर्णन हो गया।

सुरदासजी के तीन प्रेम कविक अविविद्ध हैं—सुरदासर, सूर साठवली, और साठियन साठरी । आद सो, मल दमयन्ती, और नागलीला इत्यादि भी इनके प्रेम कवये होते हैं, किन्तु यह न तो कहीं उपलब्ध हैं, और न इनके सम्पन्न में कोई साधक ही प्राप्त होता है । अतः विद्वानों ने सर्व सम्पत्ति से इनके तीन ही प्रेम माने हैं ।

सुरदास जी कृष्ण के अनन्य भक्त थे । वे ही इनके आराध्य देव थे, पर उन्होंने अपने सुरदासर के दृष्टि स्वयं एक ही कथा में जब जानकारी का वर्णन किया है, तो रामाश्वमेध की कथा का वर्णन सम्मान्य कवयारों की अपेक्षा अधिक विस्तार के साथ किया है । ऐसा प्रतीत होता है, कि सुरदासजी ने अनन्य कवयारों की भी कृष्ण की ही स्तुति का अंश प्राप्त कर उसका वर्णन किया है । यह भी ही समझा है, कि उन्होंने भी राम इत्यादि कवयारों का वर्णन करके अपने हृदय की उदात्तता और विराटता प्रकट की हो; अतः वे भी कृष्ण के ही भक्त थे । भी कृष्ण की भक्ति में ही इनके हृदय की स्वाभाविकता और उत्तमोत्तम प्रकट की हुई है ।

अब यह देखना है कि सुरदासजी की भक्ति का स्वरूप क्या है ? भक्ति की प्रकार की होती है—अवस्था, मोक्षन, चरित्र केवल, चर्चन, पंदन, दास्य, वन्दन, और आत्म-निवेदन । भक्ति के इन प्रकारों को समझे रखकर जब इस सुरदास जी की भक्ति के स्वरूप की समझने की चेष्टा करते हैं, तो ऐसा सात होता है, कि उनकी भक्ति में भक्ति के सभी प्रकारों से विभिन्न कई किस्म, जैसे, और कल्प का एक बार एक कर लिया है । यों ही सुरदासजी के ऐसे भी अनेक-पद हैं, जिनमें वृक्ष-वृक्ष भक्ति के सभी का विशद हुआ है, और कहीं-कहीं सभी अंग एक साथ ही मिलकर उठे हैं, पर इनमें 'विनय', और 'वचन' मात्र की ही अधिक प्रधानता पाई जाती है । सुरदास जी की भक्ति इन ही सबकी में मिलनी विकसित हुई है, जसनी और किसी भी स्वरूप में नहीं ।

विनय भक्ति के पर सुरदासर के दृष्टि सर्व में संश्लेषित हैं । यह पर इस समय के समस्त मान बढ़ते हैं, जब सुरदासजी मठभार में निवास करते थे । इनके विनय पूर्ण पदों में अनुकूल होने का संकल्प, भगवान की शब्दों के प्रतिपुत्र कुछ न कहने की इच्छा, भगवान की परिकल्पना और प्रकट प्रकट मानने का भाव, समस्त और हीन-भाव विशेष रूप से प्राप्त जाता है । सुरदासजी प्रति मागों के । उन पर केवल की भी पूर्ण हृदय को । अतः उनके विनय पदों में सम्पूर्ण केवल समस्त के विनय संश्लेष विद्वानों का वृक्ष-वृक्ष परिचय मिल जाता है, जो प्रकट कर के इस प्रकार हैं—दीनता, मानसर्पिता, मधुरार्थ, मत्तता, आश्वासन, मनोदान, और विराट ।

सुरदासजी की भक्ति में पहले दास्य और देव्य भाव की प्रधानता थी । पर जब वे स्वामी कलमास्त्र की के विनय हुए, तब उनकी भक्ति का स्वरूप अन्य भाव के रूप में परिवर्तित हो उठा । इसका कारण यह था, कि कलमास्त्र की की दास्यभाव

मित्र नहीं था। उनकी व्यक्ति-व्यक्ति में लोहा-बोर्ड के द्वारा ही लगाव है व सामाजिक दायर बिना जाता था। व्यक्ति का स्वभाव स्वभाव ही ईश्वर व्यक्ति का मुख्य आधार माना जाता था। जहाँ धर्मशास्त्रों में भक्ति के दली-दलाल को बहुत भिया। उनकी संसार-दुखान्त-कल्पना का के पीछे प्रेरित है।

सुदृढात्मकी की सत्य-मति को सभी में विमर्शित हुई है। एक क्षण तो यह है, जहाँ मोक्ष, म्हात्मी, और कुम्भ का प्रयोग होता है, और दूसरा क्षण यह है, जहाँ रामा-कुम्भ का प्रयोग होता है। मोक्ष, म्हात्मी, और कुम्भ के प्रयोग में सुदृढात्मकी की सत्य-मति में अधिक स्वाभाविकता और भिन्नता है। मति के इस अन्त में सुदृढात्मकी अपने आत्मप्रदेव में सम्मिलित हो गई है। वे अपने और रामाकुम्भ में संतर नहीं मानते। अत्यंत सीला और में वे अपने साथ ही साथ रहते हैं। रामाकुम्भ के प्रयोग में सुदृढात्मकी की सत्य-मति का और भी अधिक विकास हुआ है। यहाँ सुदृढात्मकी रामा-कुम्भ के सहज नहीं है, बल्कि उन कुम्भ के अन्त-अन्त है, किन्तु और-अन्त में सम्मिलित हुए नहीं है; और जो अन्त अन्त में अधिक कुम्भ है। वह अपने इस अन्त-अन्त कुम्भ में मिल के सत्ता है। ऐसे सत्ता है, जो अन्त-अन्त में भी अपने साथ साथ रहते हैं। उनकी अत्यंत अन्त सीला जैसे उनकी सीला के ही अन्त में हुई हो, और अन्त में उसे अन्त-अन्त में देखकर उनका अन्त-अन्त है। सुदृढात्मकी अपने अन्त के अन्त-अन्त, और अन्त-अन्त पर अन्त नहीं देते। वे अपने अन्त के अन्त-अन्त को भी अन्त अन्त अन्त ही मानते और अन्त-अन्त ही मानते हैं।

चरित्र की दृष्टि से गुरुदासजी ने अपने गुरुदास में आदि से लेकर कम तक की गुरु के ही चरित्र का चित्रण किया है। उनके चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में और भी कई चरित्र हमारे संमुख आते हैं। पर सबसे प्रमुख चरित्र की गुरु का ही है। सर्व प्रथम उनकी बात-बोला का दर्शन होता है। की गुरु की बात बोला पर्याप्त बहुत लम्बा है, पर गुरुदासजी ने उसमें आलोचिका की दृष्टि की है, और वह प्रष्ट किया है, कि उसमें ऐसी लुब्धि है। उनके बात-चरित्र में हमें ऐसी ही व्याख्या की है। बात बोला के प्रभाव की गुरु की वह लब्ध प्रारम्भ होती है, जिसे हम उनकी उपहासरत्ना की बोला कह सकते हैं। अपनी इस बोला में की गुरु गुरु के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। गुरु के रूप में की गुरु का चरित्र आलोचक पूर्ण है। वे बड़े चरित्र, और विपुल हैं। गुरु बोला और गुरु बोला दृष्टि में उनकी बहुत प्रष्ट होती है। वे महान् और आचार्य हैं। गुरु, बोला, चरित्र, और आचार्य की वे प्रतिबिम्ब हैं।

कुम्भ की मूर्ति ही राधा का चरित्र की सुलझावर में अद्वितीय है। जो कुम्भ के चरित्र के साथ ही साथ राधा का भी चरित्र मिलता है। बाल्य में बात हो गई है, कि राधा का चरित्र भी कुम्भ के ही चरित्र का एक भाग है। राधा के चरित्र के बिना जो कुम्भ का चरित्र असूरा और निम्नता का दृष्टिकोण होना। सुदृढ़ता की ये राधा की लक्ष्मी, और यही के कारण में निर्मित किया है। यही वह प्रेमिका

[illegible]

सुरदासजी की प्रेम-भावना अद्वितीय है। कपूरों, गुलामों प्रेम की भावना से पीड़ित होते हैं। मरित वात में सुरदासजी के समान प्रेम की उलका बाधना करने वाला क्षम कोई व्यक्ति उनका नहीं हुआ। सुरदासजी स्वयं प्रेम के अन्तार में। उनकी सम्प्रदाय में प्रेम है, अल्ला में प्रेम है, और उनके सम्प्रदाय में प्रेम है। उन्होंने प्रेम की ही स्थापना की है, और उनकी भावना में अपने सम्पूर्ण जीवन की आर्तता भर दिया है। उन्होंने प्रेम की अल्ला उधार देखा है, और उनके भक्तों के उनका समस्त परिचय है। उनकी श्रीवाङ्मयिणी बड़ी लज्ज, सुकुमार, और स्वाभाविक हैं। वे हृदय के सम्प्रदाय में निवसती हैं। उनमें सम्मिश्र और हृदय की संकीर्णता है। उनकी श्रीवाङ्मयिणी में आर्तता की समस्त कर देती की शक्ति है। संयोग और विरोध—दीनी की भाव-सदृशिता उनकी श्रीवाङ्मयिणी में मिलती है।

दूरदास्त्री की प्रेमपुष्पिणी विविध ऐसी की है। उन्होंने अपने प्रेम का स्थावर जीवन के विविध ऐसी में किया है। उन्होंने सामान्यतया अपनी के रूप में शिशु की प्रेम किया है, शिशु बन कर प्रेम से खिलकिले हुए माता के दृष्टि को देखा है, स्वयं प्रेमी बन कर प्रेमिकाओं को चुम्बता है, सदावर बन कर मिथ्या का आनन्द उठाता है, मिथेमित्री बन कर मित्रों की पीड़ा में कन्दन किया है, और निर्दोष प्रेमी बन कर मिथेमित्रियों के लक्ष्मणें हुए दृष्टि को देखा है। प्रेम का ऐसा कोई रूप और विधा नहीं, जहाँ दूरदास्त्री न पहुँचें ही, और जहाँ पहुँच कर उन्होंने उसकी स्थापना न की हो। कही कारण है, कि दूरदास्त्री मुख्य से स्वयं प्रेम के

भौतिकी का, और आधुनिक है। दोनों ही भौतिकी में अपने-अपने भाषी को सदा प्रमुख है, जो उस को विमुख कर लेती है।

भी कृष्ण की रंग के साथ ही साथ लुट की रचनाओं में भी रंग की सीढ़ियों पर की है। जिस प्रकार भी कृष्ण काव्य-कला से किसी-कला में पहुँचे हैं, उसी प्रकार सुदामाजी ने वाक्-विशेष के प्रचार्य उस जीवन का चित्रण किया है, जिसे हम जैन का जीवन कहते हैं। जैन के चित्रण में भी कृष्ण के साथ ही साथ राधा और मोक्षों का जीवन भी परिवर्तित हो जाता है। यहाँ भी कृष्ण एक रचित नाटक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, और राधा तथा मोक्षों में नाटिकाओं के रूप में। राधा जैन की लक्ष्मी प्रतीक है। वह भी कृष्ण के प्रति अनन्त प्रेम करती है; पर भी कृष्ण केवल राधा के ही प्रति अनुरक्त न होकर सभी मोक्षिकाओं से प्रेम करते हैं। उनके लिए राधा और अन्य मोक्षिकाएँ एक ही स्थान हैं। एक प्रकार सुदामाजी ने जैन के विराट् जीवन की कुछ बड़ी उपमाओं के साथ की है। उनके प्रेम में सर्वत्र आधुनिकता और आध्यात्मिकता है।

सुदामाजी का जीवन वह भी अधिक प्रकाश है। अन्य रंग के द्वारा जल में काम के प्रभावों से हैं, जिन्हें वह, जल-कण, विद्यमान, और-कण, और-कण कहते हैं। सुदामाजी की रचनाओं में भी की सभी रंगों का दृष्ट है, पर राधा का अपनी विद्येयता के साथ उपलब्ध होता है। यहाँ राधा रंग है, यही सुदामाजी की आधुनिकता भी प्रकाश हुई है। उनके जब अधिक नामों और विचारों में राधा रंग का ही आधुनिक दृष्टा है। सुदामाजी की वे रचनाएँ, जिनमें भी कृष्ण की वाक्-विशेषों का चित्रण है, आधुनिक रंग के साथ प्रोत्साहित है। आधुनिक रंग ही सभी में विद्यमान है—एक रंग ही वह है, जिसमें भी कृष्ण राधा के साथ ही रहते हैं, और दूसरा वह, जिसमें कलिका, नन्द, और भी कृष्ण के लिए की गया है।

सुदामाजी में आधुनिक रंग के प्रचार्य-प्रचार्य रंग का ही स्थान है। वाक्-विशेष के प्रभावों की ओर कर दृष्टि, अन्य आधुनिक रंग के साथ प्रोत्साहित है। सुदामाजी की भी दो भाषा हैं—एक संक्षेप, और दूसरा विवेक। दोनों ही भाषाओं में भी कृष्ण और राधा तथा मोक्षिकाओं से प्रेम-प्रसंग की प्रभावशाली है। सुदामाजी में संक्षेप और विवेक दोनों ही आधुनिकता का नाटिक चित्रण किया है। उनके चित्रण में विराट्, और मर्यादा है। उनके 'सुदामाजी' में आधुनिक रंग की भी आधुनिकता बड़ी उपमाओं के साथ हुई है। अतः वह, जीवन-काल, काली दमन, और इन रंगों में रंग-रंग-रंग-रंगों में आधुनिक रंग आधुनिक रंग के आधुनिक दृष्टा है। वह रंग आधुनिक और आधुनिक रंग भी सुदामाजी में विद्यमान है।

सुदामाजी में अपने-अपने रूप में आधुनिकता जल में जल आधुनिकता का भी प्रयोग किया है। आधुनिकता में नन्द, आधुनिकता, और जीवन का प्रयोग उनकी रचनाओं में अधिक प्रभाव है। वाक् का प्रयोग उन्होंने अधिक उपमाओं यहाँ में किया है। आधुनिकता की आधुनिकता आधुनिकता उनकी रचनाओं में बार-बार आते

है। जहाँलंकाओं में उपमा, समक, कतिपयशक्ति, ज्ञानेया, अविरलक, और ज्ञान जहाँ अधिक शिव है। गुरुदासजी की रचनाओं में चित्रकला अधिक है। इसलिए उपमा का प्रयोग जहाँसे बहुत अधिक किया है। उपमा के द्वारा उनकी रचनाओं में उपलब्धि के दाह होते हैं। 'समक' पर भी गुरुदासजी की अधिक आला है। 'समक' में ही शीत समक उनकी रचनाओं में अधिक मिलता है। शीत समक के बिना उनकी रचनाओं में बड़ी कठिनाई के साथ मिलते हैं। 'ज्ञानेया' से ही संतुष्ट 'ब्रह्मगर्भ' बना हुआ है। 'उपमा' के अन्तर्गत बड़ी कलंकार है, जिसका गुरुदासजी ने कवीतिक प्रयोग किया है।

सुरदासजी की भुक्त निद्रा इस है। सुरदासजी ब्रजभाषा के सर्व प्रथम और सर्व श्रेष्ठ कवि हैं। जहाँ प्रथम उनकी के द्वारा ब्रजभाषा का सुन्दर, और सुगमगीतयुक्त रूप सबसे उपस्थित हुआ। उनकी भाषा में स्वाभाविकता, और व्यावहारिकता की कमी है। वह सजती हुई है, और कोल पाक की भाषा के जगत् महान पूर्व सीमा रखती है। सुरदासजी ने अपनी प्रतिभा शक्ति से उसे परिष्कारित करके साहित्यिकता का ब्रजन प्रदान किया है। वह संछन्द, सटी हुई, और प्रभाव पूर्वी है। साधुर्ण और प्रभाव उपाध गुरु है। उसमें सर्व और भाव सम्मिलन की कल्पना शक्ति है। संकष्ट के लक्षण, और ब्रजभाषा के उक्त शब्दों से उसका गहरा हुआ है। कहीं कहीं लम्बी, पायली, रंगारी, गुमराही, और झुंझुंकारी के शब्द भी उसमें आते होते हैं, किन्तु इन शब्दों के प्रयोग से उसकी प्रत्यक्षता में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। कान्ही रामादि भाषाओं के शब्द अल्पम रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं। कहीं कहीं शब्द लोके नहीं भी पाए हैं, पर शब्दों के लोके-सीकने से भी कीदर में भ्रमण नहीं आये पाते हैं। लीलीलियों और सुहावियों का प्रयोग भी सुरदासजी ने बड़ी निद्रुपता के साथ किया है।

सुरदासजी की रैली खोले-कायो की रैली है। उनके गदों का बलि-नाशुर्न ही उनकी रैली की सबसे बड़ी विशेषता है। वे इस रैली के अन्तर्ग, और अन्तिम आचार्य हैं। अथर्व इतिहास, कि सर्व प्रथम उन्होंने ही इस रैली के प्रतिष्ठा, और पञ्चोक्त्यन्त रूपों को अपने अन्तिम किताब, बलि-सुरदासजी के बहुत बड़े लोक गीतों के रूप में यह रैली का-काया में अन्तर्लिखित की, और अन्तिम के भी नाम संवत्स के खोले, अथर्व अन्तिम और अन्तिम किताबों के द्वारा इस रैली को अपने प्राद की प्रथम या, पर किन्हीं-काय अन्तिम में इसके अन्तिम अन्तिम को अन्तिम करने का भेद सुरदासजी की ही है। सुरदासजी की यह रैली उनके आचार्य के प्राद कायी है। उनकी यह कायो रैली है। कहीं कहीं यह अन्तिम और अन्तिम की रैली के अन्तिम अन्तिम काय पड़ती है, पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि उनके सुरदासजी की अन्तिमता है। उनके अन्त, उनकी माय प्राद, और अन्तिम किताब का अन्त सुरदासजी का अन्त है। उनकी अन्तिमता, उनकी अन्तिमता, उनकी अन्तिमता, और उनकी अन्तिमता अन्तिम है।

कृष्ण राज्य की मजदूरी की विधि में वे सब क्षत्र के कर्मियों में अधिक रोज दिया है। स्वामी महामायाजी की मृत्यु के कारण, उनके पुत्र की विद्वत्तावली ने सब कर्मियों को लेकर सब क्षत्र की रचना की थी। उन जाटों कर्मियों के नाम इस प्रकार हैं—सुरदास, मन्ददास, कल्यादास, परमासुरदास, कुंभदास, पारुमुंदास, हीन स्वामी और मोहित स्वामी।

[illegible]

वल्गुहासकी के कई प्रयोगों की रचना की है, जिनमें कुछ की संख्याएँ हैं। इनकी श्रृंखलाओं के नाम इस प्रकार हैं—एक मंजरी, चलेखरी मंजरी, नव मंजरी, मास मंजरी, विरह मंजरी, रसम कलापरी, राम पद्यावली, कविपदी मञ्जरी, पंचम मंत्र, विद्वान् पद्यावली, गुरुगोप चरित और दशम कलाप अर्थात्

मन्दराक्षसी की मूर्ति दो-बीन काले से लालिमुक्त हुई है। पहले से श्री रामचन्द्रजी के सामने बसते थे। श्री रामचन्द्रजी के हाथ के कम से उन्होंने मारमित्र पदों में श्री रामचन्द्र और हनुमान की मूर्ति विजय नवनाद बनाई है। उनके हृदय को वे सब कम से हृदय का विषय हुआ है। अतः यह निराश्रय कम से कम का कथा है, कि पहले उनकी मूर्ति राम भाव की ओर उन्मुख थी। किन्तु दुर्घटना में दीक्षा होने के बाद वह उनकी मूर्ति का सत्य बदल गया। उस समय की उनकी रचनाओं की सर्वोच्च कला से उनके मूर्ति के तीन रूप प्राप्त होते हैं—हनुमान, कपट, और मनु। उनकी मूर्ति का वास्तव्य कम विभिन्न है। उनके भाव और मूर्ति की मूर्तता है। ऐसा प्रतीत होता है, कि रामचन्द्रजी की रचनाओं की रचना के ही अन्तर्गत में उनकी वास्तव्य कलाओं की है। उनका मनु भाव अधिक दुर्गर, रसिकता, और भावना है। वास्तव में मूर्ति का मनु कला ही उन्हें अधिक विषय का। रसिकता और मनुता उनके अधिक थी। रसिकता और मनुता के ही क्षेत्र में बैठकर उन्होंने अपने अन्तर्गत देव की कर्तव्य की है। कर्तव्य की मूर्ति ही उनकी कला भावना में ही लुप्त नहीं है।

हृदय के क्षेत्र में अणुदासजी का महान् पूर्ण स्थान है। वे प्रकृत-कवि थे। उनसे हृदय में प्रकृत रूप से काव्य और संजीव कला निराकृम्य थी। उनका साहित्यिक परिवाराल के एक पुत्र में हुआ था, जिसके नामक यौवनाजी तुलसीदास, और सुरदास जी थे। एक और सुरदासजी की कुल-सम्प्रदायें किसी हुई थी, और दूसरी और तुलसीदासजी की रचनाओं की साहूजी ओलों के हृदय को आनन्दानन्द कर रही थी।

पानी और लंबी और काला कला का वातावरण था। नन्ददासजी की प्रतिभा के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण पहले से ही विद्यमान था। अतः उसे संतुलित और समतुल्य होने में विघ्न न लगा। उसने बोले ही हिन्दी में अपनी तुल्य से सबसे अधिकतर कर लिया, और बोले ही हिन्दी में अपना एक विशेष स्थान बना लिया।

नन्ददासजी के कर्मों के मिलते बाल्यात्मक उत्पत्ति हैं, और काल रचना में किसी कालिका प्राप्त हुई है—इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उनके काल कर्मों की समीक्षा करनी होगी। उनके काल कर्मों में दो रूप देखे हैं, किन्हीं शक्ति सुप्रसिद्धि प्राप्त है। एक है राम कलाभाषी, और दूसरा है मेरु गीत। एक कलाभाषी उनका सर्वोत्कृष्ट काल कर्म है। इसकी रचना की मध्यमकाल की एक कला के आधार पर हुई है। कलात्मक दृष्टि से राम कलाभाषी वैज्ञानिक और कलात्मक प्रथम काल है। इसमें कला के कर्मों का उत्पत्ति विकास नहीं हुआ है, किन्तु कला के कर्मों का। कला के विकास की ओर नन्ददासजी का ध्यान ही नहीं था। अतः कला के उत्पत्ति एक बार है, और विज्ञान का भावनापूर्ण कर्म था नहीं है। नन्ददासजी के उत्पत्ति कलात्मक काल कर्मों में कला का सीमा, और दुर्लभ काल ही देखने की मिलाता है। यद्यपि नन्ददासजी की कलात्मक काल कर्मों का एक काल था, पर उनके काल कर्मों में कला का विकास नहीं हुआ है। वे कलाकार थे भी नहीं, वे एक कलात्मक कर्म थे। नन्ददासजी कलाभाषी का प्रमुख कर्म है। नन्ददासजी की कलात्मक कर्मों में नन्ददासजी के काल कर्मों में कला का सीमा, और दुर्लभ काल ही देखने की मिलाता है। नन्ददासजी का कर्म, और किन्हीं शक्ति न हीकर कलात्मक है। इसमें एक और शक्तिता की प्रमुखता का कालमन्त्र मिलाता है, और दूसरी ओर कलात्मक का सीमा प्रमुखता हुआ दृष्टिकोण होता है। शक्तिता में कलात्मकता की मूर्ति नन्ददासजी ने नहीं प्रमुखता के साथ की है। इस मूर्ति में कला की उनके काल में सीमा नहीं करने वाले हैं। उनके काल की सबसे बड़ी विशेषता नहीं है, कि वह शक्तिता होते हुए भी शक्ति सीमा, प्रमुख, एक और प्रमुख है।

मेरु गीत की कला की मध्यमकाल से ही की गई है, पर इसमें वह प्रमुख नहीं है, जो एक कलाभाषी में है। यद्यपि वह भी कलात्मक कर्म है, किन्तु इसमें भी कला का रचनात्मक भी विकास नहीं हुआ है। मेरु गीत की कला कर्मों में नन्ददासजी के लिए प्रसिद्ध है, उसका भी इसमें अभाव है। इसका एक मात्र कारण यह है, कि कर्मों इस काल में नन्ददासजी सर्वोत्कृष्ट कर्मों शक्ति कर्म था। वे इस काल कर्म में प्रमुख की प्रमुखता से मूल कर मिलाता के साथ प्रमुख हुए दृष्टिकोण होते हैं। काल के प्रारम्भ में ही शक्तिता प्रारम्भ ही प्राप्त है, और वह काल एक प्रमुख कर्म है। किन्तु प्रमुख कर्मों की प्रमुखता पर विचार स्थिति की—यही कला

संसार मृत्यु से आदि से आन्त तक दिखाई देती है; परिणाम स्वरूप उसमें हृदय का जगमग और समन्वित का जगमग है।

भाषा के क्षेत्र में मन्दराश्वरी मूलराश्वरी से खाने बढ़े हुए हैं। मन्दराश्वरी की भाषा बड़ी मधुर, और व्यक्त है। उनकी शैली बहुत ही उदारवादी, चित्र की विविधता पर होती है। इसभाषा के लोग हमने ने उचित ओम्बेकिन्से और मुराश्वी के साथ मिलकर सत्य सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया है। हमने यह वाक्य और उक्त वाक्य बड़ी सुन्दरता और मार्मिकता के साथ बुझा है। उनकी भाषा में अनेक तरह जगने की शक्ति बड़े और विचार हुए दृष्टिकोण होते हैं। मन्दराश्वरी की भाषा के व्यक्त में ओम्बे की यह कल्पना कि सत्य हो है—“और सब मद्रिवा मन्दराश्वरी बर्षिका” मन्दराश्वरी सत्य-सुन्दर भाषा के बर्षिका के। उन्होंने सत्यसुन्दर सब बर्षिका की शक्ति ही अपनी भाषा की शैली में हमने के गहने बड़े हैं। उनकी भाषा में बड़ी ही विविधता दृष्टिकोण बड़ी होती। इससे अनेक सब का ही दृष्टिकोण होता है। मन्दराश्वरी की शैली में बड़ी साधारण, और मन्दराश्वरी सुन्दर व्यक्त है। वे अपनी शैली के सब हो बर्षा हैं। उनकी शैली के ही सब बिन्दु का सबने हैं—कार्यकारी और सत्यकारी। उनकी कार्यकारी शैली समाचार पूर्ण है। उन्होंने अपनी सब शैली को उच्च, उच्च, सब, और सत्यसुन्दर दृष्टि कार्यकारी के साथ सत्यकारी करने का उद्योग किया है। यह शैली बड़ी सब और सत्यपूर्ण है। दूसरी शैली साधारण शक्ति की है, जो उनके सत्यसुन्दर शैली में मिलती है।

[illegible]

परमानन्दजी का कम उमर १६-१७ के आस पास माना जाता है। यामी बल्लभभाचार्य जी के शिष्यों के हस्ताक्षरों से पता चलता था। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—श्रुत चरित और श्रुतार्थसंग्रह। इनकी रचनाएँ कहीं कहीं और प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं के द्वारा ही सम्प्रसारित विवेक का ये पद है। वेद-वेदों के रूप में इनमें से किन्हीं प्रसिद्ध हैं, उनमें सम्प्रसारित रूपसे इनके द्वारा का प्रसिद्ध संगीत प्रसिद्ध होता हुआ सुनाई पड़ता है।

कुसुमदासजी जिसका स्वरूपि के प्रति वे। वह सांसारिक मान सम्मान और
कीर्ति अज्ञान के स्वप्न को दूर रखते थे। इनके द्वारा किसी विशेष छाप की दृष्टि
नहीं होती। इनके केवल सुष्ठु पद मिलते हैं, जिसमें व्यक्ति का चित्रण देखने
को प्राप्त होता है। इनकी व्यक्ति में विविध मानव की वर्णित भावना देखने के
मिलती है।

शारंगदेवदास कुंजदास के पुत्र थे। श्री कृष्ण की सीतासी के प्रति इनके कदम

में विशेष अनुप्राण था। इन्होंने अपने कालों में मुख्य रूप से श्री कृष्ण की जीताजी का वर्णन किया है। इनके तीन कल्प प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं— द्वापक-कल्प, मण्डित दशानु, और द्वितीय की मंगल। इनके कविताकृत इनके कुछ शब्द भी मिलते हैं, जिनमें इनकी भावना और शैली के व्यापकता का विचार है।

श्रीवत्सलजी का कविता काल संवत् १६२४ के आस-पास माना जाता है। वह मजबूत के सम्बन्ध में है। इनके मण्डित-कल्प बड़े काल और मजबूत है। इन्होंने केवल कुछ पदों में ही रचना की है। अतः इनके कविता के इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

गोविन्द शर्माजी का भी कविता काल संवत् १६२२ के ही आस-पास माना जाता है। इनकी सभी रचनाएँ कुछ पदों के रूप में आई हैं। वह विदुलभाषणी के शिष्य थे, और गोविन्दजी केवल पर निष्ठा करते थे।

कृष्ण मण्डित शर्मा के कविता में कुछ और भी ऐसे कवि हैं, जिनका नाम बड़े काल के रूप में लिया जाता है। इन कविता में शीघ्र का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। रसाल, शीघ्र, और मण्डित-कल्प इत्यादि में श्री कृष्ण काव्य की शक्ति में अपने द्वारा के मात्र-मात्र विरोध है।

मीराबाई का काल १६२५ वि० के लगभग औरतुर राज्य-संगीत कृष्णजी नामक शक्ति में हुआ था। इनके कविता का नाम रसाल और काल का नाम शीघ्र दूयाजी था। काल-कल्प में ही उनके द्वारा में मण्डित अनुप्राण हो गयी थी। वे श्री गीतों पर की शीघ्रियों का करने लगीं, उनकी मण्डित की विविध होने लगीं। संवत् १६२३ में इनका विवाह बिजौर के राजा राजा के अन्तर्गत कुछ शीघ्रियों के रूप में हुआ। विवाह होने के बाद ही राजा उनकी मण्डित और भी अधिक सक्रियता हो गयी। इनकी दिनों करके शक्ति और मजबूत का सम्बन्ध ही था। इन कालों का उनके द्वारा पर कविता काव्य पदों, और शक्ति के सम्बन्ध में राजा मण्डित-कल्प में ही अन्तर्गत करते लगीं। इनके मण्डित मार्ग में कल्प काव्य अन्तर्गत की गईं, पर वह विविधता में हुई। इनकी मण्डित और इनका शीघ्र कविता का। वह बिजौर शीघ्र का कृष्ण-कल्प लगी गईं, और फिर काल के द्वारा का गयीं। कहते हैं, कि द्वारा में वह रसालों की की शक्ति में अपने पद का मान करते-करते समाधि हो गई।

मीराबाई ने सत्य-कल्प में विशेष रूप की रचना नहीं की है। उनके द्वारा रचे हुए बहुत से कुछ पद मिलते हैं, जिनमें उनकी शीघ्र कालों के अन्तर्गत अनुप्राणित हैं। मीराजी के कुछ पद शीघ्रों और शक्ति-कल्पों में भी अधिक सम्बन्ध में मिलते हैं। बहुत सन्तों और कालों की मंगली में भी इनके बहुत से पद पाये जाते हैं। इनके बहुत से ऐसे पद हैं, जिनमें शक्ति नहीं है। वही काल है, कि मीराजी के पदों के भी शक्ति मिलते हैं, उनके पदों में सत्य-कल्प नहीं पाया जाता।

मीरा की काव्य कला की समझने के लिए मीरा के तुलना दृष्टिकोण करना होगा। मीरा के पूर्व कुछ ऐसे कवि-कवियों का आधिपत्य हो चुका था, जो अपनी कला की मुद्रा में हिन्दी के लक्ष-कवियों की अभिव्यक्ति कर चुके थे। उन कुछ कवियों की कविताओं की समीक्षा करने से यह पता चलता है, कि मीराजी के पूर्व हिन्दी काव्य में ज्ञान, भक्ति, और प्रेम की पाप प्रशस्ति हो रही थी। मीराजी का आधिपत्य जब हुआ, उस उन्होंने अपने की एक ऐसे क्षेत्र में जमा, जिसने बायीं ओर भक्ति, ज्ञान, और प्रेम की पाप प्रशस्ति हो रही थी। मीराजी के ज्ञान की भी इस पाप में परिष्कृत कर दिया। ज्ञान बढ़ता ही चलेगा, कि मीराजी की रचनाओं में भक्ति, प्रेम, और ज्ञान की प्रशस्ति है।

अन्वय-कवियों की मीराजी के काव्य की समीक्षा में ही दृष्टिकोणों की समझने रख कर करना चाहिए। वे दृष्टिकोण हैं, काल और सांस्कृतिक। पहले हम सांस्कृतिक दृष्टिकोण की ही लेते। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से मीरा काव्य मीरा की अनुभूतियों से है। मीराजी की अनुभूतियाँ कहीं सामान्य, और कहीं गहरी हैं। उनमें सामान्य और विचित्र है। वे हृदय की गहरी करने में कहीं पहुँचें हैं। उनमें असीमितता, और मानवतावाद की प्रशस्ति है। उनकी प्रेम, और विश्व समझ की अनुभूतियाँ कहीं अलग हैं। उन्होंने अपने प्रेम के माध्यम से हृदय को गहरी ही भिन्न से देखा है। जो हृदय के प्रति उनके हृदय में जो विश्व केदना है, वह कहीं केदना है। मीरा कहीं केदना के लिये की कविता करने में अपने की विश्व देती है। उनके प्रेम और विश्व समझ के लिये न उनके हृदय की विचित्रता, और समझता नहीं पाती है।

काल दृष्टिकोण से काल-काल, राम, और अन्य दृष्टिकोण पाते हैं। मीराजी के यहाँ से काल-कालों की कविता राम की उद्भासना विशेष रूप से हुई है। उनका ज्ञान सामान्यता की ओर न होकर 'हृदय की ओर' की ही ओर विशेष रूप से रहा है। कहीं कहा है, कि उनकी रचनाओं में 'सहज' के वैशेष का अभाव है। फिर भी हमारे के दृष्टि उनकी रचनाओं में अधिक मिलते हैं। हमारे के अभिव्यक्ति ज्ञान, उल्लेख, उद्भासना, विचारना, असीमित ज्ञान, प्रेम, और अनुभव इत्यादि काल-कालों का विधान उनकी रचनाओं में हुआ है। यहाँ में अंतर ही मीरा का प्रमाण रख है। अंतर रख के लिये ही हम—संभव, और विशेष उनकी रचनाओं में मिलते हैं। उनके अंतर के सामान्य भी कुछ है। उनका अंतर कहा ही संभव, और कहीं दूर है।

मीराजी कविताओं में दोहरा अन्वय आधुनिक की। उनका आधुनिक का रूप प्रेम, और कविताओं का उनके अन्वय का है। यही कारण है, कि उनके यहाँ से एक कवि की रचनाओं की मीरा न ही काल-कालों की कृता है, और न यहाँ का अन्वय। मीराजी का ज्ञान काल-कालों और यहाँ की ओर न होकर सांस्कृतिक आधुनिक की ही ओर विशेष रूप से था। यही कारण है, कि उनकी रचनाओं में सांस्कृतिक अनु-

भूमिसे का ही अधिक प्रसुप्त हुआ है। अंतःसारो और लो के लोह को प्रति हानों की योजना का भी जीवनी के पक्षों में सम्मिलित है। उनके पक्षों में जो अन्त विचार है, उसकी योजना विचार के विचारों के अनुसार नहीं है। मीथानी के सभी पक्ष में है। उन्होंने अपने पक्षों को सार, सार, और सार में रचित कर उन्हें मीथानी के रूप में परिचित करने का प्रयास किया है। पक्षों को सार, सार, और सार में रचित करने के कारण उनमें मातापिता का अनुसंधान अधिक मिलता है। पर फिर भी उनकी मातापिता के किसी प्रकार का अवरोध नहीं उपस्थित होता।

मीराजी की भाषा खसिक सरल और सुधीय है। छन्द और अलंकार की भाँति ही वीरुड की दृष्टि के मीराजी की भाषा में भी प्रत्यक्षता का आभाव है। उनकी कौरी कड़ी भाषा के ही अपनी अनुप्रासों को रोजीया है, जब उनकी सीधी कड़ी भाषा कभी नहीं झरिनी, और प्रत्यक्ष पहुँच है। वह हृदय को पकड़ती है, और उस पर अपनी छाप छोड़ पड़ता के साथ आसानी है। उनके छन्दों में कमीबत और कुण्डलता है। मीराजी की भाषा का सत्यतया यन्त्र-सा नहीं है। उनके बहुत से पदों में एकराजगी भाषा का प्रयोजन है, किंतु पर विप्लव का प्रभाव है। उनके कुछ पदों की वह है, बिनाये मरवाया का प्रयोग हुआ है। कुछ पदों में कुकराजी, पूर्वी, पम्पानी, और चारही इत्यादि भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण है। कहीं कहीं की बिना-विशेष का प्रयोग भी उनके छन्दों में मिलता है। मीराजी की शैली कीलि काव्य की शैली है।

हिंदू इतिवृत्त पर भाष्य और विमर्श पलों का अनावृत्त है। उन्होंने एक विशेष सम्प्रदाय का सूत्रन किया है, जिसका नाम है राधा-पूजनी सम्प्रदाय। राधा-पूजनी सम्प्रदाय में 'राधा' की उपासना की प्रमुखता अत्यंत की जाती है। 'हिंदू इतिवृत्त' में 'राधा' की सभी इतिवृत्तिलिनी तथा मान कर उनके अर्थों में अपनी भावार्थलिनी समर्थित की है। उन्होंने राधा की ही शक्ति में ही मान्यताओं की रचना की है— 'राधा दुर्गाविधि', और 'हिंदू श्रीराधा'। राधा लुब्धविधि के वर वरें करत, और प्रभु है। इनके अतिरिक्त उनके सुख वर भी मिलते हैं, जो उनकी राधा-शक्ति में होते और हैं।

राष्ट्रपति का जन्म दिल्ली के पठान बंस में हुआ था। वह भी कुश्त के खसम मकर में। श्री कुश्त के प्रति इनके हृदय में जेल का सागर लहराया करता था। श्री कुश्त की मर्ति और उनके प्रेम के इन्हीं खल्लिख सात, और मरुर रचनाएँ थी हैं। इनकी रचनाओं का विषय था कुश्त का लीन्दन, और जब बुद्धि की मधु-मिश्र है। श्री कुश्त के लीन्दन, और जब की मधुमिश्र के जहाँ से पूर्व इनकी रचनाएँ ११६ की विस्तार कर लेयी हैं।

राष्ट्र में सुख-समृद्धि है। श्री कृष्ण की मूर्ति में उन्होंने श्री शक्ति लिखी है, उनका हीनो भाव-व्यक्ति में महान् पूर्ण भाव है।

नवीनप्रवास का भी सचिवालय (पब्लिक) काल में ही हुआ था। वे बीजापुर

मिलोतरीत 'बारी' के विपरीत थे। उन्होंने जो कृष्ण भक्ति में 'सुरमा चालि' की रचना करके हिन्दी काव्य-साहित्य में अपने को चमक बना दिया है।

कृष्ण काव्य जो कृष्ण भक्ति पर आधारित है। 'राम भक्ति' और जो कृष्ण-भक्ति के विकास का जो दृष्टिकोण हमारे सामने है, उसके यह बात होना है, कि कृष्ण भक्ति शास्त्रा दोनो का प्रभाव एक साथ ही मिश्रित हुआ था, और के साहित्य का दोनो के परिणाम स्वरूप एक साथ ही हिन्दी काव्य-साहित्यकोशल में 'राम काव्य' और 'कृष्ण काव्य' की धारा बह रही थी, पर राम भक्ति के परिणाम स्वरूप 'राम काव्य धारा' का पैर मीरवासी तुलसीदासजी के बरबाद ही विचित्र-का हो गया। मीरवासी तुलसीदासजी के बरबाद हुए भक्ति शास्त्र के जो बहिर्मुख हैं, उनमें 'भक्ति' का सम्भाव है। दूसरी ओर कृष्ण भक्ति के परिणाम स्वरूप हिन्दी में जो काव्य-काव्य प्रचलित हुए, पर वास्तव में वे बरबाद होने का अनुभव करती थी। इसका एक मात्र कारण कृष्ण भक्ति का यह माधुर्य और प्रेम था, जिसके कारण कृष्ण काव्य की नींव पड़ी थी।

कृष्ण काव्य का पुनः पुनः दोहराव का 'पुनः' था। निम्नलिखित की छोटी-छोटी सब समझ ही चुकी थी। जब उसके स्थान पर कवन राज्यों के दरबारी से सरला और मधुरता की संदीप्त-मति उठने लगी थी। कृष्ण प्रभाव राम प्रेम में तुलसीदास जी और मधुरता की दृष्ट में ही अपने जीवन के चरम बिना रहे थे। किन्तु राम-दरबारी में जो सब प्रेम-जननी राजरा के साथ हुए कर रहा था। अतः राम काव्य का प्रभाव, जो कर्न राजरा की प्रभाव चटुनी पर उल्लसता हुआ कर रहा था, पुनः की विशाखी के मीने देव गया। तब कृष्ण काव्य का जो प्रभाव सरला और मधुरता के बीच हुआ रहा था, पुनः के मधुरता होने के कारण उसके जीवन में उल्लसता कर कर गया। पर कृष्ण काव्य की साधनिकता पुनः के वर्ग में सम्बन्ध होने से न बनी। पुनः का प्रभाव मधुरता की ओर था। यह सभी चीज मति के अपने प्रभाव का जो क्षेत्र मधुरता-काव्य की ओर देखा जा रहा था। 'बहिर्मुख' और 'साहसिक' के मधुर तथा कन जीवन में पुनः की और भी अधिक प्रीतिपूर्ण प्राप्त हुआ। बायीं ओर एक-दिल्ली होने लगी। ऐसे समय में कृष्ण काव्य का यह माधुर्य, जिसके मूल में अनित्य-भावना थी, जैसे कुचित या लक्ष्मी थी। पुनः में कृष्ण काव्य के माधुर्य और प्रेम की जो प्रभाव बिना, पर राम भक्ति-भावना की लोभ दिया, जो उसके मूल में सम्बन्धित थी। पुनः में कृष्ण काव्य के मूल में, भक्ति भावना के स्थान पर अपनी दृष्टिकोण के अनुसृत भावना रूप प्रेम का स्थापन किया, परिणाम स्वरूप कृष्ण काव्य के अन्तः प्रभावका अन्तर्निहित प्रभाव न रह कर एक निरालेखी के माधुर्य और नास्तिक बन कर। इस प्रकार कृष्ण काव्य एक दूसरे रूप में परिवर्तित हो गया, जिसे हम चालना मुख्य काव्य कर सकते हैं। यही वास्तव मुख्य कृष्ण काव्य आगे चल कर दोनो काव्य के रूप में उद्भवित हुआ है।

कृष्ण काव्य अपनी आदि में पूर्ण रूप के साधनिक था, किन्तु यही यही उसमें माधुर्य प्राप्त का समारोह किया जाने लगा, मीरवासी उसके अन्त में परिवर्तित होने लगा।

सूर के श्री कृष्ण जब तक बाल रूप में थे, तब तक कृष्ण काव्य के भीतर विशुद्ध प्रेम और आध्यात्मिकता का प्रवाह चलता रहा, पर जब उन्होंने एक लक्ष्य नायक के रूप में दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया, तब लोग साधारण नायक के रूप में ही उनका चित्रण करने लगे। जिस प्रकार कृष्ण काव्य के भाव में परिवर्तन हुआ है, उसी प्रकार उसके भाषा के जीवन में भी परिवर्तन की लहरें उठती हुई दिखाई देती हैं। कृष्ण काव्य की भाषा ब्रज है। पर सूर की ब्रजभाषा और उनके परवर्ती कवियों की ब्रजभाषा में अधिक अंतर है। कृष्ण काव्य की ब्रजभाषा उनके भावों के अनुकूल ही स्वाभाविकता और विशुद्धता की और उन्मुख है, पर जिस प्रकार आगे चलकर 'कृष्ण काव्य' अपने मूल पथ से विचलित हो गया है, उसी प्रकार सूरदासजी के पश्चात् ब्रजभाषा का स्वरूप भी परिवर्तित हो गया है। सूरदासजी के पश्चात् की ब्रजभाषा मिलती है, उसका मुकाब कृत्रिमता और चमत्कार की ओर अधिक है। सूरदासजी के पश्चात् कुछ दिनों तक तो ब्रजभाषा अपनी स्वाभाविकता को अक्षुण्ण रख सकी है, पर उसके पश्चात् जब कृष्ण काव्य आध्यात्मिकता के मार्ग से विरत होकर वासना कव्य प्रेम की उपासना करने लगा, तब ब्रजभाषा की स्वाभाविकता और विशुद्धता दूब गई; और उसका एक मात्र लक्ष्य चमत्कारिकता बन गई। शृंगार काल में तो वह पूर्ण रूप से चमत्कारिक ही है। ब्रजभाषा का वह स्वरूप कलात्मक दृष्टि से विमोहक अवश्य है; पर उसमें वह विशुद्धता नहीं है, जो भाषा में होनी चाहिए। मधुर भाव के उपासक कवियों ने भाषा को कलात्मक बना कर वहाँ अपनी कलात्मक प्रतिभा को प्रदर्शित करने का पथ अजित किया है, वहाँ उन्होंने भाषा की शक्ति को सीमित करके उसके विकास के मार्ग में अवरोध उपस्थित किया है। ब्रजभाषा के पतन का एक मात्र कारण उसके कवियों की वह भावना है, जो चमत्कारिकता को ही लक्ष्य मानकर काव्य पथ पर चलने में गौरव अनुभव करती थी।

रीति काल

संवत् १७०० से १८०० तक रीति काल माना जाता है। जिस प्रकार बीर बीर
मर्षित काल का नाम उसकी प्रकृति, और माननाओं के आधार पर रखा है, उसी
रीतिकाल और आधार रीति काल का नामकरण भी उसकी प्रकृति के
अनुसार नाम ही आधार पर किया गया है। जिस प्रकार बीर राधा
काल में जनता की प्रकृति मुख्य रूप से बीर भाव-युक्त की ओर रही है, और जिस
प्रकार मर्षित काल जनता की अधिक-विरक्त भावों के ओर झोटा था, उसी प्रकार रीति
काल में जनता की प्रकृति मुख्य रूप से श्रृंगार की ओर उन्मुख थी। जनता की
प्रकृति मुख्य रूप से श्रृंगार की ओर उन्मुख होने के कारण लगातार दो ही वर्गों तक
हिन्दी भाषा में जिस साहित्य की रचना हुई है; वह श्रृंगारिक भावों के ओर झोटा
है। दो ही वर्ग के लम्बे समय तक, हिन्दी काल-काल के जीवन में मुख्य रूप से
श्रृंगार पर ही भाषा प्रभावित होती हुई दिखाई पड़ती है। वही कारण है, कि
दो ही वर्ग के इस लम्बे समय की रीति काल के नाम से अभिहित किया
गया है।

सुलतानों के जिस शासकाल की शक्ति की लेकर बीर राधा काल की युधि हुई
थी, वह अब बहुत कुछ शान्त हो चुकी थी। व्यक्ति काल के जहाँ और अन्य में
रीतिकाल काल-काल उनके मँथने उठते रहे हैं, पर मर्षित काल के काल
का युग में वे मँथने की कद ही कद, और भाषा का सांस्कृतिक
विकास पर बड़ा दुष्प्रभाव डालने पर होते गए। जन-समाजों के दृष्टि में अभी तक
को निर्दिष्टि बल रही थी, वह अब शान्त हो चुकी थी। वे अब इस देश की समस्या
देख मान कर, शान्ति पूर्वक उस पर शासन करने लगे, यह संकल्प में। हिन्दू, मुसलमान
के साथ-साथ अन्य मूल-विशेष भी बढ़ावा दे रहे थे। हिन्दू जनता की, अब
उनके शासन की युगा में निरन्तर पूर्व शान्ति की शक्ति होने लगी थी; परिणामतः
पारो और शान्ति की। अन्तर्गत अब मान में आ चुकी थी; और लोगों का व्यव
साधन, कला, और संगीत की ओर आकर्षित हो रहा था। शासकों और समाजों
के अन्तर्गत में अब उन्मादक संगीत-सङ्गीत उठ रही थी। मुसलमानों, और राज-
दरबारों में भी अब साहित्य, संगीत, और कला की ही चर्चा हुआ करने थी। जीवन
का सुकान अब शासकों की ही ओर था। जनता में भी अब सब और बहुत मानों

को काट का रही थी। बर्होमोर और साइबर्डी ने अपने जैन और मसूर जीवन की अवस्था के सामने उपस्थित करके उसे समझा की और कहने के लिए और भी अधिक प्रोत्साहित किया। अन्त में अपने बच्चाओं और दासों को देखा देखी उसका बर्होमी की बर्होमो में कुछ घर भी उठी।

पर औरंगजेब ने समझा की बर्होमो के कुछ अवस्था की पुनः एक ठोकर दी। उसने अपने बड़, बर्होमो, गवर्नरों से पुनः हिन्दू अवस्था के हटाने में विरोध की अहरे उत्तर कर दी। विरोध की शक्ति थी कि पुनः मद्रास के जीवन से उठ उठी हुई, और उसने एक बार पुनः सामाजिक राजनीतिक अवस्था को विकसित कर दिया। बर्होमी, और साइबर्डी की बर्होमी में भी नया सुनने हुआ था, उठ गया, और पुनः जारी और बर्होमो उत्तर हो गया। मद्रास विचारों इस बर्होमी के प्रेरित थे। उन्होंने अद्वय साइबर्डी और जीवन के मुक्त जीवन की दीक्षा को दिया दिया, और मद्रास राज्य स्थापित किया। मद्रास विचारों के प्रभाव की बीज और अद्वय की नई बर्होमी बहुत दिनों तक चलती रही। इसी बर्होमी का वह परिणाम था, कि मुक्त राज्य का जीवन जीवन की कुछ नया, और मुक्तमानों के जीवन में भी हिन्दुओं के जीवन की नीति ही जीवन का गया।

ऐतिहास के पुनः पर ऐतिहास के ज्ञान होता है, कि उसके बीज की अवस्था की बर्होमो थी। एक बर्होमो की नई थी, जो शक्ति के कारण जानने हुई थी, और ऐतिहास की दूसरी बर्होमो नई थी, जो औरंगजेब के बड़ और बर्होमो बर्होमो के कारण पैदा हुई थी। शक्ति से उत्पन्न बर्होमो के प्रेरितों में अद्वय, बर्होमो, और साइबर्डी हाथों साइबर्डी का नाम लिया का समझा है। इसी बर्होमो की हम प्रभावित बर्होमो कहते हैं। ऐतिहास का निर्माण इसी बर्होमो के कारण कर हुआ है। इस बर्होमो का अन्त होता है कि जानने साइबर्डी के बर्होमो, और साइबर्डी के जीवन जानने के हटाने की आवश्यकता कर दिया था। इस बर्होमो के परिणाम समझ कि बर्होमो का प्रभाव हुआ, उनकी की हम ऐतिहास के प्रभावित बर्होमो की समझ किया करते थे। इस बर्होमो ने वास्तविक बर्होमो के ज्ञान जारी, और उत्तर-विश्व के विश्व में ही अपनी शक्ति का उपयोग किया है।

ऐतिहास की दूसरी बर्होमो औरंगजेब के बड़ और बर्होमो बर्होमो से उत्पन्न हुई थी। इस बर्होमो के प्रेरितों में मद्रास प्रभावित, और विचारों का नाम लिया का समझा है। इसी बर्होमो की हम ऐतिहास की बीजता दूसरी बर्होमो कहते हैं। इसके परिणाम समझ की बर्होमो उत्तर हुए, वे उत्तर-दरवरी में रहते हुए भी प्रभावित अवस्था के जीवन का समझते थे। वे देखे ही उत्तर-दरवरी में रहते थे, जो अन्त के कुछ-कुछों से परिचित थे, और जो राष्ट्र की वास्तविक जीवन की

कमल पर उसके उद्धार के लिये अकम्पटोन्न के । इन कथियों में कर्णी एगनाडी के कनडा के दुल्ल-सुली का मान कर्ने अपने कान्दु की चालाकाडी का ही मान माना है ।

इस प्रकार ऐतिहासिक में दो प्रकृतियाँ पाई जाती हैं। एक भू-कालिक, और दूसरी बीजवा दूर्व। भू-कालिक प्रकृति के प्रतिनिधि कवि मेघ, मिथ्या, और मरिचाम इत्यादि हैं। बीजवा दूर्व प्रकृति के प्रतिनिधि कृष्ण हैं।

रीतिशास्त्र में बहुत से कवि हो गए हैं। यहाँ कभी कवियों, और उनमें रचनाओं का विवेचन करना आवश्यक नहीं है। यहाँ केवल उन्हीं कवियों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी, जिनकी रचनाओं में रीतिशास्त्र के निर्धारित में, और उनके विचार रीति शास्त्र में अधिक महत्त्व प्राप्त हुई है। केवल का कवि राम भक्ति के कवि रामानंद के कवियों में ही प्रथम है। केवल रीतिशास्त्र के सर्वप्रथम

को कहते हैं। जहाँ ऐतिहासिक की दृष्टि से भी केवल एक प्रकार का नाम उचित होगा। केवल ने यह सभी को रचना की है, जिसके नाम इस प्रकार हैं—कवि विद्या, ऐतिहासिक विद्या, रामचरितकाव्य, गीत शिल्पविद्या, विज्ञान शास्त्र, ललितशास्त्र, वाणिज्य-शास्त्र, और नैतिकता। केवल के इन सभी पर विचार करने से निश्चित होता है, कि केवल की दुःख, प्रशंसा, गुणों की ही और की। केवल ही वह प्रथम कवि है, जिन्होंने सबसे पहले बहुत-से ऐतिहासिकों की रचना की। यही कारण है, कि केवल ऐतिहासिक के आचार्य को कहते हैं। कुछ लोगों का मत है, कि केवल ऐतिहासिक के सर्वप्रथम की हैं। यह बात सत्य है, कि केवल के पूर्व कई ऐसे लेखक हो चुके हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक के अंगों पर प्रकाश डाला है। विश्वविद् वेदर के अनुसार ७०० विमान्त में पुनः नामक कवि ही पुनः था, जिसने बाल्मीकि द्वारा लिखित ग्रन्थ की रचना की थी। और कवि ने भी बाल्मीकि के दो छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे थे। अक्षर के राजवंश काल में जी हो और पुनः की रचना हुई थी, जिसका नाम भूवार क्षत्र, और द्वितीयो है। द्वितीयो में श्री काविल्लय विद्या गया है, और भूवार क्षत्र में भूवार एत का वर्णन है। अक्षर के समय में ही 'भूमि' से बने हुए ही नाविका मेह किया था। अब केवल के बड़े भाई बलभद्र ने 'नवीन' और 'दुर्ग विचार' पर एक ग्रन्थ की रचना की थी, पर वाणिज्यिक दृष्टि से इन दोनों का मुख्य वस्तु। यह सभी ग्रन्थ ऐतिहासिकों केवल अपने प्रथम ग्रन्थ में। इस विद्या में हमें प्रथम मुद्रापरकारी प्रथम केवल ने ही किया। केवल ही सर्व प्रथम यह बात की जोड़ने में हमारे विद्यार्थी, जो यौद्ध के नाम से कल्प-कला में छलछला रही थी। यही कारण है, कि हम केवल को ऐतिहासिक और प्रथम आचार्य मानते हैं।

कुसुम का ही अर्थ है—एक कमल का, और दुध का आकार का। नलिनी अर्थात् आनन्द के रूप में ही केवल अधिक सज्जता के साथ सम्बन्ध स्थापित हुए हैं। उनकी रचनाओं में अस्मित रूप और आनन्द का अधिक है। हिन्दी काव्य अस्मित के ये ही

जाता है, कि इनके जीवन का अंतिम भाग बड़ी सतिन्यासों से व्यतीत हुआ। संवत् १६७४ में इनका स्वर्गवास हो गया।

रहीम के प्रास कवियों के नाम इस प्रकार हैं—बाबसाहब भागरी का बाली, जगन्नाथ, दीवाने बाराही, खेदभीरुबहालदास, जयैनाथिनाथ, मदनदास, राधादासभागी, शृंगार खेद और शीम कावर्दी। बाबसाहबभागी कुशोभास का नाम है। रहीम ने उसका बाली में जगन्नाथ किया है। दीवाने बाराही में रहीम को बाराही की रचनाएँ संग्रहीत हैं। खेदभीरुबहालदास अतिशय खेदकी कवि है, जिसमें संकुच और बाली के कवियों का संमिश्रण है। जयैनाथिनाथ वेद में अतिबलवी के वेद और उनके उदाहरण दिए गए हैं। 'मदनदास' एक नाम है, जिसकी रचना खड़ी बोली में हुई है। राधादासभागी और शृंगार खेद का कवि एक था नहीं बल एक है। 'रहीम कावर्दी' में रहीम के कुछ छोटे संग्रहीत हैं।

रहीम एक जगन्नाथ पूर्ण कलाकार थे। उनके हृदय में सचमुचा और उदासता का एक अद्वितीय था। वेदों की गीत में काम करने पर भी उन्होंने जीवन जीवन की उदासता, और महासुख की ही दृष्टि में देखा था। इनके जीवन की चरमाली और निरन्तरिता से सात होता है, कि वे अपने और अपने से बहुत कम और कमजोरी से। वे सच्ची मानव की एकही हृदय में सुखा-दुखा का अनुभव करते थे। उनकी रचनाओं का मुख्य रूप से यही विषय था है। उन्होंने अविचार, रचनाएँ उनकी विषयी पर की हैं, जिसकी शीघ्र उदासता, जैन, और जीवन की नीच पर खड़ी होती है। उनकी रचनाओं के प्रमुख विषय भक्ति, काम, वैराग्य, बल, नीति, कलात्मक, और प्रेम इत्यादि हैं। शृंगार और राधा परिवर्तन की इनकी रचनाओं का विषय है, पर उन्हें सबसे अधिक प्रभाव उनकी विषयी के विषय में प्राप्त हुई है, जिसका प्रभाव रूप से इनके हृदय में अद्वितीय अतिरिक्त का।

काम्य बला के क्षेत्र में रहीम कुशल कहाकार थे। उन्होंने मानव जीवन के अंदर में वैराग्य प्रसंगी बाबसाहबभागी का अनुभव किया था। उन्होंने मानव जीवन का अध्ययन करते वह विचारों विचारा था, कि उसका विचार कार्यविचारा की लक्ष्य प्राप्त कर बहने में नहीं, बल्कि भक्ति, काम, वैराग्य, और प्रेम में ही होता। परिवर्तन प्रसंग उन्होंने अपनी कविता का शृंगार दृष्टि विषयी से किया है। रहीम की दृष्टि की दृष्टि विषयी को को लेकर मिले गए हैं, को मालूम है। रहीम ने अपने अपने विषयी में प्रभाव उन्हें देखने की चेष्टा की है। उन्होंने अपने विषयी का हृदयगत बड़ी स्पष्टता के साथ किया है। श्रद्धा की बड़ी उन्होंने जिस विषय का विषय किया है, बड़ी अनुपमा के साथ किया है। इनकी व्यक्तिगत में जीवन और कुशलता है। योंही ही कवियों में बहुत कुछ प्राप्त देने की उनकी कवि प्रकृति बहुत अद्वितीय बलवर्ती थी।

रहीम के मूर्ति, प्रेम और नीति संबंधी दो अद्वितीय अद्वितीय हैं। उनके भक्ति और प्रेम जीवन की दृष्टि के आधार बलवर्ती है। उन्होंने बलवर्ती की ही प्रेम, और भक्ति

में उल्लिखित होकर अपने अधिक संख्या कीलों की रचना की है। उनकी अधिक सम्ख्या कीलों में हृदय की सम्ख्या, और विह्वलता है। रहीम ने नीति सम्ख्या कीलों की लिखी है। उनमें नीति सम्ख्या कीलों में उनकी असादु अनुभव के विषय है। उनका एक-एक दोहा जीवन का निषय अपने अनुभव करता है। उन्होंने इन कीलों में जीवन के सामान्य अपने भावी सभी सुखी और संघट पाते सभी है। इनकीलों से यह बात समझा है, कि उन्होंने जीवन और असादु की विविधों का सम्पूर्ण सम्पूर्णता के साथ किया था। रहीम ने आचारिक अधिकारों की की है। उनकी आचारिक अधिकारों उनके 'अने आचारिक मेर' में विविध रूप के मिलती है। 'अने आचारिक मेर' में विविध आचारिकों के सुन्दर और असादु पूर्ण उदाहरण दिए गए हैं।

रहीम असादु जीवन के कवि थे। असादु उनकी सम्पूर्ण रचनाओं असादु जीवन के ही सम्पूर्ण रचनी है। असादु उनकी दृष्टि सुख की, और उन्होंने अपनी ही दृष्टि के सुख के सुख विषयों का भेदन किया है, पर के असादु हृदय के उल्लेखों के हृद ही की है, जो जीवनिक विविधों और दशाओं के अविश्वस्य समस्त हृदय में उल्लेख करता है। यही असादु है, कि रहीम की अविश्वस्य में जीवन-दशाओं के अविश्वस्य का असादु है। असादु की उल्लेख की रहीम की रचनाओं में बहुत कम मिलती है।

रहीम की रचनाओं की भाषा का सम्पूर्ण करने के बात समझा है, कि रहीम का असादु और दृष्टि पर पर पूर्ण आचारिकता था। यह दोनों ही भाषाओं उल्लेख सम्पूर्ण सम्पूर्णता में उल्लेख की। रहीम ने इन दोनों ही भाषाओं का असादु उल्लेख सुन्दरता, और विविधता के साथ किया है। उन्होंने अपनी भाषा के उल्लेखों का असादु असादु उल्लेख सुन्दर और सुन्दर रचनी है। उनमें सभी का असादु असादु के ही उल्लेख हुआ है। उनके कीलों में उनकी असादु का आचारिकता और सुन्दर असादु देखने को मिलता है। उनकी असादु भाषा 'अने आचारिक मेर' में विविधता हुई है। रहीम की कीलों की सभी कल, सुन्दर, और सुन्दर है। उन्होंने अपने सुन्दर उल्लेखों में अपने भाषा की अविश्वस्य सभी सुन्दरता के साथ की है।

चिन्तामणि विद्यापीठ मानपुर विद्यापीठ विद्यापीठ के विद्यापीठ थे। इनके विद्या का नाम रचनाकर विद्यापीठ का, और यह नाम मार्य के, विद्यापीठ नाम यह थे—चिन्तामणि, सुन्दर, अविश्वस्य, और असादु। यही ही नाम की रचना में अधिक सुन्दरता थे। चिन्तामणि का नाम संवत् १६६६ के सम्पूर्ण हुआ था। उन्होंने कई सभी की रचना की है, विद्यापीठ नाम दृष्टि असादु—असादु जीवन, अविश्वस्य असादु, असादु असादु, असादु, और सुन्दर विद्यापीठ।

चिन्तामणि के नाम की विद्यापीठ नाम विद्यापीठ है। उन्होंने अपने सभी के नाम के सभी पर सुन्दरता के साथ असादु करता है। इनकी विवेचना पर इनकी विवेचना की यह ही असादु है। उन्होंने सुन्दर और असादु विद्यापीठ रचनाओं की है,

की सम्मति के बिना ही और अनुमति है। मर्यादा के अन्तर्गत और अनुमति है।
अनुमति का विस्तार करने के अन्तर्गत से देखने की विस्तार है।

महाशय जलनरसिंह नारायण के भक्ति में । उनका कनक शिखर १५५३ के साल तक हुआ था । संवत् १५८४ में वे सिद्धास्नानहु हुए थे । हिन्दी भाषा और साहित्य में उन्हीं उन्हीं हृदय में कालविक्रमसुधागम था । कविता और विद्वानों का उनकी राजदर में कालिक सन्तान होता था । वे स्वयं भी कान्ही साहित्य मार्ग और कविता समग्र विद्वान् थे । उनके राज्य में कला और साहित्य की कान्ही उन्नति हुई थी ।

उपरोक्त द्वारा की गई जगहों की रचना हुई है, जिसकी नाम इस प्रकार हैं—आषा भूषण, आनंद मिहान, अनुभव मण्डल, आनंद मिहान, मिहान नीव, मिहानमन, कीर्ति मण्डल आशीष मण्डल ।

उनके ग्रन्थों में 'साधु भूषण' का महत्व पूर्ण स्थान है। यह अलङ्कार विषयक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में उन्हें 'साधुार्थ' के कई पर परिचित किया है। महाशय कर्णवर्धन साधुार्थ के अन्त में ही द्वितीय भाग-अध्याय में अधिक लिखित है। उनका 'साधु भूषण' नाम भी कर्णवर्धन नामक एक ग्रन्थ का एक महत्व पूर्ण अन्त माना जाता है। उनकी रचना पर लल्लूः उल्लास के 'सन्देशोक्त' नामक ग्रन्थ भी आधार है।

विहारी लाल का कन्या संवत् १९५० वि० में काशीका राज्य के सामन्त बटुकना गोविन्दपुर नामक गाँव में हुआ था। उसके पिता का नाम केहीलाल था। विहारी की बाल्यकालका कीदृशता में व्यतीत हुई। उसके पिताका वे सब में सबसे बड़े लगे। मद्रास में उनका विवाह हुआ। विहारीलाल ने मद्रास में ही पढ़ाई करने लगे। कुछ हीसों का काल है, कि विहारी के कुछ काल मद्रासवासी में; मद्रासवासी में विहारी ने काशीका राज्य का सम्भालन किया था। मद्रासवासी के भी विहारी बहुत बड़े भक्त थे। कहते हैं, कि मद्रासवासी की कृपा से ही विहारी काशीका के निराद भूँये में।

विहारी मधुप ने भी वहीं तक गये, इन्होंने मरवाहू के बीचपुर वाले गढ़ । बीचपुर के राजा महाराज कर्नलसिंह ने विहारी का बड़ा काहर सम्भाल दिया । कहते हैं, कि विहारी ने कर्नलसिंहजी के काहर-सम्भाल से प्रसन्न होकर उनके नाम पर एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम थाका भूतना है । पर विहारी का मन बीचपुर में न लगा । वे बीचपुर का पहुँचे । फिर समय विहारी जलपुर पहुँचे हैं, वहीं की स्थिति अधिक विपदाजनक थी । राजा अपने राज्य काँटे से निरंक होकर अपनी तब विवाहिता रानी के पैर में ही अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत करता था । राज्य से बाड़ी खोर भिगा लुई हुई थी । विहारी ने राजा के जीव-रक्षण को राग करने के लिए भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज कर उनके पास भेजा:—

नहिं बलाब नहिं मलुर मलु,
नहिं पिछल नहिं बल ।
कलो कलो हो ते रोजो,
आने रोज दाल ॥

यथा अरविंद के हृदय पर दृष्ट होने का आत्यधिक प्रभाव पड़ा, और वे पुनः अपने एक कानों में धाग लेने लगे । मधुसूदन अरविंद ने बिहारी का अधिक आदर साकार किया, और उन्हें इसी प्रकार के दोहे लिखने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया । बिहारी ने दोहे लिखने शरंभ कर दिए । अनेक 'दोहे' पर बिहारी को एक सर्व-मुदा मधुसूदन की ओर के पुरस्कार प्राप्त हो गयी थी । बिहारी ने बम्बुर में ही यह कर बात ही दोहों की रचना की । इसी बात की दोहों का संग्रह 'बिहारी सत-सई' के नाम से प्रसिद्ध है । इसी दिनों बिहारी को क्लेश का सम्पीडास हो गया; जिससे उनका हृदय अधिक दुःखाकांत हो उठा । वे बम्बुर के हृदयभन में आकर रहने लगे । हृदयभन में ही बिहारी का सम्पीडास हो गया ।

बिहारी ने किसी सम्पन्न कव्य की रचना नहीं की है । उनका कव्य जो सबसे अधिक प्रसिद्ध है, बिहारी सतसई है । बिहारी सतसई ११६ सुक्त दोहों का संग्रह है । सभी दोहे सरल हैं, और विनम्र-विनम्र भावों के लीन हैं । अकुरुतात्म्य से पता चलता है, कि इन दोहों की रचना में बिहारी को आठ वर्ष का समय लगा था । बिहारी के सभी दोहे सुन्दर हैं । पहले उनका कोई काम नहीं था । इन सम्पूर्ण दोहों की सर्व प्रथम काम बड़ा लिखने किता—इस सम्पन्न में बिहारी ने परलोक गत पेट है । किसी किसी का कथन है, कि सर्व प्रथम इन दोहों की आत्मसाक्षात् ने कनकद्वारा वा, जो श्रीरंगवि का पुत्र था । कोई कोई बिहारी इन बात का खराब भी करते हैं । जो ही, सतसई दुर्लभ साम्य है । इसका हिन्दी साम्य-कव्य में अधिक आदर पूर्ण स्थान है । यद्यपि बिहारी ने किसी कव्य की रचना नहीं की, पर उनकी 'सतसई' के साथ ही दोहों ने ही उन्हें सदा के लिए 'कवय' कर दिया है । 'सतसई' अपनी विशेष-ताओं के ही कारण हिन्दी साम्य-कव्य में एक ही वर्गिणी बन गयी है । ऐसा कोई काम प्रेमी नहीं, जो सतसई की ओर एक बार आकर्षित न हुआ हो । उनके दोहों में ही सरलता, सुकुमारता, और भाव व्यञ्जकता है, वह सम्पन्न नहीं नहीं मिलती । बिहारी ने अपनी दोहों के एक-एक शब्द में मानों का समर का उज्ज्वल दिया है । उनके दोहों की सर्व-व्यञ्जकता पर निम्नलिखित दोहा कही सम्पीडास के साथ प्रकाश साक्ष्य है—

सतसई के दोहो, जो वाचक के लीन ।
देखत जो छोटे लो, पाव करे सम्पीन ॥

हिन्दी साम्य-कव्य में बिहारी का प्रमुख स्थान है । बिहारी की रचनाओं में जो सरलता, सुकुमारता है; वह सम्पन्न बहुत कम मिलती है । बिहारी अपनी सरलता,

सुकुमारता, और भाव-व्यञ्जकता के लिए ही अधिक प्रसिद्ध है। बिहारी ने कविता मुख्यतः भाव की हो-रचना की है, पर उन्होंने उसमें मानवी का सम्पूर्ण स्वरूप लक्ष्य किया है। बिहारी की कविता का एक-एक शब्द कुशल, और सीकड़ा घटित होता है। बिहारी की कविता के शब्द सीकड़ी के नवीने की सीति हो बड़े दुर है। बिहारी शब्द स्थापन में अपने विपुला में। उनके व्यञ्जक और लक्षक का पूर्ण स्वर प्राप्त था।

बिहारी की कविता का मूल विषय स्तुति है। उन्होंने कविता, प्रीति, रोति, और इतिहास सम्बन्धी रोति भी लिखे हैं। किन्तु इन रोतियों की संख्या बहुत ही कम है। उनकी कविता में आदि से लेकर अन्त तक स्तुति ही स्तुति है। स्तुति के लिए ही बिहारी सामाजिक-प्रसिद्धि को है। उनका ऐसा संनारी कवि प्राप्त उस हिन्दी भाषा काल में कोई अन्य नहीं हुआ। विषय की उल्लेख आवासी में ही बिहारी का ऐसा स्तुति बहुत ही कम सम्भव है। उन्होंने स्तुति का सर्वोत्तम पूर्ण विषय किया है। उनके विषय में सम्बन्ध-नातिवादी के सामाजिक स्तर का सम्बन्ध विचार हुआ है। उनका सम्पूर्ण स्तुति विषय सीकड़ा, रोति, कविता नक-लक्षक, शब्द-व्यञ्जक, सुकुमार, और सीति-विलास को ही आवाज मान कर किया गया है। सुकुमारों की सम्बन्ध-विलासकी रचना में अधिक परिचाय में मिलती है। रोति उल्लेख करने वाली कविता का सर्वोत्तम उन्होंने बड़ी सामाजिकता के साथ किया है। ऐसा बात होता है, मानो बिहारी कविता की भाषा और भाव के निकट-वर्तन थे।

बिहारी प्रेम-भाव के अद्भुत किलाही थे। प्रेम की भाषा और सम्बन्ध-वादी के वे पूर्ण परिचित थे। उन्होंने प्रेम का विषय बड़ी सामाजिकता के साथ किया है। उनके विषय में बड़ी सम्बन्ध और सम्बन्ध है। उनका प्रेम सर्वोत्तम पूर्ण है। उन्होंने प्रीति की है, विरोध की है। संगम और विरोध की सम्बन्धों में सम्बन्ध तथा नातिवादी के स्तर में उनमें बड़ी प्रकृति में पर उल्लेख आधिपत्य है। प्रीति और विरोध सम्बन्धी उनकी सुकुमारियों तथा सम्बन्धों बड़ी सम्बन्धी है। उनका सुकुमार विषय भी अधिक सम्बन्ध है। उनके सुकुमार विषय में सुकुमार का सम्बन्ध बड़ी सुकुमार-विलास की स्त्री में उल्लेख-विलास होता है। उन्होंने सुकुमार विषय की सुकुमार, शब्द-विलास, और भाव सीकड़ा में प्राप्त किया है।

भाव बड़ा की सीति ही बिहारी ने कला-विलास की अधिक प्रकट है। भाव और कला, दोनों पर बिहारी का पूर्ण आधिपत्य है। उनके अद्भुत परिचित है, भाव की विराटता है, भाव वैराग्यता है, और सुकुमार सीकड़ा है। उनका एक-एक रोति भाव के सम्बन्ध से प्राप्त हुआ है। भाषा का किलास उनके शब्द-विलास में है। वे भाषा के अद्भुत वाणी है। कविता कलाकार की सीति ही वे प्रीति शब्द के सम्बन्ध सम्बन्ध की सम्बन्धी है, और उल्लेख उल्लेख स्थापन करते हैं। उनका प्रीति शब्द कविता स्थापन पर कविता प्राप्त हुआ-हुआ प्रीति होता है। उनके शब्दों में व्यञ्जक,

और लक्षणा का समर्थन समझता है। बिहारी कम शब्दों में अधिक बात कहने में बहुत निपुण है। उन्होंने अपने छोटे से कन्द में बड़ी बड़ी कथाएँ बड़े-बीछल से बरती हैं।

बिहारी का काम कुतूहल है। कुतूहल उस पर की कहते हैं, जिसका समझ-बिखले पदों में समाप्त न हो और जो खोजता हो अपने विषय की समझ करने में समर्थ हो। कुतूहल में मान-रचना करना साधारण बात नहीं है, क्योंकि उसमें 'गहर में गहर' खनना होता है। यही कारण है, कि बहुत कम कवियों का काम कुतूहल की ओर आता है, पर बिहारी ने अपनी सद्गुण प्रसिद्ध शक्ति से कुतूहल में समर्थ समाचार समाप्त कर दिया है। उनकी रचनाओं में कुतूहल के कई पैर भी मिलते हैं, जो हमने आज में पूरा है। उनका कुतूहल अपनी सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है। इसमें हमें भी समर्थ मिले हैं। बिहारी ने समास-व्यक्ति का व्यापक रूप से आत्मन्य व्यक्त किया है, किन्तु मानवता सर्वत्र प्रचार है। जहाँ की समझ करने से उनकी समझ और कुतूहलता देखने की समझी है। उनके कार्य-व्यवहार बड़े विस्तृत और व्याप्त पैदाओं से परिपूर्ण हैं। बिहारी ने अपने कार्य-व्यवहार की कलाकारी के द्वारा समझता करने में कुछ और कम नहीं रखा है। यहाँ नहीं के समझावृत्त के पैर में वह पर अधिक मानवतावादी हो गए हैं। उनका, गुहा, और कमल आदि कलाकारी के समीप में बिहारी की अधिक समझता बात हुई है।

बिहारी की भाषा सरल है, पर उसमें सुन्दरता, सरली, पारसी, और सभी सरा सही सौदा के भी समझ मिलते हैं। बिहारी ने हमें के समीप में बड़ी कुतूहल और व्यापकता से काम किया है। उन्होंने किन शब्दों का प्रयोग किया है, वे उनकी भाषा का अधिक गौरव समझ करते हैं। जहाँ की व्यवस्था में उनके समझ समर्थ हैं। उनकी भाषा के सभी समझ व्यवस्थित और संयमित हैं। उनकी भाषा में हमें का रचना बड़ी सुचारुता, और बहुत के 'मान' हुआ है। उनमें बहुत समझ, और पैरों हैं। हमें भी पैरों, और विस्तृत के कारण बिहारी की भाषा अधिक सुन्दर, सरल, और व्यवस्थित बन गई है। उसमें प्रोत्साहित और समझावृत्त भी अधिक है। उनका सभी बड़ा गुण उनकी संयमित शक्ति है। संयमित हमें ने उनके समर्थ शक्ति का संसार कर दिया है। सभी बिहारों ने कुछ कठ से बिहारी की भाषा की समझ शक्ति का प्रकाश की है।

—**सहित्य** का जन्म संवत् १६५८ के लगभग बालपुराचिन्तामणि तिलकपुर नामक गाँव में हुआ था। इनके सम्बन्ध में यह उचित है, कि यह भूराज और चित्तामणि के भाई थे। बुँदी के महाराज मानसिंह के दरबार में यह बहुत दिनों तक रहे। इनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है, कि वह बहुत दिनों तक ब्रिजवादी रहे हैं।

—सहित्य के कवियों के नाम इस प्रकार हैं—अनाम, सहित्य लाला, सुन्दर,

उस समय की विषय है—बहुत औरंगजेब का, और कुछ महाराज विवाही का। औरंगजेब भारत की भारतीय संस्कृति, और बर्मा पर कुताराधित करने उसे सर्वोच्च के लिए सर्वोच्च के खतर में हुक्म देना चाहता था, और उक्त महाराज विवाही भारत की संस्कृति, बर्मा, और उसकी राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए अपना मूल्य देने की जरूरत पूरा दे दे। दोनों ही विभिन्न बर्मा-भारत पर उनके क्षेत्र अपना-अपना अपना-अपना हुन दे दे। मूल्य में दोनों ही की और देना, और अपने सर्वोच्च की पालनिका की समर्थन कर महाराज विवाही के बोलता पूर्ण बर्मा के अपनी रचनाओं का भू-भार बनाना करना कर दिया। उनमें सर्वोच्च रचनाएँ महाराज विवाही की बोलता, और उनके मुहों से बोल प्रोत्ते हैं। उन्होंने कुछ देते की खतर लिखे हैं, किन्तु कुन्देल केवरी महाराज खतराल की बोलता, और उनके मुहों का बर्मा है। महाराज विवाही और खतराल की बोलता तथा उनके मुहों के मान के बर्मा मूल्य में भारतीय राष्ट्र, और भारतीय संस्कृति का मान दिया है। क्योंकि वह दोनों ही उस समय भारतीय राष्ट्र के समर्थन में। विवाही का मानकाल उनके राष्ट्र में बर्मागत था। उनका व्यक्तिगत बर्मा-भार। मूल्य में संस्कृति के विरोधियों के कुछ करने का उपदेश नहीं दिया है, बल्कि उन्होंने बर्मा और संस्कृति की रक्षा के लिए कुछ करने वाले महाराज विवाही की बोलता और उनके मुहों का मान दिया है। इस रूप में कहा जा सकता है, कि उन्होंने देश की रानी में बर्मा और संस्कृति की रक्षा के लिए, बर्मा की खतराल की है। कहीं कहीं मूल्य में करने बर्मा के विषय में बर्मागत के भी खतर किया है, पर उनकी उस बर्मागत में भी एक प्रकार की रचनात्मिका है।

मूल्य की बर्मा रचनाएँ बर्मा-भार में पूर्ण हैं। और वह की उद्योग करने वाले बर्मा-भार तथा उनकी रचनाओं में विद्यमान हैं। कहीं-कहीं उनकी रचनाओं में रिड और बर्मा-भार का भी संसार हो जाता है। उनकी रचनाओं की रक्षा तथा सुनकर रानी में विद्युत का संसार हो जाता है। उनकी रचनाओं में सर्वोच्च की रक्षा हुक्म की देती रक्षा रक्षा है, कि बर्मा में भी बर्मा मूल्य के रूप में बर्मा का प्रभाव बनता जाता है। मूल्य की रचनाओं में कहीं कहीं विरोधता यह है, कि वह राष्ट्र के बर्मागत के लिए है। उनमें एक विरोध व्यवस्था की बोलता और उनके मुहों का मान बनाना किया गया है, पर उस मान का प्रभाव सर्वोच्च राष्ट्र के रूप पर पड़ता है। बर्मा राष्ट्र उनकी रचनाओं से बर्मागत बनता है, और उनकी रचना में भारतीय उद्योग होता है। मूल्य की रचनाओं का मान उनकी राष्ट्रीय मानता है। बर्मा राष्ट्रीय मानता मूल्य की रचनाओं का बर्मा है।

बर्मा की रक्षा में भी मूल्य की रचनाएँ बर्मागत बर्मागत हैं। उनकी रचनाओं में बर्मा के दोनों ही रक्षा का प्रभाव हुन दे। बर्मा का बर्मागत बर्मा, किन्तु इन मानकाल में कहीं है, मूल्य की रचनाओं में बर्मागत का बर्मागत हुन दे। बर्मागत और रानी का बर्मागत भी उनकी रचनाओं में बर्मागत रूप से मिलता है।

उनके समीप में बड़ी व्यापकता और लोकप्रियता है। मूल्य की नीतिगतता की सामाजिक प्रवृत्तियों है। वे अपने गुण से सर्वथा भिन्न हैं। उन्होंने अपनी गुण से अवलोकित साहित्यिक परम्पराओं से सर्वथा भिन्न एक नवीन कलाओं का आविष्कार किया है। उनकी कल्पना-शक्ति उनकी अपनी कल्पना-शक्ति है। काल्पनिक और रीति की योजना में भी उन्होंने एक नवीन पद्धति का आविष्कार किया है। साधनता की दृष्टि उनकी रचनाओं पर अवलोकन है, पर उन्होंने उसके बड़ी कुशलता के साथ नवीनता का मिश्रण किया है। साधनता और नवीनता के गुणों के संतुलन उनकी रचनाएँ द्वारा पर अपने अनुभव ही प्रमाण साबित हैं। साधनता-व्यवस्था मूल्य की रचनाओं का प्रमाण गुण है।

मूल्य सर्वथा नीतिगत है। उन्होंने रीति-कालीन परम्पराओं से कुछ एक नवीन आविष्कार साबित हैं। उनकी कविताओं में न तो अंधकार है, और न नायिकाओं का विग्रह। उन्होंने कविता-साधनों का, एक नवीन रूप में संसार किया है। उनका किया हुआ अंतर रीति-काल में अनुभव का एक हीमा है, और साथ ही उनके उनकी कविता-साधन शक्ति का भी परिचय मिलता है। इनकी कविता-साधन शक्ति की दृष्टि उनके ही उनके महाकवि की कविता से विभूषित किया गया है। कविता उनके द्वारा किसी महा-काल की रचना नहीं हुई है, पर काल के अंतरा-साधन की नीतिगत करने की उनमें अपूर्व कला थी। उन्होंने हिन्दी काल-काल में अवलोकित अंतरा-साधन की ही एक कर बीरता के रूप में परिचयित कर दिया। वह उनकी अनुभव-काल-कालित का महा-साधन का। ऐसा अनुभव-साधन साबित बहुत कम कविता में हुआ करता है।

यहाँ एक काल के साहित्यिक लक्षण का अर्थ है, मूल्य सर्वथा नीतिगत है। पर काल के बाह्य लक्षण में वे रीति-काल के अंतरा-साधन की नहीं एक लक्ष्य है। रीति-काल के कविता की नीति उनके भी काल की शक्ति के साथ ही साथ अंतरा-साधन का अंतरा-साधन है। रीति-काल के कविता के अंतरा-साधन ही वे भी काल के साथ ही साथ अंतरा-साधन की है। उनका कविता-साधन रीति-काल के कविता के मूल्य है, पर उनके अंतरा-साधन का रूप ऐसा ही है, जैसे रीति-काल की कविता का है। रीति-काल के परम्पराओं की अनुसार मूल्य में भी रीति-काल की रचना की है। उनका अनुभव-रीति-काल-साधन मूल्य है। रीति-काल मूल्य में काल्पनिकों के लक्षण शिखर पर है, किन्तु पर अनुभव के लक्षण कालों की दृष्टि है। मूल्य में काल्पनिकों के रूप-लक्षण और अंतरा-साधन में अपनी नीतिगत-प्रवृत्ति की है। उनका अंतरा-साधन काल्पनिकों की ओर विरोध न हीकर अपने अंतरा-साधन के परिचय-विषय की ही नीति है। यही कारण है, कि इन रीति-काल मूल्य की अंतरा-साधन की नीति में नहीं लगे। इसकी कल्पना बड़ी विवेचना यह है, कि उनके द्वारा महाकाल-साधन के कविता और गुणों पर भी प्रमाण बढ़ता है। वह मूल्य की ही काल-साधन का अंतरा-साधन है, कि उन्होंने अपनी रचना से दो-दो काल-साधन हैं। एक ओर तो उनकी रचना-काल-साधन के लक्षण का

मान करती है, और दूसरी ओर वह मायमयी बन कर परिचयन भी करती है। अतः हम यह समझे हैं, कि भूषण की रचनाओं में कला और कला का सन्तुष्ट होना हुआ है।

ऐति भाषा के कवियों की मूर्ति भूषण केवल चमत्कारवादी ही नहीं है, उनमें साधारणता भी है; पर उनका मुख्य ध्यान हम ओर न था। यही कारण है, कि भूषण मरिचक, देश और विदेशी की मूर्ति कलंकालों के क्षेत्र में अधिक दीर्घ नहीं बना सके हैं। उनका कलंकालों का क्षेत्र अधिक सीमित है। कई ऐति की कलंकाल हैं, किन्तु उन्होंने कभी और परिष्कारमय लक्षण लिखा है। उनके लिखे हुए लक्ष्यों में कई अशुद्ध और दीर्घ पंक्तियाँ भी हैं। पर उनकी योजना का यह दीर्घ उनकी भाषा प्रवाह में दिन का क्या है। उनकी रचनाओं में और रस का ऐसा अत्यन्त सील प्रभावित है, कि उनमें कलंकालों की योजना की जाने में और बिना हिचक है। भूषण ने अपनी रचनाओं में सम्बोधन और कर्त्तव्य और लोगों की ही योजना की है। उनकी योजना नहीं सामाजिक और क्षमतावादिनी है। वह सन्दर्भ में सन्दर्भ चमत्कार अत्यन्त करती है, और वास्तव के दृश्य की दृष्टि से एकदम कर नहीं लेती है। जयदेव, लख, यमक मूर्ति रस, भाषा लुप्त आदि कलंकालों के दृष्टि उनकी रचनाओं में अधिक मिलती है।

भूषण और रस के संबंध हैं। उनकी संस्कृत रचनाओं में और रस अत्यन्त कम से प्रभावित है। वर्षादि दृष्टि और रस का ऐसा प्रादुर्भाव भूषण की रचनाओं में हुआ है, ऐसा अत्यन्त बहुत कम मिलता है। भूषण के सामान्यतः महामान विचारों में भी रसता की मूर्ति नहीं है। उनके चरित्र का अत्यन्त आम अदम्य सीलता और सीलमिता के मरा हुआ है। उनकी जीवन जमा में वे लख प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं, जो और रस की उद्देश्य करने में अधिक अत्यन्त होते हैं। भूषण की रचना की उन सभी कर्मों से बल प्राप्त हुआ है। महामान विचारों के परिचयन के उनकी रचनाओं में अपने आम और रस उद्देश्य ही उद्देश्य है, जो बड़ा सामाजिक और सामाजिक है। भूषण और रस के हिन्दी में कलंकाल हैं। भूषण के लक्ष्य कई कवियों ने अपनी रचनाओं की और रस में लुप्त, पर भूषण के लक्ष्य नहीं की जो और रस में भूषण के अत्यन्त अत्यन्त मात्रा नहीं हुई। अत्यन्त मुख्य कारण यही है, कि भूषण के चरित्र तत्काल महामान विचारों की मूर्ति और किसी में 'और रस' की उद्देश्य करने वाले अत्यन्त न के। भूषण ने 'और रस' का बड़ा निम्न विचार अधिक लिखा है। उन्होंने अपने चरित्रमय महामान विचारों के अत्यन्त लुप्त में ही सीलता नहीं देखी है, परन्तु उन्होंने उनकी उक्त कलंकालीन दृष्टि का भी दर्शन किया है, जो उन्होंने दया, दान, और चम' आदि क्षेत्रों में प्रवृत्ति की है। यही कारण है, कि भूषण का और रस वर्षादि नहीं है। भूषण ने और रस के आम ही लख दीर्घ और अत्यन्त आदि रसों की भी योजना की है। अत्यन्त रस का भी अधिक उनकी रचनाओं में अत्यन्त दान के हुआ है। दीर्घ रस के अत्यन्त दृष्टि भी उनकी रचनाओं में मिलती है। अतः रस के भी

उनके कई शब्द मिलते हैं, पर उनमें वह स्वाभाविकता नहीं है, जो उनके बीर रस में है।

मृत्यु की भाषा मृदु है। पर मृत्यु के शब्दों में वह सुकुमारता नहीं की, जो ब्रजभाषा के विश्व कर्कशित शब्द करती है। जहाँ मृत्यु के शब्दों में सख्त उसने अपने भीर परिचित स्वभाव को व्यक्त किया है। मृत्यु के शब्दों में जाने पर हमें उसके एक गंभीर स्वभाव का दर्शन होता है, जिसमें खींच है, और उदरगता है। सभी उस हम उनमें प्रेम, विराट्, और प्रयोग के सौम्य चित्र देखते-बूझते जा रहे हैं, पर मृत्यु की खोजगिरी ब्रजभाषा में हम कुछ की अवसरता देखते हैं, उदाहरणों की आधार तुल्य हैं, और सभी की मर्कटा तुल्य के साथ ही साथ कुछ की विशिष्टताओं के दर्शन करते हैं। मृत्यु की ब्रजभाषा का वह स्वभाव रीति काल में जनता विशेष महत्व रखता है।

मृत्यु की ब्रजभाषा में वह व्यर्थ नहीं है, जो रीतिकाल के सामान्य शब्दों की ब्रजभाषा में है। इसका कारण यह है, कि मृत्यु में अपनी ब्रजभाषा में कई विशेषता भाषाओं के समीचीन रूप दिखता है। यहाँ उन्होंने कुछ शब्दों का चित्रकारी है, शब्दों की सख्त भाव का चित्रकारी किया है, वहीं उनकी भाषा में सरसी और सरसी के शब्द दाने करते हैं। जैसे—सरसाही, सरसी, सुखसमाना, शब्द और सरसी शब्दों। उन्होंने सरसी और सरसी के शब्द ही नहीं बहुत भिन्न हैं, पर हिन्दी भाषा के समुदाय सरसी और सरसी के शब्दों के भी भाव लिया है। सभी की समुदाय करने में मृत्यु बहुत ही स्वभावता के साथ जैसे कुछ हिन्दीकरण होते हैं। उन्होंने सभी शब्दों के समुदाय ही सभी के स्वभाव को फिर किया है। उन्होंने सभी के स्वभाव को बहुत करने में जैसे और कर उन सभी सभी हैं। सभी भाषा में सरसी, सरसी सुखसमाना, सरसी, और सरसी भाषाओं के भी शब्द हैं। उन्होंने सरसी सभी का भी प्रयोग किया है। चित्रकारी शब्द करने सरसी और सरसी रूप में ही समुदाय है। यही कारण है, कि यही-यही उनकी रचना विश्व हो गई है। भाषा में खोजगिरी उनमें करने के लिए उन्होंने कुछ शब्दों और खोजगिरी का भी प्रयोग किया है।

हैंस का दूर भाव देन दान का। इनका सम्म समस्त १५५५ में हुआ था। इनके काम रचना और सख्त भाषा के सर्वत्र में विद्वानों में प्रचलन मरनेद है। इनकी शिष्टा-दीक्षा के सर्वत्र में भी सभी एक कुछ विशेष रूप से जात नहीं हो सका है। इनके सम्मत्र में केवल इतना ही जात होता है, कि योश्व वर्ष की जनता में ही उनमें सामान्यतः पूरा उदा का, और उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास हो जाता था। सर्वोच्च योश्व वर्ष की जनता में उन्होंने 'भाव विज्ञान' की रचना की थी। कहा जाता है, कि शब्दम और 'भाव विज्ञान' की रचना करने में औरगरेव के पूर्णतः पूरा कामगार की जनता में वह, की अवधिगत सक्तिवस्तुधारी था। शब्दमराह उनकी रचनाओं की सुखर अधिक प्रचल हुआ था। कुछ वर्षों के पराजित कर

आमनसाह की मृत्यु हो गई, सब देवता हिन्दी से संलग्न विद्येय्य हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने दारपीयति राजा कीलासम के गर्होने मन्त्रीदेव देव का आभय प्रदत्त किया। मन्त्रीदेव के आभय में एकर उन्होंने 'मुखावी, विलास' नामक ग्रन्थ की रचना की, किन्तु यहाँ जो देव अधिक हिन्दी तक न पहुँचे। इसके पश्चात् वे गर्होदे के कुशलसिंह के आभय में गए। कुशलसिंह के नाम पर भी उन्होंने 'कुशल विलास' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके पश्चात् उन्होंने राजा दीर्घसिंह का आभय प्रदत्त किया, और 'देव चन्द्रिका' की रचना की। संवत् १५८३ के अखि-वत् देव का परिचय कुशल राजा मोतीलाल के द्वारा। मोतीलाल ने देव का बहुविध आदर्श-सकार किया। मोतीलाल के आदर्श-सकार से संतुष्ट होकर देव ने 'रत्न विलास' की रचना की, और उसे मोतीलाल को ही समर्पित किया, पर देव मोतीलाल के आभय में भी न पहुँचे। मोतीलाल के आभय के दूसरे होकर देव ने 'हृदय रत्नमय' की रचना की। अन्त में देव ने विद्युती के राजा 'अक्षयराज' की रचना की आभय को प्रदत्त किया, और अब तक की अपनी सम्पूर्ण रचनाएँ 'हृदय रत्नमय' में संश्लेषित करके उसे समर्पित कर दी। इसके पश्चात् फिर देव को आभय राजा की ओर नहीं बगनी पड़ी। ऐसा प्रतीत होता है, कि इसके पश्चात् ही उनकी मृत्यु हो गई होगी, क्योंकि 'अक्षयराज' की रचना कुशल समर्पित करने के समय उनकी अक्षयराज नाम की रचना में ही समाप्त हो।

देव ने बहुत से कवियों की रचना की है। कोई उनके कवियों की संख्या ५२ बताता है, और कोई ५५। देव के विना कवियों का नाम तक पता लग सकता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—सुख विलास, अक्षयम, मुखावी विलास, सुखान विनोद, देव तरंग, राम एतावर, कुशल विलास, देव चरित, देव चन्द्रिका, चरित विलास, दुख विलास, काम्य रत्नमय व हृदय रत्नमय, हृदय चरित-तरंग, हृदय विलास, रासक विलास, हृदय दर्शन पचीसी, लल दर्शन पचीसी, काम दर्शन पचीसी, लल दर्शन पचीसी, यशस्वर हजरी, देव दीपिका, सुविश विनोद, रासिका विलास, नीति वस्तु, और अक्षयराज देव दर्शन।

रैति कालीन कवियों में देव का प्रमुख स्थान है। विभिन्न कवियों में देव की रैति काल के कवियों में सर्व श्रेष्ठ बताया है। रैति काल के कवियों में ही नहीं, विभिन्न कवियों की रैति में देव प्रमुख और पूरे से भी चले हैं, पर पर विभिन्न कवियों का अध्ययन मग है। विभिन्न कवियों के विनोद को हिन्दी भाषा के आचार्यों के मत है, जो देव की संकीर्णतावादी और आभयवादी कहते हैं। जो ही, पर तो निश्चित है, कि देव का रैति काल के कवियों में प्रमुख स्थान है। आचार्यीय और आभयवादी भी ही रैति से देव रैति काल में ही प्रभावित होते हैं।

देव की कविताओं के दो वर्ग हैं। उनकी कविताओं का एक वर्ग ही यह है, जिसमें अंगार पर की चमक प्रकाशित होती है, और दूसरा वर्ग यह है, जिसमें वैराग्य के तत्वों का चित्रण किया गया है। प्रमुख रूप से देव अंगार चमक के कवि हैं।

अधिक विरासत हो जाती है। उनको यह विरासत उनके व्यक्तिगत जीवन से जो संबंध रखती है, और उनको सामाजिकता से जो। वे नहीं अपने जीवन से विरासत है, नहीं उनका सामाजिक जीवन जो व्यक्तिगत रूप से है। वैयक्तिक और सामाजिक विरासत से उनके वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को जोर दिया गया है। यह वैयक्तिक उनको इतनी यह गई है, कि उन्हें संसार के सम्पूर्ण विचार-धारा से विरासत हो जाती है। वे कहते हैं—

“ऐसे जो ही जानते, कि वे हैं वृत्ति के संग,
ए दे मन के देह धर्म के देह को।”

यद्यपि देव की विरासत से उनके जीवन को जोर दिया गया है, पर उनके इस तरह विरासत से अधिक सम्बन्धित है। उन्होंने अपनी रचनाओं में उनके जीवन की सभी परिस्थितियों और उनके सभी रूपों पर सुचारुता के साथ उल्लेख किया है।

देव महाकवि ने, और उनके साथ ही साथ आचार्य भी थे। यद्यपि आचार्य के रूप की अपेक्षा देव का अधिक रूप अधिक परभावित है, पर आचार्य के रूप में भी वे किसी से कम नहीं हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन था। उन्होंने हिन्दी, और संस्कृत के कविओं का अध्ययन नहीं किया था। उनका संस्कृत अध्ययन प्रभाव था। यद्यपि उन्होंने अपने आचार्य के लिए बहुत साधन संस्कृत के अधिपति से प्राप्त किया है, पर उन सम्पूर्ण साधनों पर उन्होंने अपनी मौलिकता की ऐसी छाप लगा दी है, कि कोई उन पर अनुकरण का अनुकरण का आरोप नहीं लगा सकता। उन्होंने जो सामग्री संस्कृत के आचार्यों से ली है, उसे विस्तृत अपनी बना ली है। सभी साधनों पर देव ने संस्कृत आचार्यों से निम्न-निम्न प्राप्त किया मर विरासत किया है। जैसे संस्कृत के आचार्यों के रूप की तीन शक्तियाँ—अभिप्राय, लक्षणा, और व्यंग्य विविधता की है, पर देव ने इनके व्यक्तिगत रूप सभी शक्ति का जो उपयोग किया है, और उनको उन्होंने ‘व्यंग्य कवि’ के रूप से व्यंग्यित किया है, इसी प्रकार ‘रही’ और व्यक्तिगत विरासत के सम्बन्ध में भी देव ने संस्कृत आचार्यों से अपना प्रभाव मर व्यंग्यित किया है। इससे यह बात होता है, कि देव ने मौलिक रूप की, और वे अपने विचार का विवेक अपनी रीति से करते थे।

रीतिरस के अधिपति में आचार्य की रीति से देव का प्रभाव स्पष्ट है। देव ने रीति सम्बन्धी दो रूप लिये हैं—मर विरासत, और रूप रस। रूप विरासत में रस के सामाजिक साधनों का विवेक किया गया है। यद्यपि प्रथम वैयक्तिक जीवन को ही स्पष्ट दिख गया है, पर इस रीति से रस की व्याख्या के ही कारण देव के आचार्य का विविध हो जाती है। यदि देव कोई और रीति रस न लिये तो वे केवल रूप विरासत के ही कारण आचार्यत्व की कड़ी से निर्मुक्त हुए या कहेंगे कि। उनका रस रस रीति का सर्वोत्तम रूप है। रस रस में उन्होंने अपनी

की दृष्टि के साथ ही साथ सुख, ऐति, और सुन्दरी का भी विवेकन किया है। इनके प्रतिनिधित्व उन्होंने काव्य कालकी बहुत ही सारी वर भी स्वयं स्वान पर प्रकट करा है। जैसे—काव्य की शायद, काव्य का शरीर, सुन्द का मनोमन, और काव्य की नहिमा इत्यादि। सुन्द स्वयं में असंख्य की मिश्रण भी है। सुन्दस्वर गीत, सुन्दर विन्द, यात्र विन्द, और एत विन्द से उन्होंने साधिका मेरी का भी वर्णन किया है।

एत, कर्तव्य, सुन्द, ऐति, भाषा इत्यादि दृष्टि के देव काव्यार्थ है। उन्होंने काव्य के इस समुच्चय सारी वर विवरण पूर्वक प्रकट करा है। उन्होंने इत्यादि देव से एक गरीब मार्ग का निर्माण किया है। मार्ग का निर्माण करने में उन्होंने सरीत के साधुओं से बहुतसा अन्वय ली है, वर से साधुमार्ग ऐसी है, किन्तु काव्य काव्य में देव की अधिक वर उद्योग लगे हैं।

देव ऐति काव्य के सर्वोत्तम कवि बने जाते हैं। उनके काव्यार्थ के पूर्व प्रकटका पूर्व नीरस की बात ही सुनी थी। सुन्द, केतव, विन्द, और सविन्द में प्रकटका के अन्वय से सारी समुच्चय दृष्टि सगई थी। उक्त मार्ग, उक्त नीरस उक्त काव्यका दृष्टि पूर्वक से प्रतिनिधित्व ही सुनी थी। देव को एक ऐसी प्रकटका मिली, जो काव्य के लिए अनेक प्रकार का सुनी से असंख्य थी। देव में इस सुन्दस्वर काव्य की सारी प्रतिभा और काव्य दृष्टि के और भी अधिक बहुतसा वर का दिया। देव के हाथों में काव्य वह वर का और भी अधिक गरीबका ही गरी। ऐति काव्य के समस्त कविओं से देव की प्रकटका बहुत ही सुन्दित, और स्वयंका पूर्व है। उनकी प्रकटका में काव्य के सारी उक्त और प्रतिनिधित्व वर मिलते हैं। देव की प्रकटका का वर बड़ा ही विन्द है। उन्होंने अपनी प्रकटका में सुन्द, सविन्द, काव्य, और उक्त काव्य की प्रकटका कविओं के सुन्द का इत्यादि वर स्वयंका के साथ किया है। देव का सुन्द-अन्वय भी विन्द है। सुन्द के सर्वोत्तम विन्द होने के कारण उन्होंने सुन्द के सुन्द का प्रयोग बहुतसा के साथ किया है, वर इस प्रयोग में प्रकटका उर्द्वय प्रतिनिध और प्रकटका प्रदर्शन नहीं है। उन्होंने सुन्द के सुन्द सुन्द का प्रयोग केवल काव्य की ही दृष्टि के ही लिए किया है।

साधारण की दृष्टि के देव की भाषा में सुन्दित है। देव काव्य होता है, मानों देव का काव्य भाषा की सुन्दता की और नहीं का। उनकी दृष्टि सारी वर ही अधिक सुन्दता थी। मानों के प्रेम में लगे वर उन्होंने स्वयं-स्वान पर साधारण के विन्दों का प्रकटका किया है। उनके एत निरालिखन का कारण उनकी सुन्द, सुन्दस्वर और सुन्द के प्रति दृष्टि निम्न भी है। इस और अनुमान की दृष्टि निम्न में उनकी स्वयंका में, कई स्थानों में लिय और काव्य सम्बन्धी दृष्टि उक्त कर दिए हैं, किन्तु उनके काव्य में अधिक हीनका का वर है। किन्तु प्रकटका वह सुन्द नहीं, कि उनकी सारी काव्य देव पूर्व है। यहाँ यहाँ उन्होंने साधारण और

वर्तनीय के साथ लिखा है, जहाँ उनकी भाषा इस शीघ्र के बच गई है, और उसमें पूर्ण श्रद्धा है। जब उस व्याकरण की शक्ति के विशेष होने पर भी देश की भाषा में नहीं छुट्टा है। देश का व्याकरण व्याकरण के नियमों की और सम्मान नहीं पा, किन्तु वह बीच-बाँधी पर उनकी शक्ति केन्द्रित थी। पर-बोझनों के निर्माण में उन्होंने अधिक साधना की है। उनकी यह बीच-बाँधी नहीं छलकत, और साध-साधना पूर्ण है। सम्मान की प्रकृति की अनुसार उनके छोटे-छोटे चरित्र, अनुकूल और अनुकूल पर रहे सम्मान काट लेते हैं। उन्होंने अपने अत्यन्त अत्यन्त रूप के करने वाले का गुणन किया है। बोझ, अनुमान, और अनुकूल के अधिक प्रयोगों द्वारा उन्होंने अपनी भाषा की अधिक प्रशंसा बना दिया है। उनकी भाषा के शब्दों में अधिक सम्मान है। उनकी भाषा का अत्यन्त अत्यन्त गुणन का अधिकतर होता है। अनुमानों के द्वारा उन्होंने अपनी भाषा के शब्दों में सर्व अर्थों की अधिक प्रशंसा करने का विशेष प्रयत्न प्रदर्शित किया है। भाषा के गुण की प्रशंसा करने तथा उसमें सम्मानितता सम्मान करने के लिए देश के अपनी भाषा में गुणों और शब्दों का भी प्रयोग किया है। देश की भाषा में इसी लोकोक्ति है, कि उनकी रीति काव्य के शब्दों की अधिक की अधिकता में नहीं गई कभी। देश में लोकोक्ति और गुणों का प्रयोग कई शब्दों के साथ किया है। उनकी प्रयोग-कुशलता के कारण लोकोक्ति और उनके शब्दों में अत्यन्त न होकर उनकी का एक सामाजिक और पर गई है, जिसके परिणाम अत्यन्त उनकी भाषा में और भी अधिक हीनता का गया है।

जीवित काव्य के नियमों और अनुकूलन काव्य ने। उन्होंने कई शब्दों की रचना की है, जिनके साथ इस प्रकार हैं—अधिक अर्थ, अर्थ, शरीर, शरीर अधिक, एक शब्द, अर्थकार गया, अनुमान विचार, और विचार विचार। उन्होंने अपने काव्य शब्दों में भाषा के शब्दों का विशेषता करने अपने साधारण की प्रशंसा करने का प्रयत्न किया है। इसका साधारण इसके अधिक शीघ्र की अनेका सेह है।

विद्यार्थीदास प्रशान्तद्वितीय जीवित शीघ्र के नियमों की अत्यन्त साधना ने। इसके शब्दों के साथ इस प्रकार हैं—एक शब्द, अनुमान विचार, अर्थ निर्माण, अर्थ निर्माण, अर्थ प्रकाश, अर्थ अर्थ भाषा, अर्थ प्रकाश, अर्थ अर्थ अधिक, और अर्थ प्रकाश। इसके शब्दों में इसके अर्थ निर्माण का अधिक महत्व पूर्ण गया है। उन्होंने अर्थ निर्माण में रीति और अर्थ के शब्दों का विशेषता नहीं प्रशंसा और अनुमान के साथ किया है। अर्थ के शब्द में यह अर्थ अधिक की का करते हैं। रीति काव्य के शब्दों की शक्ति यह अत्यन्त के शब्दों की ही न लक्ष पर भाषा और अनुकूलियों के विचार की और हो अत्यन्त रहे हैं। यदि इनके साथ नहीं है, तो इनके पूर्व की शब्दों के हैं, पर इसीने अपने उन शब्दों के विचार में नहीं कुशलता प्रदर्शित की है।

हनुमत् कविराज त्रिवेदी के प्रवीण थे। इनके पिता का नाम उदयनाथ 'कबीर' था, जो टीले बाबा के एक शिष्य थे। इनका कविता काल संवत् १८५० के लगभग, संवत् १८५३ के आस पास माना जाता है। इनोंने एक ही पद्य की रचना की है, जिसका नाम है, 'बसिबुल संत भास'। यह कबीरान्न कीर्तनी काव्य है। इसमें कबीर, और कविराज ऐसे बड़े कुन्दी में कलकत्ती के लखनू, और उनके दरबार एक ही पद्य में दिए गए हैं।

बेनी अमीन लखनऊ के निवासी थे। इनका कव्य कालकौड़ी घराने में हुआ था। इनके द्वारा लिखित तीन काव्य मिलते हैं—'रस रस करम, भू'भार भूषण, और नाना रस प्रकाश'। 'रस रस करम' कविका मैद और रस मैद सम्बन्धी काव्य है। 'भू'भार भूषण' इसकी रचनाओं का संग्रह है, जिसमें इसकी भू'भारिण कवितार्थें संगृहीत हैं। 'नाना रस प्रकाश' कलकत्ता सम्बन्धी काव्य है, जो केदार की 'कवि प्रिया' की टीली पर लिखा गया है।

पद्माकर के पिता का नाम मोहनलाल महा पा, जो एक वैष्णव ब्रह्मण्य थे। पद्माकर का कव्य संवत् १८२० बीसा में हुआ था। इनके पिता मोहनलाल कर्म कवि थे। कवि होने के साथ ही साथ वे साधक भी थे। पद्माकर ने अपने पिता के ही पद्य की शिक्षा प्राप्त की। कर्म-सिद्धि की प्रेरणा की उन्हीं कव्यों पिता के ही द्वारा प्राप्त हुई। कहते हैं, कि पद्माकर ने अपने पिता द्वारा मिले-लिखे मार्ग पर चल कर कर्म-सिद्धि की की थी।

टीले बाबा की परम्परा के अनुसार पद्माकर की भी कलकत्तावासी की सीक थी। सर्व प्रथम पद्माकर लाल के कलकत्तावासी राजा खुदाबुद्दाल जप्पा साहब के शासन में रहे। एक बार उन्होंने जप्पा साहब की प्रार्थना करते हुए उनकी सम्पत्ति की तुलना कुवेर की सम्पत्ति के की। एक बार उन्होंने प्रथम दीनर एक लाख मुद्रा प्रार्थना दिया। कुछ लोगों का कथन है, कि जिस कविता में उनका जप्पा साहब के प्रति यह बात वर्णित है, वह कविता घर की उसकी बंधनों में 'काशिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् पद्माकर की जप्पा साहब में शमन हो गई, और वे बीड़ा चले गए। बीड़ा में कर्तुमानंद ने उन्हीं अपनी कलकत्ता की लिखि कलाई और उन्हीं जप्पा कुछ कुछ बसाया। इनके पश्चात् पद्माकर दलिया हाथर में गए, और फिर वहाँ से सिवरी चले गए। सिवरी में ग्दालाब खुजाब जब राधोदा ने उनकी रचनाओं पर प्रतिक्रिया करते उन्हीं एक शीर्ष, एक हाथी, और एक सात बच्चा कुम्हार लाल प्रदान किया। वहाँ से पद्माकर लाल चले गए। कुछ दिनों तक लाल में रहने के पश्चात् बनपुर करीब ग्दालाब कलकत्ता के दरबार में चले गये। बनपुर में पद्माकर गदमपुर, और ग्दालाब के राज दरबारों में गये। कल में परलारी के एक दरबार में गए। किन्तु परलारी में पद्माकर का संगम न हुआ, जिससे उन्हीं कविता जाल्य श्लाघि हुई, और अपने घर चले गए। कहते हैं, कि इन दिनों

ही शब्द एही स्त्री जाइयो पर भी सम्बन्ध जाना गया है। 'एलिजाबेथ' सर्वम्बर विराज्य करि है।

रीति काव्य के अंगार में विरा प्रभुत्व कवियों ने प्राप्त किया है, उनके ऊपर उक्त पंक्तियों में प्रकाश डाला जा चुका है। यही वह प्रभुत्व कवि है, जिन्होंने रीति काव्य के निर्माण में योग दिया है। इनके कवित्वित्त्व रीति काव्य में और जो कवि हुए हैं, उनके सामे दृढ़ प्रकार है—वैनी, बंदर, कुलवति मिश्र, सुतोष मिश्र, रामनेहाथ, बीर, सुर्ग मिश्र, कर्णद, कृष्ण, रचित, भूषि, गोपीनिधि, लोचन, कुमारवति, संतुलाच, विरा कल्याण, स्व कवि, अधिनाथ, वैराज, दत्त पवन कवि, बाध, मनीष, चन्दन, देवकी मन्द, महापद्म रामवति, माय, पदोद्गा मन्दन, कान, गुणदीप, महेश्वर, ज्ञानेश्वर, और रचित गोविन्द हस्तादि। पर इन कवियों ने प्रायः उन्हीं मार्गों का अनुसरण किया है, जिनकी लकीर केशव, मिश्र, और देव हस्तादि कवियों के द्वारा खींची थी।

रौतिकास के प्रतिनिधि कवियों का जन्म उत्तर काश्मिर किंवा का तुमा है, पर इन कवियों के प्रतिनिधि रौतिकास में और भी कई ऐसे कवि हुए हैं, जिसकी रचना रौतिकास का जन्म रौतिकास में होने पर भी रौतिकास की परम्परा में स्पष्ट साक्षित नहीं होती। इन कवियों के साहित्य का अध्ययन करने में पता चलता है, कि उनका कोई निश्चित स्थान नहीं है। उन्होंने इन को आयरमक समझा, कथवा उनके द्वारा में जब जिस प्रकार की अनुकूलि का समझ हुआ, उन्होंने इस उसी प्रकार की रचना की। इसलिए हम इन कवियों के साहित्य को स्पष्ट साहित्य के नाम से सम्बोधित करने। रौतिकास के कवियों स्पष्ट साहित्य की कई भाषा में विभाजित किया जा सकता है। जैसे—कथात्मक प्रकाश, वर्णनात्मक प्रकाश, गीत या गीत शान सम्बन्धी रचनाएँ, और अनुभव रस की स्पष्ट रचनाएँ। रौतिकास के स्पष्ट साहित्य में कई कथात्मक प्रकाश साम्य मिलते हैं। कथात्मक प्रकाश साहित्यिक की परिभाषा और साथ साथ से नहीं का रही है। और साथ साथ और अधिक बात की रौतिकास रौतिकास के कुछ कवियों ने भी इस परिभाषा का प्रयोग किया है। इन कवियों में कालविह, उपविह, गुरु रौतिकासविह, लाल कवि, और अनुभवमहास इत्यादि का नाम विशेष रूप से दिया जा सकता है। इन कवियों के द्वारा जिस कथात्मक प्रकाश कालों की रचना हुई है, उनमें कुछ कालों का रस से सम्बन्ध की है, पर उनमें भी प्रकाशमयता का अनुकूल रस के विचार नहीं हो पाया है। कथः वह करने में किसी प्रकार का विशेष नहीं किया जा सकता, कि वे कथात्मक प्रकाश कालों होने हुए भी प्रकाश काल की कमीती पर नहीं उतरते। यथा यदि वह कहा जाय तो कोई अनुकूल न होगी, कि रौतिकास कथात्मक प्रकाश कालों की रस से अधिक सम्बन्ध है। जो कुछ प्रकाश किया गया है, हमने पूर्व रूप में समझा नहीं पाया हो नहीं है। इसका कारण केवल नहीं है, कि रौतिकास

की शक्ति परन्तु दोनों की रचना के निराला की। जहाँ भी लोग इस खर्च पर चले हैं, उन्हीं की समझता के अधिकारी होना पड़ा है।

दोस भाग के कुछ साहित्य में ऐसी भी रचनाएँ मिलती हैं, जिन्हें हम सर्वोप-
योग्य मान सकते हैं। जैसे—दान लीला, मानसीका, और हीली तथा भूतल
जहाँ हमारे। ऐसी रचनाओं के सम्बन्ध में सर्वोपयोगी की उपायता है। यहाँ की
मिल मिल भिन्न है। जैसे—जहाँ का सर्वोप, छोटे की साहित्यों का यहाँ, भिन्न
कल्पों का सर्वोप आदि। सर्वोपों के विषय के सम्बन्ध ही 'एक' की समझता
होई है। यही यही भूतल दृष्टिकोण होता है, जो यही यही और, और यहाँ की देखने
की विवक्षा है।

कुछ साहित्य के प्रयोगों में कुछ ऐसे भी मिले हुए हैं, जिनमें सौति विवक्षित
रचनाएँ की हैं। उन सभी में कुछ, भिन्न, यहाँ, और केवल हमारे का नाम
मिलता या बचता है। इनकी रचनाएँ सत्य, सत्य और अनुभूतिमय हैं। इनमें
सर्वोप रचनाओं में सौति काँची वाली पर समझता के नाम बचता जाता है।
इसकी रचनाएँ समझता हैं, और केवल के लिए अधिक उपयोगी हैं। पर
कविता और कला की दृष्टि के इनकी रचनाएँ बहुत दूर नहीं यही का सचरी।
जहाँ काय के क्षेत्र में यह केवल एक साहित्य की ही सीमा के भीतर रह
जाते हैं।

कुछ साहित्य के प्रयोगों में एक भी ऐसे कविता का भी है, जिनमें
हम और सौति सम्बन्धी रचनाएँ की हैं। इस सौति के कविता का नाम 'कविता
और कला' की ही बहुत कम दिखती पड़ता है। इनकी रचनाओं में कालों के
सर्वोप सम्बन्ध हुए हैं, पर उनका उद्देश्य काय के क्षेत्र में नहीं, परन्तु काय के
क्षेत्र में है। उन्हीं कालों के द्वारा काय की एक और केवल विवक्षित कालों की
प्रमाण दृष्टि बनाने का प्रयत्न किया है। 'एक', 'जहाँ', और हीली के क्षेत्र में भी
कुछ सत्य केवल इसी सीमा काय बचता है। उन्हीं कालों काय विवक्षित सम्बन्धी
सत्य और केवल विवक्षित कालों के विषय में केवल किया है, उनका उनका काय
काय और कला की ही नहीं दिखती पड़ता; कविता सत्य इसकी रचनाएँ
केवल 'एक मात्र' रह गई हैं। इस सौति के कविता में समझता और का नाम
विशेष रूप के लिए का बचता है। विवक्षित कविता के सौति और केवल विवक्षित रच-
नाएँ की हैं, उनको हीली काय नहीं है, जो सौति काय के कविता की भी। 'भूतल
सत्य' की कविता बनने वाले कविता में साहित्यिक भूतल सत्य की ही कुछ रचनाएँ
की हैं। सौति काय की कायता की सौति इन भूतली कविता में न ही सौति कालों
की रचना की, और न उन्हीं कालों, एकी, और नाम-साहित्यों के क्षेत्रों के
साहित्य काय की बचता। इसके निराला उन्हीं साहित्यिक विषयों पर ही कुछ
रचनाएँ की हैं। इनकी रचनाएँ कायता की ही उन्मुख न होकर कायों,
और अनुभूति की ही ही दृष्टिकोण बनती हैं। सत्य और हीली उनको नहीं है,

जो ऐति काल के प्रतिनिधि कवियों की है। इन कवियों में काननन्द का स्थान सर्व श्रेष्ठ है।

ऐति काल में कुछ साहित्य की रचना करने वाले कई कवि हुए हैं। उनमें से कुछ का यहाँ जल्दियन किया जा रहा है। इन जल्दियन के रचना की प्रगल्भता, कुछ काल्य और मौलिकता पर ध्यान रखना पड़ेगा। यहाँ ही साहित्य उनके द्वारा ऐसे हुए कवियों की संख्या की भी दृष्टि में रखा गया है।

समस्तसिद्ध श्रीराम इत्यादि के रचने वाले थे। इनके द्वारा पार कवियों की रचना हुई है—(१) महाभारत की कथा रोका और श्रीराम के, (२) बृहद् ब्रह्म का आचमन, (३) राम चरित, और (४) विष्णु। इनका महाभारत बहुत बड़ा काम है। इस 'महाभारत' के ही कारण इन्हीं कविों का नाम हुआ है। यद्यपि उसमें कवित्व की दृष्टि का जमाना है, पर उसका कथात्मक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। यहाँ यहाँ यहाँ और बहुत काल है।

कुन्द सोदुरात्मक मेरुका के निवासी थे। इनके तीन अन्य काम हैं—कुन्द कवच, कुमार शिखा, और पार कवित्व। कुन्द कवच में काल की दोहरे संकीर्ण है, जो योनि विषयक है। इनके लोकि विषयक दोहरे हिन्दी काल काल में कवित्व प्रतिष्ठा है। 'कुन्द शिखा' और 'पार कवित्व' एक निराला कालकी दुर्लभ है।

आलोक कवि के आलोक थे, पर ऐसा नामक एक वैदिक के नाम में आलोक की जाने के कारण कुछमान ही पड़े थे। इनके लोकि काल का पता नहीं लगता। इन्होंने तीन विषयक कुछ कवित्व की है। इनकी रचनाओं में योनि की और का बड़ी सुन्दरता के साथ निराला हुआ है। इनकी योनि और कुमार एक की कवित्वविषय बड़ी उत्कृष्टता की, और काल की दुर्लभ देने वाली है। इनकी रचनाओं में काल के साथ बहुत परिणाम के जाने जाने हैं।

गुप्तनीतिरिद्ध विष्णु के लोकि और साहित्यिक थे। इनका काम ब्रह्म, एतद् के हुआ था। इन्होंने कवचों के संकीर्ण की रक्षा, के अपने काल की उत्कर्ष पर किया। आलोक के आलोक संकीर्ण की रक्षा और काल का पता ही इनके जीवन का पता था। इन्होंने कई कवचों और साहित्यिक कवियों की भी रचना की है, इनके नाम एक प्रकार हैं—कुन्द कवच, कवचोक्ति, कवच कुमार, कवचोक्ति, और कवचोक्ति। इन्होंने काल साहित्यिक कवित्व के ही रचनाओं की है। इनकी रचनाओं कवि साहित्यिक और काल कवियों हैं। संवत् १०८३ इनके महाभारत का समय है।

काल कवि का पता नाम कोराला था। वे कुन्द के नाम के नाम नामक नाम के निवासी थे। इनके दो अन्य मित्र हैं—कुन्द कवच, और विष्णु कवच। इनका 'कुन्द कवच' नामक काल कवि कवि महत्वपूर्ण है। यद्यपि वह कवच ही है, पर उस कवच का नाम से ही इनके काल का मही मौलिक नामांक मिल जाता है।

मध्य पीलीखी, खैराखी खैली, कबलाख, हम्मर, मिहल मोकरा प्रसार, भवार खैली, मिहलनाथ प्रसार, चरम रण, और संकील गुरुनन्दन । यह समीपवर्तक थे । इनकी अधिकांश रचनाओं में राम के बहुत सख्तों की ही कथाएँ की गई हैं । इनकी रचनाएँ या तो कर्तव्यव्यव हैं, या उपदेश की ओर झुकती हैं । हिन्दी काव्य काल में यह प्रथम रचनाकार हैं, जिन्होंने बादलों की रचना की है ।

मल्लारीदास नाम के कई कवि हिन्दी में हो चुके हैं । पर यहाँ हम जिसका उल्लेख कर रहे हैं, वह कुम्ह यह जिला मल्लारन गावसिद्धिजी हैं । इनका जन्म संवत् १७५६ में हुआ था, और वह संवत्सिकाल में सुँद मोद कर बुँदावन का रहे थे । बुँदावन के प्रति इनके हृदय में प्राणित आकर्षण था । इन्होंने प्रायः ५२ पुस्तकों की रचना की है, जिसमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं—कुल्लत रत बाबुरी, मोकरा हाममल, पीली रैन बिलाल, भक्ति मल्लारिका, मिहल बिलाल, मोकिन्द कबरी, और नन नन प्रसंगा, हल्लारि । इनकी रचनाएँ कुम्ह भक्ति पर आधारित हैं । इनकी रचनाओं में कुम्ह भक्ति सम्प्रदायी नहीं माने हैं, जो इनके पूर्वजों कवियों की रचनाओं में मिलता है । कहीं-कहीं वे लीलावता की ओर भी आकर हल हैं । इनकी कौनों कौनों और प्राचीन काव्य के दृष्टिग्राह्य रंग की हैं । इन्होंने कवित्त, कवैर, लेला, और कवित्त हल्लादि रूपों में रचनाएँ की हैं ।

जीधराज गीह ब्राह्मण थे । इनके जिला का नाम बाबकुम्ह था । इनका एक अन्य मिलता है, जिसका नाम 'हम्मोर राखी' है । इनके महाप्राय पुत्रीप्राय के बंधन हम्मोर देव की ओरता पूर्ण जीवन सफलता का चिन्ता है । दीप्ति काल का यह अन्य रीति गाथा काल के चित्र की उपस्थिति करता है । और गाथा काल की हृदय रीति में इनकी रचना भी हुई है । और गाथा काल की रचनाओं की सीति ही यहाँ में प्रेमविविधता की गई जाती है । भाषा रीति में भी कहीं-कहीं 'कन्द' हल्लादि कवियों की भाषा का अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है ।

मिहिराद कवियज्ञ का जन्म संवत् १७५० के आस पास हुआ था । इनके जीवन हल्लत पर अभी तक कुछ की रचना नहीं यह कहा है । हिन्दी काव्य काल में इनकी दीप्ति सम्प्रदायी कुँदाकिरी अधिक प्रसिद्ध हैं । इनकी कुँदाकिरी में दीप्ति की व्यावहारिकता के लक्ष और सुन्दर चित्र लाल गाथा के पाद होते हैं । इनकी कुँदाकिरी की व्यावहारिकता की देव कर बात लेता है, कि वह जीवन व्यावहार साधन के चरित्रक थे ।

गुरुन मल्लार के जीने थे । यह मल्लार के कबीरकर कलकाल के प्रचार में रहते थे । इन्होंने गुरुनमल के जीवन पूर्ण चरित्र के आधार पर 'गुरुन चरित्र' नामक रीति काल की रचना की है । इनके काव्य में कवित्त कवियों का आचरण है, पर फिर भी उनमें सीमा है ।

मोटा रीति बिलालनाथ बाबुरी के चित्रापी थे । इनका जन्म १८०८ में हुआ था । इन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की है जिसके नाम इस प्रकार हैं—मिहल कवैर, और

इच्छावादी। 'विशुद्ध साहित्य के विवेक' की कमी का विषय है। 'इच्छावादी' में देवसुधर्मियों के झुग हैं, जो शृंगार रस से जीव प्रीत हैं।

आजुब का काम संभव १८८५ में वि० में हुआ था। सादर सलाहों के उत्तर में श्री। विद्यालोक के राजा ने इसका अधिक सम्मान किया था। उन्होंने साहित्यकार सुख सुन्द हो लिये हैं। इनकी रचनाओं में भाव, और सुन्दरी का सामान्यतः बड़ी सुन्दरता के साथ हुआ है। लोकोक्तिओं के अर्थों के द्वारा उन्होंने अपनी रचनाओं को समाश्रुती करने का अत्यन्त प्रयत्न किया है।

आजुबलाल का काम संभव १८८५ में किया अलेखुर में हुआ था। उन्होंने कई जगहों की रचना की है, जिसके नाम यह हैं—इमोरे बर, विवेक विद्याल, एलिक विनीर, सुन्दरी बाल, पुत्र राजाविद्या, राजविद्या, इमोरेविद्या विद्याल, सुन्दरान इत्यादि, और साधक अलेखि। यह और और शृंगार रस के अधि हैं। यह शृंगार की अलेखि उन्हें और रस में अधिक सम्मान प्राप्त हुई है। इसका इमोरे बर और रस का अर्थों द्वारा है। साथ और भाषा दोनों ही अर्थोंमें दोनों के इमोरे बर में और रस सुन्दरता के साथ अधिकतम हुआ है। यह उनकी शक्ति का कारण भी है।

श्रीमद्वाल्मीकि का काम संभव १८८५ में जारी में हुआ था। हिन्दी भाषा-कला में इसकी कान्तिमूर्ति अधिक अधिक है। उन्होंने अपनी कान्तिमूर्ति में जीवन के अन्तर्गत करने वाले कान्ति की बड़ी समझ के साथ सम्मान की है। इसकी रचनाई वास्तविक की अलेखि अधिकतर कान्ति का ही अन्तर्गत हुई है। यह भाषा-कला में इसका एक ही अर्थ है—वेदिक और सादरसुन्दर शक्ति का विषय काया। उन्होंने कई जगहों की रचना की है, जिसके नाम यह हैं—कान्तिमूर्ति कान्ति, सुन्दरान वाक, वेदिक विवेक, विद्यालाल और, और अन्तर्गत अलेखि।

श्रीमद्वाल्मीकि का साहित्य अपने नाम का ही अर्थोंमें है। 'श्रीमद्वाल्मीकि' में द्वारा देने की विषयों का रचनाई किया गया है, जो शृंगाररस की अर्थों करने में अन्तर्गत शक्ति का एक ही अर्थों में। श्रीमद्वाल्मीकि के अन्तर्गत शृंगाररस साहित्य का एक ही अर्थों में विद्यालाल पर अर्थों हैं—एक का सिद्धांतश्रीमद्वाल्मीकि में ही यह साहित्य अर्थों है, जिसे हम श्रीमद्वाल्मीकि का वास्तविक साहित्य पर अर्थों हैं, और दूसरे अर्थों में के अन्तर्गत जारी है, जिसकी अर्थों सुख या सुख साहित्य में भी जारी है। श्रीमद्वाल्मीकि के वास्तविक साहित्य में ही अर्थों की अर्थों की गई जारी है। एक प्रकार की अर्थों में है, जिसकी रचना नामक अर्थों के अर्थों, और अर्थों पर भी गई है, और दूसरी प्रकार की अर्थों में है, जिसकी रचना आचार्य का अर्थों करने के लिए भी गई है। इन दोनों ही अर्थों की अर्थों में शृंगाररस अर्थों की अर्थों है। अधिकतर रचनाओं के विषय नामक, अर्थों, अर्थों, इन नाम, और अर्थों द्वारा है। श्रीमद्वाल्मीकि का अन्तर्गत साहित्य इनकी विषयों की अर्थों अर्थों हुआ है। श्रीमद्वाल्मीकि के अन्तर्गत अर्थों की अर्थ नामक-वास्तविकता का ही अर्थों की गई है। उन्होंने अर्थों

नामिकाओं के जेदी, उनके कटाखी, और हाथ-पाँवों की देखने तक समझने में ही अपनी काम प्रविष्टा की उपयोगिता सिद्ध की है। साधारण मनुष्य की ही कोई बात ही हो नहीं, स्वयं राधाकृष्ण को भी ऐति काल में साधारण मानक अधिक के रूप में चिन्तित किया गया है। ऐति काल के कविओं का मान एक मात्र वास्तविक और ही हो ही था। उनके यह सिद्धा दली बढ़ी हुई है, कि वे राधाकृष्ण में ही वास्तविक और ही का दर्शन करते हैं, और इसी दृष्टिकोण से उनका चरित्रोक्त की करते हैं। यह करने में कोई गड़बड़ नहीं, कि ऐति काल के कविओं का जो लक्ष्य रहा है, उसके मानक, समान, और देश के कल्याण का कोई लक्ष्य नहीं है; पर उनके साथ ही साथ वह भी कहा ही जा सकता है, कि काल के एक मुख्य लक्ष्य-मानक, और उनके कविों की दृष्टि ऐति काल के कविओं द्वारा इतराणीय दृष्ट में हुई है।

हृदये की काव्यविशेष, मिले चुकके या बहुत काव्यिक कहें हैं, इनके नाम के ही अनुपम हैं। इस काव्यिक के अंतर्गत जो रचनाएँ आती हैं, इनके कवियों का कोई सकल और कम नहीं है। ऐतिहासिक परंपरा में होते हुए भी उन्होंने विविध विषयों पर काव्यशक्ति की है। उनको बहुत 'सामकालिक' की ओर न होकर साधु-साधु की ओर आकर्षित किया है। ऐतिहासिक कवियों की भाँति इन कवियों ने सामाजिक को असाधित करने का भी प्रयत्न नहीं किया है। इन कवियों के द्वारा अंतर और और-दोनों ही पक्षों में रचनाएँ हुई हैं। किसी किसी ने असाधित काल प्रयोगों की भी रचना की है।

‘रौति बाज’ रौति का पुन है। रौति रंगीनी रचयत्री की कविता के कारण ही इसका यह नाम पड़ा है। ‘रौति बाज’ का मूल्य कादियन ‘अंसार’ रह है कीर्ति-प्रीति है। कला यदि यह कहा जाय, कि रौति बाज का मुख्य रस ‘अंसार रस’ है, तो उचित ही होगा। ‘अंसार रस’ के साहित्यिक राज्य, वीर, रीति, और रोमाञ्च इत्यादि रसों की भी अवलम्बिता रौति बाज में हुई है। अथवा की रचयत्री में और, और रीति की स्पष्टता सामाजिकता के साथ हुई है। किसी-किसी की रचनाओं में राज्य और रोमाञ्च रस का भी संघर्ष देखने को मिलता है। रौति बाज के सभी कवियों की एक ही माता, और एक ही शैली है। रौति बाज में प्रारम्भ से लेकर अंत तक समानता का ही चमक दिखाई देता है। कवि समस्य के भिन्न-भिन्न मूल्य मिलते हैं, पर माता अपने बच्चे में एक ही है—और वह है समानता। रौति बाज में समानता अपने विकास की अंतिम सीढ़ियों पर दिखाई देती है। पर इसी बाज में वह समानता-सादियों मन पर पड़ने की ओर की झुलसी हुई जान पड़ती है। रौति बाज के अंतिम चरण में तो समानता का चमक स्पष्ट रूप से रसिकी-पर होने लगता है। माता की रौति रौति बाज के कवियों की शैली भी एक ही है। सभी कवियों ने कविता, संविष्ट, और दोहों में रचनाएँ की हैं। किसी-किसी ने कृष्ण और कुंडलिका आदि कुरी का भी प्रयोग किया है।

रीति काल के कवियों की दृष्टि मुख्य रूप से चमत्कारवाद की ओर ही रही है। रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों ने अपनी रचनाओं में चमत्कार उत्पन्न करने, और अपने आचार्यत्व को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। अतः रीति काल की रचनाओं में 'रीति' और काव्य के अंगों का विवेचन अधिक मिलता है। चमत्कार की ओर दृष्टि अधिक होने के कारण रीति काल के संपूर्ण कवि अलंकारिकता की ओर अधिक प्रवृत्त दिखाई देते हैं। रीति काल की अधिकांश रचनाएँ अलंकारिता की दृष्टि से की गई हैं। किसी-किसी की रचना तो अलंकारों का दृष्टांत-मात्र है। यों तो रीति काल में सैकड़ों अलंकारों के दृष्टांत मिलते हैं, पर उनमें उपमा, श्लेष, अपह्नुति, प्रतीप, और रूपक इत्यादि अलंकारों के दृष्टांत सर्वाधिक मिलते हैं। प्रायः सभी कवियों ने अपनी रचनाओं में, इन अलंकारों के द्वारा अलंकारिकता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक काल—पद्य

आधुनिक काल संवत् १६०० से आरम्भ होता है। जिस प्रकार कीर गाथा काल में युग की विशेषताएँ समझी हैं, जिस पर यदि काल की रचनाओं पर युग की साम्प्रदायिक है, और जिस प्रकार रीति काल अपने युग का प्रतिनिध है, स्थिति—एक उसी प्रकार आधुनिक काल का निर्माण और उसका विकास सूक्ष्म प्रकाश की युग की भावनाओं के ही आधार पर हुआ है। आधुनिक काल की रचनाओं और उनके कवियों पर विचार करने के पूर्व हमें उस युग की एक कल्पना देना होगी चाहिए, जिसके कारण आधुनिक काल की सृष्टि हुई है। साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल संवत् १६०० से आरम्भ होता है। आधुनिक काल के पूर्व रीति काल था। रीति काल में, देश में कुगलों का शासन था। कुगलों की विलासिता की छाया में, संसार देश अपने अस्तित्व को भूल कर वासना के पंख में उड़ रहा था। वासना की आँधी सभी राज्यों देश को जबरन बना रही थी। स्वयं कुगल शासन की दीवारों की वासना की आँधी से हिलती जा रही थी। कुगल शासन के दिनों में ही खैरगरेजों ने अश्विक के रूप में भारत में प्रवेश किया। पहले तो खैरगरेजों का कार्य क्षेत्र बाधित एक ही सीमित था; पर कुगल शासकों की निर्बलता, और विलास निद्रा से उन्होंने अनुचित लाभ उठाया; परिणामस्वरूप खैरगरेज व्यापारी शासन के कदों में हस्तक्षेप करने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने अपनी सेनाएँ भी बना ली; और फिर एक रूप से वे राजनीतिक रंग मञ्च पर आ गए। धीरे-धीरे उन्होंने देश के भू-भागों पर अपना आधिकार्य स्थापित कर लिया। हजर वर्षों-वर्षों कुगल शासन कमजोर होने लगा, सभी-सी खैरगरेज अपने पैरों को सुदृढ़ करने लगे। एक दिन वह आया, जब कुगल शासन की दीवार चट्ट हो गई; और देश में चारों ओर खाली का शासन स्थापित हो गया।

पर देश के भीतर मुसलमानों के शासन के दिनों में ही स्थायीकृत प्राप्त करने, या अपने देश को अपने हाथ में रखने की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। महाराष्ट्र प्रताप, और महाराज शिवाजी इसके प्रतीक थे। हजर कुगलों के शासन के पश्चात् जब खैरगरेज का राज्य स्थापित हुआ, तो देश की रंगों में युग-वायु की आँधी उड़ पड़ी, और परिणामस्वरूप सन् १६५७ में बिद्रोह की आग फैल उठी। देश में एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक प्रताप की ज्वाला जल पड़ी। पर युग देश की भावना

सहर्षे उत्पन्न कर रहे थे। ऐसा करने वाले एक ऐसी केदना का अनुभव करने तथा था, जिसे हम राष्ट्रीय केदना कह सकते हैं। वह राष्ट्रीय केदना सर्व प्रथम भारतेन्दु की की रचनाओं में ही स्पष्ट हुई है। वह बात स्पष्ट है, कि राक्षसीय रंग माया पर इतना अनुभव बहुत बढ़ते ही हो चुका था, पर माया काल में इसकी सर्व प्रथम स्थापना भारतेन्दुजी के ही द्वारा हुई है। यही कारण है, कि भारतेन्दुजी आधुनिक कविता के जनक कहें जायेंगे।

आधुनिक कविता के साथ ही सही बोली का इतिहास भी संबद्ध है। क्योंकि आधुनिक कविता की रचना सही बोली में ही हुई है। जिस प्रकार भारतेन्दु बाबू ने सही बोली काय-काल में नवीन भाषा की स्थापना की, उसी प्रकार का इतिहास साथ के क्षेत्र में भी उन्होंने उस भाषा की उत्पत्ति दी, जिसे सही बोली कहते हैं। यद्यपि उन्होंने सर्व की कविताएँ की, उनमें उन्होंने इत्यन्त की ही स्थान दिया है, पर पद्य के क्षेत्र में सही बोली का प्रयोग करके एक प्रकार से उन्होंने इत्यन्त की उत्पत्ति के मार्ग की खोज कर दिया। इत्यन्त का रूप दुन के साथ बल भी नहीं समझी थी। क्योंकि जब ही दुन सामने था, उसे गद्य की आवश्यकता थी। राक्षसीय सुनिर्धार दिनों दिन सामने आते ही जा रही थी। विज्ञान का इत्यन्त की जीवन पर बड़ा प्रभाव था। जीवरेकी साक्ष्य, और कलाकार सभी में भी दुन की गद्य की शक्ति की अधिक बढ़ा दिया था; दूसरे सभी में वह कहा जा सकता है, कि जीवन अपने विविध क्षेत्रों में अधिक सक्रिय और कार्यरत हो उठा था। अति शक्ति के साथ सह रहे थे, अनुभूतियों के फिर सामने आ रहे थे। इत्यन्त में शक्ति नहीं थी, कि वह गद्य के रूप में एक विविध भाषा, और अनुभूतियों की गद्य का प्रकाश। उसका वैज्ञानिक गठन कुछ इस प्रकार का है, कि अपने गद्य रचना कालका पूर्वक सही की जा सकती। यही कारण है कि यहाँ उसमें पद्य इतना अधिक स्थान रहा है, यहाँ गद्य गद्य के लिए भी नहीं है। 'इत्यन्त' की इस अनुभूतियों की दृष्टि से रक्त करके ही भारतेन्दु बाबू ने गद्य के लिए उस सही बोली की खोज, जिसका रूप बहुत बढ़ते ही हुआ था, और जिसमें गद्य तथा पद्य की रचना भी हो चुकी थी। भारतेन्दु बाबू भाषा विज्ञान के लक्ष्ये बनने के। उन्होंने मिल सही बोली की करने गद्य में स्थान दिया, वह कुछ ही दिनों में 'पद्य' की भाषा बन गई। साथ सही बोली ही गद्य और पद्य-दोनों ही क्षेत्रों की मुख्य भाषा है। साथ गद्य और पद्य के क्षेत्र में उसकी जो सर्व स्थायी उत्पत्ति हो रही है, उसे देख कर वह कहना ही सकता है, कि भारतेन्दु बाबू सही बोली की एक बहुत शक्ति को उसी समय भी गद्य में, जब उन्होंने उसकी उत्पत्ति तकड़ी की।

सही बोली अपने अधिकार में भारतेन्दु बाबू के बहुत पहले ही जा चुकी थी। सही बोली का मुख्य क्षेत्र केन्द्र है। साक्ष्य में प्रवेश करने के पूर्व वह केन्द्र, और उसके स्वीकृत स्थानों में बोली जाती थी। एक भाषा के रूप में उत्पन्न कोई स्थान न था। वह एक बोली भाषा थी, और उसका क्षेत्र बहुत ही सीमित था।

किन्तु जब दिल्ली में कस्बों का राज्य स्थापित हुआ, जो सबसे पहले कहीं बोलो कस्बे घोंव से बाहर निकली। उसने सर्व प्रथम किंग्डम पर अपना आधिपत्य स्थापित किया, वह दिल्ली की। कहीं बोलो ने दिल्ली में पहुँच कर घोंव ही प्रथम शासकों के राज्य पर अपना आधिपत्य बना लिया। अतः और भारत से जो अन्य वैदिक दिल्ली के राज्य थे, उन्हें इस देश के निवासियों के कानूनन कस्बे में अधिभार होनी थी। अतः उन्होंने अपनी सुविधा के लिए जगदी, जगदी, और कहीं बोलो को महाप्रता के लिये हिन्दी की कहते थे, एक नई भाषा को बना दिया। इस नई भाषा में कहीं, कहीं, और हिन्दी नाम मिलित हैं। भाषा की उर्ध्व भाषा बड़ी मिलित भाषा है, जिसका हिन्दी कहीं बोलो के नाम हुआ है। पहले वह कानूनी, और वैदिकों के बीच में बोलो कहीं थी। धीरे-धीरे उसने एक सुव्यवस्थित भाषा का स्वरूप प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार कहीं बोलो ने एक दूसरा स्वरूप भी प्राप्त किया। वह स्वयं उस पहले स्वरूप के भिन्न था। उसने वहाँ कहीं और जगदी के नाम मिले हुए थे, इसने संस्कृत के शासन कर्मों के योग से अपने स्वरूप का निर्माण किया। कहीं बोलो का वह दूसरा स्वरूप हिन्दी के नाम से प्रसिद्ध है। अतः हमें ऐतिहासिक कारणों से कहीं बोलो ने एक तीसरा स्वरूप प्राप्त किया। जिसे 'हिन्दुस्तानी' कहते हैं। इस प्रकार भाषा कहीं बोलो के तीन रूप बने बने हैं—हिन्दी, उर्ध्व, और हिन्दुस्तानी। हिन्दी और उर्ध्व में वैदिक का राज्य अपनी प्रगति पर है। 'हिन्दुस्तानी' केवल नाम के लिए है। व. उल्ला कोई स्वरूप निर्दिष्ट है, और व. भाषा वह उसमें साहित्य का ही निर्माण हो गया है।

जो दो कहीं बोलो अपने घोंव में अन्य से ही साहित्य में थी, पर साहित्य घोंव में सर्व प्रथम अस्वर के स्वरूप काल में उल्ला प्रयोग मिलता है। अतः हमें वास्तव काल में 'वर्ग' नामक बलि हो चुका है। 'वर्ग' ने 'वर्ग' नामक नाम की महिमा की रचना की थी। 'कहीं बोलो' का वह पहला स्वरूप है, जो आज होता है। इसके पश्चात् दूसरी रचना 'कोर' नामक की बना मिलती है, जो 'वर्ग' की मिलती हुई है, और वर्ष १५८० में मिली गई थी। इसके पश्चात् दूसरी कदाचित्त ने 'हुसनाम', दूसरा काला की ने राजा केनकी की कहानी, कस्तुराकाली ने 'वर्ग' व. भाषा, और हुसनाम नाम ने नालिकेलोकावली की रचना की। इस प्रकार कहीं बोलो के स्वरूप का अन्तः समझेनु नाम्क एक पहुँचा। आगेनु नाम्क ने कहीं साहित्य के नाम कहीं बोलो के अन्तः का निर्माण किया, और उसके पीछे दिल्ली हुई 'अर्ध' नामक को देश का उन्होंने उसे केवल बनाया। उन्होंने कहीं बोलो की उर्ध्व करने उसने स्वयं को निर्दिष्ट किया। उसे अन्तःकाली, और विभिन्न के सुव्यवस्थित करते सुव्यवस्थित रूप में अपना के नामों उपस्थित किया। साथ ही उन्होंने विभिन्न प्रकार की रचनाएँ कहीं उसकी कलाएँ बलि की प्रेरणा की।

साहित्यिक काल की कविता की भाषा कहीं बोलो है। 'कहीं बोलो' ने अन्तः

विश्व-वन्द्य-साहित्य की रचना हो रही है, उसके निरास्य क्षेत्र में हिन्दी भाषा की साधुनिक कविता कवियों में प्रगट हुआ, और हो रहा है। यतः हिन्दी के तीन वर्ग कविता के साधुनिक इतिहास पर यही मान्यता से इतिहास होना होगा। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में साधुनिक हिन्दी कविता के विद्यमान रूप की स्तुति की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया है—प्रथम उपादान, द्वितीय उपादान, और तृतीय उपादान। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किना हुआ यह विभाजन अधिक सुविधाजनक और वैज्ञानिक प्रतीत होता है। इतिहास हम को यहाँ इसी विभाजन के अन्तर्गत ही साधुनिक हिन्दी कविता पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। आचार्य शुक्लजी के मतानुसार ही प्रथम उपादान वर्ष १८९५ से प्रारम्भ होकर वर्ष १९४० तक चलता है। इस प्रथम उपादान के पद्य-साहित्य का जिन कवियों के द्वारा निर्माण हुआ है, उनमें मण्डोदर झाँझपाड़ा, प्रभु नाथपाण्डे, जिन, इन्द्रिकादास श्याम, रामाङ्गनाथदास, और यही रामचन्द्र जीभरी इत्यादि का नाम मुख्य है। द्वितीय उपादान वर्ष १९४० से प्रारम्भ होता है, और वर्ष १९५५ तक चलता है। द्वितीय उपादान के कविता-साहित्य का अधिकांश करने वालों में पं० श्रीधर पाठक, पं० माधुसूदनदास द्विवेदी, पं० कवीरामसिंह उपपाध्याय, श्री दीक्षितदास गुप्त, पं० रामचन्द्र उपाध्याय, और पं० श्रीधर दास पाण्डेय इत्यादि का नाम मुख्य है। इस द्वितीय उपादान में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं, जिनमें द्वितीय उपादान की शुरुआत और उसके प्रभाव के प्रत्यक्ष वह कर रचनाएँ की हैं। इन कवियों में उपरेवीरदास वृष, माधुराम दाहरा रानी, गंगादास शुक्ल 'कनेहरी', कल्याणदास कविराज, लाला कमलानन्द, और पं० रामचन्द्र विद्याही इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। तृतीय उपादान वर्ष १९५५ से प्रारम्भ होता है। इस तृतीय उपादान में हिन्दी पद्य-साहित्य की बहुमुखी प्रगति हुई है। श्री कल्याणदास दास, निराला, पद्म, और जीमती महादेवी वर्मा इत्यादि कवियों ने मिल कर इस तीसरे उपादान के पद्य-साहित्य की प्रगति की और प्रवर्धन किया है। इस तृतीय उपादान में ही हिन्दी भाषा काल में की 'बड़ी' की दृष्टि हुई है, जिसमें कल्याणदास, रामदास, इन्द्रिकादास, और कवीरामदास इत्यादि मुख्य हैं।

साधुनिक कविता के प्रथम उपादान के पद्य-साहित्य पर प्रकाश डालने के पूर्व ऐतिहासिक दृष्टि से कल्याणदास-कवीराम पर भी दृष्टि डाल लेना आवश्यक ही साधुनिक कविता— होता। क्योंकि इतिहास की सम-शृङ्खला को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक का प्रतीत होता है। पहले यह कहा जा चुका है, कि नई पीढ़ियों के उदय, और सही सेहो के विकास के कारण ऐतिहासिक कविता का एक प्रकार के काल-का हो गया। पर हमने ऊपर ही, कि सही सेहो का काम, और उसके विकास होने के पश्चात् भी कुछ दिनों तक ऐतिहासिक कविता की दीर्घ विविधता का। एक और सही सेहो

उन्हे: यही बोली जन्म लेकर विद्यार-क्षेत्र की और प्रथम हो रही थी, यहाँ कुछ ऐसे ही कवि, और रचनाकार थे, जो ऐतिहास की गुरु भाव लेनी भी उनकी में जीवन समर्पित करने का प्रयत्न प्रयास का कर रहे थे। इन कवियों में कदाचित् सुभाष-सिंह, ललित विद्योती, राम लक्ष्मणसिंह, और कानूराज दलवि का नाम मुख्य है। इन कवियों ने ऐतिहास लेनी पर विविध प्रकार की रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं को बाद की में विमल किताब का उल्लेख है—संस्कृत, ऐतिहासिक, साहित्यिक, और वाचक 'पुष्प'। इनकी लेनी यही है, जो ऐतिहास के कवियों की थी। प्रायः सभी कवियों ने कविता, लीला, और दोहों में ही रचनाएँ की हैं। इसी कारण से कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं, जिन्होंने अनेक पृथिवी की रचना में ही अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

इन कवियों का समय प्रायः प्रथम-द्वितीय शताब्दी तक रहा है। इनके प्रभाव ही हिंदी कविता का वह काल प्रारम्भ हो जाता है, जिसे हम प्रथम उपाय कहते हैं। प्रथम उपाय में किताब पुष्प साहित्य का निर्माण हुआ है, उसकी प्रतीक्षा हम दो इतिहासों से करते—विषय की दृष्टि से, और विधान की दृष्टि से। प्रथम उपाय की कविताओं में विषय देश, और समाज के संरक्षक रखते पाते हैं। उनके कवियों में कविप्रकार ऐसे ही विषय हैं, जो देश, लोक, समाज से संरक्षक रखते पाते हैं। इन रचनाओं में यहाँ देश, और समाज, लोक और मानु मानव के प्रति वेम प्रदर्शित किया गया है, यहाँ कल्याण और अत्याचार के प्रति गुस्सा का भाव भी है। इन रचनाओं में ऐसे ही कवियों को भी स्थान दिया गया है, जिन्होंने लोक का कल्याण करने के साथ ही साथ कल्याणियों, और अत्याचारियों का दमन किया है। इन रचनाओं में ऐसे ही कवि और कवियों पर अल्प और अल्प ही किया गया है, जो कल्याण, और समाज निर्माण में वाचक सिद्ध होते हैं। जैसे सुभाषदी रीति, नर देश के दुःख, मान के दुःख देश गुरु, और पुरानी लोभ के कर्षण इत्यादि। इस प्रकार प्रथम उपाय की रचनाओं के विषय ऐसे हैं, जिनमें नई भावना, और नई प्रेरणा है। इन कवियों पर जो रचनाएँ की गई हैं, यद्यपि उनमें समीक्षा नहीं है, पर उनकी हिंदी कविता के बदलते हुए युग पर मनी प्रति प्रभाव पड़ता है। साथ-साथ ही दृष्टि से पहले ही इन रचनाओं का महत्व न हो, पर उनका हमने कहा महत्व यह है, कि उनके द्वारा हिंदी कविता के लीला युग के यहाँ का उद्-भावन होता है। साथ-साथ ही दृष्टि से महत्व पूर्ण न होने पर भी वह रचनाएँ अपने हुए परिधान करती हन्ती के कारण हिन्दी भाषा कला के इतिहास में बड़ा स्थान प्राप्तियों में सिद्धा करती हैं।

इस प्रथम उपाय में यहाँ कविता के विषय में परिधान हुआ, यहाँ विधान की लेनी भी बदली। ऐतिहास की कविता का अन्वयन करने से पता चलता है, कि ऐतिहास के कवियों ने प्रायः एक ही लेनी में कविता की है। ऐतिहास के सभी कवियों ने प्रायः मुख्य भावों की रचना की है। किसी-किसी ने अल्प मात्रा

है। सर्व प्रथम उन्होंने ही हिन्दी साहित्य का परिचय सर्व साधारण के सुनें, और सुनें से बताया। इसका ही गढ़ी, सर्व प्रथम उन्होंने की रचनाओं से राष्ट्र की विभक्त भावना संकुल हुई है। जिसे राष्ट्र सेवा, और राष्ट्रता की वेदना बढ़ते हैं, सर्व प्रथम उन्होंने की रचनाओं में उलझ दृष्टि देखा है। जबकी 'भारत दुर्दशा', और 'भारत सेवा' इत्यादि रचनाओं में तुलना की वेदना का चित्रण करके उन्होंने प्रकृत राष्ट्र की अवस्था का उल्लेखपूर्ण प्रकाश किया है; साथ ही कविनी और रचनाकारों के समस्त एक गहन ज्ञातरी भी उभरित किया है।

आलेखु हरिश्चन्द्र के समय से ही हिन्दी का कवि साहित्यिक कवि के रूप में स्थापित होता है। इनके पूर्व यह पाठकों की कृपा का विचारों का, और उनकी कला ज्ञाने सामान्यताओं का समीक्षा करने में अपनी कार्यकला समझती थी; दूसरी हमरी में उनका लक्ष्य केवल साहित्यिक और साहित्यिक थी। आलेखु हरिश्चन्द्र की ने हिन्दी के कवि के इस मोड़ कात की दूर किया, और उनके लिए उनके साहित्यिक मार्ग का निर्देश किया। उन्होंने उनके समस्त उनका साधन, और उनका कर्तव्य उपस्थित किया। उन्होंने उनके योग्य एक नया साहित्य, और एक नई योजना भी उनका की। उन्होंने कविता से स्थापित उन प्रकाश पर तुलनाप्राप्त किया, जिसके द्वारा कवि कलाओं के द्वारा में रहता था, और उनका तुलनाप्राप्त करके अपना वेद प्राप्त था। उन्होंने इनकी भी योग्य करके योजनाओं की कार्य किया। उनकी ने उन-ने के परिधान प्रकाश काय साहित्यिक मोड़ों विभिन्न रूप में देखने की विचारों है।

आलेखु हरिश्चन्द्रों की कार्य-समय बहुत है। वे एक कलाकार- कवि, और कलाकार कवि थे। उनके महान् साहित्य में कई प्रकार की विचार साधन समाहित थी। उनका साहित्य एक सेवा केन्द्र था, जिसमें विभिन्न प्रकार की विचार साधन साधन समाहित हो गई थी। उनकी का यह परिधान है, कि उन्होंने कई स्त्री में कार्य की कार्यता की है। उनकी कार्य प्रविष्टा इसकी प्रकाश, और उद्भव की, कि उनके द्वारा प्रकृत रचनाएँ दूर-दूर सेकी एक विकारी हुई है। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में अपनी कार्य-प्रतिभा का प्रकाश प्रविष्टित किया है, और देशभक्त के क्षेत्र में की। उन्होंने साहित्य और सेवा के क्षेत्र में की अपनी कला की सेवा है, और प्रकृति के क्षेत्र में की। उन्होंने देश सेवा के क्षेत्र में की अपनी कार्य-प्रतिभा संकुल की है, और साहित्य साधनाओं के क्षेत्र में की; उत्तरार्ध यह, कि उनकी कार्य कला की कई प्रकार है। उनकी कार्य-साधनाओं की इस गढ़ी बार कर्तों में विभक्त करके उन पर संकाश करने की सेवा करेंगे—(१) कवि और साहित्य साधना, (२) प्रकृति साधना, (३) साहित्य साधना, और (४) जीवन विचार साधना।

आलेखु हरिश्चन्द्रों का कार्य महान् संघर्ष से था। वे प्रति मांगी थे। प्रति मार्ग की प्रति से ही उन्होंने 'साहित्य' का चित्रण किया है, और उनकी साहित्य-साधना तथा विविधताओं की संकुल एक करके ही उनकी भाँखी उभारी है। उनकी

मार्क्स समाजवादी रचनाएँ ही प्रकार की हैं। एक जो है, जिसमें बुद्धि मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है, और दूसरी है, जो सांस्कृतिक संकीर्णता के क्षेत्र में लिखी गई, मानव-दृष्टि की भक्ति के बहुत से संकीर्ण हैं। उनकी दूसरी रचना की मार्क्स रचनाएँ नहीं बहुत और एक है। उनमें दूरत की सांस्कृतिक और सांस्कृतिक का क्षेत्र है। यह बुद्धि के क्षेत्रों के परंपरा, व्यक्ति-आत्म में उनकी वैसी अनुभूति और साक्षात्कारी है। उनका नहीं वह कहा है। उनका अधिक सात्विक गति का क्षेत्र है। उन्होंने भक्ति, विचार, देश, लोक, समाज, राज्य, कार्य, और बहुत साक्षात्कारी क्षेत्रों की साक्षात्कारी कर अपनी भक्ति की साक्षात्कारी हैं।

मार्क्सबुद्धि की दूसरी वर्ग की रचनाएँ बहुतों के संबंध रखती हैं। मार्क्सबुद्धि का क्षेत्र के विचारों के। का क्षेत्र का क्षेत्र ही उन्हें अधिक विचार का। बहुतों उन्होंने बहुतों के विचारों का क्षेत्र विचार है, पर इस क्षेत्र में उन्हें अधिक साक्षात्कारी नहीं हुई है। उनके साक्षात्कारी-विचार के साक्षात्कारी का क्षेत्र बहुतों उनमें नहीं है। साक्षात्कारी के क्षेत्र मानव-व्यक्ति के ही विचारों के। उनके क्षेत्र, और बहुतों के क्षेत्र में बहुतों की साक्षात्कारी का क्षेत्र, किन्तु मानव-व्यक्ति का अधिक विचार हुआ है।

उनकी साक्षात्कारी वर्ग की रचनाएँ हैं, जिसका संबंध साक्षात्कारी के है। उन्होंने अपने साक्षात्कारी के क्षेत्र में विचार और विचार का विचार साक्षात्कारी के साथ किया है। उनका विशेष विचार बहुत ही साक्षात्कारी, और साक्षात्कारी है। उनमें दूरत की विचार देने का क्षेत्र साक्षात्कारी, और साक्षात्कारी की विचार देने का क्षेत्र साक्षात्कारी है। विचार की विचार में साक्षात्कारी हुआ उनका क्षेत्र साक्षात्कारी और साक्षात्कारी है। उन्होंने अपने क्षेत्र, विचार, और साक्षात्कारी के क्षेत्र के विचार में साक्षात्कारी साक्षात्कारी साक्षात्कारी है। उनका क्षेत्र और विचार अधिक विचार तथा साक्षात्कारी है। साक्षात्कारी, और साक्षात्कारी साक्षात्कारी होने पर ही उनमें गति साक्षात्कारी साक्षात्कारी की ही साक्षात्कारी नहीं है।

उनकी साक्षात्कारी वर्ग की रचनाओं में साक्षात्कारी द्वारा और देश क्षेत्र की साक्षात्कारी है। सर्व प्रथम उन्होंने ही साक्षात्कारी के साक्षात्कारी साक्षात्कारी क्षेत्र की साक्षात्कारी विचार, की साक्षात्कारी की साक्षात्कारी नहीं साक्षात्कारी है। साक्षात्कारी के क्षेत्र में सर्व प्रथम उन्होंने ही इस विचार का साक्षात्कारी की साक्षात्कारी साक्षात्कारी, की साक्षात्कारी की साक्षात्कारी के साक्षात्कारी विचारों की। उनकी 'साक्षात्कारी' इस साक्षात्कारी की हिन्दी में प्रथम रचना है। साक्षात्कारी विचार साक्षात्कारी की उन्होंने की है। उनकी इस प्रकार की रचनाएँ साक्षात्कारी की है, पर उनमें साक्षात्कारी की साक्षात्कारी है, और नहीं उनकी साक्षात्कारी है।

मार्क्सबुद्धि साक्षात्कारी की पूर्व भाषा का कोई निर्दिष्ट साक्षात्कारी न था। साक्षात्कारी की भाषा नहीं, पर साक्षात्कारी की भाषा का कोई साक्षात्कारी साक्षात्कारी न था साक्षात्कारी था। उनके पूर्व साक्षात्कारी के क्षेत्र में साक्षात्कारी की साक्षात्कारी, साक्षात्कारी की भाषा नहीं थी, जिसमें साक्षात्कारी और साक्षात्कारी की रचनाएँ थीं। यह भाषा बहुत ही निर्दिष्ट और साक्षात्कारी की, दूसरी भाषा साक्षात्कारी साक्षात्कारी साक्षात्कारी, हिन्द की की,

की रचनाएँ की, जिन्हें हम इतिहासकार भी कह सकते हैं। यद्यपि उनकी रचनाओं में 'ज्योत्स्ना' और 'हृदय रत्न' का ही विशेष हुआ है, और वे बिहारी मैदान में ही अपने भाषी का व्यापार लगाती हैं, पर हमने धोरे नज़र, कि विद्या और जीवन का चरित्र से वे भारोन्मुखी की रचनाओं के जाने बढ़ी हैं। उनकी रचनाओं के विषय हैं, देश की दशा, कुदृष्टा, मोरछा, शिक्षा और जीवन आदि। उन्होंने 'हर गंगा', 'हृदयज्योत्स्ना' और 'कुदृष्टा' आदि ऐसी रचनाएँ की हैं, जिसमें विरोध, और हृदय तथा मनोरंजन की अच्छी मिलाव दिखाई देती है।

राजीवराजराज चौधरी की रचनाओं में राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के चित्र हैं। हमारा भी समझ उनकी रचनाएँ राजनीतिक परिस्थितियों से अधिक प्रभावित जान सकते हैं। उन्होंने कालों की भी रचना की है, जिसमें देश की दशा, और राजनीतिक परिस्थितियों के चित्र हैं। 'मारुत बीमार्थ' हृदय कांत है।

डाक्टर जगजीवनसिंह का जगदी भारोन्मुख पारम्परिक दृष्टिकोण होता है। उन्होंने भारोन्मुख काल में काम से करके भी उन विषयों का अनुकरण नहीं किया, जिसका विरोध भारोन्मुख बाबू कर चुके थे। उन्होंने जीवन विषयों की और राजनीति न हो कर प्राचीन भारतीय जीवन विषयों के प्रकीर्ण-नीचों की हिन्दी काल में उपस्थित करने का प्रयत्न किया। उनके इस प्रयत्न में उत्तराष्ट्र और अनुष्ठान का भी योग है।

पं० कविता दत्त व्यास ने भी नए विषयों पर कुछ रचनाएँ की हैं, पर उनकी रचनाएँ सामान्य और हैं।

काल क्षेत्र में कुछ और भी बहुत कम में एवं प्रथम लोगों को ही। का विचार भारोन्मुख बाबू की ही रचनाओं में मिलता है। वे देश के क्षेत्र में ही लड़ी लड़ी की न्याय हिन्दी कविता केवल और नहीं रह गए, उन्होंने कविता के क्षेत्र में भी लड़ी लड़ी का प्रयोग किया। भारोन्मुख बाबू के कथोपनिषद् में कविता का नाम मुख्य था, लड़ी लड़ी की उपाय में देखा दिया। भारोन्मुख बाबू की मनु के अनुसार कविता के क्षेत्र में एक बार पुनः माया को लेकर हुए उत्पन्न हुआ। अब के क्षेत्र में लड़ी लड़ी बनना बहुत प्यार पड़ी थी, पर पद के क्षेत्र में लड़ी लड़ लड़ी के मन में उत्पन्न का मोह बना हुआ था। प्रथमता की लड़ाई, और मनुष्य रह रह कर कुछ लड़ी लड़ी के विचार पर देती थी, जिससे वे कभी कभी उत्पन्न का प्रयोग लड़ा लड़ा करने से। पर लड़ी लड़ी का कृत हुआ और अब बन बनने वाला नहीं था। उसमें मेम का, उसमें बलि की, और उसमें पुनः की भारोन्मुख कोल पड़ी थी। लड़ा लड़ी लड़ी के प्रभाव को देख लेना अब उत्पन्न का हो गया था। फिर भी कुछ ऐसे कवि थे, जो लड़ा लड़ा लड़ा लड़ी लड़ी के लिए कभी-कभी

हिन्दी कविता इस हिन्दी कविता का विकास कहा मानते हैं। हिन्दी द्वितीय उपखण्ड कविता जिस प्रकार उच्च उपखण्ड में कविता प्राप्त करके जाने लगी, और जिस प्रकार उच्च द्वितीय उपखण्ड में पूर्ण कविताका का उच्च वास्तविक रूप दिया, उसके उत्तमोत्तम उचित उचित का पता चलता है। इस द्वितीय उपखण्ड की इस हीन कविता में निम्नलिखित का कहते हैं—प्रथम कविता में वास्तविकी की कविताका आली है, दूसरी कविता में द्वितीयकी की कविताका आली है, और तीसरी कविता में वे रचनाका आली है, जिसका निर्माण युक्तकी की लेखनी द्वारा हुआ है। वास्तविकी, कि जहाँ उच्च वास्तविकी की रचनाकी में ही द्वितीय की लेखनी मिलती है। वास्तविकी वास्तविकी वास्तविकी की रचनाकी में लेखनी वास्तविकी का जन्म ही हुआ था, और वास्तविकी लेखनी वास्तविकी में प्रवेश करके जाने करके वास्तविकी वास्तविकी की, पर फिर भी द्वितीय कविता की वह हीन और वास्तविकी का जन्म था, जो निम्नलिखित में वास्तविकी होने के वास्तविकी का जन्म था, जिसमें न किन्हीं प्रकार जाने किन्हींकी ही का लगी थी। वास्तविकी और उनके वास्तविकी में इस वास्तविकी के, जो द्वितीय कविता में कविताकी की लगी थी, वास्तविकी का अधिक प्रभाव दिया। उस लगी के प्रति द्वितीय कविता करके उन्होंने जाने वास्तविकी और वास्तविकी वास्तविकी का भी वास्तविकी दिया है, पर वे वास्तविकी वास्तविकी की हीन लगी लगे। उसकी प्रति किन्हीं की लगी के लिए वास्तविकी में लेखनी वास्तविकी का वास्तविकी दिया। उन्होंने लगी में प्रवेशित वास्तविकी का वास्तविकी के रूप पर 'वास्तविकी वास्तविकी' की रचना करके वास्तविकी वास्तविकी के प्रति पूर्ण रूप में द्वितीय कविता कर दिया। यह वास्तविकी वास्तविकी था, जिसमें लगी की वास्तविकी वास्तविकी थी। लगी वास्तविकी के वास्तविकी में वास्तविकी वास्तविकी की कविता जाने लगी की उनके वास्तविकी वास्तविकी थी। द्वितीयकी की वे लगी वास्तविकी की कविता की वास्तविकी वास्तविकी का वास्तविकी दिया। उच्च वास्तविकी वास्तविकी वास्तविकी और वास्तविकी वास्तविकी के वास्तविकी पर हुआ। उच्च वास्तविकी वास्तविकी में किन्हीं वास्तविकी का वास्तविकी ही रहा था, द्वितीयकी की वे उनके वास्तविकी वास्तविकी के वास्तविकी की वास्तविकी वास्तविकी। वास्तविकी के वास्तविकी के साथ ही वास्तविकी वास्तविकी वास्तविकी के वास्तविकी में वास्तविकी वास्तविकी का भी वास्तविकी दिया। उनके वास्तविकी वास्तविकी 'वास्तविकी' में इस प्रकार लगी वास्तविकी की रचनाका वास्तविकी होने लगी। लगी द्वितीय वास्तविकी का 'वास्तविकी' और 'वास्तविकी' भी वास्तविकी हुआ। 'वास्तविकी' की रचना उन्होंने वास्तविकी में ही की थी। 'वास्तविकी', और उनकी 'लगी वास्तविकी' की लगी वास्तविकी वे द्वितीय लगी वास्तविकी की कविता की और भी वास्तविकी वास्तविकी हुआ। सबसे अधिक वास्तविकी द्वितीय कविता की द्वितीयकी की रचनाका और उनके द्वारा वास्तविकी वास्तविकी के वास्तविकी हुआ। द्वितीयकी के वास्तविकी के द्वितीय कविता में वास्तविकी का वास्तविकी वास्तविकी कर दिया। लगी ही द्वितीय में वह वास्तविकी, वास्तविकी, और लगी—वास्तविकी वास्तविकी वास्तविकी और वास्तविकी वास्तविकी करके जाने लगी लगी। वास्तविकी और वास्तविकी ही लगी में वास्तविकी वास्तविकी होने लगी। किन्हीं वास्तविकी और वास्तविकी की लेखनी लगी उनके वास्तविकी की रचना की जाने लगी, लगी उनके

ऐतिहासिक और वीरशैलिक कृत्यों के आधार पर भजन रचना करने की प्रवृत्ति भी पैदा हो उठी। इस प्रकार द्विवेदीजी के प्रयत्नों से हिन्दी कविता में उन्नति के नए लहर बह, और वह सत्यतः हम से कुछ समय में विद्युत् करने लगी।

द्विवेदीजी ने फिर हिन्दी कविता के बीचे की उमंगवा वा, उनका पूर्ण विश्वास गुप्त ही की रचनाओं में देखने को मिलता है; दूसरी कान्दी में वह भी कहा जा सकता है कि द्विवेदीजी ने जो सत्यता की थी, उमंगवा गुप्तजी की रचनाओं में स्पष्ट होता है। द्विवेदीजी का संपूर्णा प्रभाव और उनकी भावना गुप्तजी में केन्द्रित हो उठी है। गुप्तजी की रचनाओं का स्वरूप विस्तृत है। मार्लेण्ड काव्य के लेखर द्विवेदी भक्त उस की भावना हुई है—जो उमंगवा किता गया है, गुप्तजी उसके पूर्वोक्त जान लगे हैं। उनके द्वारा कोई कव्य भी लिखे गए हैं, और महाकाव्य की भी उन्होंने रचना की है। उन्होंने कुछ कविसाहस्य भी की है, और कृष्ण का अभिप्राय भी उनकी रचनाओं में हुआ है। उनकी शैली को विविध प्रकार की है। उनके विषय भी बहु प्रकार के हैं। उनकी कल्पना उमंगवा और राघु के मैदान से जाने फिर उनकी को प्रष्ट की जाती हो है, जीवन के भीतर की उमंगवा प्रेषित होता है। राघु और लकाव की ही प्रति हो वह जीवन की कमीश की जाती है, और द्वारा में प्रवेश करते उनके कान्हाजी के साथ को होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि द्विवेदीजी ने फिर मार्ग का समारम्भ किया था, गुप्तजी ने उसे पूर्ण की नहीं किया, बल्कि उसके जाने की बड़े हैं। द्विवेदीजी की स्वाध्यात्मिक शैली पर विचार करने के उनकी उचित कल्पनाओं की उठी है। कदा कदा के नामा प्रकार के दर्पों का वह लेकर वह सम्बोधन में जो कवना अभिव्यक्त जाती हुई परिशीलन होती है। हो करता है, कि उसे विद्वत् कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की संशोधन के, किशोरी रचना कान्हाजी के विपरीत के ही आधार पर हुई है, यैसा मिली हो। पर वह को निश्चित है, कि गुप्तजी की रचनाओं में ही उस द्वारा और भावना की गुप्तता मिलती है, जिसका विकास जाने कालपर महाकाव्य के नाम से हुआ है। इस प्रकार गुप्तजी की रचनाओं में वहीं द्विवेदी काव्य की पूर्णता पाई जाती है, वहीं उनके एक तर मुग की गुप्तता की मिलती है। यदि इसी बात को इस प्रकार कहा जान, तो की है दृष्टिगत न होनी, कि गुप्तजी एक ऐसी सीमा पर विवश हैं, वहीं द्वितीय उपाय का कल्प, और गुप्त उपाय का कारण होता है।

द्वितीय उपाय का उद्घाटन पं० मधुसूदनदास द्विवेदीजी के द्वारा हुआ है। द्विवेदीजी ने ही सर्व प्रथम हिन्दी कहीं कहीं की रचना को वह स्वरूप प्रदान किया,

द्वितीय उपाय जिसे हम साहित्यिक और कल्पनमय स्वरूप कह सकते हैं। द्विवेदीजी की रचनाएँ दो प्रकार की हैं—बौद्धिक और कल्पित। उनकी बौद्धिक रचनाएँ कुछ विषयों पर हैं, जो सचोटी की वास्तव को प्रदर्शित हैं। उनके संस्कृत के कर्ष कृत्यों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार संस्कृत के कर्ष कृत्यों का प्रयोग सर्व प्रथम द्विवेदीजी की ही रचनाओं में मिलता है।

अपने केवल संस्कृत वर्णों वृत्तों का ही प्रयोग नहीं किया, बल्कि संस्कृत उदात्तों को भी रचना में स्थान दिया। अन्तर्निः स्रवणों के सम्मिलित होने के कारण उनही रचनाओं में कर्म-रता अधिक थी, पर उनके द्वारा कविता-कला में ही गहन पूर्ण कार्य का समाप्ति हुआ—(१) कविता संस्कृत वर्णों वृत्तों में वैधी अर्थात् हिन्दी की प्रचाली या साहित्यिक भाषा; और (२) लक्ष्मी वेल्लो की रचना में संस्कृत उदात्तों को स्थान मिला। दिव्येदीश ने संस्कृत में सर्व लक्ष्मी विभिन्न विषयों की रचनाएँ प्रकाशित की, और दूसरे कवियों को भी उन्होंने इस प्रकार की रचना करने के लिए प्रोत्साहित किया। दिव्येदीश की दूसरी प्रकार की रचनाएँ उनही अनुचित रचनाएँ हैं। उन्होंने 'सुमार कवच' नामी ग्रन्थों का अनुवाद करते हिन्दी में प्रकाशित किया। अनुवाद की ऐसी हीर विधि नहीं है, जो उनके द्वारा आविष्कृत हुई है। इस प्रकार उन्होंने अपनी मौलिक और अनुचित रचनाओं के द्वारा हिन्दी लक्ष्मी वेल्लो की कविता की रीति में यह जीवन, और प्रत्येक का उद्धार किया। उनके द्वारा जीवन और प्रत्येक प्रकार लक्ष्मी वेल्लो की कविता, कविता न होना, कि अन्तर्निः के क्षेत्र की और जीवनर मति में ही नहीं।

दिव्येदीश की रचनाओं में कविता का विकास नहीं पाया जाता। इसका एक मात्र कारण यह है, कि दिव्येदीश का विद्वान् साहित्य ध्यान रखते रहते, और प्रचार की और नहीं, उनका ध्यान उनका कविता और कला की और नहीं था। उन्होंने कि रचनाओं का निर्माण किया है, उनमें उनका उद्देश्य हिन्दी लक्ष्मी वेल्लो के कविता के लक्षण को उपलब्ध करना था। यहाँ उनका अनुचित ध्यान ही दिया की और केन्द्रित है। 'माया वाच्यार्थ' उनका प्रथम लक्षण था। वे कवि नहीं थे, लक्ष्मी वेल्लो कविता के आचार्य थे। उन्होंने आचार्य की मति ही लक्ष्मी वेल्लो की कविता का प्रतिष्ठान किया है। माया, कृष्ण, भाव, और वेल्लो अनेक क्षेत्र में उन्होंने आचार्य के विद्वान् पर पैर करते ही लक्ष्मी वेल्लो की कविता का निर्माण किया है।

१० जीवन वाच्य का आविर्भाव उस समय हुआ था, जब लक्ष्मी वेल्लो करते पैरों पर लक्ष्मी ही नहीं थी। मारोहेतु हांगकण्टकी ने कि लक्ष्मी वेल्लो की नींव डाली थी, उसका प्रथम विकसित लक्षण वाच्यकी की ही रचनाओं में देखने की विवक्षित है। मारोहेतुकी की रचनाओं पर व्यवस्था और वेल्लो काल की ही कृष्ण यह नहीं थी, यह वाच्यकी की रचनाओं पर नहीं दिखाई पड़ती। वाच्यकी की रचनाएँ मुद्रलक्ष्मी वेल्लो की रचनाएँ हैं। उनका नया विषय है, जीवन भाव है। उन्होंने पुनः और समय के अनुसार ही विषयों का निर्माण किया है। वाच्यकी की अधिकतर रचनाएँ रवी में ही प्रकाशित हुई थीं। मुद्रलक्ष्मी के रूप में वे उनके परम्परा समझे आई हैं। उनकी रचनाएँ दो प्रकार की हैं—मौलिक, और अनुचित। मौलिक रचनाओं में आचार्य, मोक्षार्थी, की मोक्षार्थी प्रकाशित, की मोक्षार्थी मुद्रलक्ष्मी, काश्मीर सुभाष, देवदत्त का वाच्य, लक्ष्मी वेल्लो, भाव विचार, मोक्षार्थी वेल्लो, सुभाष

हेमन्त, माउंट बेल, और 'विमिश्रमयी सुंदरी' का मुख्य स्थान है। 'एकौठ बाबीरोही' 'आँठ बधिक', और 'ऊमड़ चान' उनकी कल्पित रचनाएँ हैं। साहित्य के आदर्शवाद का भी बहुतबढ़ उन्होंने समर्थन में किया है।

राजकवी का आधुनिक भारतीय इतिहासकी के पढ़नाई हुआ था। भारतीय इतिहासकी रचना कहीं सेही की नीम बात यह है, पर कम की कविता के क्षेत्र में समर्थन का ही समर्थन प्राप्त था। समर्थन की समर्थन इतनी विस्तृत थी, कि कम की और इसकी और के सुंदर मोड़ने के लिए तैयार न होये थे। दूसरी और उर्दू की रचनाओं की बहुत ही का रही थी। समर्थनकारियों की और के उर्दू की रचनाओं की समर्थन की दिया था रहा था। कहीं सेही के लिए की कहीं कहीं ही समर्थन में थी, कहीं सेही समर्थन में था। विलेख महावीरवार हिन्दुओं की से विराजित कहीं सेही को करने की ही करने बहुत अधिक की द्वारा में समर्थन प्राप्त किया। वह उनकी द्वारा में समर्थन और समर्थन होने लगी। वे- और पर यह है उनमें से समर्थन किया, और कहीं रचनाओं के द्वारा उनकी कविता रचना की।

वे- और पर यह है समर्थन के कवि ने। उनकी समर्थन की कविताएँ कहीं कहीं, और कम पूर्व हैं। उनकी समर्थन की रचनाओं में भी समर्थन प्रकृति का विलेख मिलता है। उनकी कहीं सेही में भी कहीं-कहीं समर्थन के समर्थन मिलते हैं। इसका मुख्य कारण ऐसा है, कि उनका समर्थन से समर्थन विलेख था। हिन्दुओं के द्वारा कहीं सेही के समर्थन होने पर, राजकवी ने कहीं सेही के क्षेत्र में समर्थन किया। उनकी कहीं सेही की रचनाएँ दो प्रकार की हैं—वीलिक, और कल्पित। उनकी वीलिक रचनाएँ अधिकतर समर्थनमय हैं। उनके जीवन में बहुत कहीं का समर्थन है। उनके द्वारा केवल कहीं सेही की कविता, और इसकी समर्थन का समर्थन मिलता है। उनकी कल्पित रचनाओं में 'एकौठबाबी रोही', 'ऊमड़ चान' और 'आँठ बधिक' का मुख्य पूर्व रचना है। वे रचनाएँ बहुत कल्पित हैं, पर उनमें वीलिक की भी कुछ विद्यमान है। इसकी रचना परने राजकवी ने कहीं सेही की रचना-कविता की लिए कर दिया है। उन्होंने उनके द्वारा वह विलेख किया है, कि कहीं सेही एक सेही साथ है, जिसमें कहीं समर्थन के कहीं और कल्पितों का विस्तृत किया का समर्थन है। राजकवी ने मुख्य कविताएँ की लिखी हैं, जिसमें राष्ट्रीय समर्थनों का विस्तार हुआ है। उनकी कुछ मुख्य रचनाओं में नहीं माँ की समर्थन मिलती है। उनका प्रकृति विलेख विलेख समर्थनमय है। प्रकृति विलेख में उन्होंने समर्थन और समर्थन—दोनों की कहीं की प्रकृति किया है। उनके दोनों की विलेख होने हुआ और मने सही हैं।

राजकवी ने कम प्रकृति समर्थन परने की, और के समर्थन की कविता के, पर उनमें उन विलेखों का समर्थन है, जो एक कवि की केवल उताही हैं। उनकी रचनाओं का समर्थन करने से यह होता है, कि उनकी कविता रचित बहुत ही विलेख की। उनका समर्थन समर्थन द्वारा में कहीं के समर्थन था। वे जीवन की राष्ट्रीय पर ही

परिग्रहण करी रहे हैं। जीवन की कड़ी लड़ाई पर भी उनका परिचय सीमित वास्तुओं से ही है। समग्र है, इसका अर्थ यह हो, कि उनका व्यक्तिगत इस समय हुआ था, जब लड़ी बोली, और मद्रास के संघर्ष के कारण किसी भी क्षेत्र में उन्हें अपनी साम-प्रतिभा दिखाने का अवसर न प्राप्त हो सका। मद्रास के क्षेत्र में उनकी रचनाएँ प्राचीनकाल की हैं। उनमें किसी कवि के जीवन की मूल्य मात्र है। लड़ी बोली के क्षेत्र में जब उन्होंने प्रवेश किया, तब उनके व्यापार का पुनः था। अतः उनकी रचनाएँ भी प्रकार तक ही सीमित रह गईं। उनकी रचनाओं में केवल लड़ी बोली की सम्प्रदाय दिखाई होती है। कल्पना और कला की दृष्टि से उनके महत्त्व में अधिक घटका है।

१० अधोभ्यासिद्ध उपान्यास 'हरिऔध' हिन्दी काव्य-काल की सीमा में। उन्होंने 'जिम ब्रवाथ' और 'बेदेही बनवास' जिन पर अपने को कदा के लिए समर्पित किया। उनकी रचनाओं का, उनकी भाषा का, और उनकी शैली का हिन्दी काव्य-काल में एक विशिष्ट स्थान है। उनकी रचनाएँ युग के प्रभाव से प्रभावित हैं। युग की विचार-धारा के साथ ही साथ उनकी रचनाओं में भी परिवर्तन उपस्थित हुआ है। मारोन्दु इतिवृत्त का युग समस्त पुरुषों का युग था। अतः कविमण्ड समस्त पुरुषों के द्वारा ही लड़ी की आराधना किया करते थे। हरिऔध की काव्य-प्रतिभा का मारोन्दु युग में ही प्रतीत हुआ है। अतः उनकी प्राचीनकाल रचनाएँ केवल समस्त पुरुषों ही हैं, जो मद्रास, और लड़ी बोली दोनों में ही हैं। किन्तु जब दिवेदी युग का विकास हुआ, और इस विकास के में भाषा का संसार तथा परिवर्तन हुआ, तब युग के अनुसार ही हरिऔध की लड़ी बोली के क्षेत्र में प्रवेश किया। लड़ी बोली के क्षेत्र में प्रवेश करते उन्होंने भाषा को व्यवस्था पूर्वक संवार, और इसे एक शक्ति प्रदान की। इन्हीं दिनों उन्होंने जिनब्रवाथ की रचना की। जिनब्रवाथ हिन्दी लड़ी बोली का प्रभावपूर्ण काव्य है। इस महाकाव्य की रचना करते उन्होंने लड़ी बोली की शक्ति की उपयोगता की। दिवेदी युग के प्रभाव हिन्दी में एक नए युग की स्थापना हुई है, जिसकी देन बलद कवि, मिश्रा रामादि कवि हैं। इस युग में नई भाषाओं, और कल्पितियों का प्रचार हुआ है। 'हरिऔध' पर भी इस नवीन युग का असर सब के प्रभाव रहा है। उनके जीवन की अन्तिम काल की रचनाएँ नवीन युग की भाषाओं से पूर्ण रूप से प्रभावित हैं।

'हरिऔध' हिन्दी काव्य-काल के सङ्गत करते करते हैं। उनकी कविताओं का काव्य-काल में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने 'जिमब्रवाथ', और 'बेदेही बनवास' दो महाकाव्यों की रचना की है। इनके अतिरिक्त उन्होंने कई छन्द कवियों की रचना की है। उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में उनकी प्रभावशालिनी कवि प्रतिभा प्रकट होती है। 'हरिऔध' की काव्य प्रतिभा का विकास सभी शक्तियों द्वारा हुआ है। इसीलिए उनकी रचनाओं में विविधता, और कल्पितता है। उनकी प्राचीनकाल रचनाएँ दोनों के रूप में हैं। इन रचनाओं की हम उनके जीवन काल की रचनाएँ कह सकते हैं। वे रचनाएँ

कदमि साधारण बोरे की हैं, पर उनके ऊपरि मापी छानि-करी छोरन की मजदूरी फोफा कप के बिन्दुमान है। 'दीर्घों' के छोर के कप के निम्नो, जो 'कवित' और 'कवियों' के छोर के वरिष्ठ हुए। कवित और कवियों में उनकी जो रचनाएँ हैं, वे कविबोध समस्त वृत्तियों के लय में हैं। उनकी समस्त वृत्तियों में उनके मापी कवि छोरन की मजदूरी-करी कप के वरिष्ठोपर दीर्घी है।

हिन्दी काव्य का सर्वांगी विकास का हिन्दी के काल-चक्र में देखा, और कदा-चित् हमारी उम्मीदों के साथ समझा-दर्श लेने लगे, जब 'हरिश्चीरजी' ने सदा दोषों के क्षेत्र में प्रवेश किया। कदाचित् के क्षेत्र में प्रवेश करके उन्होंने 'विदग्धवास', और 'वेदोद्धारवास' को रचना की। 'विदग्धवास', और 'वेदोद्धार-वन्ताव'—दोनों ही महाकाव्य हैं। दोनों की रचना प्राचीन काव्य के आधार पर की गई है, और दोनों ही संस्कृत-मूलक हैं। पर महाकाव्य की दृष्टि से 'विदग्धवास' में उन्हें किसी सफलता प्राप्त हुई है, उसी वेदोद्धार-वन्ताव में नहीं। विदग्धवास हमसे कहिये में 'केवल महाकाव्य' है। इस महाकाव्य की रचना उन्होंने संस्कृत सर्व-वृत्तों में संस्कृत शैली में की है। यह हिन्दी काव्य-विकास में अपने दम का एक ही प्रसंग माना है। इसके मुख्य पात्रों की कृपा, और मुख्य पात्रिका-पात्रिका हैं, जो स्वयं सेवा, स्वयं स्वयं, विदग्ध-देव, वीर-विराट देव देव, और वीर-विराट की समर्थि हैं। इस महाकाव्य में 'हरिश्चीरजी' की हीन-वीर-काव्य का सुन्दर वर्णन देखने को मिलता है।

‘हरिऔधबी’ की भाषा प्रथिमा कही कह्यत और प्रभाव पूर्ण की। उन्होंने यहाँ ‘प्रियप्रभाव’, और ‘विदेशी कल्याण’ देखे महाकवियों की रचना की है, यहाँ उन्होंने ‘कुली बीरदे’, और ‘बीरों बीरदे’ में लिखे हैं। ‘प्रियप्रभाव’ और ‘बीरदे’ की भाषा में शक्ति और है। प्रियप्रभाव की भाषा यहाँ संस्कृत प्रभाव है, यहाँ बीरों की रचना कील भाषा की भाषा में हुई है। बीरों में, बीच-बीच में सुशरीर का प्रयोग का सुशरीर के साथ हुआ है। सुशरीर का प्रयोग करने में हरिऔधबी ने शक्ति प्रकटता प्रदर्शित की है। सुशरीर के प्रयोग के ही कारण ‘बीरों’ शक्ति प्रकट, और प्रभाव पूर्ण का यह है। उनमें सुशरीर और सुशरीर के साथ ही साथ शक्ति और भी है। हरिऔधबी ने विदेशी सुशरीर का प्रभाव में रचना करने का ही एक बात की प्रकट की है, कि उनके सुशरीर का शक्ति सुशरीर की भाषाओं की स्वरूप कला हुआ भी उनमें वीरों हुआ नहीं है। विदेशी कला की, उनकी प्रकटता की प्रभाव का प्रकट है। इसकी भाषा ही प्रकटता नहीं है, काय प्रकट शक्ति का ही शक्ति का भी प्रभावता प्रकट गया है। यह एक शक्ति प्रभाव है। हमने उन्होंने शक्ति शक्ति का प्रभावता की शक्ति में यह प्रभाव के प्रभाव, और प्रभावों की प्रभावता की है।

हॉलैंडियर्स का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। माला दीव में वे कहीं भी भाषा की दृष्टि का अनुमान करते हुए हॉलैंडियर्स नहीं होते हैं। उन्होंने कहीं एक कछुआ

उनके सामने कोई ऐसी रचना न थी, जिसे सामने रख कर वे अपने मार्ग का निर्माण कर सकते। इसमें कोई शक नहीं, कि द्विवेदीजी से उन्हें अधिक प्रभावितार्थ प्राप्त हुई, और वे उनकी के वैदुष्य की छाया से उन्नति के पथ पर अग्रसर हुए, पर उन्नति और विचार के इस मार्ग पर उन्हें केवल अपनी ही मान्य धारणा और दृष्टि के 'हार्ड' मार्ग बनना पड़ा। उन्हें अपने लिए स्वयं ही 'हैली' का निर्माण करना पड़ा, और भाषा की निरिच्छा बननी पड़ी। भाव, अनुभूति, और सुन्दर के क्षेत्र में भी उनकी मौलिक दृष्टि ही उनकी अग्रगण्य है। उन्होंने द्विवेदीजी के वैदुष्य की छाया में रह कर, उनके सिद्धांतों, और आदर्शों के प्रभाव के लिए, सर्वोत्तम धारणा की है। भाव, भाव, सुन्दर और 'हैली'-प्रभेक क्षेत्र में उन्होंने सर्वोत्तम गुण की सफलता की है। 'पञ्चवटी' उनका किसी का प्रथम खंड भाग्य है। यद्यपि इसके पूर्व भी कुछ खंड भागों की रचना हो चुकी थी, पर भाव और कला की दृष्टि से उनका कुछ भी महत्त्व न था। एतद्वत् भाषा ही नहीं, महाभाष्य के क्षेत्र में भी उन्होंने यथ-निर्दिष्ट किया है।

हिन्दी के वर्तमान कवियों में गुप्तजी का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। गुप्तजी एक ऐसे महा कवि हैं, जिनमें कई प्रकार की विचार 'चरार्थ' केन्द्रित दिखाई देती हैं। भाव उनकी ही रचनाएँ हमारे सामने हैं, वे इसी और इसी प्रकार की हैं, कि उनकी दृष्टि उनके उनकी कवीका अन्तःकला नहीं है। फिर भी हम उनकी रचनाओं के गुण की ही बातें से विचरना सकते हैं—उनकी रचनाओं का एक गुण ही यह है, किन्तु उन्होंने अपनी आरम्भिक रचनाएँ की हैं। इस गुण की हम आरम्भिक गुण कह सकते हैं। उनका प्रथम गुण उनकी रचनाओं के विचार और प्रीति का गुण है। इसी गुण में उन्होंने अपने आरम्भिक काल के प्रभाव की रचनाएँ की हैं, और इसी गुण में उन्होंने वे रचनाएँ की की हैं, जिनके द्वारा उन्हें काल कीलि प्राप्त हुई है। गुप्तजी की भाव रचना का गुण १९१०-१२ के आरम्भ होता है। सर्व प्रथम उनकी रचनाएँ 'हलन्तों' में प्रकाशित हुआ जाती थी। यह उनकी आरम्भिक रचनाएँ थीं। उनकी आरम्भिक रचनाओं की प्रकृति हमें 'रंग में रंग', 'अनन्त बर', 'मातृ भावों', 'पञ्चवटी', 'सुखान्ता', 'अनन्त', और 'तिलोत्तमा' इत्यादि खंड कालों में देखने की मिलती है। यह 'अनन्त' रचनाएँ उनके आरम्भिक गुण की रचनाएँ हैं। हमें उनकी भाव-प्रतिभा की यह कति दृष्टिकोण होती है, की विचार की ओर अग्रसर हो रही है। 'रंग में रंग' एक ऐतिहासिक खंड भाग्य है। इसमें एक-पूरा और 'हलन्त' के अन्तिम का विचार अन्तः पूर्व ही से किया गया है। 'अनन्त बर' सर्वोत्तम भाव खंड भाग्य है। 'और यह' की 'अनन्त' हमें आरम्भिक के भाव की गई है। 'अनन्त-रंग' इसकी पीछियों से मिलत कर हृदय की चुकी देता है। आरम्भिक इसकी अग्रगण्य है। 'मातृ भावों' से अन्त-भाष्य का अन्तर्गत है। अन्तिम साहित्य और भाव कला की दृष्टि के इस काल का विशेष महत्त्व नहीं है, पर आरम्भिक के क्षेत्र में इसकी द्वारा अन्तिम उन्नति हुई है। 'पञ्चवटी'

‘चन्द्रमण’, और ‘सुकुन्तला’ को रचना वीरपद्यिक कथाओं के आधार पर की गई है।

गुप्तकाल की काल-रचना का द्वितीय युग, जिसे हम उनके विचार का युग कह सकते हैं, ‘कालिका महान पुरा’ है। इसी युग में गुप्तकाल की काल-प्रतिभा में उन कृतियों का निर्माण किया है, जिसमें कारण उन्हें अमर कोसि माना हुई है। उनके इस युग के भी दो वर्ग हैं—दर्शनमयक, और भावनामयक। दर्शनमयक वर्ग में गुप्तकाली ने अपने भाव-जीवन में मानव हृदय के भीतर पनपाने वाले का प्रत्यक्ष किया है, पर उनके वर्णन की ही प्रभावशाली शक्ति है। इस वर्ग की रचनाओं में ‘महाकवी’, ‘भिरपारा’, शक्ति, ‘गुरुकुल’, और ‘विजय मठ’ का मुख्य स्थान है। ‘महा-कवी’ रामकथा संग्रहीत कथा काव्य है। ‘विजयमठ’ की रचना ‘महामाया’ की कथा के आधार पर की गई है। ‘शक्ति’ की कथा ‘देवी भागवत’ से ली गई है। ‘गुरुकुल’ में विजय गुरुओं की कथा का चित्रण है। ‘विजय मठ’ ऐतिहासिक काल-कथन है। काल और कथा की दृष्टि से इन रचनाओं में कवि ने महाकवि काल की प्राचीन-विचार का विकास किया है। इन रचनाओं में वर्णन की प्रधानता है। इन रचनाओं में कवि ने वीरपद्यिक और ऐतिहासिक कथाओं को, अपनी रचनाओं का आधार मानकर उनके द्वारा हृदय के भीतर बुझने की चेष्टा की है, पर इस चेष्टा में उनका प्रभाव अत्यन्त सीमित है। अतः इन रचनाओं में कथामय-सीमाओं की ही प्रभावशाली शक्ति हुई है। भाव, कल्पना, और अनुभूति की दृष्टि से इन रचनाओं में अत्यन्त दृष्टिगोचर होता है।

गुप्तकाल की रचनाओं के इस काल को अपने विकास युग के दूसरे वर्ग में वर्णन करते हैं, उनके दूसरे वर्ग की रचनाओं में ‘कावेर’, ‘बसोवरा’, ‘सिद्धराज’, ‘नकुल’, ‘कावेर’ और ‘कुटिल मीरा’ शामिल महान पुरा है। गुप्तकाल की ये रचनाएँ हृदय के अन्दर ही से प्रेरित हैं। इनमें वर्णन की शक्ति और भाव की शक्तिशाली है। गुप्तकाल की यही वह रचनाएँ हैं, जिसमें उनके महाकवि-पद की प्रतिफलता हुई है। ‘कावेर’ उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। यह एक महाकाव्य है, जिसकी रचना राम-कथा के आधार पर की गई है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि इसमें कवि ने राम-कथा की एक नवीन रूप में सामने उपस्थित किया है। ‘कावेर’ में राम सचराती युवा होते हुए भी अवतार नहीं है। कवि ने साधारण मानव की भाँति ही उन्हें कौटुम्बिक जीवन के बीच में देखा है। राम के साथ ही सम्बन्ध गाँव के शक्ति-विशेषण में भी सीमित दृष्टि की प्रधानता होने के कारण हमें मानव हृदय के इन्दी, और संघर्ष का ही चित्रण देखने की मिला है। ‘बसोवरा’ का काल है, जिसमें कवि एक काव्य काल हुआ है। ‘बसोवरा’ में कवि की अमर कथा-मय रचना-रचना पर सुनिश्चित की गयी है। गाँव जीवन का चित्रण कई स्थलों पर मानविक के साथ हुआ है। ‘सिद्धराज’ ऐतिहासिक काल काव्य है। इसमें कथा अत्यन्त ही विचारों की विशेषता है। ‘नकुल’ की कथा वीरपद्यिक है। कथा के

भाषा ही हृदय के इन्हीं का निष्कृत होने कुशलत्व के साथ हुआ है। 'हृदय' से 'कलात्मकता', और ऐसी ही उत्पत्ति है। 'कुशलता सेत' 'कमल सेत' से सेत प्रोत है।

गुजराती विभिन्न क्षेत्रों के बने हैं। उनकी भाषा-कल्पना का क्षेत्र अधिक विस्तृत, और व्यापक है। उन्होंने कई क्षेत्रों में अपनी भाषा, और अनुभूतियों को फैलाया है। उनके प्रायः भाषा-संशोधन की गुण-गुण ऐसी हैं। उनकी 'संस्कृत' शैलियों को इस तरह सभी के विमल का समर्थ है—व्यक्त्यात्मक शैली, नीति भाषा शैली, नीति व्यापक शैली, और उपदेशात्मक शैली। व्यक्त्यात्मक शैली ही प्रकार की है। इसका एक रूप यह है, जिसमें उनके 'संस्कृत' भाषाओं की रचना हुई है, और इसके रूप में उनके महाभाषा करते हैं। उनकी यह दोनों ही शैलियों अधिक व्यापक, और व्यापक हैं। उनमें व्यापकता, और सलोचनिकता का 'दूर' विकास देखने को मिलता है। नीति भाषा शैली में व्यापकता का अन्तर्भाव निम्न रहा है। 'विशेषता', 'संशोधन', 'संशोधन', 'विशेषता', और 'संस्कृत' इत्यादि में इसी शैली का विकास हुआ है। नीति व्यापक शैली में उनके सेत हैं, जो प्राचीन रूप पर लिखे गए हैं। 'संस्कृत' की रचना इसी शैली में हुई है। उनकी यह शैली सभी व्यक्त, सामाजिक, और कलात्मक है। 'संस्कृत', 'भाषा भाषा', 'संस्कृत' और 'संस्कृत' इत्यादि की शैली उपदेशात्मक है। यह सभी व्यक्तिकता, और व्यापकता है। अनेक और वर्षों में सभी की रूप में अपनी स्वरूप देखने को मिलती है। गुजराती की सभी शैलियों सभी व्यक्त, संस्कृत, और व्यापकता है। उनकी शैलियों सभी की और विशेष रूप से उपेक्षा है। वे सभी का उपेक्षा करते हुए चलती हैं। व्यक्त्यात्मकता, और व्यापकता इनमें सभी के प्रकार है। शैली की नीति गुजराती की भाषा की अधिक सरल, और व्यापक है। गुजराती की भाषा सभी सेती है, जो अधिक परिष्कारित, और सरल है। भाषा पर गुजराती का अधिकार है। वे सभी व्यक्त्यात्मक के साथ सभी का अधिकार करते हैं। अनेक रूप पर उनका अनुशासन दिखाई पड़ता है। भाषा सभी व्यक्त्यात्मक उनकी व्यक्त्यात्मक में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। उनकी व्यक्त्यात्मक रचनाओं में व्यक्त्यात्मक भाषा कुछ गुण प्रकार की दिखाई पड़ती है, पर विकास का रूप की रचनाओं में सर्वत्र उनका एक ही व्यक्त्यात्मक मिलता है। गुजराती की भाषा संस्कृत का अनुशासन करते हैं। संस्कृत के व्यक्त्यात्मक सभी का अधिकार उनकी भाषा में अधिक मिलता है। सभी सभी उन्होंने व्यक्त्यात्मक और व्यक्त्यात्मक सभी का जो प्रयोग किया है। सभी वेले सभी व्यक्त्यात्मक हुए हैं, उनकी भाषा का प्रभाव सरल सरल है, और उनके व्यक्त्यात्मक में सभी का सरल है। सभी सभी वेले भी व्यक्त्यात्मक हैं, जो अधिक व्यक्त्यात्मक और विवेक हुए हैं। व्यक्त्यात्मक सभी को जो उन्होंने अपनी भाषा में व्यक्त किया है।

वे व्यक्त्यात्मक व्यक्त्यात्मक की रचनाओं की सभी में मिलता है—व्यक्त्यात्मक, और व्यक्त्यात्मक। उनकी व्यक्त्यात्मक व्यक्त्यात्मक उपदेशात्मक है, जिसमें व्यक्त्यात्मक

संस्कृत के गीति-शुद्धों का मान्यतादायक है। इन कविकाव्यों में काव्य के सर्वोच्च की उत्पत्ति, और उपदेश की अनुपपत्ति है। यहाँ कहीं एककी उत्पत्ति उपदेश के क्षेत्र में प्रथम होकर उत्पन्न हो के कवि-कर्म की ओर बढ़ी है, यहाँ भी इनकी रचनाओं में आधेन्द्रिक नहीं हो सका है। ऐसे कवियों पर कवियों में अलङ्कारिकता का प्रभाव उत्पन्न हो गया है, और अलङ्कारिकता का प्रभाव उत्पन्न हो जाने के कारण यहाँ काव्य-वैधर्म्य विरहित रूप से लक्षित होता है। उदाहरणार्थों की द्वितीय वर्ग की रचना उत्पत्ति प्रथम काव्य है। उन्होंने एक ही प्रथम काव्य की रचना की है, जिसका नाम है, 'राजचरित विद्याभक्ति'। कविता इसकी कथा पुरानी ही है, पर इसमें एक कल्पना की सुन्दर शैली देखने को मिलती है। इसमें कई कवियों पर ऐसे अलङ्कार-मय विषय हैं, जो हृदय को बलवत् पकड़ लेते हैं। इसी प्रथम काव्य के कारण उदाहरणार्थों की हिन्दी-काव्य कला में प्रसिद्धि की रात हुई है।

श्री लोचन प्रसाद शर्मा ने प्रथम रूप में अनुपपत्ति का संज्ञा का। उनकी काव्य-कला का अधिक विकास नहीं हो सका। उनकी भी रचनाएँ मिलती हैं, उनके ही वर्ग हैं—सुन्दर, और कथात्मक। उनकी सुन्दर रचनाएँ 'कलकली' में प्रथम प्रकाशित हुआ करती थी। कथात्मक रचनाओं में उनकी चित्पति के मीमंसी के काव्यमयक कथा है, जिसकी रचना कल्पना की रात कल्पनावादी की शैली पर की गई है। 'पुनी-पुनः मीमंसा' उनकी सर्वश्रेष्ठ कविता है, जिसमें उनके अनुपपत्ति के कवि-काव्य का सुन्दरता के साथ विकास हुआ है।

द्वितीय उदाहरण के कवियों को दो श्रेणियाँ हैं। एक श्रेणी में दो ही कवि आते हैं, जिन्होंने द्वितीय वर्ग के बाद-विहारी पर कल कर काव्य रचना की है। ऐसे कवियों द्वितीय वर्गका के में भीतर प्रथम, कल्पनात्मक उदाहरण, श्री वैधर्म्य काव्यमय कविता प्रथम रूप, १०० राजचरित उदाहरण, और २० लोचन प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित का नाम प्रथम है। द्वितीय श्रेणी में, उन कवियों का नाम आता है, जिनमें द्वितीय वर्ग के द्वितीय उदाहरण में काव्यमय होने पर भी उनकी रचना और नामावली के अन्तर्गत की उत्पत्ति का उत्पन्न रूप की है। इन कवियों का कल्पना की द्वितीय वर्ग काव्य नहीं है। उन्होंने देव और राज में प्रकाशित होकर विभिन्न कवियों पर की, और पुरानी शैलियों में रचनाएँ की हैं। इन कवियों की रचना का विषय उपदेश प्रेम, अलङ्कारिक जीवन, जीवन, उत्पत्ति, और कल्पना इत्यादि है। इनमें कुछ कवियों में वैधर्म्यमय, वैधर्म्यमय, और कल्पनात्मक कथाओं के आधार पर कथात्मक कवियों की भी रचना की है। इस श्रेणी के कवियों में कुछ ऐसे भी कवि आते आते हैं, जिन्होंने उदाहरण में भी रचनाएँ की हैं। यहाँ इस श्रेणी के प्रतिनिधि कवियों, और उनकी रचनाओं पर प्रकाश आता था था है—

राजदेवीप्रसाद 'भूषण' की रचनाएँ दो प्रकार की हैं—कथात्मक की, और 'कल्पना' की। विषय की दृष्टि से उनकी दोनों ही प्रकार की रचनाओं में नवीनता है। उनकी भी रचनाएँ 'कल्पना' में हैं, उनके कवियों में कुछ की अनुपपत्ति है।

अन्तर्नि 'दिश' शक्ति', और 'सुख' शक्ति' इत्यादि विषयों पर ही सम्प्रसादा के रचनाएँ की हैं। 'बादो बोली' की रचनाएँ दो प्रकार की हैं—'दृष्टि कृतान्तर', और 'सुदृष्ट'। अपनी दृष्टिकृतान्तरक रचनाएँ अन्तर्णी, और 'दिशोद्धार' आदि विषयों पर हैं। सुदृष्ट रचनाएँ विविध विषयों पर हैं, जैसे 'वसन्त वियोग', 'कर सद् या स्वागत', वसन्त वियोग, और सम्प्रसादा इत्यादि। 'पूर्वोक्त' की रचनाएँ व्यक्ति के विषयों पर की प्रतिनिधिम वास्तविकी हैं। 'वसन्त वियोग', और 'सम्प्रसादा' के पूर्वोक्त व्यक्ति के भीतर गुण पर उसके विषय शक्तियों हुए दृष्टिकृतान्तर होते हैं।

पं० बाबूराम सखुन शर्मा की रचनाएँ ही सबसे की हैं—सुखम, और प्रसन्न-
मन। उनकी सुखम रचनाओं में वे कुछ करते हैं, जिसकी रचना उन्होंने विभिन्न
सांसारिक विषयों पर की है। इन रचनाओं में कुछ ऐसी रचनाएँ हैं, जिसकी भाषा
जब है। वे उनकी सांसारिक रचनाएँ हैं, जो अधिकांश समस्त पूर्वियों के रूप में हैं।
उनका ही उनकी समस्त पूर्वियों के विषय 'विशेष', और वेम इत्यादि हैं। सभी
की ही ही कुछ रचनाएँ सांसारिक विषयों की व्यापार मान कर की गई हैं। इन
रचनाओं में अंग्रेज और अरब का कहीं कहीं अन्धका समवेत हुआ है। उन्होंने
इसके साथ ही लिखा है, जिसका नाम सर्व रक्षा पत्र है। इसने विश्वासों की
इसी प्रकार व्यापार के विश्वास के साथ ही साथ विश्वासों में होने वाले व्यापारों का
ही कथन किया गया है।

सं० गंगाप्रसाद शुक्ल 'कल्लोई' रामपुरवासी कवि हैं। काबल जगज में उनके ही सम्मान हैं—'कल्लोई', और 'विहङ्गल'। नाम के ही अनुसरण उनको ही प्रचार की सम्भावना थी है। 'कल्लोई' के नाम से उन्होंने को सम्भारों की हैं, उसमें 'मेम' कृष्णहि मायी का विचार प्रकाश है। वे सम्भारों 'माय जगज' की और सम्भार हैं। 'विहङ्गल' के नाम से उन्होंने सम्पूर्ण सम्भारों की हैं, जिनमें लक्ष्म, और बीरज 'मेम' विषय विहङ्गल हैं।

यह राजमहेशविवाही विधेही कुल के प्रमुख बलि है। इसमें तीक्ष्णता है, विद्विग्धता है। इसके पूर्व बलिष्ठ का आचार तीक्ष्णतम विषय, ऐतिहासिक वृत्त, और बलिष्ठ बलिष्ठों का जीवन था। विवाहीको के पूर्ववर्ती सभी बलिष्ठों ने इसी विषयों की आधार रख कर अपनी रचना का प्रचार किया है। किन्तु विवाहीकी में इनके प्रथम अपने विचार मनीष विषयों की शीघ्र की है। विवाहीकी की रचनाई अनेक जैन व्यक्तिगत बर्तन, और प्रकृति-सुगन्ध पर आधारित है। इसकी रचनाकी के नाम बलिष्ठतम है, जो बलि की आकांक्षकों के लिये से दले हुए है। इनके बलि का बलिष्ठ अर्थ है। इसमें अनेक जैन के विचार भाव, और नव विद्वेह की भावना है।

सिवाजीजी की रचनाओं से प्रभावित हैं—इतिहासकार, और कलाकार । उनकी

दृष्टिपूर्वक रूप से स्पष्ट, मिलन, और अधिक की संख्या की जाती है। स्पष्ट, मिलन, और अधिक हीं हीं संज्ञा साम्य हैं। संज्ञा साम्य के क्षेत्र में विवादाधीन संज्ञा मौलिक है। उन्होंने उन परम्पराओं में, जो अब तक संज्ञा साम्य के लिए अचलित थीं, पुनः खोज कर ही अपने संज्ञा साम्य का निर्धारण किया है। उनके सभी संज्ञा साम्य के साथ साम्यपूर्ण हैं। उन्होंने अपने साम्यपूर्ण भाषा के द्वारा मूल की साधनाओं की सृष्टि की है। उनके साथ मूल की हीं साम्यपूर्ण रूप से हैं। उनके साथ का एक लेख है—एक लेख है, और वह है एनेस वेम तथा वेम वेम। एनेस वेम और वेम-वेम के हीं हीं उनसे प्राप्त होते हैं। एनेस वेम और वेम वेम के लिए उनके साथ में 'आम', और 'अन्य' की आवश्यकता थी है। इन प्रकार विवादाधीन के संज्ञा साम्य में राष्ट्रीयता केन्द्रित हो जाती है। उन्होंने उनमें राष्ट्रीयता की हीं अतिरिक्त काम का प्रभाव किया है। उनकी राष्ट्रीयता 'सोनी दा' के सम्बन्धित है। वे अपनी राष्ट्रीयता के क्षेत्र में सोनी दा के हीं साधना की स्थापना करते हैं। उनकी दूसरी प्रकार की स्थापना पुनः स्थापना है, जो 'मनस' में संदर्भित है। उनकी पुनः स्थापना में मनस, और साधना दोनों हीं सहायिता का समर्थन है। उन्होंने सोनी साम्यपूर्ण स्थापना की है, और सहायिता का भी निर्धारण किया है। साम्यपूर्ण विषय पर भी उन्होंने पुनः स्थापना की है, जिसमें 'दास वर' की स्थापना हुई है। वेही भी उनकी स्थापना है, जो समर्थनदायक है। समर्थनदायक स्थापना में साथ हीं विवादाधीन, और साधना की स्थापना है। इस सोनी की स्थापना में अब हम विवादाधीन में 'साधनाधीन' वेही की स्थापना किया है।

विवादाधीन में मूल, और मूल—दोनों हीं क्षेत्रों में सहायिता प्राप्त की है। उन्होंने मूल, साधना, और सहायिता की भी स्थापना की है। साधनाधीन रूप में उनके द्वारा लिखे गए हैं। उनके साम्य, और वरल दोनों हीं स्थापना के सहायिता-प्राप्त की सहायिता है। उन्होंने सहायिता साधनाधीन रूप में लिखे हैं, सहायिता-प्राप्त की स्थापना में उनके द्वारा हुई है। विवादाधीन साधना के साधनाधीन हैं। सहायिता-प्राप्त की में वे सहायिता साधना पर ध्यान देते हैं। उनकी साधना मूल, और सहायिता है। वे अपनी साधना में साधनाधीन के विषय पर मूल रूप में ध्यान देते हैं। उनकी साम्य स्थापना साधनाधीन के विषय के अनुसंधान पर होती है।

सहायिता साधनाधीन की स्थापना की स्थापना की है—सहायिता की, और सहायिता की। उनकी साधनाधीन की स्थापना उनके साधनाधीन साधनाधीन स्थापना है, जिस पर साधनाधीन की हीं साधना है। उनकी सहायिता साधनाधीन में उनका 'सोनी दा' साधनाधीन साधना है। इसमें साधना सहायिता की में वे सहायिता साधनाधीन हैं, जो सभी में सहायिता का साधना कर देते हैं। सहायिता उनकी सहायिता है, जो सहायिता साधनाधीन है। उनकी सहायिता में सहायिता साधनाधीन साधना है, जो सहायिता साधनाधीन है। साधना के साथ हीं सहायिता सहायिता साधना के साथ हीं सहायिता

काल-समयक दृष्टि से हिन्दी कविता तुर्कीय उदयान के विप्लव कालकाल की और बढ़ती हुई मान बढ़ती है। प्रत्येक क्षेत्र में उसके उठते हुए चरण में स्वतन्त्रता, और मुक्तता है। कोई बड़ नहीं कहता, कि इसकी स्वतन्त्रता, और मुक्तता में संकीर्ण नहीं है; क्योंकि उसके मुख्य, और स्वतन्त्र चरणों के उठने से, हिन्दी काल स्वतन्त्र में वह काली, प्रचण्ड कालों के रूप में जो विद्युत बने हैं, या बन रहे हैं, उनमें स्थापित है—कालकाल है। अतः मानना ही पड़ेगा, कि हिन्दी कविता का मुख्य और कलात्मक भाव विद्युत का ही और उठ रहा है, वह उसकी उजाली, और महा-मंगल की ही दिशा है।

हिन्दी-कविता के तुर्कीय उदयान के विप्लव पर प्रचण्ड कालों के पूर्व एक बार पुनः दिव्य उदयान, अर्थात् हिन्दी काल की रचनाओं पर दृष्टि डाल लेना चाहिए। इसी एक और ही हिन्दी काल की कविता की प्रकृति वामन में का काली, और दूसरी और में काली की रचना है। अर्थात्, किन्तु परीक्षा स्वतन्त्र तुर्कीय उदयान की विप्लव काल की और उदयान होने वाली कविता का काल हुआ है। दिव्य उदयान की हिन्दी कविता एक सीमा में आकर थी। प्रायः सभी कविता की दृष्टि, दिव्य उदयान में, बहुत ही और विपरीत के पास बहुत ही और ही रही है। अतः हिन्दी दृष्टि का अन्तर्गत दिव्य उदयान के सभी कविता के काल काल है। अतः हिन्दी काल में वह काल और प्रचण्ड कालों की ही रचना हुई है, पर उन सब कालों और प्रचण्ड कालों में कालों की ही प्रकृति है। उनके दृष्टिगत ऐतिहासिक, और वैचारिक हैं, किन्तु या तो उनमें ही मानना है, और या 'आधुनिक' के विकास की आकांक्षा। मुख्यतः, वह काल और प्रचण्ड काल—प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दी काल की कविता प्रचण्ड, और उदयान की ही और उदयान है। इस काल में वह काल का उदय है, कि वह एक सीमा में आकर थी। इस काल की कविताओं में मानना, और अनु-मूल्य का अन्तर्गत है। मानव जीवन और दृष्टि के अन्तर्गतों में इस काल की कविता अन्तर्गत है। माननाओं, अनुभूतियों, और अन्तर्गत के विपरीत के अन्तर्गत होने के कारण हीही के क्षेत्र में ही इस काल की कविता का परिष्कार नहीं हो सका है। हिन्दी की दृष्टि आधुनिक हीही ही इस काल की रचनाओं में बार-बार दृष्टिगत होती है। सभी कविता के काल, और काल का एक ही क्षेत्र है। ऐसा बात हीही है, सभी कविता के काल अन्तर्गत नहीं है, और कविता के ही ही वह उसी काल होता नहीं आता। सभी कविताओं में काल काल ही मानों पर चले हुए, दृष्टिगत होती है। माना की दृष्टि से ही हिन्दी काल के कविता में अन्तर्गत नहीं दिखाई पड़ती है। हिन्दी काल में जिस भाव के काल का अन्तर्गत किया था, उसके अन्तर्गत के काल कविता में उसी भाव का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। हिन्दी काल के ही ऐसे कवि हैं, किन्तु इस काल का अन्तर्गत कवि वह काल है—प० अन्तर्गत उदयान, और ही वैचारिकता गुण। प० अन्तर्गत उदयान की रचना अन्तर्गत प्रकृति में गुण है। उनमें कालों की प्रकृति है।

उसे देख कर ऐसा डरा होता है, मानो उसका भयान संकलन के तरह शब्दों का संसार माने की ही ओर विशेष लक्ष्य हो। जो मौलवीसरफ़ तुल भाषा के क्षेत्र में अवश्य साक्षर दिखाई पड़ते हैं। 'अकैद' से उनकी भाषा देखी है, जो माधोभुल भाषा पड़ती है। उनके क्षेत्र भाष्य-कर्मों में हिन्दी काज की ही भाषा का निष्कल हुआ है। हिन्दी काज की कवि मान्यताएँ भी तुलसी की हैं। कदा कालका के क्षेत्र में भी हिन्दी काज के कवि मान्यता की बीजा से बाहर नहीं निकल सके हैं। हिन्दी काज के कवियों ने कृष्णों के दिवसों का वाक्य मुख्य रूप से लिखा है। उनकी रचनाएँ कृष्णों की लीला के भीतर गिरी हुई हैं। कृष्ण का तो संकलन के है, या तुलसी हिन्दी काज के। कृष्णों के निष्कलों के परिष्कारन से कविता के प्रवाह में 'अवस्था', और 'कवता' अवस्था दिखाई पड़ती है, पर हममें कन्देह नहीं, कि भाष की दृष्टि से उसका निष्काश नहीं हो सका है। कविताएँ कवि कृष्णों के दिवसों की वृत्ति, और 'तुली' के अनुकूलन की विधा में ही प्रकल नाम पड़ते हैं।

द्वितीय उदाहरण हिन्दी कविता की दूसरी सीढ़ी है। इस सीढ़ी पर बैठ कर हिन्दी कवि ने जो रचना की है, उसमें भाषना की कमी, और भाषण की प्रधानता है। किन्तु हम ही इस बात का भी ध्यान रखता हैं, कि उसकी दृष्टि में सीढ़ता है। यद्यपि उसकी दृष्टि काज भाषा के दृष्टी में ही उसकी हुई है, पर उसमें 'कलंकोप' भी है। द्वितीय उदाहरण के अन्तिम चरण में कविता की सावधानता करने वाले तुल की भी रचनाओं में लक्ष्य वह अवलोकन काज ही उठा है। तुलसी की रचनाओं में ही उस तुल की तुलना विद्यमान है, जिसे हम हिन्दी कविता का द्वितीय उदाहरण करते हैं। हिन्दी कविता के द्वितीय उदाहरण के बहुत पूर्व ही रंगरेजी और वैष्णव शब्दों के साहित्य से हिन्दी का विशेष साहित्य ही प्रथम था। विरच-साहित्य की कई तुली भाषाओं की निष्कलों की हिन्दी के कवियों के संमुख का चुकी थी। हममें कन्देह नहीं, कि द्वितीय उदाहरण की कविता रंगरेजी और वैष्णव की 'कविता के प्रमाणित हुई, पर उसमें की परिपूर्ण हुआ, उसका मुख्य कारण तो यह प्रवाद है, जो हिन्दी काज में निवर्ती, और मान्यताओं की शिखरों से सम्पन्न कर दिया गया था। द्वितीय उदाहरण के सादर काज में ही हिन्दी कविता का वह सम्पन्न प्रवाद हममें मार्ग के शिक्षा संसी को दृष्टता हुआ पुरुष केन के सम्पन्न की कहा है। उसकी कवि निराली है। हिन्दी काज में नहीं वह काज काज के दृष्टी में उसका हुआ था, नहीं वह उसकी कवि सम्पन्न की ओर अनुसृत है। कम वह पुरुष कवि ने सम्पन्न की ओर बीड़ रहा है। कम उनके मार्ग में भाषनाओं, और अनुकूलियों के ही निष्कल बन रहे हैं। कम उसकी दृष्टी में बीजल, और भाषण कृष्ण के दूर उल्लस रहे हैं। कम वह प्रकृति के दृष्टी में भी बीजल की लीला कर रहा है, और बीजल में ही प्रकृति की लीला कर रहा है। कम उसे प्रकृति में—बीजल में एक ऐसे बीजल की बीजल है, जो निष्कल है, सावधान है; दूसरे शब्दों में द्वितीय काज की कविता की दृष्टि पूर्व रूप से बढ़ती हुई है। उसकी दृष्टि में कविता

हीन्दुत्व का कोई सूत्रन नहीं है—यह सब धार्मिक दृष्टिों में की समस्त हीन्दुत्व की जीव करता है। सब वह पूर्ण रूप से अनुभूति मात्र है। उसकी अनुभूति को प्रकट करने में वह प्राचीन परम्पराओं, और मान्यताओं ने असंख्यता प्रकट की, उन उल्लेखों के बिना किसी सङ्कीर्ण के पुरानी परम्पराओं, और मान्यताओं के बिना की होठ दिया। उसने अपनी मान्यताओं, और अनुभूतिओं के अनुभव ही माना, रीति, नृत्य, और अन्य विधानों का निर्माण किया। मान्यताओं के अनुभव ही उसकी मान्यता का साक्ष्यत्व, और संकेतिकता की ओर प्रवृत्त हुई। सब वह अपनी मान्यता के संकेत-विधान में 'कला' और 'प्रत्यक्षकला' के नाम से होती है। कलाओं के प्रयोग में सब वह साक्ष्यत्व कार्य पर नहीं जानी, बल्कि उस जीवन पर जाती है; जो कला के जीवन द्वितीय रहती है। कला की सीमा ही उसकी सीमा को साक्ष्यत्व और संकेतिक है। कला-मार्ग ही उसकी सब सीमा है, जिसमें साक्ष्यत्व और कला का सम्बन्ध है। धर्मों और अनुभूतिओं के बिना ही इसमें नई नई उल्लेखों और कार्य-कलाओं के भी काम होना प्रारम्भ कर दिया है। कलाओं के कला में ही उसने साक्ष्यत्व परिवर्तन कर दिया है। सब इसकी दृष्टि कलाओं के विधानों की पूर्ति, और 'पूर्ण' पर नहीं है। सब वह पूर्ण रूप से अनुभूति, और मान्यता है। उसकी प्रकट अनुभूति और मान्यता में कलाओं की प्रकटा की होठ कर पूर-पूर कर दिया है। सब वह कलाओं की प्रकटा से अनुभव—कलात्मक मति के प्रकटा कला में विचारक जाती है। पहले उसकी मति में कलात्मक और उल्लेखकला कलात्मक थी, पर सब वह संकेतिकता के अधिक निरूप है। दूसरे कुछ वर्षों के उपरान्त कलाओं की अधिक दृष्टि हुई है। इसी से जाती का पल चलता है। एक ही वह, कि हिन्दी-कविता मान्यताओं, और अनुभूति को ओर अधिक प्रकट हो रही है, और दूसरी यह, कि वह 'संकेतिक' ही नहीं है। यह दोनों ही संकेत हिन्दी-कविता की उत्पत्ति, और प्रकटा के लक्षण हैं।

द्वितीय उपाय की हिन्दी-कविता की सिद्धान्तों के बारे में पल रही है। यद्यपि 'वार्ता' के बारे में पहले के काल 'कविता' के लक्षण की कला ही जाने की कार्यका है, पर यदि हिन्दी-कविता में समस्त कला 'वार्ता' को मिलकर समस्त रूप से हिन्दी कविता की समीक्षा की जाय तो बिना किसी संकेत के वह कला प्रयोग, कि काल की हिन्दी कविता में जीवन 'पूर्ण' रूप से प्रतिरक्षित हो रहा है; क्योंकि काल की हिन्दी-कविता जिस 'वार्ता', और 'सिद्धान्तों' के परिकल्पन प्रकट रूप प्रकट कर रही है, उन 'वार्ता' और 'सिद्धान्तों' का काल के जीवन से अधिक प्रकट प्रकट है। काल: द्वितीय उपाय की हिन्दी कविता की समस्त के लिए इन 'वार्ता' और 'सिद्धान्तों' पर ही प्रकट प्रकटा अधिक होगा। क्योंकि द्वितीय उपाय की कलात्मक रचनाएँ हिन्दी 'वार्ता', और 'सिद्धान्तों' के परिकल्पन प्रकट कलात्मक में जाती, और जा रही हैं।

साहित्य की हिन्दी कविता कई प्रकार के लोगों, और विद्याओं के अन्तर्गत है।
 तुलसीदास के समय से ही इन 'बंदों' से हिन्दी साहित्य की प्रभावित कला
 हिन्दी कविता में बाढ़ आरम्भ कर दिया है। वहीं इन मुख्य 'बंदों' पर
 अधिष्ठात्यन्तबाद प्रभाव डालने का प्रयत्न किया जायगा, जिससे साहित्य
 की हिन्दी-कविता अधिक उन्नत और प्रगतिशील हो रही है। उन बंदों के नाम
 इस प्रकार हैं—अभिज्ञानबाद, अन्योनित्यबाद, अर्थ वैयर्थ्यबाद, वस्तुत्वबाद,
 आदर्शबाद, समानबाद, व्यक्तिबाद, रहस्यबाद, कुतर्कबाद, प्रतीतिबाद, और सीधे-
 बाद। एवं प्रथम इन अभिज्ञानबाद को लेते हैं। 'अभिज्ञानबाद' एक विदेशी
 विद्या है। इस विद्या का सम्बन्ध इन्द्रो का दार्शनिक विज्ञान सीधे है। सीधे ने
 अपने इन्द्रविज्ञान के अनुसार 'कल्पना' को ही प्रधानता प्रदान की है। सीधे का मत
 है, कि 'कल्पना' का मूल कारण कवि की कल्पना है, जो उसके कारण के भीतर विद्य-
 मान रहती है। उनका मत है, कि कवि के द्वारा जो वस्तु बाहर प्रकट में आती है, वह
 कवि की कल्पना ही है। सीधे वस्तु को प्रधानता नहीं देता; वह प्रधानता प्रदान करता
 है, कवि की कल्पना को उसके दृष्टि में कवि की कल्पना कला एक दार्शनिक दृष्टि है, जो
 सीधे के मन में प्रकट होती है। सीधे 'सीधे' है; इसलिए सीधे कला के अर्थप्रदान
 में भी विफल नहीं करता। उनका धारणा है, कि कला छोटी नहीं रहती हो सकती।
 'कला' ही 'कला' है। उनके छोटे-बड़े का भेद नहीं। वह 'कला' को एक असीमता के
 क्षेत्र में देखता है। वह चाहता है, कि कवि को उस कला को, जो असीमता के क्षेत्र में
 निवास करती है, वादक को उसे असीमता के क्षेत्र में देखे। जिस प्रकार वह 'कला'
 में सीधे-कला के अनुभव नहीं करता, उसी प्रकार वह वादक की भी इन 'भेद'
 को तुल्य करके उसे एक समग्रता पर खड़ा करना चाहता है। वह चाहता है, कि
 कलाकार की सीधे वादक का दृष्टि भी संतुष्ट हो। इस प्रकार वह 'कलाकार', और
 वादक—दोनों को 'संतुष्ट' भूमि पर स्थित करने दोनों की प्रतिभा का कुदृष्टता
 से संशय स्थापित करना चाहता है। सीधे का एक मात्र उद्देश्य है, सीधे की
 अभिज्ञान। वह अपने 'सीधे' को 'सीधे' के ही मन में प्रकट चाहता है। उनसे
 'सीधे' में सीधे, और 'द्वि' के लिए कोई स्थान ही नहीं है। 'सीधे' का अभि-
 ज्ञानबाद 'कुतर्क' के 'वस्तुविचार' से कुछ कुछ मिलता है। जिस प्रकार 'कुतर्क' अपने
 'वस्तुविचार' में वस्तुविचारों के द्वारा सीधे-वस्तुविचार करता है, उसी प्रकार सीधे के
 'अभिज्ञानबाद' में भी सीधे की अभिज्ञान वस्तुविचारों के ही द्वारा होती है।
 पर दोनों की सीधे-वस्तुविचार में अन्तर है। सीधे की सीधे-वस्तुविचार केवल सीधे के पक्ष
 में है; पर कुतर्क की सीधे-वस्तुविचार में सीधे के साथ ही साथ 'द्वि' की विराजमान
 है। इस प्रकार दोनों की अभिज्ञान का एक ही दृग्य होने पर भी दोनों की अपनी
 तुल्य-तुल्य दिशाएँ बन गई हैं। हिन्दी कविता में सीधे का 'अभिज्ञानबाद' किसी
 लकी की रचना में पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हुआ है। 'कलादी' की रचनाओं में
 अभिज्ञानबाद की अच्छी कला देखने को मिलती है। सीधे महोदय कवि,

'मिलाता' और 'कट' को एकसाथी में भी सम्मिलनकार की भूमिका मिलती है।

'उपसर्गमिलाकार' का प्रयोग अधिक प्रचलित है। 'उपसर्गमिलाकार' का अर्थ उभयार्थ में रहता है, जो संज्ञा के अन्तर्गत भी उभयार्थ अर्थों के भीतर सम्मिलित हो जाता उपसर्गमिलाकार है। यथार्थ जो 'कलाकार' है, वे 'जीवन' के लिए है, और वह 'जीवन' के लिए है, वह उनका उपसर्ग किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति करता है। किन्तु आज कल के 'उपसर्गमिलाकार' उपसर्गमिलाकार का अर्थपर जिस अर्थपर वह करते हैं, वह अर्थपरकलाकी की पूर्ति, और 'लाभ' के अर्थों से बना हुआ है। वे अपने 'उपसर्गमिलाकार' में बहुत से बहुत उभयार्थ उपसर्गों को साथ में ही लेते हैं। उपसर्ग दृष्टि बहुत के अर्थपर वह नहीं, बहुत के उपसर्ग पर ही केन्द्रित रहती है। वे 'जीवन' का अनुभव बहुत की उपसर्गमिला में ही करते हैं। उपसर्ग दृष्टि में नहीं बहुत दुर्लभ है, जो उपसर्ग है। 'उपसर्ग' का भी अर्थ में उपसर्गमिला में ही करते हैं। इस प्रकार उपसर्ग दृष्टि विस्तृत रूप के 'लाभ', और लाभकारिताकी की पूर्ति पर ही केन्द्रित रहती है। यथार्थ के 'कलाकार' और उपसर्गमिला में अधिक अर्थपर है। यथार्थ के 'कलाकार' में नहीं 'कला' मुख्य है, नहीं उपसर्गमिलाकार में 'लाभ कारिता' की मुख्य अर्थपर विद्यमान है। पर अर्थपर ऐसे हुए जो यथार्थ के 'कलाकार' और 'उपसर्गमिलाकार' में सम्मिलन किया जा सकता है। 'सांस्कृतिक साहित्य' के इस प्रकार का सम्मिलन मनी यथार्थ देखने की मिलता है। यदि बहुत दृष्टि से विचार किया जाय तो जीवन में एकता-मूल पर दोनों के सम्मिलन के बिना किसी नहीं है। यही एकता में दोनों 'कारों' के सम्मिलन से ही जीवन के सुख विषयों का निर्माण भी हो सकेगा।

हिन्दी में कई ऐसे उपसर्गमिलाकार कलाकार हैं, जो अपने की विस्तृत उपसर्गमिला-कारी करते हैं। इस कलाकारों में सम्मिलनकार अर्थ, दृष्टाकार-सोयी, और अर्थों न दृष्टादि का मुख्य अर्थ है।

'अर्थपर के'कार' का अर्थपर अर्थ के अर्थपर अर्थों से होता है। यथार्थ अर्थ सम्मिलन का अर्थपर अर्थ होता है, अर्थपर यह अर्थों और अर्थों के रूप में सम्मिलन अर्थपर के अर्थों के ही अर्थपर अर्थों करता है, पर अर्थपर अर्थों में वैयक्तिक-कार अर्थपर अर्थपर अर्थों होता है। जो जो अर्थपर अर्थ के अर्थपर-अर्थपर में अर्थपर अर्थपर अर्थपर अर्थों होता है, पर अर्थपर अर्थ अर्थपर अर्थपर अर्थों लेते होते हैं, जो अपने अर्थपर के अर्थों में ही जीवन, अर्थपर और अर्थपर को देखते हैं। अर्थपर अर्थपर की अनुभूति और अर्थपर, जो अपने अर्थपर के ही अर्थपर अर्थों है, अर्थपर अर्थपर और अर्थपर अर्थों है, कि अर्थपर अर्थ में अर्थपर अर्थों को अर्थपर लेती है। अर्थपर अर्थपर, अर्थपर अर्थपर, अर्थपर अर्थपर, और अर्थपर अर्थपर अर्थपर अर्थपर अर्थपर है कि अर्थपर अर्थपर अर्थपर, अर्थपर अर्थपर, और अर्थपर अर्थपर अर्थपर अर्थपर को करता है। इस प्रकार के कलाकार अर्थपर अर्थपर और अर्थपर अर्थपर अर्थपर अर्थपर है। अर्थपर

कालों की दृष्टि से, उनके व्यक्तित्व में कौन से समुदाय दिखाई पड़ती हैं; पर हमने बहिस्र नहीं, कि उसके व्यक्तित्व के साथ किस समुदाय की सृष्टि होती है, उसका नाम क्या है, उसमें कौनसे मूल्य-वृत्त स्थान होता है। नाम की हिन्दी खोज में स्थित वैज्ञानिक के हाथों प्रयुक्त के जाने वाले हैं, पर उन सब में बीजनी महादेवी वसी की की रचनाएँ सबसे हैं। व्यक्ति वैज्ञानिकता अपनी किस विशेषताओं के कारण नाम में समाहित है, उसकी वे विशेषताएँ कीकती महादेवीकी की रचनाओं में वास्तविक रूप में प्रतिबिम्बित हुई हैं।

व्यार्थवाद की सम्यग्वाद की गढ़ने हैं। व्यार्थवाद 'तथ्य' पर आधारित है। देखते और कहते में व्यार्थवाद अधिक सत्य है, पर वास्तव में यह अधिक गूढ़ और व्यापक है। व्यार्थ और तथ्य क्या है—इसकी परत परत कभी कभी की परत में ही समझी है। क्या हमने वाक देती प्रतिभा है, जो तथ्य और व्यार्थ का समर्थन कर लेते। तथ्य और व्यार्थ का बीच एक समान नहीं हो सकता। किसी वस्तु या विषय में तथ्य और व्यार्थ का बीच होनी की कल्पना करने दृष्टिकोण के अनुसार ही होता है। लोग अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार तथ्य और व्यार्थ की परिभाषा की विभिन्न करते हैं। यही कारण है, कि व्यार्थवाद की परिभाषा के क्षेत्र में लोग आम एक एक मत नहीं हो लेते। व्यार्थवाद की होमों की अपनी अपनी विभिन्न परिभाषाएँ, और उसके संलय में लोगों का अपना अपना विभिन्न दृष्टिकोण है। भारतीय साधुओं के अनुसार व्यार्थ और तथ्य की संज्ञा उसी की ही जाती है, जो अपने आप से ही सम्पन्न और विद्व होता है। उसके समझ में यह नहीं पता था कि यह पदार्थ के पुनर्क होता है और उसके संलय में यह भी नहीं कहा जा सकता, कि हमने विश्व और संप्रसार की अवस्था नहीं होनी। पर आम तत्त्व हमारे समुदाय की व्यार्थवाद है, उसकी सीधे एक दूसरे की पुनर्कृति पर विचार की जा रही है। सत्यता के व्यार्थवाद की सीधे हम देख पाते हैं। इसका एक नाम कारण नहीं है, कि वर्तमान समय में अधिकतर लोग की अपने की व्यार्थवादी कहते हैं, व्यार्थ के रूप की गूढ़ करने में धन: असमर्थ होते हैं। आज सब लोग व्यार्थवाद का दर्शन भौतिकता के संघ, और परम की वास्तव में ही करते हैं। आज सब के व्यार्थवादियों की दृष्टि केवल जन्म की ही और जाती है। वे बहुत विषय, और व्यक्ति में केवल उनकी वस्तु की दृष्टि हैं, जो उनकी दुर्बलता के कम से उसके भीतर समाविष्ट करते हैं।

व्यार्थवादी रचनाएँ भौतिक-मौलिक की समझी दुर्बलताओं की ही पुनर्कृति पर सृष्टी की जाती हैं। भारतीय दुर्बलताओं के वे विषय व्यक्ति, समाज, और जीवन के लिए विचार होमैं या नहीं—इस बीच व्यार्थवादी समझार की दृष्टि नहीं जाती। उसकी दृष्टि केवल जन्म, विप्लव, और लोगों के विच्छेद ही की और रहती है। वह संप्रसार समुदाय में ही व्यार्थ की सीधे करता ही है, उन व्यार्थ पुनर्क में वह वह व्यार्थ ही सीधे है, जो समाज, राष्ट्र, और जीवन के समझ करे जाते हैं।

जब की ही महान सेवा है, और इसके लिए जिस का योग की सेवा है। 'कल्याण-वाद', और 'कल्याणवाद' की यह विचार धाराएँ समाज की हिन्दी कविता में एक रूप के विचारों पकड़ी हैं। आज के कविताएँ युवक कवियों की रचनाओं में हिन्दी 'वादों' की सेवा मिलती है। आज हम हिन्दी 'प्रगतिवाद' की कहते हैं, उनमें कितने ही ऐसे लोग हैं, जो 'कल्याण' के लिए 'कल्याण' नहीं करते, बल्कि वे कविता करते हैं उनमें प्रिय राजनीतिक विचारों का प्रचार करने के लिए। परन्तु यहाँ हिन्दी कविता ऐसे विचारों से भरी है या नहीं है, जो मनुष्य की सेवा, धर्म, ईश्वर, और ईश्वर के परमेश्वर पर आधारित सेवा करने के लिए है।

आज की हिन्दी कविता पर 'गौरीवाद' का एक प्रभाव है। हमारा आज का जीवन गौरीवाद से जोत जा रहा है। जीवन का प्रतिष्ठित भाव, और लक्ष्य पर पकड़ा गौरीवाद है। आज यह सामाजिक हो है, कि हिन्दी कविता गौरीवाद से प्रभावित हो। गौरीवाद के हमारे जीवन गौरीवाद के उन विचारों से हैं, जो मनुष्य विचारों के रूप में हमारे सामने प्रकाश हुए हैं। गौरीवाद के विचार जीवन, समाज, और राष्ट्र के लिए हमारे सामने, हमारे ऊपर और हमारे कल्याणकारी हैं, कि उनसे हमारा 'समाज' और 'वाद' की सेवा के भीतर की जाने लगी है। गौरीवाद गौरी की के किन विचारों की समझ है, उनमें सामाजिक, और नीतिमूलक दोनों का ही प्रतिष्ठित रूप में समाज है; दूसरे रूप में यह समाज की एक ऐसे परमेश्वर पर ही जाना चाहता है, यहाँ यह हमारे हाथ से योग मनुष्य के रूप में प्रभावित हो गये। 'गौरीवाद' यहाँ समाज के नीतिमूलक विचारों पर प्रकाश है, यहाँ यह 'सर्व' और 'कल्याण' की भी बात करता है। यहाँ यह समाज की सामाजिक, नीतिमूलक, और नीतिमूलक विचारों की समझ करता है, यहाँ यह समाज की भी सेवा करता है। 'गौरीवाद' की हमारे अधिक उच्चतम बात यह है, कि यह किसी भी सामाजिक समस्या का विचार 'सर्व' और 'कल्याण' की दृष्टि से करता है। इस प्रकार यह मानना होता है, कि आज के राजनीतिक विचारों में 'गौरीवाद' का सामाजिक महान रूप प्रकाश है।

हिन्दी कविता और साहित्य पर 'गौरीवाद' का प्रतिष्ठित रूपों रूप से पकड़ा, और यह रहा है। गौरीवाद कवियों ने भी नीतिमूलक रूप, जो सामाजिक जीवन, और भी जीवनमूल्य विचारों इत्यादि की 'गौरीवाद' के अधिक प्रभावित विचार हैं। जो नीतिमूलक रूप 'गौरीवाद' के प्रतिष्ठित कवि करने लगे हैं।

आज की हिन्दी कविता में 'रहस्यवाद' की अधिक प्रभावी है, प्रभावी ही नहीं, अधिक रहस्यकारी भावनाएँ प्रकटित हो उनमें प्रकटित हो रही हैं। आज रहस्यवाद का रहस्यवाद है—एक पर भी प्रकाश प्रकाश प्रकटित होता है। यह प्रकाश, जो हमारे मनुष्य रहस्यमान है, एक रहस्यमान है। यह प्रकाश का सबसे अधिक और सबसे बड़ा रहस्य यह है, जो जीवन के भीतर प्रकटित होकर प्रकटित होने लगा-

विश्व विद्या कहता है। उसी को हम एक सांस्कृतिक 'राष्ट्र', और एक जनरीय भक्त मानते हैं। इस मूल भक्त में जो कुछ है, वह उसी जनरीय 'राष्ट्र', या राष्ट्र की भक्त्य भक्त है। यही जो राष्ट्र और भक्त्य का मूल भक्त के रूपों से हम जानते हैं, यही वह उसकी स्वीकृति को मान्य मूल भक्त के रूपों से मान्य नहीं होने, कि वह समाप्त हो उठती है, और राष्ट्रियता को मर का मूल भक्त को और प्रभाव होती है। मूल भक्त में राष्ट्र होने पर वह मूल भक्त के ही रूपों का विभक्त नहीं है, उसे उसी की अनुसृष्टि होती है, और वह उसी का विभाजन भी करती है। उसे इस राष्ट्रिय भक्त के समर्थ मूल रूपों में जो उसी 'राष्ट्र', और 'जनरीय' राष्ट्र का आधार होता है। फिर यही जो भक्त्य और राष्ट्र के वह आधार होता है, उसी को हम 'राष्ट्रवादी' यही मानते हैं; दूसरे रूपों में वे संघर्ष यही राष्ट्रवादी हैं, जो इस मूल का अनुसृष्टि करते हैं, जो इस मूल भक्त में 'राष्ट्र' के रूप में समाहित है, और यही वह साहित्यात्मिक तथा वे ही भक्त का समा-जन हो रहा है।

'राष्ट्रवाद' का जो एक सौम्य विधि का नाम है। फिर प्रकार 'राष्ट्रवाद', 'राष्ट्रवाद', और 'भक्त्यवाद' इसके सांस्कृतिक विधान हैं, उस प्रकार का कोई 'वाद' या 'विधि' राष्ट्रवाद नहीं हो सकता। क्योंकि 'राष्ट्रवाद' का उपयोग सामान्य जीवन में नहीं किया जा सकता। 'सामान्य जीवन' के लिए राष्ट्रवाद है भी नहीं। इस विधि में मूल्य का प्रथम उस 'राष्ट्र' या 'राष्ट्र' का अनुसृष्टि करता है, जो इस राष्ट्र में विभाजन है। इस अनुसृष्टि के जीवन पर मूल्य का यही प्रभाव 'राष्ट्र', और उसकी अनुसृष्टि-विधि होती है। अनुसृष्टि के प्रभाव वह अपनी 'राष्ट्र', और 'राष्ट्र' के अनुसृष्टि का प्रभाव होने के उनके बाद प्रभाव सामान्य जीवन के लिए समाप्त हो उठता है। 'राष्ट्र' का का आधार होता है, और भक्त अपनी भक्ति का। सांस्कृतिक यही विधि की अनुसृष्टि की 'राष्ट्र' होता है, और यही अपनी भक्त्य तथा अनुसृष्टि का संघर्ष प्रभाव है। इस प्रकार अपने रास्ते की संघर्ष होती है, वह उसी की लेकर उस 'राष्ट्र' की और ही प्रभाव है। या वह विधि है, कि इस प्रकार का 'अनुसृष्टि' न जो सामान्य जीवन की होता है, और न सामान्य का एक प्रकार की ही हो गया प्रभाव है। इस प्रकार की भक्त का 'आधार' यही से ही उनके जीवन की प्रभाव होता है। हिन्दी साहित्य के दृष्टिकोण में देखें लोगों की संघर्ष साहित्य है, किन्हीं एक प्रकार की रास्ते का आधार होता है, और किन्हीं उस आधार की भक्त, और रास्ते में ही प्रभाव है। देखें लोगों की ही हम 'संघर्ष का' के राष्ट्रवादी तथा यही मानते हैं। भक्ति का के मूल यही में संघर्ष देखें यही हो रहा है, किन्हीं उस स. का अनुसृष्टि किया है, और अपनी भक्त्य की के द्वारा उनके भक्त तथा रास्ते के रूप में प्रभाव है। 'राष्ट्र' और अपनी इसके इसके हैं।

यही वह राष्ट्रवाद के रूप में उभरता है, वह अधिक मात्र, और अनुसृष्टि

ही उठता है। रहस्यवाद के क्षेत्र में कवि का रहस्य उसकी एक मात्र अनुभूति ही होती है। कवि अपने साधुमूर्ति ही के द्वारा उस 'अपरिच्छिन्न कर्म' से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। उसके सम्बन्ध-भावना में प्रेम, विश्वास, संवेग, और आनन्द इत्यादि भावों की प्रधानता होती है। कवि अपने इन भावों को गीति-गीति के लक्ष्यों को साकार मान कर प्रगट करता है। कभी वह उसे अपना प्रियत्व मानता है, तो कभी अपना कर्म। कभी उसे प्रियत्व मान कर सर्व प्रेमी के रूप में अपने भावों को प्रगट करता है, तो कभी सर्व जगत् के रूप में अपने हृदय के भावों को प्रियेकता है। कभी-कभी वह प्रकृति से भी उसकी प्रीति को प्रगट कर उस पर प्रेम ही उठता है। इस प्रकार कवि रहस्यवाद के क्षेत्र में अपने भावों को विविध कर्तों में प्रगट करता है। वह माया और मर्त्य आदि किन साधनों के द्वारा अपने भावों को प्रगट करता है, उनमें भी सहस्यप्रगट होती है। उसके मूर्तों में साधुनिकता और प्रीतिभाव अधिक होती है। वह मूर्तों के स्थापन में मूर्तों के कर्तों पर न बल मूर्तों की प्रीति, और उनमें किसी हुई प्रीति पर ही अधिक ध्यान देता है।

रहस्यवाद की अनुभूति दो कर्तों में होती है—अपरिच्छिन्न कर्म में, और सीमित कर्म में। अपरिच्छिन्न कर्म में वह रहस्यवाद की अनुभूति होती है, उस मूर्तों में किन एक ही कर्म—सर्व के सर्वोत्तम स्थापित मान करता है, और सर्वोत्तम कर्म के सर्वोत्तम स्थापन द्वारा उसे प्रियेकित मान दिखाई करते हैं। रहस्यवाद का सीमित कर्म हृदय के भीतर ही स्थापित होता है। इसका सम्बन्ध मूर्तों की प्रीतिप्रगट कर्म से होता है। सीमित रहस्यवाद में व्यक्ति का ध्यान प्रीति और प्रीति के सीमित कर्म पर अपने ही एक सीमित रहस्य है। वह हृदय में स्थापित कर्म—सर्व के मान कर्मों से अपने सम्बन्ध स्थापित करता है, और उसे प्राप्त करने के लिए उत्प्रेरित होता है। साधुनिक हिन्दी कविता में, जिसे हम एक कविता की कविता करते हैं, रहस्यवाद का अपरिच्छिन्न स्वरूप माना जाता है। किन्तु आज कल हिन्दी कविता में किन्तु रहस्यवाद की प्रीतिप्रगट ही रही है, उसे हम रहस्यवाद का दूसरा ही कर्म कहेंगे। किसी-किसी रहस्यवादी कवि में, आज भी, उस की प्रीतिप्रगट कर्म देखने को मिल जाती है। हिन्दी कविता का आज का रहस्यवाद प्रीतिप्रगट भावों में प्रगटित है। यही कारण है, कि उसमें अनुभूति के साथ ही साथ विचार का भी योग है।

हिन्दी कविता में किन्तु रहस्यवाद की प्रीतिप्रगट हुई है, उसके बाद मात्र किन्तु का कर्म है—(१) प्रेम-सीमा में सर्वोत्तम रहस्यवाद, (२) सर्व और उपरान्त सम्बन्धी रहस्यवाद, (३) साधुनिक रहस्यवाद, और (४) साधुनिक रहस्यवाद। प्रेम और प्रीतिप्रगट सम्बन्धी रहस्यवाद वह है, जिसमें प्रेम और प्रीतिप्रगट सम्बन्धी भावों की प्रधानता होती है। इसके अंतर्गत कवि अपने हृदय में अपरिच्छिन्न कर्म की प्रीति, और उसके प्रीतिप्रगट का अनुभव करता है। फिर प्रीति, और प्रीतिप्रगट के रूप में उसकी प्रीति के लिए

उन्हीं नेरुवा मास हुई है। 'सुधासाध' के नाम का एक कृता, और कभी कभी कारण मिश्रण की भावना भी है। हिन्दी काव्य में हिन्दी कविता काव्य, भाषा, शैली, शब्द और कल्पना—प्रत्येक क्षेत्र में एक सीमा के भीतर बन्द कर दी गई थी। ऐसे काव्य की फिर जंगलों की ओरकर वह बाहर निकल पड़े थी, वे जंगलों की ही व किन्हीं रूप में हिन्दी काव्य में पुनः उनके पैरों में पड़ रही थी, परिष्कार समझ उसके भीतर मिश्रण की सृष्टि हुई। उपर मिश्रण की सृष्टि हुई, और इसमें विद्या और कर्मोरी की कविताओं में उसके ऊपर एक नया प्रकार काव्य। परिष्कार समझ भाषा, भाषा, शैली, और कल्पना प्रत्येक क्षेत्र में नई भावनाएँ काव्य हुईं। लोग कभी-कभी से कविता की उपस्थिति करने लगे। यद्यपि उनकी इस उपस्थिति के मूल में 'सुधासाध' की ही भावना थी, पर मार्ग विविधता न होने, और सामुदायिकों की निर्देशिकाओं के कारण उनकी रचनाओं में समानता का गई, और लोगों ने उन्हें मार्ग के रूप में 'सुधासाध' के नाम से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया, पर वह उपाह्व यका नहीं। किन्तु सामुदायिकों में निर्देशिका थी, वे अपने स्थान पर ही वह गए। पर जो इसके मार्ग की ठीक-ठीक समझ कर चले थे, और किन्तु सामुदायिकों में वह था, वे बाहर इस जीवन मार्ग पर चले गये, और काव्य की बात थी है। ऐसे कलाकारों में 'अनाद', 'कर्म', 'मिरासा' और महादेवी वर्मा का नाम प्रमुख है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने इस दिशा में अधिक गतिशीलता और सज्जितता प्रकट की है।

इस आदर जिन रचनाओं की सुधासाध का नाम देते हैं, उनमें अधिकांश में मिरासा की भावना है। हुए और मिरासा ही उनका मुख्य विषय है। यद्यपि कहीं-कहीं 'मिरासा', और कुछ की वह भावना कहीं-कहीं बरे में का गई है, पर किन्तु इस प्रति-विन्द बधि करते हैं, उनकी रचनाओं में कुछ, और मिरासा का जीवन विद्याका और भावना की ही प्रमुखता पर विश्वास रहा है। 'मिरासा' और कुछ के सम्बन्ध में काल्पनिक दृष्टिकोण होने के कारण मिरासा में 'आना' और कुछ में 'आनन्द' का रूप प्रकट कर दिया है। कविता में 'मिरासा' और कुछ के नामों की मेलने के लिए जिन कल्पनाओं का आशय होता है, वे उम्माद, और उम्मादों के रूप पर आनन्द की दिशाई देती हैं। वे नामों के रूप में हुए कर जिन निषेधों की हमारे सामने प्रस्तुत कर रही हैं, उनके भीतर कहीं भी वह 'कुल' और मिरासा नहीं दृष्टिकोण होती, जिससे मन बौध उठता है, कर्म उनके भीतर दिखती पड़ता है, वह आनन्द और वह हीन्दु, जो मन की सम्पत्ति करने के साथ ही काम पाओं की भी विन्दु कर देता है।

'असहिष्णु' के मूल में 'असहि' सम्य समर्पित है; जिसका अर्थ—होता है—आगे बढ़ना, विचलित होना। यदि इस असहिष्णु को इस अर्थ में ली, तो वह भावना असहिष्णु कहेंगे, कि असहिष्णु कोई नया शब्द नहीं है, बल्कि वह ही कविता का अर्थ एक विरतिविध हुए-का है। यदि इस 'असहि' सम्य के अर्थ को

को राजनेत्र बन कर कविता के इतिहास को समीक्षा करें, तो वह देखेंगे, कि उसमें विराट्तर प्रगति हुई है। हिन्दी कविता के काम की कड़ुमी पर इति-साक्षि। फिर प्रकार-मोटी और चारों ओर के स्तर में उसका जन्म हुआ, फिर प्रकार वह उसका भी कड़ुम से खेती, और फिर फिर प्रकार काम में कविता को माला लेकर विराट्तर का नाम माने लगी। फिर प्रकार उसका संभवतः वह हुआ, और फिर फिर प्रकार वह नीतिगत के रूप में चल कर अन्ततः काम में कविता को लम्बने लगी। फिर प्रकार कालिका के कारण उसका स्वरूप बदल हो गया, और फिर फिर प्रकार संशोधनी साक्षि में उसने मूल जीवन प्राप्त किया। जीवन जीवन प्राप्त करने के लिए प्रकार वह गति होत हुई, और फिर फिर प्रकार वह कृतकवाद और कृतकवाद के मार्ग पर जाने लगी। वह हिन्दी कविता की प्रगति ही हो है। इस कार्य में हिन्दी कविता का प्रतिक्रियाशील रही है, और काम भी है। पर काम 'प्रगतिशीलता' का अर्थ अपने मूल मार्ग से दृष्टि हट गया है। काम 'प्रगति' की अवस्था केवल वह में न प्रगति होकर एक संकीर्ण चेतने में ही रह गई है। काम वह केवल एक 'कद' मात्र है। काम उस एक विशेष प्रकार की रचनाओं को ही 'प्रगतिशील' रचनाएँ कहते हैं, जिनमें विचार, भाव, और कथन के विचार की ओर में 'भारतीय जीवन', भारतीय चरित्र, भारतीय रीति-रिवाज, और देश-काल, और देश-काल के प्रति विरोध की भावना होती है। वह रचनाएँ एक विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनका उद्देश्य एक मात्र सामाजिक प्रचार है। काम, कथा, भाषा, और रीति-रिवाज की दृष्टि से इन रचनाओं में वह जीवन नहीं होता, जिसके कारण वह कथा का बने, कि काम-काल में वह स्थिति का समीक्षा। ऐसा कहना वह निश्चित मत है, कि भारतीय जीवन और काम में इन रचनाओं का कोई भी स्थान न हो सकेगा। इन रचनाओं का कवि काम चाहे किन्तु ही कदा कभी न माना जाता हो, पर उसकी रचनाएँ कुछ ही दिनों में उस कला की भीति सुरक्षित कार्यो, को कथन के भीतों में वह लगी है।

'प्रगतिवाद' ही कला में विद्यमान है—एक वर्ग में प्रगतिवाद की वे रचनाएँ हैं, जिनका निर्माण केवल सामाजिक उद्देश्य की दृष्टि के लिए हुआ, और ही पड़ा है। इन रचनाओं की भीति विचारों की कृतकत्व पर केवल की गई है। इनकी विशेषता यही है, कि इनमें विचारों की भावना है। इनमें नहीं कृतकत्वों के लिए विरोध है, नहीं कृतकत्वों के लिए साक्षि की भावना नहीं है। भारतीय कालिका के प्रति विरोध जगत्त काया ही इस ओर की रचनाओं का उद्देश्य है। विशेष वर्ग की प्रगतिवाद की रचनाओं में विरोध और विचारों के साथ ही काम दृष्टि और निर्माण की भावना भी है। इनके विरोध और विचार का जीवन है—मनुष्य की दृष्टि, और जीवन-कथा का निर्माण। इस ओर की रचनाओं में स्वातंत्र्य, और जीवन भी है। भाव, भाषा, और रीति के इतिहास से भी इस ओर की रचनाओं का अधिक मूल्य है।

हिन्दी कविता में अब और एक नए 'चार' का कल्प हुआ है। इस बात को लोग 'प्रयोगवाद' कहते हैं। 'प्रयोगवाद' क्या है, इसकी निश्चित व्याख्या क्या है—

प्रयोगवाद इस सम्बन्ध में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। जो लोग कवियों को प्रयोगवादी कहते हैं, प्रयोगवाद के सम्बन्ध में उनमें भी मेलभेद नहीं है। इसका एक मात्र कारण यही है, कि 'प्रयोगवाद' कवियों कवियों की विविधता, और अनिश्चित विचित्रता पर है। 'प्रयोगवाद' को जो रचनाएँ इस समय सामने आ रही हैं, उनका सम्बन्ध काले पर पड़ा चलता है, कि प्रयोगवाद विरुद्ध रूप से कृत्रिम पर आधारित है। 'कृत्रिम' पर विरुद्ध रूप से आधारित होने के कारण प्रयोगवादी रचनाओं में दृष्टि के कवियों का पूर्ण रूप से अभाव है। भाषा, भाषा, केली, और कल्पना की दृष्टि से इन रचनाओं में किसी प्रकार की विशेषता नहीं दिखाई पड़ती। ऐसा बात है, कि जो रचनाएँ उन रचनाओं का एक नमूना हैं, जिनमें इन भाषा की भाषा में प्रयोगवादी रचनाएँ कहते हैं। 'अर्थ' इत्यादि प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि होते जाते हैं।

हिन्दी कविता में प्रचलित 'चारों' की विशेषता करने के बाद अब हम 'तृतीय' उत्थान के कवियों, और उनमें कविताओं पर विचार करेंगे। तृतीय के लिए हम

तृतीय उत्थान के कवियों को तीन वर्गों में विभक्त कर रहे हैं—(१) सर्वप्रथम कवि, (२) प्रयोगवाद के कवि, (३) कहीं कहीं के नए कवि, (४) प्रयोगवादी और प्रयोगवादी कवि, और (५) विभिन्न भाषावादी के कवि। सर्वप्रथम कविता के कवियों से हमारा सम्बन्ध विशेष रूप से उन कवियों के है, जिनमें पहले काल में तीन वर्गों को अलग दिखाई नहीं है। जैसे—मुकुन्दर प्रसाद, इत्यादि। 'प्रयोगवाद के कवि' वर्ग में हम उन कवियों को स्थान देंगे, जिनमें तृतीय उत्थान के कहीं कहीं के रूप में भी कवियों रचनाओं का स्वरूप प्रयोगवाद में किता है। कहीं कहीं के नए कवि से हमारा सम्बन्ध हमारा उन कवियों के है, जो हैं जो विशेष रूप की देन, किन्तु नवीन भाषा से प्रभावित हैं। जैसे—डा० गोपालचन्द्र, और चन्द्र शर्मा इत्यादि।

'प्रयोगवादी', और प्रयोगवादी कवि वर्ग में हम उन कवियों को सम्मिलित करेंगे, जिनमें 'प्रयोगवाद' और प्रयोगवाद सम्बन्धी रचनाओं की कृति की है। जैसे—प्रसाद और चन्द्र इत्यादि। विभिन्न भाषावादी के कवि वर्ग में हम उन कवियों पर विचार करेंगे, जो आदर्शवाद, मौलिकवाद, अविश्वस्यवाद, प्रयोगवाद, प्रयोगवाद, और प्रयोगवाद इत्यादि से प्रभावित हैं।

तृतीय उत्थान के कवियों में किन कवियों का नाम प्रतिनिधि अलग लिखा जा सकता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—जो मैथिलीवरण गुप्त, जो नवीन भाषावादी मुकुन्दर प्रसाद, जो अर्थवाद, और जो प्रयोगवादी कवि प्रयोगवादी कवि। जो मैथिलीवरण गुप्त की रचनाओं पर विशेष उत्थान में प्रभाव डाला जा चुका है। तृतीय उत्थान की हिन्दी कविता

कुशल विहारे की शक्ति दिखाई देते हैं। असाधारण काल में उनकी काल्य प्रतिभा की कुशलता में समझना सब भारी कर दिया है, और उसने कारि के क्षेत्र खंड तक अपने कवि के महान्वय सब की शक्ति सिद्ध किया है।

असाधारण भाव-काल के कवि हैं। उनकी कल्पना भाव-काल में ही अपने असाधारण की दृष्टि असाधारण है। उनकी कालों की दृष्टि साधारण, और विविध होती है। उसमें मानव दृष्टि के वे सभी मनोविचार आते होते हैं, किन्तु उनका गहन होता है। उनकी शीघ्र की विस्तार है, और पैर की दिखाई देता है। उसमें पुष्टा भी है, और प्रत्यक्षा भी है। उसमें दर्प की है, और शोक भी है। उसमें असाधारण भी है, और विविधता भी है। असाधारण की काल-कल्पना में एक बहुत दिनों की शक्ति की कल्पना सिद्ध की जा सकती है। उनके विचारों में साधारणिकता, और मनोविचारिता है। उनकी समस्त मनोविचारों की सभी शक्ति देता, असाधारण, और विविधता है। वे मानवी दृष्टि के कुशल विचार हैं। कालों के असाधारणों के उनकी समस्त शक्ति है। उनकी दृष्टि में शीघ्रता और कुशलता है। वेदों की और असाधारण में उन्होंने अपनी मनोविचारिता का भी परिचय दिया है।

विशेषीद्वि ने असाधारण में और असाधारण की रचना की है। वह 'वीर रत्न' प्रकाश है।

श्री दुर्गादेवता की वे दुर्गादेवता की शक्ति शक्ति शक्ति की। श्री राम नाम श्रीदेवी ने 'राम श्रीदेवी' नाम की रचना की है। श्री रामकृष्णदेवता की का असाधारण, और श्री असाधारण नामदेवी की सब भारी असाधारण की शक्ति रचना है।

आर्यभट्ट की काल में ही असाधारण पर सभी शक्ति का आधिपत्य ही हुआ था। प्रथम और द्वितीय असाधारण में सभी शक्ति के क्षेत्र में असाधारण सभी शक्ति के असाधारण रचना का। पर सभी तक उसमें की रचना है। सभी शक्ति दुर्गा, उसमें द्वितीयक शक्ति की प्रकाशता की। असाधारण और द्वितीय असाधारण में कालों की द्वितीय असाधारण के शक्ति हैं। ही असाधारण दुर्गा की। असाधारण असाधारणों की असाधारण असाधारण पर ही असाधारण असाधारण काही दुर्गा द्वितीयक होती है। देखा आता होता है, कि प्रथम और द्वितीय असाधारण में कालों का असाधारण सब के असाधारण ही सब पर केन्द्रित था, कि यदि जिस असाधारण हो, सभी शक्ति अपने क्षेत्र पर सभी की बात। इसमें असाधारण नहीं, कि प्रथम और द्वितीय असाधारण में, सभी शक्ति की शक्ति असाधारण तक नहीं, और उसमें द्वितीय असाधारण दुर्गा। द्वितीय असाधारण में सभी शक्ति की शक्ति में सब, भाव, और शक्ति की शक्ति के सब असाधारण सब में असाधारण है। यदि हम सभी शक्ति के असाधारण असाधारण की शक्ति करें, उनके द्वारा सभी शक्ति की शक्ति में सब असाधारण सब पर असाधारण हुआ है। प्रथम और द्वितीय असाधारण के सभी शक्ति के शक्ति की शक्ति यदि केवल

ठाकुर चरण की सत्पुत्रि कही हो उसका और समझना मुश्किल है। वह समझ और चन्द के बीच प्रवेश करके कही उदाहरण से उन पर सत्पुत्रि की कही जाती है, जो सही है—दुसरा यह है। उनकी सत्पुत्रि मानकर या कतिविधि कहती है, वह सत्पुत्रि का वेद भारत करके सर्वत्र मानकर को ही हूँ इसी है—वेद, मोक्ष, देश, वीर्य, लक्षण, और चन्द जैसे क्षेत्र में मानकर के साथ ही अभिन्न कही है। उनके समूहों में सत्पुत्रि मुश्किल है। सत्पुत्रि मुश्किल होने के कारण उनके सत्पुत्रियों में कलक, और चरण की कलकता है। सत्पुत्रि के विषय में उनकी रचनाओं में मिलते हैं। सत्पुत्रि के विषयों का समझ करने में ही उन्होंने कुछकाल व्यतीत की है। वे सत्पुत्रि के साथ ही सत्पुत्रि के जीवन में भी हुए हैं, और सत्पुत्रि के जीवन पर हुए हैं। उनकी कृतियों में चरण की विद्वत्ता और समझ है। उनके मनोरम रसों की अभिव्यक्ति में उनकी रचनाओं में विद्यमान है।

सत्पुत्रियों की रचनाओं की कही में विद्यमान है—कलक में, और कही कही में। इनकी प्राथमिक रचनाएँ, कलक में हैं। 'कही कही' में उन्होंने कलक, और महाकलक की रचना की है। 'कही कही' का रचना कलक नाम 'कलक', और महाकलक 'विद्वत्' अधिक प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओं में कल, और सत्पुत्रियों का कलक के साथ सम्बन्ध हुआ है। उन्होंने चरण और सत्पुत्रि के कलकों को एक ही कलक के रूप में निरी कर उनकी उद्भूत कलक-विशेष का परिचय दिया है। कलक और कही की इनकी अधिक कल, कल, और कलक है।

की उदाहरणरूप हिन्दी में कलक के कलक और कही की कलक और सत्पुत्रि कही कही में कलक की है। उन्होंने विभिन्न विषयों पर कलक, और कही की रचना कही कही में की है। 'कलकविनी' और 'कही कही' के नाम से उनकी रचनाओं के दो कलक प्रकाशित हो चुके हैं।

की उदाहरणरूप पश्चिम और रस के सम्बन्ध में है। इनकी कलक-कल की सत्पुत्रि उद्भूत है। इनकी उद्भूतता कही की और कही है। वे सत्पुत्रियों का विचार कही के जीवन-कल' विषयों में ही करते के पक्षधारी हैं। उनका कलक का यह जीवन पूर्ण जीवन, जिसे हिन्दू या भारतीय संस्कृति का विषय कहते हैं, अधिक विषय है। उन्होंने कही के सत्पुत्रियों में कलक कलक उन कही की कलक विद्यमान है, जिसमें कही के भारतीय संस्कृति, और जीवन का जीवन जलजिह्व है। उनकी कही की कलक-विचार उनकी रचनाओं का आधार है। उन्होंने उन कलकों को, जिसे कही, सत्पुत्रि, कलक, लक्षण, कलक, और सत्पुत्रि है, कलक को कलक पर कलक के रूप में माना है। इनका रस मुश्किल है, प्रसिद्ध है। केवल यह विचार से नहीं, कि इनका रस कल की

राष्ट्रीयता, और सामूहिकता के विकास में सहायक है, यद्यपि इस विचार से भी, कि इसमें एक सांस्कृतिक कवि की कला की संशय है।

पवित्रकी की रचनाएँ दो प्रकार की हैं—पौराणिक के रूप में, और संत काल के रूप में। 'इन्दी-कावे' और 'बीर' उसका महाकाव्य है। इन्दी कावे की कथा भारतीय इतिहास के रामकृत काल की वह कथा कहती है, जो महाभारत काल की सीता, उसके दैत्य प्रेम, स्वयं, और पवित्रकाल की भावनाओं से जोड़ दी गई है। कथा सुन्दर, और जीवन्मयी है। रामकृत काल की कथाओं में इसका सम्बन्ध स्थान है। पवित्रकी के काल में महाकाव्य के लिए इस कथा की तुलना अपनी कथावृत्ति का परिचय दिया है। इसकी भावना-कला कथा के निर्माण में बड़ी कुशल है। वह अपनी कवि, और इतिहास के अनुसार ही कथा का निर्माण करती है। केवल निर्माण ही नहीं करती, उसका विकास की कुशलता के साथ ही करती है। इन्दी कावे में कथा का विकास बड़े बीजक के साथ हुआ है। कवि ने स्थान-स्थान पर उसमें सहायता का भी प्रयत्न दिया है, जिससे कथा की समग्रता और भी अधिक बढ़ गई है। इन्दी-कावे की भावनाओं से लदी है। इसमें स्थान-स्थान पर और एक का देश के राजा काटना करता हुआ इतिहासकार होता है, जो कवि के सांस्कृतिकदृष्टि के निष्कर्ष है। सभी चीजों में वह अपने देश का एक ही महाकाव्य है। इसमें 'इन्दी', और 'बीर' की अनेक छोटी-छोटी या विषय नहीं कुशलता के साथ हुआ है। पवित्रकी का दूसरा महाकाव्य 'बीर' है। 'बीर' की कथा भी भारतीय इतिहास के रामकृत काल की कथा है। वह कथा उस पवित्रकी के जीवन की कथा है, जो अपने जीवन की सच्चा के लिए कई बड़ा रामकृत कालों के साथ जर्मि में चलकर गयी हो गई थी। इस कथा के चुनाव में ही पवित्रकी की कथा कला में अपनी समग्रता के परिचय दिया है। कथा स्वयं, प्रेम, उत्साह, और बीरता के कालों से लदी है। बीर बीर में इसमें भी भावना का प्रयत्न है। इसका एक कथा एक है। कवि ने इस कथा को बहुत एक से अभिव्यक्ति करने उसकी सांस्कृतिकता की और भी अधिक प्रभाव वाली कथा दिया है। कथा की भावना का रूप देने में, कवि की अभिप्राय की प्रभावता साथ-साथ दिखाई देती है। कवि ने लेकर और एक काल के साथ अभिव्यक्ति होकर दूर की विचार करते रहते हैं। 'इन्दी' पवित्रकी का और काल है। पहले इसका नाम 'बीर' के दो बीर' था। बीर के दो बीर का निर्माण का ही 'इन्दी' है। इन्दी की कथा बीर का प्रयत्न है। इसमें 'राम' 'स्वयं' के रूप में लक्ष्मण, और मेघ-नाथ के रूप में मोरार पुरा विद्य है। कवि यह पवित्रकी की भारतीयता रखता है, वह कथा और भावना की दृष्टि से इसका भी जीवन कुछ कम नहीं है।

पवित्रकी और, और कथा एक के कवि हैं। इसकी भावना कला इतिहासकार कर्तव्यों में ही अपना महत्व जानती है। वह इतिहासकार कर्तव्यों के जीवन ही भावी की दृष्टि करती है। भावी की दृष्टि करने में वह नहीं कुशल है। इसकी दृष्टि नहीं कुशल, और अधिक होती है। उत्साह, और बीरता के बीच में वह विद्युत की

भाँति समझती है। उदाहरण, और स्वाभाविकता का यह नहीं परिचय नहीं होती। उसकी दृष्टि और सभी से ऊँचा होने के साथ ही साथ अधिक सरल, सुन्दर, और आकर्षक है। इतिहासकार कहीं-की भी सोच के भीतर बोलनेकी भी समझ-बूझ के विविध प्रकार के भावों का विवरण किया है। कहीं वह हृदय के हृदयों के साथ फैलती है, और कहीं हृदयकार विषयों का संभव करता है। कहीं वेग और गुँवार का सामना करता है, तो कहीं कठका का विचारण करने में करने को मूल करती है। कहीं उलझ और उलझ के दीपक करता है, तो कहीं नीमता और उलझ के दुनों के साथ फैलती है। कहीं कठका का रूप करता है, तो कहीं उलझ की समझती के विचार ही करती है। इस प्रकार बोलनेकी भी समझ-बूझ के विविध भावों की शक्ति की है। उनको समझ दृष्टि में उनके हृदय की समझ, और विचारता है।

पुरोहित स्वाभाविकता ने 'नलनील' नामक महाकाव्य की रचना की है। इसकी हीनी द्वितीयकी के आरम्भिक भाग की हीनी है। इसकी रचना के संस्मृत रूप-रूप आधीन कीदृशों के विषय में मिलते हैं। कथा, कथा, जोष, जोष, और हीनी की दृष्टि के यह स्वाभाविकता के विरुद्ध हुआ करता होता है। पुरोहितकी की सुदर कविताकी के ही सोच की समझित की चुके हैं, जिसका नाम 'रस विष्णु' और 'रस के जोषों' है।

गुप्तसौन्दर्य 'द्वितीय' ने 'गुप्तसौन्दर्य की कथा' की रचना की है। यद्यपि इसकी रचना का आधार की कथा के चरित्र का विविध रंग है, पर इसमें आधुनिक समझकी की समझ में मिलती है।

श्री सिवायामहाराज की समझ प्रथम का हीन अधिक विस्तृत है। उन्होंने जोष के विस्तृत जोष के विविध भावों से कहीं रचनाओं का स्वरूप किया है। उनकी रचनाओं में शक्ति है, जीवन है, फैला है। समझ, समझ, और समझ जोष के विषय की हीन से उन्होंने कहीं रचनाओं के लिए विषय चुना है, उन्होंने मनीष फैला, और दृष्टि का आधार का दिया है। उनकी रचनाओं के विषय सब की फैला और दृष्टि सुलभ है। उन्होंने समझ और स्वाभाविकता के हीन में देखे किसी की समझता है, की सभी का सुन्दर करते हैं। श्री सिवायामहाराज रस देखे की है, की समझकी के दूर स्वाभाविकता के साथ ही समझ के रंग रंग पर अभिव्यक्त करते हैं। उनका रस जीवन कदा ही ठाढ़ और आश्चर्य के रूप है। उन्होंने न ही विविध रंगी समझकी की शक्ति है, और न कृत्रिमता की समझ-बूझ। यह सरल है, और दिव्य है। उनका आधार स्वाभाविकता और साथ है। उनकी दृष्टि सादर के लेकर समझ रस स्वाभाविकता की ही सोच विहित करती है। स्वाभाविकता और साथ के रसों की फैलाता ही उनका संपन्न है।

श्री सिवायामहाराज की रचनाएँ ही सभी के विरुद्ध है—सुन्दर के रस में, और समझ समझ के रस में। उनकी सुन्दर रचनाएँ विचार, समझ, और दृष्टि

दलबर्हि में संघटित है। विचार की रचनाएँ सब गीतमयक हैं। उन पर खीन्टनाथ टेंगौर की रचनाओं की सम्प्रदाय लागू है। वह कहिलार्य उनकी प्राथमिक कहिलार्य है। वह सब है, कि राज्य कला और कल्पना की दृष्टि से विचार की कहिलार्यों का अधिक प्रभाव नहीं है, पर उनमें कवि के भाषा जीवन की कलात्मक सम्पूर्ण विस्तारण है। कला और कल्पना का समन्वय न होने हुए भी उनमें जीवन की सरलता और निरुत्पन्नता है। प्रत्येक में कवि का स्वयं प्रकट हुआ दृष्टिकोण ही है। 'विचार' का कवि जीवन के वास्तव स्वरूप पर ही प्रकाश का, पर वास्तव में उसकी दृष्टि समझने की गयी है। यद्यपि वास्तव में भी वास्तव के भीड़ से वह विमुख गयी हुआ है, पर उसकी दृष्टि में सम्पूर्णता, सीधता, और सरलता है। प्रत्येक में उनकी रचनाएँ सामर्थ्यता में विचार करती हैं। वास्तव का कवि कहलार्यवर्ग ही है। ईश्वर, क्षिति, कला, प्रकृति, और मानव जीवन का विशाल उसने कहलार्य की ही लक्षण गहन कर लिया है। पर उसके विशाल में विचारों का चित्रण नहीं, भावों की प्रधानता है। प्रत्येक का साहित्यिक कवि दैनिकी में जीवन के कला है। वह कला में कुछ की परंपरता को देख कर उसकी समझता हो उठा है, और लक्ष्य कला में उसकी विस्तारण प्रकृति की निष्ठा करता है। दैनिकी के कवि में प्रत्येक के कवि की भाँति समझ नहीं है। प्रत्येक का कवि नहीं विस्तृत रूप से दार्शनिक था, नहीं दैनिकी का कवि जीव कला में आसक्त विचार्य होता है। कला ही वह जीवन के कला में प्रवेश करते सब की एक ही दृष्टि है, और कला कीनीयता से सम्बन्धित होकर संकीर्ण जीवन के ही मंदिर पर बना है।

की विचारानुसारकाली में कलात्मक भाँति प्रवेश राज्य की शक्ति है। उनमें प्रत्येक काल काँट काल के रूप में है, की ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, और सांस्कृतिक कलाओं के आधार पर शक्ति गढ़ है। जीवन विचार ऐतिहासिक काल काल है। इसकी कला निर्धारक विस्तारण, और कल्पना जीवन की प्राचीन कला है, पर कवि की शक्तों में प्रवेश कर उसने नवीन साक्ष्य प्रकट कर लिया है। कला का विचार काल काल में अभिष्ट रूप से हुआ है। विशाल कला और साधनों की लेकर कवि ने अपने इस काल काल की रचना की है, उसने उसे सफलता प्राप्त हुई है। वह अपने इस काल काल में भारत के जीवन जीवन की, की उसका लक्षण है, विचार करने में सर्वत्र ही कला है। 'कलात्मक' की कला सांस्कृतिक है, की कलात्मक और ऐतिहासिक है। साक्षरकाल के कला पूर्ण विचारों के कला की कवि ने गयी साक्षरता के साथ प्रवेश है। 'साक्षर-काल' के जीवन गद्यकाल के कहिलार्य की कहानी है। 'काल' में साक्षरता की के साक्षरों का राम काल गद्य है। 'साक्षर' कलात्मक रचना है।

की विचारानुसारकाल का काल प्रवेश काली कलाओं की सम्पूर्ण का काल-प्रवेश है, इसी कालों में उसका काल-प्रवेश एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है, जिसने कई भाषाएँ निकल कर प्रकटित होती हैं। वे व्यक्ति मानवताही भी है, और समझिगारी भी। उनकी रचनाएँ सामर्थ्यता, और साक्षरता के प्रवेश में व्यक्ति साक्षरता का राम गयी है,

और छात्रों की ओर भी उन्मुख है। उनमें वसार्थवाद और उपलब्धिवाद की भाव-
नाएँ भी हैं, और बौद्धवाद की वैदिक सामनाई भी। उनकी कल्पना भौतिकता के
साँचा में भी खेलती है, और वास्तविकता के मान-मूल्य में भी बिचरना करती
है। इस प्रकार उनका कल्प-जीवन कई प्रकार की भावनाओं की एक समष्टि है,
किन्तु इनके बीच में बड़-काबू, और मिश्रण है। उनमें कहीं भी बड़ काठम्पर नहीं
है, जो वास्तविकता और कल्प या आवरण का भेद देता है।

श्री माधवसहाय चतुर्वेदीय गुणार्थ कवि, कला, और सुलेखक हैं। उनके जीवन
का साहित्यिक समय साहित्य की भाषा में ही समीचीन हुआ है। वे कल की साहित्य
की आवृत्तता से ही सहमत हैं, पर कल्प निर्धारण की ओर कल तक उन्होंने ग्यान नहीं
दिया है। वह भी हो सकता है, कि कल्प निर्माण का उन्हें कल्पना ही न प्राप्त हुआ
हो, इसलिए उनका कोई सम्बन्ध कल्प नहीं है। कल्प तक उनकी की रचनाएँ प्रका-
शित हो चुकी हैं, उनके साथ एक प्रकार है—दिगुणलक्ष्य, दिगम्बरीलक्षी, दिग
लक्ष्मी, कृष्णार्जुन युद्ध, साहित्य देवता, कलाश्री, और कला का अनुवाद। 'दिगु
लक्ष्य वर्ग' कल्प के साथ का अनुवाद है। 'दिगम्बरीलक्षी', और 'दिग लक्ष्मी'
उनकी कविताओं का समूह है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक, और साहित्य देवता कल्प
काल कालकी कृति है। 'कलाश्री' और 'कला के अनुवाद' में उनकी कदाचित्
समष्टि है।

चतुर्वेदीय की कल्प-कल्पना में कई दोषों में उनकी महत्ता का प्रदर्शन किया
है। उनके द्वारा वे भी कवि हैं, बड़ साहित्य मातृभूत और जीवनशील है। उनकी
कल्पना का प्रकाश इतना छात्रानुचित है, कि उस पर अपने ज्ञान की-सामग्री के दृग्-
वीच विषय साहित्य हो जाते हैं। उनके द्वारा-लिखित कवि की कविताशीलता में ही उनकी
रचनाओं की विविध भावों के लोचों में टाल दिया है। उनकी रचनाएँ कई प्रकार
की हैं। उनमें राष्ट्रीय भावनाओं का विकास हुआ है, तथा सामान्य का संदेश भी
है। उनमें प्रेम की जीवन, और कला अनुभूति हैं, और कला की विनमरिणी
भी है। उनमें साम्यात्मिक भावनाएँ हैं, और लौकिक सामनाई भी है। इस प्रकार
उनकी कल्प-कल्पना एक केन्द्र-विन्दु की है, जिसमें कई प्रकार की भाव-भावनाएँ
आकर समाहित हुई हैं।

चतुर्वेदीय की की रचनाएँ दूसरे समूह हैं, उन्हें एक समीक्षा की दृष्टि के
जीन नहीं के विनाशित कर सकते हैं—राष्ट्रीय भावों से सम्बन्ध रखने वाली, प्रेम
की जीवन अनुभूति के सम्बन्ध रखने वाली, और साम्यात्मिक भावों से सम्बन्ध
रखने वाली। कल्प वर्ग में उनकी राष्ट्रीय रचनाएँ हैं। उनकी राष्ट्रीय रचनाएँ ही
प्रकार की हैं। एक में जीवन की सामना है, और दूसरे में विनमर की भाषना।
दोनों ही प्रकार की रचनाओं में गान, और उत्साह का भाव है। चतुर्वेदीय के रच-
नाएँ उनकी कार्य-मूल्य की रचनाएँ हैं, पर उनमें जीवनशक्ति का कल्प-कल्पना, और
प्रयत्नीय भावनाएँ देखने को मिलता है। उनकी दूसरी प्रकार की रचनाएँ प्रेम

इन रचनाओं की सम्पूर्णतावादी भाव्य के बीज माना, जो किसी ने उनके ऐमाधिक भाव्य के सम्मर्पित नहीं। किसी ने उन्हें 'सुखवाद' के विशेषज्ञ से विमुक्ति किया तो किसी ने 'सुखवाद' को उपस्थित ही। इस प्रकार 'सुखवाद' की रचनाओं के सम्मर्प में कुछ दिनों तक तर्क-वितर्क चलता रहा। कदा से कदाओं को रचनाओं में सुखवाद, और 'सुखवाद' के क्षेत्र में कदा काविचार मग्न होता, और वे 'सुखवादी' रचनाओं के नाम से पुकारा जाने लगे। 'सुखवाद' के साथ ही साथ 'मिथ्याता', पक्ष, और सीमाहीन म्हादेवी वगैरे इत्यादि में भी इसी दिशा में अपने चरण बढ़ाए; परिणामस्वरूप हिन्दी भाष्य के सम्मर्पित 'सुखवाद' का प्रभाव सम्मर्पित रूप से प्रकाशित हो जाता, और कुछ ही दिनों में उसने हिन्दी-भाष्य के बीज काफ़ी प्रमुख स्थान बना दिया।

सुखवादी कविता की रचनाओं पर प्रभाव डालने के पूर्व 'सुखवाद' के स्वरूप का विशेषण कर लेना हीन होता। हिन्दी में 'सुखवाद' और 'सुखवाद' का काम किस प्रकार हुआ—इस संबंध में लोगों के विचार-विचार यह हैं। किसी-किसी का मत है, कि हिन्दी में 'सुखवाद' और सुखवाद का कदा कीर्तियों के प्रमाण के कारण हुआ है, और कोई-कोई उसके काम का कारण स्वर्गीय सीमाहीन देवी की रचनाएँ बताते हैं। वेद कदा यह मत है, कि हिन्दी में सुखवाद और सुखवाद का काम कविता की उसी प्रकृति के कारण हुआ है, जिसके कारण चलाती और कीर्तियों में उसका कदा हुआ था। प्रथम और द्वितीय अध्याय में हिन्दी की की कविता काफ़ी काफ़ी के द्वारा वे ही कदा व्यापक बताते रही हैं, रही तृतीय अध्याय में हमें हमें सुखवादियों पर गई है। प्रथम और द्वितीय अध्याय में यह उन कीर्तियों पर भी, जिसे हम सम्मर्पित और इतिहासत्मक कीर्तियों कह सकते हैं। तृतीय अध्याय में वहीं हिन्दी कविता विशिष्ट होकर जागरूकता ही गई है। तृतीय अध्याय की सीमा हिन्दी कविता, जिसे हम सुखवादी कहते हैं, मान और अनुभूतिपर है। उसकी सीमा स्वर्गीय सुख माना-प्रकृति पर ही सम्मर्पित है। उसके अन्तर्ग में हम प्रचार के हैं, जिसके माथों की सम्मर्पित होती है। उसके विषयों में मान्यता, और सीमा नहीं है। यह सम्मर्पित है निराला है, और सम्मर्पित के विभिन्न माथों से ही कदा सम्मर्पित करते हैं। यह काम की सीमाहीन कहते हैं, और विमुक्त कदाओं के प्रचार पर भी सम्मर्पित करते हैं। वहीं यह विमुक्त सम्मर्पित होती है, वहीं की प्रथम बीज एक काम सम्मर्पित होता है। यह जिस माथ की सीमा के बीज कदा माना करते हैं, उसमें साधुविचार और कविताका की प्रमुखता होती है। उसकी माथ के सम्मर्पित में, सम्मर्पित में एक कदा की सीमा और एक कदा की सीमा की सीमा नहीं है। कदा की सीमा और कदा के अन्त ही उसके अर्थ का व्यापक चलता है।

हिन्दी कविता में 'सुखवाद' की सीमा में क्या जाता है। उसका एक काम तो यह है, वहीं कवि की माथ और उसके कदा की सीमा में विचार और सम्मर्पित

कला का वर्णन होता है; दूसरे कव्यों में यहाँ कवि की साधुसृष्टि का साधारण प्र-
त्यक्ष साहित्यिक चर्चा और विस्तार कला होती है। इस प्रकार के साधुवाद की ही हम
प्रत्यक्ष कहते हैं। बीसवीं सदीदेवी नर्मा की रचनाओं में इसी प्रकार का 'साधु-
वाद' मिलता है। पाचवीं सदी कवियों की रचनाओं में भी इसी प्रकार के साधुवाद
का साधारण मिलता है। दूसरे प्रकार का साधुवाद यह है, यहाँ कवि ने प्रकृति के
स्वाभाव पर कठोरता प्रतीकों के साथ लिखा है; दूसरे कव्यों में यहाँ उसने साधुनिबन्धन
विषयों के साहित्यिक और कवि प्रकार के विषयों की अभिव्यक्ति में भी 'इतनी' की
बहुधा किया है। 'प्रसाद', और 'उत्त' की रचनाओं में इस दूसरे प्रकार के साधुवाद
का विकास हुआ है।

साधुनिबन्धन प्रसाद महाकाव्य के : उन्होंने काल के बीच में महा-
कवि की नीति की कला काव्य कल्पना का विस्तार किया है। उनकी काल
कृतियों में वेम चर्चा, महाकाव्य का काल, कलाकाल, विद्यावार, काल कृत्य,
कवि, कला, लहर, और सामान्य का महाकाव्य रचना है। कवि, और सामा-
न्यी उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियों हैं। सामान्यी उनका महाकाव्य है। 'कलाकाल' की
रचना करते उन्होंने कवि की कला के लिए समय बना लिया है। वेम चर्चा एक
साधुवाद है, जिसकी रचना एक लघु कथा के आधार पर हुई है। इसकी दोरी कला-
काल है। महाकाव्य दोरी में वेम के काल बिच इसमें सुकला के साथ चर्चा के लिए
वाद है। महाकाव्य के एक वीरकाल कथा है, जो विद्यावार, और इतिहास से
कलाकाल होती है। 'महाकाव्य' का साधुवाद कुछ वैदिककाल है। इसमें नीतिकला की
कला, और कला का विस्तार देखने की मिलता है। 'विद्यावार' में प्रारम्भिक काल
की रचनाएँ कलाकाल हैं। इसमें दोरी की रचनाएँ हैं, जो कलाकाल में लिखी गई हैं।
'काल कृत्य' की प्रारम्भिक काल की ही रचनाओं का संवाद है। 'काल' वेम के
कवि, और विषय के विषयों के परिपूर्ण है। 'कवि' कलाकाल की कलाकाल
कवि है। इसमें वेम का कलाकाल, और कलाकालों का विषय, यही सुकला के
साधुवाद रचना है। इसमें नीतिकला वेम की अभिव्यक्ति साधुनिबन्धन के
साधुवाद पूर्वक की गई है। 'लहर' में प्रसाद की सुकला रचनाएँ कलाकाल हैं, जिसका
साधारण वेम, कवि, कला, कवि, विषय, कला, साहित्यिक कला, और साधुनिबन्धन
विषय है। सामान्यी प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कवि है। यह महाकाव्य है, जिसकी
रचना का आधार मनु की कथा है। मनु की कथा कवि वीरकाल है, पर प्रसादों
में उसे यही सुकला के साथ वैदिक है। कला की दृष्टि से कलाकाली अभिव्यक्ति तो है
ही, उसमें काल, और कला का यही भी चर्चा प्रकाश है।

प्रसादों का कवि-काली चर्चा विस्तृत है। उन्होंने काल के बीच में कला
कला का प्रारम्भिक कला कला में लिखा है। उसमें काल-कृतियों, और उनकी कला के
साधु की वीर-वीर कलाकाल के लिए हम उनके कवि-कला की वीर माते में विचार
करते हैं—अथवा कला में कला, साहित्यी प्रसाद, और साधुनिबन्धन प्रसाद। यहाँ

‘मित्रों और शत्रुओं का प्रयोग किया गया है, मित्रताओं के काल की पुष्टिमें उनसे सर्वथा वृत्त है। उन्होंने भारतीय इतिहास के क्षेत्र मेंनेही मात्र उस की श्रेणी विधियों, और परम्पराओं की ओर ध्यान ही अपने काल की पुष्टिमें मिलान की है। काल की पुष्टिमें का निर्माण करने में ही उन्होंने परम्पराओं पर आश्रय नहीं किया है, बरन् मंत्र, मात्र, कल्याण, शैली, और अन्य—अनेक क्षेत्र में उन्होंने प्रचलित प्रथाओं का परीक्षण करके जीवनता को बढ़ा दिया है। अनिष्टता की वृद्ध करने में वे पूर्ण रूप से सफल हैं। न ही कोई उनका आशय है, और न के किसी का अनुमान ही करते हैं। ऐश्वर्य की रचनाओं की काल उस पर आधार है, पर इसमें एक मात्र की वृद्ध नहीं, कि उन्होंने अपने ही अपने घर का निर्माण किया है। हिन्दी काल के लिए उनका घर सबसे घर था। काल उनके इस घर का अधिक विचार ही हुआ। बड़े बड़े उमाशोकों, और मित्रों तक में उनके प्रवास की शक्ति काशीचना की। पर काशीचना के बीच मन्त्रालयों में वे बराबर जाने ही बढ़ते गए हैं, और आज अपनी उद्भव काल प्रमाण की शक्ति में उन्होंने हिन्दी-काल-काल में अपना सुदृढ़ स्थान बना लिया है।

मित्रताओं की रचनाओं की पुष्टिमें मिलान विधियों पर आधारित है, पर उनकी सभी रचनाओं में कोशिका के साथ समान रूप से मिलते हैं। वे अपनी प्रथा-विधियों का निर्माण ऐसे समर्थों की वृद्धता से करते हैं, जिसके भीतर एक प्रकार की विशेष शक्ति का प्रदर्शित रहती है। उनके समर्थ, और उनकी वृद्धावस्था बढ़ता चुनक करने स्थान पर स्थित इतिहासकार होती है। उनके समर्थों में समिष्टता, और वृद्धावस्था में समिष्टता होती है। समर्थों की समिष्टता, और वृद्धावस्था की कम वृद्धा के कारण उनकी रचनाओं में सर्वत्र वृद्धा काया जाता है। एक वृद्धावस्था जाने की शक्ति ही उनकी रचनाओं का स्वर सुनाई पड़ता है। ‘मित्रताओं’ की रचनाओं में वृद्ध, और समिष्टता के समर्थों का समान्य नहीं कुशलता के साथ हुआ है। बुद्धि और मानस के साथ उनकी रचनाओं में सुलभित कर एक ही गद है। ‘मित्रताओं’ दार्शनिक हैं, पर इसके साथ ही साथ कवि भी हैं। उनके समय का साथ वृद्धावस्थावस्था है, कि दार्शनिक उस उसके भीतर अधिक सज और सुदूर ही गद है। मित्रताओं की रचनाओं की वृद्ध सबसे बड़ी विशेषता है। कहीं कहीं दार्शनिक तरीके के दार्शनिक के कारण उनकी वाक्यावृत्ति बरिष्ठ बनकर हो गई है, पर ऐसे स्थानों में भी उन्होंने दार्शनिक तरीकों को अपने में गुला लेने वाले अपने महान् पूर्ण रूप का प्रमाण नहीं किया है।

‘मित्रताओं’ में अपनी रचनाओं में सर्वत्र ‘समिष्टता’ पर ही अधिक बल दिया है। इस प्रकार के विचार शैली के ही कवि हैं। ऐसी बात नहीं, कि वे अपनी मूलक भाषा की वृद्धता को नहीं मानते, पर उन्होंने अपनी रचनाओं में सर्वत्र समिष्टता शैली के ही साथ किया है। विचार शैली की वृद्धता के कारण कहीं कहीं उनकी रचनाएँ बुद्धि के लिए अस्मय बन गई हैं। उन्होंने ऐसी भी रचनाएँ की हैं,

को सम्बन्धित है। उनके पीछे से सम्बन्धितता के चपड़े चिप टिकटो हैं। 'मित्रता' की को रचनाओं का कबीर मिलेना उन्हीं के कुशलित हुआ है। उनके कोमलता और कोमलता का सम्बन्ध नहीं कुशलित के साथ हुआ है। उनके सम्बन्धित में को सम्बन्धित मित्रता बनती है, वह उदात्त भावों में परिवर्तित है। उनके लय और गुरुत्व-रही की ही कर्मित है। वह सम्बन्धित बनती है, और सम्बन्धित के चिप में सम्बन्धित बनती है। उनके क्लिष्टियों, और उनकी क्लिष्ट में क्लिष्ट है—विशेष है।

बीमती महादेवी यहाँ सांस्कृतिक कर्मित काल में कल्पना महान् पूर्ण स्थान रखती है। उनको कल्पना कला एक विविध प्रकार की कल्पना बना है। वह एक ऐसी कल्पना बना है, जो कल्पना पूर्वकली कर्मियों के गुणवत्ता-लोकार होती है। उसका आधार गुण, और वेदना है। उसके गुण और वेदना के ही कल्पने आधार की रचना की है, वह उसका गुण, और उसकी वेदना क्लिष्टित गुण और वेदना नहीं है। उसका गुण-वर्धित काल को किसी काल के लिए नहीं है, और न उसकी वर्धित काल की किसी काल में क्लिष्टित ही है। वह उदात्त वर्धित काल में, जो गुण बन है, जो गुरुत्व है, एक कल्पना कीमती कला की कोमलता है। उस कल्पना कीमती कला का कोमलता नहीं, कोमलता नहीं। बीमती महादेवी यहाँ की कल्पना कला उसी की कल्पना विशुद्ध मानकर उसके लिए का रचनाकली है। उसकी कल्पना रचनाकली क्लिष्ट की रचना की है, जो गुण और वेदना की कोमलता का कल्पना कला कल्पना कला है। बीमती यहाँ का गुण एक ऐसी गुण है, क्लिष्टी कला कल्पनाकली है। के कल्पना की गुण की ही कल्पनाकली कल्पना है। उसका क्लिष्टित है, कि गुण के कल्पना की कल्पनाकली का कल्पना कल्पना है, और क्लिष्टी कला कल्पना कला के कल्पना कल्पनाकली कल्पना कल्पना कल्पना है। यही कल्पना है, कि उसकी कल्पनाकली में, उनके कल्पना में गुण और वेदना का एक कल्पना हुआ है। उसका गुण कल्पना कीमती कला के लिए का गुण है, उसके क्लिष्टी की वेदना है। कल्पना कीमती कला के कला में उसका की कल्पना है—उन्हीं कल्पनाकली वह कल्पना का कला का कल्पना की कल्पना कल्पना है। उन्हीं उनके कल्पना कल्पनाकली ही कल्पना है—विशेष है। उसी के लिए उनको कल्पनाकली है—उन्हीं के लिए उनको कल्पना है। उसकी कल्पनाकली, और उनको कल्पना कला ही है, क्लिष्टी कला के कल्पना में ही। क्लिष्टी के कला कल्पनाकली का का कला न का। उसकी कल्पनाकली में कल्पना की ही, वह उन कल्पनाकली की कल्पनाकली के लिए उनके कला कल्पना कल्पना का कल्पना का। कल्पना कल्पनाकली का कला है, कल्पनाकली कल्पना है, कल्पना कल्पनाकली है, और कला की कल्पनाकली है; कला उनको कल्पनाकली में कल्पना कल्पनाकली कला ही कला है।

बीमती महादेवी यहाँ के कल्पना रचनाकली में कल्पनाकली कल्पनाकली के ही कल्पना कल्पना है। उन्हीं कल्पना कल्पनाकली, और कल्पनाकली कल्पनाकली के कला कल्पनाकली

बावों की शक्ति की है। उनकी शक्ति में कहीं अक्षय्य सौंदर्य के प्रति कमपन्न है, और कहीं वर का ह्रास विद्यमान। कहीं विरोध का ह्रास है, तो कहीं विद्रोह की कल्पना। कहीं उनमें मिलन के लिए उत्सुकता है, तो कहीं उन्मत्त का साक्षात्कार। कहीं माया है, कहीं भिन्नाभा। इस प्रकार उनकी भाषा शक्ति कई रूप-विधों से पूर्ण है। उनकी भाषा-शक्ति के सभी रूप विश्व साहित्यिक हैं। बीमारी कर्मा ने अपने सत्यसत्त्व की शक्ति ही दोषों के लिए होकर की है—अक्षय्य के क्षेत्र में, और जीवन के क्षेत्र में। अक्षय्य प्राथमिक रचनाओं में के अक्षय्य के क्षेत्र में ही दृष्टिगोचर होती है। प्राथम्य में प्रकृति ही उनका मातृभूमि थी। वे मिल विद्यमान के सौंदर्य के पर कुम्भ है, और विद्रोह विरोध कुम्भ पर कर इनके हृदय में समाविष्ट है, उनकी अज्ञात ऊर्ध्व पहुँचे अक्षय्य के लक्ष्य में ही मिली है। प्राथमिक रचनाओं में उन्होंने जीवन और प्रकृति का सामंजस्य स्थापित किया, और इसी की अनुभूति पर सत्यसत्त्वता की शक्ति की है।

पर प्रकृति के साथ उन्हें अधिक दिनों तक विचारान्तर न रह सका है। जब उनकी सत्यसत्त्वता इति में लोभता बढ़ी, और उनकी अनुभूति का सत्यता के साथ जुड़ने लगी तो वे उस अज्ञात सौंदर्य—वसा का अनुभव जीवन के ही लक्ष्य में करने लगी, और प्रकृति के क्षेत्र की सौंदर्यता जीवन के क्षेत्र में जा गई। जीवन के लक्ष्य की सत्य मानकर उन्होंने मिल सत्यसत्त्वता विधों की शक्ति की है, वे सत्य हैं। इन विधों में पहले के साथ—विधों की अनेक अधिक कमपन्न, और अधिक विवेकता है। बीमारी कर्मा की साथ गीत प्राची के गीत है। उनमें अक्षय्यताओं का अधिकार है, और अनुभूति की हृदयस्थिति की सत्य। कला कहीं उदात्तता के साथ इनके अपने एक किन्दुओं की कर्मा करती है। अनुभूता, सत्यता, और सत्यता के सदैव हृदय उनके गीत हृदय में बावों का एक बीजल है। उनके गीतों की कहीं कहीं कहीं विद्रो-पता है, कि वे कला और अक्षय्य की कर्मा प्रतिमा है। इनके साथ हृदय में सौंदर्य का सम्बन्ध होता है, शक्ति का विश्व कला है, और बावों के एक किन्दुओं की कर्मा होती है।

भी सुमित्रासन्धन पन्त की कला-कला साथ मिल सत्य पर विद्यमान है, वहीं वह कई बीमारी पर पहुँचे उद्योग के सत्यता पहुँच करती है। उनकी कला कला का एक कई रूप प्राप्त कर चुकी है। उनकी कला कला के सम्पूर्ण कर्मा में एक नई पैठता और एक नई मायता विद्यमान है। उन्होंने अपने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी कला का अधिकार नष्ट होने के किया है। उनके अधिकार में हृदय की अनुभव अनुभूति और जीवन कलाओं की सत्यता है। कलाओं की कला कला पहले प्रकृति के जीवन में विद्यमान करती थी। उनकी प्राथमिक रचनाओं में प्रकृति के ही सौंदर्य का विश्व है। उन्हें कला रचना की अनेक अक्षय्य के ही साथ हुई है। उन्होंने स्वयं इस क्षेत्र में एक सत्य पर विद्यमान है—'अधिकार करने की अनेक मुक्ति कला पहले प्रकृति विवेकता के मिली है, विद्यमान क्षेत्र में अनुभूति अनुभवता अनेक की है। कति

जीवन में पहले भी, पूरे बाद है, मैं बंसी वृक्षों से पैदा प्राकृतिक दृश्यों की एक एक देखा था, और कोई कदाह्न आकाश में से नीतर एक समस्त सौंदर्य का भाव हुए कर मेरी चेतना को उमर भर देता था । बंसी की आरम्भिक रचनाओं में उन्हीं के दृश्यों में—उनकी प्रकृति की चेतना पूर्ण सम्मिलित है । वृक्षों के प्रकृति चित्रण में उनके जिन संस्कार, नदी, समुद्र, पुष्प, फूल, चिड़ियाँ, गारे, छातः काव्य, और अन्यथा दृश्यादि हैं । बंसी ने सभी वास्तविकता के साथ प्रकृति के सौंदर्य का चित्र खींचा है । उनके चित्रांकन में वर्णन की प्रभावशाली नहीं, बरन् सभी की प्रभावशाली है । उनके प्रकृति चित्रण में प्रकृति के वैज्ञानिक वैधानों का समान, और कला के अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति है । उन्हींमें कला के दृश्यों में ही अपने प्राकृतिक चित्रों को बनाया है ।

बंसी की आरम्भिक रचनाएँ देवता और जीवितों की कविताओं के सम्मिलित हैं । देवताओं के समस्त कवि वर्णन देवताओं के और जीवितों के बीच, देवता और जीवितों के बीच कविताओं की कला में उन्हीं के एक रचना है । उनकी आरम्भिक रचनाओं का समस्त इन कविताओं की ही और उनके साथ ही है । उनकी प्रकृति-सौंदर्य चित्रण रचनाएँ जीवितों के कविताओं की रचनाओं से ही ही अनुप्राणित मान सकती हैं, पर इनका वह दायर्य नहीं, कि वे आकाशमन्द है । उनकी जीवित कवि है । उनकी रचनाओं का जीवितों, और देवता की साथ सम्बन्ध है, किन्तु उनकी रचनाओं के भीतर की कुछ है, वह सब कुछ उन्हीं का है । उनकी सोमल कल्पना के कवि है । उनकी आरम्भिक रचनाओं में कल्पना की प्रकृति है । उनके प्रकृति-सौंदर्य के चित्रों में कल्पना सम्मिलित ही होती है । उनकी कल्पनाओं में वही और जीवित है । उनकी कल्पनाएँ इनकी जीवित के साथ सम्मिलित होती हैं, कि विषय का अभिव्यक्ति ही हुआ ही जाता है । उनकी कल्पनाओं में कहीं अभिव्यक्ति है, कहीं उनमें सोमलता का संशय भी अभिव्यक्ति है । उनकी ने प्रकृति की उदात्तता कवि कवि में ही ही है । कहीं उन्हींमें प्रकृति का वर्णन बहुत कम में किया है, और कहीं अभिव्यक्ति के रूप में । उनके प्रकृति के वर्णन कवि में जीवितों की सोमलता और आकाशमन्दता अभिव्यक्ति है ।

उनकी की कल्पना कल्पना की प्रकृति के सौंदर्य-चित्रों के सब जीवित दृश्यों में हुआ सब उन्हींमें मानवी लोक में प्रकृति जीवित सौंदर्य चित्रों की सोमलता । उनकी लोक में उतर कर उन्हींमें जीवित-सौंदर्य के चित्र की अभिव्यक्ति लिए हैं । उनकी सभी दृष्टि और जीवित की प्रकृति है । सभी की दृष्टि और जीवित-सौंदर्य मान करके ही उन्हींमें उनके सौंदर्य का चित्रण किया है । उनके जीवित सौंदर्य चित्रण में जीवितों की प्रभावशाली है । किन्तु उनके कल्पना की गंध नहीं है । उनका जीवित सौंदर्य चित्रण कल्पना से दूर—उनकी की सम्मिलितता के चित्र उदात्तता करता है । उनकी की सम्मिलितता का दृष्टा सम्मिलित 'सुख' के सम्मिलित होता है । उनकी की सम्मिलितता अपने दूसरे सम्मिलित के सम्मिलितता की और प्रकृति है । प्रकृति सम्मिलित में उनकी सम्मिलितता कल्पनाओं के लोक में अभिव्यक्ति कवि की, पर दूसरे सम्मिलित में वह कल्पनाओं के

सौम्य से भूमि पर उतर आते हैं, और मानव जीवन के दुःख-दुःख के विषय चिन्तित करता है। दुःख-दुःख की भावनाओं से जटा हुआ मनुष्य उसे अद्भुत-सा समझता है। वह स्वतः की स्थिति पर विचार करता है, उसकी उत्पत्ति के संबंध में सोचता है, पर बहुत और। मरणांत नहीं होती। यह आत्मिकता उसके साथ है। विचारण और अज्ञा के साथ वह उत्पत्ति के दुःख में भी आगे बढ़ती है, और संसार के सौम्य जाती है।

आध्यात्मिक रचनाओं में ऐसी ही स्थिति में अभिवृद्धि दूर है—विचारण के रूप में और चरित्र के रूप में। चिन्तन के रूप में विचार, और चरित्र के रूप में मान-सार्थ सामने उपस्थित हुई है। उनकी आध्यात्मिक रचनाओं में मानवी और विचारों का संबंध बड़ी कुशलता के साथ हुआ है। इन रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता नहीं है, कि उनमें विचारों और भावनाओं का सर्वोत्कृष्ट स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है; पर उनमें विचारों के उन्हीं की हीमानी उभावस्था है, उनकी भाषा के लक्ष्य की नहीं। इसका कारण यह है, कि इन कविताओं में मनुष्यी के विन उन्हीं की अपनी रचनाओं का आधार बताया है, उनकी अनुभूति उनके हृदय की अपनी अनुभूति नहीं है। वे उनकी विचारकता अनुभूति हैं। यही कारण है, कि उनकी इन रचनाओं में हृदय की विशेषता का अभाव है। मनुष्य की साम्य-कला का तीव्रता समझ बढ़ है, जिसने वह सिद्धांतवादियों को नहीं है। अपने छोटे-से भाष्य में उनकी कला कला कभी की मार्कवाह को प्रस्तुत करती है, और कभी अविचारवाद को। कभी उपस्थितवाद के गीत गाती है, और कभी मान्यवाद के। इस छोटे-से भाष्य में मनुष्य की कला कला पूर्ण रूप से विचारों के क्षेत्र में परिष्कृत करती है। इस क्षेत्र में प्रचार उन्होंने की रचनाएं की हैं, उनमें विचारों और चिन्तन की प्रशंसा है। उनकी इस प्रकार की रचनाएं सुनार, लोहना, लोहना, सुनकारी, लोह-वृद्धि, और लोह-वृद्धि इत्यादि में वर्गीकृत हैं। इन रचनाओं में मनुष्य की साम्य-कला का वह स्वरूप, जो उनकी अपनी विशेषता है, सुत-सा हो गया है।

छायावाद और रहस्यवाद के इन प्रमुख कवियों के अतिरिक्त और भी कई ऐसे कवि हैं, जो इस मार्ग पर चल रहे हैं। जैसे—श्री रामकुमार शर्मा, श्री मोहन विभिन्न भाषा-वादा लाल महती विशेषता, और श्री भवानीभक्त के कवि कवी इत्यादि। प्रत्येक उदाहरण में छायावाद और रहस्यवाद के अतिरिक्त और भी कई तरह के अन्तर्गत हैं। जैसे—अर्थवाद, प्रयोगवाद, नीतिवाद, आदर्शवाद, और व्यक्ति वैयक्तिकवाद इत्यादि। इन सभी को आधार मान कर सैकड़ों प्रकार के कवि इस समय साम्य रचना में संलग्न हैं। यद्यपि यहाँ वह साम्य नहीं है, कि सभी रचनाओं की समीक्षा की जा सके, फिर भी प्रमुख और प्रतिष्ठित कवियों की रचनाओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जा रही है।

श्रीमती सुमद्राकुमारी चौहान का आधुनिक काल की कविताओं में महान-

पूर्ण स्थान है। कविशिविन्दों ने गुमराबी ही सर्व प्रथम कविदिनी है, जिन्हींने लारी हृदय का रस गाया है। इतना ही नहीं, उन्होंने लारी कवय में कविता के इति-वेग, और अभिव्यक्ति की उत्पत्ति की है। उनके पूर्ण हिन्दुत्व-मूल में ही कविता की संस्था बहुत कम थी। उनकी रचनाओं में ही कविता के मार्ग का निर्देश किया है, और उन्हें देखा देकर प्रोत्साहित किया है। गुमराकुमारों ने कवि-हृदय गाया था, उसका हृदय महासुखिमन और विवेकशील था। यहाँ उनकी रचनाएँ भी देखी जाती हैं, जो कविता महासुखिमन और विवेकशील हैं। यहाँ और उल्लेखों की कल्पना के उन्होंने अपनी रचनाओं का मार्ग दिखा है। इन की आलोचना, और लारी हृदय का उत्पत्ति तथा मातृत्व की स्मृति का भी उनकी रचनाएँ प्रकटित हैं।

विषय की दृष्टि से उनकी रचनाओं के तीन रूप हैं—देश प्रति प्रभाव रचनाएँ, मातृत्व प्रभाव रचनाएँ और प्रेम प्रभाव रचनाएँ। गुमराबी देश की कल्पना सेविका थी। उनकी रचना में राष्ट्र का प्रेम समाविष्ट था। राष्ट्र की सेवा की विदिका पर उन्होंने अपनी आलोचनाओं की स्मृति कर दिया था। उनका वह सर्वप्रथम उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में पूरा पड़ा है। उनकी राष्ट्रीय रचनाएँ प्राचीन के सर्वोत्तम हैं, और उनके यौवन यौवन का संसार करते हैं। उनकी राष्ट्रीय रचनाएँ ही उत्तर की हैं—कोई बात से सर्वप्रथम करने वाली, और आनन्द उत्पन्न करने वाली। कोविन्द के सम्पूर्ण करने वाली रचनाओं में उन्होंने राष्ट्र की—लक्ष्य की अभिव्यक्ति की है। उनकी अभिव्यक्ति के यौवन प्राचीन के यौवन हैं—हृदय के यौवन हैं। इनमें प्रत्यक्ष के मात्र बड़ा और मति के रूप के विचार होते हैं। आनन्द उत्पन्न करने वाली रचनाओं में उन्होंने ऐसे यौवन संकेते हैं, जो राष्ट्र की सेवा के लिए करने हैं, और उनकी रचना में यौवन तथा आनन्द का संसार करते हैं। उनकी हृदय प्रभाव की रचनाओं में कविता यौवन, और स्मृति है। उनकी 'अर्थों की रानी' की कविता हरी वर्ग की कविता है। उनकी हृदय रचना का सर्वप्रथम राष्ट्र और स्मृति के कवि में होता हुआ है।

गुमराबी की रचनाओं का मुख्य रूप यह है, जिसमें उनके मातृ हृदय की आलोचना प्रकटित हुई है। लारी होने के कारण मातृ-हृदय की उनके अभिव्यक्ति है। वे उस आनन्द के यौवन प्रति प्रतिष्ठित हैं, जिसमें मातृ का हृदय आनन्दित रहता है। उनकी एक कोटि कोविन्दों की रचना, मातृ, और आनन्दित है, आनन्दितता और आनन्दितता उनकी विशेषता है। आनन्दितता का मुख्य रूप से विवेक होने के कारण मातृ-प्रेम उनकी रचनाओं में आनन्द और यौवन ही होता है। गुमराबी की रचनाओं के मुख्य रूप में प्रभाव की उत्पत्ति है। उनका प्रभाव आनन्द यौवन का प्रभाव है। उनके यौवन और कविता है। उन्होंने आनन्द यौवन के क्षेत्र में यौवन की आनन्दितता महासुखिमन सेविका की है। यौवन की छोटी-छोटी कविता में भी लक्ष्य की कविता देखी है, और उसे यौवन की कविता से अभिव्यक्ति कर

दिया है। उनका वेग अधिक मन्द, और भाव दृढ़ है। उनमें स्थाय और वर्तमान के लिए संदेश भी है।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'भवील' कानिहासी कवि हैं। उनकी काव्य कल्पना में शक्ति की सम्पत्ति है। उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए दो प्रकार के विषयों का चयन किया है—राष्ट्रीय, और सौम सुलभ। राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उन्होंने भी रचनाएँ उपलब्ध की हैं, उनमें एक तथा जीवन और एक नया संदेश मिलता है। राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उन्होंने दोनों, कवियों, और शिल्पियों के लिए उदात्तपुष्टि का योग जोड़ते हुए, सामाजिक समस्याओं, अहिंसा, और विधियों पर नए दृष्टि के प्रहार किया है। उनकी कविता में दुःखार्, और जीवन की चर्चा है। उनकी दूसरी प्रकार की रचनाओं में, विशेष रूप सौम सुलभ वह पकड़ें हैं, एक उच्च है। उनका वेग एक ऐसा वेग है, जो किसी भी प्रकार की सम्पत्ति को संभार नहीं करता। उन्होंने सामाजिक सम्पत्तियों, और विधियों की वृद्धि के पुरुष रत्न करते ही सौम की दृष्टि की है। उनकी दोनों ही प्रकार की रचनाओं में दृष्टि के सभी की प्रधानता है। इसमें के सभी की प्रधानता होने की के कारण उनकी रचनाओं में सरलता और सुष्ठुमयता के संकेत भी अधिक हैं।

श्री रामकुमार शर्मा हिन्दी-काल के उपन्यासों के कलाकार हैं। उनकी कला में सरल शक्ति है। वह काव्य, और नाटक के क्षेत्र में बड़ी मायकायता के साथ निहार करती है। उनकी शक्ति में जीवनता है। जीवन और सामाजिक विषयों की शक्ति करने में वह अधिक कुशल है। उनकी सृष्टि एक ऐसी कला की सृष्टि है, जो सभी के सहज किशु में फैली है, और करने अत्यंत विष पर कवच मान्यता तथा उदात्त के रंग उलट देती है। कर्माओं की काव्य कला के हमें दो रंग प्राप्त होते हैं। उनकी काव्य कला का एक रंग तो यह है, जिसमें उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि की होकर अपनी सम्पत्तियों का श्रद्धापूर्व किया है। उनकी काव्य कला का दूसरा रंग यह है, जिसमें वे ऐतिहासिकता की कुशलपूर्ति पर लगे होकर सामाजिक संकेत से अपने सभी की काव्य की माता में लुप्त हैं। उनकी प्रथम प्रकार की कला भी दो कर्मा में विभक्त है—एक में कल्पना की प्रधानता है, और दूसरे में अनुपुष्टि की। 'कव राशि' 'सुभा', और 'नूरुद्दीन' इत्यादि में ऐतिहासिक दृष्टि है, पर वे संदर्भ कल्पनात्मक है। इन रचनाओं की कल्पनाओं में कल्पना में दृष्टि की कलाविक्रम की अपने काव्य के रंग किया है। 'भवील' अनुपुष्टि सुलभ है। इसमें लौकिक मिलन, और विवेक की एक कदाही की आधार बात कर कवि ने वेग, वेदना, विपदा, और कवच के विष संकेत किया है।

कर्माओं की काव्य-क्षेत्र में जो प्रतीत कवति प्राप्त हुई है, उनका कारण उनकी काव्य कला का वह दूसरा मयन है, जिसमें सामाजिक की प्रधानता है। उनकी इस प्रकार की समूर्ण रचनाएँ सुलभ हैं, और कानिहासी, जीवन, कवच, कवच-विपदा, और सामाजिक संकेत इत्यादि में संश्लेष है। अपनी इन रचनाओं में कर्माओं

पूरी रूप से आत्मतत्त्व अनुभूति के बीच से परिश्रमश्रम करते हैं। उनकी भावपूर्ण अनु-
भूतियाँ एक ऐसे क्षण की अनुभूतियाँ हैं, जो सृष्टि की सत्ताशक्त में सत्ताशक्त शक्ति और
सौन्दर्य का स्वरूप हैं। कर्माधी की भाव पूर्ण अनुभूति सत्ताशक्त स्वभाव की दो
प्रकार की है। एक प्रकार की स्वभाव की है, जिसमें सत्ताशक्त के सौन्दर्य के रूप की
शक्ति शक्ति की सत्ताशक्त या शक्तिशक्त शक्ति है, और दूसरी प्रकार की स्वभाव की है,
जिसमें सत्ताशक्त की भावना का पूर्ण रूप से शक्तिशक्त शक्ति है। वह स्वभाव एक
साधारण पूर्ण रहस्य की शक्ति शक्ति है, और एक ऐसे क्षण की शक्ति के शक्ति है, जो
सत्ताशक्त और शक्तिशक्त है। कर्माधी की भाव-शक्ति दोषों की शक्ति में सत्ताशक्त शक्ति
शक्ति शक्ति की शक्तिशक्ति कर शक्ति है। उनके शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति, और
शक्ति के शक्ति शक्ति शक्तिशक्त है। उनका सत्ताशक्त शक्ति के सत्ताशक्त से शक्तिशक्त
है। सत्ताशक्त के बीच में शक्ति की सत्ताशक्त शक्ति की का उन पर शक्ति शक्ति
शक्ति है। वे शक्ति सत्ताशक्त शक्तिशक्ति में शक्ति की सत्ताशक्त, और उनके शक्ति
पूर्ण शक्तिशक्ति के शक्तिशक्त शक्ति एक शक्तिशक्त शक्ति में शक्तिशक्त की शक्ति की
शक्तिशक्त करते हैं। वे उनके शक्ति और शक्ति शक्तिशक्त का शक्ति शक्ति करते हैं,
और उनके शक्ति का शक्ति भी करते हैं। उनके शक्तिशक्त, और शक्ति के शक्ति में शक्ति
की शक्तिशक्त शक्ति शक्ति शक्तिशक्त का शक्ति है। उनके शक्ति के शक्ति शक्ति, और
शक्तिशक्ति के शक्ति शक्ति है। उन्होंने शक्ति भाव-शक्ति में शक्तिशक्त शक्ति की शक्ति
शक्तिशक्त के शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति है, वे शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति है।
उनके शक्ति उनका शक्ति शक्ति का शक्ति-शक्ति शक्तिशक्त करते हैं, और उनकी अनुभूतियों
के शक्तिशक्त शक्ति शक्तिशक्त करते हैं।

की शक्तिशक्तिशक्ति 'शक्तिशक्त' हिन्दी भाषा-शक्ति के शक्ति शक्तिशक्त शक्तिशक्त है।
शक्तिशक्ति के शक्ति में उन्होंने हिन्दी शक्तिशक्त की शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
है, उनके शक्तिशक्त शक्तिशक्त है। शक्तिशक्त में उनके शक्ति शक्ति शक्ति शक्तिशक्त की शक्तिशक्त
है। वे शक्ति शक्ति शक्तिशक्त है, जिसमें हिन्दी भाषा-शक्ति की शक्ति शक्तिशक्त है। 'शक्ति-
शक्ति' की शक्ति-शक्तिशक्त शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
है। 'शक्तिशक्त' की शक्ति-शक्ति की 'शक्ति', और शक्तिशक्त की शक्तिशक्त के शक्तिशक्त
शक्तिशक्त, और शक्तिशक्त शक्ति शक्ति है। उनकी शक्तिशक्त शक्तिशक्त में वह शक्तिशक्त
और शक्तिशक्त शक्ति शक्ति के शक्तिशक्त शक्ति शक्ति है। उन्होंने शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
है। किन्तु उनकी शक्ति शक्तिशक्त में उनकी शक्ति शक्ति है, और उनकी शक्ति
शक्ति है।

शक्तिशक्ति की शक्ति शक्तिशक्त दो शक्तिशक्त में शक्तिशक्त की शक्ति शक्ति है। शक्तिशक्त
शक्तिशक्त में उनकी शक्ति शक्तिशक्त शक्तिशक्तशक्तिशक्त है, और शक्तिशक्त शक्तिशक्त में
शक्तिशक्तशक्तिशक्त। उनकी शक्तिशक्तशक्तिशक्त शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति
है। वह उनकी शक्ति शक्ति है, शक्तिशक्त और शक्तिशक्त की शक्ति शक्तिशक्त है।

‘सिद्धांत’ और ‘इन्द्र वीर’ में संश्लेषित दिगम्बरजी की रचनाओं में ज्ञानाभास की ही अत्यन्त मिश्रता है। दिगम्बरजी की वाग्य-कला के ज्ञानाभास के क्षेत्र में दो रूप हैं। एक रूप तो यह है, जिसमें बीन्दर्प का विषय हुआ है, और दूसरा रूप यह है, जिसमें राष्ट्रीय भावनाओं की उपस्थिति है। बीन्दर्प-विषय की शैली में कहीं उनकी कवि व्यक्तता प्रकृति के देहधर्म का मान बरती है, तो कहीं जीवन के बीन्दर्प पर टीकाती है। प्रकृति बीन्दर्प के विषय में कवि दिगम्बरजी की वाग्य-कला ज्ञानाभासो पुष्प-भूमि पर ही समीक्षित है, पर उसमें व्यक्तताओं का मोह बाल नहीं है। उसमें बहुत ही बड़ा रंग के खपने आधार की रचना की है। उनकी पुष्पभूमि ज्ञानाभासो होते हुए भी ज्ञानाभास की वाग्यशक्तों के प्रथम होकर के ही उसमें कवि की शक्ति की है। कहीं-कहीं की वह व्यक्तताओं के वाग्यशक्त की शक्ति पर पूर्ण रूप में व्यक्तता और स्वाभाविकता के आधार पर का गई है।

प्रकृति के बीन्दर्प-विषयों की शक्ति दिगम्बरजी के राष्ट्रीय भावनाओं के विषयों में भी नहीं बरती है। इन विषयों में भी व्यक्तताओं की उपस्थिति है। व्यक्तताओं के ही द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय के जीवन की रक्षा किया है, और जीवन की हीनात्मकता को खत्म करने का प्रयास का राम बाबा है। दिगम्बरजी की राष्ट्रीय रचनाओं का अर्थ एकत्रित स्थान है। उसमें जोरों की और शक्ति में व्यक्तता व्यक्तताओं के द्वारा देश के राष्ट्रीय को प्रकृत करने के ही राष्ट्रीय शक्ति की और प्रकृत होने की वजह की गई है। दिगम्बर जी की इन रचनाओं के अधिक कविता प्राप्त हुई है, वे रचनाएँ उनके वाग्य कला के द्वारा अत्यन्त में बरती है। इन रचनाओं की पुष्पभूमि अत्यन्त है। इन रचनाओं का कवि कवि पूर्ववर्ती रचनाओं की शक्ति व्यक्तता के अत्यन्त में न केवल, जीवन के अत्यन्त पर उत्तर बाबा है। कवि इन रचनाओं में वह मानव हृदय के अधिक शक्ति है। उसमें मानव जीवन की कवि हृदय में ही देखा है। उसके हृदय में विवेकशीलता है, आत्मभूमि है, उपस्थिति है। वह मानव जीवन के दुःखों, शक्ति मानवता के विषयों और निम्नलिखित हुई कविता कविताओं की हृदय पर लक्ष्य जता है, और उनकी रचना तथा कविता की कविता हृदय की कविता के शक्ति में भर कर गाने लगी है। उसके शक्ति में व्यक्तता है—हृदय की विवेकता है। उसके हृदय में निम्नलिखित हुआ पर प्रकृत होने की और शक्ति का ही अर्थ प्राप्त होता है।

दिगम्बरजी की वाग्य कला अत्यन्त की पुष्पभूमि पर व्यक्तता की कविता केवल बीन्दर्पों के रूप ही नहीं बरती, उनकी मिश्रता पर विचारन की बरती है, और व्यक्तता की हृदय कविता के विषय उपस्थिति की शक्ति है। पर इन विचारन में वह व्यक्तता का मानव नहीं बरती बरती, और न किसी वाग्यशक्तिवाद से ही व्यक्तता होती है। उसके विचारन में हृदय के कविता की उपस्थिति है। वह आत्मभूमि और मानवता के बहुत प्रकृत में ही प्रकृत व्यक्तता शक्ति है, और व्यक्तता व्यक्तता की हृदय कविता का प्रकृत बरती है। ‘कुम्हार’ दिगम्बरजी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। कविता कविता का वाग्यशक्ति अत्यन्त कुम्हार में ही देखने को मिलता है। उसकी

काल्य कला इस रचना में एक छोटी कवि की कल्पना है। इस रचना में उसकी कला दार्शनिकता की तुल्यभूमि पर विद्या छोड़कर जीवन का निदान खोजने में व्यस्त है।

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त' प्रकटितकारी कवि हैं। उनकी काव्य कला प्रकृति के जीवन से खेलती है, और उसके मनोहर दृश्यों के साथसे व्यापार भी समना करती है। 'शूराही' इनका मुखविह्वलकाम्य काव्य है। गुरुभक्तों से इनकी काव्य कला ने मानव हृदय के हृद्यों के निजगत के कण्ठों कण्ठगत प्राप्त की है। गुरुभक्तों से प्रकृति के लीदर-विषयों के साथ ही साथ मानव हृदय के हृद्यों के भी मासिक निज मिलते हैं।

श्री हरचंद्राचार्य 'बन्धन' 'दासाचार्य' कवि हैं। हिन्दी कविता में 'दासा' और 'दासा' का अन्वयन इन्हीं की रचनाओं से हुआ है। इनका दासा-अन्वय-मात्रों की और संकेत करता है। इनकी रचनाओं की मुख्यभूमि दासोपनिषद् है, जिस पर अमर लीला का अन्वयों का रंग है। इन्होंने अपनी रचनाओं में, श्रीमद् और संसार की व्यवस्था के विषयों में ही 'दास्य', और अज्ञान कोटि का अन्वय किया है। दास्य और अज्ञान की कोटि में वे विश्व विषय संशोध के अन्वयों, विषयों और अन्वयों पर अज्ञान करते हैं। यही कारण है, कि कहीं-कहीं इनकी रचनाओं का अन्वय अन्वय-अन्वयों का रंग है।

[illegible]

श्री भगवद्गीतापरम सभी सम्बन्धपूर्णताशी हैं। उनकी कल्प कल्पना सम्बन्धपूर्ण है। कल्प शब्द में परिग्राम्य कराती है। वे धारणाशी भी हैं, और प्रकृति तथा प्रयोगशीली भी। उनकी रचनाओं में बिना और सम्बन्ध तथा के प्रति भी सीधे बिना है। और उस जीवन के प्रति भी सामाजिक दिखाई पड़ती है, जिसे हम पार्थिव जीवन कहते हैं। हम प्रकार उनकी कल्प कला की हम कई प्रकृतियों का संयोग कर सकते हैं। कई प्रकृतियों की लेकर चलने की के कारण इनकी कल्प कला में स्वर, शक्ति, प्रेम, प्रकृति, प्रकृति, शक्ति, कल्याण, प्रकृति, और कल्याण आदि चीजों की लेखन करने के कारण

की रचना की है। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ छायावाद की ओर उन्मुख हैं। प्रीति काल की रचनाओं में सुख-दुःख, प्रेम-धृष्टा, दर्प-द्वेष, अतीत-वर्तमान, और समता-विषमता-इत्यादि से सम्बन्ध रखने वाले भाव-चित्र मिलते हैं। उनके सभी चित्रों में हृदय की तन्मयता, और प्राणों को विभोर कर देने की अमिट शक्ति है।

विभिन्न भाव-धारा के और भी कई कवि हैं, जिनमें इलाचंद्र जोशी, श्री रामेश्वर शुक्ल अञ्जल, श्री शिवमङ्गलसिंह, सुमन, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री उदयशङ्कर भट्ट, आरत्नी प्रसादसिंह, प्रो० मनोरंजन, बालकृष्ण राव, हरि कृष्ण प्रेमी, विनय कुमार, प्रभाकर माचवे, केदारनाथ अग्रवाल, गंगेश राधव, हंसकुमार तिवारी, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा, श्रीमती विद्यावती कोकिल, नैपाली और श्रीमती तारादेवी पाण्डेय इत्यादि का नाम मुख्य है। इनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों सुवक्त्र कवि हैं, जो विभिन्न रूपों में काव्य की अर्चना कर रहे हैं। किसी की अर्चना छायावाद के मन्दिर में हो रही है, तो किसी की रहस्यवाद के मन्दिर में। कोई प्रगतिवाद की बीछा पर अपने स्वर्ग की साध रहा है, तो कोई प्रयोगवाद के उपवन से भौंति-भौंति के फूल लाकर कविता-देवी के चरणों पर चढ़ा रहा है; इस प्रकार हिन्दी की आधुनिक कविता विभिन्न भावों से उल्लसित होकर उन्नति की दिशा की ओर अग्रसर हो रही है।

आधुनिक काल—गद्य

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की सबसे बड़ी विशेषता उसके गद्य का विकास है। पिछले तीन कालों में केवल काव्य की ही रचना हुई है। आधुनिक काल में गद्य हिन्दी गद्य के जीव नहीं, और बोहे ही दिनों में उसने गद्य के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। आधुनिक काल में गद्य की जीव नहीं पड़ी—इस पर भी यहाँ विचार कर लेना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के पूर्व में ही उसका सम्पर्क एक ऐसे साहित्य के साथ स्थापित हुआ है, जो विश्व के साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखता है। वह साहित्य अँगरेजी का साहित्य है। अँगरेज जब भारतवर्ष में आए तो उनकी भाषा, और उनके साहित्य में भी हमारे देश में प्रवेश किया। अँगरेजी में गद्य का विकास बहुत पहले से ही हुआ है। अतः यदि अँगरेजी के गद्य में हिन्दी के गद्य पर प्रभाव डाला हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसी बात को हम इन दोनों में भी कह सकते हैं, कि अँगरेजी के गद्य को देख कर यदि हिन्दी में भी गद्य की प्रगति उत्पन्न हुई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह सच है, कि हिन्दी में गद्य का जन्म रीति काल में ही हो चुका था, परन्तु हम 'गद्य' कह सकते हैं, उसका जन्म आधुनिक काल में ही हुआ है। अँगरेजी के आगमन के साथ ही साथ वैज्ञानिकता का प्रवेश भी भारतवर्ष में हुआ है। वह जो मानना ही पड़ेगा, कि आधुनिक विज्ञान का जन्म पश्चिम में ही हुआ है। आज भारतवर्ष में जो कुछ विज्ञान की महत्त्व देखने को मिलती है, वह पश्चिम की ही देव है। हिन्दी गद्य के जन्म, और विकास पर विज्ञान का भी अधिक प्रभाव है। राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों में भी हिन्दी गद्य के जन्म और उसके विकास पर अपना प्रभाव डाला है। ईसाई मत का प्रचार करने के उद्देश्य से, अँगरेजी की मिशनरियों ने भी हिन्दी-गद्य के जन्म और उसके विकास पर अपना प्रभाव डाला है। इस प्रकार युग के लिए गद्य की आवश्यकता नहीं; क्योंकि उन आवश्यकताओं को पूर्ति गद्य से नहीं हो सकती थी। अतः परिणाम स्वरूप गद्य की जीव नहीं। युग को गद्य की मूल्य भी हो। गद्य की जीव बढ़ने के साथ ही युग ने उसे अपने हाथों में उठा लिया; और चारों ओर उसकी सर्व व्यापी उत्पत्ति होने लगी।

श्रीर. गुरुदेव का अनुवाद हिन्दी मध्य में किया। उनके द्वारा अनुवादित गुरुमाला का जारी होना—सर्वत्र जादर हुआ। मिलावट के लुपसिद्ध हिन्दी जेबो भिन्न-भेद के प्रभावों से गुरुमाला का प्रकाशन दमस्त में हुआ, और उसे दक्षिण दिक्कत स्थिति की वरीकः की गलत प्रकाशों में स्थान दिया गया।

इस प्रकार यह संक्षुब्ध और भिन्नभिन्न क्षेत्रों का एक बड़ा ही नगर। यहाँ की भाषाएँ, और समाज के सभी के प्रकारों ने इसकी जनता में एक बना दिए। भारतीय हरिजनता की भाषा में यह हिन्दी का यह बड़ा पड़ा, यह उनके उन्होंने संकीर्ण भाषा की सम्मिलित कर दी। उन्होंने उनके स्वयं की भिन्नता किया, उसे करार, और उसे सर्व प्रकार से एक बनाया। उनके भाषा में यह कर हिन्दी बड़ा सम्मिलित और संक्षुब्ध क्षेत्र प्रगति की संलग्नता दिया की और बालक ही बना।

हिन्दी गद्य के रंग कब पर भारतीयों के समे ही हिन्दी गद्य की महत्त्व की
हमने प्राप्ति की है । भारतीयों के पूर्व हिन्दी गद्य पर कम ही ध्यान था, पर
भारतीयों का
का गद्य
कभी उसे वह स्थान नहीं प्राप्त हुआ था, जिसे हम साहि-
त्यिक स्थान कहते हैं । सर्व प्रथम भारतीयों ने ही हिन्दी

मध्य की साहित्यिक समकाल प्रदान किया। उन्होंने सभी क्षेत्रों के मध्य के साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों की रचना करने के अनेक विभिन्न विभिन्न साहित्य की रचना की। उन्होंने वैदिक के मादकी का हिन्दी में अनुवाद किया, और सभी साहित्यिक समकाल के अनेक विभिन्न साहित्य के मादकी का हिन्दी में अनुवाद किया। उन्होंने वैदिक के मादकी का हिन्दी में अनुवाद किया, और सभी साहित्यिक समकाल के अनेक विभिन्न साहित्य के मादकी का हिन्दी में अनुवाद किया। उन्होंने वैदिक के मादकी का हिन्दी में अनुवाद किया, और सभी साहित्यिक समकाल के अनेक विभिन्न साहित्य के मादकी का हिन्दी में अनुवाद किया।

इस प्रकार मारोलेन्दु युग में हिन्दी-सद्व्य की बहुमुखी उत्पत्ति हुई। विभिन्न विधियों पर इस युग के विद्वानों ने विशेष ही ध्यान, प्रयत्नों की रचना की थी गई। ऐसी हीर भाषा की दृष्टि से भी इस युग के हिन्दी सद्व्य का विकास हुआ। ऐसी के क्षेत्र में प्रायः सभी लेखकों ने परिचयवाचक, और भाषावाचक ऐसी का ही आशय रखा किया है। भाषा के क्षेत्र में सब के मारोलेन्दु की ही प्रवृत्ति का स्पष्टाभ्यन्त किया है। मारोलेन्दु के अपनी भाषा का महान् महति संकेत के अन्तर्गत सभी के किया है, पर उसमें आभरणवाचकतावाचक आनी और भाषावाचक के भी सुन्दर मिलते हैं। मारोलेन्दु की के प्राचीन लेखकों के, अपनी रचनाओं में ऐसी भाषा का प्रयोग किया है।

मारोलेन्दु की के प्रवृत्तता उनके स्वयंविशेषों के हिन्दी-सद्व्य के प्रकार में प्रकटनीय होत किया। मारोलेन्दु की के स्वयंविशेषों द्वारा प्रकटित और विविध होकर हिन्दी-सद्व्य

‘महावीरसारा’
‘हिमेली, और हिन्दी’
‘सद्व्य’

साहित्य के सभी क्षेत्रों में प्रवृत्ति के साथ उत्पत्ति करने लगा। इसमें आभ्य, उपमावाच, वाच्य और व्यापारिक वाच्य की रचना होने लगी। पर सभी

एक भाषा और ऐसी की कोई निश्चित स्वरूप प्राप्त न था। मारोलेन्दु की उनके स्वयंविशेषों की भाषा, और ऐसी में कई प्रवृत्तियों की, जो सभी की लगी बली का रही थी। इन लेखकों की ऐसी में आनीविशेषिकता का प्रयत्न था। उनकी भाषा में सुन्दरी का आशय, और समस्त अधिक सब में न हो गया था, किसी ऐसी और भाषा में आभ्य की सभी की। ऐसी में उन प्रवृत्तियों का आभाव था, किसी विषय की प्रवृत्तता करने में अधिक स्पष्टता होती है। भाषा व्यापारिक सम्प्रदाय नहीं थी। विद्वानों पर प्रभाव नहीं किया जाता था, आभ्य की वह कि भाषा और ऐसी के लिए कोई निश्चित नियम न था। विद्वानों केवल के, सभी प्रवृत्त-प्रवृत्त प्रवृत्ति थी। इस प्रकार सभी ऐसी के सद्व्य और उनकी मूल्य तथा ऐसी का सभी एक कोई निश्चित स्वरूप नहीं था। सभी ऐसी के सब के इस बहुत बड़े आशय की वन महावीरसारा की हिमेली में दूर किया। पंडित महावीर प्रसाद हिमेली ‘कलकत्ता’ के सम्पादक थे। उन्होंने ‘कलकत्ता’ के द्वारा हिन्दी सद्व्य के प्रकार, आभ्य, और सब निश्चित में प्रकटनीय होत किया। उन्होंने सभी ऐसी के सद्व्य की भाषा की प्रवृत्तियों को दूर किया, और भाषा तथा ऐसी के स्वरूप का महान् किया। उन्होंने भाषा और ऐसी की आनीविशेषिकता के सभी में आभ्य, और उसे सभी की और अनुसृत किया। उन्होंने भाषा में सुन्दरी के आशय और समस्त पर अधिक ध्यान दिया। भाषा के स्वरूप की व्यापारिक के आभ्य-वाच ही निश्चित किया, और विद्वानों, तथा भाषा-उपमावाच आशय विद्वानों की भी भाषा में अधिक ध्यान दिया। एक प्रकार उन्होंने सभी ऐसी के सद्व्य की भाषा और उनकी ऐसी की दूर एक प्रकार से सुन्दरविशेष, और सुन्दर बनाया। उन्होंने एक और भाषा और ऐसी के निर्माण के लिए प्रयत्न किया, ऐसी और उन्होंने सभी विविध स्वरूपों पर विचार किया। उन्होंने साहित्य, वाच्य, इतिहास, प्रवृत्तता, और सभी

उस समय हुई थी, जिसे हम हिन्दी की कलाशोधना का प्रारम्भिक काल कह सकते हैं। कलाशोधना के उस प्रारम्भिक काल में हिन्दी नवजात की रचना करने में अग्रणी ने कलाशोधना के समस्त जलों पर प्रकाश डाला है। उनकी कलाशोधना की रीती में नवीन विवेचना, और मनोवैज्ञानिक तथ्यों का भी विस्तृत वापस आया है।

पं० पदसिंह हमी ने तुलनात्मक कलाशोधना पद्धति का प्रतिष्ठापन किया। उन्होंने बिहारी लालदास की सुमित्रा लिखकर हिन्दी कलाशोधना के संभव पर एक नवीन पद्धति का उद्घाटन किया। उनकी कलाशोधना की रीती अत्यंत पूर्ण होने के कारण इसकी है। पर वह अधिक सुटीली, और सीध है। पं० कुम्भविहारी मिश्र ने तुलनात्मक कलाशोधना की पद्धति को और भी आगे बढ़ाया। उन्होंने हिन्दी के ऐतिहासिक के कवियों की केवल तुलनात्मक विवेचना की, और अन्य की भी रचना की। उनकी रीती अधिक सम्पूर्ण और विस्तृत पूर्ण है। रीती की प्रतिष्ठित उनकी भाषा की अधिक सम्पूर्ण है, पर उनकी वह सीध नहीं है, जो पं० पदसिंह की भाषा और रीती में है। पं० पदसिंह की कलाशोधनात्मक भाषा और रीती इसकी सम्पूर्ण है, पर उनकी द्वारा कलाशोधना की एक नवीन पद्धति का प्रतिष्ठापन हुआ है, जो अब तक अज्ञात का रही है।

हिन्दी कलाशोधना काल में तुलनात्मक उपरिष्ठ करने का अर्थ था— स्वयंप्रकाश, और पं० रामचन्द्र शुक्ल को है। अभी तक हिन्दी में ही कलाशोधना पद्धति की, उसे हम एक सीमा के भीतर देखते हैं। उसमें मनोवैज्ञानिकता और विवेचना कला का ही समावेश था। सर्वप्रथम डा० स्वयंप्रकाशदासजी ने हिन्दी में ऐसी कलाशोधनात्मक कृतियाँ उपरिष्ठ की, जो कलाशोधना की विस्तृत सुधृष्टि पर हीकर की गई थी। उन्होंने हिन्दी में कलाशोधना के एक नवीन जन्म का प्रारम्भ किया। उन्होंने कौटिल्य दंड की मनोवैज्ञानिक, और विवेचनात्मक कलाशोधना पद्धति का प्रतिष्ठापन किया। उन्होंने स्वयं की कलाशोधनात्मक रूप लिखकर कलाशोधना के कार्य को उपरिष्ठ किया। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कलाशोधना की शुद्धता में सविनियमता का संसार किया। डा० स्वयंप्रकाशदास ने कलाशोधना की कला विवेचनात्मक और विवेचनात्मक रीती का प्रतिष्ठापन किया था, पं० रामचन्द्र शुक्लजी ने उसे और भी अधिक सुधृष्ट बनाया। उन्होंने डा० स्वयंप्रकाशदासजी की सीध और शुद्ध रीती को कला के एक से अधिक विवेचित किया। उन्होंने तुलसी, वर, और बाघरी इत्यादि कवियों पर विवेचनात्मक विवेचना की रचना की, जिनमें कला और विवेचना का सम्बन्ध समेकित हुआ है। शुक्लजी की भाषा और रीती अधिक सम्पूर्ण होने के साथ ही साथ कला और दृश्य आदि की है। शुक्लजी की रीती विवेचना की अधिक सुधृष्टता, और सज्जता के साथ समेकित उपरिष्ठ करती है। रीती और भाषा की मनोवैज्ञानिकता के ही कारण शुक्लजी की कलाशोधनात्मक

सेना का कवयः। खोंखोखी के हेमचन्द्रियर इत्यादि प्राचीन लेखकों के नाटक काव्य साधुनिक रंग मंच की दृष्टि से अधिक पुराने पढ़ गए हैं। संस्कृत के कालिदास इत्यादि नाटककारों की कृतिमें भी साधुनिक रंग मंच पर उलझा पूर्वज नहीं सोचता था क्योंकि उसकी रचना बिना रंगशालाओं की दृष्टि से गणक की गई है, वे रंगशालाएँ प्राचीन युग की रंगशालाएँ थी।

नाटकों की रचना में रंगशालाओं का महान् पूर्वी स्थान है। वास्तव्य काल में यही कारण है, कि रंगशालाओं की सर्वाधिक उत्पत्ति हुई है। हमारे देश में, हिन्दी-काल में रंगशालाओं का 'पूर्व' कालेय समय है। हिन्दी काल में नाम मात्र के लिए जो रंग मंच हैं, वह पारसियों के हाथ में हैं। उनका रंग अधिक पुराना है, और युग तथा नाटकता की दृष्टि से उनमें श्रेष्ठ कृतिमें हैं। रंगशालाओं की उत्पत्ति की और हिन्दी-काल में बहुत कम स्थान दिया गया है। सर्वांगीण भारतीय भाव में इसके लिए प्रयत्न किया था। उनके प्रयत्न से 'रंगशाला' की स्थापना भी हुई थी। उनके पश्चात् कुछ और लोगों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया है। कुछ रंगशालाओं की स्थापना भी हुई है, पर जिस प्रकार उत्पत्ति होनी चाहिए उस प्रकार नहीं हो रही है। रंगशालाओं की उत्पत्ति और उसके विकास के सम्बन्ध में हिन्दी नाटककला अज्ञान-मग्न हो रही है, और उसके विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है।

हिन्दी नाटककला का जन्म भारतीय युग के पूर्व ही हो चुका था। भारतीयों के पहले ही हिन्दी के नाटकों की रचना हो चुकी थी। यह सच है, कि वे केवल अनुवाद मात्र थे, और उनमें नाटकीय कला का अभाव था, पर यह भी सच है, कि नाटक रचना की प्रवृत्ति हिन्दी में भारतीयों की कल्पना ही पैदा हो चुकी थी। सर्व भारतीयों की वे निराशा हो ही एक मौलिक नाटक की रचना की थी। किन्तु नाटककला की दृष्टि से बिना रचनाओं की इन नाटक की सीला से कहते हैं, उनका निर्माण सर्व प्रथम भारतीयों के ही द्वारा हुआ। सर्व प्रथम भारतीयों ने ही ऐसे नाटकों की रचना की, जिनमें नाटकीय कला का विकास हुआ है। भारतीयों के नाटकों में 'कैदियों द्वारा लिखा न गया', 'सर्व इतिहास', 'कालावली', 'माला कुरंग', 'कालावली', 'नीलावली', और 'सर्व सीमानी इत्यादि का मुख्य स्थान है। भारतीयों के द्वारा बिना मौलिक नाटककला में हिन्दी में कम महत्त्व दिया, उनका प्रयत्न-योग्य उनके भारतीयों के द्वारा भी हुआ। उनके समयकालीन लेखकों में दिल्ली निवासी भी निवासी के तबलीर सेम मोहिनी, खोंखोखी सम्भव, और वह रंगरत्न की रचना की। रंग रंगीनामनस्य उपान्यास सेम बल में भारत सीमान्त और रंग रंगरत्न नामक निवासी ने 'गो संकट' तथा 'काला सीमन्त' का निर्माण किया। भारतीय युग के अंत में तथा कालावली के 'महाकाव्य प्रकाश', 'महाकाव्य प्रकाश', और 'गुणवली वला' इत्यादि नाटकों की रचना की। एक प्रकार भारतीय युग में, हिन्दी नाटककला अन्य प्रकार प्रवृत्ति और पुष्पित हो गई। योंही ही दिनों में उनमें इतने पढ़ा हुआ

अन्य मंद, कि इसकी पैदाइश काशीनाथ की देखभाल लोगों की अधिक दिक्कत होने लगी। इसने अधिक मंदगतिपूर्वक और मंदगति बनकर कहा कि दुर्दैव, कि लोगों ने मेरी सेवाओं में राज्य रचना की प्रगति उत्पन्न हो गई। रंग मंचों और रंगदाताओं की संख्या की संख्या का अर्थ बनकर प्रगति हुआ, और अधिक लोगों की रचनाएं अधिक की की जाने लगी।

भारतीयसुधार के चरमार्थ हिन्दी भाषा पर चरमवादी का बहुत बड़ा योग । विभिन्न-
 मयी, और सैद्धांतिक विषय उपन्यासों की ओर लोगों की प्रवृत्ति कायम पड़ी, और इस
 प्रकार की उपन्यासों की बाढ़ की का गई । इसका परिणाम यह हुआ, कि सात्व
 कला की प्रगति में रुक गई । कुछ दिनों तक लोग विभिन्नरी और अलग-
 उपन्यासों की ही लेकर उलझे रहे । इसके चरमार्थ पुनः लोगों की निद्रा में आ गई ।
 गं० लालबहादुर सचिव ने उपन्यास के उच्च समकक्ष और मजबूती कायम
 के अनुसार की उपरिष्ठ करने लोगों की प्रवृत्ति प्रवृत्ति की पुनः स्थापना,
 और पुनः लोग सात्विक कला की ओर प्रवृत्त हुए । साक्षात् साक्षात् ने संस्कृत के
 कई नाटकों के अनुवाद किए, जिसमें रामायण, महाभारत, माताविद्याप्रतिष्ठा,
 और महाभारत पारिवारिक आदि का सुष्ठु स्थान है । प्रोफेसर सीताराम ने 'प्रेमिणी कृति-
 का' का अनुवाद करते प्रकाशित कराया । गं० लालबहादुर सचिव, और श्री रामकृष्ण
 वर्मा के द्वारा हिन्दुस्तान राज्य के कई नाट्य अनुवादित होकर हिन्दी-भाषा के सामने
 आया । श्री देवीप्रसाद 'पूरी', गं० लालबहादुर प्रसाद केवल गं० लालबहादुर सचिव,
 और गं० विद्यादेवनाथ सेताराम ने भी कई मौलिक नाटकों की रचना की, जो
 भारतीय रंग मंच और कला के अविनाश प्रदानित है ।

हिन्दी की मातृकता सभी एक मुख्य रूप से अनुशासी के ही जीवन में कोत रही थी। सभी एक ही रचनाएँ हिन्दी-भाषा में उपलब्ध हुई थी, उनमें अनुशासित रचनाओं की ही अधिकता थी। इन अनुशासित रचनाओं से सभी बड़ा लाभ था हुआ, कि एक ही इकाई द्वारा मातृ रचना की सृष्टि उत्पन्न हुई, और दूसरा मातृ कला की समझने में सहजता प्राप्त हुई। मातृकता के संबंध में पूर्ण दृष्टिकोण कहा है, अधिकारी दृष्टिकोण कहा है—इन अनुशासित रचनाओं के द्वारा बहुत हुआ। इसी का यह परिणाम है, कि जब किसी युग का समय हुआ, उस संहिता के अनुसार सभी के साथ ही साथ मातृकता की सभी संवेदन को अधिकतर 'विशाल' की ओर आकर्षित हुई। सर्व प्रथम हिन्दी मातृकता का विस्तृत दृष्टिकोण सभी समझदार पक्षों की ही रचनाओं में ही देखने को मिलता है। सर्व प्रथम उन्होंने ही ऐसे मातृकों की रचना की, जिसमें आधुनिक मातृकता प्राप्त हुई है। 'बलादमी' के सभी मातृक ऐतिहासिक है। उन्होंने वैज्ञानिक मातृक को सिद्ध है। उनके ऐतिहासिक और वैज्ञानिक मातृक आधुनिक मातृकता के बीच में प्राचीन जीवन के विचारों की उपलब्ध करते हुए आधुनिक जीवन के ही विचारों का निर्माण करते हैं। 'बलादमी' ही हिन्दी में आधुनिक मातृकता के अन्त-

काल है। उनके पश्चात् हिन्दी साहित्यका के जीवन का महत्व पूर्ण अभिव्यक्त हुआ। इन अभिव्यक्त कर्माधी में श्री उषा, श्री खेमिन्द, कल्याण चंदा, श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, श्री मिहिन्द, श्री हरिकृष्ण धनी, श्री श्री० माधनमाल बहुरेदी, श्री श्री० श्रीमान् भट्ट, श्री श्री० श्री० श्री बालक, और श्री सुदर्शन इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है।

अश्विन में उपन्यास का प्रमुख स्थान है। जीवन में यात्रा से साहित्य का सर्वप्रथम प्रभाव है, उसी समय के उपन्यासका सम्भव भी मान्य जीवन से हुआ है।

उपन्यास प्रमुख की उपन्यास अधिक दिग्गज है। प्रमुख साहित्य जीवन के साहित्य काल से ही कथा-कहानियों में सम्मिलित रहता रहा था। प्रमुख के साथ साहित्य के नाम पर काल की प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, इससे कथा कहानियों की सम्पूर्ण निर्मित देखने की मिलती है। इससे देखा जा सकता है कि कथा कहानियों का सम्पूर्ण जीवन काल की साहित्य, उपनिषद्, केव कीव कीव जन्मों में सुप्रसिद्ध है। प्राचीन काल से इससे देखा जा सकता है कि कथा कहानियों का विकास निरन्तर हुआ था—इसकी प्रत्यक्ष साक्ष्य श्री द्वितीयरेखा, सिंहपुर कर्माधी, साहित्य कल्याणक प्रकाशों में देखने की मिलती है।

हिन्दी काल के समय के साथ ही साथ इसमें कथा और कहानी का समय हुआ है। यदि हम काल की दृष्टि से जाँचें तो यह साधुता न होनी, कि हिन्दी काल का समय ही कथा और कहानी की सीढ़ी से हुआ है। हिन्दी काल में इस समय की की प्रतीति रचना मिलती है, वह इसका प्रमाण साक्ष्य की 'कथा केवकी की कथा' है। इसकी रचना इसका साक्ष्य साक्ष्य की उक्त समय की की, वह हिन्दी प्रमुख समय के रहा था। इसके पश्चात् साहित्यकालों में साहित्य कर्माधी, कल्याण कर्माधी, साहित्यकाल, और केव सागर की रचना की। कहल मिश्र में साहित्यकालकाल की रचना की हिन्दी हिन्दी की। साहित्य में केव साहित्य की कथा, और साहित्यकालकाल साहित्य हिन्दी में साहित्य का समय साहित्य कर कथा और कहानी की साहित्य की साहित्य हिन्दी।

इन रचनाओं में केवल साहित्यकाल की ही प्रमाणता की। साहित्यकाल की साहित्य से ही इन रचनाओं का निर्माण हुआ था। कुछ दिनों तक हिन्दी में कथा और कहानियों के नाम पर साहित्यकाल प्रमाण ही रचनाकार साहित्य काल की की। यह रचनाकार साहित्य की उक्त में साहित्य, और कुछ समय के। कुछ रचनाओं का सम्बन्ध साहित्य साहित्यकाल केव कथाओं से भी था। किन्तु उपन्यास साहित्य है, इसका समय साहित्य तक हिन्दी-प्रमुख में नहीं ही रहा था। सर्वप्रथम साहित्यकाल साहित्य में हिन्दी उपन्यास काल की समय दिग्गज। उन्नीस 'चंद्रमा', और 'पूर्व साहित्य' की रचना साहित्य साहित्य के साहित्य उपन्यास की कला की प्रमाण किता। साहित्यकाल में साहित्य उपन्यास काल की समय दिग्गज, साहित्यकाल साहित्य में उक्त साहित्यकाल के साहित्य में साहित्य, और उक्त साहित्य कला। साहित्यकाल साहित्य में की उपन्यास की रचना की,

जिनमें शिवजी, लखीम कुतुब, इन्द्रप्रहारिणी, और जयचलता, इत्यादि का मुख्य स्थान है। उपन्यास कला का वास्तविक स्थान सर्व प्रथम गीतापदीजी की इन रचनाओं में ही देखने को मिलता है। गीतापदीजी के अनुसार ही श्री गणेशधर ने गीतापदी विषय लिखा, श्री हनुमन्विह ने जयचलता, श्री देवीप्रसाद शर्मा ने कला, और श्री गणेशधरदास ने गीतापदी हिन्दू की रचना करने। हिन्दी उपन्यास कला की रीति में जीवन प्रवेश किया।

मारेण्डु काल के उपन्यास श्रेणी में राजकुमार भद्र, श्री निजामराय, और श्री कादिक प्रसार, का नाम विशेष उल्लेखनीय है। राजकुमार भद्र के 'दून सहा-बाघी', और 'श्री कालम का एक तुलसी' में औपन्यासिक कला अपने आरम्भिक स्वरूप में दिखाई पड़ती है। श्री निजामराय के परोक्षाशुभ और कादिक प्रसार के 'दीनानाथ' में श्री औपन्यासिक कला के द्वारा विषय उपस्थित किए हैं। ये इस लक्षणरूप की रचनाओं में श्री औपन्यासिक कला को अपनी प्रधान भूमि। देवकीनन्दन शर्मा के चतुर्बाला और 'चतुर्बाला संश्लिष्ट' में हिन्दी उपन्यास कला में एक तुलसीर का उपस्थित कर दिया। देवकीनन्दन शर्मा के इन निराली, और आधुनिक उपन्यासों में, हिन्दी कला में उपन्यास पढ़ने की लोक प्रवृत्ति उत्पन्न की। जिसमें ही लोगों ने केवल इन उपन्यासों की पढ़ने के लिए ही हिन्दी की शिक्षा प्राप्त की। इन उपन्यासों के चतुर्बाला-विहीन पर जिसने ही उपन्यास भी लिखे गए। देवकीनन्दन शर्मा ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी में एक युग की स्थापना की। इन युग की इन निराली युग कह सकते हैं। देवकीनन्दन शर्मा के युग की गीतापदीय नरमरी की रचनाओं से कादिक कला प्राप्त हुआ। गीतापदीय नरमरी हिन्दी में चतुर्बाला उपन्यासों की एक यात्रा की कहा की। उनके अनुसार हिन्दी में शरीरों की और मनसा के कई अच्छे उपन्यासों का चतुर्बाला प्रकाशित हुआ, जिसमें हिन्दी में मौलिक उपन्यासों के प्रचार की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई, और लोग इस और ध्यान देने लगे।

सर्व प्रथम चित्परीक्षित गीतापदी के मौलिक उपन्यास मानते आए। जिसे उपन्यास कला कहते हैं। उसकी प्रत्यक्ष प्रवृत्ति प्रवृत्ति गीतापदी की है उपन्यासों में मिलती है। गीतापदी की द्वारा कई उपन्यास लिखे गए। वे सभी उपन्यास पढ़ना प्रवृत्त है। भाषा और कादिक विषय की दृष्टि से अपने अधिक सुनिर्मित हैं। सभी सभी अपने अद्वितीयता को अधिक बड़े जाती है। वह ऐसे हुए जो इस बात से सम्बन्धित नहीं किन्तु का करता, कि सर्व प्रथम गीतापदी की ही हिन्दी कला में उपन्यास मौलिकता की और प्रवृत्ति हुए हैं। हिन्दी उपन्यास कला में तुलसीर उपस्थित करने का श्रेष्ठ लखीम देवकीनन्दन की है। आधुनिक उपन्यास कला का जन्म सर्व प्रथम प्रेमचन्द की ही उपन्यासों में हुआ है। सर्व प्रथम प्रेमचन्द की ही हिन्दी में ऐसे मौलिक उपन्यास लिखे, जिसमें सामाजिक जीवन की अधिष्ठाता हुई। प्रेमचन्द की का प्रवृत्ति उपन्यास प्रवृत्ति है। इसके अनुसार उन्होंने प्रेमचन्द की रचना की। प्रेमचन्द की रचना करने उन्होंने हिन्दी उपन्यास कला में जीवन का प्रवेश दिया,

दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये, कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास कला के प्रतिष्ठान की दृढ़ता के साथ स्थापित कर दिया। वेदाभ्युदय के चरमार्थ, उन्होंने कई उपन्यासों की रचना की। जिनमें रंगभूमि, कायाधन, अलिखी, और कलम हाथदि मुख्य हैं। श्रीमच्छंड़ी के सम्पूर्ण उपन्यास आदर्श उपन्यास हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक विद्वत्तियों का विवरण करते-उके चरार्थ की और ले जाने का प्रयत्न किया। राष्ट्रीय जीवन के विषयों उनके उपन्यासों में सुन्दरता के साथ मिलती है।

[illegible]

उपमाय का बीति हो कहानी की कहानि का मुख्य भाग है, और उपमाय का बीति हो कहानी के भी मुख्य भाग का अधिक अधिकारिय है । बिना के उपमायविद्या उपमाय कहानि का सम्पूर्ण करने के पता कहता है, कि उपमाय कहानि में कहानी का नाम उसके प्रारम्भ के ही हुआ है । पर हिन्दी उपमाय कहानि का नाम कहता है । हिन्दी कहानि में कहानी का नाम बहुत देर के हुआ है । हिन्दी में कहानी सर्व प्रथम पद्य के रूप में ही प्रगट हुई है । सर्व प्रथम काव्यी की कविताओं में ही कहानी कहने की मिलती है । काव्यी के परभाव और की वृत्ति कविता की दृष्टाओं में ही कहानी का प्रदुर्भाव है । हिन्दी गद्य में सर्व प्रथम की कहानी मिलती है, वह ऐसा कहता थी की 'रानी केरवी' की कहानी है । इस उपमाय ऐसा कहता थी की ही हिन्दी का प्रथम कहानीकार । मानस भाव, भावेंदु प्रथ में प्रथ हिन्दी गद्य की उक्ति हुई, एवं कहानि के सम्पूर्ण भागों के साथ ही साथ हिन्दी कहानी कहा है की कथा स्वयं प्रथम प्रथम प्रथम । भावेंदु प्रथ में की निवादाय में वही प्रथम, और राधाकृष्णदाय में निवादाय हिन्दी उपाय प्रथम प्रथ में प्रथम कहानी की दृष्टा की ।

क्यानी और कथा के साथ कर यह सर्व प्रथम प्रकाश का । इस प्रथम प्रकाश के केवल इतना ही ज्ञान हुआ, कि इसी क्यानी कथा को प्रोत्साहन मिले, और वह

कुछ शब्दों की होकर जाने लगी। द्वितीयो की कुल की जब दाहि हुई, और जब उनके द्वारा सम्पादित मजलसी में हिन्दी-कला में एक नया आलोचक उत्पन्न किया, तब हिन्दी-कला की कला के ऊपर भी एक नया प्रकाश पड़ा, परिणाम स्वरूप किशोरीलाल कोशलाकी की 'दृष्टि' नामने लगी। हिन्दी में यह पहली कदाभी थी; जिसमें कदाभी कला करने सामर्थिक रूप के आधुनिक हुई थी। इसके पश्चात् 'समय' में उद्भूत-उद्भूत की कदाभिर्यो प्रकाशित होने लगीं। इन कदाभिर्यो में अविश्वस्त बेगला के आधुनिक ही हीली थी। बेगला में सम्पादित कदाभिर्यो उत्पन्न करने वाली के विरिक्त कुमार शीत, और 'बंग साहित्य' का नाम उन्नीनीय है। 'बंग साहित्य' में कुछ कीर्तिक कदाभिर्यो की हिन्दी के लिये, जिसमें 'दुलारे बाली' का महत्व दूर स्थान है।

इसके पश्चात् की कलाकार प्रसार और लम्बी प्रेमचन्दकी हिन्दी कदाभी-कला के रंग रंग पर आर। 'प्रसाद' की कदाभी की रूप 'दृष्टि' में प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक नाम था। कुछ लोगों का कथन है, कि हिन्दी की यही पहली कीर्तिक कदाभी है। इसके पश्चात् प्रसादकी ने अपने कदाभिर्यो लिखीं। उनकी कदाभिर्यो के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें आकाशदीप, जिसकी, अति-प्रायः, सभी के लिये, विश्व साहित्य, और दुर्लभ इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं। प्रसादकी की कदाभिर्यो के निम्न कथित और ऐतिहासिक हैं। कुछ कदाभिर्यो में मनोवैज्ञानिक रूप पर इन के दृष्टि का भी चित्रित किया गया है। कुछ कदाभिर्यो में व्यक्ति के साहित्य का भी प्रकाशन है। प्रसादकी की कदाभी कला विभिन्न विषयों की दृष्टि पर विचार करती है, और साहित्यिकता की साहित्य के आदर्शों के विषय उपस्थित करती है। प्रेमचन्दकी की कदाभिर्यो में भी आदर्शों की भाषा है। उपस्थाप की प्रति कदाभी-कला के की प्रेमचन्दकी के द्वारा सुपरीत उपस्थित हुआ है। प्रेम चन्दकी की सम्पूर्ण कदाभिर्यो में सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने समाज की कदाभिर्यो का विचार करती हुए उसे आदर्शों की ओर ले जाने का प्रयत्न किया है, पर प्रसादकी और प्रेमचन्दकी के आदर्श रूप में अधिक शक्ति है। प्रसादकी का आदर्श-रूप नहीं भावनात्मक है, नहीं प्रेमचन्दकी के आदर्श-मार्ग में साहित्यिकता है। प्रेमचन्दकी कदाभिर्यो करना प्रयत्न है। उनकी कदाभिर्यो की भाषा की अधिक सरल और साहित्यिक है। यही कारण है, कि प्रसादकी की अपेक्षा प्रेमचन्दकी की कदाभिर्यो अधिक लोक प्रिय है। प्रेमचन्दकी के दो मार्ग का 'कीर्तिक' और सुदर्शन इत्यादि के भी अनुमान किया। 'कीर्तिक' और 'सुदर्शन' में भी दर्शनी कदाभिर्यो लिखीं, जो मुख्य रूप से आदर्शोन्मुख हैं।

प्रेमचन्दकी के पश्चात् हिन्दी-कदाभी कला में एक नवीन आकाश का भी विलेख हुआ। प्रेमचन्दकी और उनके सम्बन्धीय लोगों की अविश्वस्त कदाभिर्यो आदर्शों हुआ है; पर प्रेम चन्दकी के पश्चात् बरि-बरी हिन्दी कदाभी कला पश्चात् की दृष्टि पर उदर आई। पहले बड़ी बड़ी कला के अपने जीवन का अधिष्ठा करती है, नहीं जब वह अपने जीवन में व्यक्ति की महत्ता देने लगी। इस अपने आकाश में

निरन्तर साहित्य में सुसज्जित द्विवेदी युग के आरम्भ हुआ है। द्विवेदी युग के पूर्व हिंदी काल में अधिकांश मान्यतामय निरन्तरों की ही रचना हुई है। कुछ लेखकों में विशालतामय, विशालतामय, और वर्षानन्तरक निरन्तरों की भी रचना की है, पर उनकी संख्या नदी के समान है। द्विवेदीजी ने जब सरस्वती का सम्यजन करने वाली से लिया, तो सरस्वती के द्वारा हिन्दी के निरन्तर-साहित्य में क्रांति-की उपस्थिति हो गई। सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सांघिक दृष्टिसे निरन्तरों पर विचार पूर्व निरन्तर सरस्वती में प्रकाशित होने लगे। इसी दिनों का- रामचन्द्रनारायण और व- रामचन्द्र सुन्दर हिन्दी-निरन्तर के रंग बिरंग पर उपस्थित हुए। इन दोनों ही उद्गमक निरन्तर लेखकों में भिन्न-भिन्न हीनियों का प्रदर्शन किया। उनके द्वारा प्रकीर्ण हीनियों में सरस्वती के लक्ष के भीतर प्रेरणा-उत्पन्न की, और समान हीनता का प्रकाश दिए विचारक, लेखकों का प्रादुर्भाव हुआ। इन लेखकों में श्री निरन्तर, श्री परम साह सुभाषल कर्मा, श्री-कल्याण प्रसाद, श्री पूर्वांचल शिवाजी निरन्तर, श्री सुभाष कर्मा, श्री मलिकी मोहन कल्याण, श्री रत्नाकर मोहा, श्री सुभाषनार, डॉ॰ गोपाल कल्याण, श्री रामचन्द्र कर्मा, श्री साहि प्रिय द्विवेदी, श्री का- इसाजी प्रसाद द्विवेदी, श्री पराशर कल्याण श्री का- रामचन्द्र कर्मा इत्यादि का नाम सुझा लाना है। इन निरन्तरकारों ने विभिन्न निरन्तरों पर निरन्तर लिख कर निरन्तर साहित्य-संसार की पूर्ति की है।

सर्वप्रथम लिखने की प्रेरणा ही हिन्दी में प्राचीन काल के काली का रही है। और प्राचीन काल और भी काल के भी सर्वप्रथम लिखने का है। ऐति काल में जीवन-चरित्र की जीवन-चरित्रों का सुन्दर लिख लाना है। किन्तु वह सब उद्गम में ही हुआ है। रामचन्द्र चरित्रात्मक रूप 'महा काल' और मोहा-चरित्र की भी रचना उद्गम में ही हुई है। उद्गम में सर्व प्रथम कर्मा-चरित्रात्मक में जीवन-चरित्र लिखे। उन्होंने ही सबसे पहले कर्मा-चरित्रों की रचना की। उनके प्रेरणा-प्राप्तक मोहाजी ने इन प्रेरणा-का निर्माण किया। रामचन्द्र की ही जीवन-चरित्र के सर्व प्रथम लेखक है। उन्होंने कर्मा-चरित्रों की जीवन-चरित्र की लिखे, और इस प्रकार उन्होंने जीवन-चरित्र लिखने की जीवनी हिन्दी में प्रारंभ की। उनके प्रेरणा-उनके कल्याण-चरित्रों की लेखकों में जीवन-चरित्र लिख कर सब प्रकाश किया, किन्तु कर्मा-प्रकाश नहीं, रामचन्द्र-प्रकाश, और मोहा-प्रकाश कर्मा इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है।

द्विवेदी युग में आरम्भ के साथ ही इन जीवन-चरित्र काल में भी क्रांति उपस्थित हो गई। उद्गम का विकास और उनकी उपस्थिति होने के साथ ही काल-विवेदात्मिक, राजनीतिक, और साहित्यिक कल्याणों के जीवन-चरित्र लिखने लगे लगे। अब तक लिखने की जीवन-चरित्र लिखे जा चुके हैं। वर्तमान जीवन-चरित्र के लेखकों में निरन्तर, श्री रामचन्द्र सुन्दर, श्री सुभाषनार, और श्री का- इसाजी प्रसाद द्विवेदी इत्यादि का सुझा लाना है।

इस प्रकार हिन्दी गद्य की बहुमुखी उन्नति हो रही है। विभिन्न विषयों पर इस समय कितने ही मासिक पत्र, और पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं। इस समय हिन्दी-गद्य जिस द्रुव गति से आगे बढ़ रहा है, उसे देखते हुए यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता, कि एक दिन आयेगा, जब विश्व के साहित्य में उसका प्रमुख स्थान होगा।

नीति, और उनका जन्म

नीति का जीवन से अधिक निकट का संबंध है। संसार में कदाचिद् ही कोई ऐसा मनुष्य हो, जिसे नीति छिप न हो, या जिसका हृदय मधुर नीति को चुनकर उजड़ल न नीति का पक्ता हो, या जिसके शब्दों में नीति से प्राप्त संबंधित न हो महत्त्व उठते ही। मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी तक नीति से विमुक्त हो पाते हैं। जिसने ही पशु पक्षी देखे हैं, जो नीति को मधुरिमा, पर दुष्ट होकर अपने को मनुष्य के मुख में डाल देते हैं। नीति से अद्भुत से शेरनी शक्ति होती है। नीति के स्वर जबतक और तब से जैसे हुए मधुर शब्दों से निकलते हैं, तब उनका प्रसङ्गों के ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जो कार्य किसी के द्वारा किए नहीं होते, वे नीति के द्वारा किए हो पाते हैं। नीति के मधुर शब्दों में शायद ही विमोह कर देने की अद्भुत शक्ति होती है। नीति के स्वर जैसे उठकर शब्दों की उठते हैं। और इसे उस आनन्द से मिटाते हैं, जिसे परमानन्द कहते हैं। यही कारण है, कि नीति का अधिक उच्च स्थान है। जीवन के साधारण व्यवहारों पर नीति को अधिक महत्त्व दी दिया ही जाता है, उस व्यवहारों पर भी नीति को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है, जब मनुष्य परमात्मा के चरणों के निकट पहुँचने की आकांक्षा से उसकी अभिनन्दना करता है। अभिनन्दना = निश्च मनुष्य जिस साधना का व्यवहार होता है, वह नीति ही है। संसार के सभी पक्षों और सभी काल संस्थाओं में ईश्वर की सर्वोच्च नीति मूलक ही है। नीति में जब 'अद्वय' और अद्वयत्व की भी धारणा करने की शक्ति है, तब तब और अद्वयत्व केवल पर उसके गुणकारी प्रभाव की बात का कहना ही क्या !

जो नीति इतना अधिक महत्त्व पुरुष पर क्या करता है। नीति से सभी लोग परिचित हैं, और नीति सब को छिप है। पर नीति क्या है—एक-कदाचिद् सभी नीति क्या है ? लोग नहीं जानते। 'नीति' नीति है, यह इस ज्ञान का साधारण उद्धार है। पर नीति में जो महान शक्ति होती है, वह कहीं से आती है—इस प्रश्न का उत्तर फिर भी नहीं मिलता। नीति के सम्बन्ध में संसार के जाचारों में निश्चिन्त मत प्रबल किए हैं, किन्तु सभी का इस बात पर एक मत है, कि नीति मनुष्य के हृदय का एक भाग है—एक निष्कर्ष है, दूसरे शब्दों में उसके हृदय का एक हिस्सा है। एक भाग है। नीति में बहुत शक्ति छिपी रहती है, उसका एक

४

गीति काव्य

विषय सूची

- १—गीति और कवय्य जन्म ३६६
 (क) गीति का महत्त्व, (ख) गीति क्या है, १ (३) गीति का संयुक्त-दृश्य (३)
 गीति और कवय्य ।
- २—गीति का स्वरूप ३६६
 (ए) गीति के स्वरूप पर विद्वानों के मत, (ऐ) गीति काव्य के प्रति भारत और
 विदेश का दृष्टि कोण, (ओ) ओंठ और सुन्दर गीति का स्वरूप ।
- ३—गीति काव्य और छंद ३७४
 (औ) गीति की विभिन्न शैलियाँ, (ख) गीति और छंद, १(क) हिन्दी गीत और
 छंद, (क) हिन्दी गीत के नए छंद ।
- ४—गीति काव्य और संगीत ३७६
 (क) संगीत का महत्त्व, (ग) संगीत का सौन्दर्य, (प) संगीत की उत्पत्ति,
 (फ) संगीत का विकास और उसकी उत्पत्ति ।
- ५—हिन्दी गीति काव्य का विकास काल ३१४
 (ब) गीति काव्य-वैदिक काल से, (ख) गीति काव्य रामायण और महाभारत
 काल से, (क) गीति काव्य और भरत मुनि, (ख) गीति काव्य और ब्राह्मण,
 (ग) गीति काव्य और ज्ञानपी, (६) हिन्दी गीति काव्य और जयदेव, (६) गीति
 काव्य-काल विभाजन ।
- ६—गीति काव्य—आदि काल ३१८
 (६) सामाजिक राजनीतिक स्थिति, और गीति काव्य, (६) बीरलदेव रासी,
 (ख) आनंद सहस्र, (७) सुलोक गीत ।
- ७—गीति काव्य—मध्यकाल ३२६
 (७) मध्यकाल गीति काव्य की उत्पत्ति का कारण, (७) मध्यकाल-गीति काव्य
 की अंशपूर्ण, (७) निरुद्धवादी गीतिकार, (७) सगुणवादी-कृष्ण भक्ति गीति-
 कार (७) सगुणवादी-राम-भक्ति गीतिकार, (७) ऐतिहासिक और गीतिकाव्य ।
- ८—गीति काव्य आधुनिक काल ३३०
 (८) आधुनिक काल के पूर्व-गीतिकाव्य, (८) आधुनिक काल के गीति काव्य
 की एक अवस्था, (८) आधुनिक गीतिकार ।

मान्य करना नहीं है, कि उसके समुद्रों में—उसके समुद्रों में मनुष्य का दृश्य और उसका प्रादुर्भाव होता है। बीति के स्वर उसके स्वर नहीं मनुष्य के प्राणी के स्वर होते हैं। बीति के समुद्र उसकी भाषा के समुद्र नहीं, मनुष्य के दृश्य के समुद्र होते हैं। जिस प्रकार प्राकृतिक प्राणीप्राणी के देखाओं में मनुष्य के समुद्र भरे होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य अपने दृश्य के समुद्रों को बीति के देखाओं में भरता है। जो अपने दृश्य के वरी को मिलती ही अधिक लक्ष्मिता, लक्ष्मिता, और विमोचता के साथ बीति के समुद्रों में भरता है, उसके बीति अपने ही अधिक समुद्रों, और विमोचता होते हैं। बीति में मिलने ही अधिक दृश्य के लक्ष्मिता होते हैं, उसका ही अधिक उसका दृश्य पर प्रभाव भी लक्ष्मिता है। दृश्य के समुद्रों को बीति का निष्ठा हुआ बीति विमोच के समुद्रों को बीति होता है, और बीति के समुद्रों को बीति का निष्ठा में भी मूल्य करता है। इसकी, वह, और बीति के बीति इसके समुद्रों में। बीति के कल्प के बीति का कल्प के बीति का कल्प तक मिलने ही बीति को रचना हुई, और ही नहीं है, वह उस संतुष्ट बीति का दृश्य, वह, और बीति के बीति इसके दृश्य हुआ है। इसका कारण बीति नहीं है, कि इसकी, वह, और बीति के बीति उनके दृश्य और समुद्रों के बीति हैं। वह कल्प है, कि कल्प इस प्रकार का उनका बीति और नहीं है। वह उनके साथ ही साथ वह भी साथ है, कि कल्प भी उनके बीति समुद्रों में उनका दृश्य और प्रादुर्भाव होता है। उनके बीति और ही अधिकलक्ष्मिता में भी उनका दृश्य, और उनका प्रादुर्भाव उनके समुद्रों के साथ ही बीति-बीति के निष्ठा का समुद्र के प्राणी को प्राणीकृत का रहा है, और वह तक इसी प्रकार प्राणीकृत करता देता, वह तक वह बीति, और वह प्राणीकृत देता।

बीति मनुष्य के बीति के तक कल्प की भावना है, बीति दृश्य करते हैं। मान्य बीति के बीति ही प्रधान कल्प है—मालिन्ध और दृश्य। मालिन्ध के मनुष्य लोचता बीति का बीति और निष्ठा करता है। दृश्य के वह मनुष्य करता है, दृश्य दृश्य समुद्रों में मालिन्ध मनुष्य को बुद्धि का बीति है, और दृश्य उसके साथ का भावना। मनुष्य अपने दृश्य की संसार में ही भाषी को दृश्य करते रहता है। इसका ही नहीं, भाषी का कल्प भी मनुष्य के दृश्य के ही होता है। भाषी के कल्प का कारण हुआ हुआ, दृश्य निष्ठा, निष्ठा लक्ष्मिता, और लक्ष्मिता-लक्ष्मिता लक्ष्मिता होते हैं। लक्ष्मिता इन निष्ठाओं, लक्ष्मिता, और लक्ष्मिताओं के बीच में मालिन्ध की लक्ष्मिता होता है, और वह का दृश्य प्रभाव रहता है, वह इनके निष्ठाओं लक्ष्मिता बीति दृश्य-लक्ष्मिता का ही लक्ष्मिता होता है। निष्ठाओं, और लक्ष्मिताओं के लक्ष्मिता साथ का दृश्य में लक्ष्मिता को प्राप्त हो जाता है, वह वह साथ में वह का दृश्य लक्ष्मिता है। वह साथ में दृश्य की वे लक्ष्मिता, और लक्ष्मिता होती है। दृश्य के इसी लक्ष्मिता और वे लक्ष्मिता की 'बीति' की बीति ही यह है।

इस लक्ष्मिता, दृश्य निष्ठा बीति और लक्ष्मिता मनुष्य साथ के बीति में निष्ठा

गीति का स्वरूप

गीति आत्मा की वास्तविक व्यक्तिगत है। वास्तविक गीति उसी को कहते हैं, जिसमें दृढ़ को—प्राणी को सब अनुभूति दिखी होती है, दूसरे शब्दों में जिसमें कवि या गीत के स्वरूप पर गीतिकार नाचों और अनुभूतियों में डूब कर अपने प्राणी विद्वानों के मन का आकाश शब्दों और भाषा के प्याले में डालता हुआ दिखाई देता है। जो कवि या गीतिकार जिसकी ही अधिक सम्यक्ता और विमोक्षता के साथ शब्दों के प्याले में अपनी आत्मा का रस डालता है। उसके गीत उठने की अधिक उत्कृष्ट, और उठने ही अधिक प्रभाव पूर्ण होते हैं। पश्चिम का सुप्रसिद्ध विद्वान् हीगल इसी बात की इसी रूप में कहता है—'कवि संसार के अन्तः कण्ड में पहुँच कर आत्मानुभूति करता है, तब उसे अपनी चित्त-बुद्धि के अनुसार काल्पनिक भाषा में कुशलता पूर्वक व्यक्त करता है।' हीगल के मतानुसार गीति अनुभूतिमय होती है। हीगल गीत उसी को मानता है, जिसमें भाव, वा अनुभूति की प्रधानता होती है। हीगल के मतानुसार गीति की रचना चित्त की एक विशेष अवस्था में होती है। उस विशेष अवस्था को हम चित्त की शांत और सुस्थिर कह सकते हैं। कवि अपने चित्त की इस शांत और सुस्थिर में, बाह्य-जगत के दृश्यों और पदार्थों के देखने, और सुनने के परिणाम स्वरूप भावों का अनुभव करता है। वही अनुभूत भाव उसकी कल्पना में गीति बन कर व्यक्त होते हैं। जर्मनेजी का सुप्रसिद्ध विद्वान् जनेस्ट राईस गीति के स्वरूप के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहता है—'वास्तविक गीत वही है, जो भाव, या भाव पूर्ण विचारों को व्यावहारिकता के साथ भाषा में व्यक्त कर सके, जो शब्दों और लय की एक कला से उस भाव की ठीक-ठीक व्यक्त कर सके, जिसका व्यक्त किया जाना अपेक्षित हो, जिसके शब्दों में मधुरता, और संगीतात्मकता की ध्वनि निकलती हो, और कलाता, कोमलता के पूर्ण हो, तथा जो नगद 'पूर्ण' और प्रवाद 'पूर्ण' हो। गीत में आरोग्य अवशोष, प्रसार, मधुरता, स्पष्टता, और संगीतात्मकता का होना अधिक वांछनीय है। जर्मनेजी का सुप्रसिद्ध समालोचक 'हर्नट रीड' 'गीति' की व्याख्या करता हुआ करता है—'गीति' का मूल अर्थ अब प्रायः लुप्त-सा हो गया है, और अब वह केवल भाषात्मक ही रह गया है। संसार उन कविताओं को गीत मानने लग गया है, जिसमें सुप्त अनुभूति हो, अथवा सुप्त अनुभूतियों की उन प्रति कविताओं को जो एकान्त आनन्द के आली-

चित होती है। यौक्ति कल्प का कवि निर्गुण ही निर्गुण की लक्षणा और चेतना से अपने भीतर चेतना प्राप्त मान जाता है। जित्त की रसधियों में, मिलते हुए गुणों में, और वातावरण के रसों के चेतनों में, ही उसमें जागृत होती है। इन भावात्मक चेतनाओं के समन्वय प्रकाश में यौक्ति कल्प की वास्तविकता के साथ बहुत निकट होती है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान और आलोचक डा० रामसुन्दरदासजी ने यौक्ति कल्प पर अपना मत इस प्रकार उलट दिया है—‘यौक्ति कल्प में कवि अपनी जगत्प्रिया में प्रवेश करता है, और वास्तविकता को अपने कल्पः कल्प में ही जानकर उसे अपने भावों से रचित करता है। आध्यात्मिकता का कल्पनी कविता यौक्ति-काल में ही छोटी-छोटी चेतनों में बहुत भावना बन्ने, आत्म-निवेदन के कुछ स्वाभाविक ही रूप बढ़ती है। उसमें कल्प की लक्षणा के साथ-साथ कल्प की भी लक्षणा होती है। भावना सुसंगत होती है, और एक-एक पद में पूर्ण होकर लक्षणा हो जाती है। कवि उसमें अपने अंतर्गत की स्वतन्त्रता व्यक्त कर देता है। वह अपने अनुभवों, और भावनाओं के प्रेरित होकर उनकी आभात्मिक अभिव्यक्ति कर देता है।’ हिन्दी की सुप्रसिद्ध कविधियाँ, और यौक्ति लेखिका भीखी लक्ष्मीदेवी यहाँ यौक्ति के स्वभाव की विवेचना करती हुई कहती हैं—‘हृत् हृत् की आध्यात्मिकता का जगत् का विवेक विवेक-गुणों में उलट लक्षणा के उपलब्धता जित्त कर देना ही यौक्ति है।..... यौक्ति यदि दूसरी का इतिहास न कर कर वैयक्तिक हृत् हृत् की व्यक्ति कर बने ही उसमें मार्मिकता जित्त की बहुत बल जाती है, उसमें कल्प नहीं।’

यौक्ति के स्वभाव पर विद्वानों के साहित्य समर्थों, और कलाकारों ने भी मत व्यक्त किए हैं, उनकी भाषा और समझने में अंतर लक्ष्य है, किन्तु मुख्य दृष्टि से उनके यहाँ की समझने करने पर हृत् वास्तव का एक लक्षणा है, कि उनके चित्तों में लक्ष्य है। प्रायः सभी कलाकारों और आलोचकों के यौक्ति की भावमूलक लक्षणा है। वास्तुतः यौक्ति का लक्ष्य-भाव है, जिस यौक्ति में जितना ही अधिक भावों की विवृतता होती है, वह यौक्ति उतना ही अधिक प्राथम्य और हृत् लक्ष्य लक्ष्य होता है।

यौक्ति के लक्ष्य पर अंतर जिन विद्वानों के मत प्रकट किए हैं, उनमें कुछ ऐसे हैं, जो चिन्तनी हैं, और कुछ ऐसे हैं, जो पूर्ण हैं। यद्यपि दोनों ही वर्ग के विद्वानों के यौक्ति कल्प के प्रति लक्ष्य में यौक्ति के स्वभाव के लक्ष्य में एक लक्ष्य है, पर एक एक लक्ष्य में यौक्ति के स्वभाव लक्ष्य की लक्ष्य की लक्ष्य है। उनमें कुछ निमित्तता भी दिखाई देती है। उनके लक्ष्य की विविक्तता उस कल्प और भी अधिक लक्ष्य हो जाती है, वह हृत् भाव-लक्ष्य, और चिन्तनी यौक्ति-कल्प का लक्ष्य करते हैं। भारतीय और चिन्तनी यौक्ति कल्प के लक्ष्य में लक्ष्यः चिन्तनी दिखाई देता है। भारतीय यौक्ति कल्प अपने आप में ही पूर्ण है। भारतीय कल्प में लक्ष्य नहीं है, कि कल्प मुख्य ही, इसके विपरीत भारतीय साहित्य में लक्ष्य कल्प ही ‘चिन्त’ होने पर यौक्ति कल्प की लक्ष्य वास्तव्य कर

होता है। जैसे तुलसी, कूर, और मीरा के यह इत्यादि। प्राचीन भारतीय साहित्य का सम्भव करने से पता चलता है, कि बाल्य में ये सब गीतों में ही गौडि बाल्य की संज्ञा प्रयुक्त कर ली है। पर पश्चिमी बाल्य साहित्य में यह बात नहीं है। पश्चिमी बाल्य साहित्य में बाल्य और गौडि को पृथक्-पृथक् रखा है। अंग्रेजी में एक विशेष प्रकार की रचनाओं को ही गौडि की संज्ञा दी जाती है। उस रचना को 'लीरीसी' के बाल्य में यह सब 'लीरिक' कहते हैं। 'लीरिक' में एक विशेष 'जार्ज' दिया हुआ है। प्राचीन साधारण रूप में उस रचना या उस रचनाओं को लीरिक की संज्ञा दी जाती थी, जिसका 'जार्ज' पर 'मही' गौडि नाम दिया जा सकता हो 'सागर' 'बीदा' के साधारण प्रकार का एक नाम होता है। किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमी बाल्य साहित्य में जो, 'लीरिक' के सम्बन्ध में 'जार्ज' पर गाने करने का प्रतिबिम्ब दूर हो गया है। आधुनिक काल में जो 'लीरिक' के सम्बन्ध में केवल एक ही बात कही जाती है, वह मधुर हो, और कम दुःख हो। उनमें ऐसे गानों की प्रभावता हो, जिनका सम्बन्ध ज्ञान और वाणी से हो, जिनमें अंतर्बोध के ही मात्र चिन्तों की प्रभावता की कमी की गई हो।

आधुनिक भारतीय गौडि बाल्य : पश्चिम के 'लीरिक' के बहुत कुछ प्रभावित है। वर्तमान काल में कुछ ऐसे उदाहरण मिले हैं, जो अंग्रेजी के लीरिक के रूप पर गौडि की रचना कर रहे हैं, पर ऐसा कम होता है, कि इन कलाकारों के गौडि बाल्य काल में स्थापित न हो सके। इसका एक मात्र कारण यह है, कि उनके गौडि भारतीय पद्धति के विरुद्ध है। भारतीय पद्धति के अनुसार गौडि और बाल्य दोनों ही के एक एक के अतिरिक्त के रहते हैं। भारतीय पद्धति के अनुसार गौडि बाल्य में बम्बों की साधना के साथ ही साथ बम्बों की भी साधना होती है, तुलसी, कूर, और, और, और बम्बों के गीतों में संगीत की यह साधना का सम्बन्ध रूप से देखो या समझो है।

गौडि बाल्य के सम्बन्ध में पश्चिम और भारत के दो दृष्टिकोण हैं, उन्हें प्यार से रखते हुए हम सब पर विचार करना चाहिये, कि गौडि बाल्य सर्वप्रथम, और श्रेष्ठ और सुन्दर सुन्दर स्वरूप क्या हो सकता है? क्योंकि आधुनिक हिन्दी गौडि का स्वरूप बाल्य-काल में जिन गीतों का प्रचलन हो रहा है, उन पर भारतीय और पश्चिम—दोनों ही गौडि-काल का उदाहरण तरह-तरह दिखाते देता है। गौडि बाल्य के श्रेष्ठ और सुन्दर स्वरूप पर प्रकाश डालने के पूर्व हम सर्व प्रथम गौडि के उन सभी पर विचार करेंगे, जिनके गौडि की रचना होती है। गौडि का गौडि बाल्य के मुख्य रूप के दो-भाग होते हैं—सांसारिक, और आकाश। गौडि बाल्य के आंतरिक भाग की कई छोटी छोटी किन्तु बहुत पूर्ण अन्तर मिलकर सुन्दर बनाते हैं। जैसे माय, विचार, दृष्टि, अन्तर, और उद्धार इत्यादि। दूसरे बम्बों में गौडि बाल्य का सांसारिक जीवन-कालमय और अनुभूतिमय होता है। बाल्य जंग का संगठन भी कई अवस्थाओं की वृद्धि के होता है। जैसे—माय-पला के सम्बन्ध की कला, और ऐसी, मल्लिक, मधुरता, योग्यता, योग्यता, योग्यता, और

लम्पटता इत्यादि ; नीति काय के श्रेष्ठ और सुन्दर मूल्य का निश्चय, नीति काय के उच्च श्रेणी और उनके अवयवों को ही दर्शित में रखकर किया जाता। संश्लेष में हम उन्हीं नीति काय को श्रेष्ठ और सुन्दर नीति काय कह सकते हैं, जिसमें उसके श्रेणी ही श्रेष्ठ करने अवयवों के परिपुष्ट होकर यही नीति निश्चित हो रही है।

नीति काय की उच्चपटा की पहली कसौटी भाषा है। जहाँ नीति काय में भाषा की प्रयुक्तता होती चाहिए। भाषा का वाक्य का उद्देश्य स्पष्ट होना है। कहा: वह कहा का उच्यता है, कि नीति काय में उद्देश्य के लक्ष्यों को प्रयुक्तता होती चाहिए। उद्देश्य के लक्ष्यों में ही सरलता, सुस्पष्टता, निश्चितता, और सम्यक्ता इत्यादि का भी सम्बन्ध है। जहाँ नीति काय में यहाँ भाषा की प्रयुक्तता हो। यहाँ उसके सरलता, सुस्पष्टता और सम्यक्ता, के भी कुछ अधिक होने चाहिए। इसके विपरीत नीति काय में शार्दूलिक लक्ष्यों के विवेचन के लिए समान नहीं है। जिस नीति काय में शार्दूलिक लक्ष्यों का विवेचन किया जाता है, दूसरे शब्दों में, जिसमें उद्देश्य के लक्ष्यों की अपेक्षा शार्दूलिक के लक्ष्यों की प्रयुक्तता होती है, उस नीति काय को न ही श्रेष्ठ-मिथता प्राप्त होती है, और न हम उसे किसी प्रकार श्रेष्ठ और सुन्दर ही कह सकते हैं।

श्रेष्ठ नीति काय की दूसरी कसौटी उच्चपटा [प्रकार] है। नीति काय का प्रकार कायकाय कायों के प्रयुक्तों के प्रयुक्त होता है। नीति काय के प्रकार उद्देश्य और श्रेष्ठों की श्रेष्ठ करते हुए चलते हैं। उनमें सरलता, सरलता, निश्चितता, और सम्यक्ताप्रयुक्तता होती है। मर्यादा और श्रेष्ठ प्रकार नीति काय की श्रेष्ठता को कहा देते हैं। सुन्दर और श्रेष्ठ नीति काय में हम और भाषा के श्रेष्ठों का हीन अधिक श्रेष्ठता है। हम भाषा और भाषा काय में हम प्रकार मिले जुले हैं, कि उनमें प्रयुक्तता का श्रेष्ठ न हो। भाषा के अनुक्रम ही भाषा की सरल और सुस्पष्ट होती चाहिए।

श्रेष्ठ नीति काय की तीसरी कसौटी उच्चपटा भाषा और प्रयुक्तता है। श्रेष्ठ नीति काय में भाषा भाषा के अनुक्रम होती है। भाषा अधिक से अधिक सरल और सुस्पष्ट होती है। भाषा में शब्दों का स्थान और संगठन कोमलता के ही आधार पर किया जाता है। शब्दों में स्पष्टता और सरलता होती है। भाषा की ही नीति काय की श्रेष्ठता और सम्यक् होती है। नवीन और कुछ अवयवों नीति काय के मूल्य को अधिक कहा देती है।

श्रेष्ठ नीति काय के भाषा के निर्माण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। श्रेष्ठ नीति काय में भाषा की सुन्दरता के ही उच्चता श्रेष्ठता प्रयुक्त होती है। भाषा सुस्पष्ट और श्रेष्ठ होती है। उसके अवयव संश्लेषता विशेष रूप के पाई जाती है। शब्दों का प्रयुक्त नहीं सरलता के नाम किया जाता है। अधिकतर सरल सुस्पष्ट और स्पष्ट शब्दों की ही श्रेष्ठ नीति काय की भाषा में स्थान दिया जाता है। द्वितीय

संक्षेप में श्रेष्ठ और सुन्दर गीति काव्य में निम्नांकित गुण और विशेषताएँ होनी चाहिए—ऐसे भावों की अभिव्यक्ति, जो संगीतमय हों, ऐसे भावों और दृश्यों का चित्रण, जिनका सम्बन्ध अन्तर्जगत से हो, प्रकरण अथवा भावना की सुकुमारता; सरलता, और व्यञ्जकता, भाषा का माधुर्य, और सरलता, शब्दों का मधुर एवं मार्मिक चयन, भाषा और भावना का सामंजस्य और उचित प्रभाव तथा सँक्षिप्तता । इन गुणों और विशेषताओं के आधार पर रचे गए गीति काव्य ही श्रेष्ठ और सुन्दर गीति काव्य होते हैं । हिन्दी के प्राचीन गीति काव्य लेखकों तुलसी, सूर, और मीरा का महत्व पूर्ण स्थान है । आधुनिक हिन्दी काव्य के गीतिकारों में प्रसाद, श्रीमती महादेवी वर्मा, पन्त, निराला, और डा० रामकुमार वर्मा ने विशेष कीर्ति अर्जित की है ।

गीति काव्य और छन्द

गीत तीन वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं—लोक गीत, साहित्यिक गीत, और गायक गीत । लोक गीत उन गीतों को कहते हैं, जो जन समाज में प्रचलित हैं, और गीति के प्रकार कबो, लोहारों तथा विशेष व्यवहारों पर गाये जाते हैं । गायक गीत भी लोक गीतों से ही मिलते-जुलते हैं । लोक गीत, और गायक गीत प्राचीन काल से जन समाज में प्रचलित हैं । लोक गीतों, और गायक गीतों का अधिक महत्व भी होता है । लोक गीतों और गायक गीतों से संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है, और जन समाज की विचार चेतना का भी उनसे पता चलता है । साहित्यिक गीत वे हैं, जो कविनों और कलाकारों के द्वारा रचे जाते हैं । साहित्यिक गीतों की भाषा, भाषा, और शैली लोक गीतों की भाषा, भाषा और शैली से विभिन्न होती है । लोक गीतों में जनता का हृदय बोलता है । उनकी भाषा और शैली भी अधिक साधारण, और स्वाभाविक होती है । साहित्यिक गीतों की भाषा और शैली अधिक परिष्कारित होती है; दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं, कि साहित्यिक गीतों की भाषा और शैली जगन्नाथ की और उन्नत होने के कारण कृत्रिम और अस्वाभाविक होती है । भाषा की स्वाभाविकता और विद्वत्ता भी साहित्यिक गीतों की अपेक्षा लोक गीतों में अधिक होती है ।

साहित्यिक गीतों की ही गीति काव्य कहते हैं । साहित्यिक गीतों के विकास और निर्माण पर देश और काल का अत्यन्त रूप से प्रभाव पड़ता है । बिना प्रकार का गीति की विभिन्न देश और काल होता है, उसी प्रकार के साहित्यिक शैलियों गीत भी बनते हैं । आज हमारे सामने गीति काव्य की जो समृद्धा विद्यमान है, देश और काल के आधार पर अब हम उसका वर्गीकरण करते हैं, अब उसने विभिन्न विभिन्न प्रकार की प्रकाशित्वों, और शैलियों पाते हैं । उन समृद्ध प्रकाशित्वों और शैलियों को हम संक्षेप में नीचे की ओर से बोलेंगे—भक्ति मूलक, शब्दश्रेय मूलक, श्रेय मूलक, विरह मूलक, प्रकृति मूलक, साधन गीत, लोक गीत, नव गीत और चतुर्वर्ण कवि । भक्ति मूलक शैली का विकास तुलसी, गुरु, और मीरा के गीतों में हुआ है । भक्ति काल में और भी कई ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने भक्ति सम्प्रदाय गीत लिखे हैं । प्रसन्नदी की कुछ रचनाओं में शब्दश्रेय मूलक शैली का आधिपत्य हुआ है । विरह मूलक शैली के सर्वश्रेष्ठ विषय श्रीमती महादेवी कर्मा के गीतों में मिलते हैं । 'पन्न' में प्रेम मूलक, और शब्दश्रेय मूलक गीत लिखने में

की रचना मात्रिक छन्दों में होती है। आज कल गीतों के लिए जो व्यवस्था काम में लाई जाती है, उसके अनुसार प्रथम पंक्ति में एक छोटी सी टेक होती है। टेक मात्राओं के आधार पर बनती है। टेक के पश्चात् गीति की पंक्तियाँ होती हैं, जिनमें सममात्राएँ होती हैं। टेक के पश्चात् की पंक्तियाँ कभी कभी टेक के सममात्रा वाली होती हैं, और कभी कभी उनमें उससे अधिक मात्राएँ होती हैं। अधिक से अधिक १२, १४, या १६ मात्राएँ होती हैं। पंक्तियों के सभी पद तुल्य होते हैं। पंक्तियों की कोई संख्या निश्चित नहीं है। इस प्रकार वर्तमान हिन्दी-गीति काव्य में गीति के लिए नए नए छन्द और नई नई शैलियाँ बना ली गई हैं। यद्यपि ये सभी छन्द विंगल शास्त्र के नियमों के अनुसार नहीं हैं, पर इसमें सन्देह नहीं, कि गीति के भीतर उनसे संगीत के तत्व व्यक्त होते हैं।

गीति काव्य और संगीत

गीति काव्य और संगीत का परस्पर अधिक संबंध सम्बन्ध है, बताना यह चाहिए, कि संगीत गीति काव्य का प्राण है। गीति काव्य में जो माधुर्य, जो मनो-संगीत का इरादा, और प्रभाव पूर्णता होती है, उसका एक मात्र कारण महत्त्व संगीत ही है। संगीत ही वह शक्ति है, जिसके कारण गीति-काव्य समाहित है। गीति काव्य की सम्पूर्ण सत्ता संगीत ही के द्वारा है। यदि गीति काव्य के भीतर से संगीत के तत्त्व निकाल दिए जायें, तो हममें रुचि नहीं, कि उसके अस्तित्व का लोप हो जायगा। तुलसी, सूर, और मीरा के गीत आज भी अमर हैं। आज भी तुलसी की 'जिनव बचिअ' के गीत लोगों के अचटों में अमृत के बिंदुओं की वर्षा करते हैं, और आज भी सूर और मीरा के ग्रंथ तथा फिरह के मार्गों में उनके हुए दुन्दर गीत लोगों के हृदयों को अमृत-रस में डुबोते हैं। यदि तुलसी, सूर और मीरा के गीतों में संगीत के तत्त्व न होते तो क्या आज उनके द्वारा अमृत-बिंदुओं की वर्षा हो सकती? संदीप्त के तत्वों में ही आज भी तुलसी, सूर और मीरा के गीतों की अमर बना दिया है। संगीत के तत्वों के ही कारण आज भी यह सात होता है, मानो तुलसी, सूर और मीरा के गीत अभी हाल ही में उनके कंठ से निकले हैं। संगीत प्राचीन को भी नवीन कर देता है, और जिसे हम भूल गए हैं, उसे हमने उपस्थित कर देता है। संगीत में महान् शक्ति होती है। संगीत अपनी अनुपम शक्ति से स्वर्ग की पुत्री कर उतार देता है, और उस महानन्द को भी मुलभ कर देता है, जिसके आनन्द का उपभोग कोई जन केवल ध्यान में किया करते हैं। संगीत की वह अनुपम शक्ति स्वाभाविक रूप से गीति काव्य में संचिहित होती है। संगीत की मोहक शक्ति के ही गीति काव्य भी अधिक मोहक और प्रभाव पूर्ण होता है।

काव्य और संगीत का अभिलक्ष्य समान है। दोनों का एक दूसरे की सन्निधता में ही अधिक विकास होता है। दोनों एक दूसरे के साधर्म्य में ही अधिक प्रभावकर संगीत का सौन्दर्य बनते हैं। दोनों ही का उत्तम स्रोत भी एक ही स्थान है। काव्य मात्र प्रधान है। मात्र प्रधान होने के कारण काव्य का स्रोत हृदय से ब्रूता है। काव्य में हृदय के तत्वों की ही प्रधानता होती है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं, कि काव्य हृदय का प्रतिबिम्ब होता है। ज्वर बुद्ध होने के

काव्य काव्य में संकीर्ण द्रष्टुत्व का ये सम्बन्धित होता है। काव्य छन्द अर्थात् संकीर्ण की भाषा के काव्य काव्य कहलाता है। काव्य यहाँ भावपूर्ण होता है, यहाँ संकीर्ण से स्वर की प्रधानता होती है। संकीर्ण में स्वर अभिव्यक्त नहीं होता है। यह हमने भाषा भाषा की भी निरूपण किया है। इसी भाषा को हम इस रूप में भी कह सकते हैं, कि संकीर्ण में स्वर और भाषा दोनों ही सम्बन्धित रहते हैं। संकीर्ण में काव्य की अभिव्यक्ति काव्य के साथ अभिव्यक्ति सम्बन्धित में रहते हैं। कवि काव्य में भी संकीर्ण के साथ रहते हैं, और पर उनमें नहीं होते, जिससे संकीर्ण में होते हैं। संकीर्ण में भाषा, और संकीर्ण दोनों के ही साथ अभिव्यक्ति सम्बन्धित में होते हैं। यहाँ काव्य है, कि संकीर्ण का काव्य काव्य की अभिव्यक्ति अभिव्यक्ति रहता है। यहाँ काव्य के अभिव्यक्ति विद्युत्कार होने का भी नहीं कहना है। 'गीति काव्य' संकीर्ण और काव्य-दोनों के ही साथ से मिल कर बनता है। गीति काव्य में यहाँ एक और भाषा का भाषा रहता है, यहाँ दूसरी और उनमें कोई-कभी नहीं का संकीर्ण की बनता है। भाषा के भाषा की भाषा से काव्य संकीर्ण की संकीर्ण का संकीर्ण होता है, जो एक सम्बन्धित काव्य-सम्बन्धित होता है। ऐसा काव्य-सम्बन्धित होता है, किसे हम यहाँ, और संकीर्ण काव्य-सम्बन्धित कह सकते हैं।

काव्य और के कुछ ऐसे सम्बन्धित रूप हैं, किन्हीं हम अर्थ-सम्बन्धित का और कह सकते हैं। हम यहाँ की यदि हम भाषा रहता, काव्य रहता और काव्य-सम्बन्धित की ही कोई सम्बन्धित न होने। सम्बन्धित हमें हम यहाँ की सम्बन्धित की भाषा-सम्बन्धित में यहाँ से यहाँ-काव्य काव्य कर सकते हैं। यहाँ न होता, कि गीति काव्य में सम्बन्धित भाषा, और यहाँ का सम्बन्धित हमें यहाँ-काव्य के सम्बन्धित है। गीति काव्य काव्य, काव्य, और काव्य के रूप के सम्बन्धित रहता है। यहाँ काव्य है, कि गीति काव्य काव्य काव्य-सम्बन्धित रूप में सम्बन्धित के रूप के सम्बन्धित है, जो काव्य की काव्य-सम्बन्धित, यह भी सम्बन्धित है। गीति के रूप में सम्बन्धित सम्बन्धित की भी, यहाँ ऐसे की सम्बन्धित होती है। गीति के रूप में सम्बन्धित सम्बन्धित सम्बन्धित है, गीति के रूप में सम्बन्धित सम्बन्धित की भाषा-सम्बन्धित सम्बन्धित है, और गीति के रूप में सम्बन्धित की भी सम्बन्धित कर सकते हैं। इसके द्वारा यहाँ की सम्बन्धित कर देना, यहाँ के और से काव्य-सम्बन्धित कर देना, और सम्बन्धित की भाषा-सम्बन्धित कर देने की सम्बन्धित सम्बन्धित गीति यहाँ में सम्बन्धित रहता है।

भाषा और स्वर के संकीर्ण के काव्य-गीति यहाँ में एक सम्बन्धित यहाँ का काव्य-सम्बन्धित सम्बन्धित सम्बन्धित और सम्बन्धित होते हैं, यहाँ यहाँ की काव्य-सम्बन्धित काव्य में सम्बन्धित सम्बन्धित और सम्बन्धित होते हैं। यहाँ की सम्बन्धित सम्बन्धित, और सम्बन्धित का संकीर्ण का गीति काव्य में होता है, जो एक सम्बन्धित सम्बन्धित की सम्बन्धित होती है। ऐसे सम्बन्धित की सम्बन्धित होती है, किसे पर सम्बन्धित सम्बन्धित की ही बात ही नहीं, यहाँ सम्बन्धित सम्बन्धित की सम्बन्धित है। यहाँ में भाषा और स्वर की काव्य के सम्बन्धित सम्बन्धित से ही सम्बन्धित की सम्बन्धित सम्बन्धित या। सम्बन्धित-सम्बन्धित

सुदृढवादी ने इसी सौन्दर्य की शक्ति के सेवान को अपने वश में कर लिया था, और निरामासी इसीसुदृढवादी ने इसी को अपनी दीन शक्ति का सम्पन्न बना कर वर्षोंका पुनरुत्थान की रामचन्द्रों की कृपा प्राप्त की थी। आज और सब सम्पन्न के संयोग के उत्पन्न वह सौन्दर्य कायम, शाश्वत, और विरलतम होता है।

गीति कला में वह सौन्दर्य संगीत के ही द्वारा उत्पन्न होता है। यद्यपि गीति-कला में भाव का सौन्दर्य भी अधिक परिमाण में होता है, पर भाव सौन्दर्य की प्राप्ति-संगीत की किता और प्राप्त करने का पला संगीत के लक्षों के ही द्वारा उत्पन्न होता है। संगीत के लक्ष ही 'भाव-सौन्दर्य' की अभिवृद्धि करते हैं, और उसके भीतर संवेद्यता उत्पन्न करते हैं। अतः यहाँ यह भी भाव होता अधिक आवश्यक है, कि संगीत है क्या वस्तु! संगीत तो तो एक कला है, जिसका विकास मनुष्य के द्वारा हुआ है। पर वह कला मनुष्य की किता प्रकार मिली है—एक सम्पन्न है हमारे देश का एक साम्प्रदायिक इतिहास है। वह सम्पन्न जिसमें हमारा विश्व विस्तृत है, मानव है। अतः में निम्नलिखित 'भाव' का सुधार होता रहता है। भाव की उत्पत्ति का कारण सम्पन्न साधुओं का उत्पन्न है। सम्पन्न साधुओं के समक से निम्नलिखित हुआ वह सम्पन्न में निम्नलिखित सुनिहित होता रहता है। भाव और भाव एक ही वस्तु है। इसी 'भाव' और 'भाव' के भाव की उत्पत्ति हुई है, जिससे संगीत के लक्ष उत्पन्न हुआ है। इन लक्षों लक्षों के नाम इस प्रकार हैं—भाव, भाव, भाव, भाव, भाव, भाव, भाव, भाव। इन लक्षों-उत्पत्ति स्थान पर भाव के निम्नलिखित भाव माले गए हैं। उन लक्षों के नाम इस प्रकार हैं—भाव, भाव, भाव, भाव और भाव। इसी लक्षों के लक्ष लक्षों की उत्पत्ति हुई है, जिससे एक लक्ष एक लक्ष है। लक्ष लक्षों के नाम इस प्रकार हैं—भाव, भाव, भाव, भाव और भाव। भावों की उत्पत्ति से लक्षों के भाव-लक्षों की उत्पत्ति होती है। लक्षों के भाव-लक्षों की उत्पत्ति होती है। इन लक्षों 'भाव' के लक्ष, लक्ष के लक्ष, और लक्ष के लक्षों की उत्पत्ति होती है। लक्षों ही निम्नलिखित भाव-लक्षों की उत्पत्ति का कारण है।

एक प्रकार संगीत की उत्पत्ति में एक साम्प्रदायिक लक्ष निहित है। हमारे देश में संगीत कला के लक्ष की उत्पत्ति सम्पन्न, सुलभता, और सम्पन्नता के आधार पर की गई है। यही कारण है, कि हमारे देश में संगीत की उत्पत्ति का विशेष महत्त्व माना जाता है, और यही कारण है, कि हमारे देश में संगीत कला का अधिक विकास भी हुआ है। निम्नलिखित भाव-लक्षों के लक्ष में हमारे देश में संगीत कला में यही उत्पत्ति की है। हमारे देश की संगीत कला के इतिहास में लक्षों संगीत सम्पन्नता का नाम होता है, किन्तु लक्षों संगीत की शक्ति से सम्पन्न लक्ष हुए। इसी में हमारे देश लक्ष विद्य के, और किन्तु लक्ष लक्ष लक्षों के लक्ष-लक्षों को लक्ष कर लक्षों भीतर में लक्षों की लक्ष लक्ष ही थी।

हमारे देश में लक्ष लक्ष से ही संगीत कला की उत्पत्ति होती-लक्ष का लक्ष

संगीतज्ञों में जयदेव, विश्वपति, चैतन्य देव, तानसेन, स्वामी हरिदास, बैजूबाबरा, और गोपालराय इत्यादि का महत्व पूर्ण स्थान है।

आधुनिक काल में भी संगीत कला का स्वाभाविक गति के साथ विकास हो रहा है। रेडियो, और सिनेमा के प्रचार ने आधुनिक काल में, संगीत कला की उन्नति में पट्ट लगा दिए हैं। आधुनिक काल में संगीत कला के अनेक कलाकार हैं, जिनसे प्रोत्साहन पाकर संगीत कला दिनों दिन विकास और उन्नति की ओर अग्रसर होती जा रही है। आधुनिक काल में संगीत कला की उन्नति और उसके विकास के लिए कई शिक्षण संस्थाएँ भी स्थापित हुई हैं। इन शिक्षण संस्थाओं में बम्बई के 'गोवर्धन विद्यालय' का महत्व पूर्ण स्थान है।

हिन्दी गीति काव्य का विकास क्रम

हिन्दी गीति काव्य के विकास क्रम को समझने के पूर्व हमें गीति-काव्य को उस लहरी पर ध्यान देना चाहिये, जो प्राचीन काल से हमारे देश के साहित्य में चली आ रही है। हिन्दी का गीति-काव्य उसी लहरी की बंतीर काल में है। हमारे देश के सांस्कृतिक जीवन का आरंभ वैदिक काल से माना जाता है। अतः गीति काव्य का स्रोत भी वैदिक काल से ही आरम्भ हुआ है। वेदों में ऋग्वेद सबसे अधिक प्राचीन है। ऋग्वेद में अनेक ऐसी श्रुतियाँ हैं, जो गीतिमय हैं। ऋग्वेद की श्रुतियों में जो गीतिमय हैं, प्राचीन के विद्वत्-कारी भाष हैं। उनमें जीवन की व्योति है, प्राचीन का राग है। उनके शब्द-शब्द में जीवन का लज उछलता है। ये गीतिमय श्रुतियाँ जब कंठ से निकलती हैं, तो वायु मंडल में जीवन ला जाता है, और चारों ओर की विस्तम्भता गुँवार से भर जाती है। सामवेद की तो संगीत का आदि स्रोत ही मानते हैं। सामवेद में जो श्रुतियाँ हैं, वे सुद्ध संगीतमय हैं; दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है, कि सामवेद में जो काव्य है, गीतिमय है। काव्य में संगीत इस प्रकार जुला मिला है, कि दोनों को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। सामवेद की प्रणाली पर ही वैदिक काल में ऐसे कई काव्य काव्यों की भी रचना हुई है, जो गेय हैं। वैदिक काल में काव्य और संगीत का अमिश्र सम्बन्ध था।

वैदिक काल में संगीति का उद्देश्य अधिक उन्नत और महत्व पूर्ण था। वैदिक काल में संगीत मनोरंजन का साधन न होकर मोक्ष प्राप्ति का साधन माना जाता था।

गीति काव्य रामायण और महाभारत
वैदिक काल में संगीत का आशोधन यज्ञों और वधिव अनुष्ठान के अवसरों पर ही किया जाता था।
काल में वैदिक काल में संगीत में केवल तीन ही स्वर

थे—उदात्त, अनुदात्त, और लघुति। वैदिक काल के पश्चात् जब पाणिनि की संस्कृत का युग आया, उस भाषा व्याकरण के जटिल नियमों में आच्छादित हो गई। भाषा के साथ ही साथ संस्कृत काल में संगीत के नियमों का भी विस्तार किया गया। पाणिनि काल में और उसके पश्चात् संगीत शास्त्र की विवेचना पर महत्व पूर्ण प्रकाश डाला गया। संगीत के सम्बन्ध में महत्व पूर्ण नियम निश्चित किए गए। अनेक व्यास-शगुनियों का भी विस्तार किया गया। रामायण काल में काव्य के अंतर्गत सर्व

प्रथम प्राथमिक स्तर के लोच का सम्बन्ध किया। इसके पश्चात् राज-राजिनिषी का लोच दूसरा स्तर सम्बन्ध में आ जाता, और उसके विभिन्न लोक गीतों का इस प्रकार का संबंध। महाभारत काव्य में यह प्रभाव और भी अधिक बढ़ते के साथ उभरता। महाभारत काव्य में संगीत के लोचों का उभरा अधिक महत्व नहीं था, किन्तु अधिक महत्व लोक गीतों को प्राप्त था। महाभारत काव्य में लोक गीतों का विकास अपनी प्रथम सीमा पर पहुँचा हुआ था।

महाभारत काव्य में लोक गीतों का विकास पूर्ण पर्याप्तता की पहुँचा हुआ था। लोक गीतों को विभिन्न रीतिरिवाज का सम्बन्ध में अभिलेख दी। संगीत नीति काव्य और का प्रयोग केवल काव्य में ही नहीं किया जाता था, भरतमुनि काव्य गानों में जो गीते गायन के साथ सम्बन्ध दिया जाता था। इसकी प्रत्यक्ष का सम्बन्ध भरतमुनि के साथ प्राप्त में मिलता है, किन्तु आधुनिक महाभारत काव्य के पश्चात् हुआ था। भरतमुनि के साथ प्राप्त से पता चलता है, कि उसके पूर्व संगीत कला, और राज-राजिनिषी का महत्व पूर्ण विकास हो चुका था। भरतमुनि ने कम उमर में प्रचलित उन्ही राज-राजिनिषी के आधार पर संगीत कला की प्रकाश पूर्ण विवेचना की। उन्होंने संगीत के तीन स्तरों के स्थापन पर सात स्तरों (स, र, ग, म, प, ध, नि,) की स्थापना की। इन स्तरों की स्थापना के पश्चात् विभिन्न राज-राजिनिषी के रूप में संगीत कला गीतों के साथ उभर रही। भरतमुनि ने स्वयं कविक राज-राजिनिषी का आधिकार किया। भरतमुनि के पश्चात् राज-राजिनिषी की कला में बहुत लाभ मिला। गीतों और संगीत का प्रभाव उभर रहा। केवल लोक गीतों ही में नहीं काव्यों की रीतों में भी संगीत की प्रभाव प्रकट होने लगी।

इस काल तक नीति काव्य के मुख्य रूप के दो स्तरों में। एक स्तर तो यह था, जो संगीत के स्तरों में सम्बन्धित था, और दूसरा स्तर यह था, जो लोक गीतों के नीति काव्य रूप में कम उमर में प्रचलित हो रहा था। कम उमर के और प्राकृत लोक गीतों की भाषा संस्कृत के भिन्न थी। उसे इन कम या लोक भाषा कह सकते हैं। व्यवस्था के अतिरिक्त विषयों से अधिक आवश्यक होने के कारण अन्तिम में संस्कृत का भाषा के निरुद्ध नहीं, और परिष्कार स्वरूप निरुद्ध तथा कम भाषा के संगीत के वाली, और प्राकृत ने कम किया। कम भाषा की प्रचलना होने पर लोक गीतों का प्रभाव भी उभर रहा। प्राकृत में कविक कवियों की रचना हुई, किन्तु लोक गीतों का विकास देखने को मिलता है। हिन्दी के नीति काव्य का प्रभाव उन्ही लोक गीतों की नीति पर लड़ा किया गया है।

प्राकृत में कई नीतिनायक महत्व पूर्ण काव्य कवियों की रचना हुई है। 'माया राज गीतों' प्राकृत की एक कला पूर्ण नीतिनायक रचना है, 'साधु संन्यासी' में भी नीति कला के सम्बन्ध स्थापित मिलते हैं। कालिदास के गानों में ऐसे कई गीत

गीति काव्य— है, और उसके विकास में किन-किन कलाकारों से अधिक काल विभाजन योग प्राप्त हुआ है। हिन्दी गीति काव्य के विकास की विवेचना करने के लिए हमें हिन्दी गीतिकाव्य के इतिहास का मथन करना होगा। हिन्दी गीत काव्य का इतिहास अपने कर्म से लेकर आज तक अपने विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। सुविधा की दृष्टि से उसके विस्तृत क्षेत्र को हम तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं—आदि काल, मध्यकाल, और आधुनिक काल। आदि काल की वीर गाथा काल भी कह सकते हैं। इसका समय सम्वत् १०५० वि० से लेकर संवत् १३७५ वि० तक माना जा सकता है। मध्यकाल भक्तिकाल से प्रारम्भ से होता है। इसमें यह काल भी समाविष्ट है, जिसे हिन्दी कविता में रीतिकाल कहा जा सकता है। इसका समय सम्वत् १४०० से प्रारम्भ होकर सम्वत् १६५० तक चलता है। इसके पश्चात् आधुनिक काल प्रारम्भ होता है, जो अब तक चल रहा है। आधुनिक काल का प्रारंभ प्रसादजी से माना जाता है। हिन्दी गीत काव्य में आधुनिक कला का समावेश सर्व प्रथम प्रसादजी की ही रचनाओं में हुआ है। अतः प्रसादजी की ही आधुनिक गीत काव्य कला का प्रवर्तक माना जाता है।

नीति काव्य—आदि काल

आदिपाल को बीर माया काल भी कहते हैं। इसका समय सं० १०५० वि०
से ११०५ तक माना जा सकता है। इस काल में नीति काव्य की रचना बहुत
सामाजिक राजनीतिक ही कम हुई है। इस तीन सौ वर्ष के लम्बे समय
स्थिति और पर जब हम नीति काव्य की दृष्टि से गन्धर्व
नीति काव्य करते हैं, तो निराश हो होना पड़ता है। इस
निराशा का मुख्य कारण यह है, कि यह समय नीति काव्य की रचना के लिए उपयुक्त
नहीं था। तीन सौ वर्ष के इस लम्बे समय तक भारत की राजनीतिक स्थिति अधिक
अस्थिर-अस्थिर रही है। देश में चारों ओर अराजक की छाँटि छाँटि फैलती रही है।
यवनों के बार बार आक्रमण होते रहे हैं। यवनों के आक्रमण से देश की रक्षा
करने के लिए बीर राजकुल की टुकड़ियों की संख्या भी बार बार घुनाई पड़ती रही
है। कुछ आतंक और अराजक के कारण जीव, समाज, और राष्ट्र—सबकी राँह में
अनिश्चितता उत्पन्न हो गई थी; परिणाम चाहित सुख का द्वार बंद हो गया था।
कुछ और आक्रमण की विभिन्नताओं के कारण लोगों के हृदयों में सुकुमार भावनाएँ
हो गई थीं। केवल भौतों और चारों ओर के द्वारों के अंतर्गत ही भावों की
सृष्टि हो रही थी। कभी-कभी स्वयंभूत और आलोच के अंतर्गत पर मनोरंजनार्थ शृंगार
रस की धारा भी प्रभावित हो उठती थी, पर उस शृंगार में भी बीर रस समाहित-सा
रहता था।

यह समय कुछ और आतंक का समय था। इस काल में किस तरह काव्य का
निर्माण हुआ, उसका उद्देश्य 'काव्य का निर्माण' नहीं, बरन् देश की रक्षा के लिए
वीरों को उत्तेजित करना था। जीवन अनिश्चित होने के कारण यह समय काव्य के
निर्माण का समय नहीं था। यही कारण है, कि तीन सौ वर्ष के इस लम्बे समय में
नीति काव्य का निर्माण नहीं हो सका। कुछ आक्रमण और आतंक का यह अराजि-
मय समय नीति-काव्य की रचना के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था।

इस काल में नीति काव्य के रूप में दो काव्य ग्रन्थों की रचना हुई है—वीरल
देव रासो, और आर्य संघ। वीरल देव रासो के रचयिता का नाम नरपत नाहू है।

वीरलदेव रासो इसकी रचना सं० ११११ वि० में हुई थी। यह चार खंडों
और दो सहाय चरणों में समाप्त हुआ। यद्यपि इसकी रचना बीर माया काल में हुई थी,

मिलती है। इनके पदों, और वानियों से हिन्दी भाषा के रूप और उसके विकास पर भी महत्व पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

अमीर खुसरो फारसी का विद्वान था। हिन्दी और संस्कृत में भी उसकी अच्छी गति थी। वह काव्य और संगीत कला में अधिक निपुण था। उसने अरबी-फारसी के ढंग पर पहेलियों, और मुकरियों की रचना की है। उसकी पहेलियों, और मुकरियों की भाषा बोलचाल की, अधिक सरल है। अमीर खुसरो ने कुछ भाव पूर्ण दोहों और पदों की भी रचना की हैं। इसके दोहों और पदों में भावों के सौन्दर्य की प्रमुखता है। कहा जाता है, कि बरवा राग में लव रत्न की रीति का आविष्कार अमीर खुसरो ने ही किया है। फज्वाली में अनेक राग-रागिनियों भी उसी ने निकाली हैं।

नीति काव्य—सत्यकाव्य

सत्य काव्य स० १८६० में प्रकाशित होकर स० १९५० तक माना जा सकता है ।
‘आर वी वर्म’ के इस समये समय में हिन्दी नीति-काव्य में अत्यन्त अभिवृद्धि हुई है ।

सत्य काव्य—नीति काव्य इसकी और इस प्रकार अभिवृद्धि हुई है, कि
की उत्पत्ति का कारण इस समय की वरि इस हिन्दी नीति-काव्य का सर्वो
काव्य नहीं, तो कोई सादृष्टि न होगी । ‘आर वी वर्म’ के इस समय में हिन्दी नीति-
काव्य की अभिवृद्धि क्यों हुई—यह एक विचारणीय विषय है । ‘नीति’ के प्रकृत अर्थों
की व्याख्यान करने हुए पहले यह कल्पना का प्रकाश है, कि नीति के अर्थों का संशयन
हृदय के अर्थों से होता है । इसी बात की वजह इस कथ में यह समझते हैं, कि नीति
काव्य का विकास हृदय के अर्थों से होता है । किन्तु पुनः हृदय के अर्थों की मर्यादा
के अर्थों से अधिक व्यवस्था होती है, उस पुनः में काव्य या नीति काव्य का अधिक
विकास होता है, क्योंकि किन्तु पुनः में मानव जीवन में मान्यताओं की व्यवस्था होती
है, उस पुनः में मनुष्य काव्य और नीति काव्य की रचना की और अधिक उत्तेजित
होता है । यद्यपि न होता, कि मनुष्यकाव्य मान्यताओं का पुनः का । यद्यपि से देश की
व्यवस्था के लिए यदि काव्य में सम्पूर्णता की की व्यवस्था बहुत निश्चली थी, वह सत्य
काव्य में अविशेष के अन्तर्गत थी । अब देश में न वह हुंकार थी, और न वह गमन ।
हुंकार और गर्जन के स्थान पर अब देश के अन्तर्गत निराशा की भावना डोल रही
थी । यद्यपि का विकास और प्रारंभ पहले की ही नीति के वर था, पर कल्पना में
काव्य काव्यकारों यद्यपि के अर्थों की भावना न थी । कल्पना यद्यपि देश की रक्षा की
वैदिकता पर सम्पूर्णता यद्यपि की कृपा पर अब निश्चयन की ही उठी थी । अब उसका
हृदय और ही नीति काव्य, और वैदिकता से अब काव्य था । अभी हुंकार, वैदिकता, और
निराशा का वह परिणाम था, कि कल्पना ईश्वरता की और उन्मुख थी । पहले यहाँ
कल्पना के अन्तर्गत के अर्थों के पुनः निश्चयते थे, यहाँ अब उसके अन्तर्गत के अर्थ और
अर्थ निश्चयते गये । इन अर्थों और यद्यपि के अभिवृद्धि ऐसे जीव हुए हैं, किन्हींने
काव्य की नीति पर कल्पना के अन्तर्गत का काव्य माना है, और किन्हींने कल्पना के निराशा
हृदय में उठने वाले मान-नीति की कल्पना नीति और नीति के अर्थ करने का
प्रयत्न किया है ।

सत्य काव्य की इस भावनाओं का काव्य यह समझते हैं । सत्य काव्य में हमारे देश

का जीवन व्यक्तियों के व्यक्तिगत आंदोलन का। उसका उद्देश्य साहित्य और कला पर कार्यरत रूप से रहा है। इसी के परिणामस्वरूप कला में समाजवाद और सुधारवाद जैसे उच्चतम भावों की स्थापना हुई है। उसी के परिणामस्वरूप नैतिक मान्यता का विकास भी अपनी उच्चता की प्राप्ति हुआ। मान्यताओं में अनेक ऐसे सत कवि हुए हैं, जिनोंने नैतिक मान्यता की रचना की है। इनमें कुछ सत कवि तो ऐसे हैं, जिनोंने नैतिक मान्यता की रचना में अपने को सर्वोच्चतम समझा हुआ है। इन सर्वोच्चतम कवियों में बर, कुलवी, सीत, और विद्यापति का महान् रूप स्थान है।

मान्यताओं के इन सत कवियों की दो विशेषताएँ हैं। एक ऐसी ही इन कवियों की है, जिससे नैतिक के निर्गुण भाव की प्रभावशालिता है। इन कवियों में बर, मानस, कर्मदास, और राहु राधादि का महान् रूप स्थान है। इन कवियों में समाज की मान्यता तथा का अनुभव करने के विभिन्न रूपों में अपने समाज स्थापित करने का प्रयत्न किया है; दूसरे कवियों में इनकी रचनाओं में एक सत्य का उद्घाटन हुआ है। यह सत्य है समाज की सत्यता और अनर्थक सत्य। इनोंने समाज तथा पूर्ण समाज के सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जिस विधि से काम लिया है, वह भी सत्य पूर्ण और सैद्धांतिक है। यही कारण है, कि इन सत कवियों की रचनावादी नैतिक कहते हैं। इनकी रचनाओं में नैतिक शैली का विकास विद्युद्गत के साथ हुआ है। यद्यपि इनोंने व्यक्तिगत कुछक पदों की रचना की है, पर इनके कुलक पदों में एक सैद्धांतिक अनुपपत्ति है। दूसरी ओर में वे प्रत्यक्ष कवि माने हैं, जिससे नैतिक के साकार भाव की प्रभावशालिता है। इन कवियों में कुलवी, सुधाकर, और सीत का महान् पूर्ण स्थान है। इन कवियों में कुलक पदों की रचना करने के साथ ही साथ समाज-मान्य नैतिक मान्यताओं की भी रचना की है।

मान्यताओं में नैतिक-शैली का विकास अपनी उच्चता की प्राप्ति सीत पर पहुँचा हुआ है। मानस, मानस, और सीत प्रत्यक्ष नैतिक के समाजमान्य नैतिक मान्यता की उच्चता मान्यता—नैतिक हुई है। एक ओर उसमें नैतिक मान्यता का विकास नैतिक मान्यता की श्रेष्ठता है। मान्यता और मान्यता दोनों का ही संयोग मान्यता के नैतिक मान्यता में उद्घाटन के साथ हुआ है। मान्यता का समग्र नैतिक मान्यता की सभी पर स्थापित है। एक नैतिक के निर्गुण स्वरूप पर, और दूसरे नैतिक के समग्र स्वरूप पर। मान्यता का ही मान्यता, मान्यता, और मान्यता स्वरूप की प्रभावशालिता है। दूसरे रूप में प्रेम, मान्यता, रूप, मान्यता, और मान्यता मान्यता मान्यता की प्रभावशालिता है। दोनों ही रूपों के नैतिक-मान्यता की स्थापना करने पर इन मान्यता मान्यता के समग्र नैतिक-मान्यता की चार श्रेष्ठताओं में विभक्त कर सकते हैं—मान्यता मान्यता मान्यता पर, विद्युद्गत मान्यता के पर, सीत मान्यता और रूप मान्यता के मान्यतामान्यता पर, और मान्यता मान्यता के मान्यता मान्यता पर।

मिली थी। कबीर की एकनाईद एक काल की थीति है, जिसमें कई लोगों का सम्मिलन हुआ है। उनमें राम भी है, भक्ति भी है। उनमें प्रेम भी है, वैराग्य भी है। उनमें निर्दुष्ट एकनाईद भी है, और सद्गुरुवाद की यात्रा भी कहीं-कहीं देखने की मिलती है। इस प्रकार कबीरदासजी के यहाँ का निर्माण विचारधारा की कृपाश्रुति पर हुआ है। कबीरदासजी के समूची पर दो प्रकार के हैं। सबसे एक प्रकार के यहाँ में तो उन्होंने दूता, धर्म, ज्ञानार्थ विचार, भक्ति, भक्तिवाद, धर्म ज्ञान, और जीवित तथा मौलिकियों की सम्मोचन की है। दूसरे प्रकार के यहाँ में कबीरदासजी ने प्रेम विचारों को, जिसमें सभी में सम्मोचन और सम्मोचन का ही सम्मोचन सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है। कबीरदासजी के दो दूसरे प्रकार के पर अधिक मायात्मक है। इनमें बुद्ध की धार्मिक अनुभूति की या यात्रा हुआ है। कबीरदासजी अपने इसी यहाँ के सिद्ध भक्ति काल काल में धार्मिक प्रसिद्ध है।

सुदामासक किन्तु समस्त के सम्मोचन में। जिसमें में इसका प्रमाण ईश्वर के रूप है। इसकी धार्मिक और इनके प्रमाण किन्तु में ईश्वर के वास्तवों की भक्ति सम्मोचन है। इसकी धार्मिक और मन्त्रों में निर्दुष्ट भक्ति के सम्मोचन विचार मिलते हैं। इसकी धार्मिक की यात्रा ज्ञान, कहीं-कहीं, और प्रमाण है, जो बहुत ही की कहीं और काल है।

सद्गुरुवाद की भक्ति ज्ञान ही सभी में विचार है—एक कृष्ण भक्ति के रूप में, और दूसरी राम भक्ति के रूप में। पहले हम कृष्ण भक्ति, और उसके धार्मिकों की सम्मोचन है। इसकी धार्मिक और मन्त्रों में निर्दुष्ट भक्ति के सम्मोचन विचार मिलते हैं। इसकी धार्मिक की यात्रा ज्ञान, कहीं-कहीं, और प्रमाण है, जो बहुत ही की कहीं और काल है।

सद्गुरुवाद की भक्ति ज्ञान ही सभी में विचार है—एक कृष्ण भक्ति के रूप में, और दूसरी राम भक्ति के रूप में। पहले हम कृष्ण भक्ति, और उसके धार्मिकों की सम्मोचन है। इसकी धार्मिक और मन्त्रों में निर्दुष्ट भक्ति के सम्मोचन विचार मिलते हैं। इसकी धार्मिक की यात्रा ज्ञान, कहीं-कहीं, और प्रमाण है, जो बहुत ही की कहीं और काल है।

सद्गुरुवाद की भक्ति ज्ञान ही सभी में विचार है—एक कृष्ण भक्ति के रूप में, और दूसरी राम भक्ति के रूप में। पहले हम कृष्ण भक्ति, और उसके धार्मिकों की सम्मोचन है। इसकी धार्मिक और मन्त्रों में निर्दुष्ट भक्ति के सम्मोचन विचार मिलते हैं। इसकी धार्मिक की यात्रा ज्ञान, कहीं-कहीं, और प्रमाण है, जो बहुत ही की कहीं और काल है।

सद्गुरुवाद की भक्ति ज्ञान ही सभी में विचार है—एक कृष्ण भक्ति के रूप में, और दूसरी राम भक्ति के रूप में। पहले हम कृष्ण भक्ति, और उसके धार्मिकों की सम्मोचन है। इसकी धार्मिक और मन्त्रों में निर्दुष्ट भक्ति के सम्मोचन विचार मिलते हैं। इसकी धार्मिक की यात्रा ज्ञान, कहीं-कहीं, और प्रमाण है, जो बहुत ही की कहीं और काल है।

रस के प्रति है। श्रीकृष्ण के 'प्रेमासक्त' रूप में उन्मत्त होकर इन्होंने जिस गीतों की रचना की है, उनमें इनके द्वारा और वास्तव की स्वाभाविकता दृढ़-दृढ़ कर गयी हुई है। वास्तविकता के वास्तविकता के बिना इनकी रचनाओं में जैसे मिलते हैं, वैसे कहीं नहीं मिलते। वास्तविकता के बिना ही कहीं के कहीं के 'डालने में' इन्होंने अधिक कुशलता प्रदर्शित की है। इनके दूसरे पर भी अधिक मात्र पूर्ण, और वास्तविक है। जैसे—विना सम्बन्धी पर, विविधों के विरुद्ध संयोग सम्बन्धी पर, मनुष्य वर्ग सम्बन्धी पर, सब संयोग सम्बन्धी पर इत्यादि। इनके सभी गीतों में भाव, और गीत का संयोग नहीं कुशलता के साथ स्थापित हुआ है। संयोगात्मकता इनके गीतों में दृढ़ दृढ़ कर गयी हुई है।

सम्बन्धिता भी पुष्टि मानी है। वह पहले सम्बन्धित श्रीरामचन्द्रजी के मकर के। किन्तु अब इन्होंने सम्बन्धित वास्तविकताओं के साथ के विरुद्धताओं में पुष्टि मानी की वहाँ वहाँ की, वह इनकी अधिक श्रीकृष्णजी की और उन्मत्त ही गयी। इन्होंने श्रीकृष्ण की प्रति में दृढ़ कर विविध रास-रागिणियों में कुशलता गीतों की रचना की है। इनके गीतों में भाव और संयोग कला की सर्वलता देखने को मिलती है।

श्रीकृष्णदास महामुक्त वास्तविकताओं के शिवाय है। इन्होंने श्रीकृष्ण की प्रति में उन्मत्त होकर ही गीतवाक्य भाव गीतों की रचना की है—अमर गीत, और देव रूप विचित्र। इनके दोनों ही भाव गीतों के गीतों में गीतार रस की प्रभावता है।

सरमात्मदास भी कृष्ण के उन्मत्त भाव में। इनकी प्रति गीतवाक्य विविध को प्राप्त की। जिस प्रकार इनकी प्रति सर्वोत्कृष्ट की, उन्हीं प्रकार इन्होंने सर्वोत्कृष्ट कण्ठ, और भाव पूर्ण गीतों की रचना भी की है। इनके गीतों में दृढ़ता की विरुद्ध और उन्मत्त का देने वाले गीतों की प्रभावता है।

ह्रीत स्वामी पुष्टि मनुष्यता के। इनकी श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनुभूतियों वहाँ कण्ठ, और देव पूर्ण है। अनुभूति के प्रति इनका अधिक आकर्षण था। इनके गीतों में अनुभूति के प्रति देव के सर्वोत्कृष्ट विषय मिलते हैं।

गोविन्द स्वामी कुशलित संयोग में। श्रीकृष्ण की प्रति में दृढ़ कर इन्होंने वास्तविक भाव, और भाव पूर्ण गीतों की रचना की है। इनके गीतों में मिलते हुए वास्तव और भाव पूर्ण गीतों की कुशलता वास्तव में विरुद्धता का था।

मीरजाहि श्रीकृष्ण की उन्मत्त आकाशिक की। श्रीकृष्ण का देव उनकी रास-राग में सम्बन्धित था। उन्हीं इस विषय में, वाली और श्रीकृष्ण ही की वहाँ दिखाई देती थी। वे श्रीकृष्ण की उन्मत्त विरुद्धता मानती थीं। श्रीकृष्ण के देव में दृढ़ कर इन्होंने विरुद्धकारी भाव-विषयों की रचना गीतों में की है। इनके भाव-विषयों की तीन विशेषताएँ हैं—वर्णना सम्बन्धी, संयोग गीतार सम्बन्धी, और विविध गीतार सम्बन्धी। वर्णना सम्बन्धी गीतों में इन्होंने श्रीकृष्ण की उन्मत्त आकाशिकता की वहाँ का मुक्त भाव दिया है। संयोग गीतार में उन्मत्त देव की प्रति का विषय है, जिसमें वे अपने

प्रियतम श्रीकृष्ण के स्तुतिद्वय का आनन्द प्राप्त करता है। विशेष गूँघार में इनके उभय हृदय की विभक्तता है, जो श्रीकृष्ण के प्रेम में एकीकृत की गौति व्यक्तता है। यी श्री इनके सभी भाव विभक्त, मज्जु और मनोरम हैं, पर इनके विशेष गूँघार के चिथों में हृदय की प्रेम-विभक्तता कूट-कूट कर गयी है। इनके विशेष गूँघार के विभक्त आनन्दय विभों की अनेक कविक मानव, और अनुभूति रूपक है। विशेष गूँघार के चिथों में वह गयी-गयी गहनतादिनी भी बन गई है।

द्वितीयधरा राधाकान्त राधादाय के संवाचक है। इनोंने 'राधा' की उपासना कर अधिक बल दिया है। 'राधा' की शक्ति में कूट कर इनोंने अत्यधिक मज्जु, और भाव पूर्ण गौती की रचना की है। इनके गौति कविक और मज्जुता के लिए अधिक है। श्रीकृष्ण की गौती अनेक राधा के रूप में इनके गौति में विविध हुई है। गौती के अद्भुत अन्तर्भाव इनके गौती में अधिक मिलते हैं।

समुद्रधारी शक्ति का रूपा अद्भुत वह है, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी की शक्ति की प्रकटाता है। उभय माता में श्रीरामचन्द्रजी की शक्ति के प्रत्येक स्थानो रामानन्द समुद्रधारी-राम हैं। स्थानी रामानन्दजी के प्रत्येक में ही उभय माता में शक्ति-गौतिधार श्रीरामचन्द्रजी की शक्ति की प्रकटाता गयी और उड़ी। स्थानी रामानन्द में राम शक्ति की आचार मान कर एक विविध संवाचन की प्रकटाता की थी, और एक विशेष प्रकटाता उभय की प्रिया था। इनके द्वारा स्थानित संवाचन की ही भाव बल रामानन्दी संवाचन करते हैं। रामानन्दी संवाचन में गौती कविक का आधिपत्य हुआ है, जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजी के प्रति आधुनिक शक्ति प्रदर्शित करते संवाचन की प्रत्येकप्रकटाता का दाव दिया है। इन कविकों में केवल रामानन्दी तुलसीदासजी ही ऐसे हुए हैं, जिन्होंने काव्य और गौति की रचना की है।

गोस्वामी तुलसीदासजी प्रखरित गौति काव्यकार हैं। इनके गौति काव्य का आधार श्रीरामचन्द्रजी की शक्ति है। इनकी शक्ति में दैव्य, और दास्य भाव की प्रकटाता है। हृदय में दैव्य और दास्य भाव प्रकटा होने के कारण इनके गौति कविकों में हृदय और प्रकटी की स्वाभाविक अनुभूति की प्रकटाता के बाद विषय हुआ है। इनकी 'विभव प्रकटा' एक उच्च केमानी प्रकार की सर्व भेद कृति है। विभव प्रकटा में गोस्वामीजी की उभय आचार के विवेक के, जो दैव्य और दास्य के अन्तर्भाव में लिख कर श्रीरामचन्द्रजी के प्रत्येक पर होत गयी है, विशेष और आचार विभक्त मिलते हैं। इन विभों में 'गोस्वामीजी' की हृदय की प्रकटाता और विभक्तता आचार प्रभाव पर देखने की मिलती है। 'कृष्ण गोस्वामीजी' और 'राम गोस्वामीजी' में श्री गोस्वामीजी की गौति कला प्रखरित हो गयी है। कृष्ण गोस्वामीजी के बाद जीवन के विभ है, जो अधिक मज्जु, मज्जु, और मनोरम हैं। 'राम गोस्वामीजी' में राम के शक्ति प्रकटाता पर है, जो अधिक भाव पूर्ण है।

गोस्वामी तुलसीदासजी की गौति कला गौति काव्य के क्षेत्र में अद्वितीय है।

उनकी नीति ब्रह्मा संन्यास और मान-दोनों का त्याग करने में लक्षित हुआ है। पर भाषी और अनुश्रुतिकों के संघर्ष प्रतीति में उनकी लगने में बड़ी विपुल है, और उनके पीछर से मान-वर्गों को निकाल कर उन्हें नीति के छाने में मिलने में लक्षित रह गी है। नीति और मान का संयोग उनकी कला में बड़ी कुशलता से स्थापित किया है। फिर भी वह निश्चय की बात ही है, कि गोलापौड़ी के पदवाच उनकी परम्परा का चलन किसी अन्य कवि से दूरा नहीं हो सका है। इसका एक मुख्य कारण है। गोलापौड़ी के पदवाच देश की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हो गया। देश में मुसलमनों की शासन ने स्थापित होकर अपनी बहुत कमजोरी। अन्तर में राजनीतिक रंग बच्च कर साहित्यिक होकर अपने सांसारिक और प्रेममय जीवन को हान देना के हुनर पर बाध हो। देश सुन्दर, और प्रेम की कलकाम्य लहरों के साथ चलने लगा। 'सामयिक' विषय उसकी ने बाध था, देश की सांसारिक स्थिति ने विषय था। अतः देश की कला में, उसे अपना करने की अपने जीवन में स्थान नहीं दिया। अतः साक्षात्कार की स्थिति में, विषय उस पुराण में गया था, प्रेम और सुन्दर की अन्तर्गत विद्यमान थी। अतः देश की कला में उसे अपना कर अपनी रक्ति और साक्षात्कार के लीने में दास किया, परिणाम अन्तर उस समय साक्षात्कार की शास्त्रीय तुलसीदासकी लक्ष हो गई, और अन्तर्गत स्थिति बाध के अपनेकी लीन हुएकर वह चले। पर एक बहुत सीमावर्ती कला-साध में उनकी अपनेकी ही अपनी नीति साम्य की सीधा पर दास स्थिति का दास साक्षर लक्ष के लीने को अपने पर में निर्माण कर रहे हैं।

यहाँ ऐतिहासिक अन्य काल के ही संतर्गत माना गया है। गोलापौड़ी तुलसीदासकी नीति ब्रह्मा की विवेचना करने हुए वह ब्रह्मा का मुखा है, कि गोलापौड़ी के पदवाच नीति ब्रह्मा देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ। और गोलापौड़ी तुलसीदासकी के पदवाच देश का जीवन-दास्य स्थिति नीति ब्रह्मा के लक्ष को छोड़ कर सुन्दर की लीन मुखा, और मुखा ही लीने में अपने सुन्दर को ही अपना मुख्य केन्द्र बना दिया। देश के सांसारिक जीवन की हान साहित्य और साम्य पर भी बड़ी, परिणाम अन्तर हिन्दी साध में अन्तर्गत सुन्दर की बाध स्थापित हो उठी। सुन्दर की लीने भाषा की ऐतिहासिक बदले हैं। हिन्दी साध के संतर्गत सुन्दर को वह बाध को लीन ही जैसे लक्ष बढ़ती रही है। हिन्दी साध का वह समय सांसारिक लीने में परिवर्तन है। इस काल में किसी एक साध ही है, उनमें कर्तव्य की ही प्रधानता है। इसका एक मात्र कारण यह है, कि इस काल में किसी कवि हुए है, उस समय जीवन कविता के द्वारा अपने दास करना था। इस काल के साध कवी छोटे बड़े कवि राजाजी, लीने, और दरबारी के साध्य में रहे हैं। राजाजी, लीने, और दरबारी का साधन बढ़ा करने, उनकी प्रतीति में ही, उन्होंने अपनी साध स्थिति का उपयोग किया है, अतः इस काल की साध साध्य में लीने, और अनुश्रुतिकों का साधन दास लीने की प्रधानता गई

गीति काव्य—आधुनिक काल

आधुनिक काल के गीति-काव्य पर प्रकाश डालने के पूर्व हमें इस बात पर एक दृष्टि डाल लेनी होगी, कि आधुनिक काल के पहले गीति काव्य की क्या स्थिति थी ?

आधुनिक काल के गीति काव्य का आधुनिक काल द्विवेदीजी के वर्चस्व पूर्व गीति काव्य से प्रारम्भ होता है। उसके पहले के समय को हम भारतेन्दु काल मानते हैं। भारतेन्दु काल के पूर्व रीति काल था। रीति काल गीति काव्य की दृष्टि से अधिक निराश्रय है। रीति काल में वहाँ नृनारिक विषयों को लेकर शिथिल रचनाएँ हुई हैं, वहाँ गीतात्मक रचनाओं का पूर्ण अभाव था है। रीति काल एक ऐसा युग है, जिसमें हिन्दी का कवि भावनाओं और अनुभूतियों से पुष्प हट कर, वर्णन प्रधान रचनाओं के निर्माण में ही संलग्न दिखाई पड़ता है। वर्णन प्रधान रचनाओं में संलग्न होने की वजह से उसकी दृष्टि कभी भी गीतात्मक काव्यों की रचना की ओर नहीं गई। कालः रीति काल में गीतात्मक काव्यों का निर्माण नहीं हो सका। रीति काल की समाप्ति पर जब भारतेन्दु काल प्रारम्भ हुआ, और हिन्दी काव्य-जगत के भीतर एक नया आलोक पैदा, तब गीति काव्य-क्षेत्र में भी पुनः सक्रियता की लहर उत्पन्न हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी जिस प्रकार साहित्य के अन्धधुंध क्षेत्रों में नवीनता को लेकर उत्पन्न हुए, उसी प्रकार उन्होंने गीति-काव्य के क्षेत्र में भी पुनः जीवन के पीढ़े लगाए। रीति काल में हिन्दी गीति काव्य का जो पीड़ा सृज गया था, वह भारतेन्दुजी के जीवन में पुनः लक्ष्यक्षाल हुआ दृष्टिगोचर होता है। रीति काल के वर्चस्व भारतेन्दुजी ही एक ऐसे कवि दिखाई पड़ते हैं, जिनकी रचनाओं में गीति काव्य की पुष्ट सैली जगट हुई है। भारतेन्दुजी की गीतात्मक रचनाओं के निम्न प्रेम, और भक्ति हैं। प्रेम और भक्ति की उनकी अनुभूतिपूर्ण अधिक विद्वलकारी, और आनन्दमय हैं। भक्ति काल के वर्चस्व ऐसी भावजनक अनुभूतियों का विकास गीति काव्य के क्षेत्र के भीतर बहुत समय के वर्चस्व देखने को मिलता है। भारतेन्दुजी ने प्रेम और भक्ति पर करतब गीतात्मक रचनाएँ करके हिन्दी में पुनः भक्ति काव्य की चारा बहा दी। क्योंकि उनकी गीतात्मक रचनाओं की भाव भरा है, पर यही क्या कम महत्व की बात है, कि उन्होंने गीति काव्य की उस चारा को, जो रीति काल के रेगिस्तान में सुख कर लुप्त हो गई थी, खोज कर उसे आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि भारतेन्दु के लक्ष्ययोगियों से गीति काव्य के

बहुधा हुआ है। मध्यकाल के प्रायः सभी गीतिकाव्यों में सांस्कृतिक भावों से ही कवियों की का अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम, शक्ति, लोभ, विरोध, और राजसत्त्व इत्यादि के बिना ही उसमें अधिक मिश्रण है। शौचिक दृष्टिकोण का उसमें अभाव है। आधुनिक काल के गीतिकाव्य का क्षेत्र मध्यकालीन गीतिकाव्य से अधिक विस्तृत है। मध्यकालीन गीतिकाव्य में वहीं सांस्कृतिक भावों की ही प्रधानता है, वहीं आधुनिक गीतिकाव्य में जीवन के विविध दृष्टिकोणों का भी विचार हो रहा है। एक ओर सांस्कृतिक भावों की आधार मानकर अधस्तात् स्वरूपों की रचनाएँ हो रही हैं, दूसरी ओर जीवन के रहस्यों, दुःख के इन्दों और विविधों पर प्रकाश भी पड़ रहा है। कुछ ऐसे गीतिकाव्य हैं, जो जीवन के मौलिक दुःख-सुखों, कष्टकाव्यों, और विविधों को भी आधार मानकर गीतिकाव्य की रचना कर रहे हैं। आधुनिक काल के गीतिकाव्य में वहीं विषय की विविधता है, वहीं भाव, शैली, और भाषा में भी वह मध्य कालीन गीतिकाव्य के अन्तर्गत कुछ दृष्टिकोण रखता है। मध्यकालीन गीतिकाव्य में वहीं कवियों की प्रधानता थी, वहीं आधुनिक काल का गीतिकाव्य मात्र की ओर उन्मुख है। आधुनिक काल का भाव अंतर्गत और दुःख के इन्दों से ही कवियों सम्बन्ध रखता है।

मध्य कालीन गीतिकाव्य की गीतिकाव्य आधुनिक काल के गीतिकाव्य में भी प्रेम, लोभ, विरोध, और शक्ति के विचारों की प्रधानता है। पर दोनों के दृष्टिकोण में अधिक अंतर है। मध्यकालीन प्रेम, लोभ, विरोध, और शक्ति के विचारों में संगत की भावना है। पर आधुनिक काल में प्रेम, लोभ, विरोध, और शक्ति का विचार व्यक्तिगत और व्यक्तिगत भावना के आधार पर हो रहा है। यदि आधुनिक काल के विचारों में व्यक्तिगत, और व्यक्तिगतता के रूप अधिक है, पर वह कदम पड़ेना, कि आधुनिक काल के प्रेम, और शक्ति के विचारों में विचारों की भावना का अभाव है। मध्य कालीन प्रेम, और शक्ति के विचारों में वहीं संगत, और कष्टकाव्य की भावना थी, वहीं आधुनिक काल के प्रेम और शक्ति पर कष्टकाव्य का रंग है। मध्य-कालीन प्रेम और शक्ति का विचार संगतता, और व्यक्तिगतता के अन्तर्गत में हुआ है, पर आधुनिक काल के प्रेम और शक्ति के विचारों में व्यक्तिगतता है। साहित्यिक इतिहास आधुनिक काल का विचार मध्य काल के अन्तर्गत है, पर उसमें उस संगतता और व्यक्तिगतता का अभाव है, जो मध्यकालीन गीतिकाव्य में मिश्रण है। आधुनिक काल के गीतिकाव्य में मध्यकालीन गीतिकाव्य की कदम मात्र, भाव, और शैली में व्यक्तिगतता के रूप अधिक पाये जाते हैं। आधुनिक काल की भाषा और शैली अधिक साहित्यिक, व्यक्तिगत और व्यक्तिगत है। भाषा और शैली की साहित्यिकता तथा व्यक्तिगतता के आधुनिक काल के गीतिकाव्य में अधिक भावना और व्यक्तिगतता अभाव कर दी है।

आधुनिक गीतिकाव्य का निर्माण कई दशकों कवियों और गीतिकाव्यों के द्वारा हुआ, और हो रहा है। इन कवियों और गीतिकाव्यों में गीतिकाव्य, ही गीतिकाव्य

साधना की है, जिसका फल उनकी रचनाओं में स्पष्टता के रूप में फूट उठा है।

गुप्तजी के गीति-काल में कई भाषों का संगम हुआ है। एक ओर उसमें देश-प्रेम और कर्मात्मकता है, दूसरी ओर उसमें भारतीय संस्कृति, और राष्ट्र के लिए आत्मनस का भरोसा है। एक ओर उसमें देश-प्रेम के अनुपम चित्र हैं, दूसरी ओर उसमें त्याग और उत्कर्ष की कल्पनाएँ हैं। एक ओर उसमें वास्तव के वर्तमान-स्थिति-चित्र हैं, और दूसरी ओर उसमें आत्मात्म और परमेश्वरी मान्यताओं की भाँति है। प्रेम, विश्वास, और कर्तव्य के चित्र भी उसमें मिलते हैं। आचार, विचार, दर्प, विश्वास और अज्ञान-तन्त्र का आदीलय भी उसमें देखने को मिलता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि गुप्तजी के गीति-काल की रचना विस्तृत आधुनिक बन चुकी है। यह भी कहा जा सकता है, कि आधुनिक गीति-काल के सर्वाधिक गुप्तजी ही हैं। क्योंकि आधुनिक काल के गीति-काल की विशिष्टताओं का जन्म वही प्रथम गुप्तजी की रचनाओं में हुआ है।

गुप्तजी प्रथम नीतिकार हैं, जिन्होंने राष्ट्र-व्योधि का सम्यक् विचार किया है। वे राष्ट्र-व्योधि का सम्यक् करते उसके भीतर में अनुपम मान-रस-मिठास का सह-संगम करते हैं समर्थ हो उठे हैं। भाषों की उपयोगिता करने में उन्होंने जिस भाषा और शैली का आश्रय महसूस किया है, उसकी शक्ति अमरहीन है। गुप्तजी की भाषा और शैली अपनी भीतर भाषों की शक्ति काती हुई दिखाई देती है। जिस प्रकार यह कहते भीतर भाषों की शक्ति करता है, उसी प्रकार यह अभिव्यक्तिवादी भी है। उनकी भाषा और शैली भाषों की शक्ति करते उसके अन्तर्गत-विषयों की बड़ी सुदृढता के साथ आने में सक्षम होती है। कदम और लक्ष्य उनके गीति की विशेषताएँ हैं। साक्षात् और स्वच्छता के अन्तर्गत में उनके हृदय भावों, और अनुभूतिओं का उन्मेष हृदय में भाषों का सम्यक् करता है। लक्ष्य, लक्ष्य, और अन्त में कुछ उनकी मधुर गीत कहा जायत शायी की कहते कल्पना में जीव होती है। गुप्तजी प्रथम कलाकार हैं, जिनकी गीति-कला में इस प्रकार का सम्यक् रस दिखाई पड़ता है।

गुप्तजी के गीतों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—आधुनिक शैली के गीत, और परम्परागत शैली के गीत। आधुनिक शैली के गीत भी दो प्रकार के हैं। आधुनिक शैली के एक प्रकार के उनके गीत हैं, जिनकी रचना उन्होंने राष्ट्र-प्रेम, और आधुनिक प्रेम की आधार मान कर की है। आधुनिक शैली के उनके दूसरे प्रकार के गीतों में आत्मनिष्ठ भावों का उन्मेष हुआ है। 'कदम' के उनके इसी श्रेणी के गीत संग्रहीत हैं। 'अन्तर्गत' के गीत शक्ति उनके आरम्भिक जीवन के गीत हैं, पर उनमें भावों का उन्मेष बड़ी कल्पना से हुआ है। इन गीतों के भीतर में गुप्तजी का अधिकतम अधिकतम बड़ी सुदृढता और प्रेम-मत्ता के साथ मीठता हुआ दिखाई पड़ता है। बड़ी इन गीतों की कल्पना बड़ी विशेषता है। गुप्तजी की दूसरी शैली के गीत में गुप्तजी और अन्तर्गत की संघर्ष दिखाई पड़ती है। इस प्रकार के

इनके दोस्त 'सकल' और 'पशोपरा' के मिलते हैं। 'सकल' की 'उमिला', और 'पशो-
परा' गृहाश्रयी के सेविनी के चित्र को सामने प्रस्तुत करती है। 'उमिला' और
'पशोपरा' के विरोध की चौड़ा मीरा की सृष्टि की जहाँ भी हृदन में उदासी है। पर
गृहाश्रयी की सेविनी के किन्हीं में मानों की जो सम्पत्ति, और विचारलता की, उनका
'उमिला', और 'पशोपरा' की चौड़ा में समान है। मीरा की जो उत्कट विरह वाचना
की उमने गयी है। पर फिर भी वह ही वाचना ही प्रमेया, कि मुसली ने सूरदास,
दुलारी और मीरा के नानक भिक्षु पर जब कर अपने मीरि-माल्य में उन्हीं के जैसे
चित्र उमिलित किए हैं।

गुणकों के नीचे की दोनी ही दैलियों अथिह आकर्षक, और गुण सन्धिनी है। उगनी दोनी ही दैलियों के नीचे में भाव, और संवीत एक में मिलकर मुसमिल हो जता है।

श्री जयशङ्कर प्रसाद हिन्दी काव्य के ऐसे कलाकार थे, जिनके द्वारा हिन्दी गीति काव्य के क्षेत्र में जीवन का संस्कार हो चुका ही है, उसका पुनरावृत्ति का काम कमिश्नर भी हुआ है। दुष्टको ने जिस हिन्दी गीति-काव्य का उद्धार जीवन किया था, उसमें शायद, एहर्षि, और जीवन प्रसादजी के द्वारा ही संभवित हुआ है। प्रसादजी में काव्य काव्य प्रतिभा थी। उनकी प्रतिभा का क्षेत्र अधिक विस्तृत था। उनके द्वारा वे जो गीति लिखते करते थे, वह साहित्य के क्षेत्र की ओर लोगों में ध्यान की प्रेरणा उत्पन्न था। उसमें काव्य के लक्ष्य प्रसार परिमाण में ही वे ही, नाटक, उपन्यास, गीति, और कहानी के लक्ष्य भी अधिक संख्या में थे, दुर्लभ दुर्लभों में उसमें ध्यान की प्रेरणा काव्य थी। उसने सभी क्षेत्रों में अपनी शक्ति की प्रत्यक्षता का परिचय दिया है। उसके साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सुगमता साहित्यी दक्षिणा के बिना उपस्थित किए हैं, पर उनके सभी विषयों पर उनके शक्ति सभी की श्रृंगार है। इनका कार्य यह है, कि प्रसादजी के द्वारा वे जो शक्ति था, उसमें उपन्यास कहानी और नाटक की प्रेरणा काव्य के लक्ष्य अधिक थे। प्रसादजी ने काव्य के क्षेत्र में प्रसादजी गीति काव्य की है। उन्होंने 'कामधनी' और 'गीति' ऐसे भाव पूर्ण सुन्दर काव्य कर्मों की रचना करने अपने की प्रेरणा प्रदा किया है।

प्रसादजी काव्यनिरपेक्ष कवि थे। उनके पास मल्लिकाघर और हृदय-दीप्ती की इतिहासी थीं। वे समीर काव्यमञ्जरी भी थे, और काव्यनिरपेक्ष साधु भी। उनके लोकर ऐसी भी इतिहासी थीं, जो चिन्तक बनती थीं, और ऐसी भी इतिहासी थीं, जो लोको का साधुत्व बढ़ी लीला के साथ करता थी। इन प्रसाद इन वह कह सकते हैं, कि उनकी काव्य-प्रतिभा एक ऐसी इतिहासी थी, जो उचित काव्य का सूत्र बनने वाले लक्ष्य उपलब्धों में पुनः थी। काव्य के क्षेत्र में प्रसादजी ने मानों की ही छूट लगाई है। कवि ने कहीं कहीं चिन्तक के रूप में भी इतिहासी बनते हैं, जो उनकी रचनाओं में हृदय के लक्ष्य की वसन्त है। उनकी प्रथम और द्वितीय में संवेदन लीला, और लीला है। उनकी संवेदन लीला के कारण उनकी कवि प्रथम पुनः, पुनः, पुनः, निम्न,

और साक्षात् ज्ञानात् के बिना की अनुभूति और समझ की ही व्याप्ति में बहुत-बाली है। इन दोनों का विचार ही हमने बड़ी सहृदयता के साथ किया है। उनमें बाल प्रतियोगिता के साथ सम्बन्ध के विस्तृत स्थानों में भी प्रवेश कराया है, और दूर से दूर भावों को पकड़ करके उनका चित्र उपस्थित करने में लगने लगे हैं।

अन्तरही भाव जगत के बरि हैं। उनका भाव 'समस्त सौन्दर्य' के लक्षणों से युक्त है। यह और सौन्दर्य के कुशल स्थिति होने के कारण उन्होंने बहुत के योग से सीधे भाव के अनुपम चित्र उपस्थित किए हैं। उनके यौन ही बहिर्मुखी में विभक्त किए जा सकते हैं—एक प्रकार के उनके यौन से हैं, जो उनके मादलों में सब बाँटे हैं और दूसरे प्रकार के यौन उनके भाव कर्मों में मिलते हैं। उन्होंने पुरुष स्वभाव यौनों की भी रचना की है। उनके मादलों में जो यौन मिलते हैं, उनमें मानव दुःख के इन्हीं और संयोग का निश्चय सुन्दरता के साथ हुआ है। इन यौनों के रस महता है, कि प्रकाशकी भाव्य दुःख के इन्हीं के यही प्रतिबिम्बित है। उन्होंने अपने मादलों के यौनों में मानव दुःख के लक्षणों का सम्बन्ध बड़ी हीरक के साथ किया है। उनके दूसरे प्रकार के यौन की उनके भाव्य इन्हीं में मिलते हैं, अधिक अनुभूतिमय है। प्रेम, विरह, और उन्नति की भावमय अनुभूति के चित्र इन यौनों में लगे हैं ही उठे हैं। इन यौनों में प्रकाशकी की अनुभूतियों के विभिन्न रूप-रस दिए हैं। यही ही उनकी अनुभूति की उन्नति के जीवन में अभिव्यक्त करने हुए दिखाई देती है, और यही अन्तर्ही भावों के साथ जोड़ा गया है। यही मानवीय सौन्दर्य का आधार बना है, जो यही दृष्टि जगत के साथ लगे हैं और सादर सौन्दर्य की हृद लगी है। इन प्रकार प्रकाशकी की अनुभूतियों में विविधता और विचरता है।

प्रकाशकी के यौनों में यही भावों का सौन्दर्य तथा मादलों है, यही हमने संगीत के साथ ही बहुत परिमाण में मिलते हैं। मानवभावी होने के कारण प्रकाशकी यौन की संगीत के सम्बन्ध में भी हैं। उन्होंने अपने यौनों में अपने संगीत प्रेम की लगे हैं का सहजता पूर्ण प्रकार किया है। उनके यौनों के प्रत्येक पद और प्रत्येक शब्द में संगीत के साथ निम्नता है। उन्होंने अपने यौनों के लगे हैं और यही का संगीतमय हृद प्रकाश किया है, जिससे उनकी संगीत रस की भागीदारता बरक सादर उपस्थित है। भाव और संगीत के अनुपम सौन्दर्य में उनके यौनों में बहुत होकर उन्हें अधिक आकर्षक और प्राधान्य बना दिया है।

ही सूर्यकांता विभागी 'मिरासा' हिन्दी भाषा-संसार के एक उच्चकोटि के कलाकार हैं। उनमें सहृदय प्रतियोगिता है। उनकी कविता एक ऐसी प्रतिभा है, जो अपने भाव में ही पूर्ण है। वह विरह की प्रतियोगिता को देख करके भी अपनी ही और देखाती है। उनमें अपने लिए स्वयं मार्ग बनाया है। वह अपने मार्ग पर अपनी ही गति से चलती है। उनकी गति में वैदिक, जैन, और बौद्ध है। वह अपने भाव

करके जो किसी को स्वीकार नहीं करती। माय, मिथ्य, माय, और रौशो—किसी को बीच में उभारे हुए बिचियों और परम्पराओं को मान्यता प्रदान नहीं की है, जो किसी काल-काल में उनके पूर्ण प्रचलित थीं, इसके विपरीत विराट्ताओं को प्रथिमा में सभी बिचियों और परम्पराओं को लेख कर अपने सिद्ध सत्यत्व मार्ग का निर्माण किया है। यही कारण है, कि लोग विराट्ताओं को विरोधी कलाकार कहते हैं।

विराट्ताओं का दृष्टः एक विरोधी कलाकार है। उन्होंने माय, रौशो, खंड, और एक काली क्षेत्रों में विरोध को सर्वथा की है। किसी काल-काल में कविता को एक एक को बिचियों प्रचलित थी, विराट्ताओं में एक पर प्रहार किया है। विराट्ताओं को रौशो, और इसके खंड पर खंड है। उनके कालों का विराट्ता एक में नहीं बसा नहीं लगता। विराट्ता के समूहों बिचियों को कविताएँ करके उन्होंने काल-रचना की है। किन्तु उनके काल में प्रभाव, और संगीतमयता है। विराट्ता के विरुद्धों को उभेक्षा करने पर जो उन्होंने अपनी काल रचना में कालों का ध्यान इस प्रकार किया है, कि उनकी रचनाओं में संगीतमयता उत्पन्न हो गई है। प्रभावमयता विराट्ताओं की रचनाओं को सबसे नहीं विरोधता है।

विराट्ताओं की रचनाओं को हम योंच कहें में विभाजित कर सकते हैं—राष्ट्रीय रचनाएँ, गीतमय रचनाएँ, काल्पनिक रचनाएँ, प्रसिद्धीय रचनाएँ, और मध्यम तथा काल संगीत रचनाएँ। 'विराट्ताओं' को राष्ट्रीय रचनाएँ 'परिचित' में संगीत है। एक कोटि की रचनाओं में उन्होंने कई तरह की काल-मानक 'काल' और 'माय' के लक्षण पर विचार प्रकट किया है। उन्होंने कालों को बस काल को सिद्ध करते हुए माय को कलाकृति की प्रमाणित किया है। उनकी इस कोटि की रचनाओं में काल के लक्षों को उभेक्षा सत्यत्व के एक कविता पर करते हैं। कहीं-कहीं काल, और माय समानों विपुल विचारों की उनकी कविता हो गई है, कि वे काल में उभेक्षा पर हैं, किले रचना में दुर्लभ और माय प्रमाणित उत्पन्न हो गई है। विराट्ताओं को दूसरी कोटि की रचनाएँ में हैं, किन्तु हम योंच कहते हैं। उनकी इस कोटि की रचनाएँ 'परिचित', और 'परिचित' में संगीत है। विराट्ताओं कीमतीमयता करके है। काल उन्होंने अपने गीतों की रचना में और कविता के आधार पर की है। देश और प्रकृति के मन्दिर विराट्ता को उनके गीतों में मिलते हैं। उन्होंने अपने गीतों में कविता को सांस्कृतिक मानक के लक्ष बिचों की है। किन्तु वह नहीं कहा या कला, कि उनके कलाकृति है। विराट्ताओं में कई साधारण की मान्यता में उभेक्षा होकर हीमर्त्य के नम्य बिचों का कविता किया है, यहाँ जो उनकी रचनाओं में कविता का प्रभाव हो दिखाई पड़ता है। विराट्ताओं को तीसरी प्रकार की रचनाएँ में हैं, किन्तु काल्पनिक गीतों है। गीत — प्रसिद्धीय, और 'माय की कविता पूर्ण' दर्शाते। इन रचनाओं में काल-वैज्ञानिक संगीत और कविताओं के लक्ष ही लक्ष सांस्कृतिक कलाकृति का विचार प्रकट के लक्ष हुआ है। संगीतमय, और प्रभावमय इन रचनाओं को

काल के जाना काल और जगहों से। हिन्दी हुई अन्ततः काल की देल कर उनके मन के भीतर बिखरा। उनका हो रही है। उनकी 'सहस्रनाली' रचनाओं में उनके मन की वही बिखराता जगह हुई है। उनके 'सहस्रनाली' में उनकी ही अर्थों का भी है। उन्होंने संतुष्ट भगवत, और प्रकृति में एक 'असुर सौन्दर्य' का दर्शन किया है। उनकी दृष्टि में वह 'असुर सौन्दर्य' नारी का चित्तुत और सुकुमार स्वरूप है। उन्होंने नारी के एक चित्तुत स्वरूप की उपासना विभिन्न कालों में की है। यही उन्होंने 'धर्म' के रूप में उसकी सम्मर्पण की है, तो यही 'विप्लव' के रूप में। यही वे स्वयं उस नारी के रूप की अपने भीतर लुप्त, उसमें समाविष्ट हो जाने का प्रयत्न करते हैं। 'कलश' की वस्तुओं की दृष्टि की रचनाओं में जीवन के गीत हैं। इन रचनाओं में वे एक चित्तुत के रूप में सामने उपस्थित होते हैं, और काल की विविधता पर विचार करते हैं। इन रचनाओं में उनकी कल्पना काल के चित्तुत क्षेत्र में प्रवेश करती है, और उसके परिणाम स्वरूप कुछ, कुछ, दृष्टि, विचार और उपासना काल के विषयों का जीवन करता है। 'कलश' की गीतों में ही रचनाओं में जीवन और काल की उपासना करने वाले 'आत्म विप्लव' और साक्षात्कृत संकीर्ण भावों का विकास हुआ है। इन रचनाओं में कलश में मानव काल के संकुल उनके विकास और उपासना के लिए उपासना सादर उपस्थित किए हैं। सादर उपस्थित करने में उन्होंने कुछ की आकांक्षाओं का पूर्ण रूप के भाव प्रकट है। 'कलश' की यही काल की रचनाओं में काल के सामाजिक विषय मिलते हैं। इन रचनाओं में 'कलश' काल के सौन्दर्य, और उनके विविधता की कलश, और विप्लवकाल पर चित्तुत विचार करते हैं।

कलश के काल और गीतों में सादर है। उनकी कविताओं का काल विषय नारी के आधार पर हुआ है, उनके गीत की उनकी ही कल्पना में की हुई है। कलश के गीतों में यही प्रकृति के सौन्दर्य का विषय है, तो यही वेम की अनुभूति। यही सादरकारी भावना है, तो यही जीवन की सादरकारी विवेचना। यही जीवन की सेवा करने वाले उपासना सादर हैं, तो यही काल के विषय। 'कलश' के संतुष्ट गीत नारी की दृष्टि के साथ केलेते हैं। उनके गीतों की अनुभूति और कलशार्थ जीवन काल पर नारी के अनुभव विषय करता है। उनकी कल्पनाओं में जीवन और सुकुमारता है। उनकी सुकुमार और जीवन कल्पनाओं में काल के काल पर यही उपासना दृष्टि से विचार करती है। उनके गीतों में यही भावों की सुकुमारता है, यही संकीर्ण की सम्मर्पण भी है। उन्होंने अपने 'कलश' की भाषा में काल का काल और काल यही सुकुमार और कलश के साथ किया है। इसके उनकी भाषा में सुकुमारता तो काल ही पड़ी है, काल ही उनके संकीर्ण के काल की कलश रहे हैं। 'जीन विप्लव' कलश का काल गीत है। उनके गीतों में कलशिक 'जीन विप्लव' में 'आत्म और संकीर्ण' का जीवन समाविष्ट हुआ है।

जीनवी महादेवी यही हिन्दी के साहित्यिक काल-काल में कलश काल पूर्ण

स्थान रखती है। उन्होंने हिन्दी काव्य और गौतम काव्य को तुलना में देखाकर जो साधना की है, वह अद्भुत है। उन्होंने अपनी ज़ीम पूरी साधना से हिन्दी काल को जो निश्चित प्रदान की है, उसमें शक्ति है, प्रकाश है। उनकी ही हुई निश्चितों से हिन्दी-काल फिर दिनों तक आलोचित रहेगा।

श्रीमती महादेवी कर्मा का काव्य और गौतम-काव्य एक ही में जुड़ा-जिड़ा है। उन्होंने जिस विषयों को लेकर अपने काव्य का निर्माण किया है, वही विषय उनके गौतम काव्य के भी हैं। अतः उनके गौतम काव्य को समझने के लिए उनकी काव्य-कला का ज्ञान देना आवश्यक है। उनकी रचनाओं के सब एक ही ही संज्ञा उपा-विष्ट हो चुके हैं—बीदा, रसिक, नीला, सांध्य गीत, और और विज्ञा। श्रीमती महादेवी कर्मा की रचनाओं में 'वसन्त' का विचार पूरी रूप में हुआ है। वे सादि से लेकर काल तक अस्मादिनी हैं। उनकी दृष्टि आदि से लेकर काल तक, एक अद्भुत कला, और एक अद्भुत कला की ओर लगे हुई हैं। उनके कालों में वही अविष्ट कला, और वही अविष्ट कला उपा-विष्ट है। 'बीदा' में प्रकाश कर उनकी दृष्टि उस कला की ओर आकर्षित हुई है, जो हम विद्युत्-साधक काल में समर्थ है। 'बीदा' की रचनाओं में उन्होंने उनका अद्भुत किया है, और उनके विषयों को ही उनके मन की भीतर उपा-विष्ट हुई है। इस काल में 'वसन्त' के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है। वह 'वसन्त' कहकर है—साधना है। जीम और वसन्त के बीच की वह 'वसन्त' है, वही बीच की वसन्त से मिलने में बाधा उत्पन्न करता है। बीच के भीतर वह बाधा उत्पन्न हो जाता है, वह इस 'वसन्त' के प्रति वह उपा-विष्ट हो जाता है। इसी का नाम वैराग्य है। 'रसिक' में वही वैराग्य रचना के रूप में प्रकाश हुआ है। 'रसिक' में संसार के प्रति उपा-विष्ट और वसन्त के प्रति आकर्षण की 'वसन्त' दिखाई देती है। 'नीला' में वसन्त के प्रति आकर्षण का प्रेम भाव दृढ़ हो गया है, और वह ज्ञान के क्षेत्र के निकट कर आता, और आकर्षण के क्षेत्र में आ गया है। 'नीला' में आकाश समस्तता की अपनी समिष्टता का अद्भुत करने लगी है। वः उसके 'विस्तार' के रूप में ज्ञाना समस्तता भी स्थापित करने लगी है। 'सांध्य गीत' में उनका जीम दृढ़ हो गया है। उनके जीम की दृष्टि का अन्तर्गत उनका विष्ट और उनकी वेदना है। 'बीदा' और 'रसिक' में श्रीमती महादेवी कर्मा की रचनाओं में 'अद्भुत' काल के प्रति जो वेदना उत्पन्न हुई थी, वह सांध्य गीत में वसन्त का भी प्रवेश गई है, और वसन्त का भी प्रवेश कर उसने 'वसन्त' का रूप प्राप्त कर लिया है। सांध्य गीत की रचनाओं में फिर और वेदना के भीतर से एक उद्घाटन, और एक आनन्द का अविष्ट हुआ दिखाई देता है। सांध्य गीत की रचनाओं में, ऐसा ज्ञान होता है, अपनी अविष्टों के अपने उस अन्तर्गत को प्राप्त कर लिया है, जिसके लिए, सब एक उसके मन के भीतर विस्तार की।

श्रीमती महादेवी कर्मा की रचनाओं की इस जीम की विष्टों में विस्तार कर सकते

है—रामनाथी रचनाएँ, केदार नाम मूलक रचनाएँ, और प्रकृति नाम मूलक रचनाएँ । उनकी पहलवानी रचनाओं का क्षेत्र अधिक विस्तृत, और व्यापक है । सामान्य रूप में कहने का अनुमान लगती है, और आदर्श तथा वास्तव्य शक्ति के प्रति सब उनके मोलर आकर्षक लगता होता है, सब वह वा लो साधना की ओर प्रवृत्त होती है, वा भाव की ओर । भाव के क्षेत्र में वह फिर साधनों का आश्रय ग्रहण करती है, अपने शक्ति, ज्ञान, विचार, और प्रकृति सौन्दर्य के प्रति आकर्षक प्रभावित मुग्ध होती है । भीमती महादेवी वर्मा का यदुल्लास नाम पर आधारित है । उन्होंने 'भाव' के समीप में बैठ करके ही अपने शिष्यत्व—'कलत्र शक्ति' की आराधना की है । उनकी पहल-आराधना सभी उपकरणों के द्वारा है । अपने शक्ति की है, और ज्ञान की है । अपने विचार की है, और प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति आकाश की है । जिस साधनों और संश्लो के पहल-आराधना का विकास होता है, वे सभी भीमती वर्मा की पहल-आराधना में लगे हुए हैं । उनकी पहल-आराधना का विकास सब-सब के द्वारा है । प्रथम सोचान पर उनकी पहल-आराधना में विज्ञान की भाषणा है । द्वितीय सोचान पर बैठ कर वह उस परमात्मा के समान में विवेचना करती है, जिसके प्रति प्रथम सोचान पर उनके मन में विज्ञान लगता हुआ था । तृतीय सोचान पर पहुँचते-पहुँचते उनके मोलर विचारता लगता ही जाती है । वह इस तरह में जाती और अपने विचार-समूह सौन्दर्य को देख कर लड़कती है । उनके सौन्दर्य के लिए उनके मोलर आकाशता का स्वर उत्पन्न हो जाता है । बहुत सोचान उनकी पूर्णता का सोचान है । चतुर्थ सोचान पर उनके विचार-मन में आनन्द का सब प्रत्यक्ष कर लिया है । इस प्रकार उनकी पहल-आराधना का विकास साधनात्मक रूप में होता है । साधनात्मक रूप में विकास होने के ही कारण उनकी पहल आराधना में विकास, और सम्पन्नता है । भीमती महादेवी वर्मा की द्वितीय ओरि की रचनाओं में केदार, और वीरा के नामों की प्रभावता है । हुआ और वीरा के भीमती वर्मा की प्रत्यक्ष भाषणा है । उनके जीवन वय पर हुआ, और वीरा ही उनका सहचर है । वे जब इस समय में बढ़ती हैं—'हुआ मेरे विचार जीवन का देश काय है, जो जाने संसार को एक रूप में जीव रहने की प्रवृत्ति रखता है । हमारे सर्वप्रथम कुछ हमें पारे अनुभव की पहली सीढ़ी तथा जो न पहुँचा नहीं, किन्तु हमारा एक पूर्व भी जीवन को अधिक ऊँच स्तर पर लाने में मदद करता । अनुभव हुआ जो हमें ज्ञान सोचना चाहता है, वस्तु हुआ सब को जीव कर—जिस जीवन में, अपनी जीवन की, जिन नेदा में जाती नेदा की हम प्रभाव लाने देना, जिस प्रकार एक सब किन्तु 'समुद्र में विश्व जाता है, सब के लिए जीव है ।... हुंके हुआ के होनी ही सब फिर है—एक वह जो हमारा के सम्पन्नतागत रूप को लाने संसार में सब अनिच्छित रूप में जीव देता है, और दूसरा वह, जो सब और सोचा के समय में पड़े हुए सभीन विचार का समर्थन करता है, भीमती वर्मा की हुआ सभीन अधिकारी सभी आकाशता के साथ हुई

है। उनका दुःख सामाजिक दुःख है। वह एक काव्य का होले हुए भी, इस विषय के बाहर का है। उनका बीच सीमा, परंपराओं, और विधियों से बने हैं। उनमें बाह्य और आन्तरिक की कटुता गंभीर नहीं, वेग का आनन्द है। सीमाओं वहाँ की सीमाओं वीति की रचनाओं में प्रकृति का विषय हुआ है। उनका प्रकृति विषय भी रस-भावनाओं के परिपूर्ण है। उन्होंने अपने प्रकृति विषय में, प्रकृति के रूपों को आँखों के रूप में देखा अपने आनन्दवादी भावनाओं का अंशक दिया है। प्रकृति विषय में उनका अपने प्रकृति विषय की और न हीकर अपने उच्च रूपों की और है—एक मानवों के आनन्दों की ओर।

सीमाओं वहाँ वहाँ की सीमा और वीति-काव्य कहा जाना में मिली हुई है। दोनों में अधिक अन्तर्गत, और आन्तरिक आनन्द है। दोनों का एक ही विषय, एक ही सीमा, और एक ही भाव है। दोनों की आन्तरिक अन्तर्गत की देव का हम वह भी वह करते हैं, कि दोनों का अन्तर्गत एक दूसरे के अन्तर्गत से ही आनन्द का वन है। उनको आनन्द-काव्य अन्तर्गत सीमा के रूप में परिपूर्ण है। उनकी काव्य कला में अन्तर्गत एक रूप, एक गति, और एक आनन्द का अन्तर्गत की आनन्द दिखाने देती है। उनकी वीति काव्य कला में काव्य कला का पूर्ण सीमा है—एक वहाँ की आनन्द-काव्य नहीं। उनके वीति में वहाँ एक और वीति काव्य कला काव्य काव्य काव्य काव्य है, वहाँ काव्य कला की आनन्द आनन्द अन्तर्गत के वीति नहीं वहाँ। उनके वीति में काव्य और, अन्तर्गत का पूर्ण सीमा अन्तर्गत हुआ है। उनके वीति काव्य और आनन्द-काव्य के अन्तर्गत है। वे अन्तर्गत के अन्तर्गत के अन्तर्गत के अन्तर्गत है, वहाँ अन्तर्गत, आनन्द और काव्य का अन्तर्गत है। वहाँ काव्य है, कि उनके वीति अन्तर्गत, और आनन्द के अन्तर्गत, अन्तर्गत के अन्तर्गत के अन्तर्गत है। सीमा उनके वीति की अन्तर्गत में सीमा की आनन्द-काव्य की देती है। उनके अन्तर्गत नहीं, कि वहाँ, आनन्द, और आनन्द-काव्य-काव्य के अन्तर्गत वीति वीति की आनन्द दिखाने है।

काव्य रामकुमार वहाँ वीति काव्य के अन्तर्गत में काव्य अन्तर्गत अन्तर्गत है। उनके वीति अन्तर्गत-काव्य-काव्य काव्य है। उनके वीति में एक और प्रकृति का अन्तर्गत सीमा है, और वीति और अन्तर्गत की आनन्द। उन्होंने अन्तर्गत की अन्तर्गत, और आनन्द के अन्तर्गत में ही एक अन्तर्गत आनन्द, और सीमा का अन्तर्गत दिया है। वे अपने वीति में अन्तर्गत सीमा आनन्द, और सीमा में अन्तर्गत दिखाने देती है। उनके वीति में आनन्द, और अन्तर्गत के अन्तर्गत की अन्तर्गत है। आनन्द की अन्तर्गत में अन्तर्गत का अन्तर्गत वीति अन्तर्गत अन्तर्गत का अन्तर्गत है। उनके वीति की आनन्द और वीति की अन्तर्गत आनन्द, और अन्तर्गत है।

की आनन्द-काव्य-काव्य वहाँ के वीति काव्य का आनन्द अन्तर्गत, अन्तर्गत, और आनन्द है। उनके वीति में वहाँ की अन्तर्गत का अन्तर्गत है, वहाँ आनन्द का आनन्द सीमा है, और वहाँ आनन्द की अन्तर्गत और अन्तर्गत अन्तर्गत का अन्तर्गत है। 'अन्तर्गत' और 'अन्तर्गत' की आनन्द आनन्द का अन्तर्गत वीति की अन्तर्गत की है, उनके आनन्द की

विह्वलता देखने को मिलती है। पर उनकी उन रचनाओं में, जिनका सुजन उन्होंने 'मानव' की गति और उसकी स्थितियों को आधार मान कर किया है, मस्तिष्क के तत्त्वों की अधिकता है। प्रेम संगीत बर्माबों का उत्कृष्ट गीति काव्य है। प्रेम संगीत में गीति काव्य-कला का विकास उचित और स्वाभाविक रूप में हुआ है। प्रेम संगीत के गीतों में भाव और संगीत के तत्त्व घुले-मिले दिखाई देते हैं। 'प्रेम संगीत' की भाषा, और शैली भी अधिक मनोरम तथा आकर्षक है।

गीति काव्य के क्षेत्र में श्री हरिवंशराय 'बच्चन', श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री सोहनलाल द्विवेदी, श्री छारसी प्रसादसिंह, श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा, और श्रीमती विद्यावती 'कोकिल' आदि ने भी यश अर्जन किया है।

५

गद्य

विषय सूची

- १—छड़ी बोली के पूर्व—हिन्दी गद्य ३४५
 (क) प्राचीन काल में यद्य की ओर गद्य का कुम्भन-बनों ? (ख) लघु-गद्य का युग, (ग) वर्तमान का काल, (घ) हिन्दी का प्राचीन गद्य ।
- २—छड़ी बोली और कन्नड प्राचीन काल ३४०
 (१) छड़ी बोली—हिन्दी और उर्दू का काल, (२) छड़ी बोली का प्राचीन गद्य ।
- ३—छड़ी बोली का प्रचारक गद्य ३४४
 (१) छड़ी बोली का हिन्दी के गद्य प्रचार, (२) फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा प्रचार, (३) विम कादम्बर का प्रचार—प्रचार मात्र, (४) मुन्शी लक्ष्मण शर्मा, (५) इन्द्रा अन्धकार का, (६) कल्याणलाल, (७) पं० सरल मिश्र ।
- ४—हिन्दी गद्य के विकास की पहली सीढ़ी ३४३
 (क) राजा तुलसी के द्वारा गद्य का विकास, (ख) ईश्वर चर्म प्रचारक और हिन्दी गद्य, (ग) मेव और कल्याण, (घ) जैनेश्वरी मिश्रा का काल और उसका प्रचार, (ङ) जैनेश्वरी मिश्रा की छोट में ईश्वर चर्म का प्रचार, (च) मनीष चेतना की लहर, (छ) हिन्दी की लहर, (ज) हिन्दी की राशि, (झ) यशों का प्रचारक और हिन्दी गद्य, (ञ) राजा विमप्रचार मिश्रारे हिन्द ।
- ५—हिन्दी गद्य—प्रथम प्रकाश ३४०
 (१) हिन्दी का विरोध, (२) राजेश्वर प्रसाद हिन्द की बुद्धिमानी, (३) मिश्रारे हिन्द के सहयोगी, (४) हिन्दी गद्य और राजाजयचन्द्रसिंह, (५) कार्य समाज और हिन्दी गद्य, (६) गद्य काल के नेता और हिन्दी, (७) पं० अज्ञानान तुलसीदास और हिन्दी, (८) हिन्दी का के लिए अनुर्व प्रचारक ।
- ६—गद्य—मालेन्दु का ३४६
 (१) मालेन्दु के पूर्व का गद्य, (२) मालेन्दु की की लेना साधना, (३) मैली के कन्दराज मालेन्दु, और उसकी मैली, (४) मालेन्दु—गद्य के विचारक, (५) गद्य निर्माता—मालेन्दु, (६) गद्यकर्म मालेन्दु, (७) प्रचारक मालेन्दु, (८) माले की साहित्य साधना, (९) माले की मैली, (१०) माले की माया (११) प्रचार मालेन्दु मिश्र की साहित्य साधना, (१२) मिश्र की मैली, (१३) मिश्र की माया, (१४) प्रेमचन्द की साहित्य साधना, (१५) प्रेमचन्द की मैली, (१६) प्रेमचन्द की माया, (१७) श्री निवासदास की साहित्य साधना, (१८)

श्री विजयदासजी की रीती, (३) श्री विजयदासजी की माया, (४) हाफुर बग-
मोहरमिंद की साहित्य साधना, (५) हाफुर सादन की रीती, (६) हाफुर सादन
की माया, (७) मारोन्हु बरह के रोष मरुहार (८) मारोन्हु बरह के रण
की रीतिज्ञा ।

७—हिन्दी गद्य—हिन्दी काल

४०४

(१) हिन्दी काल के गद्य की उन्नति, (२) हिन्दी काल की बहुमुखी उन्नति,
(३) हिन्दी युग के गद्य की एक-फलक, (४) हिन्दीजी की साहित्य-साधना,
(५) हिन्दीजी की रीती, (६) हिन्दीजी की माया, (७) पं० सादन प्रसाद
मिश की साहित्य साधना, (८) विजयी की रीती, (९) विजयी की माया, (१०)
हाफुरमुन्द युग की साहित्य साधना (११) गुप्तजी की रीती, (१२) गुप्तजी की माया,
(१३) पं० मोहिन्द मिश की साहित्य साधना, (१४) विजयी की रीती, (१५) विजय
की माया, (१६) बाबू रघवमुन्दरायल और उनकी साहित्य-साधना, (१७)
बाबू रघवमुन्दरायलजी की रीती, (१८) बाबू रघवमुन्दरायलजी की माया, (१९)
पं० बन्धुवर सुर्मा गुहरी की साहित्य-साधना, (२०) गुहरीजी की रीती (२१)
गुहरीजी की माया, (२२) पृथ्विंद की साहित्य साधना, (२३) पृथ्विंदजी की
रीती, (२४) पृथ्विंदजी की माया, (२५) पृथ्विंद सुर्मा की साहित्य साधना, (२६)
सुर्माजी की रीती, (२७) सुर्माजी की माया, (२८) पं० रामचन्द्र गुप्त की साहित्य
साधना, (२९) गुप्तजी की रीती, (३०) गुप्तजी की माया, (३१) गुप्तजी और
हिन्दी गद्य का साधुनिक युग ।

८—हिन्दी गद्य—साधुनिक काल

४०४

(१) साधुनिक काल के गद्य की उन्नति, (२) उन्नत, (३) मारक, (४) उन्ना-
लीचन, (५) साधुनिक युग के गद्यकार, (६) गद्यकार प्रसाद की साहित्य
साधना, (७) प्रसादजी की रीती, (८) प्रसादजी की माया, (९) प्रेमचन्दजी की
साहित्य साधना, (१०) प्रेमचन्दजी की रीती, (११) प्रेमचन्दजी की माया, (१२)
की गुलाबरायजी की साहित्य साधना, (१३) की गुलाबरायजी की रीती, (१४)
की गुलाबरायजी की माया, (१५) की गुरुमन्त्र गुलाबराय बरहो की साहित्य
साधना, (१६) बरहोजी की रीती, (१७) बरहोजी की माया, (१८) गुरुमन्त्र
हाफुर वर्मा की साहित्य साधना, (१९) वर्माजी की रीती, (२०) वर्माजी की माया,
(२१) विश्वामय्याय वर्मा 'कीर्तिधर' की साहित्य साधना, (२२) कीर्तिधरजी की
माया, (२३) कीर्तिधरजी की रीती, (२४) राधकृष्णदासजी की साहित्य साधना,
(२५) राधकृष्ण की रीती, (२६) राधकृष्ण की माया, (२७) विवेकीन्द्रिणी की
साहित्य-साधना, (२८) विवेकीन्द्रिणी की रीती, (२९) विवेकीन्द्रिणी की माया, (३०)
सुदर्शनजी की साहित्य साधना, (३१) सुदर्शनजी की रीती, (३२) सुदर्शनजी की
माया, (३३) अन्य कालकी गद्यकार ।

सहृदी बोली के पूर्व—हिन्दी गद्य

आज हिन्दी गद्य की वस्तुस्थिति उन्नति हो रही है। आज जिस हिन्दी गद्य के विकास ने हमारे हिन्दी साहित्य को चारों ओर से आच्छादित कर रखा है, वह लक्ष्मी प्राचीन काल में गद्य बोली का गद्य है। सहृदी बोली के जन्म का इतिहास की ओर मनुष्य का लगभग श्रेष्ठ भी वही का इतिहास है। इसके पूर्व सहृदी मुकाबल—क्यों? बोली का अस्तित्व हिन्दी साहित्य के इतिहास में नहीं दिखाई देता। लक्ष्मी बोली में हिन्दी गद्य का जन्म, और उसके विकास भी हुआ है। इसका कार्य यह होता है, कि लक्ष्मी बोली के जन्म के पूर्व हिन्दी में 'गद्य' लिखने की परिगटी नहीं थी। यह आश्चर्य की ही बात है। जिस हिन्दी साहित्य में 'वीर', 'भक्ति', और 'रीति' के रूप में उच्च भावों से परिपूर्ण काव्यों का सुजन हुआ हो, जिसमें सभी रसों से युक्त कथाएँ और प्रबन्ध काव्य लिखे गए हों, उसमें किसी का ध्यान गद्य-रचना की ओर आकृष्ट न हो—यह विचारणीय विषय है। यह एक ऐसी बात है, जो मानव-व्यक्ति पर आघात करती है। यह एक ऐसी बात है, जो हमारे साहित्यिक गुणों के अभाव की ओर भी निर्देश करती है। मानव जीवन के इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तो यह देखते हैं, कि मनुष्य आदि काल से बोल चाल के रूप में गद्य का प्रयोग करता चला आ रहा है। पर इसके साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं, कि प्राचीन काल में मनुष्य ने साहित्य के नाम पर गद्य की अपेक्षा पद्य का ही अधिक सुजन किया है। प्राचीन भाषाओं के साहित्य में जितना अधिक पद्य मिलता है, उसकी अपेक्षा गद्य बहुत कम मिलता है। कारण यह है, कि प्राचीन काल में गद्य की अपेक्षा मनुष्य का मुकाबल पद्य की ओर अधिक था। प्राचीन काल में मनुष्य का जीवन संघर्षमय था। वह दिन रात अपने जीवन के निर्वाह के लिए उपयोगी वस्तुओं को जुटाने में लगा रहता था। उसके पास ऐसे साधनों का अभाव था, जिनके द्वारा वह अपने विचारों, और अनुभूतियों को सुरक्षित रख सकता। अपने विचारों और अनुभूतियों को सुरक्षित रखने के लिए उसके पास एक ही साधन था—उसकी स्मरण शक्ति। उसके हृदय में जो कुछ भी विचार उठते थे, जो कुछ भी अनुभूतियाँ उसके भीतर बाधित होती थी, वह उन्हें 'याद' रख करके ही रखा रखता था। विचारों और अनुभूतियों को सरलता पूर्वक याद रखने के लिए ही उसने 'पद्य' का सहारा लिया था। 'पद्य' में संकीर्ण का उच्च मिश्रित होने के कारण 'गद्य' की अपेक्षा वह सहज में

ही तरह फिरा जा सकता है। प्राचीन वाक्पाठों में वच का समावेश केवल उसके मूल्य के ही कारण है। 'वच' वच की कहेवा अधिक विस्तृत होता है। विचारों और वाक्यों को प्रगट करने के लिए 'वच' की कहेवा उसमें अधिक शब्दों, और वाक्यों को आवश्यक होती है। शब्दों और वाक्यों की अधिकता होने के कारण वह अधिक रहित है, कि प्राचीन और विचारों को सुरक्षित रखने के लिए वच की प्रगट वृद्धि के लक्ष्य में होता था। यह केवल और उसके संग्रह के ही कारण प्राचीन काल के मनुष्य के सामने उसके विचारों में बहुत बड़ी कठिनाई थी। यही कारण है, कि प्राचीन वाक् में मनुष्य वच की और बहुत कम वाक्पठ होता।

[illegible]

सिद्ध यह प्रश्न तो अभी खड़े रहान पर ही बना हुआ है, कि हिन्दी में सभी-
-कीलों के पूर्व मुद्र, आदिनिर्ध, और व्यवस्थित रूप का पूर्ण संकेत प्रभाव था । इस
गणनाओं का प्रश्न पर हमें उक्त दोनों ही बातों को समझे रखकर विचार
करना होगा । परन्तु यह कि सही कोली के समय के पूर्व हिन्दी
विश्व मुद्र में हीकर जाने पड़ रही थी, क्या उस मुद्र में प्रस्ता के पास खड़े विचारों
और अनुसंधानों की रक्षा के लिए प्रभाव के से साधन उपलब्ध थे, और दूसरी बात यह

कि क्या उस युग की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अवस्था उचित पूर्व थी ! इन पहले प्रथम चरण पर विचार करेंगे । हमने विचारों और भावों के अन्वयन तथा उनमें सुलझा के लिए हमारे पास काव्य युद्ध, संस्कारवाद, और काव्य की जिस प्रकार बुनियाद है, उस प्रकार की बुनियाद हिन्दी के कव्य के प्राथमिक काल में नहीं थी । उस काल काल के बाद हमने विचारों की सुलझा के लिए केवल सारंग, हल्कि या ही मरीचा था । निम्न की रीति का आचरण-कारण उपर्युक्त दो युग था, और दूसरों द्वारा के लिए की या चुकी थी, पर हिन्दी के कव्य के प्राथमिक और उसके मध्यकाल में इन सब कारणों का भी, यदि लोग नहीं दो युग था, ही कारण उपर्युक्त था । इसका एक मात्र कारण उस काल की सांस्कृतिक परिस्थिति थी । हिन्दी के कव्य के प्रारम्भ के ही प्राथमिक काल पर निम्नलिखित के कारणों में हमने इसे है । हमने के कारणों के देश के ऊपर हिन्दी के कव्य के प्रारम्भ काट से ही होने लगे थे । काल का जीवन सुलझा, और आभाओं में काल था - वह काल एक देश का था, जिसे हम अन्त-प्रकृत का काल कह सकते हैं । इस काल में भारतीय जीवन पूर्व का से द्वितीय-मिल ही रहा था । उसकी शिक्षा और संस्कृति की लड़ी पूर्व का से दूर चुकी थी । हिन्दी के कव्य के आदि काल से लेकर रीति काट तक सब सब कालों का साधन इस देश के ऊपर था, हम भारतीय शिक्षा, संस्कृति, और जीवन की सुलझा की अन्त-प्रकृत अवस्था में ही करते हैं । भारत की वह सांस्कृतिक और सांस्कृतिक विधि-विधान के समान के विरोध थी । हिन्दी जिस उद्देश में यह रही थी, काल की प्रवेश हिन्दी का युग के लिए था, उस पर इस युग का पूर्व का से आधिन्यास था । यही कारण है, कि इस युग में सब का सुलझा ही सुलझा, पर सांस्कृतिक की और किसी का साधन न था । 'यह सब' केवल सांस्कृतिकताओं, और विचारों के ही कारण हुई है । यदि सब की रीति युग की सब की साधन-प्रकृत होती ही हमने समझ नहीं, कि सब की रीति ही सब का भी सुलझा हुआ होता । और यहाँ काल में जिस प्रकार युग की लड़ता पूर्व काल की साधन-प्रकृत थी, यदि काल में जिस प्रकार युग के जीवन अधिक पूर्व कालों की साधन-प्रकृत थी, और जिस प्रकार रीति काट में उसके जीवन सुलझा कालों के लिए भूत थी, वह निश्चय है, कि इस प्रकार की सुलझा युग के जीवन सब कालों के लिए नहीं थी; परिणाम अन्त हिन्दी में सांस्कृतिक ही हुई, किन्तु सांस्कृतिक का पूर्व का से अन्त ही था ।

नया हिन्दी में लड़ी बोली के कव्य के पूर्व का से पूर्व का से अन्त है; आद्य जीवन कर देते, लड़ी किसी भी से सब का सुलझा अन्त हुआ न लड़ाई

हिन्दी का प्राचीन

यों : हिन्दी के कव्य की रीति के लिए हमें लड़ी बोली,

गद्य

उप, साधन-प्रकृत, और साधन-प्रकृत इन रीतियों

और साधन-प्रकृत की साधन-प्रकृत होती, किन्तु हिन्दी का जीवन हुआ है, और जो हिन्दी की उपलब्धियों और उपलब्धियों के काल में निश्चय है । इन रीतियों और साधनों की साधन-प्रकृत सब हम करते हैं, ही इस काल का पता चलता है, कि

बौद्धों वैष्णवों की भाँति, और 'हो बी' शब्द के लोको को 'बर्ता' है। इन पुस्तकों के रचयिता योगेश्वरी पौकुरानाथ, या उनका छोटे पिता है। इन पुस्तकों का विषय उनके नाम से ही प्रसर है। इनमें केवल सबो और उनके भाग्यो की बर्तिकावली का वर्णन है। इनकी भाषा पहले से कुछ अधिक व्यवस्थित, और परिष्कृत है। इनकी दिनां, १६०३ ई० के आठ वास भाग्यशाली से 'अष्टम' की रचना की। 'अष्टम' के अर्थात् पुष्पकोश की रामकण्ठ की 'दिन बर्ता' पर प्रकाश प्राप्त गया है। अष्टम के पश्चात् किन गद्यांश कृतियों का वक्त प्रकाश है, उनका नाम 'आष्टम महात्म्य' और 'वैष्णव महात्म्य' है। इनकी रचना वैष्णवों के द्वारा हुई है। जो बौद्धों परेश, कर्णवर्धन के द्वारा से पहले से। इनके पश्चात् सप्तमी दशम की 'पूर्वार्द्ध' से दो और गद्य कृतियों की रचना हुई, जिनके नाम 'पुष्पकोश', और 'विष्णुपुराण' हैं। इनकी दिनां १७०३ ई० में 'नाथिकोपासना' की रचना किनी अष्टम लेखक के द्वारा हुई। १७१० ई० में कृति विष्णु में वैष्णव बर्ता, और नाथिकोपासना में 'महा नाथ प्रयोग' की रचना की। १७१३ ई० में शीतलाल से, कपूर नरेश कर्ण महाविद्वान् की आका से, 'आष्टम अष्टम' की 'भाषा बर्तिका' किनी, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त रामनाथ के गद्य की और भी कई कृतियाँ मिलती हैं। जैसे—'द्वैत पुराण', 'विष्णुवैद्य', 'हृदय'। अंगार कटक, रामचन्द्रिका, कर्णिका, रविचित्रा, और विष्णु वक्त की आदि कृतियों की शीर्षक भी इनकी दिनां रामनाथ के गद्य में हुई। रामनाथ के नाम ही साथ रामनाथी से भी, इन दिनां गद्य रचना होती गई। इन दिनां रामनाथी से ही गद्य रचना हुई, उनमें 'सुदक्षिण नैर को की कर्ता', 'पञ्चम अष्टम वैष्णवी', और 'भोक्तृपुत्री शरीर की कर्ता' अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

कुल रामनाथी और सब के किन गद्य की बर्ता की गई है, उनका अतिरिक्त प्रकाश नहीं के प्रसार है। न ही उनके भाषा का बीज है, और न शब्दों के अर्थान्तर और अर्थान्तर की कम कटका। भाषा का न ही कोई निश्चित प्रकाश है, और न शब्दों के विचार का कम। उक्त गद्य कृतियों के अतिरिक्त लेखक हैं, अपने अपने अपने अपने अपने अपने अपने भाषा का प्रयोग किता है। भाषा के प्रयोग में वे सर्वत्र समानता से हुए दृष्टिकोण से हैं। इन कृतियों में गद्य के शब्दों का भी अर्थान्तर है, उन्हें देखते हुए इन इनकी रचना आत्मिक गद्य में नहीं कर सकते। इन कृतियों का महत्त्व ही केवल इतना ही है, कि वे गद्य के कर्म, और उनके विचार की अर्थान्तर की आका में जोड़ती हैं। अतिरिक्त के विचारों की इन दृष्टिकोण से इन गद्यांश कृतियों की भाषा, और शब्दों का व्यवहार भी करना चाहिए।

सबो बोली और हर नया प्राणीय रूप

आज जिस तरह की सर्व-स्वाधीनता हो रही है, वह उसकी बोली में है। लक्ष्मी बोली जिसे कहते हैं, उसका विकास किस प्रकार हुआ है—इस पर इसके पूर्व प्रकाश लक्ष्मी बोली—हिन्दी भाषा का हुआ है। गद्य-पद्य भी, विचार की दृष्टि से और शब्दों का अर्थ के लिए नहीं उसका विश्व-अभिव्यक्ति का रहा है। आज हम जिस लक्ष्मी बोली में लिखते, पढ़ते, और बोलते हैं, उसका जन्म गाना मेरठ, और उसके आगे वाक था। आज जिस प्रकार उसे साहित्यिक जीवन प्राप्त है, पहले उसकी ऐसी अवस्था न थी। आज यह एक भाषा के रूप में साहित्यिक पद्धति में अभिव्यक्त है, किन्तु पहले वह केवल एक बोली मात्र थी, और मेरठ तथा उसके आस-पास के भूमि भाषी ने उसका प्रसार था। मेरठ, और उसके समीपवर्ती स्थानों को छोड़ कर बाहर के स्थानों से उसका परिचय लक्ष्मी के द्वारा था। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है, कि जिस प्रकार भारत की सभी सामूहिक भाषाओं और बोलियों का जन्म काल-क्रम से हुआ है, इसी प्रकार लक्ष्मी बोली ने भी क्रम-क्रम से कम धारण किया है। लक्ष्मी बोली की रचना उन दिनों और भी मायाई और रोजगारी करने-करने क्षेत्र में प्रचलित थी। जैसे—मायायी, मैथिली, राबस्थानी, खम्भी और मरा इत्यादि। पर इन सबमें लक्ष्मी बोली का अधिक अभिन्न उद्भव था। लक्ष्मी बोली ने अपने परदे-परदे-परदे के ही प्रधान के कारण उद्भव की ओर अपना चरण बढ़ाया। कुशलमानों का हाथन जब दिल्ली पर स्थापित हुआ, तो सर्वप्रथम उनके नामने भाषा की पहिलाई उपरिष्ठ हुई। क्योंकि उनकी भाषा सरनी और पारसी थी। इसके विपरीत दिल्ली के आस-पास की भाषा बोली लक्ष्मी थी, वह लक्ष्मी बोली का हिन्दी थी। प्रायः मुसलमानों के लिए जनता के सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक था। अतः उन्होंने लक्ष्मी बोली के शब्दों को सीखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार लक्ष्मी बोली ने अपने क्षेत्र को छोड़ कर दिल्ली में फैला लिया। दिल्ली में लक्ष्मी बोली ने तरही पारसी के शब्दों के साथ मिलकर एक नया रूप धारण किया। पहले लक्ष्मी बोली के इस मूल रूप का प्रचार केवल नाभाटी में था। इसके पश्चात् शही-रही-उल्हा महल बढ़ता गया। ल्यों-ल्यों इसका महल बढ़ता गया, ल्यों-ल्यों उसका रूप भी परिवर्तित, और सुन्दर होता गया। वीरे-वीरे उसने एक भाषा का रूप धारण कर लिया। आज जिसे लक्ष्मी कहते हैं, वह यही भाषा है, जो लक्ष्मी बोली और

अरबी-पारसी के संयोग से उत्पन्न हुई है। आरम्भ में इसकी लिपि देव नागरी की थी, किन्तु बाद में इसकी लिपि में परिवर्तन किया गया, और इस पर अरबी-पारसी के व्याकरण का रंग भी बढ़ाया गया। जिस प्रकार अरबी-पारसी और कहीं बोली के वास्तविक शब्दों के मेल से उर्दू में कल्प लिया, उसी प्रकार कहीं बोली और संस्कृत के लक्षण शब्दों के वास्तविक मेल से उर्दू में जो कुछ दूसरी भाषा में भी कल्प लिया। इस दूसरी भाषा को ही कहीं बोली हिन्दी कहते हैं। कहीं बोली उर्दू और कहीं बोली हिन्दी के अंतर यह है, कि उर्दू में जहाँ अरबी और पारसी के शब्दों की प्रचुरता है, वहाँ हिन्दी में संस्कृत के लक्षण शब्द हैं। उर्दू की लिपि—बिदेही अरबी है। हिन्दी की लिपि अरबी देह को—देव नागरी है। उर्दू में जहाँ अरब और पारस की संस्कृतियों का अधिपत्य हुआ है, वहाँ हिन्दी की रीति में भारतीय संस्कृति का अधिकतम संश्लेषित होता है। उर्दू का वास्तव-वैषम्य जहाँ वाक्यों के द्वारा हुआ है, वहाँ हिन्दी भारतीय शब्दावली के बीच में पड़ी है। इस प्रकार कहीं बोली से दो भाषाएँ निकलत हुई—कहीं बोली उर्दू, और कहीं बोली हिन्दी। इस वास्तविक कारणों से कहीं बोली उर्दू और कहीं बोली हिन्दी के विषय में एक हीसरी भाषा निकली है, जिसका नाम हिन्दुस्तानी पड़ा है। उर्दू और हिन्दी दोनों का ही सुप्रसिद्ध और व्यवस्थित स्वभाव है। दोनों में ही वाहिन का प्रभाव भी हो रहा है, पर हिन्दुस्तानी का काम एक बोले में स्वयं निश्चित नहीं हो सका है। स्वयं निश्चित न होने के कारण अब यह किसी प्रकार के वाहिन का प्रभाव की उत्पत्ति नहीं हो सका है।

मान को कहीं बोली हिन्दी राष्ट्र भाषा के पर पर आचीन है, और बिदेही विदेह लक्षित की स्थिति ही रही है, उसमें वाहिन का प्रभाव कम हो ही रहा है—यह कहीं बोली का एक विचारयोग्य प्रश्न है। सभी प्रश्नों की मति बिदेही आचीन भाषा विद्वानों ने इस प्रश्न की भी अपनी दृष्टि से देखा है। कई बिदेही विद्वानों ने कहीं बोली के वाहिन पर अपना अधिकतम प्रभाव करते हुए लिखा है, कि यह हिन्दुस्तानी की भाषा है। एक भाषा में उन्होंने अंग्रेजी की प्रेरणा से ही वाहिन का निर्माण काका प्रारम्भ किया है। पर बिदेही विद्वानों की इस बात की इतिहास किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करता। इतिहास के भी अन्य हमारे सामने हैं, उनमें यह निश्चित होता है, कि अंग्रेजी के आगमन और उनके शासन के बहुत पूर्व कहीं बोली हिन्दी रचना के क्षेत्र में अधिपत्य में आ चुकी थी। अंग्रेजी के शासन के बहुत पूर्व कई ऐसे लेखक और कवि हो चुके हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में कहीं बोली के शब्द और उनके शब्दों का प्रयोग भी किया है।

इतिहास से पता चलता है, कि कहीं बोली का प्रयोग दूसरी शताब्दी या उसके आस पास के रचना के रूप में हो रहा है। आरम्भ की शताब्दी में देवनागरी शुरु में 'हिन्दु देवनागरी सम्प्रदाय' की रचना की है। यह व्याकरण का ग्रन्थ है। इसमें कहीं बोली के कई शब्द रूप के देखने की मिलते हैं। आरम्भ की शताब्दी में अरबी-

साहित्य में 'सोसलहेब' की रचना की। बोलस देव में भी उसी बोली के शब्द मिलते हैं। इसी दिनी जमीर खुली में कुछ परिवर्तनों, और देखे जहाँ की रचना को, जिसमें उसी बोली के शब्दों का समूह रूप के प्रयोग हुआ है। ये सबकी राजाजी के शब्द में सर्वप्रकारों हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में उसी बोली के शब्दों का प्रयोग किया है। इसी एक दिन अपनी और केलाओं की अपनी की गई है, वे सदात्मक हैं। यह के रूप में उसी बोली का प्रयोग जलकर के समान में मिलता है। जलकर के शास्त्र का यह के रूप समान एक साथ ही हुआ है, जिसमें सर्व प्रथम उसी बोली में 'बन्द शब्द' शब्दों की महिमा' नामक एक पुस्तक रूप में लिखी। इसके पूर्व के कुछ और ही पुस्तकालय साहित्यिकों के लिखे हुए ग्रन्थ मिलते हैं। इन पुस्तकालय साहित्यिकों में, जिसमें बीचपुरी राजमोहन, और राजकुमारान का नाम महान्वृत्त है, हिन्दी भाषा में ग्रन्थ रचना की है। यह हिन्दी भाषा उसी बोली का ही एक रूप है। किन्तु उसी बोली का सबसे अधिक परिमार्जित और व्यवस्थित रूप जिस रचना में मिलता है, वह 'जंग' की 'बंद' कुन्दनराम की महिमा की है। जलकर के पञ्चाब्द साहित्य के रूप में भी, उसी बोली में सिंह भाषा के रूप में एक मात्र कर लिया था। पञ्चाब्द साहित्य के शास्त्र काल की 'उसी बोली' की किसी सदात्मक कृति का नाम नहीं मिलता, किन्तु रचना की मात्र मिलता ही है, कि साहित्य के शास्त्र काल में उसी बोली में सिंह-भाषा में जलकर पूर्व रचना प्राप्त कर लिया था। 'जंग' के रूप के पञ्चाब्द उसी बोली की ही गद्यात्मक कृत प्राप्त होती है, वह है रामप्रसाद निरंजनी का 'योग साहित्य'। इसका निर्माण वर्ष १८४२ में हुआ था। इसमें उसी बोली का परिमार्जित रूप देखने को मिलता है। इसकी और उसी बोली के ग्रन्थ की प्रथम कृति मात्र नाम को कोई साहित्यिक की बात न होती। क्योंकि इन रूप की मात्र रचनाओं में इसकी भाषा सबसे अधिक व्यवस्थित और परिष्कृत है। इसकी भाषा की देखने के यह भी निष्कर्ष निकलता है, कि इसकी गद्यात्मक, और ललितशैली के रूप ही उसी बोली में ग्रन्थ की रचना होने लगी की। रामप्रसाद निरंजनी के पञ्चाब्द वर्ष १८५२ में अन्य प्रदेश के निवासी, रंग शिखराम ने 'सिनेहाचार्य' हुए 'पद्म पुष्प' का भाषानुवाद किया। योग साहित्य की भाषा की अपेक्षा इसकी भाषा अधिक व्यवस्थित और व्यवस्थित है। इसमें पञ्चाब्द संवत् १८३०-४० के बीच में राजस्थान के किसी कलाय लेखक ने 'मंदी-कर की पदार्थ' लिखा था, जिसमें सदात्मक शब्द प्राप्त की भाषा का प्रयोग हुआ है। इसके पञ्चाब्द की ही गद्यात्मक कृतियाँ मिलती हैं, वे इसकी गद्यात्मक काल, इसका जहाज और, और ललितशैली की कृतियाँ हैं। इन कृतियों पर इन दूसरे प्रकार में प्रकाश मिलेगा। क्योंकि इन कृतियों में उसी बोली के ग्रन्थ का इतिहास व्यवस्थित रूप में प्राप्त हो जाता है।

उसी बोली के प्राचीन ग्रन्थ की ही महान्वृत्त कृति प्राप्त होती है, वह राम-प्रसाद निरंजनी का 'योग साहित्य' है। योग साहित्य की भाषा अधिक परिष्कृत, और

व्यवस्थित है। रामप्रसाद निरंजनी पट्टियाला दरबार में रहते थे, और महारानी को कथा नाँच कर सुनाया करते थे। रामप्रसाद निरंजनी की भाषा को देखते हुए स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है, कि उस समय तक संड़ी बोली का प्रयोग शिष्ट जन समाज में होने लगा था, और साहित्य-निर्माण में लोग उसका प्रयोग भी करने लगे थे। किन्तु रामप्रसाद निरंजनी के परचाव् दौलतराम ने पद्य पुराण का जो भाषानुवाद किया है, उसकी भाषा 'योग वाशिष्ठ' की भाषा से अधिक लचर और अव्यवस्थित है, जब कि योग वाशिष्ठ की अपेक्षा 'पद्य पुराण' की भाषा में संड़ी बोली का और भी अधिक विकसित रूप मिलना चाहिए था। इस प्रश्न को सामने रख कर जो लोग यह हल निकालने का प्रयत्न करते हैं, कि संड़ी बोली की शृंखला 'पद्य पुराण' की भाषा में टूट गई है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता, कि 'योग वाशिष्ठ' के समय से ही संड़ी बोली में रचना होने लगी थी; हमारी समझ में वे भूल करते हैं। ऐसे लोगों की 'पद्य पुराण' के स्थान, और उसके उद्देश्य पर दृष्टि-पात करना चाहिए। पद्य पुराण की रचना उस मध्य प्रदेश में हुई, जिस पर कभी भी फारसी और उर्दू की शिक्षा नहीं लायी गई। इसके अतिरिक्त उसकी रचना उस जैन समाज के लिए हुई है, जिसका सम्बन्ध व्यापार से था। जिन दिनों संड़ी बोली में 'योग वाशिष्ठ' की रचना हुई, उन दिनों या उसके आस पास संड़ी बोली मुसलमानों के ही क़ोह में पल रही थी। मुसलमान धीरे-धीरे उस पर आप्रमेयन का रंग डाल रहे थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था, कि 'पद्य पुराण' की भाषा कुछ और ही होती, जैसा कि उसमें मिलता है। पर यह तो निश्चित है, कि संड़ी बोली में गद्य की रचना 'योग वाशिष्ठ' के समय से होने लगी थी; क्योंकि उसमें जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, वह हिन्दी संड़ी बोली के रूप से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

सड़ी बोली का प्रचारात्मक भव

सड़ी बोली के जन्म की कहानी में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है, कि सड़ी बोली उर्दू के साथ ही साथ सड़ी बोली हिन्दी का भी जन्म हुआ। दोनों का सड़ी बोली का दिल्ली की पालन-पोषण दिल्ली में होता रहा। उर्दू के बाहर प्रचार शास्त्रों के कोढ़ में पल रही थी, और हिन्दी जनता की ओर थी। अपने जन्म के प्रारम्भिक दिनों में उर्दू बहुत कुछ देशी भाषा से मिलती-जुलती थी, किन्तु जब मुसलमान शासकों ने उसका बहुत कुछ रंग बदल दिया; दूसरे शब्दों में जब उस पर अरबी फारसी का रंग चढ़ा दिया गया, तब हिन्दी कवियों से उसका सम्बन्ध टूट गया, और लोग उसे मुसलमानों की भाषा समझने लगे। इससे सड़ी बोली हिन्दी, जो जनता की ओर में पल रही थी, भारतीयता के रंग में रंगी हुई थी। अतः यह कुछ ही दिनों में जनता के आदर की पावित्री बन गई। दिल्ली में जब तक मुगलों का राज्य रहा, उर्दू आदर पाती रही, और सड़ी बोली हिन्दी भी उसके साथ ही जनता की ओर में पलती रही। मुसलमानों के शासन का अन्त होने के साथही साथ उर्दू के औभार का दूर अन्त हो गया, और सड़ी बोली हिन्दी के भाव का दूर उदय हुआ। मुगलों के शासन के पश्चात् जब सत्तानक, पटना, और मुजिफाबाद इत्यादि स्थानों में नवाबों की राजधानियाँ स्थापित हुईं, तो दिल्ली के खजिर्दार जमींदार और व्यवसायियों ने सत्तानक, पटना, और मुजिफाबाद इत्यादि स्थानों में जाकर अपना बैरा जमाया। केवल इन्हीं स्थानों में नहीं, बल्कि मुगलों के शासन के पश्चात् वहाँ भी कहीं जमींदार और नवाबों की राजधानियाँ स्थापित हुईं, दिल्ली के मुजिफाबाद और व्यवसायियों ने उन सम्पूर्ण स्थानों को अपना निवास स्थान बनाया। इन व्यवसायियों और मुजिफाबाद के साथ साथ वह भाषा भी सर्वत्र गई, जो दिल्ली के शिष्टजन समाज में प्रचलित थी। यह भाषा सड़ी बोली हिन्दी थी। इस प्रकार सड़ी बोली का प्रचार शनैः शनैः देश के सभी भू-भागों में हो गया, और उसने शनैः शनैः एक शिष्ट भाषा का रूप धारण कर लिया। उसमें रचनाएँ भी होने लगीं। रामदास निरवनी का योग गच्छिष्ठ और पं० दीनदत्त राम का पद्म पुराण इस बात का प्रमाण है। यद्यपि उन दिनों सड़ी बोली जब भाषा से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सकी थी, जैसा, कि पद्म पुराण की भाषा से प्रगट होता है, पर इसके साथ ही साथ उससे यह भी प्रगट होता है, कि उन दिनों

सहोदरी बोली हिन्दी से एक सामान्य लिख्य भाषा का रूप प्राप्त कर लिया था, और उसके क्षेत्र में उसका प्रयोग भी होने लगा था ।

मुम्बई के शासन के महाराष्ट्र का क्षेत्र में बंगालीयों का राज्य स्थापित हुआ, उस बंगालीयों का भाषा देशी भाषा की ओर गया । वह उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ का समय था । उस दिनों दो भाषाएँ चल रही थीं । एक सहोदरी बोली और दूसरी उर्दू । सहोदरी बोली कन्नडा की भाषा थी, और उसमें बन-बनाने का रस रहा था । इसके विपरीत उर्दू उन मुसलमानों की भाषा थी, जो दौरेदार जाने पर जो कन्नड और कन्नड की संस्कृति का रस ग्रहण रहे थे । बंगालीयों की जब देशी भाषाओं की सीखने की आवश्यकता हुई तो उन्होंने हिन्दी और उर्दू-दोनों भाषाओं का मिश्रण किया, और उन्होंने दोरी-दो भाषाओं की सीखने का प्रयत्न किया । इस समय तक उर्दू में गद्य का पूर्ण रूप से अभाव था । पर सहोदरी बोली में गद्यरचना हो चुकी थी । सहोदरी बोली कन्नडा की भाषा थी, इसलिए बंगालीयों ने उसकी अनुरूपता भी स्वीकार की, पर फिर भी वे कुछ दिनों तक उर्दू को प्रथम देने का प्रयत्न करते रहे ।

बंगालीयों की जब हिन्दी और उर्दू सीखने की आवश्यकता पड़ी, तो उन्होंने हिन्दी और उर्दू की समस्त प्रणाली की सीख ली । उर्दू में गद्यप्रणाली का कोई विशिष्टम आलेख अभाव था । किन्तु हिन्दी में गद्यप्रणाली का प्रारम्भिक रूप प्रकाश हो चुकी थी, जिसका उल्लेख हमें किया जा चुका है । इन्हीं दिनों बंगालीयों ने 'पोर्ट' विशिष्टम आलेख की स्थापना हुई, और मिलकाइल हिन्दी और उर्दू के सम्बन्ध में कुछ हुए । मिलकाइल उर्दू के प्रेमी थे । 'पोर्ट' विशिष्टम आलेख में जब हिन्दी और उर्दू की कड़ी का उल्लेख किया गया, तब हिन्दी और उर्दू को गद्यप्रणाली प्रणाली में लेकर कहाँ गई । यह काम मिलकाइल की ही देखरेख में हुआ । मिलकाइल उर्दू की ही लिख्य भाषा समझते थे । किन्तु वे यह भी जानते थे, कि उर्दू लिख्य भाषा का आधार हिन्दुवी, और हिन्दुवी है । इसलिए वे हिन्दुवी या हिन्दवी को मध्यम भाषा मानते थे, पर उर्दू के आधार गद्य भाषा होने के कारण वे उसके मध्यम की स्वीकार करने के लिए विवश थे । अतः उन्होंने हिन्दी उर्दू की समस्त, तथा गद्यप्रणाली प्रणाली के विचार के लिए कुछ सुविधा की का बदलीय प्रणाली प्रणाली में 'सम्बन्धी भाषा, जो-सम्बन्धी, और जो-सम्बन्धीय प्रणाली में । सम्बन्धी भाषा, और जो-सम्बन्धीय में गद्य की प्रणाली लिखी । इनके बदलीय से आलेख में 'मिलकाइल नाम का एक क्षेत्र में प्रचार हुआ । इस प्रकार 'पोर्ट' विशिष्टम आलेख के प्रणाली में हिन्दी गद्य प्रणाली के क्षेत्र की ओर प्रसरण हुआ । किन्तु इसका यह कार्य कदापि नहीं है, कि हिन्दी गद्य की नींव 'पोर्ट' विशिष्टम आलेख के प्रणाली से पड़ी है । क्योंकि 'पोर्ट' विशिष्टम आलेख के प्रणाली के बहुत पूर्व हिन्दी सहोदरी में गद्य की नींव पड़ चुकी थी, और उनमें प्रणाली की प्रणाली भी हो चुकी थी ।

कोई विशिष्ट काल के इस प्रश्न को हम केवल प्रश्न मात्र ही कहेंगे । काल के अधिकारी हिन्दी को बना चाहते थे, इसलिए उन्होंने हिन्दी राष्ट्र के लिए मिलकराष्ट्र का प्रश्न उपस्थित किया, पर बहुत देखा जाय तो काल प्रवाह—प्रवाह का वास्तविक हिन्दी के पक्ष में नहीं था । काल के साथ ! हिन्दी राष्ट्र के सम्बन्ध मिलकराष्ट्र राष्ट्र के अन्तर्गत नहीं है । उन्होंने हिन्दी राष्ट्र के सम्बन्ध में जो कुछ भी प्रश्न किया, वह केवल हिन्दी के राष्ट्र के लिए होकर नहीं तो हिन्दी उनके लिए उद्देश्य नहीं । हिन्दी में कभी सम्बन्धितियों की ओर नहीं देखा । हिन्दी अपने सम्बन्ध में ही अपनी स्थिति से अलग हो रही है । मुसलमानों के सम्बन्ध में वह सदा अपनी सम्बन्ध स्थिति के क्षेत्र की ओर बढ़ती रही है । ईसाईयों के सम्बन्ध में भी हिन्दी की सदा सम्बन्ध के सम्बन्ध ही रहने लगे हैं । मिल करारष्ट्र का भी हिन्दी के प्रति कुछ इसी प्रकार का भाव था । कदा वह कदा मिलकराष्ट्र का पूर्ण होना, कि हिन्दी में राष्ट्र के ही सम्बन्ध का सम्बन्ध पूर्ण करने के द्वारा सम्बन्ध हुआ है । ऐतिहासिक रूपों से वह बात नहीं भोली प्रकट है, कि मिलकराष्ट्र के प्रश्न के बहुत पूर्व हिन्दी में राष्ट्र का भाव हो चुका था । कि हिन्दी मिलकराष्ट्र का प्रश्न कारण था, उनके कुछ पूर्ण हिन्दी विचारों केन्द्रों परास्त का केंद्र और सम्बन्धित भाषा में सम्बन्ध की कदा 'भुक्तान' नाम के लिए चुके थे । सम्बन्धित विचारों द्वारा कदा की ओर 'पानी केतली की बहानी' की स्थिति में था चुकी थी । १८२५ ई० में राजा राम मोहनराय ने एक वैदिकीय सम्बन्धित कदा का, किन्हीं भाषा से एक कदा है, कि मिल करारष्ट्र के प्रश्नों के पूर्व हिन्दी की ओर कि सम्बन्धित भाषा के रूप में सम्बन्धित होने लगी थी । कदा इस मिलकराष्ट्र के प्रश्नों की प्रश्न भाव ही कहेंगे । उनके प्रश्नों के हिन्दी राष्ट्र प्रश्न की सम्बन्ध में कदा सम्बन्धित हुए, पर कदा वह कदा कि कदा नहीं, कि हिन्दी राष्ट्र की सम्बन्ध उनके द्वारा कदा की ओर कदा की ओर सम्बन्धित है ।

हिन्दी राष्ट्र के लिए वह सम्बन्धित रूप था । इस रूप में हिन्दी राष्ट्र के लिए की भी प्रश्न हुआ, उसे हम सम्बन्धित ही प्रश्न कहेंगे । क्योंकि कदा उनके सम्बन्ध के रूप कदा का सम्बन्ध नहीं हुआ था, किन्हीं कारणों की ओर साहित्य के रूप पर सम्बन्धित होने है । हिन्दी राष्ट्र के इस सम्बन्धित रूप में कि राष्ट्रकारों ने हिन्दी राष्ट्र की सम्बन्ध में सम्बन्धित कहिये कोही है, उनके कदा कदास्तुत का, कदा द्वारा कदा की ओर, सम्बन्धित की ओर सम्बन्धित का नाम सम्बन्धित है । कदा सम्बन्धित भाषा और कदा पर सम्बन्धित का रूप इस सम्बन्धित की रूप कहेंगे ।

कदा सम्बन्धित का नाम सम्बन्धित रूप में हुआ था । वह सम्बन्धित सम्बन्धित रूप में, कदा की सम्बन्धित में एक सम्बन्धित रूप पर सम्बन्धित है ।

हुन्सी सरासुल वह उर्दू, पंजाबी, और हिन्दी कादि भाषाओं के बीच-
 सात बार में । लेखक के साथ ही साथ बलि भी में । इन्हींमें
 उर्दू और पंजाबी में भी कुछके लिखी हैं, और बकिरार्थ में भी हैं । इनका मुक्त-
 सागर सुप्रसिद्ध एक ग्रन्थ है । इन्हींमें एक और भी मुक्तक लिखी है, किन्तु वह अधूरी
 ही है । पंजाब में जमाना में वह चौकली ज़ेदखान प्रकाश करते गए, और ईश्वर
 की आराधना में बनारस श्रीवन्दन प्रकाश करने लगे । सम्भव १९२२ में इनका स्वर्ग-
 वास हो गया ।

मुन्शी सरासुल सात में अपने मुक्तकाल में साप्ताहिक भाषा का प्रयोग किया
 है । उन दिनों शिष्ट पदुराल में जो भाषा प्रचलित थी, वह संस्कृत मिश्रित थी ।
 उन्होंने इसी भाषा का प्रयोग करते करते किया है । पंजाबका प्रयोग भी इसी
 भाषा में मिलते हैं । इनकी भाषा में प्रभाव, और साप्ताहिकता बड़ी भीति दिखाई
 पड़ती है । इनका सम्भव यह है, कि इन्होंने किसी के निर्देश पर अपनी भाषा का
 गहन नहीं किया । इन्होंने उन दिनों शिष्ट काल में जो भाषा प्रचलित, और स्था-
 प्त देखी, उसी में अपने भाषी का सुजन किया ।

इन्सा जल्ला खॉ दिहली के रहने वाले थे, किन्तु जब दिल्ली में मुहम्मदाली का
 शासन उभड़ गया, उस के अन्तर्गत में आकर रहने लगे थे । हिन्दी में उनकी
 इत्तफाक़ खॉ लिखी हुई 'उदयपाल चरित ना रानी केरली की
 कहानी' प्रसिद्ध है । इन्सा जल्ला खॉ ने अपनी इस कहानी के लिखने का कारण
 बताते हुए लिखा है—'बहानी ऐसी बखिर, कि जिसमें हिन्दी कुछ और किसी
 बोली का कुछ न मिले ।..... हिन्दी वन भी न मिलते, और 'भाषावन' भी न
 हो । मैंने पहले सोच—अच्छे से अच्छे काल में सोचने चाहते हैं, यही का ज्यों
 वही हम जीत रहे, और ज़ूम किसी की न हो ।' इन्सा जल्ला खॉ के उद्देश्य के
 पता चलता है, कि वे हिन्दी, बर्खास्त देह हिन्दी के बहानी के, पर मातावन से
 बचना चाहते थे । उस दिनों अरबी-फारसी वाले उस हिन्दी को 'भाषा' कहते थे,
 जिसमें संस्कृत के अनेक शब्दों की प्रचुरता रहती थी, चाहे वह गढ़ हो, और चाहे
 कड़ी बोली हो । इन्सा जल्ला खॉ 'भाषावन' की भाँति अरबी-फारसी के प्रयोगों
 के भी बचना चाहते थे । उन्होंने रानी केरली की कहानी में जिस भाषा का प्रयोग
 किया है, उसमें सर्वत्र एक प्रकार दिखाई देता है । इन्होंने अपनी भाषा में भारतीय
 तीन प्रकार के शब्दों से बचने का प्रयत्न किया है—(१) संस्कृत के शब्दों से, (२)
 अरबी फारसी के शब्दों से, और (३) अपनी और जब के शब्दों से । इन प्रयोगों
 के कारण उनकी भाषा में कुञ्चिता का यह है । उनकी यह भाषा साप्ताहिक थी,
 इसलिए उनके बर्खास्त बोली उनकी भाषा को उद्देश्य भी न बन सका । इसके विपरीत
 सरासुल सात की वह भाषा, जो साप्ताहिक साप्ताहिक और प्रभावपूर्ण थी, रचना-अन्त
 में बर्खास्त आकर और सम्पूर्ण की पवित्रता बनी रही ।

सम्राट्ताहली आगरे के निवासी मुन्शी सासुल थे । उनका जन्म संवत् १८२६=

में, और मध्य समस्त रचनाएँ से हुई। हिन्दी गद्य-कथा में उनका 'प्रेम सागर' अधिक जगह हासिली प्रसिद्ध है। 'प्रेम सागर' की रचना कम भिन्नित कही कोली में की गई है। इन्होंने अपनी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों को न जाने देने का भरसक प्रयत्न किया है। उनका यह प्रयत्न उनकी भाषा में स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इन्हीं अलावा सौ की योगिता इनकी भाषा में भी प्रवाद की कमी, और अधिक विचित्रता है।

पं० सदाशिव चारा (चिह्नार) के निवासी थे। पीट विस्विम कावेज से उनका सम्बन्ध था। उन्होंने लल्लुलालकी के साथ एक कर, पीट विस्विम कावेज के अति-

पं० सदाशिव चारिणी की देखभाल से गद्य-रचना की; लल्लुलालकी से प्रेमसागर की रचना की, और इन्होंने 'आधिकेतिहासिक' का निर्माण किया। पर दोनों की भाषा में अधिक अन्तर है। लल्लुलालकी की भाषा में कहीं प्रभावभा के कर्मों, और सम्प्रदाय काय भाषा की वदमलियों के प्रयोग की अधिकता है, वहीं अधिक सदाशिव ने अपनी भाषा का निर्माण स्वाभाविकता की ही दृष्टिभूमि पर किया है। इन्होंने गद्य शक्ति कहीं कोली के शब्दों के प्रयोग का ही प्रयत्न किया है। लल्लुलालकी की कविता इनकी भाषा अधिक परिष्कृत, और व्यवस्थित दिखाई पड़ती है। पर पीट विस्विम कावेज में इनकी भाषा सादर की पेशिद्धी न बन सकी थी। कदाचित् इसका कारण यही हो सकता है, कि उनकी भाषा में हिन्दी गद्य की भाषा शैली के बीच निहित थे।

इस प्रकार हम देख सकते हैं अपनी अपनी भाषा, और शैली से हिन्दी गद्य के प्रचार और प्रसार में प्रयत्नशील सहायता दे रहे हैं। यद्यपि इनकी रचनाओं का साहित्यिक महत्व बहुत कम है, पर किन्ना ही साहित्यिक महत्व कम है, उतना ही ऐतिहासिक महत्व अधिक भी है। इनकी रचनाओं की भाषा और शैली से हिन्दी गद्य की भाषा और शैली के विकास पर दृष्ट दृष्ट प्रभाव पड़ता है। इन चारों लेखकों में दुम्पी लल्लुलाल, और पं० सदाशिव का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। मुन्ही लल्लुलाल, और पं० सदाशिव ने अपनी रचनाओं में जिस भाषा और शैली का प्रयोग किया है, उनकी कही भाषा और शैली अपने चल कर कर छुड़ कर अधिक साध-सुमरी और व्यवस्थित कर कर हिन्दी गद्य की परिष्कृत भाषा बनी है।

हिन्दी गद्य के विकास की पहली सीढ़ी

पिछले अध्याय में हमने उन प्रणाली पर प्रकाश डाला है, जिनसे हिन्दी गद्य के प्रचार में सहायता मिली है। इस अध्याय में हम उन प्रणाली पर प्रकाश डालेंगे, जिनसे हिन्दी गद्य के विकास में सहायता मिली है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है, कि पिछले अध्याय में जिन लेखकों की चर्चा की गई है, उनकी गद्य-रचनाओं का कोई मूल्या नहीं है। वास्तव में बात तो यह है, कि जिन लेखकों की चर्चा पिछले अध्याय में की गई है, हिन्दी के गद्य की विकास की कहानी उन्हीं से प्रारम्भ होती है। जब तक हिन्दी में जो गद्य-रचनाएँ हो चुकी थीं, उन्हीं के आधार पर आवश्यकतानुसार गद्य की रचना की जाने लगी। हिन्दी गद्य के विकास में सर्व प्रथम उन शिक्षा संस्थाओं से सहायकार्य प्राप्त हुई, जो उन दिनों अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के उद्देश्य से स्थापित की गई थीं, किन्तु इसके साथ ही साथ उन्होंने हिन्दी के पठन-पाठन की भी आवश्यकता अनुभव की थी। फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रणाली का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। १८२४ ई० में फोर्ट विलियम कॉलेज के पाठ्यक्रम में हिन्दी को विशेष रूप से स्थान दिया गया, और तुलसीदासजी के रामायण को पाठ्य ग्रन्थों में सम्मिलित किया गया। किन्तु इस कार्य में विशेष गति न हुई। बीते ही दिनों में हिन्दी के प्रति ठीक कॉलेज का दृष्टिकोण बरत गया, और हिन्दी को ठीक कॉलेज में ठीक-ठीक प्रोत्साहन न मिल सका। यह एक ऐसा समय था, जब अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के लिए स्कूल, और कॉलेजों की स्थापना हो रही थी। स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना के साथ ही साथ हिन्दी-गद्य की पुस्तकों की माँग भी बढ़ने लगी। सन् १८२६ ई० में आगरा कॉलेज की स्थापना हुई, और उसमें हिन्दी-शिक्षा के लिए प्रयत्न किया गया। स्कूलों और कॉलेजों में हिन्दी शिक्षा के प्रक्रम के साथ ही साथ पाठ्य ग्रन्थों के निर्माण के लिए भी प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। सन् १८३३ में इसके लिए 'आगरा बुक स्कूल सोसाइटी' की स्थापना की गई। इसके पूर्व १८२७ ई० में कलकत्ता में 'कलकत्ता बुक सोसाइटी' की स्थापना हो चुकी थी। इन संस्थाओं ने पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में प्रार्थकीय योग दिया। इन संस्थाओं की ओर से विभिन्न विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित की गईं, जिनमें कथा सागर, सूर्योद

इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने अपने, अपने-अपने, और छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह वही भाषा है, जो कुन्ही मराठवाड़ा और मालवा-राजपूरी की भाषा है। ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने-अपने में कुन्ही रूप से संस्कृत मिश्रित भाषा को ही अपना दिया है। उन्होंने उठ-कासीय शब्दों को भी उद्धृत किया है, किन्तु शब्दों-पदों के शब्दों को अपनी रचना से प्रत्यक्षीय रूप रखने का प्रयत्न किया है। इसका कारण केवल यही है, कि उन दिनों जब समाज में यही भाषा प्रचलित थी, और इसी का उपयोग था। किन्तु इस भाषा को उद्धृत किए हुए ईसाई धर्म प्रचारकों का वह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सका था, जिसकी योजना से उन्होंने अपनी पुस्तकों का प्रकाशन किया था।

जॉर्जेसो के सम्पर्क के देश में एक नये जीवन का प्रचार हुआ। जॉर्जेसो का राजन्य स्थापित होने के पश्चात् देश में कई ऐसे जॉर्जेस विद्वानों का आगमन हुआ, जिनमें जॉर्ज विनसे विचार बहुत ही कुलके हुए, और परिष्कृत थे। इन विद्वानों ने देश की नए जीवन की ओर जाने में महत्वपूर्ण सहायता की। उन्होंने शिक्षा के प्रचार में योग दिया, और महान् पूर्ण सामाजिक प्रचार भी किया। यद्यपि यह सब ही कुछ हुआ, ईसाई धर्म के प्रचार की ही ओर में हुआ, पर इससे कल्पित नहीं किया जा सकता, कि उसी देश की महान् पूर्ण सामन ही हुआ। एक और शिक्षा का प्रचार हुआ, और दूसरी ओर वैज्ञानिक मान्यता के फैलने में सहायता मिली। जॉर्जेसो के आगमन के पश्चात् से ही देश के जीवन वैज्ञानिक मान्यता का प्रचार हुआ है। देश में वैज्ञानिक मान्यता का प्रचार होने के कारण देशों की स्थापना की गई। सर्व प्रथम ईसाई मिशनरियों के हाथ ही देशों की स्थापना की गई। ईसाई मिशनरियों के हाथ देश का जीवन सुदृढ़ बना के प्रचार में सहायता मिली है। यहाँ तक कहा जाता है, उसके कारण पर यह कहा जा सकता है, कि सर्व प्रथम कलकत्ता, मिर्जापुर, राउला और आगम इत्यादि स्थानों में ईसाई मिशनरियों के उद्योग से देशों स्थापना की गई। ईसाई मिशनरियों के अने उद्योग के साथ एक साथ में योग दिया। उन्होंने स्वयं स्वयं में देशों की स्थापना उनके वैज्ञानिक मान्यता के वादों के अनुसार प्रकाशित किया। वैज्ञानिक प्रचार की ओरों और पुस्तिकाओं की उन्होंने श्रम कर प्रकाशित की। उनके एक कार्य की देश पर आगमन लोगों का स्थान को देशों की ओर आकृष्ट हुआ, यह सब देशों की स्थापना होने लगी, और हिन्दी एक-एक की ओरों से शुरू की लगी।

वक्तावर कला की खोजों की ही देग है। दोनों की स्थापना होने के बादकाँ
लोनों का ज्ञान वक्ताविरा की ओर आकृष्ट हुआ। हिन्दी में कम समय जिस पत्र के
द्वारा वक्ताविरा की कल्पा मिली है, वह कलकत्ते का 'उदय मार्गदर्श' था। 'उदय
मार्गदर्श' का प्रथम अंक १८९६ ई० की ३-वीं मई की प्रकाशित हुआ था। वह
प्रकाशित पत्र था। लक्ष्मण देव ने भी उस प्रकाशक बन चुका। १८९० ई० की
१४ दिसम्बर की इसका प्रकाशन बन्द कर दिया गया। इसका कारण हिन्दी पाठकों की

कही थी। उस समय बहुत कम ऐसे लोग थे, जिसके भीतर हिन्दी व्यापार पर बढ़ने की इच्छा थी। हिन्दी व्यापार सभी की ओर से बहुत दिनों तक लोभी के मन में उषेड़ा का वह भाव बना रहा, जिसके परिणामस्वरूप बहुत दिनों तक परम्परा का शासन हिन्दी-बोल में स्थायी न हो सका। 'उर्दू मार्गदर्श' के प्रकाश हिन्दी का जो दूसरा पर लिखता, वह 'बंगमूल' था। 'बंगमूल' का प्रकाशन १८२६ ई० की कड़ी खई को आरम्भ हुआ था। वह खैरेशी, बंगाल, हिन्दी और चारही चार भाषाओं में प्रकाशित होता था। इसके संभालकों में राजा राम मोहनराय ऐसे व्यक्ति थे। १८२८ ई० में कलकत्ते से ही 'प्रबोध' प्रकाशित हुआ। १८३० ई० में काशी के 'बंगमूल' पर लिखता। इसके सम्पादक राजा राममोहनराय सिन्हा थे। हिन्दी भाषा प्रवेश का यही प्रयास था। इसके प्रकाश १८३६ ई० में 'मार्गदर्श' का प्रकाशन हुआ। वह हिन्दी, उर्दू, बंगाल, खैरेशी, और चारही बीच भाषाओं में प्रकाशित होता था। इसके सम्पादक मीरसी नासिरुद्दीन थे। इसके प्रकाश ही हमें हमें सभी के प्रकाशन में सम्मिलित होने लगे, और सभी प्रकार के पर प्रकाशित होने लगे। सभी के प्रकाशन से हिन्दी बोल के प्रचार और प्रसार के सर्वोत्तम उद्देश्य पूर्ण।

मुगलों के शासन की समाप्ति के प्रकाश हमें हमें देश के भीतर खैरेशी का प्रभाव स्थापित हो गया। खैरेशी का शासन स्थापित होने के साथ ही साथ देश में खैरेशी शिक्षा पर जीवन का प्रारम्भ हुआ। पर जीवन के क्षेत्र में का प्रभाव और सर्वप्रकार खैरेशी ने ही सभी किया, वह था शिक्षा प्रकाश प्रचार में बहुत परिश्रम। खैरेशी शिक्षा के प्रचार की यही नीति मानते थे। बात सर्वप्रकार उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में ही परिश्रम किया। पहले वर्ष १८२६ ई० में एक कानून पास किया गया था, जिसके द्वारा देश के भीतर संस्कृत और चारही की शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान दिया गया था। पर एक समय के कुछ समयमान अवधि, जिसमें राममोहन मोहनराय प्रमुख थे, चारही और संस्कृत की शिक्षा के विरुद्ध थे। उनका समय था, कि देश में एक ऐसी शिक्षा प्रवृत्ति प्रवर्धित की जाए, जिसके देश के भीतर पर जीवन का आलोचक रहे। राममोहन मोहनराय ने खैरेशी की यही शिक्षा के लिए प्रचार करना ही प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने एक खैरेशी स्कूल की भी स्थापना की। इसके प्रकाश १८३४ ई० में ईश्वर इन्द्रिय कम्पनी के आदरितों के पास मातृमन में खैरेशी शिक्षा के प्रचार के लिए प्रचार्य पर सेवा गया। कुछ दिनों तक ही वह परामर्श-व्यवस्था में पड़ा रहा, पर इसके प्रकाश आदरितों की स्वीकृति प्राप्त हो गई, और खैरेशी शिक्षा के प्रचार के लिए देश में प्रचार किया जाने लगा। राममोहनराय इत्यादि मनीषियों के प्रभाव से कलकत्ते में हिन्दू धर्म की स्थापना हुई, जिसमें खैरेशी की शिक्षा के लिए प्रचार का से प्रचार किया गया। इसी प्रकार के हीर भी कई आलोचक स्थापित हुए। धीरे-धीरे खैरेशी के स्कूलों और कलेजों की संख्या बढ़ने लगी।

सैंगरेजी को मुख्य रूप से राज भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। सरकारी नौकरियों के लिए सैंगरेजी का ज्ञान अनिवार्य बना दिया गया; परिश्रम स्वल्प कुछ ही दिनों में, देश में चली और सैंगरेजी शिक्षा का प्रचार उभर उठा।

सैंगरेजी शिक्षा के प्रचार से, इसमें सन्देह नहीं, कि देश में नए आन्दोलन की लहर पैली, पर इसमें भी सन्देह नहीं कि यही सही सैंगरेजी शिक्षा का आधार बढ़ता गया, लोग भारतीयता की ओर से झुकने लगे। सैंगरेजी शिक्षा के प्रचार के साथ ही साथ सैंगरेजी सम्प्रदाय का प्रभाव भी देश के ऊपर छा गया। सैंगरेजी शिक्षा का प्रचार होने के पचास भी कुछ दिनों तक सफ़ल और चाली की सौभाग्यमय मिश्रण था। पर चोरे चोरे लोगों की दृष्टि संकुच और चाली की ओर से दूर गई। कुछ दिनों के पचास सरकार भी संकुच, और चाली की ओर से दूर रूप से उभर चली हो गई।

सैंगरेजी शिक्षा के महान के सुपरिचित से। के वह भी जानते थे, कि किसी व्यक्ति को दासता के बंधनों में बंधने के लिए भाषा के किस प्रकार सहयोग की था सैंगरेजी शिक्षा की कदमी है। हिन्दुस्तान में पैर बसाने के साथ ही साथ सैंगरेजी ने देश के सैंगरेजी शिक्षा का प्रचार करना बर्न का प्रचार आरम्भ कर दिया। सैंगरेजी शिक्षा के प्रचार के लिए सुरु, और अहम स्थापित किए गए। हिन्दुस्तान में सैंगरेजी का राज से राज प्रचार हो—इसके लिए सैंगरेजी ने सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए सैंगरेजी के ज्ञान की अनिवार्य बना दिया, परिश्रम स्वल्प लोग बड़े लोगों के साथ सैंगरेजी की ओर आकर्षित हुए। वह आकर्षण इतना अधिक हो गया हुआ, कि लोग अपनी अपनी भाषाओं की भूल कर सैंगरेजी करने लगे। चोरे चोरे देशी भाषाओं की ओर से लोगों की अनिच्छा बढ़ी गयी। इसका एक मात्र कारण यही था, कि देशी भाषाओं के उदय-पतन के ऊपर सैंगरेजी बात करने में सहायता नहीं मिलती थी; सैंगरेजी शिक्षा के प्रचार के ईसाई धर्म प्रचारकों ने ईसाई धर्म के प्रचार में अधिक लाभ उठाया। सैंगरेजी खुशी और चाली में सैंगरेजी शिक्षा के साथ ही साथ भारतीयता की भी शिक्षा दी जाने लगी। इसका परिणाम यह हुआ, कि नए शिक्षा प्राप्त भारतीय मुख्य देशी धर्म में संतुष्ट होने लगे। ईसाई धर्म प्रचारकों और सैंगरेजी की इस शिक्षा-नीति के कारण देश के चोरे चोरे अन्दोलन को बाधना बाधत हो गयी। इसी अन्दोलन की भावना का निष्पत्त स्वल्प वर्ष १८८० का सिवाही विद्रोह था।

सिवाही विद्रोह एक राजनीतिक कलकल बन गया। इस प्रकार के विद्रोह होने के पचास राजनीतिक प्रभाव का पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया। सैंगरेजी शिक्षा नवोदय पैदा के आन्दोलन में देश के मनीषियों ने यह देश की राजनीतिक, और सामाजिक नियति का अध्ययन किया, जो उन्होंने देश को एक ऐसे सत्तावरण और परिस्थिति में पाया, जो राजनीतिक आंदोल-

लोगों के लिए बिलकुल असुविधा था। अतः उनका ध्यान राजनीति की ओर से हट कर समाज की ओर गया, और समाज का संघटन किया जाने लगा। समाज में जो कुलतंत्रियाँ बुरा रही थी, उन्हें दूर करने के लिए प्रयत्न किया जाने लगा। जातीय संघर्षों को दूराने, और जातीय संघर्षों को कम देने का प्रयास होने लगा। जाति पद्धति, जैव नीति, और सामाजिक नियम मानों को दूर करने के लिए प्रयत्न होने लगा। सामाजिक विचारों और कुलतंत्रियों के निवारणार्थ कई संस्थाएँ और समाज संघित्तियाँ भी क्रियन्तव्य में आईं। अमान्यार गण और राजकाशों का प्रकाशन भी किया जाने लगा। नवीन मानों की प्रेरणा से कुलतंत्रियों की रचना भी होने लगी। इन्हीं दिनों कई ऐसे कानून भी बने, जिनके द्वारा सामाजिक कुलतंत्रियों के निवारण में सहायता प्राप्त हुई। इन कानूनों में कलौदाह, और सम्मानन विनियम इत्यादि कानून मुख्य थे। यद्यपि इन कानूनों के निर्माण में ईसाई धर्म-प्रचारकों का मुख्य हाथ था, किन्तु हमारे देश मान भी समझ नहीं, कि इनके द्वारा हिन्दू-समाज का अधिक सहाय्य ही हुआ है। इन्हीं दिनों भारत के शासन की राजकीय दृष्टि इतिहास कल्पनों के हाथों से निकल कर इस्लामीय को महाप्राणी के हाथों में गया। इस राजकीय परिवर्तन का प्रधान भारत के सामाजिक, राजनीतिक, और वैज्ञानिक जीवन पर प्रतीति रूप में पड़ा। इस परिवर्तन के पश्चात् ईंग्लैण्ड के वैज्ञानिक विचारशील जीनरेलों का राज्यमन भारतीयता में हुआ। उन्होंने अपने इतिहास में भारत के सामाजिक जीवन का अध्ययन करते वक्रे बहुत सील करने का प्रयत्न किया। जीनरेलों और गण विद्या प्राप्त भारतीयता के प्रधान से नवीन युग, और नवीन प्रेरणा की तरह हिन्दुधर्म के बीने बीने में दीड़ गई। इन्हीं दिनों जीनरेलों के प्रयत्न के विचार का रूप भी नर दण से भारतीयता में हुआ। ऐल और तम इत्यादि नर तथा उपलब्धी वैज्ञानिकों वाच्यों का अध्ययन देश के जीवन के साथ जोड़ा गया; परिणाम स्वरूप देश के जीवन, दण बीने से जीवन दूले बीने तक नया जीवन, और नई प्रेरणा उत्पन्नित होने लगी।

देश में नई प्रेरणा की लहर की दीड़ी, पर उनके साथ ही साथ हिन्दी के मार्ग में अठिनाइयों की उत्पत्ति हो गई। जीनरेलों विद्या का प्रचार होने के पश्चात् जीन-हिन्दी की लोपका ऐसी स्वरूप का प्रयत्न इस बात की जीन गया, कि अठाल्लों में किस माता की स्थान दिया जाय। पुस्तकों के शासन बाल में अठाल्लों अठाल्लों नाम नाम पायली माता और लालि में ही हुआ करते थे। पर अब पुन बदल गया था। अब पायली माता, और लालि के प्रति अठाल्ल में कोई अठिनाइय नहीं थी। पायली माता और लालि को बचकने में अठाल्ल की अठिनाइयों भी हुआ करती थी। अतः अठाल्लों माता का प्रयत्न जीनरेलों स्वरूप के नामने मुख्य रूप से उत्पन्नित हुआ। जीनरेलों में माता के प्रयत्न पर अली मॉडि विचार करते हर १८८६ में वह आदेश प्रचारित किया, कि अठाल्लों नाम लालि में देखी अठाल्लों का प्रयोग किया जाय। इन आदेश के अनुसार मुख्य मान में 'हिन्दी' को भी स्थान प्राप्त हो गया।

सादेस से 'नागरी' लिपि के प्रयोग पर तो और नहीं दिया गया था, पर इस बात पर अत्यन्त जोर दिया गया था, कि 'कोली' या माथा 'हिन्दी' होनी चाहिये। लिपि के रूप में नागरी, और फलनों की ही संख्या बढ़ाने की गई थी। पर मुसलमानों की ओर से सरकार के इस सादेस-बच का जोर विरोध किया गया। मुसलमानों की ओर से सब रूप में यह बात कही गई, कि कदालती भाषा के रूप में 'हिन्दी' की नहीं, उर्दू को स्थान मिलना चाहिये। मुसलमानों ने इसके लिए कड़ीहन भी किया किया। वरन् बिद्वान जैयरेज उर्दू की अनेक हिन्दी की ओपता की स्वीकार करते थे, पर फिर भी उन्होंने 'उर्दू' को ही प्रत्यक्ष दिया। येरी समय में इसके दो मुख्य कारण हो सकते हैं—(१) हिन्दी बहुमत की भाषा थी, इसलिए उसमें राष्ट्रीय और संस्कृतिक बीच विद्विष्ट थे। (२) हिन्दी का प्रचारा ने लोग कर रहे थे, जिनमें राष्ट्रीय भाव-नार्थ थी। वजहा १८५६ ई० में उर्दू की भाषा की कदालती भाषा के रूप में स्वी-कार कर लिया गया, और सम्पूर्ण अराजकी काम-काजी में उपयोग प्रचलन होने लगा।

सरासरी भाषा के रूप में उर्दू के स्वीकृत हो जाने पर सीधे निम्न होकर उसके पढ़न-पठन में कम बर । यद्यपि उर्दू और उसकी लिपि के प्रति किसी के मन में हिन्दी की दार्ढ्य का कर्षण न था, पर सरासरी काम-काज उर्दू में ही होते थे, इसलिए जोधिया के लिए सीधे में उर्दू बढ़ावा प्रारम्भ कर दिया । स्कूलों और कॉलेजों में भी उर्दू का प्रचार अधिक बढ़ा । हिन्दी एक प्रकार से दब ही गई । पर क्या हिन्दी बहालता की आकांक्षी जोगेरी का प्रचार द्वारा पूर्ण रूप से उपेक्षित होने पर भी हिन्दी कन्या की मोद में चलने लगी । किन्तु किसी उर्दू जोगेरी का प्रचार के द्वारा के राजने पर कुल पड़ी थी, उस दिनों हिन्दी का स्थान कन्या के हृदय में था । इसका कारण यह था, कि हिन्दी में भारतीय कन्या की संस्कृति और उसकी दुर्गा की राष्ट्रीय कल्पना उत्तरीय के सम्बन्धित मान्य और सुदृढ़ता की मान्य के रूप में स्थापित थी । उर्दू केवल सरासरी कामों पर ही होती थी, पर हिन्दी कन्या के बड़ बड़ के निमज्जली थी । जोगेरी द्वारा उपेक्षित होने पर भी हिन्दी कन्या केविनी के बीच में चलती-फुलती गयी । यद्यपि उसे संघर्षी मान्य के निमज्जना बढ़ा, यद्यपि उसके मार्ग में कनेधी निमज्जनाओं के दुर्गम होत पड़े, पर वह निमज्जना प्रचुर संघर्षी मान्य के निमज्जना कर, दुर्गम बढ़ाधी की बार करके जगति के क्षेत्र में प्रवृत्त हुई है, वह उसकी सामर्थ्य क्षमिता का लक्ष्य बढ़ा रहा है ।

हिन्दी गद्य का यह ज्ञानी आधुनिक काल था। पर काली आधुनिक काल में ही हिन्दी को अधिक कठिनाइयों का मार्ग मिले करता रहा। हिन्दी को प्रभावित हो गया ही नहीं, उल्टा विरोध पूरी शक्ति के साथ किया गया। उर्दू के पञ्चसिद्धों ने पञ्चसिद्ध हिन्दी को उल्टा के मार्ग में बढ़ा तबही दीवारों लड़ी कर दी थी। आखिर ही हिन्दी को दबाने का ही प्रयास कर रही थी। आखिर के समय में लिखने

शासन में, उस वक का उन्मूल उसने हिन्दी की उन्नति के विषय किया। उसने हिन्दी के लिए शराबखो और चाराखो का द्वार बन्द कर दिया। उस दिनें हिन्दी भाषा में जो समाचार पत्र निकलते थे, सरकार की ओर से उनकी पूर्ण रण से उपेक्षा की जाती थी। हिन्दी भाषा में बाकी, और हिन्दी के विद्वानों तथा वैदिकों की सरकारी नौकरियों में उदात्त स्थिति रखता जाता था। पर फिर भी हिन्दी की प्रगति निरन्तर जारी ही रही। सरकार की ओर से उपेक्षा मिलने पर भी हिन्दी की बलता की ओर से बाहर के लोग बलते रहे। अतः 'समय' सरकार की मन ही मन हिन्दी, और देवनागरी लिपि की उपेक्षा का कोन्धार करती थी, पर उसने अपनी इस धर्मी और उर्ध्व के लक्ष्यशियों के विरोध के कारण कभी हिन्दी की उन्नत उचित और व्यापक-हित नहीं न दिया।

हिन्दी के इस संकट काहीन इतिहास में राजाधिराजसद्विहित हिन्द का नाम विरहनामनीय रहेगा। किन्तु दिनें हिन्दी सरकार के द्वारा पूर्ण रूप से धर्म का प्रकाशन उपेक्षा होकर अपने जीवन के मार्ग पर चल रही थी, बाकी से हिन्दी में एक बलकार विरहता।

हिन्दी भाषा इस सरकार का नाम 'बलारत सरकार' था।

पर धर्म १८५६ में हीनो में लानकर प्रकाशित हुआ था। अतः इसकी भाषा उर्ध्व ही नहीं गई थी, पर उसके लक्ष्य देवनागरी के थे। यह बहुत ही साधारण दंग था था, और बहुत ही बलिष्ठ सामान्य पर लुप्त था। पर इसके हिन्दी की उन्नत प्रगति का पता चलता है, जो उस विरोध में भी उसके मोलर विवर्धन की। इस वक की भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों के बीच में हिन्दी के शब्द उर्ध्व, और बल की गति बलते थे। भाषा की दृष्टि से अन्तर सरकार में अरबी और फारसी के शब्दों की बहुलता नहीं थी। अन्तर के देवनागरी लिपि में लुप्त हुए बलारत सरकार का भाषा की भाषा, पर साथ ही उसे भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों की बहुलता करती। इस बहुलता का प्रतिकार 'सुभाकर' के प्रकाशन से किया गया। 'सुभाकर' का प्रकाशन कुछ हिन्दी वैदिकों के प्रकाश से किया गया था, किन्तु अन्तराष्ट्रिय विवर्धन का प्रमुख भाषा था। 'सुभाकर' की भाषा अन्तर सरकार के विरहित थी। अन्तर सरकार में वहाँ अरबी और फारसी के शब्दों की बहुलता थी, वहाँ सुभाकर में हिन्दी के शब्दों की अधिकता थी। हिन्दी के वैदिकों और विद्वानों ने सुभाकर का दूरन से लाना न किया। सुभाकर के प्रकाशन के दो वर्ष पचास वर्ष बाद १८५८ में बागरे के 'सुद्धि प्रकाश' नामक पत्र प्रकाशित हुआ, जो भाषा की दृष्टि से इन सब में अधिक प्रगति करी था।

अन्तर प्रकाशित प्रकाश विरहित हिन्द के नाम का उर्ध्व किया था हुआ है। राजाधिराजसद्विहित बाकी के नामनिष्ठ, और हिन्दी के अन्तर हीनो थे। अतः सरकार

राजाधिराजसाहब के हिन्दी की उपेक्षा करने में किसी प्रकार की खीर मिलावे हिन्दू खर न रखती। पर उसकी आन्तरिक शक्ति की वह भारी मूर्ति जानती थी। सरकार की वह चम्की उरध मातृसूत्र था, कि हिन्दी इस देश की जन भाषा है। जहाँ वह मग ही मग उसकी उपेक्षितता की भी स्वीकार करती थी। सरकार की उपेक्षा के प्रति कभी कभी हिन्दी लेखकों की खीर में टीका-टिप्पणी की हुआ करती थी, परित्याग स्वभाव सरकार ने हिन्दी की सरकारी वादालता में स्थान दिया। हिन्दी की वाक्य पुस्तकों में सामान्य और सीम कातर ऐसी धार्मिक पुस्तकों को स्थान दिया गया, पर इस बात का अर्थ नहीं किता गया, कि प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दी की अधिक उपेक्षा हो। इन्हीं दिनों राजाधिराजसाहब मिलावे हिन्दू का सिद्ध विभाग में कामकाज हुआ। राजाधिराजसाहब हिन्दी के पुर्न वद्वतायी में। वे स्वयं लेखक थे, और सुद्ध संस्कृत मिश्रित भाषा लिख सकते थे। उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की है, जिनमें मानव धर्मसार, सीम बलिह के पुर्न सुद्धासीक, 'अधर्मिकसार' भूगोल इत्यादिक, वाक्य धर्मसार, आह्वितियों का कोट, विद्याधुर, राजाधीन का रचना और वद्वतायी इत्यादि आधिक प्रसिद्ध है। इन पुस्तकों में उन्होंने लिख भाषा का प्रयोग किया है, वह संस्कृत मिश्रित है। इन पुस्तकों की भाषा से वह भी बता सकते हैं, कि राजा साहब की भाषा पहले ही संस्कृत मिश्रित होती थी, पर वह बीरे बीरे करती और चाली मिश्रित उर्दू की खीर सुनती गई है। उनकी कुछ आखिरी पुस्तकों में सिद्ध उर्दू का ही प्रयोग हुआ है। इतिहास लिखि नाटक के, जिनकी रचना उन्होंने सन् १८८४ में की थी, सिद्ध उर्दू का ही प्रयोग हुआ है। इतिहास लिखि नाटक और उक्त पुस्तकों की भाषा में अधिक अंतर है। इन पुस्तकों में जहाँ संस्कृत मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है, जहाँ इतिहास लिखि नाटक में करती करती की नींद में लगी हुई उर्दू ही दिखाई देती है। इसका ही नहीं, राजाधिराजसाहब उर्दू की वद्वतायी भी करने लगे थे। वे उर्दू की हमारे सुद्ध की सुद्ध भाषा के रूप में अधिक आदर और अधिक आदरान भी देते थे।

४. बात विचारणीय है, कि राजाधिराजसाहब की भाषा में वह परिवर्तन क्यों कर उपस्थित हुआ। राजाधिराजसाहब सरकारी कर्मचारी थे। वे सिद्धा-विभाग में सुद्ध-वेक्टर के पद पर सिद्ध थे। वे हिन्दी और देवनागरी लिपि के वद्वतायी थे। उनमें सरकारी पद का प्रविक्षित होने के पदवाह ही वह परिवर्तन उपस्थित हुआ है। इस परिवर्तन का कारण, ही सकते हैं, सरकार की नीति, और समय की प्रति हो। उस समय सरकार की नीति सरकारी-धरती के वद्वतायी की नीति थी। इसका ही नहीं, उस दिनों कर्मचारी में उर्दू का लेख बल था। उन दिनों नहीं सीम अर्थात् कर सकते थे, जो उर्दू के विद्वान होते थे, या जो उर्दू जानते थे। ऐसा लगता है, कि राजा-धिराज साहब ने सरकारी नीति और समय की प्रति से ही प्रभावित होकर उर्दू में रचनाएँ की हैं। क्योंकि उनकी उर्दू की रचनाओं में भी उनका देवनागरी का प्रेम अत्यंत रूप से वर्तमान है। उनकी भाषा उर्दू आधुनिक है, पर उनकी लिपि देवनागरी

हो है। इससे पता चलता है, कि राजाधिराजराज ने जौनपुरी कदम्बर की भाषा नीति से प्रभावित हो करके जो कानूनी भाषा में परिभाषित किया है। उन दिनों शिक्षा-विभाग ने उन्हाही या जौनपुर ही कदम्बर नाम दिया करते थे। जौनपुर कदम्बरों की दृष्टि में हिन्दी एक वैयक्त भाषा थी। फिर राजाधिराजराज हिन्दी का एक केंद्र ले सकते थे। उन्होंने नहीं किया, जो उन दिनों एक राजमार्ग कर सकता है। उन्होंने अपने मन्त्रमन्त्रों की दृष्टि के अनुसार, जहाँ एक ही दशा, अपने भाषा की उर्दू के बन्धन से दाला, और उसे संस्कृत या हिन्दी के उर्दू से दूर रखा। राजा राजा की भाषा का कदम्बर निम्नलिखित शीर्षकों में देखिए—'सुलोक का भाई मन्त्रमन्त्र का मित्राज सुलोक या, राजाधिराज का सुलोक सुलोक, सुलोक या, कि सुलोक और मित्राज के घर के और की वेदमन्त्र कदम्बर है।' पर संस्कृत मिश्रित भाषा का जो प्रचार था, उसकी प्रति मन्त्र न हुई। इस कदम्बरों को दे करती-राज्यी मिश्रित भाषा पढ़ती रही, और अगर उस भाषा का प्रचार भी जारी रहा, जो संस्कृत मिश्रित थी।

कदम्बरों नीति के कारण राजाधिराजराज विचारें हिन्द ने कानूनी भाषा की उर्दू के नीति से कदम्बर दाला; पर इसमें कदम्बर नहीं, कि उनके द्वारा हिन्दी का अधिक कदम्बर हुआ। हिन्दी के पक्ष में उनके द्वारा जो कानूनी अधिक मन्त्रमन्त्र वात हुई है, वह है देवनागरी लिपि का प्रचार। भाषा के स्थान में उर्दू को पढ़ा जाने पर भी उन्होंने देवनागरी लिपि और कदम्बरों पर अधिक धन दिया। इस सब की इस सब कह सकते हैं, कि उन्होंने हिन्दी भाषा के एक मन्त्रमन्त्र शीर्षक—लिपि के प्रचार में मन्त्रमन्त्रों के प्रचार किया। उन्होंने हिन्दी की कदम्बरों वातमन्त्रों में स्थान दिखाने के लिए प्रचार किया, वह भी एक फिर कदम्बरों वात है। कदम्बरों में हिन्दी की अधिकृत करने के प्रचार उर्दू के कदम्बरों का एक बात के लिए दृढ़ प्रचार था, कि हिन्दी की कदम्बरों वातमन्त्रों में भी स्थान न मिले। इस प्रचार के प्रचार करने वाली है कदम्बर कदम्बर का प्रचार पुराने स्थान था। पर कदम्बरमन्त्र और उनके कदम्बरों ने कदम्बरों वातमन्त्रों से हिन्दी की अधिकृत करने में देवी-बोली का स्थान एक कर दिया। उन दिनों राजाधिराजराज विचारें हिन्द की एक देखें थे, उन्होंने हिन्दी के लिए मुल्लामन्त्रों के निर्माण का सामान किया। कि प्रचार कदम्बर कदम्बर कदम्बर के निम्न कदम्बर के साथ थे, उन्ही प्रचार राजाधिराजराज प्रचार विचारें हिन्द की कदम्बरों और कदम्बरों समेत करने थे। बात यह उन्होंने हिन्दी के पक्ष में कदम्बर उर्दू, उन जौनपुरी कदम्बर के सामने भाषा की होकर एक कदम्बरमन्त्र प्रचार उर्दू ही गया। जौनपुरी कदम्बर मुल्लामन्त्रों की पीठ कदम्बर कदम्बर कदम्बरों की, पर वह एक बात का कदम्बर नहीं कर सकती थी, कि राजाधिराजराज देवी कदम्बरों की बात की कदम्बरों करे। बात हिन्दी और उर्दू की होकर एक कदम्बर का प्रचार ही गया। एक कदम्बर में कई कदम्बरों ने भी प्रचार किया, किन्तु 'कदम्बरमन्त्र' का प्रचार स्थान है। कदम्बरमन्त्र एक कदम्बरों प्रचार न, जो देखें हैं किन्तु कदम्बरों का कदम्बरमन्त्र था। उन्होंने हिन्दी के निर्माण में

खुल कर सरसैयद अहमद का साथ दिया। उसने हिन्दी के विरोध और उर्दू के पक्ष में पुस्तक लिखी, तथा समाचार पत्रों में वक्तव्य भी निकाले। देशी मुसलमानों की ओर से भी उर्दू के पक्ष में अधिक प्रयत्न किया गया। इस विवाद से हिन्दी का अधिक कल्याण ही हुआ। ज्यों ज्यों हिन्दी और उर्दू को लेकर विवाद बढ़ता गया त्यों त्यों हिन्दी की वैज्ञानिकता लोगों के सामने आती गई। इस विवाद से उन लोगों के भीतर प्रगति भी उत्पन्न हुई, जो हिन्दी के पक्षपाती थे। अतः हिन्दी और उर्दू के इस विवाद को हम हिन्दी के लिए एक वरदान ही मानते हैं।

हिन्दी गद्य—प्रथम प्रवास

हिन्दी गद्य के जन्म काल में उसे अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। हिन्दी और उर्दू के पारस्परिक विवाद से कदापि हिन्दी का अधिक कल्याण ही हुआ। हिन्दी का विरोध है, पर यह तो सत्य ही है, कि हिन्दी को बड़े बड़े विद्वानों और वाक्ताव्यों की सादर्यों पार करनी पड़ी है। हिन्दी ने कम शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया, तब मुसलमानों के कान खड़े हो गए। उन्होंने संमिश्रित रूप से हिन्दी का विरोध करना प्रारंभ कर दिया। हिन्दी पर बड़े बड़े लांछन लगाए गए। उसे 'गैरशुद्ध बोली' और भाषा के नाम से सम्मिश्रित किया गया। इतना ही नहीं, इस बात का भी विद्वानों को डर लगा, कि हिन्दी साम्प्रदायिक भाषा है। मुसलमानों की ओर से, साधारण रूप से इस बात का प्रचार किया जाता था, कि हिन्दी हिन्दुओं की मक-हूयी ब्रह्मण्य है। मुसलमानों की दृष्टि में हिन्दी एक ऐसी 'भाषा' थी, जिसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता थी, और जो मुसलमानों के लिए अधिक मुश्किल थी। अतः मुसलमान प्राचक्ष्ण से हिन्दी के विरोध में जुटे हुए थे। कुछ अँगरेज अधिकारी भी मुसलमानों की 'हँ' में 'हँ' मिला रहे थे। उन दिनों शिक्षा-विभाग में मुसलमानों और अँगरेजों का ही आधिपत्य था। अतः यह कहने में रस मात्र भी सम्भ्रम नहीं लायक होता, कि वह समय हिन्दी के संकट का समय था। ऐसे दौर संकट के समय में हिन्दी की रक्षा राजाशिवप्रसाद सितारे हिन्द ने बढ़ी लम्बवटा, और बुद्धि-मानी के साथ की।

राजाशिवप्रसाद सितारे हिन्द उन दिनों शिक्षा-विभाग में इन्स्पेक्टर के पद पर नियुक्त थे। उन दिनों हिन्दुओं, और हिन्दी-प्रेमियों में राजाशिवप्रसाद सितारे राजाशिवप्रसाद हिन्द ही एक ऐसे थे, जिनका अँगरेजों के विरुद्ध सितारे हिन्द की अधिक सम्मान था। राजाशिवप्रसाद के ही उद्योग से बुद्धिमानों हिन्दी को सरकारी पाठ्यक्रमों में स्थान प्राप्त हुआ। मुसलमान प्राचक्ष्ण से हिन्दी के उस रूप का विरोध कर रहे थे, जिसमें संस्कृत के शब्दों का अधिक था। मुसलमानों के इस तीव्र विरोध के कारणवश, राजाशिवप्रसाद सितारे हिन्द के लिए वह अधिक कठिन कार्य था, कि वे स्कूली पुस्तकों में उस हिन्दी को स्थान देते, जो संस्कृत मिश्रित थी। एक ही उन दिनों सरकार की नीति ऊपर

राष्ट्रीय मिथित उर्दू के लक्ष्य में श्री. और दूसरे मुसलमान संगठित मिथित हिन्दी का विरोध कर रहे थे, इसलिए सभासिद्धान्तकार मिर्ज़े फ़िदमे बुद्धिवादी, श्री चन्द्राई के साथ लिया। उन्होंने हिन्दी की नींव को मजबूत करने तथा उसके प्रचार के लक्ष्य से उसके स्वल्प को परिचरित किया। उन्होंने हिन्दी को संस्कृत के लक्षि से सिखाया कर एक बड़े लक्षि में दावा, किसे हम उर्दू हिन्दी का सीधा कद रखते हैं। उन्होंने अपनी इस भाषा में संस्कृत के शब्दों के स्थान पर राश्ट्रीय के चलते हुए शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने इस भाषा में 'सब' की पुस्तकें लिखीं, और दूसरे व्यक्तियों के भी पुस्तकें लिखवाई। उन्होंने सत्यमेव जयते पर पुस्तकें लिखने के साथ ही साथ किन्ना कन्नड़ी पुस्तकें भी लिखीं। उनकी पुस्तकों में राश्ट्रीयता का जयन्ता, मोरारिद का दृष्टांत, और 'साधविषी का खेड़ा' इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं।

राधाशिवदासदास मिलाने हिन्दू की भाषा ही प्रचार की है—संस्कृत मिश्रित, और फारसी मिश्रित। उन्होंने अपने 'वाक्य बर्गीकरण' में संस्कृत मिश्रित भाषा का ही प्रयोग किया है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—समुच्चयित हिन्दुओं की मुख्य धर्म भाषा है। उनकी कीर्ति की हिन्दू समाजवादि नहीं कह सकते। वे इस भाषा की इस राधाशिवदासदास की वाक्यनिष्ठा भाषा नहीं कह सकते। क्योंकि राधाशिवदासदास प्रारम्भ के ही ठेठ हिन्दी के बख्शानी थे। उनकी दूसरी प्रकार की भाषा फारसी मिश्रित है। शिक्षा विभाग में इन्फेक्टर के पद पर प्रतिष्ठित होने पर उन्होंने इसी भाषा का प्रयोग किया है। उनकी इस भाषा का अर्थान्त, पहले दिया जा चुका है, और इस बात पर भी प्रभाव डाला जा चुका है, कि उनकी भाषा में वह परिवर्तन नहीं कर उपरिष्ठत हुआ। अर्थात् विषय सम्बन्धी मुल्लों में फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करने पर भी देखा जाता है, कि राधाशिवदासदास मूल्यी मुल्लों में ठेठ हिन्दी के ही बख्शानी थे। उन्होंने अपनी मुद्रिका में, जो राधाशिव की एक वाक्य-मुद्रिका थी, ठेठ हिन्दी का प्रयोग किया है, पर इसके पश्चात् उनका दृष्टिकोण निकटतम प्रभाव हुआ प्रतीत होता है। 'मुद्रिका' के पश्चात् उन्होंने दृष्टिकोण और मूल्य की भी मुद्रिका लिखी है, उनकी भाषा में उन्हें भी ही प्रभाव डाला है। राधाशिव की भाषा में वह परिवर्तन नहीं हुआ—इसके कारणों पर बहुत कुछ अन्वेषण पहले वाला जा चुका है।

राधादिवाक्यात् सिद्धये हिन्दू के कल्प में ही कुछ और लोगों ने खुली पुस्तकें लिख कर हिन्दू गण के ज्ञान के सर्वसमीप सेवा दिया। इन लोगों ने पं० बंशीधर, सिद्धये हिन्दू के पं० श्रीलाल, पं० विहारी लाल, और पं० श्रीलाल सहयोगी को का नाम आदर से लिखा था कहा है। पं० बंशीधर आगरा दार्शनिक स्कूल के सम्भावक थे। उन्होंने पाठ्य पुस्तकों के रूप में कई सिद्धये लिखी थी, जिनमें पुष्पवाक्यान्त, महात्मनीय दृष्टिकान्त, अमल कृतज्ञ, और श्रीविद्या परिचारी का मुख्य स्थान है। पं० श्रीलाल ने 'पंच साहित्य' की रचना की थी।

विद्यारत्नजी ने 'तुलसीदास' का हिन्दी में अनुवाद किया था। पं० बट्टीलाल ने 'सिद्धान्त संवाद' और 'उपदेश पुष्पकली' की रचना की थी। किसी-किसी का मत है, कि हमोंने विवेकानन्द का हिन्दी में अनुवाद भी किया था।

इन पुस्तकों को भाषा का प्रतिनिधित्व रामदासदासद्वारा लिखे हिन्द की भाषा पर रही थी; क्योंकि इन पुस्तकों में भी अपनी सारी मिलित भाषा का ही प्रयोग हुआ था। भाषा की दृष्टि से इन पुस्तकों की उपवीक्षित मते ही हीन घेरे की हो, पर हमने नहीं नहीं, कि हिन्दी नाम के प्रचार से इन पुस्तकों और उनके लेखकों के प्रसंगीय सहायकों कात हुई है।

किन्तु बंगाल के रामदासदासद्वारा लिखे हिन्द की भाषा को स्वीकार न किया। रामदासदास की अपनी अपनी विभिन्न उर्दू भाषा को देखकर बंगाल के भीतर हिन्दी नाम—और प्रतिस्पर्धाले उत्पन्न हुई। बंगाल अपनी भाषा को रामदासदासद्वारा पाली प्रतिस्पर्धाले थी। वह यह समझी तरह जानती थी, कि उसके देश की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सम्पत्ति किस भाषा में सुरक्षित है। रामदासदासद्वारा लिखे हिन्द की भाषा को देखकर बंगाल के भीतर की प्रतिस्पर्धाले हुई थी, उनके प्रतिष्ठान सम्पत्ति की 'तुलसीदास' और बंगाल से 'तुलसीदास' का प्रकाशन सम्पन्न हुआ था। इन दोनों व की भी भाषा बहुत ही परिष्कृत और संस्कृत मिलित हिन्दी थी। 'तुलसीदास' की भाषा में परिष्कृत, सम्पत्ति अधिक परिष्कृत से है। 'तुलसीदास' की भाषा का सम्पत्ति मिश्रित संस्कृति में देखिए—

'किसी में कलेश और यज्ञा और प्रतिस्पर्धाले वह सब सुद्ध नहीं से उत्पन्न कि, केवल किता की मूल्य है, जो वह भी हो की किसी अपने करे सुद्ध से पुन लकरी है, और लकरी को लिखना बढ़ाना केवल अपने मत लकरी है, केवल दूसरे से नहीं। वह सब उर्दू का है, कि किता के कारण सम्पत्ति में लकरी की पुन पुन से बनाने और लकरी-लकरी किया उर्दू लिखने।'

इस प्रकार बंगाल की ओर से रामदासदासद्वारा लिखे हिन्द की भाषा के विरोध में उत्पन्न भाषा का सम्पत्ति सम्पत्ति उत्पन्न किता नाम। केवल नहीं द्वारा ही नहीं, बल्कि सम्पत्ति के द्वारा की रामदासद्वारा की लकरी भाषा का विरोध किता नाम, और उसके लकरी में उस भाषा की उत्पन्न किता नाम, की लकरी की सम्पत्ति भाषा की। इन लकरी में रामदासदासद्वारा का नाम अधिक महत्वपूर्ण है। किन दिनों रामदासदासद्वारा लिखे हिन्द की अपनी-अपनी विभिन्न उर्दू का प्रकाश न हो रहा था, उर्दू दिनों रामदासदासद्वारा रंग रंग पर लकरी। रामदासदासद्वारा का जन्म वर्ष १८२५ से १८५५ तक माना जाता है। रामदासदासद्वारा ने लकरी लकरी में रामदासदासद्वारा लिखे हिन्द की भाषा का विरोध किया। हमोंने किसी और उर्दू की पुस्तक को प्रकाशित करते हुए कहा—'हिन्दी और उर्दू की दोनों लकरी लकरी है। कुछ अवश्य नहीं है, कि अपनी अपनी के लकरी के किता हिन्दी न लकरी नाम, और न इन किता नाम की हिन्दी लकरी है, किसी अपनी-अपनी के लकरी

करे है।' राजाजयसिंहजी ने केवल शैक्षिक विरोध ही नहीं किया, बल्कि उन्होंने सामाजिक हिन्दी का स्वल्प भी सामने उपस्थित किया। उन्होंने 'कालिदास' के चरित्र का हिन्दी में अनुवाद किया, जिससे 'वेदव्यास' और 'समिधान्त सांख्यिक' का उनका अनुवाद सर्वश्रेष्ठ भाषा जाता है। अपनी इस अनुवाद कृतियों में उन्होंने हिन्दी के सांस्कृतिक स्वभाव को उपस्थित करने का भार एक प्रयोग किया है। 'समिधान्त सांख्यिक' की भाषा की मूल्य विमर्शित पंक्तियों में देखिए:—

'अनुवाद—(श्रीशिवचन्द्रा के) सभी मैं भी इसी क्षेत्र-विचार में हूँ। सब इसके कुछ पूर्ण की, (अथवा) महान्ता तुम्हारे बहुत बचने के विचार में स्वल्प वेद की वेद पूर्ण को जानता है, कि तुम किन्तु स्वल्प के प्रत्यक्ष ही और किन्तु वेद की प्रकाश की विचार में मर्यादित क्षेत्र नहीं बनने दो।'

इस प्रकार राजाजयसिंहजी ने हिन्दी के सांस्कृतिक स्वभाव को सामने रखने का प्रयोग प्रारम्भ किया। यद्यपि उनकी भाषा में पूर्ण विद्यमान है, क्योंकि उनकी भाषा में भी नहीं क्षेत्र है, जो उनके पूर्व के क्षेत्रों की भाषा में है। पूर्व के क्षेत्रों की शक्ति उनकी भाषा की स्वभाव से मुक्त नहीं हो सकती है, पर उन्होंने अपनी भाषा में हिन्दी के सांस्कृतिक स्वभाव को उपस्थित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया है। उनकी भाषा के लक्ष्य उनकी ही मर्यादा नहीं है, पर उन्होंने अपनी भाषा से अपनी-प्राणी के सभी को दूर रखने का प्रयत्न किया है। उन्होंने प्रयोगों की अपनी भाषा में संस्कृत के व्यावहारिक सभी को ही मान लिया है। संस्कृत के व्यावहारिक सभी के ही कारण उनकी भाषा अधिक शुद्ध, स्वच्छ और परिभाषित है। राजाजयसिंहजी की इस संस्कृत विहित भाषा के दो परिणामों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। श्रीशिवचन्द्रा एक क्षेत्रों के विचार में, जो संस्कृत के प्रत्यक्ष क्षेत्रों में। राजाजयसिंहजी की भाषा की उन्होंने भूमि-भूमि प्रयोगों की भी। वे इसी भाषा को भारत की मुख्य भाषा मानते हैं। वे यह नहीं चाहते थे, कि भारतीयों पर ऐसी भाषा लादी जाए, जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध हो। उन्होंने अपने एक क्षेत्रों के क्षेत्र में अपने विचार की निम्नलिखित रूप में प्रकट किया है—'प्राणी विहित हिन्दी (अथवा उर्दू वा किन्तुसानी) के कारणों की भाषा बनाए जाने के कारण उसकी नहीं उचित हुई, इसके कारणों की एक नई भाषा ही नहीं हो सकती। परिणामस्वरूप प्रयोग के विचारों की नई भाषा नहीं जाती है, इसे एक क्षेत्रों की भाषा की नई मर्यादा में क्षेत्रों के लिए विचार किए जाते हैं।'

कहना न होता, कि राजाजयसिंहजी की भाषा का अपनी और भारत किया गया। यद्यपि उनकी भाषा में पूर्णत्व नहीं, यद्यपि वे यह स्वयं मानते हैं, कि उन्होंने किन्तु भाषा को सामने उपस्थित किया है, अपने प्रयोगों, विचार, और अपने स्वयं राजाजयसिंहजी के कार्य नहीं लिये जा सकते, फिर भी राजाजयसिंहजी द्वारा हिन्दी की भाषा के प्रयोगों में उनकी नई प्रकृति अधिक प्रत्यक्ष की गई, जो संस्कृत विहित की। दो प्रमाण हैं, प्रमाण प्रमाण यह है, कि उनकी इस भाषा में उपस्थित

भाषा का प्रयोग मिलता है, जो संस्कृत मिलित है। राजाराममोहनराय के बचपान् भाषा' समाज से ही इस संस्कृत मिलित हिन्दी को अधिक बल प्राप्त हुआ है। भाषा' समाज से बल प्राप्त करने के बचपान् इस भाषा का प्रवाद इतना पैरा पूर्ण हो गया, कि उसके बारे में विशेष करने काग ही उसके भीतर निश्चय हो गया।

जब यह लिखा था कुछ है, कि बीमारी की शिक्षा के प्रचार के साथ ही भाषा देश के भीतर फैलाए जाने की जरूरत पड़ी। हिन्दू समाज काही निहा से ही रहा था।

भाषा समाज के ईसाई धर्म प्रचारकों ने हिन्दू समाज को इस विधि से पैरा और हिन्दी भाषा उठाना प्रारम्भ कर दिया। वे ही ईसाई धर्म-प्रचारकों ने बारे देश में ईसाई धर्म के प्रचार का बाध फैलाया था, पर बंगाल में उनके इस बाध का प्रभाव लोगों पर नहीं हुआ के साथ यह रहा था। कई बंगाली बंगालियों ने ईसाई धर्म प्रचारकों की बातों से प्रभावित होकर ईसाई धर्म की पंथा ले ली। इसका ही नहीं, बाचपान् समाज के ऊपर भी पड़े। ईसाई धर्म का प्रभाव पहले लगा। ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव की देख कर उन महापुरुषों के भीतर अनमन्यताएँ उत्पन्न हुई, जो हिन्दू समाज के साथ थे। उन्होंने हिन्दू समाज से पैरदा उल्लेख करने के लिए बाध समाज की स्थापना की। बाध समाज की स्थापना की। बाध समाज की स्थापना करने वाली ने राजाराममोहनराय प्रमुख है। पहले बाध समाज बंगाल तक ही सीमित था, और उसके धर्म प्रत्य फैलने पैरदा भाषा में ही लिखे गए थे। उल्लेखान् यह अनुभव किया गया, कि फैलने पैरदा भाषा के बढ़ने से बाध समाज का प्रचार प्रत्यर्थन से नहीं किया जा सकता, इसके लिए हिन्दी का आशय सीखनीय है; परिणाम स्वरूप बाध समाज के नेताओं ने अपने विद्वानों के प्रचार के लिए हिन्दी का आशय प्रवाद किया। बाध समाज के धर्म बाध में इसे बात का अनुभव राजाराममोहनराय ने भी किया था। उन्होंने इसी बात को ध्यान में रखा कर बाध समाज के धर्म बाध में ही हिन्दी में विद्यार्थियों प्रचारित की थी। इसका ही नहीं, उन्होंने हिन्दी के समाचार पत्रों की प्रोत्साहन भी प्रदान किया था। हिन्दू राजाराममोहनराय के बचपान् बाध समाज के जो पैरा हुए, वे इस बात की भूत गए थे, जिसके परिणाम स्वरूप कुछ दिनों तक बाध समाज केवल बंगाल तक ही सीमित रहा। नन्ही मनीष कन्दराय ने बाध समाज की बंगाल की सीमा से निजात कर उसे भारतीय धर्म के रूप में परि-रूप करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इसके लिए हिन्दी का आशय प्रवाद किया। धर्म प्रथम उन्होंने पंथान को अपना धर्म क्षेत्र बनाया। पंथान उन दिनों उर्दू का दुर्ग था। तब: कहा जा होता, कि हिन्दी का आशय प्रवाद करने बाध समाज के प्रचार में किसी कठिनताओं का सामना करना पड़ा होता। पर ऐतिहासिक तथ्यों से पता चलता है, कि वस्तु विशेषों के होने हुए भी कवीरामन्यराय ने हिन्दी के बढ़ने करने बाध समाज के विद्वानों का प्रचार किया। उन्होंने बाध समाज के विद्वानों के प्रचार के लिए ही उल्लेख है- में 'ज्ञान प्रदीपिका' अधिक लिखायी,

एक दृष्टि थी। उसकी कक्षा को चुन कर लोग मन-मुग्न हो हो जाते थे। वे अपनी कक्षा में समावन और महाभाग की कक्षाओं का आलोचना करते हिन्दू धर्म की भेदभा की प्रमाणात करते, और हिन्दू धर्म पर आक्रमण करने वालों को असाध्य उत्तर देना करते थे। उनकी कक्षाओं को चुनने के लिए दूर-दूर से लोग एकत्र होते थे। हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रचार के लिए उन्होंने स्वयं-स्वयं पर समर्थ और समर्थियों की प्रार्थना की थी।

वे असाध्य कुलीनी में किए उत्तर कक्षा में रहते थे, उनकी प्रथा अपने जीवन दृष्टि की थी। वे हिन्दी के जीवन में थे। वे ही उन्होंने अपनी कुछ पुस्तकें प्रकाश कीं और उन्हें वे भी लिखी हैं, पर उन्होंने अपने कुछ अपनी की रचना हिन्दी में ही की है। उनके मन में असाध्य प्रथा, जीवन विविधता, एक ही मन, धर्म प्रथा, और असाध्य संसार काटि कटिप्राप्त है। 'असाध्य' नामक उन्होंने एक सामाजिक उपन्यास की भी रचना की है। वह उपन्यास उन दिनों दार्शनिक जीवन विमर्श का था। वह बताता है, कि उन्होंने और ही दुष्टों का जीवन कुछ भी लिखा था, पर वह आज तक प्राप्त नहीं हो सका है। यह-रचना करने के साथ ही साथ उनमें यह-रचना की भी दृष्टि थी। उनके द्वारा उचित लोगों का एक संसार उन दिनों प्रकाशित हुआ था, जिसका नाम 'असाध्य' था। यह-रचना में उन्हें किसी उपन्यास प्राप्त हुई, उन प्रथा में यह-रचना में दृष्टि के मार्ग पर जाने नहीं वह करते हैं। उनकी यह-रचना का जीवन कुछ ही पुर जाने वह पर विचार हो गया। उनका मन और, और समर्थित है। उनकी भाषा संस्कृत मिश्रित, किन्तु अधिक सरल है। उन्होंने असाध्य के निगूढ़ विषयों का भी विचार सरल भाषा में की उपन्यास के साथ किया है।

इस प्रकार सामाजिक, धार्मिक, और राष्ट्रीय आंदोलनों के कारण हिन्दी मन के प्रचार और प्रसार में अधिक सहाय्यारी प्राप्त हुई। जो जो लोग वेदों के हिन्दी मन के लिए आधुनिक और धार्मिक आंदोलनों की वाद अपने लगी, जो असाध्य, जो हिन्दी मन सामने प्रस्तुत होकर उत्तर की ओर सरल होने लगा। हिन्दी मन के प्रचार और प्रसार में सबसे अधिक सहाय्यता आर्ज समाज के आंदोलनों के कारण हुई है। इसका मुख्य कारण यह है, कि आर्ज समाज का आंदोलन असाध्य और असाध्य था। ईसाई और अन्य जाते थे ही अपने धर्म प्रचार में हुये हुए थे। आर्ज समाज के आंदोलनों के कारण अपने और भी गति बोलता हुई। हिन्दू समाज के भीतर भी आर्ज समाज के आक्रमण आंदोलनों के कारण कई प्रकार की दृष्टिों काट हो गई। इस प्रकार सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों की वाद की था गई। इन आंदोलनों में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी, कि वहीं एक भाषा का प्रचार था, जब वे हिन्दी की ही भाषा प्रचार की थी। क्योंकि

जिस जनता को उन्हें अपने आंदोलनों से प्रभावित करना था, उसकी भाषा मुख्य रूप से हिन्दी ही थी। अतः हिन्दी और उसके गद्य को उन्नति के क्षेत्र की ओर अवसर होने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। हिन्दी गद्य ने इस अवसर का पर्याप्त लाभ उठाया, और उसने एक व्यवस्थित स्वरूप धारण करके उस युग में प्रवेश किया, जिसे हम भारतेन्दु युग कहते हैं।

गद्य—भारतेन्दु काल

हिन्दी गद्य का जो भवस्थित इतिहास हमारे सामने है, सुविधा की दृष्टि से हम उसे तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—भारतेन्दु काल, द्विवेदी काल, और आधुनिक काल। हिन्दी गद्य की भाषा और शैली का विकास जिस क्रम से हुआ है, उसी क्रम को ध्यान में रखते हुए हमने यह काल विभाजन किया है। भारतेन्दु काल में हिन्दी गद्यकी भाषा और शैली ने एक सुसंवस्थित स्वरूप धारण किया है। द्विवेदी काल में उसका परिमार्जन, और परिशोधन हुआ है, और आधुनिक काल में वह सर्व प्रकार से परिष्कारित होकर प्रौढ़ता की ओर बढ़ रही है।

भारतेन्दुजी का जन्म सन् १८४२ में हुआ था। भारतेन्दुजी के हिन्दी के रंग मंच पर आने के पूर्व हिन्दी गद्य का कोई स्वरूप नहीं था। कितने गद्य लेखक भारतेन्दु के पूर्व

ये, सबकी अपनी भाषा और अपनी शैली थी। मुख्य का गद्य रूप से भारतेन्दुजी के पूर्व हिन्दी गद्य की दो शैलियाँ प्रचलित थीं। एक शैली यह थी, जो सरसी कारखी मिथिल थी, और जिसके प्रवर्तक राजाशिवप्रसाद तिवारी हिन्दू थे। सरकारी जेबों में इस शैली का अधिक आदर-सम्मान था। दूसरी शैली हिन्दी की विशुद्ध शैली थी, जिसमें संस्कृत के शब्दों की प्रचलना थी। इस शैली के प्रवर्तक राजालक्ष्मणसिंह, और ईसाई प्रचारक थे। यह शैली यद्यपि सरकार द्वारा पूर्ण रूप से उपेक्षित थी, पर जनता में इसी शैली का आदर-सम्मान था। इसी शैली में शनैः शनैः यह साहित्य निर्मित हो रहा था, जिसे हम जनता का साहित्य कह सकते हैं। जनता अपने धार्मिक, सामाजिक, और राजनीतिक विचारों की इस भाषा और शैली में व्यक्त कर रही थी। अतः यदि हम हिन्दी गद्य की इस भाषा और शैली की जनता की भाषा कहें तो कोई आपत्ति न होगी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म सन् १८५७ में काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम बोरालचन्द्र था। यह केवल पैंतीस वर्ष तक ही जीवित रहे। पैंतीस भारतेन्दुजी की वर्ष के अल्प जीवन में उन्होंने जो साधना की, वह हिन्दी सेवा साधना के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। वे एक सकल कवि, कथकार, और नाटककार थे। वे एक अनन्य देश भक्त और समाज सुधारक भी थे। समाज के उत्पीड़ितों के लिए उनके हृदय में अदम्य गहानुभूति थी। राष्ट्रीय चेतना

का अनुभव ने बड़ी समझौटा के साथ करते थे। उसी संवेदन और अनुभूति कील भावनाओं का जन्म उनके साहित्य पर पड़ा है। उन्होंने अपनी इसी भावनाओं की वेदना से उस हिन्दी साहित्य की जितने सभी एक सुन्दर को ही अपना कारण बना रखा था, राष्ट्रीयता और सामाजिकता की और आग्रह किया। कई प्रथम श्रेणी का उदाहरण मारोलेन्दुकी की रचनाओं में ही देखने को मिलता है। 'गुलामी की वेदना' और सामाज्य का उदाहरण भी कई प्रथम हिन्दी की रचनाओं में मिलता है।

मारोलेन्दुकी की हिन्दी केबारे चिन्तामणि रचनी। आज हिन्दी साहित्य के विविध कर्मों का को बीरा सदसदा रहा है, उसे मारोलेन्दुकी ने ही काली हाथों से हथकाया था। मारोलेन्दुकी के पूर्व हिन्दी-साहित्य में नाटकों का पूर्ण रूप के अभाव था। कुछ नाटकों की रचना अश्वमेध हुई थी, पर सात्वतता और साहित्यिक दृष्टि से उनका कुछ भी महत्व न था। कई प्रथम मारोलेन्दुकी ने इस दिशा में प्रयत्न किया। उन्होंने पन्द्रह लौकिक, और अनुपमिन्त नाटकों की रचना की। उनके नाटकों में सत्यनिश्चय का महत्वपूर्ण स्थान है। नाटकों की नीति साम्य-वत्ता के क्षेत्र में भी उन्होंने नवीनता की कल्पना दी। सभी एक हिन्दी साहित्य के अंतर्गत अतिरिक्त की भी बाग बर रही थी, वह सुचारिक भावनाओं के कोट जोर थी। इसमें कवेर नहीं, कि मारोलेन्दुकी के हृदय पर भी इस बाग का प्रभाव था। पर इसमें भी संदेह नहीं, कि मारोलेन्दु बाबू ने इस बाग के विपरीत एक नई पारा भी बढ़ाई। भारतीय साम्य के प्रभावित होकर मारोलेन्दुकी ने सुचार, अति, और नीति विपरीत रचनाएँ की थी। भारतीय बाग के मारोलेन्दुकी ही अन्तिम कर्म थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा ही उनका तरीका दिया, और उसके तरीका जिन्हें एक नवीन मान पारा बढ़ाई, की देश-मति और धर्म की कर्मों के मरी हुई है, और जितने देश की दुखता के प्रति बारी वेदना, और लौकिकी के प्रति बारी समवेदना है।

मर के क्षेत्र है मारोलेन्दुकी के द्वारा एक नए युग का आविर्भाव हुआ है। सभी एक मर के नाम पर की कुछ शिक्षा तथा था, वह न्यायत्मक था, और प्रभावना में था। इस में तो कोई निश्चित होती थी, और न मात्रा का कोई समरिभत अभाव ही था। मारोलेन्दुकी ने ही कई प्रथम हिन्दी नम-पैली की नीम बाली। आज बड़ी होती की की होती निश्चित होकर लौकिक को रही है, उसी नीम मारोलेन्दुकी के ही द्वारा बढ़ी है। मारोलेन्दुकी के पूर्व जब की मात्रा का कोई भी निश्चित अभाव न था। जितने एक शेषक थे, सभी अपनी पुष्प-पुष्प मात्रा थी। कोई छात्र-पाराही निश्चित मात्रा का बढ़ाती था, तो संकुल प्रभाव मात्रा था। मारोलेन्दुकी ने सबसे पुष्प अपनी मात्रा निश्चित की, और उसे परिभाषित तथा निश्चित किया। मारोलेन्दुकी की ही मात्रा आज निश्चित कर्मों में वसतिरिक्त और पुष्पित हो रही है।

मारोलेन्दुकी ने निश्चित रूपों पर न्यायत्मक और न्यायत्मक कर्मों का निर्माण

किया है। उनकी कृतियों को देख करके ही लोगों का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित हुआ; और लोग यह समझने लगे, कि हिन्दी एक महान् पूर्ण भाषा है, और उसमें सभी प्रकार के भाषा सम्पत्ति भिन्न का समुच्चय है। इस प्रकार भारतेन्दु बाबू ने अपनी रचनाओं के द्वारा लोगों के हृदय में हिन्दी के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया। उनकी रचनाओं विविध भाषा और विषयों के पूर्ण हैं। उनकी रचनाओं में सभी देश, देश, संसार, सुन्दर और धर्म विषय के विषय मिलते हैं, वहीं अन्य और हाल का हाल पुरा की उनकी रचनाओं में मिलता है। वहीं उन्होंने उपन्यास, कहानी, और नाटकों की रचना के लिए साधना की है, वहीं उन्होंने गीतिका कर्मकी निम्नी की रचना की की है; उपर्युक्त यह, कि अधिकांश का कोई देश का नहीं, बल्कि निर्माण में भारतेन्दु बाबू ने योग न दिया है।

सांस्कृतिक हिन्दी गद्य शैली के सम्बन्ध में हमें भारतेन्दु बाबू का नाम बड़ा प्रतिष्ठा में रखना पड़ेगा। आज की हिन्दी गद्य शैली बहुत ही परिष्कृत और परिष्कृत होकर शैली के सम्बन्ध में उनकी ही ओर आकर्षण हो रही है, उसकी ओर भारतेन्दु, और केन्दु की ने ही जाती है। भारतेन्दु की ने पूर्ण हिन्दी गद्य शैली का कोई सम्बन्ध सम्बन्ध न था। उनके पूर्व की गद्य रचना हुई थी, उसमें सम्बन्धित और सम्बन्धित गद्य-शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। हम यह भी कह सकते हैं, कि उनके पूर्व की गद्य रचनाओं में उस शैली का पूर्ण रूप के सम्बन्ध था, बिना अधिकांश के सम्बन्धित इस 'शैली' की संज्ञा से सम्बन्धित करते हैं। मुख्य रूप से भारतेन्दु की ने पूर्ण ही शैली में प्रतिष्ठित कर रही थी। एक शैली अपनी अपनी विभिन्न थी, बिना सम्बन्धित सम्बन्धित विचारों के, और दूसरी शैली, संस्कृत विभिन्न थी, बिना निर्माण सम्बन्धित और दूसरी धर्म उपासकों के द्वारा हुआ था। भारतेन्दु बाबू के समय में वह ज्ञान एक समाज के ही रूप में था, कि वे फिर शैली का अनुसरण करें। वे हिन्दी के सम्बन्ध में, और विज्ञान में। वे सब हिन्दी गद्य शैली, और भाषा की ओर दृष्टिगत करते थे, उन उन्हें यह देश का अधिकांश हुआ होता था, कि हिन्दी गद्य शैली और भाषा में सम्बन्धित तथा सम्बन्धित है। आज उन्होंने अपने ध्यान की शैली और भाषा के निर्माण की ओर सम्बन्धित के साथ सम्बन्धित। उन्होंने हिन्दी गद्य-शैली को सम्बन्धित करने के लिए अपने पूर्ववर्ती शैली में सब ध्यान दिया। वे हिन्दी के सम्बन्धित और हिन्दू संस्कृति के सम्बन्धित सम्बन्धित थे। आज सम्बन्धित सम्बन्धित विचारों के हिन्दू की शैली को सम्बन्धित करने उन्होंने लिए सम्बन्धित किया था। सम्बन्धित सम्बन्धित विचारों के हिन्दू की शैली, बिना सम्बन्धित में सम्बन्धित हुई थी, वे विदेशी भाषा के सम्बन्धित थे। उनसे विदेशी संस्कृति और विदेशी सम्बन्धित को सम्बन्धित प्राप्त होता था। भारतेन्दु की ने हिन्दू और संस्कृति विभिन्न सम्बन्धित उस शैली को सम्बन्धित करने की ओर नहीं, उन पर सम्बन्धित सम्बन्धित योग ही प्राप्त करते थे। दूसरी शैली सम्बन्धित सम्बन्धित की थी, बिना सम्बन्धित के सम्बन्धित की सम्बन्धित थी। यह

हीनो पदार्थ दिनों की विप्लव हीनो की, और भाव की सम्यक्ता तथा संतुष्टिभावा के लिए अनुकूल थी, पर वह पुन के विपरीत थी। इन हीनो में भार्यो पार्यों के सम्यो का पूर्ण रूप से वहिष्कार किया गया था, और उनके स्थान पर संस्कृत के सम्य-सिद्ध और सम्मानदायक सम्यो की रखने का प्रयत्न किया जाता था। मारोतुकी को वह हीनो की सम्मानदायक मान नहीं। क्योंकि मूलभूतमानों के बहुकालीन संघर्ष के कारण हिन्दी में भार्यो और पार्यों के बहुत से सम्य एक प्रकार मिल गए थे, जि के हिन्दी के भाग से बन गए थे। इन सम्यो का नाम नृक करके वहिष्कार करवा माया-विज्ञान की दृष्टि से अधिक अनुचित और दोष युक्त था। अतः मारोतु पुन ने इन हीनो को भी बदल न दिया। उन्होंने दोनों की हीनो की सम्मान करके अपने किए भाग का कार्य किया, अर्थात् उन्होंने एक हीनो हीनो का निर्माण किया, जिसमें संस्कृत के उत्तम सम्यो के साथ ही साथ भार्यो पार्यों के उन सम्यो का भी प्रयोग मिश्रण है, जो अचलित और अधिक व्यावहारिक है। मारोतु पुन ने इन सम्यो के संयोग में केवल व्यावहारिकता पर ही अपनी दृष्टि की केन्द्रित रखी। जैसे—कामना, संयत, कर्मा, और सुदी दायदि। इन प्रकार मारोतुकी ने एक हीनो हीनो का निर्माण किया। मारोतु पुन की वह हीनो संस्कृत के उत्तम और तदुपर सम्यो से बनी हुई है। इनमें भार्यो पार्यों के अचलित सम्यो का प्रयोग भी हुआ है। स्थान-स्थान पर उसमें लोपोक्ति की और तुहावियों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। यही यही उसमें पश्चिमात्मन, अन्तर्भाव का अन्तर्भाव के प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे—‘मैं’ ‘करके’ और ‘हुँ’ दायदि। मारोतुकी की वह हीनो उनके द्वारा अधिक परिष्कृत और विकसित हुई है। उनकी हीनो समय और पुन के अनुकूल थी। उसके निर्माण में उन्होंने भाग की व्यवस्था-विचार को अधिक महत्व दिया है। अतः उनकी हीनो वहिष्कार-भाव में अन्त हीनर अधिक प्रभाव पूर्ण बन गयी। उनकी हीनो की लोच विमला का भी यही कारण है।

मारोतुकी की हीनो उनकी दृष्टिको के चार स्तरों में व्यवस्थित है—परिचय-तम, भावनात्मक, संवेदनात्मक, और ज्ञानात्मक। उनके सम्मान्य वर्णन अन्त हीन परिचय-तम हीनो में है। छोटे छोटे केवों में भी यही हीनो दृष्टिकोपर होती है। उनकी इन हीनो की रूप सम्मान-तम-तम दिखते हैं, और सम्मान-तम-तम-तम की हीनो की बीच की हीनो वह बनते हैं। क्योंकि न ही इनमें संस्कृत के सम्यो की अनुप्राप्ति है, और न भार्यो-पार्यों के अचलित सम्यो का वहिष्कार ही किया गया है। उनकी वह हीनो छोटे छोटे भागों और अचलित सम्यो से बनी हुई है। मारोतुकी ने अपने भागों के सम्मान्य वर्णनों में सम्मान देते रखों पर यहाँ अन्त के भाग अपने भाग कोते हैं, यही हीनो का प्रयोग किया है। उनकी इन हीनो का लक्ष्य निर्माण-विचारों में देखिए—

‘अन्त नहीं करने में क्या होता है, निम्नर को करने ही होता, और फिर उसमें लोच-भाव है, केवल तुहाव दिख गया के पुन में क्या हुआ है, क्या ही दिख

होनाही मिल जायगा, मैंने जो बर्षों का हुक्का कर खोज लिया था । पर तु कहती है, कि राजी के उबका खानाभार ही का बड़, जो कम क्या बर्षों ?

मालोद्गु गाथा की दूसरी हीली मायात्मक है । इस हीली का अर्थ है उन्होंने उन रक्त-माखी में किया है, जिनमें माया का अभाव है; दूसरे जन्मों में नहीं उन्होंने हुकूम खींच, खींच, खींच, खींच प्रेम समझती मायात्मकों का भिन्न किया है, नहीं दली हीली का साधनात्मक हुआ है । माया बसती, माया दुर्दशा, भंडाराली और विद्याभुवन इत्यादि मायात्मक माखी में उनको नहीं हीली देखने को मिलती है । उनको यह हीली अधिक दूर लगी, और अभाव पूर्ण है । छोटे छोटे माखी द्वारा माया में अभाव और दुर्दशा उत्पन्न करना इस हीली की विशेषता है । विज्ञातित पंक्तिओं में उनको मायात्मक हीली का स्वरूप देखिए—'और हमने बड़े बालकाले पर वैदमाली पर हो गिरे की । जान किसे, खींच भुला करे, खाने काय मारे-मारे गिरे, पर नष्ट है हुकूमकेदारी पूर्ण' मिलीभक्ता । जान को नहीं बार के पीर-पार के विज्ञातित किया है ।

मालोद्गु गाथा की तीसरी हीली मनेवद्यात्मक है । उनको मनेवद्यात्मक हीली के दो रूप मिलते हैं । एक रूप तो यह है, जो उनके साहित्यिक लेखों में मिलता है, और दूसरा यह है, जिसका साधनात्मक उनके ऐतिहासिक विज्ञानों में हुआ है । साहित्यिक विज्ञानों की हीली अधिक साज और साधनात्मक है । ऐतिहासिक विज्ञानों में इस हीली का जो रूप पाया जाता है, वह मनेवद्या और हुकूम है । उनको इस हीली के दोनो ही रूपों का महान संकट के जन्मों के हुआ है । साहित्यिक विज्ञानों का अर्थ है उन्होंने अपनी इस हीली में किया है । साधनात्मकताद्वारा इस हीली के स्वरूप छोटे बड़े हैं । साधनात्मकताद्वारा ही माया के स्वरूप का महान भी किया गया है । विज्ञातित पंक्तिओं में उनको मनेवद्यात्मक हीली सुन्दरता के साथ अभाव हुई है । साहित्यिक विज्ञानों में—'देखा न होता तो पीर का पर वर्षों के अभाव के मने के अभावकेदारी और विज्ञातित के समय इसी रंग लाल । मे एक ही बार अपनीमा का रक्त-माखी और फिर उली । मने वसुधैवि का अर्थ है मैंने विज्ञातित वदना ।' ऐतिहासिक विज्ञानों में—'अद्वैत लाल अस्तुत्वत्त काये देखा, कि यह एक माया एक वर्षों गुप्त में जाया करती थी, और नहीं वे अभावमय काये के उनके लाल का गुप्त ही करते हैं । कथा में मने का अस्तुत्वत्त काये एक दिन गुप्त में अभाव किया ।'

मालोद्गु की चतुर्थ हीली अभावमय है । अभावमय हीली के मालोद्गु का अभाव है । जब अभाव उन्होंने की रक्तमाखी में अभावमय हीली देखने को मिलती है । उन्होंने नहीं नहीं अपने विशेषियों को अभाव दिया है, अभाव अभाव के वास्तविकों का विज्ञातित किया है, नहीं दली हीली का अभावमय हुआ है । उनको यह हीली अभाव और अभाव पूर्ण है । अभाव और अभाव पूर्ण होने हुए भी उनमें अभाव और अभाव है । विज्ञातित पंक्तिों में उनको अभावमय हीली का

अधिक व्यापारिक बन गए थे। विदेशी शब्दों के प्रयोग से उन्होंने अधिक व्यवसायी के काम लिया, जबकि उन्होंने विदेशी शब्दों को हिन्दी के व्याकरण के ढंग से दाख करके ही प्रयोग प्रयोग किया। उन्होंने भाषा को सुदृढ़, व्यवस्थित और अधिक स्पष्ट भी बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपनी भाषा में अधिकतर ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया, जिनके कारण भाषा सुदृढ़ होने के साथ ही साथ अधिक सहिष्णु भी हो सकी थी।

भारतेंद्र नाथ ने जिस प्रकार सभी शैली के अधिकार के लिए अलग-अलग की, उसी प्रकार उन्होंने व्यवसाय का भी सुन्दरता के साथ संस्कार और सुधार किया। व्यवसाय भारतेंद्र नाथ के समय तक अधिक प्राचीन बन गई थी। उसके भीतर अधिक विचार प्रवेश हो गए थे। वह अपने लिए मनुष्यों के लिए अधिक थी, जब उसके बाद न था। अब तकमें बहुत और सुन्दरता प्रवेश हो गई थी। भारतेंद्र नाथ ने व्यवसाय को भी अपने हाथ में लिया, और उसके भीतर दुरे दुर विचारों को दूर करके उसे परकीयता बनाया। उन्होंने व्यवसाय से ऐसे शब्दों को दूर किया, जो अधिक दुरासे होने के कारण अधिक बिल गलत थे, और अपने स्वयं की विद्वत्ति के कारण अधिक दुष्प्रभाव डाल रहे थे। उनके स्थान पर उन्होंने सरल, व्यापारिक और प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने ऐसे शब्दों को भी स्थान दिया, जो नष्ट होने के थे। एक प्रकार उन्होंने सभी शैली को भीति ही व्यवसाय के रूप को भी संस्कार, और परिमार्जित किया। भारतेंद्र नाथ के हाथों में साकार व्यवसाय इसमें अद्वितीय नहीं, कि अधिक सुदृढ़ और सुदृढ़ बन गई।

भारतेंद्र नाथ भाषा की प्रकृति से सभी भीति परिचित थे। वे यह समझी गए करते थे, कि भाषा जिस प्रकार कला के जीवन को अधिकृत करती हुई उसी को छोड़ करकर ही बनती है। वे यह भी जानते थे, कि भाषा और कला-जीवन का विचार बहुत सम्बन्ध होता है। यही कारण है, कि उन्होंने अपनी भाषा को कला-जीवन के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने भाषा को कला-जीवन के अनुकूल बनाने के लिए ही उन समूहों शब्दों को प्रवेश किया है, जो कला-जीवन में प्रचलित थे। हिन्दी के शब्दों का उनकी भाषा में अनुकूल है, पर इसके साथ ही साथ उनकी भाषा में कदमी, कदमी, संस्कृत और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग विचलता है। उन्होंने विदेशी शब्दों का प्रयोग उद्देश्य के ही रूप में किया है। इसके उनकी भाषा अधिक सुदृढ़ और सुदृढ़ बन गई है। अब तक उनकी भाषा में सब के भी शब्द पाए जाते हैं। उन्होंने अपनी भाषा में शब्दों के प्रयोग में बड़े सीधल से काम लिया है। उनके शब्दों के प्रयोग में व्यवसाय और व्यवसायिक अधिक है। उनके सभी शब्द प्रत्यक्ष में ऐसे दूर एक दूसरे के सम्बन्ध के बात होते हैं। यही कारण है, कि उनकी भाषा में प्रचार और प्रसार सुदृढ़ है। उनकी भाषा अधिक व्यापारिक और व्यवसायी है। भाषा की भाषा अधिक बनाने के लिए उन्होंने शब्दों के प्रयोग पर अपने ध्यान को

केन्द्रित समक है। उन्होंने समझी का चयन भाषी के ही अनुसार किया है, और भाषी को ही लक्ष्य करते। उनका संस्वादन भी किया है।

भाषीनु बाबू ने साहित्य निर्माण को तदनुसृत शक्ति को। उन्होंने वहीं हीली और भाषा का निर्माण किया, वहीं उन्होंने साहित्य के विभिन्न विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक गहन निर्माण—

भाषीनु क्षेत्रों में अपनी प्रशिक्षण का प्रयोग किया, और दूसरों

लिखी। उनका सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य हिन्दी गद्य का निर्माण है। साहित्य के इतिहास जिसे गद्य कहते हैं, सर्वप्रथम उसकी नींव उनकी के द्वारा पड़ी है। उनके पूर्व हिन्दी में गद्य-साहित्य का अभाव था। गद्य के नाम पर उनके पूर्व की रचना हुई थी, वह प्रथमता में थी, और उसे गद्य नहीं कहा जा सकता था। सर्वप्रथम भाषीनु बाबू ने ही सुगमनीयता गद्य की नींव डाली। उन्होंने गद्य-रचना के लिए सभी बोलों को ग्रहण किया, और उसे व्यवस्थित तथा सुगम बनाया। भाषीनुजी ने सभी बोलों में विभिन्न विषयों पर व्यापक प्रकाशों की रचना की। उन्होंने विभिन्न विषयों पर व्यापक प्रकाशों की रचना करके यह सिद्ध किया, कि सभी बोलों एक ही भाषा हैं, जिससे सभी प्रकार के भाष्य स्पष्ट किए जा सकते हैं। भाषीनुजी ने कई ऐतिहासिक वस्तुओं की रचना की, जिनमें आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वेदा या इतिहास, और आर्यभट्ट दर्शन, इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार उन्होंने ऐतिहासिक प्रकाशों की रचना करके लोगों में इतिहास लिखने की प्रेरणा उत्पन्न की। उन्होंने उपन्यास और कहानी लिखने की ओर भी ध्यान दिया था। किन्तु इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के पूर्व ही उनका स्वर्णकाल ही गया। उन्होंने समीर विषयों पर विचार लिखे। उन्होंने देशों की विवरण लिखे, जो सर्वत्र और हाल में हैं। 'इन्दिरा इंड', 'पारसिंद', और 'कुल आर्यभट्ट', 'कुल बरगोटी' में उनके तदनुसृत विवरण देखने की मिलते हैं। 'महात्म्य', 'सोहमती', और 'सुलोचना' इत्यादि आकाशों को भी उन्होंने रचना की। वेदका मीर, अर्यभट्ट मीर, और वेदका मीर इत्यादि उनके द्वारा और अन्य 'पूर्व' विवरण हैं। उन्होंने बहुत 'पूर्व' गद्यों की रचना करके हिन्दी में गद्य-रचना के मार्ग को प्रदर्शित किया। भाषीनुजी के पूर्व हिन्दी में मौखिक गद्यों का सर्वथा अभाव था। सर्वप्रथम भाषीनुजी ने ही हिन्दी में मौखिक गद्यों की शक्ति को तदनुसृत करने के साथ ही साथ गद्य रचना के मार्ग को प्रदर्शित किया, और लोगों के जीवन गद्य-रचना की प्रेरणा उत्पन्न की।

इस प्रकार भाषीनु बाबू ने विभिन्न विषयों पर व्यापक रचनाएं करके सभी बोलों हिन्दी की शक्ति को तदनुसृत करने के साथ ही साथ गद्य रचना के मार्ग को प्रदर्शित किया, और लोगों के जीवन गद्य-रचना की प्रेरणा उत्पन्न की।

भाषीनु बाबू ही सभी बोलों के गद्य के समुदाय हैं। उन्होंने गद्य की नींव तो डाली

ही उसके महात्म्य की रचना की थी। हिन्दी साहित्य के ये प्रथम नाटककार हैं। जिस नाटककार प्रकार उन्होंने निर्बंध, कविता उपलब्ध और काव्यमयी के मार्ग मार्तेन्दु का दर्शन किया है, उसी प्रकार उन्होंने हिन्दी साहित्य के मार्ग की प्रशंसा करने के लिए भी सर्वश्रेष्ठ काव्यकारों की हैं। उनके महात्म्य रचनाओं में उनके मन की का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। उनके नाटक हिन्दी साहित्य की अत्युन्नत रचना है। हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम मार्तेन्दु काव्य के दो बार मौलिक नाटकों की रचना हुई है। मार्तेन्दु काव्य के पूर्व हिन्दी में नाटकों का अभाव था। उनके पूर्व किसी भी लेखक का ध्यान ऐसे नाटकों के निर्माण की ओर नहीं गया था, जिन्हें इन साहित्यिक और कलात्मक नाटकों की संज्ञा दे सकें। इसके तीन मुख्य कारण हैं। एक कारण तो यह था, कि मार्तेन्दु की के पूर्व मन की भाषा का कोई निश्चित और अद्वितीय व्यवस्था न था, दूसरा कारण यह था, कि इन दिनों देश कर्मों का अभाव था, और तीसरा कारण यह था, कि देश में कुलमानों का शासन था, जिसकी साहित्य भाषणा भाषा रचना के निषेध की। अतः मार्तेन्दु की के पूर्व हिन्दी साहित्य में नाटकों की रचना नहीं हो सकी। यदि यह है, और उसके प्रभाव कुलमानों की रचना अभाव हुई है, पर उन्हें नाटक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उनके इन कर्मों का पूर्व का से अभाव है, जिसके कारण नाटकों की नाटक की संज्ञा मिलती है।

मार्तेन्दु की के पूर्व नाटक के नाम पर राम और भी कर्मों को बसाओ की लेकर संवत्समक रचो की रचना की गई थी। ऐसे संवत्समक रचो के बीच-बीच में मन का भी संकेत था। कुछ संकेत के नाटकों का अनुवाद भी हुआ था, जिसकी भाषा अत्यन्त थी। पर इन नाटकों का साहित्यिक दृष्टि से कुछ भी उत्पन्न न था। कुलमानों के शासन के प्रभाव का देश में अंगरेजों का शासन एवम् हिन्दी, ही अंगरेजों के साहित्य का भी देश में अभाव हुआ। अंगरेजों के साहित्य का अभाव सर्वप्रथम अंगरेज साहित्य के हुआ था। यही कारण है, कि अंगरेजों में साहित्यिक दृष्टि के नाटकों की रचना बहुत पहले ही हुई थी। अंगरेजों और अंगरेजों के नाटकों का प्रभाव मार्तेन्दु की के भी उत्पन्न पर बढ़ा। मार्तेन्दु की नाटककला के पहले ही प्रभावित हो चुके हैं। नाटककला के अति उनके भीतर अन्य बातें भी हैं। उनके पिता भी नाटककार थे, उनके पिता से उनके पूर्व 'अनुप' नामक नाटक की रचना की थी। इस प्रकार मार्तेन्दु काव्य को नाटककला वैदिक कल्पित के रूप में प्राप्त हुई थी। उन्होंने नाटककला के बीच के कारण नाटक शास्त्र का अध्ययन किया। अत्यधिक दृष्टि से भी उन्होंने नाटककला का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने हिन्दी और अंगरेजी के कई नाटकों की देखा। अंगरेजों, नाटककला का भी उन पर कुछ प्रभाव बढ़ा था। इस प्रकार नाटकों की रचना करने के पूर्व उन्होंने नाटक शास्त्र का यही मौलिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

मार्तेन्दु की के नाटक की प्रकार के हैं—मौलिक और अनुवादित। नाटककला

के क्षेत्र में उन्हें जो सुवीरिवाद हुआ है, उसका कारण उनके मौखिक कारण हैं। उन्होंने अपने मौखिक नाटकों की रचना प्राचीन परम्पराओं के अनुसार की है। पर प्राचीन परम्पराओं के काल में वे कबू, और कबू दिखाई देते हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा की रीति और उसकी प्रकृति को देख करके ही प्राचीन परम्पराओं का कालन किया है। उन्होंने अपनी नाट्यकला में प्राचीन विधियों के साथ ही साथ नवीनता को भी स्थान दिया है। वह नहीं कहा जा सकता, कि उन्होंने अपने नाटकों में संस्कृत की प्राचीन प्रणाली का अनुसरण रीति पर करने की है, और न ही कहा जा सकता है कि उन्होंने उसका रिलक्षण कर रीतिरिती नाटकों का संशोधन किया है। यही कारण है, कि इन उनकी नाट्यकला की रीति के माध्य के मार्ग पर चलते हुए देखते हैं। अर्थात् उनकी नाट्यकला प्राचीन विधियों की भी नहीं जाती है, और साथ ही उस विचार के भी संकेत है, जिसे इन नवीनता का कृत करते हैं। उनकी नाट्यकला में प्राचीन और नवीन-रीति का संयोग नहीं मानिकता के साथ स्थापित हुआ है।

भारतेन्दु की नाट्यकला कार्यों की रंग रंगी में विभक्त होती है। उसकी रीति पूर्ण रूप से कार्यों की और ही सम्बन्ध है। वह किन्तु किसी भी क्षेत्र में प्रवेश नहीं है, कार्यों की ही रंग में समग्र दिखाई देती है। उनके जीवन, पण्ड, पण्ड, जेम और रीति रीति क्षेत्रों में अधिक होकर अपने जीवन की रचना की है। वह जीवन की रीति रंगी, और उसे उचित करता है। पण्ड के जीवन पूर्ण कष्टों की वह हमने समझा करती है, और वह-वह पर पण्ड के क्षेत्र की वापस करती है। कला के भीतर के विकास को लेकर विचारना उनकी कला का मुख्य काम है। उनकी कला समाज के मन-मन के द्वारा में प्रवेश करती है, और सुसंज्ञाओं की वृद्धि करके कार्यों की संस्थापना करती है। जेम और रीति के क्षेत्र में ही उनकी कला उन्नत कार्यों की प्रति करती है। उनका जेम दिग्ग और परमोन्नत जेम है। उनके जेम में कार्यों सामान्य जीवन का विकास हुआ है। उनका जेम सामान्य और उत्तम की वापसों में प्रतिपूर्ण है। जेम की रीति ही उनकी रीति की अधिक परमोन्नत और रंग है।

भारतेन्दु की नाटकों की हम उन्हें रीतिरिती में विभक्त कर सकते हैं। रीति — रीतिरिती नाटक, रीतिरिती नाटक, कार्योंरिती नाटक, और रीतिरिती नाटक। ही बात की हम इन रीति में भी वह करते हैं, कि भारतेन्दु नाटु में रीतिरिती, रीतिरिती, रीतिरिती, और रीतिरिती नाटकों की रचना करके हिन्दी साहित्य के नाटक-क्षेत्र में इन 'रीति' की बात प्रकटित की। भारतेन्दु नाटु के रीतिरिती के नाटक-क्षेत्र में इन 'रीति' के मार्ग पर चल कर नाटकों की रचना की है। भारतेन्दु नाटु के नाटकों में रंग रीतिरिती, रीतिरिती, रीतिरिती, और रीतिरिती रीतिरिती का महत्वपूर्ण भाग है। 'रंग रीतिरिती' की रचना कार्योंरिती की रीति पर हुई है। इनके कार्योंरिती नाटक ही रीति के हैं—रीतिरिती और रीतिरिती। 'रंग

१०. राजकुमार मरु का जन्म सं० १८०१ में प्रयाग में हुआ था। वह लगभग साठ वर्ष तक जीवित रहे। उन्होंने अपनी जीवन का अधिकांश समय साहित्य की सेवा भट्टजी की और उसके साथ-साथ से हो व्यतीत किया। हिन्दी के एक संच साहित्य माधवराज पर जब इनका आविर्भाव हुआ, उस समय तक हिन्दी की कोली अधिक परिपक्व और परिष्कृत हो चुकी थी। अठारहवीं की शीत इनके सामने भाषा के सृजन का प्रश्न नहीं था। इनके सामने भारतीयता की वह माया थी, जो उनके दिलों में बहकर अधिक मीम चुकी थी। मट्टजी ने उसी माया के माधुर्य से हिन्दी का के अन्त में उत्तमोत्तम कोम दिया। हिन्दी प्रचार और सृष्टि के निर्माण में मट्टजी के हाथ की प्रयास दूर हैं, वे स्पष्ट हैं। हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से उन्होंने १८२५ ई० में प्रयाग में 'हिन्दी प्रवर्द्धनी' नाम की एक संस्था स्थापित की, और उसके द्वारा 'हिन्दी-दर्शन' नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। वह पत्र २२ वर्षों तक बराबर प्रकाशित होता रहा। मट्टजी ही इसके सम्पादक थे। मट्टजी ने पहले द्वारा हिन्दी साहित्य की सुरुवात सेवा की। मट्टजी ने मात्र पूर्ण निर्बंधों की रचना करते हिन्दी साहित्य के आधार की अभिवृद्धि की। उनके निर्बंधों में लक्ष्मणदेव की साहित्यिकता पाई जाती है। उनके साहित्यिक निर्बंधों में साहित्यिकता ही है ही, सामान्य विचारों में साहित्यिक गुणों से संतुष्ट हैं। उनके निर्बंधों में साहित्यिकता के साथ ही साधन-सम्पन्न का भी संवित्त है, जिससे उनके निर्बंध अधिक आकर्षक और माधुर्ययुक्त बन गए हैं। हिन्दी के समालोचक उनके निर्बंधों की साहित्यिकता की रक्षा करते ही उनकी समानता अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध निर्बंधकार 'चार्ल्स लैंग' के साथ करते हैं। उन्होंने छोटे से छोटे विषय पर अधिक मात्रा पूर्ण और साहित्यिक निर्बंधों की रचना की है।

निबंध के साहित्यिक मट्टजी के पत्र साप्ताहिक की भी रचना की है। मट्टजी के पूर्ण हिन्दी-साहित्य में सच-सत्य का पूर्ण रूप से आभाव था। मट्टजी संस्कृत के पंडित थे। संस्कृत की कार्यकारी की शैली पर ही उन्होंने हिन्दी में सच-सत्य के लिए सफल प्रयास किया। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की रचना के लिए वह प्रथम प्रयास था, जो मट्टजी के द्वारा हुआ। यही कारण है, कि मट्टजी हिन्दी सच-सत्य के जगह दखा करे जाते हैं। मट्टजी ने 'सच-सत्य' शैली में कई निर्बंधों की रचना की है, जिसमें 'चन्द्रावत' और 'अर्जुन' इत्यादि उनके निर्बंध लक्ष्मणदेव के समाने जाते हैं। उनके इन निर्बंधों में उनकी और सत्यताओं का कोम लड़ी सुन्दरता के साथ स्थापित हुआ है। मट्टजी ने दो उपन्यास भी लिखे हैं। साहित्य साधुनिक और साधुनिक कला की दृष्टि से उनके उपन्यासों में विशेषता नहीं है, पर अपने युग के वे अच्छे उपन्यास हैं। नाटक के क्षेत्र में भी मट्टजी ने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है। पर नाटक के क्षेत्र में उन्हें अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। उन्होंने हस्त-प्रमाण और सत्यता में भी रचना की है। मट्टजी पहले निर्बंधकार हैं, उन्होंने निर्बंध में हास्य, और व्यंग्य का समावेश किया है।

महादेवदुर्गा में मिल जाती का निर्माण किया था, महादेवी में उसे अधिक पुत्र और दत्त बनाया है। पुत्र और दत्त बनाने के साथ ही साथ उन्होंने देवी के क्षेत्र को महादेवी की अधिक विस्तृत और व्यापक बनाने का प्रयत्न किया है। महादेवी देवी की देवी में कुछ कम से दो दक्षिणेय दिशाएँ बढ़ते हैं। अपनी एक देवी में तो वे एक साक्षिभार के रूप में दक्षिणेय होते हैं। उनकी यह देवी उनके साक्षिभार साक्षिभार और उनकी साक्षिभार साक्षिभारों को एक करते हैं। उनकी दूसरी देवी का दक्षिणेय दिशा के क्षेत्र को व्यापक बनाया है, अपनी एक देवी में वे साक्षिभार के क्षेत्र को क्षेत्र का दिशा को व्यापक बनाने वाले तत्वों को बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं। उनकी देवी में उनके दोनों ही दक्षिणेय बड़ी सुन्दरता के साथ साक्षिभार हुए हैं। महादेवी की देवी उनकी अपनी देवी है। उनकी देवी पर उनके साक्षिभार की अधिकता है। उनकी देवी देवी विराटी है, कि वह देवी के क्षेत्र में गुरुवारी का बनती है। विराटी होने के साथ ही साथ वह अधिक साक्षिभार, और गुरुवारी की है। उनकी देवी की को समस्त बढ़ाने वाली है, उसे दक्षि में पहले हुए इन उनकी देवी को दो बरों में बढ़ते हैं—परिचयगत देवी, और साक्षिभार देवी। परिचयगत देवी का अर्थ उन्होंने अपने अन्तर्गत, और गुरुवारी का अर्थ उन्होंने देखा है। उनकी एक देवी को इन उनकी साक्षिभार देवी नहीं कह सकते। क्योंकि एक देवी में उनके को विराट, और अन्तर्गत है, वे साक्षिभार को है। उनकी यह देवी बनती हुई और बहुत करण है। अपने सभी साक्षिभार क्षेत्र, और बड़ी अधिक बढ़े हैं। विराटिक्त साक्षिभार में उनकी परिचयगत देवी का ही विराटिक्त हुआ है—'यह वह बहुत बड़ी एक सुन्दरता पर चलता है, सभी एक समान का करण, विराटि, और बहुत है, और सभी एक लोक राज, लोक विराटि तथा अन्तर्गत का अन्तर्गत की चलता से बना हुआ है, जब तक एकाग्र में बना हुआ अपने साक्षिभार में प्रकृत नहीं होता।'

महादेवी की दूसरी देवी मानसगत देवी है। दिशा यह साक्षिभार में महादेवी की देवी देवी के निर्देशों के अनुसार प्रति हुई है। यही वह देवी है, जिसके कारण महादेवी की अधिक सुन्दरता प्राप्त हुई है। महादेवी के अन्तर्गत के साक्षिभार निर्देश देवी देवी में है। उनकी एक देवी में विशेष रूप से तीन हुए हैं। प्रथम यह कि उनकी एक देवी में विस्तृत भाग का अर्थ हुआ है। उनकी एक देवी की साथ अधिक अन्तर्गत, और प्रकृत हुए हैं, दूसरा यह कि उनकी एक देवी में अन्तर्गतों की बना है। अन्तर्गत-अन्तर्गत पर अन्तर्गत, अन्तर्गत, और अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गतों का अर्थ उनकी एक देवी में सुन्दरता के साथ हुआ है, जिसके उनकी यह देवी अधिक अन्तर्गत और अन्तर्गत ही गई है, और तीसरा यह, कि उनकी एक देवी में विराटी तथा अन्तर्गत के साथ ही साथ अन्तर्गत का भी निर्माण हुआ है।

महादेवी की देवी में अन्तर्गत और अन्तर्गत का भी अन्तर्गत है। उन्होंने अन्तर्गत और अन्तर्गत के क्षेत्र में विराटि की गुरुवारी का अन्तर्गत किया है। उनका अन्तर्गत

कवामे का अंतर्लोक प्रकाश किया है। उनके इस कलम को यदि हम उनके हिन्दी-वेम के अंतर्गत ही लें, तो अनुचित न होगा।

१० मालतीन्दी कवि का जन्म सं० १८९१ में अजमेर जिले के अंतर्गत मेरे नामक गाँव में हुआ था। मिश्री मालतीन्दी कवि के सुप्रसिद्ध साहित्यकार थे।

मिश्री की साहित्यिक रचनाएँ, पद्य, गीत, और गीतों की रचनाएँ, साहित्यिक रचनाओं के अन्तर्गत आती हैं। हिन्दी के अति उनके अंतर्गत अजमेर वेम का। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग हिन्दी की ही अंतर्गत में व्यतीत किया। उन्होंने अंतर्लोक प्रकाश की। उनकी प्रतिभा में कवि और गीतकार थे। उनकी विचार और अंतर्गत कवि की कविता ही थी। वह बहुत ही अच्छी कविता थी। उनके कलम का अंतर्गत भी अधिक अनुभव था। वे ही ही गीतों का अंतर्गत भी ही अंतर्गत करते हैं, कि अंतर्गत अंतर्गत का अनुभव हम अनुभव ही करता था।

मिश्री का साहित्यिक व्यक्तित्व कई रूपों में अंतर्गत हुआ है— कवि के रूप में, गीतकार के रूप में, निबंधकार के रूप में और अंतर्गत के रूप में। कवि के रूप में मिश्री ने अच्छी अनुभव प्रकाश की है। उन्होंने हम साहित्यिक और साहित्यिक कविता पर ही अधिकांश लिखी है। उनकी कविताओं में साहित्यिक अंतर्गत का अंतर्गत है। उनमें कविता करने की अनुभव अंतर्गत थी। वे कविता की विचार पर बहुत ही ही कविता लिख लिख करते हैं। उनकी ही रचना करने में वे अधिकांश अनुभव हैं। उनकी साहित्यिकों में अधिकांश अंतर्गत और अंतर्गत अंतर्गत है। उन्होंने गीतों की रचना की है, जिसमें अंतर्गत का अंतर्गत अंतर्गत हुआ है। वे कविता में अंतर्गत नाम अंतर्गत, और 'अंतर्गत अंतर्गत' रखते हैं। कविता की ही अंतर्गत रचना अंतर्गत के अंतर्गत से किया करते हैं। कवि की अंतर्गत के अनुभव गीतकार की हैं। उनके गीतों में कवि अंतर्गत, गीत अंतर्गत, और गीतकार का अनुभव अंतर्गत है। उनके गीतों के अंतर्गत हम साहित्यिक और साहित्यिक है। कवि साहित्यिक गीतकार की अंतर्गत से उनके गीतों का अधिकांश अंतर्गत नहीं है, पर हम कवि के अंतर्गत अंतर्गत किया था कविता, कि मिश्री अपने गुण के अनुभव गीतकार में। उनके गीतों में उनकी गीतकार अंतर्गत अंतर्गत अंतर्गत गीतों में। वे गीतकार के अंतर्गत में मालतीन्दी के अंतर्गत हम के अनुभव हैं। उन्होंने मालतीन्दी के ही अंतर्गत अंतर्गत पर अंतर्गत अंतर्गत का अंतर्गत किया है। उनके अंतर्गत साहित्यिक और साहित्यिक अनुभवों के अंतर्गत की अंतर्गत अंतर्गत करते हैं, और अंतर्गतों की और अंतर्गत करते हैं। मिश्री की साहित्यिक जीवन का साहित्यिक हम उनके अंतर्गत में अंतर्गत हुआ है। अपने अंतर्गतों के ही अंतर्गत साहित्यिक अंतर्गत में वे अंतर्गत अंतर्गत हम करते हैं। उन्होंने साहित्यिक, साहित्यिक, और साहित्यिक कविता पर साहित्यिक अंतर्गत लिखे हैं। उनके इस अंतर्गत के अंतर्गत अंतर्गत में अंतर्गत की अंतर्गत है। उन्होंने गीतों की अंतर्गत अंतर्गत लिखे हैं, किन्तु हम अंतर्गत अंतर्गत के अंतर्गत अंतर्गत हैं। जैसे—कवि, गीत, गीत, गीत,

और दीर्घ इच्छादि । उनके दोनों ही अक्षर के लिखनों में उनकी श्रेष्ठ-बहुल वाच-
वाच दिशाई होती है । उन्होंने अपने लिखनों में विषय की इस महान् वास्तव्यता
है, कि उनमें कुछकला और समन्वयिता उत्पन्न हो गई है । इसी कुशलता और
समन्वयिता के कारण उनके वाचवाच में वाचवाच विषय के विषय भी अधिक
दीर्घ और आकर्षक ब्रह्म होती है । लिखनी एक कुशल सम्पादन भी है । उन्होंने
स्वयं 'संस्कृत' नामक एक नव लिखाता था । वे स्वयं ही इस नव के सम्पादन भी
थे । उन्होंने कुछ दिनों तक 'दिनोत्पन्न' के सम्पादन विषय में भी काम किया था ।
'मनस कोमल' और 'चन्द्रिका चन्द्र' के भी उनका सम्बन्ध था ।

मार्केण्डु पुत्र के लिखनकारों में लिखनी का महान् दृष्टि स्थान है । लिखनी ने
एक और नव-दीर्घों की श्रेष्ठों में अपना भी है, पर उन्हें भी कुशलता प्राप्त हुई है,
लिखनी उनका कारण उनके महान् दृष्टि लिखन है । उनके लिखन की
की श्रेष्ठों अक्षर के हैं—एक कुछ वाचिनीय, और दूसरा द्वार सम्बन्धी ।
उनके द्वार सम्बन्धी लिखनों में स्वयं और द्वार का सम्बन्ध पुत्र है । स्वयं और
द्वार के पुत्र के ही कारण उनके एक अक्षर के लिखन साहित्य-कला में श्रेष्ठत्व
की वक्ता है । उनके वाचिनीय लिखनों में विषय कला का विचार कुशलता और
वाचिनीय के साथ हुआ है ।

लिखनी के लिखनों का सम्बन्ध करने के पश्चात् हम उनकी श्रेष्ठों की दो श्रेष्ठों
में विचार कर सकते हैं—मार्केण्डु विचारवाचक श्रेष्ठों और द्वार एक स्वयं दृष्टि
श्रेष्ठों । उनके वाचिनीय और विचारवाचक लिखनों में मार्केण्डु विचारवाचक श्रेष्ठों
प्राप्त हुई है । उनकी यह श्रेष्ठों अधिक श्रेष्ठ और नवत्व है । उनमें मार्केण्डु और
विचारों का सम्बन्ध कुशलता के साथ हुआ है । उनकी एक श्रेष्ठों में भी, बीच-बीच
में द्वार और स्वयं का पुत्र है । द्वार और स्वयं के पुत्र के ही कारण उनकी यह
श्रेष्ठों अधिक श्रेष्ठ और आकर्षक बन सकी है । विचारवाचक लिखनों में उनकी एक
श्रेष्ठों का ही उदाहरण हुआ है—'द्वारों का सर्वस्वों की श्रेष्ठ उत्पन्न विचार का सम्बन्ध
करते पाना दुर्लभ कार्य समझी हो चोके ही दिनों में का कुशलता निवृत्त बन गया,
और सर्व काष्ठ उत्पन्न नव में विचारवाचक करने तथा उत्पन्नित करने का उसे सम्बन्ध नव
वाचता ।'

लिखनी की दूसरी श्रेष्ठों द्वार और स्वयं दृष्टि है । लिखनी एक श्रेष्ठों के सम्बन्ध
और स्वाभाविक लिखनकार है । उनकी एक श्रेष्ठों की ही हम उनकी प्रतिनिधि श्रेष्ठों
कर सकते हैं । क्योंकि उनकी एक श्रेष्ठों पर उनके लिखनवाचक की दृष्टि स्थान है । लिख
नी लिखनी उत्पन्न के लिखन में । उनकी प्रकृति में द्वार के साथ हुए लिखने के ।
उनकी वाच-वाच में द्वार और लिखन सम्बन्ध था । वे मार्केण्डु लिखनों की वाचों में भी
द्वार और स्वयं का सम्बन्ध करते थे । उनके मार्केण्डु लिखनों में द्वार और स्वयं
का भी पुत्र है, सम्बन्ध नहीं सम्बन्ध है । क्योंकि उनकी वाचवाच प्रकृति का रंग उनके
मार्केण्डु लिखनों पर भी पड़ा है, पर उनमें उन्हें उनकी कुशलता नहीं मिली है, लिखनी

निदानी की भी उम्मेद की है। विराम दत्तदि जिनकी का प्रयोग भी उन्होंने बहुत कर दिया है। कदाचित् और मुद्राओं के प्रयोग की ओर उनका बहुत झुकाव था। किसी-किसी क्षेत्र में वे कदाचित् और मुद्राओं की पकड़ खत्म देते थे।

मिमकी की माता की जो बीबी लकी है, पर वह दोन पुत्र है । उनमें विविधता और सम्मनता है । मित्र और भ्रातृत्व के विषयों की समीक्षा करने के कारण उनकी भाषा में प्रधान होना का गर्व है । उन्होंने सभी के प्रयोग में सुझावों का भी स्थान नहीं दिया है । उन्होंने बहुत से ऐसे समर्थों का प्रयोग किया है, जो अपने समुदाय में हैं । जैसे—मोक्ष, मित्र, मित्र, और मित्रोत्तर इत्यादि । उनकी भाषा में जीवनसमय और सुनील का भी सम्बन्ध है । उन्होंने वैदिकों की रीत-रीवाज के विषयों की भी अपनी भाषा में स्थान दिया है ।

उपस्थान्त रस- कर्माचारकष नीचरी का काम सम्भत् २६१२ में एक कर्मिणा
मन्त्राय रस में हुआ था। मारलेदु काज के निर्माणकारी में नीचरीकी का मन्त्राय
मन्त्र है। मारलेदुकी के द्वारा कर्मिणा मन्त्र के मार्ग की उपस्थान्त करने में कर्मिणि
मन्त्रालीन रस दिया है। वे एक कर्मिणि रस में। उनमें रसिणी का हाट बाट था।
रसिणी का हाट बाट उनकी बाटों के भी उपस्थान्त था। वे भी भी बाट कर्मिणि, उसका
रस दिया जाता होता था। उनके बाटों में एक मन्त्र, नीच रसिणा होता था।
उनकी कर्मिणा का कर्मिणा रस रस में उनके कर्मिणा पर रस हुआ दिया
होता है।

बीचरीकी का साहित्यिक स्तरिताम बढ़े कभी के सपना हुआ है—निराकार के रूप में, नाटककार के रूप में, रचना के रूप में, और सभ्यतावाद के रूप में। बीचरी के सपनावादी की जो के अधिकतर सपनावाद निराशों की रचना की है।

साहित्य साधना : उनके विषयों के विषय का ही साहित्यिक है या साहित्यिक अभिव्यक्ति के है। उनके सभी विषयों पर उनके विराष्टे व्यक्तित्व का प्रभाव है। मल्ल रचना के क्षेत्र में चौमरीजी की अभिव्यक्ति का प्रभाव हुआ है। उन्होंने भी मल्ल की ही रचना की है, जिनमें 'मल्ल चौमरी' 'मल्ल साधना' और 'मल्ल रचना' का महत्व पूर्ण प्रभाव है। 'मल्ल चौमरी' में राष्ट्रीय मान्यताओं का विचार हुआ है। इसके बाद विभिन्न राष्ट्रीय भाषा भाषी हैं। भाषी के अनुसार ही इसके भाषा का रंग निर्धारित की है। 'मल्ल साधना' की रचना में साहित्य भाषा की प्रभावता है। 'मल्ल रचना' साहित्यिक भाषा है। इसमें मल्ल के विचारों और विचारों के विषय को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। प्रकाश के रूप में भी चौमरीजी की रचना 'मल्ल रचना' है। उनकी 'मल्ल साधना' साहित्य के इतिहास की प्रस्तुत है। के अपने साहित्यिक भाषी के विषय मल्ल साधना के ही द्वारा प्रस्तुत किया है। उन्होंने मल्ल की रचना नामक एक साहित्यिक रचना की विचारता या। चौमरी साधना में ही सर्व प्रथम 'मल्ल साधना' और 'मल्ल रचना' में प्रस्तुत की मल्ल रचना के रूप में ही रचित विचारों की। सर्व प्रथम उन्होंने ही प्रस्तुत की

समालोचना करने की उदा गयी में व्यवसायी की थी। मद्रासी में भी इस दिशा में प्रयास किया था। 'मद्रासी' और 'बीचरी' के बीच गयी में समालोचना करने की उदा हिन्दी में नहीं थी। इस रूप में 'बीचरी' के समालोचना के रूप में ही हिन्दी समालोचना की उदा करने का प्रयास किया है।

वेमजानकी के समय तक हिन्दी का वैज्ञानिक अधिक परिपुष्ट हो चुकी थी ।
इसके अधिकतर और और अधिक उत्तम हो चुका था । वेमजानकी के बाद हिन्दी का
वेमजानकी की प्राप्ति पश्चात्, वह उसके वाक्य में बड़ी परिपुष्ट हो गई थी ।

[illegible]

हीरो की अंतिम प्रियता की भाषा भी अधिक सुधिया और काव्यबोधित है। उन्होंने अपनी भाषा में हँस हँसकर समुदायिक और काव्यत्मक समुद्रों की स्थान प्रेमचरित्रों की देने का प्रयास किया है। समुद्रों के स्थापन तथा संगठन के भाषा उनका भाव प्रेम का समुदायिकता की ओर प्रेरित है। इसका परिणाम यह हुआ है, कि उनकी भाषा की मात्र व्यंग्यता नष्ट हो गई है। इससे कारण है, कि काव्यत्मक होने के कारण वह सरल बन गई है, पर इससे साथ ही साथ उसकी सुन्दरता का दोष भी उत्पन्न हो गया है। प्रेमचरित्रों में अपनी भाषा

को संस्कृत के लगभग सभी लेखी स्वरूपों का प्रचार किया है। उनके सभी सम्प-
दात्मिक और प्रकाशित हैं। उनके मातृ-सौभाग्य-मार्ग के एक दूसरी प्रकार की
भाषा भी आई जाती है, जिसमें अर्द्ध, भाषाहीन, वैष्णवी, मोक्षपुरी, वैष्णवी, गंगाही,
और वैष्णवी का प्रचार है। पर वैष्णवी की यह प्रतिनिधि भाषा नहीं है। मातृ-
सौभाग्य में उन्होंने लगभग प्रयोग केवल सभी को दृष्टि के किया है, उनकी प्रतिनिधि
भाषा नहीं है, जो कानुनात्मक प्रचार है, और उनके विचारों में प्रचार है। सभी
को उनकी भाषा में प्रकाशित प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे—'कानुनात्मक' और
कानुनात्मक। वैष्णवी की भाषा के यदि प्रतिनिधि और प्रचार न होते,
तो उनकी भाषा को कानुनात्मक प्रयोग और प्रचार नहीं मिले और वे सभी प्रचार भी प्रचार न
होते।

[illegible]

श्री निवासादासजी की शैली दो प्रकार की है । एक प्रकार की शैली ही यह है,
 जो उनके नाटकों में पाई जाती है, और दूसरे प्रकार की शैली यह है, जिसका प्रयोग
 श्री निवासादासजी उनके ललितानुसूय में हुआ है । उनके नाटकों की शैली
 की शैली की प्रशंसा करते हैं । उनकी इस
 शैली पर उन्हें का प्रभाव है । उनका प्रधान सूत्र नाटक 'लक्ष्मीर और में म मोहिनी'
 उन्हें के रस में ही हुआ हुआ है । पर उनकी इस शैली को इस उनकी प्रतिनिधि शैली
 नहीं कह सकते । क्योंकि उन्होंने अपने नाटकों में इस शैली का प्रयोग बहुत कुछ
 नहीं की निम्नलिखित पर आधारित रस कर दिया है । उनकी प्रतिनिधि शैली यह है जो उनके

परीक्षा गुप्त में व्यवहृत हुई है । उनकी इस शैली की हम बर्गीकरण शैली कह सकते हैं । इसमें व्यवहारिक शब्दों का प्रयोग नहीं कुशलता के साथ हुआ है । बीच-बीच में मुद्रावर्णों की भी स्थान दिया गया है, जिससे शैली आकर्षक, और यथार्थ रूप का है । निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी इस शैली का विकास नहीं कुशलता के साथ हुआ है—'देखिये परोपकार की दृष्टि काव्यगत उपकारों है, यन्त्रादयः से जाने कदने पर वह की चिरकृत जहाँ कलकरी बालकरी, और जलने कुटुम्ब परिवार का कुछ बरत हो जानता । जो काव्यकी जलना जलकियों की जलकता की, जो उसके संसार में काव्य-रस और वाग की सुदि होती ।'

की निराकारता की भाषा की जो प्रकार की है—एक प्रकार की भाषा यह है, जिसका प्रयोग उनके गद्यकी में हुआ है, और दूसरे प्रकार की भाषा यह है, जो की निराकारता परीक्षा गुप्त में व्यवहृत हुई है, उनके गद्यकी में जिस भाषा की की भाषा का प्रयोग हुआ है, उसमें उर्दू के लक्ष्य शब्दों की प्रयोगता है । पर उनकी इस भाषा को उनकी प्रतिनिधि भाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । क्योंकि उन्होंने अपने गद्यकी में इस भाषा का प्रयोग केवल वाणी की शक्तता की अनुपस्थिति के लिए किया है । उनकी वास्तविक भाषा यह है, जिसका प्रयोग उन्होंने अपने परीक्षा गुप्त में किया है । इसमें कहीं भीली के कुछ शब्द व्यवहृत हुए हैं । उनकी भाषा का स्वीकृता और प्रशंसनीय का जो अन्तर्भाव है । उन्होंने स्थान स्थान देते पर शब्दों का प्रयोग किया, जिससे प्रशंसनीय उपभूता है । वे—'हल्लो', उभे, उल्लो द्वादि । यहाँ कहीं निम्नलिखितों का प्रयोग भी स्वीकृता की आधार मान कर किया गया है । काव्यगत शब्दों का अनुप्राण प्रयोग की उनकी भाषा से निराला है । फिर भी हम उनकी भाषा की व्यवहारिक भाषा कह सकते हैं । उनके गद्यकी में जो भाषा है, वह परीक्षा गुप्त की भाषा से अधिक व्यवहारिक, संयमित और सुखी हुई है ।

काव्य परमेश्वरनिष्ठकी लक्ष्य प्रदेष्ट के व्यवहार के निराकारों के । उनका लक्ष्य समस्त २६.१४ में हुआ था । मंगलेश्वर हरिचन्द्रकी के से पवित्र स्थलों में से । हिन्दी, काव्य काव्य की संस्कृत और संस्कृत पर उनका आधिकार था । उनका साहित्य साधना आधिकारिक जीवन की कला में प्रसरत हुआ है—कवि के रूप में, और लेखक के रूप में । कवि के रूप में उन्होंने एक तरह मार्ग का अनुसरण किया है । उनका नवीन मार्ग मान्यता है । उन्होंने अपने नवीन मार्ग के निर्माण में शब्दों की और भाषा में देकर रूप विधान की और अधिक ध्यान दिया है । उनके इस नवीन मार्ग में शब्दों का वैधान और अनुपस्थिति की प्रकृति है । उन्होंने अपनी कविताओं का निर्माण प्रेम और प्रकृति की प्रपञ्चि पर किया है । उनकी अधिकतर रचनाएँ प्रेम और प्रकृति के ही विषय उपलब्ध करती हैं । तथा के बीच में भी उन्होंने अपनी कलाकारिता और मान परता का निर्वाह किया है । जिस प्रकार वे कविता के क्षेत्र में प्रकृति के सौन्दर्य पर विस्तार दिखाते देते हैं, उन्हीं

उपलब्ध रूप के क्षेत्र में भी उन्होंने मानव और प्रकृति के सीढ़ों की एकसमरिता का अनुभव किया है। उनका कवि अधिक सामान्यत्व, और मानवता है। उनका कवि वंश-वादात्मक युद्ध के युग से बहुत कुछ मिलाता जुड़ा है। मादनी की भाँति ही उन्होंने भी अपने कवि की अधिक अलङ्कार बनाने का प्रयत्न किया है।

ठाकुर साहब हिन्दी, संस्कृत, और बँगले की के अनेक विद्वान थे। उन्होंने संस्कृत और बँगले की के साहित्य का समीक्षात्मक तुलनात्मक अध्ययन किया था। उनकी रीढ़ों पर ठाकुर साहब उनके समीक्षक अध्ययन की छाप है। उनकी विद्वत्ता के अनु-की-रीढ़ों का ही उनकी रीढ़ों की अधिक सामान्य और व्यापक है। संस्कृत के अनेक कर्मों से लड़ी हुई उनकी रीढ़ों का अलङ्कारिता की और कठोर होती है। रीढ़ों को अलङ्कार बनाने की और उनका व्यापक विवेक मन से दृष्टिगत होता है। किन्तु प्रेमचन्द की भाँति उनकी रीढ़ों अलङ्कारी हुई नहीं है। अलङ्कारिता होती हुए भी उनकी रीढ़ों में प्रभाव और गुणवत्ता है। उनकी वह अपनी रीढ़ों है, जो अधिक विद्वत्ता, और विविधता के लगे हुई है। विमर्शित चरित्रों में उनकी रीढ़ों का विश्व देखिए—'वेले वंश का वंश के प्रवेश में अनेक विवेचनाओं की सीढ़ियों की मादियों और अनेक वंशियों के बीच होकर बढ़ती है, संस्कृत नामक वंश में निवास कर अनेक दुर्गम विषय और अलङ्कारों के ऊपर से बहुत से रीढ़ों और अनेकों की अपने दुर्गम जग से चमक करती बहुत से मिलती है।'

मादनी के काल के लेखकों में ठाकुर साहब की भाषा अधिक परिमार्जित और सुदृढ़ है। उनकी भाषा उन रीढ़ों से रहित है, जो उनके पूर्ववर्ती निम्नवर्गीयों में ठाकुर साहब काय करते हैं; जबकि उनकी भाषा में विरामादि चिह्नों की भाषा की वह अलङ्कारिता नहीं है, जो वंश-वादात्मक नामक विषयों की भाषा में है। उनकी भाषा में भी निम्नवर्गीयों की भाषा की भाँति अतिरिक्त रूप भी नहीं पाया जाता। उनके अतिरिक्त उनकी भाषा परिष्कृत और चोख सम्य है। यद्यपि उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत के अनेक कर्मों का अधिक प्रयोग किया है, पर उनके सभी कर्म प्रयोजित और व्यापक हैं। कर्मों के प्रयोग में उनकी अतिरिक्त भाषा की और अधिक दिखती देती है। उन्होंने अधिकतर ऐसे कर्मों का प्रयोग किया है, जिनमें अतिरिक्त की भाषा है। अतिरिक्त कुछ कर्मों के प्रयोग की अधिकता के कारण उनकी भाषा अलङ्कारितामय हो गई है। अतः ठाकुर साहब की भाषा में 'पुत्री' और परिष्कृत प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे—'दुर्गम वर्णित है', 'अनेक है', इत्यादि। इन कर्मों के लगे हुए भी उनकी भाषा अधिक सामान्य और आकर्षक है।

मादनी के काल के लेखकों में बाबू जीवन्मय, वंश-वादात्मक रीढ़ाओं, वंश-अलङ्कारितामय, वंश-केलिकाय मद्र, वंश-सौहार्दात्मक विष्णुताम रीढ़ा, वंश-वीर-वीर, बाबुजीय बाबू, बाबुजीयबाबू, और अतिरिक्त अनेक रीढ़ों इत्यादि का भी

महाकाव्य' स्थान है। काव्य लेखकका का काल सन् १८५४ में हुआ था। उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की है, जिनमें 'चौखिन्दा' और 'श्री कृष्णचिन्ता' का महत्व पूर्व स्थान है। वं० केदारनाथ महा का काल सन् १८५१ में हुआ था। उन्होंने भी गद्यकों की रचना की है—'कल्याण', 'कुँवर'। इनकी भाषा उर्दू है। वं० कल्याणचरण वसिष्ठानी का काल सन् १८६५ में हुआ था। उन्होंने कई मौखिक गद्य लिखे हैं, जिनमें राम सुन्दर का क, लाली बालाचल, और कल्याणचिन्ता और हैं। यह संस्कृत के अच्छे विद्वान थे, उनकी विद्वत्ता के अनुमान की उनकी भाषा भी है। वं० रामकल्याणचरण का काल सन् १८६९ में हुआ था। उन्होंने कई गद्य लिखे हैं, जिनमें कुल्लिनी बाबा, महाकाव्य कल्याणचिन्ता का काल सन् १८८८ में हुआ था। उन्होंने 'रत्न का चिन्तालेख' नामक एक गद्य लिखा है। 'रत्न', 'गर्भा', 'कल्याण', और 'कल्याणचिन्ता' नामक रचना के अन्तर्गत की उनमें गद्य हुआ है। कल्याणचरण का काल सन् १८८५ में हुआ था। इनका साहित्यिक व्यक्तित्व ही नहीं है बल्कि महत्त्वपूर्ण हुआ है—महाकाव्य के रूप में, और अनुमान के रूप में। महाकाव्य के रूप में उन्होंने सिन्धु देव की राजकुमारिणी, पुरी की रानी, और 'लाली का कल्याण' इत्यादि गद्यकों की रचना की है। उन्होंने कई औरों की पुस्तकों, और व्याख्याओं का अनुवाद भी किया है। इनके साहित्यिक रूपों में कई छोटी छोटी पुस्तिकाएँ भी लिखी हैं, जिनमें महाकाव्य की विषयगत किताबों के चरित्र, और औरों के चरित्रों का चरित्र नामक पुस्तकें हैं। वं० श्रीमती काव्य काव्य काव्य के। उन्होंने कई लेखों की रचना करते हिन्दी के प्रचार में महत्त्व पूर्व योग दिया था। वं० श्रीमती काव्य काव्य काव्य के अच्छे समर्थक थे। वं० श्रीमती काव्य काव्य का काल सन् १८६५ में हुआ था। वे हिन्दी, और संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान थे। कल्याणचरण के विद्वानों में उनका हृदय विद्वान था। उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की है, जिनमें कल्याणचरण, राम कल्याणचरण, विद्वान विद्वान, और 'कल्याणचरण' का महत्त्व पूर्व स्थान है।

भारतेन्दु काव्य हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक काव्य है। काव्य जिस हिन्दी गद्य की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हो रही है, उसकी नींव कई प्रथम भारतेन्दु काव्य में ही बड़ी की। भारतेन्दु काव्य के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की हिन्दी गद्य के सम्बन्ध में। भारतेन्दु काव्य की प्रतीति काव्य हरिश्चन्द्र की ने कई प्रथम हिन्दी गद्य के स्वरूप की निर्दिष्ट किया। गद्य के स्वरूप की निर्दिष्ट करने के साथ ही उन्होंने गद्य, उपन्यास, काव्य, और विविध इत्यादि लिखों पर पुस्तकों की रचना करते हिन्दी भाषा की इतिहास की भी प्रतीति की। उन्होंने साहित्यिक, इतिहास, और पुरातन आदि विषयों पर लिखों की रचना करते हिन्दी गद्य के क्षेत्र की विस्तृत करने का प्रयास किया। भारतेन्दु के कल्याणचरण विद्वानों ने भारतेन्दु की 'रत्न पुस्तक काव्य' में योग दिया। भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य के जिस 'गद्य' का निर्माण किया, उनके काल-

काशीन लेखकों ने उठी पर चढ़ कर हिन्दी गद्य के क्षेत्र को विस्तृत बनाने का मुख्य प्रयत्न किया है।

भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों को भाषा और शैली को वैज्ञानिकता पर विचार करने के पूर्व इसे भारतेन्दु की निष्ठा, और उनके गुण पर विचार करना चाहिए। भारतेन्दु का तो हिन्दी-गद्य का जन्म काल था। हिन्दी के गद्यमें उन दिनों कबेक कटिनाहरी भी। प्रथम कटिनाही जो उर्दू के कर्मवीरों की थी, और दूसरी कटिनाही वह थी, जो राज्याभिषेकियों की और से समस्त-समस्त पर उपनिषद की जाती थी। कलकत्ता वादाङ्गनों में स्वयं हिन्दी को स्थान मिला हुआ था, पर कदाहली को माना उर्दू ही थी। कदाहली का वाद्य नाम-वाद्य 'उर्दू' में ही किया जाता था। कलकत्ता लीकटियों को जर्मि में 'उर्दू' के ज्ञान को ही अध्यात्मता दी जाती थी। ऐसी कदाहली में लीकटों का हिन्दी की और कम आग्रह होना स्वाभाविक ही था। हिन्दी के प्रति लीकटों में उदासीनता की भावना थी। दूसरी और, उर्दू का पठन-पाठन रीति बलि पर था। चारों ओर उर्दू के समर्थक ही दृष्टिोन्मुख होते थे। हिन्दी-गद्य की वादाङ्ग की दृष्टि में लेखक चलने वाले भारतेन्दुजी की कितनी कटिनाहरी का सम्मान करना पड़ा होता। उर्दू के समर्थक कलम कबरेज उपनिषद कर रहे थे, और पञ्चा-विश्वी कलम मार्ग में बलि भिड़ रहे थे। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने बड़े साहस के साथ इन विरोधों को पार्श्वों को पार किया। उन्होंने विरोधों और कदा-हली के बीच से ही हिन्दी गद्य के मार्ग को खोद दिया, और उसकी मर्यादा को साहित्य समष्टि में स्थापित किया।

हिन्दी-गद्य की उत्पत्ति के लिए भारतेन्दुजी ने दो उन्नी में कार्य किया है—प्रचारक के रूप में, और निर्माता के रूप में। प्रचारक के रूप में भारतेन्दुजी को कई कार्य करने पड़े हैं। उन्होंने स्वयं समाचार पत्र निकाले, पुस्तकालयों की स्थापना की, और विभिन्न स्थानों में सभा सङ्गठितों स्थापित की, और व्याख्यान भी दिए। उन्होंने समाचार पत्र में, और पुस्तकालयों के रूप में हिन्दी के प्रचार के लिए निरर्थक भी लगे। दूसरा हिन्दी के प्रचार का कार्य और उत्तर हिन्दी गद्य की भाषा और शैली के निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य भी भारतेन्दुजी के सामने था। वह एक देहा कार्य था, जिसके उत्तर हिन्दी गद्य की सम्पूर्ण उत्पत्ति निर्भर थी। हिन्दी गद्य के प्रचार का कार्य करते हुए भारतेन्दुजी ने भाषा और शैली के निर्माण का कार्य बड़े मनोबल के साथ किया। उन्होंने हिन्दी गद्य की भाषा की एक स्वरूप में लीकट, और उसे परिमार्जित किया। उन्होंने गुण के मनोमानों का सम्बन्ध करके भाषा को व्यापक बनाने का भी प्रयत्न किया। भाषा की गति ही उन्होंने शैली का भी निर्माण किया। शैली की भी उन्होंने एक रूप में पूर्ण, और उसमें वैज्ञानिकता का भी सम्मेलन किया। भाषा और शैली के निर्माण को निम्ना ले लकर करते हुए भी भारतेन्दु जी ने विचारक कार्य किए। उन्होंने विभिन्न विषयों पर महत्वपूर्ण दृष्टि कालों की रचना की। कविता, कथानी, नाटक, कथासंग्रह और उपन्यास आदि

साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने एक नवीन पथ का प्रदर्शन किया। इस प्रकार हम देखते हैं, कि भारतेन्दुजी का सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन प्रचार और स्वरूप निर्माण-कार्य में अधिक व्यस्त दिखाई देता है। यही व्यस्तता उनके सहयोगियों के जीवन में भी है। उनकी इस व्यस्तता का पूर्ण प्रतिबिम्ब उनके गद्य पर है। प्रचार और स्वरूप निर्माण के कार्य में लगे रहने वाले भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के पास समय नहीं था, कि वे हिन्दी गद्य को अधिक से अधिक सुष्ठु बनाते। उनके सामने तो हिन्दी गद्य की दीवाल बनाने का प्रश्न था। उन्होंने बड़े मनोयोग के साथ हिन्दी गद्य की दीवाल को बना कर खड़ा की। इसमें सन्देह नहीं, कि वे हिन्दी गद्य की दीवाल को साफ-सुथरी और सुन्दर नहीं बना सके, पर हिन्दी गद्य की दीवाल के निर्माण की साधना का अर्थ उन्हीं को है। उनकी साधना उनसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, जो आज हिन्दी गद्य की दीवाल को साफ-सुथरी बना कर उसमें सुष्ठुता उत्पन्न करने की साधना में लगे हैं।

भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने हिन्दी गद्य के प्रचार और उसके निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण साधना की है। उनकी साधना के प्रतिकूल स्वरूप ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में गद्य का पौधा अंकुरित हो उठा। नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी गद्य के अंकुर में जल-दान का कार्य किया। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के कार्य काल के पश्चात् ही नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हिन्दी-गद्य के लिए ईश्वरी वरदान की तरह हुई है। नागरी प्रचारिणी सभा ने भारतेन्दुजी के प्रचार-केन्द्र को अपने हाथ में लेकर उसके आँगोष्ठन में तीव्रता उत्पन्न की। सभा ने विभिन्न रूपों में प्रचार कार्य तो किया ही, रचनात्मक कार्य की ओर भी अधिक ध्यान दिया। विभिन्न निषेधों पर पुस्तकें प्रकाशित की गईं, और 'वैज्ञानिक बोध' का भी निर्माण किया गया। नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयत्नों से हिन्दी-गद्य का पौधा लहलहा उठा, और अपनी इरीतिमा तथा सुन्दरता से वह लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने लगी।

हिन्दी गद्य—द्विवेदी काल

भारतेन्दुजी ने अपने समय में जिस हिन्दी-गद्य की नींव डाली थी, वह द्विवेदी काल में अधिक पुष्ट और सुदृढ़ हुई है। द्विवेदी काल की हिन्दी-गद्य की परिपुष्टता और उसकी सुदृढ़ता को देख कर इस बात का सन्देह में ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि भारतेन्दुजी ने जिस हिन्दी गद्य की नींव डाली थी, वह कितनी गहरी, और कितनी सुदृढ़ थी। उसकी गहराई और उसकी सुदृढ़ता के प्रतिकूल स्वरूप ही द्विवेदीजी हिन्दी गद्य के उस स्वरूप को सामने उपनिषत् करने में समर्थ हो सके हैं, जो अधिक सुष्ठु, परिमात्रित, और व्यवस्थित है। भारतेन्दु काल में हिन्दी गद्य में कम बारगु किया था, और साथ ही उसमें एक स्वरूप की बारगु किया था। द्विवेदी काल में वह अधिक परिमात्रित, और परिपुष्ट हुआ है। द्विवेदी काल में उससे उन दोषों का परिष्कार हुआ है, जो भारतेन्दु काल में समवाभाव के कारण उसमें रह गए थे। द्विवेदी काल में हिन्दी गद्य में एक दिग्गज रूप प्राप्त किया है, और साथ ही उसमें नवीन शक्ति का सम्भार हुआ है। द्विवेदी काल में हिन्दी गद्य ने शक्ति सम्पन्न होकर वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त किया है, और द्विवेदीजी के प्रयत्नों तथा उनकी साधना से साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी शक्ति की स्तम्भिता की है।

द्विवेदी काल में हिन्दी गद्य की बहुमुखी उत्पत्ति हुई है। इनमें सन्देह नहीं, कि भारतेन्दु काल में निबन्ध, नाटक, उपन्यास, आत्मचरित और गद्य-कल्प इत्यादि द्विवेदी काल की क्षेत्रों में हिन्दी गद्य अपने स्वरूप में प्रगट हो चुका था, गद्य की मजलक पर उसका वह स्वरूप अधिक निर्बल और असमर्थित था। द्विवेदी काल में उसके सीवर की निर्बलता दूर हुई है, और वह पुष्टता की प्राप्त हुआ है। द्विवेदी काल में वह असा व्यवस्था, और अनियमितता की सीमा से निकल कर अधिक व्यवस्थित और संगठित हुआ है। निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानी, और एकांकी इत्यादि के क्षेत्र में उसने नवीनता और वैज्ञानिकता की ओर अपना चरण बढ़ाया है। भारतेन्दु काल में वह केवल वर्णनात्मक था। द्विवेदी काल में वह वर्णनात्मक के घेरे से निकल कर मनोवैज्ञानिकता की ओर प्रसरण हुआ है। द्विवेदी काल में उसकी भाषा और शैली में स्पष्टता उत्पन्न हुई है। द्विवेदी काल में शब्दों के प्रयोग और उसके संघटन में, शब्दों की आंतरिक शक्ति और कर्म-व्यवस्था की

हो। यदि मैं अपना मत दे, दुसरे सुन्नों में किसीका मत तो हिन्दी-भाषा में माध, माध, और हीली-ग्रामेक शब्द में मनोवैज्ञानिकता और कार्य-व्यवस्था को ही लक्ष्य के रूप में अपना प्रतिफल माना है।

हिन्दो का काल के मध्य में आदिम के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत कुछ उन्नति की है। उनके वाद्य, उष्णकाल, कपड़ों, और निम्न हथकड़ी बालों का भी उन्नति हिन्दो का काल की उन्नति का प्रतीक है। उन प्रथम हम वाद्य की बहुत सी उन्नति के हैं। हिन्दो का काल में दो प्रकार के वाद्यों के लिए प्रमाण दिया गया है—अनुवाद के मार्ग पर वाद्य कर, और वाद्यकला का प्रमाण प्रदान करने। हिन्दो का काल के प्रथम वाद्य में अनुवादित वाद्यों की ही प्रमाण बन के स्थिति हुई है। इन वाद्य के अनुवादकों में श्रीराम कृष्ण वर्मा, और वाद्य श्रीरामकृष्ण महर्षी का नाम उल्लेखनीय है। श्रीराम कृष्ण वर्मा और श्रीरामकृष्ण महर्षी ने इन वाद्य में वैदिक की कई कृषि का अनुवाद करने हिन्दो के मध्यम की जाने का प्रमाण दिया है। उनमें अनुवादित कृषि में श्री और श्री, कृष्ण कृष्ण, पञ्चमी, पञ्चमी, पञ्च, वाद्य, देश वाद्य, विद्या विद्या, और विद्यावाद्य हथकड़ी का प्रमाण दिया है। उनके अनुवाद की एक वाद्यकला विशेष में वैदिक के कई वाद्यों का अनुवाद वर्णित, और अनुवादित मात्र में दिया। विशेषों के अनुवादित वाद्यों में पञ्चमी, वाद्यकला, कृष्णकला और वाद्यकला हथकड़ी विशेष प्रमाण है। उनमें हिन्दो कुछ विशेषों और वाद्य वाद्यों के भी अनुवाद हुए। विशेषों वाद्यों के अनुवाद कलाओं में विशेष श्रीरामकृष्ण महर्षी, और श्री अनुवाद वाद्यों का नाम उल्लेखनीय है। विशेष श्रीरामकृष्ण महर्षी ने वैदिक के वाद्यों का अनुवाद दिया। श्री अनुवाद वाद्यों में 'वैदिक' का अनुवाद कृष्णकला पूर्वक दिया है। कृष्ण के अनुवाद कलाओं में पञ्चमीकृत वाद्य श्रीरामकृष्ण महर्षी, श्री वाद्य वाद्य, श्री वाद्यकृष्ण महर्षी और श्री वाद्यकृष्ण महर्षी का नाम प्रमाण दिया है। पञ्चमीकृत वाद्य श्रीरामकृष्ण महर्षी के द्वारा कृष्ण के कई वाद्य अनुवादित विशेष हिन्दो में जाने, उनके नाम इन प्रकार हैं—वैदिक, वाद्यकला, कृष्णकला, महावीर कला, और वाद्यकला, वाद्यकला मात्र, और वाद्य विद्याविधि। पञ्चमीकृत वाद्य श्रीरामकृष्ण महर्षी के अनुवाद की मात्रा बहुत ही कड़ी कड़ी और कृष्णकला में प्रमाण है। श्री वाद्यकृष्ण महर्षी ने 'अन्तर्गत वाद्यकला' का अनुवाद प्रमाण दिया है। उनके अनुवाद की मात्रा अधिक वाद्यकला और मात्रा पूर्व है। कला श्रीरामकृष्ण महर्षी ने 'अन्तर्गत वाद्यकला' और 'वाद्यकला मात्र' का अनुवाद करने कृष्णकला वाद्य की। उनके अनुवाद की मात्रा अधिक वाद्य और मात्रा पूर्व है। उन्होंने अपने अनुवाद में मध्य में श्री वाद्य श्रीरामकृष्ण महर्षी का प्रमाण दिया है, पर कला के उन्होंने वाद्यकला की ही प्रमाण दिया है।

दिनेही भल मे' दन ओर कहीं जगुबलिल जाल तबनाई' सामने जलल रहे ई.

जहाँ दूसरी ओर मौलिक नाटकों की रचना के लिए भी महत्वपूर्ण स्थान मिल रहा है। हिन्दोई काष्ठ के मौलिक नाटककारों ने भी निम्नोरी काष्ठ लेखनीय, पं० अश्वमेधविहारी उपाध्याय, पं० आनन्दप्रसाद मिश्र, पं० अश्वमेध प्रसाद मिश्र, आ० शिवशम्भु शर्मा, और अश्वमेध प्रसाद पूर्ण का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। भी निम्नोरी काष्ठ लेखनीयों ने ही मौलिक नाटकों की रचना की है, जिनके नाम नीचे उल्लेखित हैं और महत्वपूर्ण हैं। यह दोनों ही नाटक निम्नोरी के हैं। नाटक कला की दृष्टि से इन्हें विशेष महत्व नहीं प्राप्त हो सका। 'द्वितीयोरी' ने प्रारम्भ में ही नाटक लिखे थे। इनके नाटकों का नाम 'अभिज्ञान नाटिका' और 'अनुष्ठान विषय आलोचना' है। इन नाटकों ने 'द्वितीयोरी' का प्रथम प्रयास ही देखने को मिलता है। ऐसा कहा जाता है, कि इन नाटकों ने 'द्वितीयोरी' ने अपनी महत्वपूर्ण की नींव की है। पं० आनन्दप्रसाद मिश्र ने 'अज्ञान कथा' की रचना की है। इनके 'अज्ञान कथा' पर 'अज्ञान कथा' की रचना है। पं० अश्वमेध प्रसाद मिश्र ने प्रथम निम्न, नीचे, और अज्ञान कथा की रचना की। इन अज्ञान कथा का 'अज्ञान' और अश्वमेध प्रसाद पूर्ण का 'अज्ञान कथा आलोचना' लिख है।

नाटककला की नींव ही हिन्दोई काष्ठ में उपाध्याय काष्ठ का भी नींव पर नींव के विषय हुआ है। अज्ञान काष्ठ ही यह है, कि हिन्दोई काष्ठ में उपाध्याय की रचना निम्नोरी नींव के साथ हुई है, अपनी और निम्नोरी विषय की नहीं हुई है। नाटकों की नींव कलाकारों के लिए भी ही उपाध्याय के प्रथम निम्न पर है—अनुष्ठान और नींव। अनुष्ठान कलाओं उपाध्याय करने वाली में नींवकला कला, भी नींवकला कला, भी कलाकारों अश्वमेध, और भी नींव प्रसाद पूर्ण का नाम अश्वमेध-नींव है। इन अनुष्ठानों ने नींव, अज्ञान, और नींवों के उपाध्यायों का अनुष्ठान हिन्दी में उपस्थित किया। इनकी नींव और नींवोरी विषय नींवकला है। इनोरी नींव, अज्ञान और नींवों के नींव प्रसाद लेखकों की कलाओं का अनुष्ठान हिन्दी में उपस्थित करने हिन्दी का महत्वपूर्ण कलाकार है। इन अनुष्ठान कलाओं के नींव हिन्दी कला के अज्ञान में अज्ञान प्राप्त हुई, वहीं हिन्दी कला की नींव और नींवों की नींव अज्ञान कला नींवकला और नींव-नींव हुई है। इन अनुष्ठान कलाओं ने हिन्दी में नींव के विविध दृष्टिकोण उपस्थित किए हैं, और नींव ही हिन्दी में मौलिक उपाध्याय रचना के लिए प्रेरणा भी अज्ञान की है। मौलिक उपाध्यायों की नींव करने वाली ने भी नींवों नींव कला, पं० निम्नोरी काष्ठ लेखनीय, पं०, अश्वमेधविहारी उपाध्याय, आ० शिवशम्भु शर्मा इत्यादि का नाम उपाध्याय है। मौलिक उपाध्यायों की रचना करने वाली के भी नींवकला कला का नाम नींव प्रथम काष्ठ है। भी नींवकला कला नींव नींवोरी और निम्नोरी उपाध्यायों की रचना की है। इनके उपाध्यायों ने नींवकला नींव, नींव नींवोरी, और नींव नींव इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके

उपन्यासों के हिन्दी-प्रसार में प्रसिद्धीय सहायता प्राप्त हुई है। बहुत से लोगों ने इनके 'चंद्रकांता संतति' नामक उपन्यास को पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी। इनके 'चन्द्रकांता संतति' का हिन्दी में एक जुग था। इनके उपन्यासों की भाषा बहुत ही सरल और उर्दू मिलित है। वं० किशोरीदास मोरारामी ने छोटे बड़े सब मिश्र कर एक उपन्यासों की रचना की है। हिन्दी साहित्य में यही पहले उपन्यासकार है, जिसकी रचनाओं में औपन्यासिक कला का विकास हुआ है। इनके उपन्यास पत्र-पत्रिका और सामाजिक हैं। कथानक, भाषा, शैली, और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इनके उपन्यास आधुनिक उपन्यास के संश्लेष हैं। कब: हिन्दी-साहित्य के कई कलाशौचक नीमासीजी को ही हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यासकार मानते हैं। इनके उपन्यासों में 'राजा', 'चण्डाल', 'रक्त-सन्निधि', 'दूरव दारिद्र्य', और 'राजका केसर हथारि का महान् दुर्घ' स्थान है। वं० लक्ष्मणसिंह उपन्यास में ही उपन्यासों की रचना की है, जिसका नाम 'देव हिन्दी का राज', और 'अपवित्रता फूल' है। इनोंने अपने उपन्यासों में अपने भाषा के दृष्टिकोण की ओर विशेष स्थान दिया, उल्लेखनीयता की ओर बढ़ी। यही कारण है, कि इनकी इन रचनाओं में 'अधिक' और 'अप्राप्त' का विकास बहुत ही स्थान भाषा में हुआ है। वं० लक्ष्मण देवता ने भी कई मौलिक उपन्यास लिखे हैं, जिनमें हिन्दू धर्म, आदर्श दर्शाते, और भिक्षु का सुदार, हथारि उपलब्धनीय हैं। बाबू लक्ष्मण सहाय ने उपन्यास के क्षेत्र में परिपूर्ण उपलब्धता किया है। इनोंने उपन्यास की अवधारणा प्राप्त की मात्र की ओर देखा है। इनोंने ही मात्र 'दुर्घ' उपन्यास लिखे हैं, जिसका नाम 'सौमित्रात्मक', और 'प्रायश्चित्त' है। इन उपन्यासों में वैसी वर्णन के क्षेत्र की क्षेत्र कर मात्र-अप्राप्त की ओर अग्रसर हुई है।

ही से भारतीय काल में ही छोटी कहानियों का हिन्दी-साहित्य में नाम हो चुका था, पर उल्लेखनीय विकास द्वितीय काल में ही हुआ है। आज किसे 'पद्म', और कहानी कहते हैं, उनकी तीन द्वितीय काल में ही बढ़ी है। हिन्दी साहित्य की प्रथम कहानी लोग 'हनुमन्ती' की मानते हैं, जो वं० किशोरीदास मोरारामी की शैलीनी के विकास कर वं० १९३७ में 'कलश्री' में प्रकाशित हुई थी। वैराग्य में इनके पूर्व ही कहानी का विकास हो चुका था। 'कलश्री' में वैराग्य की अनुसंधान कहानियाँ प्रायः प्रकाशित हुआ करती थी। कलश्री के द्वारा अनुसंधान कहानियों को प्रस्तुत करने का क्षेत्र वं० विरिञ्चयुक्त वीर को है। वह लाला 'वर्षादी नंदन' के नाम से कहानियों का अनुसंधान किया करते थे। छोटी कहानियों की रचना करने वाली में 'नंद महिषा' का नाम भी महान् पूर्व है। 'नंद महिषा' ने ही प्रसार की कहानियाँ अपने प्रस्तुत की है—अनुसंधान और मौलिक। उनकी मौलिक कहानियों में 'हुलाई वाली' अधिक महान् पूर्व है। कुछ लोगों का कथन है, कि आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से 'हुलाई वाली' ही हिन्दी की बढ़ प्रथम कहानी है, जिसमें कहानी कला का वैचारिक रूप में विशेष हुआ है। इसके पश्चात् लगान

बर्खास्त प्रवाद की कदाचित्ही का तुल्य जाता है। मानीय बर्खास्त प्रवाद की प्रथम कदाही 'बाल' दण्ड में प्रकाशित हुई थी। इसके पश्चात् उन्होंने कैबड़ों कदाचित्ही लिखी। उनको कदाचित्ही के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु खोखो और खिलखिल इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं। छोटी कदाचित्ही की रचना करने वालों में श्री बी० पी० श्रीवास्तव, विश्वनाथनाथ शर्मा श्रीधर, अधिकांशक महाश्वेत, श्री मालाचरण शर्मा, श्री चन्द्रधर शर्मा दुबेही, और लखीम प्रेमचंद इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दी काल में निरन्तर के क्षेत्र में महान् पूर्ण प्रयत्न हुए हैं। निरन्तर काल की दृष्टि से हिन्दी काल अधिक लक्ष्मणनीय है। श्री श्री निरन्तर काल का प्रथम महाश्वेत काल में ही हो चुका था, पर महाश्वेत काल में निरन्तर काल का प्रथम हीन हीन क्षेत्र में ही था। महाश्वेत काल में निरन्तर काल केवल बर्खास्तगत थी। उसके विषय का ही साहित्यिक होने के, का सामाजिक। सामाजिक विषयों में साहित्यिक क्षेत्रों, विषयों, विषयक दृष्टि, और साहित्यिक इत्यादि का प्रयोग ही इसका क्षेत्र था। कुछ निरन्तरकारी में साहित्यिक क्षेत्रों के निरन्तरों को ही प्रयत्न करने का प्रयत्न किया है। पर उनके प्रयत्नों में समीक्षा और समीक्षा का प्रयोग है। हिन्दी काल में निरन्तरकाल में एक लक्ष्मण लक्ष्मण प्रयोग किया है। हिन्दी काल की निरन्तर काल प्रयोग की बीना से निरन्तर कर लक्ष्मणलक्ष्मण की और प्रयत्न हुई है। प्रयत्न ही नहीं हुई है, कात् उनके लक्ष्मणलक्ष्मण के क्षेत्र में प्रयत्न करने का प्रयत्न भी प्रयत्न किया है। हिन्दी काल की निरन्तर काल पूर्ण रूप से विचारान्तरक और निरन्तरकाल है। कदा कदा वह बर्खास्तगत है, कदा ही उस र निरन्तरकाल का रंग दिखाई देता है। उसका पूर्ण रूप से प्रयत्न कर लक्ष्मण और प्रयत्न प्रयत्न की क्षेत्र है। उसके पूर्ण रूप से प्रयत्न की है। वह अपनी दृष्टि कालों के काल प्रयोग पर न लक्ष्मण कर लक्ष्मण दृष्टि पर ही प्रयत्न प्रयत्न है। वह वह केवल सामाजिक क्षेत्रों और लक्ष्मणों के ही प्रयत्न पर नहीं लक्ष्मण, परन्तु क्षेत्र में प्रयोग काली है, और उनके क्षेत्रों के लक्ष्मण है। वह वह काल, साहित्य, इतिहास, साहित्य और प्रयत्नलक्ष्मण क्षेत्र में प्रयत्न का प्रयत्नलक्ष्मण करती है। प्रयत्न के प्रयत्नलक्ष्मण और उसके क्षेत्रों के प्रयत्न में ही हिन्दी काल की निरन्तर काल प्रयत्न दिखाई देती है।

हिन्दी काल के निरन्तरकारी और प्रयत्न निरन्तर क्षेत्रों को इन ही क्षेत्रों में प्रयत्न करती है—प्रथम प्रयत्न के क्षेत्र, और प्रयत्न प्रयत्न के क्षेत्र। हिन्दी काल के प्रथम प्रयत्न के क्षेत्रों में श्री महाश्वेतलक्ष्मण हिन्दी, श्री देवकी लक्ष्मण शर्मा, श्री चिन्ती लक्ष्मण लक्ष्मण, श्री साधन प्रयत्न, श्री काल प्रयत्न प्रयत्न और श्री लक्ष्मण लक्ष्मण प्रयत्न इत्यादि का प्रयत्न पूर्ण स्थान है। हिन्दी काल के प्रयत्न प्रयत्न के इन क्षेत्रों में प्रयत्न और प्रयत्न का प्रयत्नलक्ष्मण करने। उसके क्षेत्र को प्रयत्न करने का प्रयत्न किया है। प्रयत्न प्रयत्न के क्षेत्रों में प्रयत्न प्रयत्न, प्रयत्न

इसमझुनरुदाय, पं० चंद्रधर शर्मा शुक्ली, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० रघुसिंह शर्मा, श्री कल्याणराम प्रसाद, श्रीरामजीराम देवचंदजी का नाम उल्लेखनीय है। इन लेखकों ने द्विवेदीजी द्वारा परिचालित मास, और लेखों को मनोवैज्ञानिकता के लीये से ढाल कर उसे साहित्य से साहित्य निरीक्षणरूपक बनाने का प्रयत्न किया है। द्विवेदी काल में निरग्रह कहा जाय, भाव, शैली, और विषय-कालिक दृष्टि के साहित्य को संश्लेष होमाहो की लेख कर निरुपलब्धता की ओर आकर्षण होती हुई दिखाई देती है। इन लेखकों की रचनाओं में आधुनिक मनोवैज्ञानिक कला का पूर्ण रूप से विकास हुआ है। काव्य की रचनामें द्विवेदी-साहित्य की आधुनिक सामग्री समझी जाती है, वे द्विवेदी काल के द्वितीय चरण : इन लेखकों की ही उपस्थिति का फल है।

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सं० १८९२ में हुआ था। द्विवेदीजी का साहित्यिक जीवन द्विवेदी साहित्य के लिए साहित्य महत्त्वपूर्ण है। काल की हिन्दी द्विवेदीजी के द्वारा गद्य साहित्य परचलित और पुष्पित हो रहा है, वह की एक महत्त्व द्विवेदीजी की ही देन है। उसे प्रकृति और पुष्पित करने के लिए द्विवेदीजी से शुरुआत साधनाई की। द्विवेदीजी की साधनाओं की शुरुआत की समझने के लिए उनके समय पर दृष्टिगत करना चाहिए, और साथ ही हिन्दी की एक विधिति पर भी ध्यान देना चाहिए, जो उनके साहित्यिक के पूर्व की। द्विवेदी जी का युग शरीर विज्ञान, और साधनों के प्रकाश का युग था। बीसवीं शताब्दी अपनी पूर्ण प्रकृति पर निरुपलब्ध था। उनकी प्रकृति में वह उत्पन्न हो गया था। वह उत्पन्न हो जाने के कारण साधनों की ओर से ध्यान-ध्यान पर आध्यात्मिक पूर्ण आमाशकी शुरुआत किए जा रहे थे, जिसके प्रतिफल उत्पन्न देश के भीतर राष्ट्रीयता की लहरें उत्पन्न होती का नहीं थी। शरीर शरीर बीसवीं शताब्दी के विचार विरोध, और विरोधता का मान बढ़ता जा रहा था। बीसवीं शताब्दी के प्रकाश के कारण वैज्ञानिक ज्ञान का उदय हो चुका था, और अब उत्पन्न प्रकाश सर्वत्र व्यापी हो रहा था। समाज के भीतर सर्वत्र वैज्ञानिक और मान उत्पन्न होने का रहे थे। प्रकाशपूर्ण कटिबंध उत्पन्न होती का रही थी, और उनके ध्यान पर देश-पंक्ति-विरोध की रचना होती का रही थी, जिनमें मानवता की भावना थी। समाज और सामाजिक के इस नव प्रकाश युग आध्यात्मिक में हिन्दी की साथ साथ बढ़ती ही का रही थी। हिन्दी के प्रति अब लोगों का ध्यान आकर्षित हो गया था, और लोग यह समझने लगे थे, कि देश की उन्नति के साथ ही हिन्दी की भी उन्नति होना आवश्यक है।

पर अभी हिन्दी लड़ी लेखों का साथ साथ न था। बीसवीं और उर्ध्व का आध्यात्मिक अब भी बना हुआ था। अब भी अपनी कठिने के लिए हिन्दी लड़ी लेखों की संघर्ष करना ही एक रहा था। लड़ी लेखों अपने पैरों पर लड़ी आध्यात्मिक हो गई थी, पर अभी उसमें बढ़ता का आध्यात्मिक था। इसलिए वह अभी अभी लड़कड़ा पर फिर भी पड़ी थी। लड़ी लेखों के उत्पन्न के उत्पन्न में अभी तक कोई व्यवस्था

निश्चित नहीं हो सकी थी। भाषा और शैली का एक ही जमीन तक कुछ निश्चित नहीं हो सका था। भाषा और शैली के क्षेत्र में कभी लेखक सत्यता थे। भाषा और शैली के सम्बन्ध में कलकत्ता पुस्तक-पुस्तक खम्बे इतिवृत्त था। इतिवृत्त, जहाँ-जहाँ के पुस्तक-पुस्तक खम्बे दिखाई पड़ते थे। भाषा के क्षेत्र में पूर्ण रूप से सत्य नभसता। शैली हुई थी। कुछ भाषा की ओर ओलों का बहुत कम ध्यान था। लोग लेखक-लेखिका के विषयों की उलझा किया करते थे। खम्बों के खम्बे में भी सत्य नभसता और अनिश्चितता थी। ऐसे खम्बों का प्रयोग प्रायः देखने में आता था, जो बहुत हीने के साथ ही साथ अन्धकारिक होते थे। खम्बों के प्रयोग में लोग सत्यवादा के साथ होते थे। प्राचीन, धार्मिक, और आधुनिक खम्बों का खम्बे में बहुतसे के साथ किया जाता था। जहाँ-जहाँ में खम्बे का प्रयोग भी किया किसी संशय के होता था। खम्बों के प्रयोग ने भाषा की सत्यता नहीं दी जाती थी। भाषा में खम्बे का उत्पन्न करना ही खम्बों के प्रयोग का लक्ष्य था। कला भाषा में निश्चितता की भाषा अनिश्चित और अनिश्चित का पूर्ण रूप में सम्भव था।

भाषा की सीमा ही शैली के क्षेत्र में भी सम्भवता नहीं हुई थी। किन्तु प्रचार भाषा अनिश्चित और अनिश्चित थी, उसी प्रकार शैली का भी कोई निश्चित स्वरूप न था। जिससे लेखक थे, उनकी अपनी-अपनी शैली थी। एक में कृति-मत्ता और आकाश का ही सम्बन्ध था। किसी भी प्रकार खम्बे का उत्पन्न करना ही शैली का अनिश्चित था; अनिश्चित स्वरूप शैली में अनिश्चितता का सम्भव था। प्रचार, और आकाशिकता की सत्यता बहुत कम दिखाई पड़ती थी। शैली के निर्माण में कोई काम न था। जहाँ-जहाँ लेखक लेखिका दिखाई पड़ते थे, वही जहाँ बहुत छोटे छोटे। जहाँ-जहाँ लेखक लेखिका के साथ छोटे छोटे भाषा का बहुत सम्बन्ध भी देखने की मिलता था। जहाँ-जहाँ के उत्पन्न खम्बों की प्रभावता होती थी, वही जहाँ उर्ध्व के खम्बों की। जहाँ-जहाँ उत्पन्न के उत्पन्न खम्बों के साथ उर्ध्व खम्बों का प्रयोग भी देखने की मिलता था। निराम-इत्यादि चिह्नों की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता था; अनिश्चित स्वरूप शैली में प्रचार, आकाशिकता, और प्रचार का पूर्ण रूप सम्भव था।

साहित्य निर्माण में जहाँ-जहाँ अनिश्चितता में था। कदापी, नारक, और अनिश्चित के क्षेत्र में अनुवाद की धूम थी। कदापी, नारक, और अनिश्चित के क्षेत्र में अनिश्चितता की धूम हो चुकी थी, पर जमीन तक की जमीन दूर थे, उनकी सति जीवन के बाह्य क्षेत्र तक ही सीमित थी। जहाँ-जहाँ अनिश्चितता के साथ अनिश्चित में अनिश्चित न हो सका था। कदापी, अनिश्चित, और नारक के क्षेत्र में जमीन तक की जमीन हुई थी, उनके विषय का ही अनिश्चित थे, वा ऐतिहासिक और वा आधुनिक। अनिश्चित और अनिश्चित अनिश्चित और अनिश्चित की भी बाढ़ थी। इनमें केवल कदापी की ही प्रभावता थी। अनिश्चित निर्माण की अनिश्चितता

समय वाला थे, जो कहीं छोटे छोटे नामों दिखाई पड़ते थे। द्विपदीयों में हीरों के चोंच में अभिष्ट होकर हीरों के लक्षणों में लेखकों की लक्ष्मण्यता की दूर किया। उन्होंने लोगों के सामने शुद्ध और मजबूतवाक्य हीरों उपस्थित की। उन्होंने ही हीरों उपस्थित की, वह उनके प्रचार के शुद्ध और परिमार्जित की। उनमें शोक, प्रसन्न, और माधुर्य था। वह सबों की ओर उन्मुख थी। उनमें स्वाभाविकता और स्वच्छता का समावेश था। न उनमें बहुत बड़े बड़े नाम थे, और न बहुत छोटे छोटे। नामों का अनुपपन्न उनमें नहीं हुआ। उनके साथ स्वाभाविकता बना था। संयमित और अनुपपन्न होने के कारण वह अधिक सरल, और व्यवस्थित भी थी। इस प्रकार हीरों का निर्माण करने के साथ ही साथ द्विपदीयों में उन लेखकों की कठोर साक्षीयता की, जो भाषा और हीरों के चोंच में लक्ष्मण्यता के साथ कार्य कर रहे थे। ऐसे लेखकों की कठोर और स्वयं पूर्ण साक्षीयता के लिए द्विपदीयों की लेखनी लक्ष्य होकर दिखाई पड़ती थी। इसका परिणाम यह हुआ, कि सभी लेखकों में सम्यक्ता उत्पन्न हो गई, और लोग द्विपदीयों की साक्षीयता के भय से शुद्ध भाषा और हीरों का प्रयोग करने लगे।

साहित्य निर्माता के चोंच में द्विपदीयों में कई सों में सामना की है—संपादन के रूप में, निर्बंधन के रूप में साक्षीयक के रूप में, और चरित्र के रूप में। द्विपदीयों का साहित्यिक जीवन उनके द्वारा सम्पादित 'साल्वरी' से ही अधिक प्रारम्भ हुआ है। उन्होंने साहित्य के चोंच में जो प्रारम्भ शुरू कार्य किया है, उनमें साल्वरी का ही अधिक योग रहा है। 'साल्वरी' एक सादर वृत्ति थी, जो सभी प्रकार के उपरोक्त सोंचों से मुक्त थी। साल्वरी के सम्पादन के शुरू हिन्दी साहित्य में साल्वरी वैसी वृत्ति का प्रारम्भ था। कदा हम यह कहते हैं, कि द्विपदीयों में साल्वरी के सम्पादन द्वारा हिन्दी के सम्पादन कला के लक्ष्य की अधिक ऊँचा उठाना। उन्होंने हिन्दी के सम्पादन के सामने एक सादर उपस्थित किया। उन्होंने साल्वरी में कई ऐसे सामान्य स्थापित किए, जिसके समर्थ में यह कहा जा सकता है, कि जहाँ बहुत से साल्वरी के पुस्तों में ही सम्पादित हुए थे। द्विपदीयों में साल्वरी सौन्दर्य दृष्टि उपर साक्षीय की उपस्थिति की सामने रख करके ही साल्वरी के लिए वाक्य सामग्री का प्रयोग किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि उन्होंने हिन्दी सम्पादन कला के चोंच को अधिक विस्तृत किया, और उसे साधुनिष्ठता के चोंच में डाला। साल्वरी के सम्पादन और उसके सम्पादन को देख करके ही हिन्दी में इस प्रकार की सम्पादन कार्य सम्पादित होने लगे, किन्हीं साधुनिष्ठ सम्पादन-कला की कठोरता पर कला का सकता था।

निष्कर्षकार के रूप में द्विपदीयों को अधिक लक्ष्य नहीं प्राप्त हो सकी है। इसका यह कारण नहीं, कि द्विपदीयों में सम्पादन निर्बंधन रचना की वृत्ति और वृत्ति का समावेश था। यहाँ तक प्रतिष्ठा का प्रश्न है, द्विपदीयों में सर्वोत्तम

प्रतिभा विद्यमान थी। वह सांख्यिक भाव ही यह है, कि हिन्दीकी का प्रधान सदैव निर्माण और प्रचार की ओर ही गया रहता था। उनका ध्यान साहित्यिक दृष्टि से निर्बंध रचना की ओर नहीं था; वरन् उनका ध्यान था, हिन्दी भाषा और देशी के परिष्कार की ओर तथा हिन्दी के संसार को विविध ज्ञान-विज्ञान से मारने की ओर। विविध विषयों पर निर्बंध विचारों की ओर ही उनका बड़ा ध्यान रहता था। वे निरन्तर किल्ले के सिद्ध कहा गये-गये विषयों की ही ओर से आता रहा करते थे। इस प्रकार उनके पास उन विषयों की रचना के सिद्ध कला का ज्ञान था, जिन्हें साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रों के निरन्तर कहते हैं। हिन्दीकीने ने विविध विषयों पर प्रचार, और प्रचार की दृष्टि से ही निर्बंध किये हैं। उनके विषयों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—साहित्यिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, और जीवन चरित्र। उनके सभी विषयों में उनकी अपनी भाषा और अपनी शैली है। उनकी भाषा बड़ी सरल, और दृढ़ रहती है। उन्होंने अपनी भाषा को किसी सीमा से बन्ध न करने के उनके क्षेत्र की विस्तृत बनाने का प्रयत्न किया है। उनकी शैली सुगम और मार्मिक रहती है। भाषा की मूर्ति ही उनकी शैली को अधिक सरल, और दृढ़ बनाती है।

हिन्दीकी हिन्दी साहित्य के प्रथम आलोचक हैं। आलोचना के क्षेत्र में उन्हें प्रथम उन्होंने ही उस पद्धति का आधिकार दिया, जिसका नाम साहित्य काल से अधिक सम्मान है। हिन्दीकी का एक समालोचक है। आलोचना की दृष्टि हमसे आधुनिक जन से निकल करती थी, यही कारण है, कि उनकी आलोचना में स्वाभाविकता होती थी। स्वाभाविकता होने के साथ ही साथ उसमें निर्विकलता का प्रचुर प्रकाश भी होता था। हिन्दीकी ने आलोचना करते समय कभी किसी का हकीकत नहीं करते थे। उनकी ही बात कहती शैली थी, उनके थे बड़े वाद और निर्विकलता के साथ कहते थे। यही कारण है, कि उनकी आलोचनाओं में कभी कभी अधिक बहुत उसका हो जाती थी। उनकी आलोचनाओं की हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) आधुनिक साहित्य और साहित्यकारों की आलोचना, (२) समाजविक साहित्य और साहित्यकारों की आलोचना। अपनी दोनो प्रकार की आलोचनाओं में उन्होंने अधिक सत्य और निर्विकलता का परिचय दिया है। महाकवि आशिदास की कविता की आलोचना में उन्हें अपने स्वार्थों के बीच आभास करा दिया था। हम साहित्यिक साहित्य और साहित्यकारों की आलोचना में अपनी लेखकों के विचार से करते थे। उनकी तीन आलोचनाओं के परिचय प्रत्यक्ष ही हिन्दी कथा के मोड़ से होत ही थे जिससे दूर हो गये, फिरके कारण उसका शरीर चौड़ा और बड़ी होता था रहा था।

हिन्दीकी अपने जीवन के प्रथम चरण में कविता लिख करते थे। उनकी को कविता हमारे सम्मुख है, उनके कदमों में ही वह निष्कर्ष लिखाया था उसका है, कि हिन्दीकी ने एक रचना की जिसकी सन्धियों की, उसकी रचना-रचना की नहीं

को। यही कारण है, कि आज्ञा विमोक्ष में उन्हें अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। उन्होंने साहित्यिक जीवन के प्रथम चरण में देश, धर्म, उद्योग, और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रचना की है। यह सभी रचनाएँ प्रकीर्ण हैं, और अत्यन्त फलहीन के लिए ही उपयुक्त हैं। हिन्दीकी ज्यों-ज्यों साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट करते गए, ज्यों-ज्यों व्यक्ति के अन्तर्गत 'व्यक्ति' हुआ गया। अंत में तो वे केवल संस्कार, आलोचना और निर्यात ही रह गए थे। हिन्दीकी जो आने आने इन्हीं ज्यों के कारण अधिक प्रगति प्राप्त हुई है। उनके साहित्यिक कर्मों में उनका आलोचना, और संस्कार का सब कर्मों अधिक प्रभाव है।

हिन्दीकी गद्य के विचारक थे। हिन्दी गद्य की शैली और उसकी भाषा के क्षेत्र में वे उन्होंने 'व्यक्तिगत' आत्मज्ञान की है। हिन्दी गद्य शैली के निर्माण और उनके हिन्दीकी को 'व्यक्तिगत' में उन्होंने को प्रथम किया है, यह बहुत शैली और उदात्त है। आज गद्य शैली का जो 'व्यक्तिगत' और 'व्यक्तिगत' स्वतन्त्र हमारे सामने दिखाई पड़ता है, उसका निर्माण हिन्दीकी के ही द्वारा हुआ है। हिन्दीकी में अपने 'व्यक्तिगत' निर्माण की रचना शैली के निर्माण और उसके विकास की दृष्टि से की है। उनके निर्माण का सब हम सम्भव करते हैं, तो उसमें हीन प्रचार की शैलियाँ पढ़ें हैं—व्यक्तिगत शैली, आलोचनात्मक शैली, और व्यक्तिगत शैली। उनकी हीन प्रचार की शैलियाँ अधिक सरल और सुन्दर हैं। उनकी हीन प्रचार की शैलियों पर उनके अन्त और प्रगति पूर्ण व्यक्तिगत की रूप है।

हिन्दी के प्रचार में हिन्दीकी को व्यक्तिगत शैली से अधिक सफलता मिली है। उन्होंने अपनी इस शैली में आत्म-निर्माण संकायों के लिये लिखे हैं। हिन्दीकी प्रथम शैली है, हिन्दीने इन विषयों पर लेख लिखने का प्रयत्न किया है। उनके इन विषयों के लेख 'व्यक्तिगत', 'व्यक्तिगत', 'व्यक्तिगत', और 'व्यक्तिगत' हमारे भाषाओं में इसे दूर लेखों के कारण हुआ करते थे। उन्होंने यही सफल और उपयुक्त भाषा में इन लेखों में भाषा का उपयोग किया है। हिन्दीकी में अपनी इस शैली में एक विचार की प्रति अपने विचार को सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने विचार की प्रति ही व्यक्ति की अन्त कर बार बार समझने की चेष्टा की है। विचार को सब करनेके उद्देश्य से ही उन्होंने एक ही दृष्टि को बार-बार कई बारों में कहा है। विचारों के लिए हिन्दीकी को यह शैली अत्यन्त कर ही मिली है। पर प्रचार की दृष्टि से उनकी इस शैली का अधिक महत्त्व है। उन्होंने अपनी इस शैली में गद्य में गद्य विचार की ही सफलता के साथ सफलता का प्रयत्न किया है। निर्यात शैली में उनकी इस शैली का सब व्यक्तिगत हुआ है—'व्यक्तिगत' भाषा-विचार दिखाने के उद्देश्य से किसी लेख का प्रचार की रचना का जो कई ही ही ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिसे व्यक्तिगत प्रचार समझ लेंगे। सभी सफलता का।

उद्देश्य बनाता होता, सभी उसके करने वाले के मान और मान्य की रुचि होती।

हिन्दी की दूसरी शैली आलोचनात्मक है। इस शैली में हिन्दी की वे विशेषताएँ हैं, जिनकी रचना उन्होंने आलोचना के उद्देश्य से की है। हिन्दी की वे आलोचना संकली हिन्दी का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। हिन्दी की वे पूर्व हिन्दी में भाषा के नाम पर एक प्रकार का लेखनकार का पैसा हुआ था। लोग तब के क्षेत्र में सम्बन्धिता का बर्णन करते थे। आलोचना के विषयों और विषय चिह्नों के प्रयोग की और किसी का निरन्तर ध्यान न था। लोगों की दृष्टि में हिन्दी हरेक-धीन की थी। कुछ लोग हिन्दी की बढ़ती हुई प्रगति का चिन्ता भी कर रहे थे। हिन्दी की वे भाषा की दृष्टि कला व्यवस्थाओं की दृष्टि के लिए अपने आलोचनात्मक विषयों की रचना की। उन्होंने अपने आलोचनात्मक चिन्तनों के द्वारा हिन्दी के विविधियों की पूर्ण नींव उत्तर दिया है। हिन्दी की आलोचनात्मक शैली के तीन प्रकार हैं—आदेश पूर्व आलोचनात्मक शैली, बीच पूर्व आलोचनात्मक शैली, और अन्त पूर्व आलोचनात्मक शैली। आदेश पूर्व आलोचनात्मक शैली में हिन्दी की वे उन विषयों की रचना की है, जिनका विचार उन्होंने भाषा के परिष्कार और परिशुद्धिकरण के उद्देश्य से किया है। इस शैली के विषयों में उन्होंने लेखकों की सम्बन्धिता की आलोचना करते हुए उनके अधिक आदेश दिए हैं, और उनके संतुलन कुछ मात्र के सुधार की उपस्थिति किए हैं। इस शैली पर भी उनके परिचायक शैली की कुछ ध्यान नहीं हुई दिखाई पड़ती है। क्योंकि परिचायक शैली की धृष्टि उनकी वा शैली की अधिकता और दृष्टि बल है। निम्नलिखित चिह्नों में हिन्दी की वे आदेशपूर्व आलोचनात्मक शैली परिशुद्धित हुई है—जिस रचना में संस्कृत के शब्दों वसिष्ठ शब्द हो, जिसमें संस्कृत के अनेक-अनेक शब्द और शब्दों का प्रयोग हो, जिसमें अनेक अनेक अनेक के शब्दों के अनेक चिह्नों और शब्दों के नाम हो, अनेकों नाम, शब्द, और नाम अनेकों के हो अनेकों में मिले हो, उस रचना की बहुत अधिक पूर्व कान्ति है। हिन्दी की वे आलोचना की दूसरी शैली आदेशपूर्व शैली है। उन्होंने इस शैली में अपने लक्षित विषयों की रचना की है। इस शैली के विषयों के द्वारा उन्होंने भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य का महत्व उन अनेकों विषयों के द्वारा पर लक्षित करने का प्रयत्न किया है, जो अनेकों साहित्य और संस्कृति के अन्तर्गत में भारतीय साहित्य और संस्कृति के विषयों में। उनकी इस शैली के विषयों में अधिक कुछ और संस्कृत शब्द अनेकों के संतुलन द्वारा देखने की मिलती है। भाषा कुल होने के साथ ही यह इस शैली के नाम की अधिक शक्ति और सुविद्यमान है। निम्नलिखित चिह्नों में हिन्दी की इस शैली का लक्षण देखिए—‘आदेश पूर्व’ शब्द भी की बहुत दृष्टि महत्वशाली साहित्य की सेवा और साहित्यिक शक्ति कला कला उनके अनुमान नहीं रचना, यह

काम हीही है, देव हीही है, जाति हीही है, किन्तुता वह काम हीही है, और काम हीही की है ? हिन्दीकी की आलोचना की ओरही हीही ज्यों हुआ है । इस हीही में हिन्दीकी ने साहित्य, राजनीति, और काम दसादि के क्षेत्रों में समझाती करने वाली पर लेख लिखे हैं । उनको इस हीही में जंग, कटाक्ष, क्षम, विवेक और परकार स्थान-स्थान पर मिलती है । यहाँ यहाँ उन्होंने ज्यों और कटाक्ष किया है, यहाँ कविता के काम किया है । उनके द्वारा किन्तु हुए ज्यों और कटाक्षों में अलग-अलग होने पर भी वे बहुत यहाँ की जा सकते । उन्होंने अपनी इस हीही में व्याप-कृतिक और बसती हुई भाषा का प्रयोग किया है । निम्नलिखित संक्षिप्त में उनकी इस हीही का सारांश देकर—विषयगत भाषा केवल इतिहास हुआ है, कि जगती काण्डिकाती गणनीयता की दिशापर भाषा काण्डिकाती केन्द्र काँ, और कृष्णमित्री के काण्ड पर नीतिगत यहाँ की रहे ।

हिन्दीकी की ओरही हीही गणनीयतात्मक हीही है । इस हीही में हिन्दीकी के उन दिग्दर्शी की गणना की जाती है, जिनमें उन्होंने साहित्यिक वा सामाजिक दिग्दर्शी का विवेचन किया है । हिन्दीकी की वह हीही यहाँ निर, संघ, और संघर्ष है । अपनी इस हीही में वे एक सामाजिक विचारक, राजनीतिक, और चिंतक के रूप में दिखाई पड़ते हैं । उनको इस हीही के दो स्तर हैं—एक सरल, दूसरा गम्भीर । सरल हीही का स्तर छोटे-छोटे पाठकों के हुआ है, और उसमें भाषा की सरल ही मिलती है । गम्भीर हीही कुछ साहित्यिक है । इस हीही में भाषा अलग-अलग यहाँ यहाँ कविता सामाजिक हो गई है, जिससे उसमें कुछसा जगमग हो गई है । निम्नलिखित संक्षिप्त में उनको इस हीही का विकास कृष्णता के साथ हुआ है—‘इसमें विचारों की सरलता इसकी संलग्नता है, कि इतिहास की अवधारणा और विविधता से बहुत कामना बहुत ही बरिदा है । इतिहास, इतिहासात्मक दुष्करी में यहाँ यहाँ विविधता के नीचे नीचे कक्षा मित्रों पर भी प्रमुख उनको गणना बसती में यहाँ करते ।’

हीही की नीति ही हिन्दीकी भाषा के विचारक के । हिन्दीकी के पूर्व की भाषा प्रचलित की, वह पर ही संस्कृत के उत्तर यहाँ में प्रकट की, और वा उसमें कर्तवी हिन्दीकी और पारसी के कविता कर्तवी की बहुलता पड़ी की । हिन्दीकी का की भाषा इस दोनों ही भाषाओं में से किसी से भी काम चलाने की नहीं था । क्योंकि वह दोनों भाषाएँ ‘संघर्ष’ की, और उनके द्वारा हिन्दीकी के एक महान् उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती थी, जिसकी वे कल्पना कर रहे थे । अतः हिन्दीकी ने अपने लिए एक नवीन भाषा का निर्माण किया । भाषा के निर्माण में उनका मुख्य हाथ इसी और था, कि भाषा केचित्त के अधिक स्वरूप और भाषा प्रयोग पर लगे । इसी विचार से उन्होंने अपनी भाषा की अधिक के अधिक सरलता के नीचे में डालने का प्रयत्न किया । इसके लिए उन्होंने दो मार्ग चुने । एक यह है, कि उन्होंने संस्कृत के केवल उन्हीं हाथ कर्तवी को परह किया, जो अधिक इच्छित और व्यावहारिक थे, और दूसरा यह, कि उन्होंने कर्तवी और पारसी के उन

में सामाजिक विपरीत पर उनके निरन्तर प्रभावित हुआ करते थे। हिन्दी के क्षेत्र में जाने पर तुलसी ने 'विन्दुभार' और बंगाली द्वारादि, यही का सम्मान किया। सम्मान के रूप में, उन्होंने हिन्दी साहित्य के विभिन्न खंडों का संयोजन किया, और भाषा तथा शैली के निर्माण में योग दिया। सम्मान कला का तुलसी को अधिक अनुभव था। यद्यपि उन्होंने अपने समय, अपने अनुभवों के हिन्दी-सम्मान कला को जैसा उदाहरण, और उसे विकसित होने में सहायता प्रदान की। तुलसी के साहित्यिक जीवन का दूसरा रूप उनके आलोचक का रूप है। आलोचक के रूप में उन्होंने हिन्दी साहित्य के विचारों को दूर करने का प्रयत्न किया है। उनकी आलोचनाएँ कभी तीव्र हुआ करती थीं। पर फिर भी वे कभी द्वेषता और संघर्ष का परिचाय नहीं करते थे। उनकी आलोचनाओं को हम दो खंडों में बाँट सकते हैं—साहित्यिक, और सामाजिक। उनकी साहित्यिक आलोचनाएँ समीक्ष और विद्वत् पूर्ण होती थीं। वे पद्यरस के दूर—सकनी-सकनी आलोचना की तुल्य पर साहित्यिक कृतिओं का लेख किया करते थे, उनकी सामाजिक आलोचनाएँ मात्र स्पष्टवाचक हुआ करती थीं। वे अपनी सामाजिक आलोचनाओं में—'भरीही शिव-शिव शर्मा' के नाम का प्रयोग किया करते थे। तुलसी के साहित्यिक जीवन का तीसरा रूप, उनके निरन्तर का रूप है। उन्होंने ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, और सामाजिक विपरीत पर प्रत्यक्ष रूप निरन्तर की रचना की है। उनके निरन्तरों में उनकी उद्भूत शक्ति, और उनके समीक्षक-कर्मका की सम्पूर्ण भावना देखने की मिलती है। तुलसी ने नाराज और कविता के क्षेत्र में भी कुछ प्रयास किया है, पर वह केवल प्रयास मात्र ही है। नाराज और कविता के क्षेत्र में तुलसी की बहुत कम प्रयत्न मात्र हुई है।

तुलसी उर्दू के क्षेत्र के हिन्दी के क्षेत्र में जाने थे। हिन्दी के क्षेत्र में जाने से उर्दू, उर्दू के क्षेत्र में उनकी केवली साहित्यिक जीवन जुड़ी थी। वे उर्दू के सम्पूर्ण तुलसी की विद्वान भी थे। हिन्दी में जाने के पहले उर्दू में विभिन्न विपरीत शैली पर उनके निरन्तर प्रभावित हो चुके थे। हिन्दी के क्षेत्र में जाने पर, उर्दू की शैली और उसकी भाषा का प्रभाव अवश्यतः रूप से यही का ली बना, रहा। यह प्रभाव उनके हिन्दी के निरन्तरों की शैली पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनकी शैली में जो जोश, प्रवाह और माधुर्य है, उसका बहुत कुछ कारण उर्दू की शैली का ही प्रभाव है। उर्दू की शैली के प्रभाव के कारण उनकी शैली साहित्यिक, और प्रभावपूर्ण बन गई है।

हिन्दी युग के निरन्तरकारों में तुलसी शैली-कला के एक अनुभूति-निर्देश के दिखाई देते हैं। उनकी कला, और कला के निरन्तर की उनमें अर्ध-मातृ है। वे लेख लेख कर अपनी प्रस्थापन करते हैं। उनके कला साहित्यिक, और भाषापूर्ण है। उनकी के निरन्तर में उनका लक्ष्य केवल भाषा-व्यवस्था की ही और दिखाई देता है। उनकी के अनुभव के लिए ही वे कभी कभी एक ही बात की

वही प्रभाव के बड़े वाक्यों में दृढ़ता भी पाते हैं। वक्ता में दृढ़ता उत्पन्न करने के लिए उन्होंने- कदाचित् का भी प्रयोग किया है। कदाचित् के प्रयोग से उनकी शैली अधिक प्रभाव और प्रसाद पूर्ण बन गई है। शैली को रोचक और आकर्षक बनाने की और उनका मुख्य कर्म से स्थान बढ़ाया। वे गुरु के गुरु विष्णु का विशालता भी रोचक दृष्टि के हो किया करते थे। शैली में रोचकता उत्पन्न करने के लिए वे शक्ति प्रशस्ती का व्यवहार करते थे। उन्हें जो बात पड़नी होती थी, प्रायः शक्ति दृष्टि से कहते थे। बात को प्रमाण पूर्ण बनाने के लिए उसके भीतर छिपे हुए भाव के उपर-उदाहरण पर अधिक ध्यान रखते थे। बात को सामने प्रस्तुत करने का उद्देश्य क्या है—इस बात को वे मुख्य कर्म से समझ रखते थे।

गुप्तजी की शैली को हम दो चोरे में विभाजित कर सकते हैं—परिचयात्मक शैली, और आलोचनात्मक शैली। गुप्तजी परिचयात्मक शैली के अधिक समर्थ साक्ष्य निवेदनकार हैं। उनके अधिकांश निवेदन इसी शैली में हैं। उनकी यह शैली अधिक रोचक और दृढ़ता प्राप्ति की है। गुप्तजी ने अपनी इस शैली में ब्रह्मविरी का प्रयोग करते-उठे और भी अधिक रोचक बना दिया है। उनकी यह शैली छोटे-छोटे वाक्यों से बनी है, और उसके भाव व्यक्तता तथा शक्ति-शब्दी का भी प्रयोग हुआ है। उनकी इस शैली में कहीं-कहीं संभव का-गुरु भी है। विष्णुविश्वविश्वविद्यालय में उनकी इस शैली का दृष्टान्त देखिए—सर्माजी महाराज बूढ़ी की पुन में लगे हुए थे। बिना कहीं से लड़ सारी का रही थी। निर्धन मरणात् शान्त हो रहा था। बाबाम हस्त-पद्मों के झिलके उतारते करते थे। नागपुरी नारंगिनी बोल-बोल कर एक उठाप खाता था। इसमें मैं रोना, कि शान्त उसका रहे हैं। नीले नीले लहर रही हैं, लीनत भुरभुरा लगी। गुप्तजी की दूसरी शैली जिसे आलोचनात्मक शैली कहते हैं। उनके सामीप्य निबन्धों में गई जाती है। इस शैली में उन्होंने सामीप्य निबन्धों का प्रतिपादन किया है। परिचयात्मक शैली के निबन्धों की भांति इस शैली के निबन्धों में न ही कुतूहलाहट है, और न आलोचनात्मक के हो उनकी का प्रयोग हुआ है; इसके निबन्धों उनकी यह शैली अधिक सामीप्य, और संकुच के कारण उनकी के कुछ है।

गुप्तजी उर्दू के विद्वान थे। हिन्दी के क्षेत्र में जाने से पूर्व वे उर्दू लोको के समस्त-रस पर जुके थे, और उनकी आकाशवाणीय भी लिखा करते थे। वहीं से उनकी दोनो

गुप्तजी के कारण उनकी लेखनी का चली की भाषा में अधिक परि-
की भाषा बढ़ाया। उनकी लेखनी में जो भाषा निराली थी, वह आज पकड़ी हुई, और व्यावहारिक होती थी। हिन्दी के क्षेत्र में भी उनका चली में ही अधिक सम्मान रहा है। सत्य यदि वह कहा जाय, तो कोई साहित्यिक की बात न होती, कि हिन्दी के क्षेत्र में जाने पर भी उनकी भाषा में ही उनका अधिक सम्मान रहा है। उनकी भाषा में व्यावहारिकता, और जटिलतावन का भी अधिक पुर है, उनका कारण उनका चली की भाषा से अधिक अनिच्छा का होना ही है। उनकी भाषा में समान-मान पर अपनी और दूसरी के शब्द भी मिलते हैं। इसका भी कारण यही है।

मिश्र मिश्र शब्दों पर भी बलवत् प्रभाव है, विभिन्न विधियों पर भाव पूर्ण विधियों की भी रचना की है।

बाबू रामानुजदास काव्यकला-विश्वविद्यालय में। उन्होंने हिन्दी, औरंगजेबी, साहित्य का संघर्ष किया था। उन्होंने साहित्य के इन शब्दों पर बलवत् प्रभाव डालने बाबू रामानुजदासजी का प्रभाव पूर्ण प्रभाव किया है, जिसकी ओर की शैली सभी एक किन्हीं का ध्यान साक्षात् नहीं हुआ था। उनमें उल्लेख के अनुसार भाव और विचारों का एक कविता था। वे बड़े हिन्दी साहित्य के समझों की दूर करने के लिए विचार पूर्ण अनुसंधान किया करते थे। यही कारण है, कि उनके व्यक्तित्व के सम्पीडित और विचार विभूत हैं। उनके व्यक्तित्व की क्षमता उनकी शैली और भाषा पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। मिश्र प्रकार उनके विभिन्न विचार पूर्ण और गहन हैं, जहाँ प्रकार उनकी शैली की विचार पूर्ण और कविता गहन है। पर उनकी शैली विचार पूर्ण और गहन होने पर भी कविता सरल, और - सरल है। उन्होंने एक कुशल, और अनुसंधान काव्यकला की नीति की अपनी शैली को स्पष्ट और गहन भाव बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने गहन और सम्यक् विधियों का चित्र भी सरल से सरल रूप से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। उनकी शैली में यही भी साम्यावधारित समझों के कुछ समझों परावर्तितों का प्रयोग नहीं पाया जाता। इसके विपरीत उन्होंने बड़े छोटे, छोटे-छोटे संज्ञा शब्दों में अपने विचारों को सुस्पष्ट करने का प्रयास किया है। विचार को सुस्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपनी भाषा को बार-बार सुधारना भी है। समझों के प्रयोग में उन्होंने कविता काव्यकला में काम किया है। उनके स्पष्ट आवश्यकतापूर्वक ही प्रयुक्त हुए हैं। उनकी शैली में यही भी ऐसे स्पष्ट नहीं मिलते जो अनुसंधान काव्यकला में। उनके स्पष्ट भावों के चित्र भी उपस्थित करने में बड़े कुशल हैं। उनके समझों में सरल कविता में, और वास्तविक सहयोग भी है। यद्यपि और सुझावों का प्रयोग उनकी शैली में नहीं नहीं मिलता, विचार-मय चिह्नों का प्रयोग भी उनकी शैली में बहुत कम मिलता है।

बाबू रामानुजदासजी की शैली को हम दो तरीके से विभक्त कर सकते हैं—विचारकला, और भावकला। विचारकला शैली में उनके में निम्नलिखित हैं, जिसमें उन्होंने कविता विचार को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। जैसे—'माया-विद्या' इत्यादि। उनकी यह शैली सरल के उत्तम समझों में कुछ है। समझों का प्रयोग विचारों के ही अनुसार हुआ है। विचारों को सुस्पष्ट करने का प्रयत्न नहीं-नहीं स्पष्ट कविता ही गत है। भावों का गहन भी आवश्यकता के ही अनुसार हुआ है। जो जो वचन कविता में छोटे छोटे हो हैं, पर आवश्यकता के अनुसार बड़े-बड़े बड़े भी हो गए हैं। कविता काव्य पूर्ण और सुस्पष्ट है। विचारकला पंथियों में इस शैली का कुछ प्रभाव देना का प्रभाव है—'माया का समापन की उल्लेख के साथ बहुत चित्रित प्रभाव है। जहाँ तक, कि दृष्ट के बिना दृष्टों का अभिव्यक्ति ही प्रभाव

वही। पर वही इनके सम्मुख के सामर्थ्य की दृष्टि की भी नहीं होती। दोनों मन ही साथ चलते हैं। समस्त की उत्पत्ति के साथ साथ ही उत्पत्ति, और साथ ही उत्पत्ति के साथ समस्त की उत्पत्ति होती ही रहती है।

बाबू राममहोदयदासजी की दूसरी ऐसी गरीबगणसंग होती है। इस ऐसी में उनके गरीबगण संकीर्ण विचार होते हैं। इस ऐसी की भाषा विचार के ही अनुसरण है। विचार की गति करने के लिए उन्होंने अपनी इस ऐसी में बहुत से ठोस समर्थों का सामर्थ्य प्रदान किया है। इसमें अपने ही अधिक छोटे-छोटे, और बहुत हैं। अपनी विचार के अनुसरण इस ऐसी में सुम्भरा का उद्धार ही गया है, पर फिर भी यह कहा जा सकता है, कि वह ऐसी अधिक दुर्लभ प्राण है, इस ऐसी के विचारों की रचना उन्होंने विचारों, और मान-विचारों के लिए की है। वह कहते भी विशिष्ट विचार नहीं मानते होते, कि उन्होंने इस ऐसी का निर्माण अपने गरीब के अधिक विचार से किया है। विशिष्ट विचारों में उनकी गरीबगणसंग ऐसी का सुन्दर लक्षण देखिए—‘भारत यह, कि यह ही उत्पत्ति के निमित्त कर यह ही नहीं अपने ही यह भारत बनाई है, और वही गरीब मन, तथा वही गरीब मन होकर उत्पत्ति होती है, और ऐसे सभी सभी मन की साथ समस्त होकर उत्पत्ति बनाई ही नहीं रहती है, और अपने न-वालों के होकर बढ़ती है, ऐसे ही ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ की प्राथमिक अवस्था से लेकर अनेक प्राणों के मन में उद्भासित हो पाते हैं।’

ऐसी की भाँति ही बाबू राममहोदयदासजी की भाषा भी अधिक गम्भीर है। है। बाबू राममहोदयदासजी के अधिकतर ऐसे ही विचारों पर विचारों की रचना की बाबू राममहोदयदासजी की है, जो अधिक विचार पूर्ण और गम्भीर है।

को माना जाय: विचार की गम्भीरता, और विचारगता के कारण उनकी भाषा भी अधिक गम्भीर और विचार पूर्ण हो गई है। इस मन में हम यह कह सकते हैं, कि उनकी भाषा उनके विचार और विचारों के अनुसरण है। उन्होंने अपने विचार और विचारों के प्रतिपादन के लिए संस्कृत के उत्तम समर्थों का सामर्थ्य प्रदान किया है; परिणाम स्वरूप उनकी भाषा में संस्कृत के उत्तम समर्थों की बहुलता है। विचार की गम्भीरता को देखते हुए हम यह भी कह सकते हैं, कि उन्होंने संस्कृत के उत्तम समर्थों का सामर्थ्य प्रदान करके उचित किया है। संस्कृत के उत्तम समर्थों को प्रदान करने में उन्होंने सभी और विचारों की अनुसरण प्रदान की है। यही कारण है, कि संस्कृत के समर्थों की बहुलता होने पर भी उनकी भाषा में सुबोधता नहीं दिखाई पड़ती। उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत के उत्तम समर्थों के साथ साथ-साथ उत्पत्ति के मन में निर्देशी समर्थों का भी प्रयोग किया है। उनकी भाषा में आप-तन उद्गू के समर्थ की उत्पत्ति के मन में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—समस्त, समस्त, और समस्त इत्यादि। हिन्दी में प्रयुक्त करने पर उन्होंने उद्गू के समर्थों की हिन्दी उद्भासित है, इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, कि उन्होंने निर्देशी समर्थों का

प्रयोग करने अनुशासन में रहा कर किया है। केवल विदेशी कवियों पर ही नहीं, संस्कृत के लल्लय कव्यों पर भी उनका अपना अनुशासन है। उन्होंने संस्कृत के 'वार्त्त', और 'लौन्दव' इत्यादि कव्यों का प्रयोग करने अनुशासन में 'वार्त्त' और 'लौन्दव' के रूप में किया है। इसी प्रकार उन्होंने 'कंकन' और 'कान्ति' इत्यादि कव्यों के प्रथम वर्ण को हटा कर अनुशासन में सुक करके प्रस्तुत किया है। कव्यों के प्रयोग में उनका प्रथम रूप के पद्य भावों और विचारों की उदात्ता की ओर वीक्षित था है। उन्होंने वचनकविता इसी बात को लक्ष्य करके कव्यों का प्रभाव किया है, और वाचनों के निर्माण में भी इसी बात को निरन्तर ध्यान रखा है। उन्होंने रचनाकविता कव्यों भाषा को सम्पूर्णतः और जैसे कवियों की रचनाकविता के बनाने का प्रयत्न किया है। एक रूप में हम यह कह सकते हैं, कि उन्होंने भाषा के निर्माण, और उसके प्रयत्न में एक महान् दृष्टि बाधना ली है। उनको बाधना ही उनकी रचनाकविता में भाषा की सुदृढा के रूप में प्रयत्न हुई है।

१. चतुर्विध कवियों गुणों का अर्थ समझ १८४० में हुआ है था। गुणोंकी संस्कृत के बहुत बड़े विद्यालय में। संस्कृत के अतिरिक्त औरोंकी, वाचों, रचना, और गुणोंकी और कवियों इत्यादि भाषाओं पर उनका 'साहित्य' था, उन्होंने कवियों साहित्य भाषाओं साहित्य का अध्ययन नहीं संशोधन के साथ किया था। साहित्य के अतिरिक्त भाषा लल्लय, दर्शन और गुणलल्लय इत्यादि विषयों के वे अच्छे छात्र थे। उनकी रचनाकविता पर उनके एक संशोधन का और साहित्य की एक रूप में अत्यन्त दिशाई पड़ी है। गुणोंकी हिन्दी के अध्ययन प्रयत्न और अन्तः-प्रयत्न थे। उन्होंने तीन कवियों में हिन्दी साहित्य की बहुमुख्य सेवा की है—संस्कृत के रूप में, विश्वनाथ के रूप में और कवियोंका के रूप में। गुणोंकी कई बड़ी लल्लय, कवियों के प्रकाशित होने वाले 'समालोचन' के संस्कृत रीति है। 'समालोचन' समालोचना संस्कृत रूप था, जिसमें साहित्य, समालोचना, भाषा, और प्रत्यक्ष इत्यादि विषयों पर संशोधन और विद्या दृष्टि विश्व प्रकाशित हुआ करते थे। समालोचन के प्रारम्भ विषय पर गुणोंकी की विद्या, और उनकी अध्ययन सम्प्रदाय की छात्र पड़ी थी। उनके संस्कृत में 'समालोचन' में विद्याओं के विषय अच्छी रचना प्रकाश की थी। गुणोंकी लल्लय भी समालोचन विषय लिखा करते थे। उनके विषयों का विषय समालोचना, इतिहास, साहित्य, समाय सुधार, और सामाजिक उत्थान इत्यादि होता था। वे जिस किसी की विषय पर विषय लिखते थे, उस पर कवियों विद्या की छात्र लला देते थे। उनके विषय अतिरिक्त विचार दृष्टि और संशोधन हुआ करते थे। विवेचन, और विवेचना के कव्यों की उनके विषयों में प्रचुरता हुआ पड़ी थी। विषय का अतिरिक्त वे कहीं प्रयत्न, और प्रयत्न के साथ किया करते थे। संस्कृत के प्रकाश-प्रकाश होने के कारण उनके विषयों की छात्र की प्रायः संस्कृत रीति हुआ पड़ी थी।

गुणोंकी समालोचना भी थे। समालोचना के रूप में उनका हिन्दी साहित्य में

अमिट आनन्द का स्रोत है। उनकी केवल तीन ही कहानियाँ मिलती हैं—उल्लेख का, सुखमय जीवन, और कुटू का बौटा। 'उल्लेख का' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। हिन्दी के कहानी साहित्य में उनकी इस कहानी का सर्वोपरि स्थान है। उनकी इस अकेली कहानी से ही हिन्दी के कहानीकारों में उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाता है। इस कहानी में उन्होंने मानव के आदर्श और स्वयं पूर्ण जीवन का दृष्टिकोण प्रिय अंशित किया है। 'सुखमय जीवन' और 'कुटू का बौटा' भी उनकी सुन्दर कहानियाँ हैं, जो जीवन की विविध दिशाओं के चितों को सामने उपस्थित करती हैं।

गुलेरीकी संस्कृत, अंगरेजी, और उर्दू इत्यादि भाषाओं के अच्छे ज्ञान से। संस्कृत के ही से अनेक शब्दों से। उनकी रचनाओं पर सम्प्रति उनके जीवन के गुणों की ओर ध्यान है। उनकी ओर रचनाएँ करने सामने हैं, उन्हें इतिहास की ओर से रखते हुए हम उनकी हीलों को ही क्यों से विमल कर सकते हैं—नवीर हीली, और परिवर्तनमय हीली। नवीर हीली से उनकी के रचनाएँ आती हैं, जिनसे नवीर विषयों का अधिकारन हुआ है। इस हीली पर अनेकों की के विचार पूर्ण व्यक्तित्व को प्राप्त है। उनके व्यक्तित्व के अनुकूल ही वह हीली संस्कृत के लक्षण सम्यो के प्रथम है। यही-यही इस हीली में अन्तर्भावपूर्ण शब्दों में मिलते हैं। शब्दों का विस्तार भी इस हीली में देखने को मिलता है। अन्तर्भाव सम्यो की अनुकूल और अर्थ नवीरों के कारण उनकी यह हीली, सामान्य पाठकों के लिए हीन अन्तर्भाव ही गई है, पर उनकी अन्तर्भाव और अन्तर्भाव नही हुआ है। यही इस हीली की विशेषता है। उनकी इस हीली को हम 'आलोचनात्मक' हीली भी कह सकते हैं।

गुलेरीकी की सुन्दर हीली यह है, जिनसे हम परिवर्तनमय हीली कहते हैं। इस हीली में उनकी के रचनाएँ हैं, जिनसे सामान्य विषयों का विचार हुआ है। उनके सामान्य विषयों में आलोचना, साहित्य, और समाज द्वारा इत्यादि सभी विषय हैं। इस विषयों का विचार गुलेरीकी में उनके अनुकूल ही मिला है। उन्होंने अन्तर्भावपूर्ण की सुपरभूमि पर अनेकों अनेकों ही इन विषयों का विचार किया है। यही कारण है, कि उनकी यह हीली अधिक सामान्य है। अन्तर्भाव होने के साथ ही साथ वह अधिक सादा और सामान्य भी है। उनके एक प्रकार की सुलभता और आकाशमंथनी कावा सादा है। स्थान-स्थान पर अन्तर्भाव, विचार, और अन्तर्भाव की भाँती को मिलती है। लीनोविषयों और कहानियों का प्रयोग भी इस हीली में हुआ है। अन्तर्भाव के अनुकूल और सुनाम में अन्तर्भावपूर्ण की अन्तर्भाव दिया गया है। यही संस्कृत के अन्तर्भाव सम्यो की अन्तर्भाव है, और न उर्दू के अन्तर्भाव सम्यो का अन्तर्भाव ही क्या गया है। शब्दों के अन्तर्भाव में अनुकूल दिशाएँ बढ़ती हैं। अन्तर्भाव ही-हीले और अन्तर्भाव मात्र अन्तर्भाव है। निर्यातित जीवन को उनकी इस हीली का अनुकूल लक्षण का अन्तर्भाव है—हम तो अन्तर्भाव की सुल को इस जीवन की अन्तर्भाव के मध्य है। कदा

विद्यार्थी के ही ही का उन्होंने समीक्षा के साथ सम्बन्ध किया था। आलोचक के रूप में उन्होंने विद्यार्थी कालों की भाषा 'कव्यमयी' और 'काव्य' का-उद्योग के उत्तरावस्था का-लोचन की है। उद्योग के नैतिक बर्णनों से भी उन्होंने विद्यार्थी की उत्तरावस्था का-लोचन की है। आलोचना करने हुए उन्होंने विद्यार्थी की दृष्टि को ध्यान में रखा है। विद्यार्थी की प्रशंसा करते हुए उन्होंने भाषा की प्रशंसा की है। समीक्षा की आलोचना करने वाले विद्यार्थी कालों की है, जो हीनता हीनता के बीच में बरतता के साथ प्रशंसा की का-लोचन है। उनके आलोचना करने पर उद्योग की दृष्टि है। उद्योग की दृष्टि होने के साथ ही उन्होंने समीक्षा का सम्बन्ध, और उत्तरावस्था की आलोचना करने की मिलती है। आलोचना की प्रशंसा विद्यार्थी के बीच में समीक्षा की आलोचना करने वाले होते हैं। समीक्षा के विद्यार्थी के बीच में प्रशंसा की है—उद्योग में ही, उत्तरावस्था, और हिन्दी उद्योग हिन्दुस्तानी। इन हीनता की हीनता के बीच में हीनता की आलोचना करने का-लोचन पर विद्यार्थी के बीच में है। इन विद्यार्थी और समीक्षा हीनता की दृष्टि है। इनकी भाषा की आलोचना विद्यार्थी हीनता हीनता है। 'हिन्दी उद्योग और हिन्दुस्तानी' में उनके आलोचना का-लोचन है।

समीक्षा हिन्दी, उद्योग और उत्तरावस्था के विद्यार्थी के। उद्योग का सम्बन्ध उन्होंने आलोचना समीक्षा के साथ किया था। उद्योग के साथ हीनता की आलोचना करने वाले विद्यार्थी की हीनता के बीच में हीनता का-लोचन है। वह हीनता हीनता के बीच में हीनता का-लोचन है। उद्योग की हीनता का-लोचन करने के बीच में हीनता है, कि उन्होंने समीक्षा हीनता पर उद्योग का-लोचन के लिए प्रशंसा किया है। समीक्षा हिन्दी आलोचना में समीक्षा हीनता के बीच में प्रशंसा है। उनकी हीनता आलोचना करने, प्रशंसा की, और प्रशंसा की है। उन्होंने समीक्षा हीनता में हीनता-समीक्षा समीक्षा का-लोचन किया है। समीक्षा प्रशंसा हीनता उत्तरावस्था और हीनता प्रशंसा प्रशंसा देता है। समीक्षा के बीच में उनके समीक्षा उद्योग और हिन्दी का-लोचन नहीं है। कि हिन्दी की दृष्टि में हीनता हीनता हीनता के साथ उद्योग के समीक्षा का-लोचन करते हैं, और उन्हें हिन्दी के समीक्षा के साथ मिलते हैं। हिन्दी और उद्योग के समीक्षा की हीनता प्रशंसा करने में उन्होंने आलोचना प्रशंसा प्रशंसा की है। उनके समीक्षा उनके समीक्षा की हीनता प्रशंसा है। उन्होंने अपने समीक्षा के बीच में हीनता करने के लिए आलोचना, प्रशंसा और प्रशंसा का भी प्रयोग किया है। आलोचना, प्रशंसा और प्रशंसा की आलोचना से उत्तरावस्था उनके समीक्षा हीनता प्रशंसा के साथ हीनता प्रशंसा प्रशंसा प्रशंसा है। उनके इन समीक्षा के बीच में हीनता प्रशंसा की हीनता, और प्रशंसा प्रशंसा है। उनके समीक्षा में हीनता, आलोचना और प्रशंसा है।

समीक्षा में समीक्षा की हीनता के बीच में हीनता है—आलोचना, और प्रशंसा

लक्ष्य । उनकी आलोचनात्मक शैली में उन विचारों की बराबरी की जाती है, जिसकी रचना आलोचना की पृष्ठभूमि पर हुई है, इस शैली के दो वर्ग हैं । एक वर्ग में उनकी वह आलोचना आती है, जो विद्वानों के समक्ष को झेंझक की गई है । इसमें हिन्दी-उर्दू के शब्दों का संयोग बड़ी कुशलता के साथ स्थापित किया गया है । इस पर उर्दू की शैली का प्रभु है । उर्दू की शैली का प्रभु होने के कारण इसमें गंभीरता का आकार, और बलवत्तापूर्ण की स्थापित है । शैली की दृष्टि में उनकी इस शैली में संश्लेषण का आकार अत्यन्त है, पर वे अत्यन्तम् शैली के हिन्दी में प्रथम कलाकार हैं । सर्व प्रथम उनकी को दृष्टि अत्यन्तम् आलोचना की ओर स्थापित हुई की । उनकी आलोचनात्मक शैली के द्वितीय वर्ग में, वे विचार्य करते हैं, जो सुदृढ़ हैं, और उनकी प्रस्तावों में संश्लेषण है । विद्वानों के समक्ष को आलोचना, वाली शैली की अपेक्षा उनकी वह शैली संकीर्ण, और संश्लेषण है । इसमें उनकी और उनकी का अनुष्ठान की देखने को मिलता है । इसकी प्रभाव की पूर्ण की अपेक्षा स्थापित स्थापित है ।

[illegible]

होली की धीमि ही हमारी की भाषा पर भी उनके सम्मिलन का प्रमाण है। हमारी उर्दू, राजसी, और हिन्दी तथा संस्कृत के मिश्रण में। उनकी मिश्रण के हमारी की सद्गुण ही उनकी भाषा का कर्तवी निमित्त हुआ है। उनकी भाषा माता के दो रूप मिलते हैं—एक विद्वत् हिन्दी, और दूसरा उर्दू शब्द-सन्धान हिन्दी। विद्वत् हिन्दी में संस्कृत के लक्षण हमारी की प्रभावशाली है। वह कविक गीत, संवत्, और विषय तथा भाषासुलभ है। उनके कुछ शालोचनात्मक शिष्टों में ही भाषा का प्रयोग हुआ है। उनकी दूसरी भाषा, जिसमें उर्दू के हमारी की प्रभावशाली है। मिश्री कलम की प्रभावशाली शालोचना में मिलती है, इसमें उर्दू के हमारी की कविकता है। इसमें उर्दू के शालोचना में शब्द मिलते हैं। इस 'हल्के' शब्द वह लक्ष्य हैं। यद्यपि इस भाषा में गीतका का अभाव है, पर वह कविक शक्ति और लक्ष्य है, इसमें शालोचना पर हमारी की सुलभता, और लक्ष्यता देखने की मिलती है। उनकी इस भाषा पर कहीं कहीं मनु और विनीत का गुण भी मिलता है।

१८. रामचन्द्र गुप्त का जन्म संवत् १६८१ में कन्नौज जिले के कन्नौजा नामक गाँव में हुआ था। द्विवेदी गुप्त के परिवार में गुप्तजी का स्थान सर्वोच्च है। गुप्तजी की जीविवेदी गुप्त के शीष्य थे। उन्होंने अपनी उत्तम साहित्य साधना अहिंसा में द्विवेदी-गुप्त के जग की उत्पत्ति की पूर्ण परा-काष्ठा पर पहुँच दिया था। गुप्तजी की परा-काष्ठा क्षमा की देखते हुए यदि हम उन्हें एक विशेष गुण का निर्माता बनें, तो कोई असुविधा की बात न होगी। सर्वोच्च

उन्हींमें भाषा, भाव, विषय और शैली के क्षेत्र में एक सुखान्त उगीधत बिना है। हिन्दीकी ये हिन्दी की बिना सब शैली की परिभाषित करने की सुदृष्ट कला का, सुनसनी में उसे उचित की वरुणकला पर पहुँचा कर उसके भीतर नर सुन की रस-मय की की है। शैली और भाषा के क्षेत्र में सुनसनी का स्थान 'अद्वितीय पूर्व' है। हिन्दी रस शैली और भाषा की सुनसनी में संवेदनशील शक्ति प्रदान की है। उनमें की हुई संवेदनशील शक्ति से आज हिन्दी रस शैली, अनेक प्रकार से परिपूर्ण होकर उचित के विद्युत क्षेत्र की ओर बढ़ता हो रही है।

सुनसनी में कला का साहित्यिक प्रतिपद की। जीवन के प्रत्येक पक्ष से ही के साहित्य की व्यापकता में निरत के, और जोर-रस का साहित्य की रचनाओं में लगे रहे। शैली-रस की कलाका में ही उन्होंने क्षेत्र सिद्धता प्रदर्शित कर दिया था। यही-यही वे सब की साहित्यिक की वरुणकला में, उनकी साहित्य-शक्ति का विकास होता गया। सर्व प्रथम, मिर्जापुर के, सब के साहित्यिक में, उनकी प्रतिभा की प्रकट होती की देखने की मिली। मिर्जापुर के साहित्यिक में की वरुणकला में, सब साहित्यिक में उनकी प्रतिभा का प्रत्येक सुनसनी काही में ही उनकी प्रतिभा पूर्व परकला की पहुँची। काही जोर-रस उचित का केन्द्र बने रही। काही में प्रत्येक ही उन्होंने उन साहित्यिक कृतिओं का निर्माण किया, जिनके सत्य काव्य के हिन्दी साहित्य में 'साधारण' के जीवन पूर्व पर वर निर्मित है।

सुनसनी में रस की रसों में हिन्दी-साहित्य की व्यापकता की है—संवाद के रस में, अनुवाद के रस में, रस के रस में, निबंधकार के रस में, और साहित्यिक के रस में। सुनसनी में संवाद के रस में, रसों और सुनसनी का संवेदन शक्ति है। रसों के संवाद के रस में, उन्होंने विशेष रस में 'साधारण साहित्यिक शक्ति' का संवाद करने की शक्ति प्राप्त की है। 'साधारण साहित्यिक' के संवाद में की उनका कुछ हाथ रहा था। रसों की अनेक सुनसनी के संवाद में उनकी साहित्यिक प्रकला साधन हुई है। उन्होंने की सुनसनी का विद्युत पूर्व संवाद किया है, जिनमें अनेक रस, सुनसनी साहित्य, और साधारण साहित्य का सत्य पूर्व स्थान है। 'हिन्दी रस साहित्य' के संवाद में की उनका स्थान साहित्यिक जीवन पूर्व रहा है।

सुनसनी हिन्दी, संवाद, रसोंकी और संवाद साहित्य साधारण के रसों विद्युत में। आज उन्होंने की साहित्यिक रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र की बढ़ने का महत्वपूर्ण प्रकट किया है, की उन्होंने अनुवादित रचनाओं की हिन्दी साहित्य की प्रदान की है। उन्होंने अनेक और संवाद के महत्व पूर्व कृतिों हिन्दी में अनुवादित की है। सब और रस रसों ही अनेक की कृतिओं का उन्होंने अनुवाद किया है। उनकी अनुवादित कृतिओं में सत्य प्रकट किया, 'साधारण' जीवन, विद्युत जीवन, जीवनशक्ति, का साहित्यिक रसों, संवाद का साहित्य और सुदृष्ट जीवन साधारण

है। यह सब कृतिर्धर्म कहने मात्र के ही अनुसृत्य शिक्षा, दर्शन, इतिहास, संस्कृत, और साहित्य आदि विषयों की है।

गुप्तकाली सत्त्वभर होने के साथ ही कवि भी थे। जीवन के अन्तम चरण में ही उनके हृदय में काव्य का चंदुर फुटा था। वे अपनी दिनों कविता का निर्माण करने लगे थे। उनकी हृदय का अनुसार कविता उनके जीवन के प्राणिक दिनों की है। बौद्ध काल में उनकी काव्य प्रवृत्ति का विकास मन्द रहा था, दूसरे शब्दों में बात यह कह सकते हैं, कि उनकी प्रवृत्ति काव्य के क्षेत्र में पुनः होकर लड़ के क्षेत्र में चली गई, परिणाम तबत गुप्तकाली की काव्य के क्षेत्र में अधिक उपलब्धि नहीं प्राप्त हो सकी है। उन्होंने कविता के क्षेत्र में एक ही अर्थ का निर्माण किया है, जिसका नाम है 'पुष्पचरित'। यद्यपि यह एक अनुसृत्यत शब्द है, पर फिर भी इसमें गुप्तकाली की बौद्धिक प्रवृत्ति का प्रमाण दे देने की शक्ति है। इसके साहित्यिक गुप्तकाली की कुछ और कुछ स्थापना प्राप्त होती है, जिनमें द्वितीय काल की कृतिर्धर्म का विकास हुआ है।

गुप्तकाली की सबसे अधिक मात्रा 'पुरुष', और अनुसृत्यत आचार्यता निम्नस्वरूप के रूप में हुई है। निम्नस्वरूप के रूप में गुप्तकाली ने हिन्दी साहित्य की अनुसृत्य कृतिर्धर्म प्रदान की है। गुप्तकाली एक वास्तविक निम्नस्वरूप है। निर्बंध कला के बीच उनके हृदय में प्रकृति के हाथ से मिले हुए हैं। निम्न का विषय किस प्रकार का होना चाहिए, निम्न का अस्तित्व किस प्रकार करना चाहिए, निम्न की किस प्रकार प्रकृति करना चाहिए, और निम्न की हृदय लत बनाने के लिए किस हीन लत माना का आशय प्रकृति करना चाहिए—गुप्तकाली इन सभी बातों के अपने मर्मज्ञ थे। उनके संसृष्ट निम्नों ने उनकी यह मर्मज्ञता प्रकृति रूप में देने की शक्ति है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की निम्नता 'पुरुष' निम्न प्रदान की फिर ही है, साथ ही निम्न कला के एक अनुसृत्यत शब्द का स्थापन भी उनके द्वारा हुआ है। जिसने ही हिन्दी के पद्यकी निम्नस्वरूप प्राप्त उनके द्वारा स्थापित आदर्शों के मार्ग पर चला कर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में कवि कविता कर रहे हैं।

गुप्तकाली के निम्न ही प्रकार के हैं। एक समीक्षा समकाली, और दूसरे भाव संकपी। समीक्षा संकपी निम्नों ने उनके निम्न प्राप्त है, जिसने साहित्य, काव्य और कला संकपी सिद्धांतों की विवेचना हुई है। उनके भाव संकपी निम्न ने है, जिसकी रचना मनोविचारों की स्वरूप की गई है। यद्यपि दोनों ही प्रकार के निम्न साहित्य मात्र 'पुरुष' और कलात्मक है, पर समीक्षा संकपी निम्नों की अनेकता उनके भाव संकपी निम्नों में अधिक उपलब्धि प्राप्त हुई है। उनके भाव संकपी कवि ही उपलब्धि के निर्बंध हैं। उनमें मनोवैज्ञानिकता और विचार शक्ति का प्रमाण नहीं प्रकृति के साथ हुआ है। अपने भाव संकपी निम्नों में गुप्तकाली मनोविचारों के प्रकृति प्राप्त होती हैं। उन्होंने अनुसृत्य के रूप में अपने सभी निम्नों की कवि

संविभक्तता के साथ देखा है। मनीषिकारी के विषय में उनके ज्ञान और समुदायी की दृष्टता दर्शनीय है।

गुप्तकाली के दोनो ही प्रकार के विचारों अधिक उत्कृष्ट और भावमय हैं। उनके दोनो ही प्रकार के विचारों में कई विशेषताएँ हैं, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—(१) गुप्तकाली के सभी विचारों पर उत्कृष्ट वैयक्तिकता की छाप है। यद्यपि उनके विचारों में विचारों की सतृप्तता, और प्रभावशाली है, पर उन्होंने अपने सभी विचारों को वैयक्तिकता के लिये में ही रखा है। (२) उनके विचारों में दृढ़ता और बुद्धि का बंधन नहीं कुशलता के साथ स्थापित हुआ है। दृढ़ता और बुद्धि का संयोग होने के कारण उनके विचारों में विचारों के साथ ही साथ मान भी चलते हैं। उनके विचारों में ही सतृप्तता, रोचकता, और व्यंग्यता पाई जाती है, उसका कारण केवल यही है, कि वे अपने विचारों में समित्व के साथ ही साथ दृढ़ता की भी छाप प्रकाश कर रहे हैं। (३) गुप्तकाली के विचारों में विचारों की दृढ़ता, और वास्तविक सम्बन्धता पायी है। जब प्रकार एक वाक्य के अर्थों के लिये विशेष करते हैं, उसी प्रकार गुप्तकाली के विचारों में उनके विचारों की सतृप्तता रहती है। (४) गुप्तकाली के विचारों की भाषा और शैली उनके विचारों के ही अनुकूल है। उनके विचारों की भाषा और शैली में भाषा प्रवाह तथा व्यंग्यता पाई जाती है। (५) गुप्तकाली में अपने विचारों का प्रतिपादन नहीं कुशलता के साथ किया है। उनके प्रतिपादन और कथन का दृष्टि अधिक प्रभावपूर्ण है। (६) उन्होंने अपने विचार और कथन की अधिक सतृप्त करने के लिए बीच-बीच में कथाओं का भी समावेश किया है। इसके अतिरिक्त और कथन में रोचकता का कई है। इस प्रकार हम विशेषताओं के अनुसार हमें गुप्तकाली के सभी विचारों प्रभाव उत्कृष्ट करने में अधिक सुगमतापूर्ण सिद्ध हो सके हैं।

विचारकाल की नीति गुप्तकाली में आलोचक के मन में भी साहित्य की कार्यता की है। जिस प्रकार उनका विचारकाल का मन अधिक प्रभावपूर्ण और वैयक्तिक है, उसी प्रकार आलोचक के मन में भी उनकी साहित्यिक वैचारिक प्रभावशाली है। आलोचक के मन में, उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में एक नई दिशा का निर्माण किया है। आलोचना की समीक्षात्मक शैली का प्रयोग सर्व प्रथम उन्होंने ही रचनाओं में किया है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, कि गुप्तकाली ने साहित्य की दिशा में विशेषज्ञतापूर्ण और मनीषिकारिक आलोचना शैली को जीवित कर दिया है। उन्होंने केवल एक शैली की शीघ्र ही नहीं बनाई, बल्कि उनके परिशुद्ध और परिमार्जित भी किया है। उनकी आलोचनाएँ ही नीति में विरक्त हैं - ऐतरेयिक और व्यावहारिक। ऐतरेयिक आलोचनाओं में उनकी के अर्थों पायी हैं, जिनमें साहित्य के अर्थ प्रभावों पर विशेषज्ञतापूर्ण निवेदन-किया गया है। जैसे—साहित्य, उत्कृष्टता, और भाषा की शक्ति इत्यादि। व्यावहारिक आलोचनाओं में उन्होंने अपनी व्यक्तिगत संविभक्तता की

मूल्य दिया है। मूल्य, तुलसी और बाबरी दुन्दुभि कविता की आलोचना में उन्होंने अपनी कैवलीय कविता की ही प्रधानता प्रदान की है।

तुलसी के विषय में विषय प्रतिपादन, कथन, और भाव व्यंजकता की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, वहीं हीरो और बाबा की दृष्टि से उनका आधुनिक तुलसी की स्थिति है। हीरो और बाबा के क्षेत्र में तुलसी के द्वारा हीरो एक महत्वपूर्ण आदर्श स्थापित हुआ है। तुलसी का

आधुनिक हिन्दी का केवल नाम के अतिरिक्त नाम के अतिरिक्त है। तुलसी के पूर्व हिन्दी का हीरो के कई छोटे-छोटे चरित्र हैं, और उनका अधिक परिभाषित भी ही हुआ था। हिन्दी का हीरो का नाम वैयक्तिकता का आभास करने के लिए बल का भाव-व्यंजकता की और प्रसरण हो चुका था। उनमें हीरो और प्रेममत्ता की भी प्रतीति थी। रामों के प्रयोग में भाव-व्यंजकता को महत्व दिया जाने लगा था। रामों की आधुनिक कविता में भी हीरो का भाव का प्रकाश था। बाबरी के प्रयोग में आधुनिकता को महत्व दिया जाने लगा था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि जब तुलसी का आधुनिक हुआ, तब उन्हें अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए हिन्दी का एक ऐसा हीरो बना, जिसमें प्रत्येक प्रकार की प्रतीति और विचार के रूप में प्रकट थे। तुलसी में अद्भुत प्रतिभा प्रकट थी। वे कई भावों के प्रति थे। वे भाव विचार, और हीरो के प्रतीति में प्रतीति प्रतिबल थे। तुलसी में अपने पूर्व की हीरो के अनुसार वह हीरो हीरो और बाबा का निर्माण किया है। उन्होंने अपनी हीरो में पूर्व की हीरो को भी ही एक आदर्श और प्रकट प्रकाश किया है। उनकी हीरो, और बाबा हिन्दी की एक हीरो तथा बाबा का एक प्रकाश प्रकाश है। उनके न कथित है, और न प्रकट है। उनकी हीरो में सर्व प्रकाश, और हीरो एक का नामा जाता है। रामों के प्रयोग, और बाबरी के प्रयोग में उन्होंने अपनी कला प्रकटता प्रकट की है। उनके राम उनके रामों के ही अनुकूल हैं। रामों में आधुनिक प्रतीति, और प्रकट है। बाबा की आधुनिक प्रतीति हीरो और बाबा प्रकट है। उनके भाव और विचार उनकी हीरो में हीरो की प्रतीति प्रतीति प्रकट हैं। प्रभावप्रकट उनकी हीरो की प्रकट प्रतीति है। उन्होंने बड़ी प्रकटता के साथ विषय का प्रतिपादन किया है। विषय के प्रत्येक प्रकाश पर प्रकाश प्रकाश में उनकी हीरो अधिक प्रकट प्रकट हो रही है। वे अपने भावप्रकट रामों और बाबरी में विषय के प्रत्येक प्रकाश का विषय प्रकट करते हुए प्रकट हैं। बाबा-राम तुलसी के अपनी हीरो में प्रकट प्रतीति और प्रकट का भी प्रकाश किया है। प्रकट प्रतीति और प्रकट की के प्रयोग के कारण उनकी हीरो में और भी अधिक प्रकटता प्रकट हो गई है।

तुलसी की हीरो तीन प्रकार की है—आलोचनात्मक हीरो, वैयक्तिकतात्मक हीरो, और भावप्रकट हीरो। तुलसी का आलोचनात्मक हीरो के हिन्दी में प्रकट है। उनकी आलोचनात्मक हीरो के दो रूप हैं—प्रकट आलोचना हीरो, और प्रभावप्रकट आलोचना हीरो। प्रकट आलोचना हीरो अधिक प्रकट और प्रभावप्रकट है। इसके अतिरिक्त

छोटे समय है, जो कभी की तुलना से पूर्व है। उनकी इस शैली में विषय का स्वी-
कृत्य नहीं सुझाव के साथ हुआ है। दूसरी शैली में पूर्व है। कभी इस शैली में
तुलनाओं में पूर्व का कभी और कभी का कभी किया है। उनके स्वीकी में विषय,
और समय है। निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी आलोचनात्मक शैली का विषय देखिए—
‘ममता का वन वन के बीच एक सुन्दर रास्ता की राह लिए दो वन आकाश
जहाँ सन्तुष्टों को विषय के दिनों को तुलना के दिनों में परिवर्तित करने काकर
‘और कभी सन्तुष्टों की राह का दूरस्थान करते हैं, सन्तुष्टों का विषयों में
का मादुर’ देश का कलक लिए सन्तुष्टों के कदम, सन्तुष्ट, और सन्तुष्ट
का विषय करने हुए वन वन तुलना में दो वन और वन एक वन सन्तुष्ट है।’
तुलनाओं की दूसरी शैली सन्तुष्टात्मक है। इस शैली के निम्न में तुलनाओं में
कने दासिक विषयों का परिवर्तित किया है। उनकी यह शैली दासिक विषयों
में संतुष्ट होने के साथ आलोचना शैली में अधिक काकी और किया है। आलो-
चना शैली को कभी इसमें कभी अधिक तुलनात्मक किया है। इस शैली के
राशियों में अधिक सन्तुष्ट, और कभी सन्तुष्ट है। निम्नलिखित पंक्तियों में उनकी
इस शैली के स्वरूप को देखिए—‘कभी सन्तुष्ट का नाम न लेकर शीर्ष’ का ही
नाम होता है, और अधिक शीर्ष की कभी वनकर सन्तुष्ट की ही कभी किया
करता है। सन्तुष्ट इस सन्तुष्ट-मेद को न सन्तुष्ट का नाम लेकर में लोक सन्तुष्ट
का सन्तुष्ट शीर्ष एक कर कभी। इसमें उनकी कभी-कभी सन्तुष्ट के सन्तुष्ट के
कने में ही गई।’ तुलनाओं की तीसरी शैली आकाशक है। इस शैली में उन्होंने कने-
सन्तुष्ट निम्न की राह की है। यह शैली कने दल की कनेली है। हिन्दी
में तुलनाओं ही इस शैली के सन्तुष्ट का कने है। इसमें विषयों और राशियों
का सन्तुष्ट सुझाव के साथ आकाश हुआ है। साथ सन्तुष्ट इस शैली की तुलना
विषयक है। इसमें छोटे-छोटे, कल और साथ सन्तुष्ट राशियों का सन्तुष्ट नहीं सुझा-
व के साथ किया गया है। इसमें साथ की अधिक आकाशक, और सन्तुष्ट है।
निम्नलिखित पंक्तियों में आकाशक शैली का ही वन सन्तुष्ट हुआ है—‘कने कने में
दुन्दे के सन्तुष्ट तुलना का, सन्तुष्ट और तुलना की तुलना ही वे तुलना और सन्तुष्ट
है, तथा कने सन्तुष्ट कने से इन कने में सन्तुष्ट हो, न सन्तुष्ट है।’

कने प्रकार तुलनाओं की शैली में उनके पूर्व की कने शैलियों की निम्नलिखित शि-
ष्ट है, उन्ही प्रकार उनकी राह में भी उनके पूर्व की राह के निम्न के कने सन्तुष्ट
तुलनाओं की सन्तुष्ट है। हिन्दी तुलना की राह का कने, शीर्ष और
राह तुलना सन्तुष्ट तुलनाओं की राह में ही किया है देश है।
तुलनाओं में शैली की शिष्ट ही राह के क्षेत्र में भी एक सन्तुष्ट आकाश सन्तुष्ट
किया है। उन्होंने हिन्दी की कने कने के शिष्ट क्षेत्र की अधिक निम्न कने
है। उन्होंने अधिक और निम्न का निम्न की राह कने कने कने शिष्ट
की शिष्ट का परिवर्तित किया है, कने कने कने कने की सन्तुष्ट शिष्ट की और

की अधिक व्यापक कलाक है। उन्होंने कहीं कहीं से सर-सर समी के प्रयोग किया है। उन्होंने समी के प्रयोग में समी की नई-नई ध्वनियों से काम लिया है। कानों के विचार में भी उन्होंने नवीनता प्रदर्शित की है। उन्होंने कहीं कहीं के प्रवाह को प्रयोगविधता, और भाव-व्यंजकता की ओर मोड़ा है। इसी ही नहीं, उन्होंने इन प्रवाह को अधिक विविधता, संवत् और स्वाभाविक को बनाया है।

जिस प्रकार सुलझी की हीली के बीच का मिलते हैं, उसी प्रकार उनकी भाषा को भी उन्होंने विचार को नई कला दी—विचार का, और स्वाभाविक रूप। उनके साहित्यिक-साहित्य और साहित्यिक-साहित्य विचारों में भाषा का विचार एकदम देखने को मिलता है। उनकी यह भाषा संस्कृत वर्णित है। इसमें संस्कृत के उत्तम समी का प्रयोग अधिकता के साथ हुआ है। इसमें ऐसे शब्द जो बहुत दुर्लभ हैं, जो विशुद्ध संस्कृत हैं। अतः बहुत समी का प्रयोग भी इस भाषा में प्रयोग नहीं के बिना गया है। इसका एक मात्र उद्देश्य विचार का व्यंग्यपूर्ण और उत्तम प्रसारण है। विचार का उत्तम प्रसारण करने के उद्देश्य से ही सुलझी ने सर-सर समी का निर्माण किया है; परिणामस्वरूप उनकी यह भाषा सुन्दर हो गई है। उनकी भाषा का दूसरा एक स्वाभाविक है, जो उनके प्रयोगात्मक विचारों में मिलता है। उनकी यह भाषा अधिक सरल और सुधीन है। इसमें अधिकतर ऐसे ही समी का प्रयोग हुआ है, जो अधिक स्वाभाविक हैं। कहीं कहीं उन्हें और औरों के समी की सुलझी की भाषा में मिलते हैं। औरों की समी का प्रयोग उन्होंने ऐसे समी पर किया है, जहाँ उन्हें प्रभाव कला संस्कृत भाषा-व्यंजक करने होते हैं। इसी प्रकार उन्होंने उन्हें समी का प्रयोग ऐसे समी पर किया है, जहाँ उन्हें करने काव्य की व्यंग्यपूर्ण और सुधीन बनाना होता था। उन्होंने विदेशी समी को उनके प्रयोग के रूप में ही प्रयोग किया है।

सुलझी की भाषा अधिक सरल, संवत् और विचार-सुलझ है। प्रीति और साँसलता उनकी भाषा में विशेष रूप से पाई जाती है। उनके साहित्य की संस्कृति उनकी भाषा में सुदृढ़ रूप से प्रतीति है। उनकी विचार शक्ति, और व्यंग्य-पूर्ण व्यंग्यपूर्ण की सुलझ स्वरूप रूप के उनकी भाषा पर विशेष प्रतीति पड़ती है। सुलझ सुलझ की भाषा की अपनी कला है।

हिन्दी कला के हिन्दी रूप की संस्कृति हीरा रामचन्द्र सुलझ है। हिन्दी कला के प्रारम्भ में जिस हिन्दी कला में कामे मरुने के लिए का उदाहरण होता था, वह सुलझी और वं- रामचन्द्र सुलझ की भाषा, और हीली में दुर्लभ रूप से हिन्दी रूप का उदाहरण के बीच की और साहित्य दिखाने देता है। केवल साहित्यिक रूप विचार के बीच में ही नहीं, बल्कि, सरल, उदाहरण और साहित्यिक रूप के बीच में उनकी प्रति शक्ति देखने को मिलती है। हिन्दी कला में हिन्दी रूप हीली, और भाषा में ही उदाहरण की, उत्तम साहित्यिक रूप सुलझ की ही भाषा और हीली में देखने को मिल सकता है। सुलझी ने हिन्दी रूप-संस्कृति

में एक युगांतर सा उपस्थित कर दिया है। उन्होंने ऐसे विषयों पर निबन्धों और ग्रन्थों की रचना की, जिनकी ओर अभी तक किसी का ध्यान ही आकृष्ट नहीं हुआ था। आलोचनात्मक और भाषात्मक शैली के निबन्धों की विद्वत्ता पूर्ण रचना सर्व प्रथम शुक्लजी के ही द्वारा हुई है। इन दोनों ही शैलियों के सम्मिश्रण भी शुक्लजी ही हैं। इस प्रकार शुक्लजी ने द्विवेदी काल के गद्य की उत्पत्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचा कर उसके भीतर नए युग का निर्माण किया है। हम उस युग को विश्लेषण-पर्याप्तक और समीक्षात्मक युग कह सकते हैं। आज हिन्दी गद्य के क्षेत्र में, वही युग विभिन्न रूपों में प्रगट होकर अपनी पूजा करा रहा है।

हिन्दी गद्य—आधुनिक काल

आचार्य शुक्लजी के परचात् से हिन्दी गद्य ने एक नवीन युग में प्रवेश किया है। इस नवीन युग को हम आधुनिक काल कहते हैं। शुक्लजी द्वितीय काल और आधुनिक काल के आधुनिक काल के मिलन बिंदु पर खड़े होकर एक गद्य की प्रगति की सम्पत्ति और दूसरे का उद्धारन करते हुए दिखाई देते हैं। शुक्लजी के गद्य से द्वितीयकाल, और आधुनिक काल दोनों की ही विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिस प्रकार हम शुक्लजी के गद्य से द्वितीय काल के गद्य की विशेषताओं का अनुमान लगा सकते हैं, उसी प्रकार शुक्लजी का गद्य आधुनिक काल के गद्य के ऊपर भी प्रकाश डालता है। शुक्लजी के गद्य को हम एक ऐसा उद्गम स्थान मानते हैं, जहाँ से कई धाराएँ विभिन्न रूपों में निःसृत हुई हैं। इन धाराओं में कुछ तो शुक्लजी के गद्य का रंग है, और कुछ अन्त्याम्य प्रवाहों के गद्य का प्रभाव। इस प्रकार आधुनिक गद्य के क्षेत्र में भाषा और शैली की दृष्टि से नई नई धाराएँ फूट पड़ी हैं। हिन्दी गद्य का आधुनिक काल भाषा, शैली और विषय की दृष्टि से हिन्दी गद्य की उत्पत्ति का काल कहा जा सकता है। इसी युग में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्रजी का आविर्भाव हुआ है, इसी युग में स्वर्णीय कथकाल प्रसादजी ने अपने नाटकों की रचना की है, और इसी युग में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री परशुराम चट्टर्वेदी, डा० नयैन्द्र, श्री गुलाबराय, और श्री जैनेन्द्र इत्यादि निबन्धकारों ने अपने निबन्धों और आलोचनाओं से हिन्दी साहित्य का शृंगार किया है। सभी आधुनिक काल की प्रगतिधारी है, और सभी इन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की कृतियों का प्रवाह भी अलंकृत रूप से चल रहा है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त और भी किन्हीं ऐसे गद्यकार हैं, जो अपनी गद्यात्मक कृतियों से हिन्दी साहित्य के भंडार की अभिवृद्धि कर रहे हैं।

आधुनिक काल में हिन्दी गद्य की उत्पत्ति साहित्य के सभी क्षेत्रों में हो रही है। उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना, निबन्ध, एकांकी और गद्य काव्य इत्यादि सभी क्षेत्रों में हिन्दी गद्य अपने व्यापक सिद्धांतों और आदर्शों के साथ उत्पत्ति के क्षेत्र की ओर अग्रसर हो रहा है। हिन्दी गद्य ने अपने सभी क्षेत्रों में नवीनता का स्वरूप धारण किया है। आधुनिक काल में हिन्दी गद्य की प्रवृत्ति ने सभी क्षेत्रों में नवीनता

स्थान है। इन उपन्यासकारों में लखीम प्रेमचंद, लखीम बंसाल, श्री वैमोद कुमार, श्री अशोक, श्री पद्मनाभ, और श्री मयमयी उद्यम बाबूजी इनमें से उपन्यास के क्षेत्र में बराबर आरतों की शक्ति थी है। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रेमचंदजी का स्थान रौबदारि है। प्रेमचंदजी ही हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार हैं, जिन्होंने उपन्यास के क्षेत्र में जीवन का चित्र खींचा है। यद्यपि उनके विषय में बहनों की ही प्रधानता है, पर यह जो निश्चय है, कि आज हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में जीवन की जो विस्लेषणात्मक भाषा बह रही है, उसका उद्गम प्रेमचंदजी की ही रचनाओं में निकला है।

उपन्यास की मूर्ति कदाही के क्षेत्र में ही हिन्दी गद्य के अधिक उपलब्धि की है। कदाही के क्षेत्र में हिन्दी गद्य का सबसे अधिक विकास हुआ है। हिन्दी कदाही का सहाजी अन्य हिन्दी गद्य से हुआ था। हिन्दी गद्य में हिन्दी कदाही के अन्य लेखक, जैसे ही हिन्दी में अधिक उपलब्धि कर ली थी। हिन्दी गद्य में ही हिन्दी कदाही ने जीवित का रूप भी बरसा कर दिया था। यह सच है, कि हिन्दी गद्य में हिन्दी कदाही के अंदर में समुचित कदाहियों की संख्या अधिक थी। पर यह जो सच है, कि मौखिक कदाहियों ने हिन्दी भाषा में ही अन्य गद्य का रूप दिया था। हिन्दी गद्य में मौखिक कदाही अस्मिता में का चुकी थी, और यही यही उसका विकास भी होने लगा था। हिन्दी भाषा में हिन्दी कदाही की प्रगति इसके रूप के बदलने की और थी, पर लगे लगे उसका विकास हुआ है, लगे लगे यह रूप के अंदर ही के साथ अपनी समिद्धता बढ़ाती गई है। आधुनिक भाषा में ही हिन्दी कदाही का स्वरूप पहले के मिलकुल बदला हुआ है। उसके आज के और पहले के स्वरूप में मिलकुल भिन्नता है। आज उसका स्वरूप एक नए ही स्वरूप का है। एक दिन था, जब हम उसके शरीर की वास्तविक और अस्तित्विक शक्तों के समक्ष थे, उसके शरीर की कमानों के लिए हमें हिन्दी में अधिक के अधिक परोक्ष उत्तरावृत्ति थे, दूसरे शरीर में प्राचीन कदाही की भाषा जिसे कदाही की श्रुति कहते हैं, अस्तित्विक होती थी, किन्तु आज उसने अपना नए भाषा खोज लिया है। आज उसके शरीर में अस्तित्विकता की प्रधानता नहीं है। आज उसका ध्यान कलात्मक, शौचमिता, और हृदय लक्षित की और है। आज वह अपने शरीर में, जिससे उसका भाषा शरीर पूर्ण होता है, बसकर लगी उत्पन्न करती, बस एक ऐसे शक्ति उत्पन्न करती है, जो विज्ञान की मूर्ति संश्लेषित होकर हृदय की गहराई करती है। आज उसका पूर्ण भाषा अपनी भाषा में और अपनी ही भाषा में हृदय लक्षित, और शौचमिता की शक्ति को ही उत्पन्न करने की और है। यद्वा पहले, कि कहीं वह आज कम, कम, और मौखिक के अस्तित्व में हट कर कई और अधिकारी के विषय के द्वारा मानव को मानव से दूर ले जा रही है, उसने अपनी उत्पन्न में—भाषा, शैली, और शब्दों में समुचित पूर्ण उपलब्धि की है। उसकी अस्तित्व का, जो मौखिक भाषा का मान करने में ही पूर्ण शक्ति के

क्योंकि और परमात्मा की ही स्थापना दिखाई पड़ती है। पर उससे हिन्दी भाषाकला के विकास पर अभाव पड़ना नहीं है। इससे वह साधक प्रेरित होता है, कि हिन्दी भाषाकला उपलोकिक विकास के क्षेत्र की ओर प्रसरण हो रही है। साधुनिक काल में भाषाकला पूर्ण रूप से विकास के क्षेत्र की ओर संसरित दिखाई पड़ती है। विवेकी काल में यहाँ वह प्राचीन परम्पराओं से मिलता जो, यहाँ साधुनिक काल में वह पूर्ण रूप से नवीयता पाती है। साधुनिक काल की भाषाकला का शरीर से लेकर आत्मा तक सब कुछ सचेत है। प्रायोगिक और विवेकी काल में वह संभ्रुत के प्राचीन भाष्य सिद्धांतों का ही वह साधनात्मक काशी की, पर साथ ही ईश्वरीय की भाषाकला के मार्ग का अनुसरण कर रही है। संसार के और कई साहित्यों की भाषाकलाओं का साथ उसमें सम्मिलित है। साथ उसका कुशल अभिव्यक्त जीवन की समस्याओं के विधान की ओर है। यद्यपि साधुनिक काल में भी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक भाषाओं की रचना हुई है, पर उन भाषाओं के भीतर की जीवन की समस्याओं के निदान का ही अनुसरण मिलता है। सामाजिक और सांस्कृतिक भाषाओं की रचना ही विप्लव रूप से, इसी काल की सामने एक कर की जाती है। साथ के भाषाओं में संश्लेष की वृत्ति सब से प्रभावित होती है। संश्लेष के क्षेत्र सभी के चरित चित्रण तथा परिचय में ही संश्लेष की अधिकता देखने की मिलती है। साथ के युग में यही भाषा सबसे अधिक प्रचलित, और कला 'पूर्ण' समझा जाता है, जिसमें भाष्य युग के लोगों का विवेकीय होता है। इसी भाषा की एक एक रूप में ही वह बसते हैं, कि साथ की भाषाकला कुशल रूप से प्रायोगिकता की ओर उन्मुख है। साथ उसके सामने कोई नहीं, साथ है। साथ साधु के लिए उसके भीतर सम्पन्नता नहीं, साथ वह सम्पन्न है साथ की ओर में। 'समाधि' का मार्ग ईश्वर ही साथ उसका लक्ष्य है। 'साधन और समाधि' के साथ उसके भीतर ऐसी साधुता प्रकाश कर दी है, कि वह साधन की ही भूत नहीं। यद्यपि सभी प्रायः ही और केन्द्र योगिन्द्रिय दृष्टि साधन-कार्य की भाषाकला में साथ का अभिव्यक्त नहीं मिलता है, पर यही सीढ़ी के अभिव्यक्त भाषाकला की भाषाकला में अपने की भाष्य में प्रथम की प्रकाश है। साधुनिक भाषाकला का प्रभाव कुशल रूप से अपने की भाष्य में प्रथम रखने की ओर दिखाई देता है।

साधुनिक काल मौलिक रचना का युग है। जिस प्रकार साधन, उपसाधन, और सहायी इत्यादि क्षेत्रों में मौलिक रचनाएँ की गयी हैं, उसी प्रकार भाषा के क्षेत्र में भी अभिव्यक्त मौलिक रचनाओं की ही दृष्टि हो रही है। केवली ऐसे सुलोक है, जो मौलिक भाषाओं की रचना में लगे हुए हैं। इन क्षेत्रों में सर्वोपरि प्रकाश की केन्द्र योगिन्द्रिय, की योगिन्द्रिय प्रकाश करती, की साधुनात्मक विषय, की उपलब्धि करती, की सम्पन्नता प्रकाश मिलित, और की दृष्टिपूर्ण योगी इत्यादि का अनुभव प्रकाश है।

समायोगिता के क्षेत्र में भी साधुनिक काल में हिन्दी भाषा में अभिव्यक्त प्रकाश की

सर्वोच्च अवस्थातक प्रसार—प्रसारणी का कार्य सन् १९४६ में आरम्भ हो चुका था। प्रसारणी हिन्दी साहित्य के आधुनिक निर्माताओं में प्रमुख थे। यदि हम उन्हें प्रसारणी की आधुनिक युग का निर्माता नहीं ही कोई समझें तो ग़ोरी। क्योंकि वे अपने अन्तर्गत अपने हिन्दी साहित्य के काल, उपन्यास, कहानी, गद्य, और विचार तथा आलोचना इत्यादि सभी क्षेत्रों में उनके द्वारा नवीन आन्दोलनों की स्थापना हुई है। उनका साहित्यिक साहित्य हमारे सामने खड़ा नहीं है—कवि के रूप में, उपन्यासकार के रूप में, गद्यकार के रूप में, कहानीकार के रूप में और निबंधकार के रूप में। कवि के रूप में प्रसारणी महान्वय है। उन्होंने 'आँखें', और 'आमाँसी' की रचना करते अपने आत्मकथन की रूप हिन्दी साहित्य के ऊपर समीक्षात्मक के रूप में। 'आमाँसी' उनका उपन्यास है, जो हिन्दी साहित्य में अपने ढंग का अकेला है।

साहित्य के क्षेत्र में प्रसारणी युग के सृष्टा है। नववि कविता की भाँति ही उपन्यास के क्षेत्र में भी उनके द्वारा नवीन आन्दोलनों की स्थापना हुई है, पर उपन्यास के क्षेत्र में हम उन्हें युग का सृष्टा नहीं कह सकते। क्योंकि प्रसारणी के पूर्व प्रेमचन्द की का आधिपत्य ही चुका था, और उनके द्वारा हिन्दी उपन्यास काल में एक नवीन युग की स्थापना ही चुकी थी। फिर भी उपन्यास काल में प्रसारणी का औरत युग स्थापन है। प्रसारणी ने नवीन उपन्यासों की रचना की है—बंशज, विपत्ति, और इतरादी। प्रसारणी के लोको ही उपन्यास साहित्यिक युद्धों में युद्ध है। कथा, चरित्र चित्रण, और आलोचना—इत्यादि दृष्टि के उनके उपन्यासों का सम्मान किया जा सकता है। प्रसारणी के लोको ही उपन्यासों की कथा मौलिक है। कथा की दृष्टि, और उनके निर्माण के उन्होंने अपनी मौलिक रूप-रूप का परिचय दिया है। उनके उपन्यासों की कथा मौलिक होने के साथ ही साथ साहित्य साहित्यिक और लोको भी है। उन्होंने अपने उपन्यासों की कथाओं में जीवन की दृष्टि का प्रकाश दिया है। उनकी कथाओं में जीवन कोलता है। बड़ी कथा है, कि उनकी कथाओं में साहित्य के साथ ही साथ जीवन का उत्तर आता है। उनके उपन्यासों के साथ साहित्यिक लोको और लोको है। उनमें दृष्टि की विशालता, और महत्त्व है। वे बड़ी गहराई के अपने पत्र की संकल्पों को पार करते हैं। वे अपने दृष्टि की कल्पना को भी नहीं छोड़ते। जीवन के कथन के लिए वे अपने पत्र को भी बड़े कथन के साथ अपने उपन्यास कर देते हैं। प्रसारणी के उपन्यासों में लोको के चरित्र चित्रण में साहित्यिकता के साथ साथ दिया गया है। चरित्र चित्रण के उन्होंने आलोचनात्मकता का ही आलोचनात्मकता है। वे बड़ी कुशलता, और लोको के लोको के दृष्टि में प्रवेश करते हैं, और उनके पत्र के दृष्टि का चित्र उपन्यास करके उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। उनके उपन्यासों में साथ प्रकाश विशेष कर से पाई जाती है। उन्होंने कथा, चरित्र चित्रण और प्रसारणी-दृष्टि अपने भावों के लोको में डाला है। अतः उनके उपन्यासों में जीवन के लोको का प्रकाश ही पत्र

ज्ञानम् जाता है, वहाँ उनमें कलात्मक, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, दृश्य, और अभिनयप्रामाण्यता की भी स्वाभाविकता मिलती है।

कहानी के क्षेत्र में भी प्रसादजी की प्रतिभा ने अपनी कला स्थापित की है। काव्य, गद्यक, और उपन्यास की सीढ़ि कहानी के क्षेत्र में भी प्रसादजी ने सर्वोच्च शायरी की स्थापना की है। प्रसादजी ने कई दर्जेय कदाविवर्ति लिखी हैं। उनकी कदाविवर्तों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—साक्षात्कार, रहस्यकारात्मक, और वचार्थ कारात्मक। उनकी साक्षात्कार कदाविवर्तों कहानी कला की दृष्टि से सर्वोच्चम रही वही का सकते हैं। अपनी साक्षात्कार कदाविवर्तों में वे कहानी कला के निष्कल-व्यवस्था पर विश्वास देते हैं। उनकी कहानी कला का सादर स्वरूप उनकी रहस्य कारात्मक, और वचार्थ कारात्मक कदाविवर्तों में देखने को मिलता है। उनकी रहस्य कारात्मक कदाविवर्तों स्वभाविकता के अद्भुत चित्र उपस्थित करती हैं। वचार्थ चरित्र चित्रण, संवाद, घटना, जंग, विस्तार, विरोध इत्यादि कहानी के अद्भुत दृष्टि और स्थलों के चित्र संवेक के द्वारा ही एक हुए हैं। उनकी वचार्थवादी कदाविवर्तों जीवन के वास्तविक दुखों और सुखों के चित्र उपस्थित करती हैं। जीवन के विविध और वास्तविक चित्रों को उपस्थित करने में उनकी वचार्थवादी कदाविवर्तों अद्वितीय हैं। प्रसादजी ने ऐतिहासिक कदाविवर्तों भी लिखी हैं, किन्तु वे साक्षात्कारता का रंग हैं।

प्रसादजी ने उपकृत चित्रणों की भी रचना की है। उनके निरावर्त जीवन का रंग है। एक प्रकार के निरावर्त के हैं, जो विचारवार में संवर्धित हैं। वह निरावर्त उनके शारंगिक काल के निरावर्त हैं। निरावर्त, रीली, और भाषा की दृष्टि से हमें विविधता है। दूसरे प्रकार के निरावर्त में हैं, जो भूमिका के रूप में लिखे गए हैं। इन निरावर्तों में हमें जीवन की अत्यन्त मिलती है। इनकी भाषा और रीली की अधिक शीघ्र तथा सुन्दरस्थित है। प्रसादजी के तीसरे प्रकार के निरावर्त उनके 'काव्य और कला' में संवर्धित हैं। इनकी भाषा और रीली दूसरे प्रकार के निरावर्तों की भाषा और रीली से भी अधिक शीघ्र और व्यवस्थित है। हमें वहाँ निरावर्त कला का उपस्थित कर में निरावर्त हुआ है, वहाँ हमें कथोपकथा और ज्ञानवन्त शीघ्रता भी अधिक मिलती है।

प्रसादजी पुन कला के। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, और गद्यक इत्यादि सभी क्षेत्रों में सर्वोच्च सादरों की स्थापना की है। उनके क्षेत्र में उनका अपना प्रसादजी एक व्यवस्थित है, अपना एक दृष्टि है। उनके व्यवस्थित के अद्भुत की रीली का रूप ही उनकी अपनी रीली की है। उनकी रीली पर उनके व्यवस्थित का रंग है। उनकी रीली अपने दृष्टि की अद्भुत रीली है। उनकी रीली का सुभाव सुख रूप से साक्षात्कारता की और भाषा जाता है। वे अपने अपने काव्य और प्रत्येक शब्द की साक्षात्कारता, और स्वभाविकता के सीधे में चलते हुए विश्वास देते हैं। वही कारण है, कि उनकी रीली साक्षात्कारता ही गई है। काव्य पुन होने

को प्रयोग किया है। उनकी व्यंग्यमय शैली में जीजा नदी, यमुना और मिठाई हैं।

शैली की मीठी ही प्रशस्ती की वजह पर भी उनके व्यंग्यमय को खुर है। प्रशस्ती उच्चकोटि के साहित्यकार और कलाकार से। उन्होंने अपने साहित्यिक प्रशस्ती की

भाषा

भाषा अधिक बर्नीर, कलात्मक, और प्रभावपूर्ण है। उनकी

भाषा के दो रूप मिलते हैं—एक साधारण, और दूसरा संस्कृत प्रभाव। भाषा का साधारण स्वरूप उनकी आरंभिक रचनाओं में मिलता है। प्रौढ़ काल की रचनाओं में भी, उन रचनाओं पर साधारण भाषा ही दिखाई पड़ती है, यहाँ उनके भाषा अधिक भाषावेद्य में का गढ़ है, कल्पना यहाँ उन्होंने अधिक भाषावेद्य में कायर भाषों का चित्रण किया है। उनकी साधारण भाषा अधिक सरल और सरल है। उनके छोटे छोटे वाक्य भी, जो अधिक भाषात्मक हैं। साधारण भाषा में अधिकतर सरल वाक्यों का ही प्रयोग किया गया है। प्रशस्ती की भाषा का दूसरा स्वरूप यह है, जो संस्कृत प्रधान है। प्रशस्ती की भाषा के एक स्वरूप का विकास हमी हमी हुआ है। यही यही प्रशस्ती का अन्तर्गत बहुत गया है, और यही यही उनके विचारों में साहित्यिकता का समर्थन होता गया है, यही यही उनकी भाषा की संस्कृत प्रधान होती गई है। उनके इस भाषा में संस्कृत के लक्षण हमी की प्रधानता है। उनके शब्द उनके भाषों के ही अनुकूल हैं। उनके वाक्यों में भी, और संस्कृत है। उन्होंने यहाँ किश शब्द का प्रयोग किया है, काव्यमयता के ही अनुकूल किया है। उनके वाक्यों में साहित्यिकता और साहित्यिकता भी है। साहित्यिक और साहित्यिक वाक्यों की अधिकता के कारण उनकी भाषा अधिक साहित्यिक है। भाषा-समर्थता उनकी भाषा की मुख्य विशेषता है। साहित्यिक और साहित्यिक का प्रयोग प्रशस्ती की भाषा में बहुत कम मिलता है। साधारण भाषाओं के कारण भी उनकी भाषा में बहुत कम संस्कृत हुए हैं।

सर्वोच्च वैयक्तिकता की का कल्पना १९३५ में बरतन विद्यापीठ प्रतिष्ठान लखनऊ में हुआ था। हिन्दी साहित्य में वैयक्तिकता का एक अमर उदाहरणकार वैयक्तिकता की के रूप में अधिक है। उन्होंने हिन्दी उदाहरणकार में साहित्य साधना एक नवीन युग की स्थापना की है। उनके पूर्व हिन्दी साहित्य में मौखिक उदाहरणों का अभाव था। जो मौखिक उदाहरण थे, वे का ही लिखित थे, और का उनके सुझाव में अमूर्तता का प्रभाव भी। वैयक्तिकता के ही सर्व प्रथम ऐसे उदाहरणों की शक्ति थी, जिसने 'जीवन' साहित्यिक हुआ है। हिन्दी उदाहरण का उदाहरण सर्व प्रथम वैयक्तिकता में ही 'जीवन' से स्थापित किया है। वैयक्तिकता के सभी उदाहरण जीवन को ही लेकर चलते हैं। किसी का साधारण साहित्यिक जीवन है, जो किसी का साधारण साहित्यिक है। उन्होंने अपने उदाहरणों की साहित्यिक और साहित्यिक दोनों के ही विशेष है। उनके

वेमचन्द्रजी पहले उर्दू के श्रेष्ठ थे। उर्दू में उनकी कई प्राणोच्च स्तुतियाँ
 प्रकाशित हो चुकी थीं। उर्दू के बहानी लेखकों में उनका अधिक प्रारंभ पूर्ण मान
 वेमचन्द्रजी भी थे। हिन्दी के क्षेत्र में जाने के पूर्व के उर्दू के बहानी
 की शैली लेखकों में वह मात्र पर चुके थे। उर्दू में उनकी भाषा और
 शैली भी अधिक परिष्कारित हो चुकी थी। पर हिन्दी के क्षेत्र में जाने पर उन्हें पुनः
 शैली और भाषा के सम्बन्ध में उपा उपसर्ग करना पड़ा। यही कारण है, कि उनकी
 प्रारम्भिक कृतियों में जो शैली मिलती है, वह असाधारण और विशिष्ट है। हिन्दी
 के क्षेत्र में जाने पर उन्होंने नवी नवी उत्पत्ति की है, जो नवी उनकी शैली का भी
 विकास हुआ है। उनकी साहित्य स्तुतियों में सीढ़ी और परिष्कारित शैली का
 विकास हुआ है। उनकी शैली को हम निम्नलिखित नामों से অভিहित कर सकते
 हैं—परिचयात्मक, भाषात्मक, विकासत्मक, अधिकव्यक्तक, विशेषज्ञात्मक, और
 साक्षी-व्यापक। साक्षी-व्यापक शैली उनके निम्नो में आविर्भूत हुई है। वेम
 शैली में उनके उपन्यासों और कहानियों में पाई जाती है।

वेमचन्द्रजी की सभी शैलियाँ समीप और विशिष्ट हैं। उनकी शैलियों में
 कई प्रकार की विशेषताएँ पाई जाती हैं। वेमचन्द्रजी उर्दू के क्षेत्र में हिन्दी में प्रवेश
 से। यहाँ उनकी शैली पर उर्दू का रंग है। इस बात को हम इस रूप में कह सकते
 हैं, कि उनकी शैली में उर्दू की शैली मिली हुई है। उनकी शैलियों में एक और
 हिन्दी की समीक्षा है, और दूसरी और उर्दू का पुनरुत्थान है। हिन्दी और उर्दू
 शैली के विकास के कारण उनकी शैलियों में अधिक समीक्षा उत्पन्न हो गई है।
 वेमचन्द्रजी की सभी शैलियों में वह समीक्षा, मुख्य रूप से पाई जाती है। समीक्षा
 के साथ ही साथ व्यक्तता का प्रारंभ और उनकी शैलियों में मिलता है। शैलियों
 की समीक्षा के अन्त में हमारे में वेमचन्द्रजी एक ही व्यक्ति हैं। शैलियों के विकास
 उत्पन्न करने के लिए उन्होंने एक और सांस्कृतिक दृष्टि का साधन प्रारंभ किया
 है। उनके हृदय में समाधान, और सभी के समुदाय है। उनकी शैलियों में
 कृषिगत के दूर, माँ की ही क्षति करती हुई दिखाई पड़ती है। कहीं कहीं उनकी
 शैलियों के सांस्कृतिकता भी मिलती है।

वेमचन्द्रजी की शैलियों में माँ का चित्र उपस्थित करने में शीघ्र है। उन्होंने
 कहीं चित्र माँ का चित्र उपस्थित किया है, कहीं समीक्षा और समीक्षा के साथ
 उपस्थित किया है। उनकी सभी शैलियाँ अधिक प्रभाव पूर्ण हैं। माँ के चित्र
 को उपस्थित करने में उनका जो उद्देश्य होता है, वे करने उस उद्देश्य को पूर्ण
 नहीं समझते के साथ करती हैं। समाधानप्रदाता होने के साथ ही साथ वेमचन्द्रजी
 की शैलियों में अधिकव्यक्तता भी पाई जाती है। उनके उपन्यासों के पात्र एक-एक पर
 गहराई दृष्टि से चित्रित करते हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में कई पात्र-
 कीय कला का समावेश हुआ है, यहाँ उनके अधिक समीक्षा, और अधिकव्यक्तता
 उत्पन्न हो गई है। कहीं कहीं उनकी शैलियों में साक्षी और व्यक्त का गुण भी पाया

उनकी भाषा तो यह है, जिसमें संस्कृत के अनेक शब्दों के साथ उर्दू के बाहरी शब्द भी गुहागुहावर्ती रूप से मिलते हैं। इस भाषा में कहीं कहीं अँगरेजी की भाषा के शब्द भी बहुत कुछ हैं। गुहागुहा और उभितरी का प्रयोग भी इसी भाषा में मिलता है। यह भाषा अधिक सरल और सुयोग्य है। इसमें छंदे छंदे और प्रयत्न पूर्ण वाक्य हैं। कहीं-कहीं संस्कृत की उभितरी और श्लोकों के द्वारा इस भाषा को हार्म और किरीट के भी अंगों के द्वारा सजा है। उनकी दूसरी प्रकाश की भाषा का रूप यह है, जो उनके साहित्यिक और संसार समाज-सांस्कृतिक विषयों में मिलता है। यह भाषा अधिक संस्कृतजन्य है। इसमें विविध शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। शब्दों की विविधता के कारण यह भाषा अधिक सुन्दर भी गई है।

श्री अनुमोदित गुहागुहा शब्दों का रूप संवत् १९५१ में अर्धशताब्दीयतः अन्तर्गत नामक रूप में हुआ था। बरहोती सुयोग्य विज्ञान और मननशील व्यक्ति बरहोती की है। हिन्दी, और अँगरेजी इसदि भाषाओं का अन्तर्गत साहित्य साधना उन्होंने कहीं संशयता के साथ किया है। अँगरेजी और अँगरेजी द्वारा भाषाओं के साहित्य का अन्तर्गत उन्होंने गुहागुहा, और साहित्य-सांस्कृतिक रूप में किया है। उनका गुहागुहा विषय साहित्य और समाजजन्य है। उन्होंने साहित्य और समाजजन्य के संबंध रखते बाह्य की कृतिर्नी प्रयत्न की है, इन पर अन्तर्गत उनके सुयोग्य रूप की रूप है। अन्तर्गत कला के क्षेत्र में भी बरहोती ने सुयोग्य प्रयत्न की है। अन्तर्गत हिन्दीकी के अन्तर्गत 'अन्तर्गत' के अन्तर्गत का कार्य उन्होंने के द्वारा में कहा था। उन्होंने हिन्दीकी के अन्तर्गत-विषयों पर बहुत कर, अपनी प्रतिभा, और योग्यता से 'अन्तर्गत' की प्रकाश दिया था।

बरहोती की साहित्यिक केन्द्रों का रूप में विविध है—अर्थ के रूप में, अन्तर्गत के रूप में, अन्तर्गत के रूप में, अन्तर्गत के रूप में, अन्तर्गत के रूप में, अन्तर्गत के रूप में। बरहोती का साहित्यिक जीवन कविता के ही अन्तर्गत होता है। पहले बहुत कम उन्होंने साहित्य अन्तर्गत में प्रवेश किया, इन के कविता की कविता करते हैं। उनकी कविताओं में सुयोग्य भाषाओं और अनुसूचितों की अन्तर्गत मिलती है। अन्तर्गत भाषाओं का विकास भी उनकी कविताओं में हुआ है। बरहोती की कविता का रूप अन्तर्गत साहित्य-अन्तर्गत के 'अन्तर्गत' के अन्तर्गत के रूप में प्राप्त हुआ है। हिन्दीकी के अन्तर्गत का अन्तर्गत के अन्तर्गत की अन्तर्गत करने द्वारा में ही, जो कविता की कविता वाली और केन्द्र गई। उन्होंने कई वर्षों तक अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत के साथ अन्तर्गत का अन्तर्गत किया। उनके अन्तर्गत कला में 'अन्तर्गत' अधिक प्रतीति कला और अन्तर्गत की और अन्तर्गत हुई। 'अन्तर्गत' का अन्तर्गत करने करते हुए उन्होंने विज्ञानियों के अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत तथा अन्तर्गत अन्तर्गत भाषाओं में अन्तर्गत और अन्तर्गत का अनुवाद भी किया।

प्रभावोत्पादक होते हैं। कानची को कानसे बाँधे उनके कानों में बेलझड़ा और मछल-
कुल्ला होती है।

गलतियों की शैली को प्रकार की है—आवृत्तात्मक, और आलोचनात्मक।
उनकी आवृत्तात्मक शैली उनके साधुनिक और साहित्यिक निबन्धों में मिलती है।
यह शैली अधिक सरल, और साधु है। इसमें छोटे छोटे कल्प हैं, जो अधिक आक-
र्षक हैं। आलोचनात्मक शैली का विकास उनके काल्पनिक और समीक्षात्मक निबन्धों
में हुआ है। विषय के अनुक्रम ही इस शैली का लक्षण भी गठित हुआ है। पढ़ने
की अपेक्षा यह शैली अधिक संघीर और निस्पृह है।

गलतियों की शैली और भाषा के क्षेत्र में तुलना की जा सकती है। जिस प्रकार
उनकी शैली का तुलना की शैली को ध्यान है, उसी प्रकार उनकी भाषा की तुलना
कानची की को के ही कानची पर चलती है। तुलना की ही भी गति
भाषा कानची में भी अपनी भाषा को अधिक दृढ़, और कल्प
साहित्यी बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपनी भाषा की अधिक उच्च कानसे
के लिए संस्कृत के अनेक शब्दों के साथ ही वाच्य आलोचनात्मकानुसार उन्हें के कानची
का भी प्रयोग किया है। कहीं कहीं उन्होंने अनेक शब्दों से भी काम किया है।
आचार्य बेलवाण के दृष्टान्त शब्द की उनकी भाषा में आते हैं। इस प्रकार उन्होंने
अपनी भाषा को कल्पसाहित्यी बनाकर उसे सभी प्रकार के भाषा की कल्प
के योग्य बनाया है। उन्होंने अपनी भाषा की कहीं कल्प बनाया है, कहीं उसे कल्प
के भी अधिक में रखा है। उनकी भाषा का एक-एक शब्द अधिक सुष्ठु और सुनि-
श्चिit है, जो भाषा में एक हुआ जान पड़ता है।

ही कल्पानुसार कानची का कल्प-कल्प-कल्प में कानची कानची कानची कानची
नामक नाम में हुआ था। साधुनिक कानची में कानची का कानची कानची कानची
कानची की कानची में कानची के क्षेत्र में, कानची में कानची की है।

साहित्य साधना उनकी कानची को हम ही कानची में विचार कर सकते हैं—
उनका कानची के कानची, और कानची के कानची। कानची हिन्दी के कानची और
कानची कानची कानची है। उनके कानची की कानची के हैं—ऐतिहासिक और कानची-
निक। कानची में कानची ऐतिहासिक कानची के लिए कानची कानची के कानची
ऐतिहासिक के कानची में कानची लिए हैं। उनके ऐतिहासिक कानची में कानची को
कानची कानची का ही अधिक विकास हुआ है। उन्होंने कानची में कानची और कानची
का भी संनिश्चिit किया है। इस प्रकार कानची ऐतिहासिक कानची कानची, कानची,
और कानची के कानची कानची के कानची कानची को कानची कानची कानची है। उनके
ऐतिहासिक कानची के कानची कानची के ही कानची है। जिस प्रकार उनके
ऐतिहासिक कानची के कानची कानची कानची, कानची, कानची, ऐतिहासिक और कानची
के कानची में कानची है, कानची कानची के कानची कानची, कानची, और कानची
को कानची है। उन्होंने कानची कानची के कानची कानची में कानची कानची कानची

कुछल बलाभार की शक्ति अपनी शक्त की मर्यादित बना कर उसे दुर्जन-वशल पर बाधित कर देते थे ।

कीर्तिकावली की शैली के तीन रूप मिलते हैं—परिचयामक, आलोचयामक, और व्यङ्ग्यमक । उनकी शैली ही प्रचार की शैलियों अधिक प्रचलनवाली, और प्राच-र्यक है । उन्होंने अपनी शैलियों में कृत्रिमता और कदाचित्ता का भी प्रयोग किया है । कदाचित्ता और कृत्रिमता के कारण उनकी शैलियों अधिक आकर्षक हो गई हैं । उनकी व्यंग्यमक शैली में उर्ध्व के चर्यों की प्रधानता है ।

राजकुमारदासजी का जन्म सन् १८४८ में काशी में एक अग्रवाल घर में हुआ था । राजकुमार का सामुहिक प्रारम्भ ही मध्यम वर्ग में माना है । यह हिन्दी साहि-त्य-राजकुमारजी की एक के सुयोग्य लेखक, और कलाकार है । उन्होंने अपने साहित्य साधना जीवन में साहित्य और कला का संयोग बड़ी कुशलता के साथ उपलब्ध किया है । उनके द्वारा अब तक की कल्पनाएँ हुई हैं, उन्हें हम और कहीं से विमल कर सकते हैं—कवि के रूप में, प्रचलनकार के रूप में, और कदाचित्-कार के रूप में । कवि के रूप में उन्होंने कोलाचना विश्व उपलब्ध किये हैं, वे अधिक भावनामय हैं । उनकी कविताओं में भावनाओं की प्रधानता है । उन्होंने अपने कलात्मक में अधिक होकर प्रेमका भावनाओं का अनुभवमान किया है, और फिर कलात्मकता के साथ । कलात्मकी केवल में विरोध है । उनकी भावनाएँ रहस्य-त्वकता और दार्शनिकता की शक्ति करती हैं । उनका गद्य भाव्य भी अधिक भावना प्रधान है, जिसमें दार्मिक रहस्यवाद, और दार्शनिक विश्व मिलते हैं । कविता की रचना की अपेक्षा गद्य-काव्य के निर्माण में राजकुमार को अधिक उपलब्ध प्राप्त हुई है । उनके गद्य काव्य में आत्मकर्मका के मर्यादित और दार्शनिक चिन्तों की शक्ति बड़ी कुशलता के साथ हुई है । गद्य काव्य के क्षेत्र में वे रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि से अधिक प्रभावित दिखाई पड़ते हैं । राजकुमार की कदाचित्ता भी भावना प्रधान हो गई । उन्होंने शीघ्र, और भावना प्रधान कदाचित्ता मिलने में अधिक पट्ट प्राप्त किया है । उनकी पठना प्रधान कदाचित्ता पर भी भावना का दृढ़ है । उन्होंने अपनी भावना प्रधान कदाचित्ता में वैयक्तिक और सामाजिक कल्याणकी की बड़ी कलात्मकता के साथ चलायाओं के रूप में निर्माण है ।

राजकुमार अधिक आनुक और कला प्रेमी हैं । उनके जीवन में आनुकता और कलात्मकता का सुन्दरता के साथ संयोग स्पष्टित हुआ है । उनकी शैली में उनके राजकुमारजी की साहित्यिक जीवन से प्रभावित है । उनके जीवन की शक्ति शैली उनकी शैली पर भी भावना और कलात्मकता का अधिक दृढ़ है । उनकी शैली के मुख्य रूप से दो रूप मिलते हैं—भावनामक, और व्यंग्यमक । उनकी शैली ही शैलियों अधिक कलात्मक और भावनात्मक हैं । उन्होंने अपनी शैली ही शैलियों को कलात्मकता के रूप में टाका है । उन्होंने बौद्ध-वादी भाव की भी कलात्मक और भावनात्मक दृष्टि से उपलब्ध किया है । उनकी शैलियों में भाव-

विश्व सुख के मिलता है। भावविश्व के साथ ही साथ उनकी रीतिरिवाजों में योग-लगा और सृष्टि भी अधिक है।

मनसाहस की भाषा भी अधिक बला पूर्ण है। उनकी रचनाओं में दो प्रकार की भाषा मिलती है—व्यावहारिक, और संस्कृत कव्य प्रभाव। उनकी भाषासाहस की व्यावहारिक भाषा में संस्कृत के उच्चम व्यावहारिक शब्दों का उपयोग के साथ ही साथ बोल-भाषा के भी शब्द मिलते हैं। कहीं कहीं उन्हें के उच्चम शब्द भी उनकी व्यावहारिक भाषा में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं कहीं उच्चम के भी रूप में शब्द पाये हैं। कहीं कहीं सांतीय और रमितात्मक शब्दों का भी उन्होंने प्रयोग किया है। उनकी दूसरी उच्चम की भाषा पद्यों से कहीं अधिक संस्कृत कव्य प्रभाव है। इस भाषा में उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को स्पष्ट किया है। यद्यपि वह भाषा संस्कृत के उच्चम शब्दों के पुनः है, किन्तु फिर भी उन्होंने इसे सज्जना में बर्तने में दाता है।

विनोदीहरिजी का साहित्यिक मन भी इतिवत्साद हिन्दी है। उनका नाम सन् १८५५ में कुनैसखंड में सप्तपुर नाम में हुआ था। विनोदीहरिजी हिन्दी साहित्य विनोदीहरिजी की के बहुत सुलेखक हैं। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश साहित्य साधना कांठ मान साहित्य की साधना में व्यतीत किया है। वे हम में कहीं सम्भवतः के साथ साहित्य की साधना में संलग्न हैं। उन्होंने कई कहीं में साहित्य की साधना की है—कवि के रूप में, निबन्धकार के रूप में, पाठ्य-कार के रूप में, सम्पादक के रूप में और दुवाचारी लेखन के रूप में। कवि के रूप में उन्होंने कई रचनाएँ उपलब्ध की हैं, जिनमें 'सुतुल्लभ कविता', 'कवि कीर्तन', और 'वीर कवयित्री' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'सुतुल्लभ कविता' में उनके कई संग्रहित हैं, जो विषय, मति, और प्रेम के अंशों से उन्मत्तित हैं। 'कवि कीर्तन' में सम्भवतः कविता के अत्यन्त वरिष्ठ विषय हुए हैं। 'वीर कवयित्री' उनका सर्वोत्कृष्ट काव्य है, जो वीर-रस में है। 'वीर कवयित्री' पर उन्हें बहुतसा प्रभाव पारि-लौकिक भी प्राप्त हो चुका है। 'विनोदीहरिजी' के शिल्पी की भी रचना की है। उनके निबन्ध अधिक मात्रा में प्रभाव हैं। निबन्ध के क्षेत्र में वे पूर्ण रूप से मायका वाली हैं। उन्होंने 'मनसाहस' की भी रचना की है। मनसाहस में भावना और दार्शनिक विचारों का सम्भवतः सुतुल्यता के साथ हुआ है। भावना के क्षेत्र में विनोदीहरिजी की अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। इस क्षेत्र में उन्होंने भी साधना की है, इस पर भी भावना का अधिक पुनः है। विनोदीहरिजी कई वर्षों के सम्पादक रह चुके हैं, जिनमें संयोजक कविता और 'हरिजन सेवक' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने 'मनसाहस' और 'विनय कविता' आदि पुस्तकों का संग्रहण किया है, तथा टीका भी लिखी है।

विनोदीहरिजी का साहित्यिक व्यक्तित्व सुतुल्यता के अंशों से संगठित है। वे भी कुछ भी सोचते, और लिखते हैं, अपने भावना का अधिक पुनः है। उनकी हीजी पर

६

कहानी

विषय सूची

- १—कहानी क्या है ४६२
(अ) कहानी का विकास के मूल, (आ) कहानी—एक कल्प है, (इ) कहानी का प्रभाव, (ई) कहानी और समय-क्षेत्र ।
- २—कहानी का जन्म ४६८
(अ) कहानी का जन्म क्यों ? (आ) कहानी का प्रथम स्वरूप और उसमें परिवर्तन, (इ) कहानी के परिवर्तन का चक्र ।
- ३—कहानी और उसका प्राचीन स्वरूप ४७०
(अ) मौखिक कहानियाँ, (आ) वेद और कहानी, (ई) पुराण, रामायण, महाभारत और कहानी, (इ) पंचतंत्र, द्वितीयदेश और कहानी, (अ) कालिदास, बृहत्सफा, और कहानी, (अ) प्राचीन कहानी के मुख्य रूप ।
- ४—कहानी का वर्तमान स्वरूप ४७०
(अ) पचीस कहानी का साधारण-मौखिकता, (आ) साध, माध, और सीता की हानि से वर्तमान कहानी, (इ) पचीस कहानी का वर्तमान ।
- ५—कहानी और उसके रूप ४७८
(अ) कहानी-वर्णन के चर्चों का परिधि और, (आ) कहानी और उपन्यास, (इ) कहानी और लघु-कथा, (ई) कहानी और देश-विषय, (अ) कहानी और लोक-कथा, (अ) कहानी और दृष्टिकोण, (इ) कहानी के वर्तमान-रूप के मुख्य रूप, (इ) कहानी और प्राचीन साहित्य ।
- ६—कहानी का स्वरूप और लोचन स्वरूप ४७८
(अ) कहानी का लोचन, प्रारम्भ, मूल और लोच, (इ) कहानी और लोच, (अ) कहानी और लोच-क्षेत्र, (इ) कहानी और लोच-क्षेत्र, (अ) कहानी की लोचन विशेषताएँ ।
- ७—हिन्दी कहानी और उसका विकास ४८३
(अ) हिन्दी कहानी का जन्म, (अ) हिन्दी कहानी का विकास ।
- ८—हिन्दी कहानी की कक्षाएँ ४८४
(अ) सामान्यजनिक कक्षा, (अ) वास्तविक कक्षा, (अ) विज्ञान-जनिक कक्षा, (अ) जन-जनिक कक्षा, (अ) जन-जनिक कक्षा, (अ) विभिन्न कक्षा ।
- ९—सामान्यजनिक कक्षा ४८५
(अ) जैम बाण, (अ) जयदेव सभी सुकेशी, (अ) श्री सुकेशी, (अ) विष्णुसर्ग नाम सभी लोचन ।
- १०—साधारण कक्षा ४८६
(अ) जयदेव बाण, (अ) जयदेव बाण ।
- ११—विज्ञान-जनिक कक्षा ४८७
(अ) जयदेव बाण सभी जय ।
- १२—जन-जनिक कक्षा ४८८
(अ) श्री जयदेव बाण, (अ) श्री जयदेव बाण सभी बाण, (अ) श्री जयदेव ।
- १३—जन-जनिक कक्षा ४८९
(अ) जयदेव ।

कहानी क्या है ?

कुछ विषय ऐसे होते हैं, जिनका हम भीतर ही भीतर अनुभव तो करते हैं, किन्तु जब हम उन्हें शब्दों के द्वारा व्यक्त करने का प्रयास करने लगते हैं, तब हमारी अभिव्यञ्जक शक्तियाँ असमर्थ भी हो जाती हैं। हमें ऐसा बात होता है, जैसे हमारी अभिव्यञ्जना के वे समस्त साधन—वे सम्पूर्ण प्रवास वस्तु बन गए हैं, जिनसे विषय वस्तु का स्वरूप ब्यक्त करता है। हम अपनी अनुभूति में कुछ इस प्रकार तन्मय हो जाते हैं—कुछ इस प्रकार तो जाते हैं, कि हमें अपने भीतर का सम्पूर्ण प्रवास—संपूर्ण साधन 'रहने' पर भी दृष्टिगत नहीं होता। उक्त समय हमारी विधि उस मूक की सी हो जाती है, जो विषय के रस को जानते हुए भी कसुरी किहीनता के कारण उसके रसार्द्र का वर्णन नहीं कर सकता। संभव है, कुछ लोग इसे अभिव्यञ्जना की निर्बलता कहें, पर ऐसी निर्बलता उन साधारणों के हृदय में भी दृष्टिगोचर होती है, जो अभिव्यञ्जना के समतार माने जाते हैं। आज उनकी भी अभिव्यञ्जनार्थ हमारे सामने हैं, उनमें उनकी इन दुर्बलताओं को हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। उन्होंने कई स्थलों पर उसके सामने फिर मुकुटकर उसके अस्तित्व को स्वीकार भी किया है। पर क्या वस्तुतः वह उनकी अभिव्यञ्जना की दुर्बलता है। नहीं हम उसे दुर्बलता न कह कर अनुभूति की पूर्णता ही कहेंगे।

ऐसे कुछ विषयों में, जिनमें अभिव्यञ्जक शक्तियाँ असमर्थ और अल्प हो जाती हैं, कहानी भी है। कहानी को हम सभी लोग जानते हैं, और वह साहित्य के कहानी पर विद्वानों के मत पर कहानी क्या है—एक बात को हम कर्तव्यता भाव की टोक-टोक नहीं जान पाते हैं। सुष्ठु के आदि से लेकर मानव कहानी कहता और लिखता जाता आ रहा है। साहित्य के लोगों का यदि टोक-टोक इसका लगाकर देखा जाय तो उनमें कहानी का ही पलड़ा सबसे अधिक भारी होगा। वह होते हुए भी कहानी क्या है—एक बात पर आज तक साहित्य के सभी आचार्य एक मत नहीं हो सके हैं। कविता के बरबाद कहानी ही साहित्य का देखा खंग है, जिस पर साहित्य के आचार्यों का सर्वाधिक मत-वैपरीत्य है। पहले एक स्तर से कहानी के तुल्य और उसकी व्यापकता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है, पर कहानी क्या है—एक स्तर से उन्होंने जो मत व्यक्त किए हैं, उनमें केवल होने के साथ ही साथ असंभवता को

आत्म भी है। हम एक वैभव और समृद्धता को वैभव अनुभूति को पूर्णता और सम्पत्ता ही मानते हैं।

कहानी क्या है—इस सम्बन्ध में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। बीरेन्द्रजी का एक अनुवाद कहानी लेखक विष्णु नाम राजनगरजन को है, और ही आधुनिक कहानी का सम्प्रदाय माना जाता है, एक स्थान में 'कहानी' पर अपना मत व्यक्त करता हुआ लिखता है:—'कहानी एक ऐसा सम्बन्ध है, जो प्रभावपूर्ण हो, और एक पैरस में बड़ा हो सके।' विष्णु और रवीन्द्रनाथ टैगोर कहानी की जीवन की अतिव्यापक मानते हैं। उनकी दृष्टि में जीवन का एक-एक पक्ष एक एक कहानी है। वे कहानी और जीवन में सम्यक्-सम्यक् समझ देखते हैं। एक अमेरिकन लेखक ने कहानी की आलोचना करते हुए उसे मानव-हृदय के गूढ़ और आन्तरिक तन्मयी का एक विरोध-निर्गमन बताया है। उसकी दृष्टि में कहानी एक ऐसी कला है, जो मानव-हृदय के गूढ़, और आन्तरिक तन्मयी पर सही कुशलता के साथ प्रकाश डालती है। हिन्दी के सम्प्रदाय प्रकाश लाली केमनन्दजी कहानी की एक ऐसी एक-। मानते हैं, जिसमें जीवन के किसी क्षण पर प्रकाश डाला जाता है। इसके विरोध की कैमेल कुमार कहानी की मानव-हृदय की एक जीवन और स्वाभाविक दृष्टि बताते हैं। उनकी दृष्टि में कहानी मानव-हृदय के सम्यक् परम, और सम्यक् प्रकाश की एक सम्पत्ति है।

वाल्स ने कहा, कि कहानी के संबंध में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कहानी की उपादेयता और उसकी लाली जीवन की कला में एक मत के स्वीकार किया है, पर कहानी—एक कहानी क्या है—इस बात की विवेचना करते हुए एक सत्य है। जीवन में जीवन नहीं स्थापित कर सके हैं। कहानी है जो एक ऐसी कला, जिसमें विवेचना में—जिसकी व्याख्या में जीवन नहीं स्थापित किया जा सकता। क्या 'सत्य' की विवेचना में आज एक जीवन स्थापित किया जा रहा है? क्या कला की व्याख्या में जीवन के आचार्य एक मत निरूपण कर सके हैं? कहानी की एक सत्य है—एक कला है। कला की अति कहानी का जीवन की अतिव्यापक है। जिस प्रकार सत्य 'सत्य' होनी शुरू की जाना नहीं हो सकता, उसी प्रकार कहानी की विवेचना, और व्याख्या के बारे में नहीं होना है। क्योंकि कहानी अपने आचार्य में जीवित है, पर उनकी जीवित में एक जीवित विवेका रहती है। कहानी की उपादेयता का सत्य दुष्टि में नहीं किया जा सकता। ही हृदय में—आत्म में प्रकाश डालना जीवन कला का सत्य है। कहानी का सत्य आचार्य तन्मयी में विविध होता है, पर उनकी आन्तरिक आन्तरिक का सम्यक्-सम्यक् हृदय और-मन के संबंध में होता है, जो समय-समय पर अनुभूति के रूप में उलझा होते हैं। कहानी में आन्तरिक की अतिव्यापक हृदय और मन के सत्य आन्तरिक होते हैं। वह अपने अपने में आचार्य में हृदय के गूढ़ और आन्तरिक भावों की विवेका में सही कुशल होता है।

जीवन की एक ऐसी आन्तरिक कला, जिसमें हृदय के सत्य आन्तरिक होते हैं,

कहानी का यह कारण हमारे हृदय पर ऐसा शक्तिमत् प्रभाव छोड़ जाती है, जो बड़े-
 कहानी का बड़े उपन्यासों से भी नहीं बन सकता। उपन्यास आकार में
 प्रभाव कहानी से कमतर बड़े होते हैं, और उनमें जीवन की सम्पूर्ण
 विवेचना भी होती है, पर प्रभाव के क्षेत्र में कहानी उपन्यासों को पीछे छोड़ जाती
 है। इसका प्रभाव कारण केवल नहीं है, कि उसमें हृदय के तथा अधिक होते हैं।
 उपन्यासों में यहाँ यहाँ-नात्मक शक्ति होती है, यहाँ कहानी में केवल अनुभूतियों का
 ही व्यापार होता है। उपन्यास एक कथा है, जो रस से भरा नहीं जा सकता। इसके
 विपरीत कहानी एक व्यासा है, जिसे कृतज्ञ कलाकार नहीं सरलता के साथ अपनी
 अनुभूतियों के रस से भर देता है। यही कारण है, कि कहानी मानव-हृदय की उप-
 न्यासों की अपेक्षा अधिक विश्व सखी है।

साहित्य के क्षेत्रों में कहानी का विद्वाना अधिक प्रचार और प्रसार है, जتنا
 और किसी का नहीं है। कविता, उपन्यास, नाटक आदि कितने भी साहित्य के तरह
 कहानी और और सुकुमार अन्य हैं, वे मानव-हृदय का दुःख और प्यार
 मानव-हृदय समे में कहानी से पीछे है। प्रभाव के क्षेत्र में भी कहानी
 अधिक समृद्ध है। कहानी की इस व्यापकता और प्रभाव शक्तिमत्ता का कारण इसके
 कठिनता और क्या ही सकता है, कि कहानी मानव-हृदय की भूल को—उसकी
 पुच्छा की सबसे अधिक शक्ति होती है। भी वैकेन्द्रिकताओं के रूपों में कहानी
 सरलता मानव-हृदय के अन्तर्गत—पुच्छाओं और उसकी शक्तियों का एक समन्वय
 है। यह एक ऐसा उपर है, जिसे हम कर मानव-हृदय की पुच्छा शक्ति ही जाती है,
 यह एक ऐसी दृष्टि है, जिसे पाकर मानव-हृदय आनन्द के विमोह हो जाता है, और
 यह एक ऐसा समन्वय है, यहाँ मानव-हृदय की सम्पूर्ण शक्तियों का अतिरिक्त गुण
 हो जाता है; दूसरे शब्दों में कहानी मानव-हृदय की दृष्टि है, आनन्द है, और सम-
 न्वय है। मानव शक्ति के आदि काष्ठ से ही कहानी के द्वारा आनन्द, दृष्टि, और
 समन्वय प्रदान करता जाता का रहा है। कहानी और अवस्था बहुत समीप का परिचय
 है। यह कहानी की शिव है, और कहानी उसे शिव है। कहानी सबसे है, और यह
 कहानी से है। दोनों का सम्बन्ध पवित्र है—पवित्र है।

कहानी का जन्म

मानव-सृष्टि के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ है। कहानी मानव प्रकृति के साथ ही साथ है। कहानी का मूल मानव प्रकृति के भीतर है। सृष्टि के कहानी का आदि काल में जब मानव ने अपने से विभिन्न वस्तुओं, जन्म—क्यों? दृश्यों, और प्राणियों को देखा होगा, तब उसके भीतर उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सृष्टि वास्तव हो उठी होगी। उसने उन दृश्यों, वस्तुओं, और प्राणियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अलौकिक बातें सोची होंगी, जैसे उसने पशुओं को देख कर यह सोचा होगा, कि उसके भीतर कोई बहुत बड़ा मगर है, वहाँ ऐसे प्रयोग रहते हैं, जो अपनी दृष्टानुसार आकाश में उड़ा करते हैं। इसी प्रकार पर्वतों के सम्बन्ध में भी उसके मन में अलौकिक कल्पनार्थ वास्तव हो उठी होंगे। पशुओं, और अपने से विपरीत आचरण वाले जमानों को देख करके भी उसके मन में रहस्यमयी कल्पनार्थ जाग उठी होंगी। सूर्य, चन्द्रमा, और बादलों को भी जब उसने देखा होगा, तब उसके सम्बन्ध में भी उसके हृदय में कीदृश आशय हो उठा होगा। आदि काल के मानव के हृदय की इसी सृष्टि, उत्कंठा, और कीदृश ने हमारी कहानी को जन्म दिया है। कहानी मानव-प्रकृति के अन्तर में इमाविष्ट है। अतः सबसे प्रथम मानव ने कहानी के द्वारा ही सृष्टि के अलौकिक दृश्यों, वस्तुओं, और प्राणियों से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया होगा। कहानी के साथ ही साथ मूल भी बने होंगे। क्योंकि कहानी की भर्त्ति गीतों का भी मानव-जगत में अधिक प्रचार और प्रसार है।

विद्वत् के कहानी साहित्य का जब हम गवेषणा पुरस्कृत अध्ययन करते हैं, तब हमारी यह धारणा और भी अधिक दृढ़ हो जाती है, कि कहानी का जन्म मानव-हृदय की उस सृष्टि, उत्कंठा, और कीदृश के द्वारा ही हुआ है, जो सृष्टि की अलौकिक वस्तुओं, दृश्यों, और प्राणियों को देख कर उसके हृदय में वास्तव हो उठा था। यही कारण है, कि विश्व के सभी देशों में कहानी का प्रारम्भ ऐसी कहानियों के द्वारा हुआ है, जो कीदृश पर्वत होने के साथ ही साथ अलौकिकताओं से परिपूर्ण हैं। कहानी का सम्पूर्ण प्रारम्भिक इतिहास अलौकिकताओं और चमत्कारों से भरा पड़ा है। मानव का सर्व प्रथम परिचय वन के पशुओं और प्राकृतिक दृश्यों से हुआ था। अतः सर्व प्रथम उसने अपना रागात्मक सम्बन्ध वन के पशुओं, और प्राकृतिक

दरती तथा प्राग्निवी से ही स्थापित किया। यही कारण है, कि कहानी के प्राग्निमय रूप में देवी ही कहानियों की धारक थी, जिसमें पशुवी, वस्तुतः प्राग्निवी, और प्राकृतिक दृष्टी की अवलोकनार्थ है। बहुत दिनों तक मान्य दृष्टी इन्हीं कहानियों की लेकर रहता रहा, और इन्हीं के द्वारा वह अपने द्वारा के बीजद्वारा की शक्ति करता रहा। मान्य के आदि काल की वे कहानियाँ आज भी बल-व्यक्त में प्रचुर रूप में प्राप्त होती हैं।

आदि काल के मान्य की अपने सम्बन्ध में बहुत कम बातें हैं। न उसका घर था, न उसका कपड़ा था, और न उसका कोई सम्बन्ध था। वह प्रकृति के संसार कहानी का प्रथम में रहता था। प्रकृति ही उसका सर्वस्व थी। प्रकृति स्वयं और उसमें का भी, वह केवल बाह्य रूप ही मानता था। अतः मान्य की प्राग्निमय कहानियों में प्रकृति के बाह्य रूप का ही विषय है। प्रकृति के बाह्य रूप की प्रकृति ही उसकी प्राग्निमय कहानी का आधार है। उसकी कहानी का वह आधार आदि काल की कहानियों और गीतों में मर दूर देखने की विवक्षा है। किन्तु मान्य की वह स्थिति बहुत दिनों तक स्थिर न रह सकी। प्रकृति के संसार में रहने का वह उसकी भीतर का अन्तः प्रकाश। वह प्रकाश प्रकाश होकर घर, बगीचा, समस्त और देश की मान्य के साथ रहने लगा। उसने भीतर के इस नवीन परिवर्तन से उसकी प्राग्निमय प्रकृति में भी परिवर्तन की शक्ति उत्पन्न कर दी। पहले जहाँ वह रूप के पशुवी, प्राकृतिक दृष्टी, और वस्तुतः प्राग्निवी के साथ प्राग्निमय संबंध स्थापित करते रहते ही जाता था, वहीं अब उसकी कहानी एक घर और आने लगी। अब वह पशुवी और प्राकृतिक दृष्टी के साथ प्राग्निमय सम्बन्ध स्थापित करने के साथ ही साथ उपदेशात्मक कहानियों की भी शक्ति करने लगा। यही वह अब उसकी ही शक्ति नहीं, करने घर, समस्त, और देश की भी शक्ति थी। अब उसका मान्य केवल वेद माने, और किसी प्रकार घर होने की ही शक्ति नहीं था, बल्कि अब उसे अपने समस्त के शक्ति की उत्तर उत्तरावर समस्त की सुवर्णक करने की शक्ति थी। अब वह सम्बन्ध से प्रभाव में आ गया था। अब वह वह समस्तने कहा था, कि मान्यता क्या बाहु है, और उसका अधिष्ठान कि प्रकाश किया था समस्त है। अपनी इस नवीन शक्ति के मुक्त में वह नवीन प्रकार की सम्बन्धक अभिव्यक्तियाँ करने लगा। उसकी इस अभिव्यक्तियों में परिण, अत्यन्त, वैश्विक, और अत्यन्त की शक्ति थी। उसकी वे अभिव्यक्तियाँ रंग रंग, और विविधता दृष्टि आनीय प्रकाशों में आज भी प्रकाश है। प्रकाश, और वैश्विक दृष्टि आनीय प्रकाशों में भी वे ही अभिव्यक्तियाँ हैं, जो उपदेशात्मक होने के साथ ही मान्य शक्ति भी हैं। केही और उपनिषदों में भी इसी प्रकार की प्राग्निमय अभिव्यक्तियाँ पाई जाती हैं।

एक कहानी का वह रूप की शक्ति न वह समस्त की नवीन शक्ति प्रकाश रहा, और मान्य शक्ति समस्त के शक्ति में वह कर नवीन से नवीनतर रूप प्रकाश करता

कहानी के परिवर्तन
का चक्र

गया, त्योँ त्योँ कहानी का रूप भी परिवर्तित होता गया। कहानी ने मानव-जीवन के साथ जन्म लिया था। उसके साथ ही साथ यात्रा भी उसकी प्रारम्भ हुई। मानव जीवन के उत्थान पतन के साथ ही साथ उसने भी उत्थान पतन के अस्मौक्तिक दृश्य देखे। उसने अपने जीवन का वह रूप भी देखा, जो तमिस्रा पूर्ण था, और जिसमें तन्मयता के लिए रंज मास भी स्थान नहीं था, और इसके विपरीत आज वह अपने जीवन का वह रूप भी देख रही है, जो सचमुच मानव-हृदय की शङ्काओं का समाधान है—उसकी पुच्छाओं का सहज-स्वाभाविक उत्तर है। आज कहानी अपने जन्म स्थान से दूर-बहुत दूर आगे निकल गई है।

कहानी और उसका प्राचीन स्वरूप

कहानी का जन्म मानव की सृष्टि के साथ ही साथ हुआ है। मानव अपने साथ कहानी को भी लेकर अग्रसर हुआ है। लो लो मानव-जीवन में उद्यान-वन भी चटनार्द घटित हुई हैं, लो लो कहानी के जीवन में भी उद्यान-वन के स्वर उपस्थित हुए हैं। कहानी के इतिहास पर अब हम दृष्टिगत करते हैं, तब हम मानव रूप से यह देखते हैं, कि कहानी ने अपने कई रूप बदले हैं। कुछ अपने देश के ही साहित्य में नहीं, संसार विदेश के साहित्य में भी कहानी के जीवन की वही गति विधि है। कहानी की गति-विधि का यह साम्य मानव-प्रकृति के साम्य के कारण है। यदि मानव-प्रकृति स्थान, साक्षात्कार, समय, और जल से बार-बार प्रभावित हुई है, पर विकास के मार्ग पर उसकी गति प्रायः एक ही सी रही है।

यों ही कहानी मानव-जन्म के साथ-साथ चल रही है, पर उसका भी इतिहास अनन्त है, यह उस समय का है, जब यह कुछ-कुछ जीव बन चुकी थी। उसके बहुत पूर्व से कहानी मानव-हृदय को आंदोलित करती चली आ रही है। जिस प्रकार मानव की सृष्टि का इतिहास आज हमारे लिए प्रामाणिक है, उसी प्रकार कहानी का यह प्रारम्भिक इतिहास भी असंगत है, किन्तु जिस प्रकार मानव की सृष्टि का इतिहास धुंमल होने पर भी अपने आदि जीवन का संका रीत रहा है, उसी प्रकार कहानी आज भी अपने आदि जन्म के क्षणों का सुखानुवाद किया करती है। कला में प्रचलित मौखिक कहानियाँ कहानी के जीवन के कितने प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालती हैं, कोई उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता।

प्रायः संसार के सभी देशों में प्राचीन काल से ही कहानी मानव-हृदय को आंदोलित और आकर्षित करती चली आ रही है। चाहे जिस देश और कला में प्रवेश मौखिक कहानियाँ करके देखिए, आजकी मनोवैज्ञानिक और कलात्मक लिखित कहानियों के अतिरिक्त वही देशी कहानियों का एक संसार का दिखाई पड़ेगा, जो हमें आकाश के त्यों पर न आकर मनुष्य के ऊपरों पर ही निशान करती है। भाषा और शब्दों की दृष्टि से निश्चय से कहानियाँ आज की कलात्मक और मनो-वैज्ञानिक कहानियों की समता नहीं कर सकती, पर यह यही कहा जा सकता, कि उनमें जीवन की संकीर्ण काँछे स्पष्ट नहीं हैं। संसार के कई विद्वानों ने अपने अपने देश में उनमें के कुछ का संकलन किया है। उन्होंने उन्हीं की ओरता और व्यापकता

को सिद्ध करते हुए लिखा है कि आज के कदाचित्कार में उन कदाचित्कारों से ही कदाचित्कारिता का मार्ग-दर्शन किया है। वे कदाचित्कारों विरुद्ध आज के सही मान्य जीवन की समस्याओं को नहीं कोसती, किन्तु उनकी मान्य जीवन की समस्या और हानि-अनुपान प्राप्त होता है। हमारे देश में ऐसी उपदेशात्मक और मान्यता कदाचित्कारों की कमी देखी में अधिकता है।

प्राचीनकाल का मान्य सिद्ध रूप के अधिकता था। ईसा और धर्म में उद्योग बहुत विचार था। वह कदाचित्कारिता पर पूर्ण प्रभाव होता, कि वह आज के वैद और कदाचित्कारिता मान्य की नीति-सम्बन्धित, और वैदिकता नहीं था। उद्योगी-सम्बन्धित और उद्योगी विचार आज की सम्बन्धित और विचार में विचार था। वह धर्म की विचार पर ही सम्बन्धित के पूर्ण विचार मान्य था और वैदिकता कदाचित्कारिता में वैदिकता था, वह, और आज तक ही कदाचित्कारिता का विचार में एक कर मान्य के सम्बन्धों की भी मान्यता का प्रभाव मान्य था। उसके जीवन के सम्पूर्ण जीवन में वैदिकता, धर्म, मान्य, और आज की मान्यता होती थी। आज उसने अपनी कदाचित्कारिता की भी हमी मान्य के नीचे में होता है। हमारे के कमी देखी की प्राचीन कदाचित्कारिता में धर्म और वैदिकता का ही आज मान्य रूप में विचार है।

हमारा वैदिक विचार के सम्पूर्ण देखी में विचारता है, उसके अधिक धर्म-मान्यता रहा है। हमारे देश का जीवन धर्म और वैदिकता की ही मान्यता मान कर प्रभाव हुआ है। हमारे धर्मों में अपने जीवन में जो कुछ भी मान्य किया है—उद्योगी विचार के मान्य पर जो कुछ भी मान्य है, उसमें उनका मान्य वैदिकता और धर्म ही विचार रूप में रहा है। यही मान्य है, कि हमारे देश के प्राचीन साहित्य में वैदिकता और धर्म-मान्य की प्रभावता है। मान्य, मान्य, मान्य, कदाचित्कारिता आदि साहित्य के विचार धर्मों की मान्यता हमारे देश में प्राचीन काल के होती जाती जा रही है। कदाचित्कारिता और मान्य का ही मान्य ही मान्य में हुआ है। वैदिकता और विचार—हमारी ही प्रभाव की कदाचित्कारिता का आज वैदिकता मान्य में ही निराला हुआ है।

वेद हमारे के कमी अधिक प्राचीन मान्य है। वेदों में भी मान्यता आदि मान्य मान्यता था। आज हमारे मान्य की दृष्टिकोण विचारता है, उसके मान्यता पर वह कहा जा सकता है, कि मान्यता के पूर्व या कोई देश मान्य नहीं, जो विचारता रूप में ही। मान्यता में मान्यता रूप में, जो विचारता देखताओं की मान्यता के रूप में है। उनमें कई देखी मान्य है, किन्तु कदाचित्कारिता के उद्योग विचारता है। कदाचित्कारिता के आज ही नहीं विचारता है, मान्य कदाचित्कारिता का पूर्व मान्यता भी है। वेदों के मान्यता में पद्य मान्यता है, कि वैदिकता मान्य में कदाचित्कारिता का मान्य ही नहीं, उसका पूर्व पर कि विचारता भी ही हुआ था। वैदिकता मान्य के कई मान्य में कदाचित्कारिता और कदाचित्कारिता का पूर्व विचारता रूप मान्य होता है। उद्योगिता और प्राचीन मान्य में देखी कदाचित्कारिता नहीं जाती है, जो जीवन के विचारता मान्य की निराला और उद्योग पर प्रभावता होता है।

पौराणिक काल की कथा और कहानियों का एक केन्द्र था। यही केंद्र है। पुराणों के सम्मेलन से ऐसा सात होता है, कि उन दिनों हमारे समाज में क्या और पुराण, रामायण, कहानियों का सबसे अधिक प्रचार था। पुराणों में महाभारत और कहानियों की ही संख्या सबसे अधिक है। उनमें ही कहानी कुछ भी कहा गया है, कहानी के ही गुण से कहा गया है। पौराणिक काल में पुराणों के अतिरिक्त और भी कई ऐसे कालों की रचना हुई है, जिनमें कहानियों और कथाओं की ही प्रशंसा है। रामायण और महाभारत अर्थात् महाकाव्य है, पर उनके भीतर भी कहानी निहित है, वह विश्व की सर्वश्रेष्ठ कहानी होने का गर्व कर सकती है। वह जीवन के संदर्भों जैसी पर अत्यंत ही गहरी जानकारी, वास्तविकताओं को भी स्पष्ट करती है।

रामायण और महाभारत की कथाओं के आधार पर समस्त ने कई ऐसे कालों की रचना हुई है, जो विश्व के साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। उक्त बंध संत, हिंदी-संस्कृत-सामयिक साहित्य, और सुप्रसिद्ध साहित्य रामायण और महाभारत की आधार के रूप में। इन कालों में कहाँ काल का दृष्टि का विकास हुआ है, यहाँ से सब कहानी-कथा नहीं है। संस्कृत के कई कहानी-कथाओं का विश्व को कई भाषाओं में अनुवाद हो ही चुका है। ऐसे कालों में एक उदाहरण, और हिंदी-संस्कृत का प्रमुख स्थान है। बंध उक्त और हिंदी-संस्कृत की उपदेशात्मक कहानियों के विश्व के कहानी-साहित्य की सम्पत्ति विधा है। अंग्रेजी में फोले कहानियों की रचना बंध संत और 'हिंदी-संस्कृत' की कहानियों के ही आधार पर हुई है।

कहा जा रहा है कि कहानी-कथा-साहित्य का एक काल है। इसकी रचना उस समय हुई थी, जब विश्व की श्रेष्ठ कथा कहने वाली साहित्यी जीवन के प्राथमिक साधक, सुप्रसिद्ध कहानी का एक कर रही थी। काल की उपस्थापना और कहानी साहित्य हमारे मनोरंजन का मुख्य साधन बना हुआ है, उसके अंतर्गत कहानी के ही निर्यात हुआ है। यहाँ कहानी के काल के उद्भव की नीति जीवन की सभी और अवस्थाओं नहीं है, पर उसमें अत्यंत-साधना की केंद्र की विषय हुआ है, उसमें जीवन-साधना की कहा है। उसकी भाषा और ऐसी में ही समाचार है, वह साथ ही साथ सभी में बहुत कम अंतरांतर ही गया है। इस प्रकार चरित और कथा साहित्य पर उपनिषद् और कई ऐसे कहानी-कथा हैं, जिनमें कहानी के कालों का विकास हुआ है। वैशाखी और कालों में भी कई ऐसे कथा हैं, जिनमें कहानियों की प्रशंसा है। वैशाखी का सुखाद्यकाल 'सुप्रसिद्ध' लोक कथाओं का सुप्रसिद्ध काल है। उसकी रचना प्रथम का हिंदी-संस्कृत कालों में हुई कहानी वाली है। बंध संत और हिंदी-संस्कृत की कहानियों की नीति इसमें भी उपदेशात्मक कहानियाँ हैं। कालों में काल-कथाओं का प्रमुख स्थान है।

जब हम प्राचीन कहानी साहित्य पर विचार करते हैं, तो उसके दो रूप हमारे

प्राचीन कहानियों में घटनाओं की प्रधानता है। कौतूहल और रोचकता उत्पन्न करने के लिए एक ही कहानी में कई-कई घटनाओं का समावेश हुआ है। घटनाएँ कौतूहल पूर्ण और चमत्कारिक हैं। उनमें चिन्मय उत्पन्न कर देने की प्रचुर शक्ति है, पर वे हृदय का स्पर्श नहीं करती। उनका मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे समूह और समाज से सम्बन्ध रखती हैं, और उसी के चित्र को हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। प्राचीन कहानियों में व्यक्ति का चित्रण कहीं नहीं मिलता।

भाव, भाषा और शैली को दृष्टि से हम प्राचीन कथा-कहानियों को चमत्कारिक और अलङ्कारिक ही कहेंगे। सरसता और मनोरञ्जकता प्राचीन कहानी का लक्ष्य है। अधिक से अधिक रस उत्पन्न करने की ओर ही प्राचीन कहानियों में विशेष रूप से ध्यान दिया जाता रहा है। इसके लिए शैली को यथा शक्ति चमत्कारिक और अलङ्कारिक स्वरूप प्रदान किया गया है। प्रत्येक कहानी का अन्त 'आनन्द' और सुख की रियायत के साथ-साथ हुआ है। बीच बीच में अप्रत्यक्ष दुःख और अभाव के भी दर्शन होते हैं, किन्तु अन्त में सुख, शांति, और आनन्द की ही धारा प्रवाहित होती है।

कहानी का वर्तमान स्वरूप

कहानी मानव जीवन की सड़नरी है। मानव जीवन के साथ ही साथ कहानी का श्रोत आरम्भ हुआ है। अपने जन्म से लेकर आज तक कहानी ने मानव-जीवन के नवीन कहानी का साथ ही साथ कई युग देखे हैं। हमें कहानी का यह आधार-भौतिकता प्रारम्भिक युग याद आता है, जब वह केवल पशुओं के जीवन की घटनाओं से ही अपना अधिकार करती थी, हमें उसका यह युग भी याद आता है, जब उसने देवताओं और राजा-महाराजाओं के चमत्कार पूर्ण चित्र होते थे, और हमें उसका यह युग भी याद आता है, जब वह धार्मिकता और नैतिकता के सन्धि में टल कर लोक-कथाओं में निरत रहती थी। किन्तु आज वह एक दूसरे ही स्वरूप में हमारे संमुख है। मानव जीवन के साथ ही साथ उसने भी आज अपना स्वरूप बदला है। मानव जीवन की नवी-नवी धर्म, ईश्वरता, सत्य-अहिंसा और नैतिकता के युग से निकल कर भौतिकवादी बनता गया है, नवी-नवी कहानी भी अपने चोले को भौतिकवाद के सन्धि में टालती गई है। आज मानव-जीवन के साथ ही साथ वह भी कठोर भौतिकवादिनी है। एक दिन था, जब वह धर्म, ईश्वरता, और नैतिकता का राय अज्ञापती थी, किन्तु आज धर्म, और अधिकारों के संगीत में ही वह अपनी शक्ति समाप्त कर रही है। एक दिन था, जब उसे लोक-कथाओं की चिन्ता थी, किन्तु आज वह वर्गवाद को ही अपना आधार बनाए हुए है। आज उसके शृंगार के प्रसाधन धर्म, सत्य, अहिंसा, और नैतिकता नहीं; क्रूरता, धर्म, और अधिकार हैं।

आज की कहानी का स्वरूप अपने प्राचीन रूप से बिल्कुल भिन्न है। आज उसका शरीर एक नए ही प्रकार का है। एक दिन था, जब हम उसके शरीर को शब्द, भाषा और चमत्कारिक और अलङ्कारिक शब्दों से सजाते थे, उसके शरीर की दृष्टि से शरीर को कमाने के लिए शब्दों में अधिक से अधिक कभी-कभी उत्पन्न करते थे; दूसरे शब्दों में प्राचीन कहानी की भाषा, जिसे कहानी की छया करते हैं, अलङ्कारिक होती थी, किन्तु आज उसने अपना यह जाना छोड़ दिया है। आज उसके शृंगार में अलङ्कारिकता की प्रधानता नहीं है। आज उसका ध्यान सरलता, कोमलता, और हृदय स्पर्शिता की ओर है। आज वह अपने शब्दों में, जिससे उसका भाषा-शृंगार पूर्ण होता है, चमत्कार नहीं

कहानी और उसके रूप

कहानी एक मूल स्रोत है, जिससे विभिन्न पारार्थ प्रभावित हुई है। आज साहित्य-जगत में उपन्यास, एकांकी, रेखाचित्र, आख्यायिका और इतिहास इत्यादि की कहानी-साहित्य के भ्रम है, किन्तु एक दिन या, जब वह सब कुछ नहीं आज्ञा का आदि स्रोत था। जब साहित्य-जगत में कुछ नहीं था, उस समय भी कहानी विद्यमान थी। यद्यपि वह मौखिक थी, पर उस समय भी उसका अस्तित्व था। अतः यह कहना ही पड़ेगा, कि आज साहित्य के अधिकांश भिन्न-भिन्न अंग कहानी के ही रूप हैं। उपन्यास, नाटक, इतिहास, गीति काव्य, कथा काव्य, और रेखाचित्र इत्यादि का विकास निरन्तररूप से कहानी से ही हुआ है। आज भी जब हम साहित्य के इन अंगों की सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना करते हैं, तब हम उनके मूल में कहानी की ही पाले हैं। यद्यपि आज कहानी और उसके रूपों में पर्याप्त पुष्कला है, पर एक चेष्टा होने के कारण आज भी उनमें यह साम्य विद्यमान है, जिससे यह जाना जा सकता है, कि वस्तुतः कहानी ही साहित्य के एक प्रवाही की जन्मदात्री है। अंगरेजी के एक विद्वान लेखक ने साहित्य के अन्वयन अंगों के साथ कहानी की तुलना करते हुए लिखा है — “कहानी मानव के मातृ-जगत से जुड़ा हुआ एक ऐसा स्रोत है, जिसने विकसित होकर नाटक और उपन्यास का रूप धारण कर लिया है। आज कहानी अपने वास्तविक रूप में केवल कहानी ही रह गई है, पर उसने अपने पीछे एक ऐसे आलोचक संसार का निर्माण किया है, जो गेय, व्यंग्य और पठनीय है।” हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक श्रीकृत गुप्ताय राय जी ने कहानी की अवस्था की अवधि से विवृण्वित किया है।

यह सच है, कि उपन्यास, नाटक, और रेखाचित्र इत्यादि कहानी के ही विकसित रूप हैं, पर फिर भी उनमें और कहानी के वर्तमान रूप में अधिक अंतर है। यहाँ हम उसी अंतर की स्पष्ट करेंगे, क्योंकि बिना उसे स्पष्ट किए हुए कहानी के वास्तविक स्वरूप की समझने और जानने में कठिनाई होगी।

कहानी का कम उपन्यास से बहुत पूर्व हुआ है। कहानी जब मानव के मातृ-जगत में खपती-सी हुई थी, उस समय उपन्यास का कहीं अस्तित्व भी नहीं था। कहानी और हमारी प्राचीन कहानी से ही उपन्यास का जन्म हुआ है; उपन्यास दूसरे शब्दों में प्राचीन काल की कहानी ने ही समय, परि-

निर्धारित और आश्चर्यकथा के कारण उपन्यास का रूप प्राप्त कर लिया है। आज कहानी केवल कहानी ही यह नहीं है, पर उससे आधुनिक होकर उपन्यास में अपने लिए एक ऐसे काल का निर्धारण कर लिया है, जो कहानी के काल से कहीं अधिक विस्तृत होना होता है। कहानी और उपन्यास में आज एक स्पष्ट विभक्ति ही नहीं है। मानव के हृदय को विस्तृत और आंदोलित करने के लिए आज दोनों ही अपने अपने अधिक से अधिक आकर्षक कहानियों में लगे हुए हैं। उपन्यास की बारीक कहानियाँ पुरुष आकार में बनती हैं, कहानी उसी की अपने छोटे लक्ष्य के संघर्ष-संकट उपन्यास के उच्च लक्ष्य अस्तित्व प्राप्त करती है।

कहानी और उपन्यास दोनों ही वास्तव के दुष्प्रभाव हैं। दोनों ही हृदय को आंदोलित और प्रभावित करते हैं। कहानी बहुत छोटी होती है, उसे केवल पन्द्रह बीस विवर में समाप्त कर लेना ही सफाई है। वह अपने एक लघु समय में लघु आकार में बड़े जीवन से उस क्षणों को दिखा कर चलाती है, जो मानव-हृदय का आंदोलित करने में समर्थ हो सकते हैं। कहानी अपने आकर्षक तन्मयी के द्वारा मानव-हृदय पर लघु समय में ही वह प्रभाव डालती है, जिसे उपन्यास अधिक समय में प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। कहानी अपने एक हीरे से ही मानव-हृदय को प्रभावित देती है। उसे उपन्यास की भाँति अपने क्षेत्र से अधिक लंबी की विचारधारा की आवश्यकता नहीं होती। वह कहानी की कल्पना कहीं विरोधता है। कहानी अपनी इसी विरोधता के कारण आज भी उपन्यास के समस्त क्षेत्र में चिन्ती हुई है। आज की दुनियाँ अनीहति और अमानवीयता पर विस्तृत होकर मानव में उसे अपने हीतर में स्थान दिया है। आज यदि विश्व के उपन्यासों और कहानियों की रचना की जाए तो उसमें कहानी की ही संख्या सबसे अधिक होगी। इसका कारण केवल यही है, कि कहानी का मानव-हृदय पर सर्वाधिक प्रभाव बहुत है। विभिन्न समाजों की काल में बसा हुआ मानव अपने हृदय का जीवन बिटानी संभला के साथ कहानी से वा करता है, उसका उपन्यासों के नहीं। उपन्यासों के अपने में अधिक समय लगता है। और आज के अमल-जाल जमान के बात इतना समय नहीं, कि बहुत काम उपन्यासों के पढ़ने में लग करे।

कहानी और उपन्यास—दोनों ही का आकार कथानक से रहित होता है। दोनों ही के मूल में कथानक, जिसे प्लॉट भी कहते हैं, होता है। पर कहानी का कथानक उपन्यासों के कथानकों की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। कहानी वहीं जीवन की किसी एक घटना, किसी एक दृश्य, और किसी एक आंदोलन की होकर चलाती है, और उसी को आधार मान कर संतुष्ट-जीवन का चित्र अंकित करती है, वहीं उपन्यास किसी एक घटना की होकर अपना आधार प्रारम्भ नहीं करता। वह प्रारम्भ में ही उस जीवन का निरीक्षण कर होता है, जिसका सम्बन्ध उस घटना या स्थिति से होता है; क्योंकि कहानी की भाँति उसे केवल जीवन की एक घटना या स्थिति के जीवन का चित्र आकृत नहीं होता; बल्कि वह सम्पूर्ण जीवन से ही जीवन का चित्र

लेखन करता है। कहानी के जीवन-व्यव से यदि जीवन के अंश छूट जाएँ, तो कहानी की सार्थकता नष्ट हो जाती, पर उपन्यासों की सार्थकता तो केवल जीवन की पूर्णता पर ही निर्भर करती है। उपन्यास जिसका ही जीवन की पूर्णता की तलाश करता, उसका ही वह लक्ष्य और उद्देश्य समझा जायगा। कहानी इस सन्नतता और उत्कृष्टता के विचार के लिए उपन्यास की कल्पने की तुलना बलवन्त, बहुल, विविध चरित्रों, और जीवन के विविध कक्षों की सम्मिश्रण करती कहती है। वह कद से कहानी के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। जीवन की विविध समस्याओं, चरित्रों, और कक्षों से सामंजस्य स्थापित करना ही उपन्यास की कला है। कहानी की कला सामंजस्य के अन्तर्गत से नहीं गुजरती, क्योंकि उसमें पात्रों, चरित्रों, और चरित्रों की बहुलता नहीं होती। वह किसी एक चरित्र या विषय के वर्णन में ही सम्यक् जीवन की देखती है।

कहानी एक ऐसी कला है, जो किसी छद्म जीवन की एक चरित्र या विषय में निर्मित कर उसकी सामंजस्य या व्याख्या करता है। वह कदाचित् कहानी के साथ जीवन की एक चरित्र की समझती है, जो जीवन में कल्पित कल्पित चरित्रों होती है। वह केवल एक उसी चरित्र की सामान्य भाव का सम्यक् जीवन की व्याख्या या व्याख्या करता है। यही कारण है, कि वह कहानी की कला की विशेषता की ओर से अभिवृद्ध करते हैं। इसके प्रतिफल उपन्यास कहानी कला के अन्तर्गत विशेषता होता है। वह जीवन के समस्त भाग को जीत कर लेता है, और उसकी व्याख्या करता है।

उपन्यास की मूल्य मूल्य का ही कहानी से अधिक उच्च है। मूल्य में ही दोनों कहानी के अधिक उच्चतर है। दोनों की और कहानी में बहुत कम अंतर है।

कहानी और कहानी और दोनों दोनों का ही सम्यक् जीवन की किसी एक चरित्रों प्रभाव पूर्ण चरित्र से होता है। दोनों से पात्रों और चरित्रों की व्याख्या होती है। दोनों का ही साथ साथ होता है, जो उपन्यास-मूल्य के अन्तर्गत पूर्ण रूप से देखा जाता है। कहानी और दोनों-दोनों ही जीवन की किसी एक प्रभाव पूर्ण विषय का चरित्र के विषय में ही कहानी पूर्ण सार्थकता समझती है। दोनों ही सामान्य-व्यव पर एक ही प्रभाव का प्रभाव भी देखते हैं, जो वह ही विशेषता होता है, या सामान्य प्रभाव पूर्ण होने के कारण विशेषता होता है। दोनों की और कहानी से नहीं वह साम्य होता है, नहीं किसी-किसी बात से दोनों में अंतर ही अधिक होता है। कल्पित कहानी और दोनों दोनों का ही जीवन की किसी एक प्रभाव पूर्ण चरित्र से होता है, पर दोनों के सम-प्रभावों में विशिष्ट-विषय दोनों का समीप होता है। दोनों की अपने रूप का अन्तर्गत सम-प्रभाव के करता है। दोनों में सम-प्रभाव की किसी ही अधिक सामान्यता और सम-प्रभाव होती, वह उन्हा ही अधिक लक्ष्य और मूल्य समझा जायगा। चरित्र की बहुलता ही दोनों का साथ है। दोनों की अपने कदाचित् विशेषता वह है कि

उसके केवल बहुवचनका और संवाद से ही बलिषी की भाविविधता स्पष्ट होती है। बढ़ानी में बहुवचनका का इतना उच्चतमपक्ष और आकर्षक रूप नहीं पाया जाता, और न इसकी उके आकर्षकता ही होती है। वह ही केवल व्यक्तता में ही अपने को पूर्ण मानती है। वह जीवन के एक क्षण से ही सम्पूर्ण को देखती है, और उसी के विशेषण में अपनी आकर्षकता समझती है।

बढ़ानी और ऐसा विश्व दोनों की ही महान् सत्य सत्य के चरित्रों की जाती है। जिस प्रकार हमारी बढ़ानी के सविश्व होने पर भी हमारे सामाजिकता होने के बढ़ानी और कारण उसके गुणक होता है, उस प्रकार की गुणकता बढ़ानी ऐसा विश्व और ऐसा विश्व में नहीं होती। बढ़ानी और ऐसा विश्व एक ही सत्य के है, पर दोनों के स्वरूप में अंतर होता है। बढ़ानी का महान् सत्य का सत्य के आधार पर होता है। ऐसा विश्व में किसी एक सत्य के चरित्र का अंतर होता है। बढ़ानी की विशेषता उसके विशेषण द्वारा है, पर ऐसा विश्व की विशेषता अंतरा नहीं है। बढ़ानी अन्तर्गत होती है। वह एक सत्य की प्रति निरूपित है, और अपने की ही प्रति अंतर होती जाती है। बढ़ानी और ऐसा विश्व की प्रति में ही अंतर है। बढ़ानी की प्रति में अन्तर्गत और ऐसा विश्व की प्रति में निरूपित होता है। ऐसा विश्व का हर गुणक होता है। बढ़ानी में नहीं अन्तर्गत विशेषण की सहा होती है, नहीं ऐसा विश्व में अन्तर्गत का अंतर होता है।

बढ़ानी और प्रति सत्य का सत्य गुणक-गुणक क्षेत्र है। बढ़ानी का दृष्ट और अन्तर्गत की अन्तर्गत अन्तर्गत है, और प्रति सत्य का दृष्ट और अन्तर्गत और बढ़ानी और अन्तर्गत अन्तर्गत है। बढ़ानी के अन्तर्गत में अन्तर्गत प्रति-अन्तर्गत अन्तर्गत की अन्तर्गत है, और प्रति सत्य के अन्तर्गत में अन्तर्गत अन्तर्गत की। बढ़ानी और प्रति-अन्तर्गत की अन्तर्गत के अन्तर्गत होती है, पर बढ़ानी नहीं और अन्तर्गत होती है, प्रति सत्य में होता है। नहीं अन्तर्गत अन्तर्गत की है। बढ़ानी और प्रति सत्य-अन्तर्गत का ही अन्तर्गत अन्तर्गत की अन्तर्गत है। दोनों में ही अन्तर्गत और अन्तर्गत अन्तर्गत की अन्तर्गत होती है, पर दोनों के अपने गुणक गुणक अन्तर्गत-क्षेत्र है। वह सत्य है, कि दोनों का ही अन्तर्गत अन्तर्गत के होता है, पर एक सत्य के अन्तर्गत में अन्तर्गत है, और दूसरा एक अन्तर्गत-क्षेत्र के अन्तर्गत में। अन्तर्गत सत्य का अन्तर्गत है। बढ़ानी में ही अन्तर्गत अन्तर्गत है। अपने अन्तर्गत अन्तर्गत की—अन्तर्गत अन्तर्गत सत्य की वह अन्तर्गत अन्तर्गत में अन्तर्गत है। अन्तर्गत अन्तर्गत सत्य की अन्तर्गत अन्तर्गत, और उसका अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत होता है, पर वह अन्तर्गत, अन्तर्गत, और अन्तर्गत का विशेषण नहीं होता। वह अपने अन्तर्गत-क्षेत्र करता है। अन्तर्गत-क्षेत्र अन्तर्गत अन्तर्गत में अन्तर्गत की ही नहीं देता, अन्तर्गत वह नहीं की अन्तर्गत अन्तर्गत है, और अपने अन्तर्गत और के अन्तर्गत-क्षेत्र की नहीं देती और अन्तर्गत प्रति में अन्तर्गत है। वह एक एक अन्तर्गत हर प्रति अन्तर्गत है, और सत्य में अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत करता है।

कवि यहाँ जीवन की परिधि पर निगाह डेकर आनन्द निधोर हो जाता है, यहाँ सदासी काय जीवन की परिधि पर डेर रखकर अपने वाली ओर देखता है, और जो कुछ देखता है, उसका विद्वलेषण करता है। कवि को सम्प्रेक्षता उसकी लक्ष्यता और विधोमता से है। इसके अतिरिक्त यहाँ-ही-पर विद्वलेषण से ही अपनी समझता का दर्शन करता है।

कहानी और इतिहास—दोनों ही समय-काल हैं। कदा-कदा दोनों को ही एक ही काल में ले सकते हैं। पर दोनों के अन्तिम स्रोत भिन्न-भिन्न स्थानों से होते हैं।

ब्रह्मजी और ब्रह्मजी अनुभूतिमान होने के कारण द्वय और तन के बोधो-
इतिहास से निराला है। ब्रह्मजी में द्वय और तन के तन अतिरिक्त
होते हैं। इसलिए ब्रह्मजी संवेदनशील होते हैं। ब्रह्मजी का व्यवहार तन होते हुए
भी ब्रह्मजाओं पर अवलम्बित है। यह ब्रह्मजाओं को ही लेकर चलती है, और तनी
के अन्तर्गत अवलम्बित भी जाती है। ब्रह्मजी व्यक्ति भी ब्रह्म है। उसका सम्बन्ध विनाश
अवधि से होता है, अन्तर्गत अवधि से नहीं।

इतिहास का सम्बन्ध वर्तमान से नहीं, समर्पित से होता है। यह केवल वर्तमान मात्र होता है। इतिहास में कल्पना और भावुकता के लिए रेंज मात्र में ध्यान देना होता है। उसका सम्बन्ध हीन मान के आधार पर चलता है। इतिहास में विज्ञान ही अधिक मान होता है, ज्ञान ही वह महत्वपूर्ण होता है। इतिहास का सम्बन्ध द्वन्द्व से नहीं, अस्तित्व से होता है। उसमें वेद और वाचि के अन्तर्गत जीवन का वर्णन तथा उसकी आलोचना होती है। इतिहास वर्तमान और आलोचना में ही अपनी प्रति समझता है।

[illegible]

कुछ शब्द हमारे देश की भाषा में संस्कृत से हैं। कदा हमारे देश में सर्व जगत् सद्गामी संस्कृत में ही लिखी गई है। पर संस्कृत में सद्गामी का नाम नहीं तो सद्गामी नहीं है। संस्कृत में सद्गामी के लिए कथा, आत्मविद्या, और आत्मज्ञान शब्द व्यवहृत हुए हैं। किन्तु यह न समझ लेना कि इस शब्दों में के अर्थों में समानता है, और वे एक ही प्रकार की बात के लिए व्यवहृत किये गए हैं। किसी साहित्य में तो कथा शब्द समानार्थी हो गए हैं, और सद्गामी के लिए उसके स्थान पर प्रयोग में आते हैं, पर संस्कृत के भाषाओं में इन शब्दों महत्वपूर्ण अन्तर रहने हैं। उन्नी अन्तर की सामने रख कर संस्कृत में कथा, आत्मविद्या, और आत्मज्ञानशब्दों की रचना की गई है।

कदाची न हो गया हो सकती है, न सामाजिक, और न व्यक्तिगत आधार पर
 भी क्या वे ही लोग 'कदाची' का नाम धारण कर लिया है, पर आज दोनों के ही
 मस्ती से अधिक खतर है। दुसरा अधिक खतर है, कि दोनों का सम्बन्ध हो

विलक्षण गुणक हो गया है। आज हम बिस्ते बढ़ाती बढ़ते हैं, उसे क्या विलक्षण नहीं कह सकते। आज हम बिस्ते बढ़ाती बढ़ते हैं, उनमें कालान्तर और भौतिकीयिक रूप अधिक होते हैं। हमारे और हम के आत्मी का विस्तारण करना ही हमका कार्य होता है। वह जीवन के अंतर्गत में पैर पर उठती समस्याओं को देखती है और संश्लेषणों को एक-दूसरे लौट को संश्लेषण है। क्या वह संश्लेषण केवल कल्पना के होता है। यह कल्पना के अंतर्गत होती है, और कल्पना के ही कल्पना अधिकतर ही बनती है। क्या वह कल्पना द्वारा, और कुछ कल्पना का वर्णन होता है। सुशोभित और कल्पना के बिना भी क्या से कोने करते हैं।

आत्मन वैश्वानर और वैश्वानर होते हैं। वैश्वानर और आत्मीय तृती के विषय में ही आत्मनो की कार्यकलाप समझी जाती है। कथाओं की मति आत्मनो के ही कल्पनाओं का ही अधिक गुट पड़ा है। विलक्षण अद्वितीय में आत्मनो की प्रकृति है। आत्मनो की मति आत्मनिकाओं का निर्माण भी वैश्वानर तृती के आधार पर किया जाता है। आत्मनिकाओं में मात्रक मात्र क्या होता है। इस रूप में आत्मनिका को हम मान्य क्या भी कह सकते हैं। आत्मनिकाओं का विभाग भी आत्मनो में किया जाता है, किन्तु अन्तर्गत बढ़ते हैं।

हमारी आज की आत्मी आत्मीय आत्मनो के कल्पन अन्तर्गत अद्वितीय रहती है। यह रूप है, कि आत्मीय कल्प के आत्मनो के ही आज की आत्मी को कल्प बढ़ाती और दिया है, पर आज उनके अन्तर्गत में अधिक अंतर है।

आत्मीय आत्मनिका हमारा अंतर है, कि आज की आत्मी को हम आत्मनिका नहीं कह सकते। आज की आत्मी मान्य के रूप और उसके द्वारा की कार्य कला ही बढ़े चलती है। मान्य के रूप और द्वारा में ही हम उठता है, अन्तर्गत विषय काया आज की आत्मी का अंदर है। आत्मनिका, जो लोक क्या, और लौट-कला के रूप में अद्वितीय है, उपदेशात्मक है। हमारे देश के अद्वितीय में लौट और लोक कथाओं की बहुलता है। हम कथाओं में कला का अंतर्गत विलक्षण नहीं है। आत्मी कला की दृष्टि से हम कथाओं का अंदर बहुत न ही परलोचन के विचारके लिए के कलाई परामोचनी हैं। लौट कथाओं में बहुत-सी कथा का विषय विश्व रूप है। लोकिक कथा किन्तु न किसी मान्यी गुण के सम्बन्ध रहती है। 'पंच लो' और 'विशेषदेश' में लौट कथाओं का अन्तर्गत विचार हुआ है।

लौट क्या और लोक कथाओं में बहुत कम अंतर है। लोक कलाई लौटिक और विविध रूप में ही आज का-कला में प्रचलित है। हम लोक-कथाओं का अंदर केवल मनोरंजन है। उनमें मानवीय चरित्रों पर 'आत्मनिका' रूप से अन्तर्गत कला क्या है। हमारे अंदर लौटिक है, जो मनोरंजन के रूप ही आज हमारे को आत्मनिका भी कर देते हैं। आत्मनिका की बहुलता में पैर ही कथाओं का विचार हुआ है।

कहानी का सफल और श्रेष्ठ स्वरूप

मानव जीवन स्वयं एक कहानी है। वह कहानी की भाँति ही प्रारंभ होता है, चलता है, और समाप्त भी हो जाता है। यदि मानव जीवन के पीछे इतिहास किया जाए तो सचमुच एक लंबी कहानी ही इतिहासचर होती है, जो मानव के दुखों, सुखों, और हर्ष-विषादों तथा उसके उत्थान-पतनों को अपने अंग में धिमेरे रहती है। मानव के जन्म के साथ ही साथ उसकी कहानी भी प्रारंभ हो जाती है। मानव अपनी सीता समाप्त करके लोक से उठ जाता है, पर उसकी जीवन-कहानी उसके परिवार भी, लोक में उसकी भाँति का गान करती रहती है। इसलिये हा इन वह कहते हैं, कि कहानी मानव जीवन की चिरसंमिती है। वह तक भी मानव का साथ देती है, जब वह कोकिल रहता है, और उस समय भी वह उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है, जब वह अपनी लौकिक लीला समाप्त करके उसका साथ छोड़ देता है। कहानी की सरव्यवस्था, संवेदन शीलता, और प्रेम-वादिता को देख करके ही मानव ने उसकी अपने जीवन में सबसे अधिक स्थान दिया है। उसने संसार में जितनी रचनाएँ की हैं, उनमें कहानी की रचना ही सर्वाधिक है। कहानी मानव-हृदय की भूत की रात करने में अधिक सक्षम होती है। विद्योत मानव का मन उसे जीवन के व्यापक के रस की भाँति पीता है। इसलिये पीता है, कि उसके बच्चे और उदात्त मन की कहानी जितनी शीलता के साथ शक्ति, और जीवन देती है, उतना साहित्य का और कोई अंग नहीं देता।

साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसलिये साहित्य में कहानी की बहुलता है। यदि विश्व के सर्वोच्च साहित्य-महोदधि का संघन किया जाए तो उसमें कहानी की ही रस राशि सबसे अधिक होगी। अपने जन्म काल से लेकर आज तक कहानी मानव द्वारा सर्वाधिक संख्या में रची गई है। आज जो विश्व-साहित्य के अर्मन में कहानी की और भी अधिक धूम है। इसका कारण यह है, कि आज का मानव समस्या-ग्रस्त का प्राणी है। वह दिन रात अपने जीवनोपयोगी आवश्यों की जुझने में ही रत रहता है। अनवरत संघर्ष में रत रहने के कारण उसे इतना समय नहीं मिलता, कि वह पुरुष काव्य उपन्यासों और नाटकों को वह कर उनसे मनोरंजन प्राप्त कर सके। कहानी बहुत छोटी होती है, उसे वह पन्द्रह-बीस मिनट में ही अपने मन

ये भीतर उठार कर विभाजित कर भी हरा बना बना होता है। बहानी खिलवाही
की होती है। यह मानव के दुःख-सुख में कटावपूर्ण प्रभुत्व करती है और उसके
नाम परधारी की धोखे संभरता करती है। यह जान है, कि बहानी मानव जीवन
के सबसे अधिक विषय है, पर विषय होने पर भी मानव एक सखी मनुज एक समय
में एक यह नहीं हो सके हैं, कि बहानी क्या है, और उनका समझ तथा बौद्ध भवन
विषय प्रकाश का होता है। बहानी और उसके समझ तथा बौद्ध भवन को लेकर लेख
के विद्यार्थी हैं आज भी विद्यार्थी का जीवन बना रहा है, और कदाचित् वह जीवन
मोटा-मोटा एक बनता होगा।

कहानी क्या है—इस सवाल के इस निवेदन पर मुझे है। जहाँ इस कहानी के सवाल और और सवाल पर सवाल दाखिल की बिना करने। कहानी में सर्व

कढ़ाई का शीर्षक प्रारंभ समय कीट समय समय वाक्य का स्थान कढ़ाई के शीर्षक पर होता है। शीर्षक की ही देखाकर वाक्य कढ़ाई की ओर आकर्षित होता है। उदा: मेरी हीट कढ़ाई में

उसका अभिप्राय एवं प्रथम शीर्षक पर ही स्पष्ट होता है। आम्ने कथाओं का शीर्षक उल्लुखता पूर्व, रहस्यमय और अस्पष्टोद्भूत होता है। शीर्षक अधिक बड़ा नहीं होता। अधिक से अधिक उसमें बार दस होते हैं। कभी कभी कहानी के प्रथम पात्र या पात्रों के नाम पर शीर्षक चुन लिया जाता है। कभी कभी शीर्षक का सम्बन्ध पात्रों की मनोवृत्ति, कदमों की वृत्ति, व्यवसाय, व्यवसायों की भावना से होता है। शीर्षक कितना ही अधिक उल्लुखता पूर्व, आकर्षक, और रहस्यमय होता है, कहानी के अन्त में उतना ही अधिक कीर्तन उत्पन्न होता है। आम्ने कथाकार का नाम शीर्षक के अन्तर्गत कहानी के आरम्भ पर आता है। वह अपनी कहानी की शैली, और बहुत ही उल्लुखता पूर्व दृष्टि से आरम्भ करता है। उसका दृष्टि देता रहस्यमय होता है, कि पाठक की उल्लुखता जन्म एक कभी पाली है। कभी कभी कहानी काही बढ़ती है, पाठक की उल्लुखता का ही विचार होता आता है। अंत कथाकार कहानी के अन्त अन्त में अपने पाठक को कहानी के अन्त काही के परिचित कर देता है। उते कहानी में कितनी वृत्ति का सम्बन्ध करता होता है, कहानी के अन्त अन्त तक पर होता है। कहानी के अन्त अन्त तक पहुँचते-पहुँचते वह कहानी का सम्बन्ध-विश्व नहीं आधिकार और उल्लुखता के साथ अपने पाठक के अन्त उल्लुखता कर देता है। कहानी की अन्त अन्त बहुत कुछ उनके अन्त पर निर्भर आती है। अंत कथाकार अपने पाठकों की उल्लुखता को अन्त तक आधिकार करता है। यहाँ तक, कि कहानी का अन्त होने पर ही पाठक की उल्लुखता कभी की ली कभी पाली है। अंत कथाओं में उनका अन्त इस प्रकार उल्लुखता के साथ होता है, कि उनमें कहानी का अन्त अन्त, अन्तों का विचार, और अन्त अन्त अन्त अन्त का आता है।

कहानियों की प्रकृत को होती है। इसलिए कहानियों के साथ ही प्रकृत की

विस्त-विस्त होता है। साहित्यिक कदाचित्तों में अन्य प्रकार पूर्ण होता है। इसी प्रकार यथार्थवादी कदाचित्तों में अन्य यथार्थ पूर्ण, और ऐतिहासिक कदाचित्तों में उनके उन्मूल के अनुसार होता है। भाषात्मक कदाचित्तों में अन्य सौन्दर्यवादी होता है। कुशल यथार्थवादी कदाचित्तों में अन्य कुशल और यह भी कह देता। वह कदाचित्तों के अन्य में जो यथार्थ के लिए बहुत कुछ छोड़ देता है। वह कदाचित्तों के अन्य के ही द्वारा यथार्थ के द्वारा में एक ऐसा यथार्थ पूर्ण यथार्थवादी उत्पन्न कर देता है, कि यथार्थ-वेद तक उसी के बड़ा यथार्थ है, और कदाचित्तों तथा कदाचित्तों के साथी के सम्बन्ध में संक्षेप-विस्तार करता रहता है।

प्रत्येक कदाचित्त लेखक की भाषा और ऐसी प्रत्येक प्रत्येक होती है। पर भीष्ट कदाचित्तवादी यही समझता जाता है, जिसकी भाषा और ऐसी में सहायता, और सहायता कदाचित्तों और का पुरा रहता है। दूसरे भाषा कदाचित्तों के लिए सभी उपयुक्त प्रत्येक नहीं होती। भाषा और ऐसी जिसकी ही सहायता और सम्बन्ध होती है, कदाचित्तों में उत्पन्न ही अधिक उनके सभी का विस्तार होता है। कदाचित्तों की प्रकार की होती है—वैदिक साहित्य, धार्मिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, यथार्थवादी, कदाचित्तवादी, और यथार्थवादी इत्यादि। कदाचित्तों वाले विस्तार प्रकार की ही, पर लेखक कदाचित्तों नहीं है, जिसमें उसके सभी का विस्तार पूर्ण रूप में होता है। भीष्ट कदाचित्तों में अन्य के विस्तार के लिए कदाचित्तों की प्रत्येक नहीं करना रहता, बल्कि वह कदाचित्तों के साथ ही साथ अपने साथ में विस्तारित हो जाता है, और अन्य तक पहुँचते-पहुँचते सभी का विस्तार पूर्णता की मात्रा पर होता है। सभी सभी अन्य विस्तारित होते हैं, सभी सभी उपयुक्तता की वृद्धि की होती जाती है।

यों ही सभी प्रकार की कदाचित्तों यथार्थवादी और साहित्यिक होती हैं, पर वे कदाचित्तों में सभी साहित्य सुन्दर और भीष्ट समझी जाती है, जिसमें भाषा और अन्य के अन्य कदाचित्तों और और कदाचित्तों का विस्तार होता है। कदाचित्तों के विस्तार ही अधिक कदाचित्तों में जाता का विस्तार होता है। भीष्ट यथार्थवादी कदाचित्तों के विस्तार में कदाचित्तों और के कुछ भी नहीं रहता। वह साथ के कारण द्वारा ही उसकी कदाचित्तों का विस्तार करता है। उसके विस्तार में यथार्थवादी, और सौन्दर्यवादी होता है। वह विस्तार की वृद्धि अपने साथ की एक-एक मात्र में सम्पन्न और सम्बन्ध रहता है। वह सभी के द्वारा ही उत्पन्न ही सभी कदाचित्तों के विस्तार के लिए का प्रत्येक होती है। वह यथार्थवादी और कदाचित्तों के विस्तार पर अन्य का वैदिक मात्र के सभी की ही अधिक होता है। वह एक कुशल विस्तार-वादी की वृद्धि मात्र के सभी की यथार्थवादी करने में ही सभी कुशलता की यथार्थवादी सम्बन्ध है।

कुशल यथार्थवादी कदाचित्तों के लिए अन्य एक ऐसे यथार्थ में जाता है, जो यथार्थवादी होता है, यथार्थवादी ही है, विस्तार और कुछ-कुछ की यथार्थवादी

कहानी और केन्द्रित होती है। उसका जालक व्यक्ति: रहस्यमय होता

है। उसके चरित्र में वचनमय, और स्वाभाविकता होती है।

नर बनने वाला इस मानव जीवन और हृदय के बीच उपस्थित करने में अधिक सक्षम होता है। कहानीकार अपने जालक को मानव जीवन और हृदय के दृष्टिबिंदु रूप में सामने उपस्थित करता है। उसकी एक-एक बात, उसका एक-एक चरित्र मानव-हृदय के बीच उपस्थित करता है। उसकी बातें सामान्यतः, और अधिक विचार पूर्वक नहीं होती। वह अत्यंत स्वाभाविकता के साथ तुम्हीं दूर छोड़े छोड़े क्षणों में अपने मन को दर्शाती का चित्रण करता है। उसकी बातों के साथ ही बात जोड़ होती है, उसमें ही स्वाभाविकता और संलग्न होता है। सम्पूर्ण संवाद छोड़े छोड़े और अधिक होते हैं। वे दृष्टि दृष्टि व वाक्य जैसे चरित्र पर अपना प्रभाव डालते हैं, और कहानी के जीवन काया उत्पन्न करते हैं।

कहानी की संक्षिप्त संक्षिप्त रूप में बीज कहानी में निम्नलिखित विशेषताएँ होती चाहिए:—

क—कहानी के संक्षिप्त में उपलब्धता और रहस्यमयता होती चाहिए। संक्षिप्त और दृष्टि का होता है, और प्रभावशाली रूप में चाहिए।

ख—साधा सरल और सरल होती चाहिए। संक्षिप्तता और सरलता का साथ उसमें मुख्य रूप से होता चाहिए। ऐसी में संवाद, और विशेषता होती चाहिए।

ग—कहानी के सामान्यतः स्वयं का जीवन जीवन के उसी और चरित्रों की लेकर होता चाहिए।

घ—कहानी की बहुलता न होनी चाहिए। कहानी बदनाम हो, उन रूप का हृदय माना के सम्बन्ध है। छोटी छोटी कहानियों का समूहिक हृदय माना की प्रभावित और क्षेत्राधिकार करने के ही उद्देश्य के बिना गया हो।

च—वर्णन में आवश्यकता, और उपस्थिति का साधन दिया गया है। वर्णन का अधिक विस्तार कहानी की श्रेष्ठता को नष्ट कर देता है।

छ—कहानी में उसके लक्ष्यों का विस्तार हो। लक्ष्यों का विस्तार कहानी के लक्ष्यों के चरित्रों के ही पूर्व हुआ हो। कहानी के लक्ष्य अपने साथ लक्ष्य: लक्ष्य: विस्तार और पूर्व हुआ हो।

ज—कहानी का कारण उपलब्धता के साधनरूप में हुआ है। उपलब्धता चाहिए के लेकर साथ एक लक्ष्य को लक्ष्य करे हुए है।

झ—उपलब्धता रूप ही। कहानी की विशेषता जीवन के लक्ष्यों पर प्रभाव डालने वाले साधन अधिक हो। एक एक लक्ष्य लक्ष्य को लक्ष्य हुआ हो, और अपने लक्ष्य से लक्ष्य विस्तार विस्तार पर अपने उपलब्धता करते हो।

ड—चरित्रों के विस्तार में स्वाभाविकता, और प्रभावशाली रूप हो।

ढ—संवाद स्वाभाविक, और आवश्यक हो। लक्ष्यों की बात जोड़ मन के लक्ष्यों

को प्रगट करने वाली हो । शब्द शब्द से अन्तर्देशाओं पर प्रकाश पड़ता हो, और मनः स्थिति के मार्मिक चित्र प्रस्तुत होते हों ।

६—कहानी के सम्पर्क पात्र समय, स्थिति, और समाज के अनुकूल हों । नायक प्रभाव पूर्ण हो और उसके चरित्र में यथार्थवादिता हों । उसका चरित्र मानव समाज, मानव हृदय, और मानव जीवन का प्रतीक हो । उसके चरित्र में श्रेय, विषाद, और दुःख सुख आदि अपने अपने स्थान में आदर्श रूप में हों ।

हिन्दी कहानी और उसके विकास

साहित्य के साधारण के समानुसार कहानी अपने अपने चरित्र-वस्तुओं को लेती है । विश्व के साहित्य में सर्व प्रथम कहानी का ही जन्म हुआ है । कुछ विद्वानों का मत है, कि मनुष्य की इति मूल के चरित्र की ओर जाती है; इसलिए सर्व प्रथम उपन्यासी और नाटकी का जन्म हुआ होगा । कहानी और एकांकी नाटकी की दृष्टि से उपन्यासी और नाटकी की दृष्टि से पर्याप्त समान हैं । पर वे यह भूल जाते हैं, कि विश्वसाहित्य का विद्वांस, जो कहानी और उपन्यासी के बीच में भिन्न है, उनके मत के विरुद्ध है । कहानी और उपन्यासी के प्राचीन इतिहास, उनके स्वरूप, और उनके महान-कारकों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं, और जब ही विश्वसाहित्य के विद्वांस पर भी विचार करते हैं, तो यही पता चलता है, कि कहानी से उपन्यासी और नाटकी के बहुत पूर्व जन्म प्राप्त किया होगा । कहानी मानव जीवन की सच्चाई है । वह मानव-जीवन के साथ ही साथ प्रगल्भ हुई है । उसके प्राचीन इतिहास उसके सर्वांगीण होने का प्रमाण प्रमाण है :

हिन्दी में भी कहानी से सर्व प्रथम जन्म प्राप्त किया । जो तो हमारे देश में कहानी का उद्भव बहुत पूर्व हो चुका था । लोक कथाओं और गीति कथाओं के रूप में कहानी सर्व साधारण के लक्ष्य पर थी । पर उसने अपनी हिन्दी-साहित्य में प्रवेश नहीं किया था । हिन्दी मानव जन्म अपने अस्तित्व में लाई, जब उसके साथ ही एक कहानी से भी उसके अस्तित्व में प्रवेश किया । लोक कथाओं और गीति कथाओं के रूप में रहते ही से कहानी सर्व साधारण में विद्यमान थी । साधारण और दृष्टकपाटी की समाप्त में परिणत थी । हिन्दी के अस्तित्व में जाने पर सर्व प्रथम हिन्दी कथाओं में हिन्दी में प्रवेश किया । यह सब है, कि इन कथाओं से साहित्यिक वैभव प्राप्त मात्र के द्विती भी नहीं था, पर उसके साथ ही साथ यह भी जन्म है, कि सर्व प्रथम कहानी के रूप में उन्हीं कथाओं का हिन्दी में उद्भव हुआ । वैरागी वैकुण्ठ की कहानी से भी हिन्दी की प्राथमिक कहानी-कला को प्रोत्साहन और जीवन प्राप्त हुआ है । यद्यपि वह सब का जन्म है, पर उसके पीछर कहानी के जन्म विद्यमान है । अहमद की मोटा कहानी की कथा, लखनऊवाली का डोम सागर और मुल्लू सागर, लो कहल मित्र का नाविकेरीसकलान, लीम दन्ताकलसाह जी की गली केरुकी की कहानी इत्यादि ऐसी रचनाएँ हैं, जो हिन्दी-कहानी के प्राथमिक इतिहास पर प्रकाश

काजरी है। इन रचनाओं के वह भली-भाँति निर्मित हो जाते हैं, कि हिन्दी के कवि के साथ ही साथ कदावी की अभिव्यक्ति भी उत्पन्न हो गई थी। सर्व प्रथम उसने कव-कम्प-पद्म-विभ, वह जो संभवतः वे हैं, किन्तु उक्त रचनाओं में उनकी गति का विकास अत्यन्त निम्नमान है।

कुछ लोगों के मतानुसार इत्यादिनाम की हिन्दी के प्रथम कदावी लेखक हैं। यदि हम इन बात को कम मान लें तो इन वह बड़े विद्वान रहेगे, कि हिन्दी में हिन्दी कदावी इत्यादिनाम की की केदवी की कदावी के बहुत दूर की जन्म कदावी का कविता हो चुका था। केदवी की कदावी ही उस कदावी का विशिष्ट सत्य है। पर उन कदावियों में साहित्यिकता नहीं थी। कदा की दृष्टि से इन कदावियों का कुछ भी मूल्य नहीं था। वे कर्म, प्रेम, नीति और सत्य के प्रचार के उद्देश्य के लिये काही थीं, और अपने उद्देश्य की भली-भाँति पूर्ति करती थी। यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। हिन्दी में साहित्यिक कदावी का कवि सर्व प्रथम १६वीं शताब्दी में हुआ। हिन्दी की पहली साहित्यिक कदावी 'इन्दु-मती' मानी जाती है, जो १६०० ई० में बरखरी में प्रकाशित हुई थी। जो किछोरी-काजरी-काजरी उससे सम्बन्धित थे। 'इन्दुमती' के प्रकाशन के पूर्व और भी बहुत की कदावियाँ बरखरी में प्रकाशित हो चुकी थी, जो का बरखरी के अनुवादित हुई थी, या कीचरी से। कुछ दिनों तक 'काजरी' और 'इन्दु' में अनुवादित कदावियों की दृष्टि हो की। इन अनुवादित कदावियों से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ, कि उनके द्वारा हिन्दी में साहित्यिक कदावियों की प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, और वे एक के पश्चात् एक साहित्य में आने लगी।

मैं वह लिख चुका हूँ, कि हिन्दी की सर्व प्रथम साहित्यिक कदावी 'इन्दुमती' है। कुछ लोग 'इन्दुमती' की बरखरी, और कीचरी का अनुवाद करते हुए नहीं लिखते। वे उसके लिए की प्रशंसा करते हैं, उससे कुछ दिनों तक नहीं है। 'इन्दुमती' साहित्यिक कदावी है, और उससे माछीपछा का विस्तृत साक्षात्कार है। उसकी भाषा, उसकी शैली, उसका सत्य, और उसकी सामग्री सब पर केवल का साहित्यिक है। 'इन्दुमती' के पश्चात् और उसके कदावियों साहित्य में आईं, जिनमें कुछकी द्वारा रचित 'काजरी कव का कवली' और 'चम महिला' की 'दुलाई बली' का विशेष स्थान है। 'दुलाई बली' का एक साक्षात्कार कदावी के कवि में ही हिन्दी में प्राप्त-भाँति हुआ, पर उसके द्वारा हिन्दी के कदावी साहित्य की की पूर्ति प्राप्त हुई, वह निरालम्बीय होगी।

हिन्दी के प्रारम्भिक कदावी साहित्य की 'काजरी' और काजरी के 'इन्दु' से अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। 'काजरी' और 'इन्दु' में कीचरी, और बरखरी से अनुवादित बहुत की कदावियाँ प्रकाशित हुईं। 'काजरी' और 'इन्दु' के साहित्यिक कदावियों की की कवि और प्रोत्साहन प्राप्त किया। 'काजरी' के सम्पादन समीप चम महिला, प्रकाश दिवसी और 'इन्दु' के सम्पादन समीप अनुवादित कदावी में।

साथ वह चलते हैं। जेयचन्दजी ने हिन्दी की कदानी के प्रसार को एक नई दिशा की ओर मोड़ा। वह दिशा मनोवैज्ञान की दिशा थी—उन जीवन की दिशा थी। कभी तक हिन्दी की की कदानी ऐसी परम्पराओं के मोड़क बात थी जहाँकी हुई थी, वह सब पर-जीवन के जीवन में साफर उसके मन के इच्छा के साथ खेलते लगी।

जेयचन्दजी ने मनोवैज्ञानिक कदाचित् की कल्प ही नहीं दिख, बल्कि उन्हें पूर्ण रूप से विचलित की दिशा। 'पंच परमेष्ठिन' के परभाव जहाँकी की कदाचित् प्रभाव-रहित हुई, उसके विचार के अन्तर्गत मात्र में विद्यमान है। कदानी के विचार का विवेक पुनः, जिसे लक्षित करता का पुनः कहते हैं, लक्षित जेयचन्दजी ने ही प्रारम्भ किया है। लक्षित प्रभाव की भी इस पुनः के प्रभाव है। इस पुनः में कदानी कदा में साह करत से इस का कालक्षेत्र में प्रवेश किया है। मानव-दृष्टि की अनुभूति की और विवेकशील की विवेक काया ही इस पुनः की कदानी कदा का नाम उद्देश्य है। कदानी का वह पुनः एक दृष्टि की प्रति है। इसके ही क्षेत्र होते हैं। एक की इस जेयचन्द जी, और पुनः की प्रसार क्षेत्र वह कहते हैं। जेयचन्द क्षेत्र में कदा विवेकशील के साथ परभाव और आदर्शवाद का समन्वय किया है। इस क्षेत्र के प्रभाव कदाचित् में कदा का विवेकशील की है, कदा उन्होंने कदा की आदर्शवाद की ओर उन्मुख किया है। इस क्षेत्र के उन्मुख कदाचित् परभावशील शर्मा, जेयचन्द, कदाचित् शर्मा सुलेखी, सुदर्शन, और विवेकशील शर्मा इत्यादि हैं। प्रभाव क्षेत्र परभाव और आदर्शवाद हैं। उनके आदर्शवाद में परभावशील का, किन्तु कदा की उन्मुख है। इस क्षेत्र के कदाचित् में कदा मात्र की आदर्शशील का विवेकशील किया है, कदा कदा, कदाचित्, और उन्मुख की कदा-विषयी का भी उन्होंने कदाचित् किया है। इस क्षेत्र के कदाचित् की ही पूर्ण रूप से उन कदा-कदा कदाचित् की काम देने का और प्रभाव है, की कदा कदाचित् है, और कदा मात्र के मन का विवेकशील कदा कदाचित् के साथ कदा है। इस क्षेत्र के उन्मुख प्रभाव की है। प्रभाव की कदा का क्षेत्र कदाचित् और विवेक का प्रभाव कहते हैं। कदा है इस के प्रभाव कदाचित् और विवेक की कदानी कदा में प्रभाव की की कदा की अनुभूति किया है, और कदा समन्वय की है, पर इस प्रभाव की की कदानी कदा की कदा विवेक कहते हैं। की विवेक शर्मा, शर्मा, की परभावशील, और की परभावशील दृष्टि कदा प्रभाव क्षेत्र के कदा कदा-कार है।

आधुनिक पुनः विवेकशील विवेकशील पुनः है। इस पुनः की दृष्टि मानव दृष्टि के उन्मुख और कदा कदा की ओर नहीं है, की विवेकशील और कदा है। साथ के विवेकशील कदा पुनः का साथ और कदा कदा का कदा की कदा की कदा है। साथ वह कदा की कदा की कदा की कदा की कदा की कदा है। साथ साथ की कदानी में कदा की कदा की कदा की कदा है। साथ का कदानीकार उन्मुख के विवेकशील की की कदानी कदा की कदा का समन्वय है।

वह इसे प्रगतिशीलता की रांछा देता है। इसीलिए आज की कहानी को प्रगतिवादिनी, और विशुद्ध यथार्थवादिनी कहते हैं। कोई भी संवेदनशील मानव हृदय रोटी और अर्थ की पुकार की उपेक्षा नहीं कर सकता, किन्तु कोई भी विचारशील विवेचक इस बात से सहमत नहीं हो सकता, कि रोटी और अर्थ की पीड़ा से भयानुर होकर मानव की दानवता को परिधि के भीतर बैठाल दिया जाय। आज की प्रगतिवादिनी कहानी कला के भीतर यही सबसे बड़ा दोष है। इस कला के उन्नायक यश पाल और अनुवर्ती पहाड़ी, श्री अमृतलाल नागर, और अचल इत्यादि हैं।

प्रगतिवादिनी कहानी कला का एक और भी स्वरूप है, जिसे हम इस कला का श्रेष्ठ और सुन्दर स्वरूप कह सकते हैं। इस श्रेष्ठ और सुन्दर स्वरूप के निर्माता श्री जैनेन्द्र जी हैं। श्री जैनेन्द्रजी ने अपनी कहानी-कला के द्वारा मानव के भौतिक अभावों और उसके जीवन के 'सत्य' का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। उनकी कहानी-कला वस्तुतः प्रगति के अर्थ में प्रगतिवादिनी है। श्री अश्वेय, श्री भगवतीचरण वर्मा, और श्री भगवती प्रसाद याज्ञपयी इत्यादि इस कला के पोषक हैं। 'प्रसाद' और 'प्रेमचन्दजी' की कला के पश्चात् ही इस कला का उद्भव हुआ है। इसमें श्यामिन्ध और प्राण है। इस कला के द्वारा जो कहानियाँ अब तक सामने आ चुकी हैं, उनमें अधिकांश ऐसी हैं, जिनमें मानव-हृदय के चिरन्तन सत्य का विकास हुआ है। हमारा पूर्ण विश्वास है, कि श्री जैनेन्द्र जी की यह कला हिन्दी-साहित्य के लिए अमूल्य, और गौरवमयी प्रमाणित होगी।

हिन्दी कहानी की कथाएँ

आज हिन्दी-साहित्य अपनी उन्नति की दिशा की ओर उन्मुख है। उपन्यास, कहानी, नाटक इत्यादि क्षेत्रों में उसने एक स्वर्णिम युग को स्थापना की है। दासता के मोड़ के प्रतिफल स्वरूप हम भले ही कुछ दिनों तक आंगरेजी की आभ्यर्चना कर लें, पर वह दिन दूर नहीं, जब हिन्दी का प्रसार इस देश के निवासियों की ही नहीं, बरन् विश्व के मानव-हृदय की भी अमूर्त किर बिना न रहेगा। आज हिन्दी-साहित्य की मोड़ में, उसके अभाव वस्तु कलाकारों के द्वारा, जिन रचनाओं का उद्भव हो रहा है, वे विश्व-साहित्य के अँगन में अपना अधिकार स्थापित किए बिना न रहेंगे। कहानी कला में तो अमूर्त पूर्व उन्नति की है। यद्यपि अभी उसके जन्म के छोड़े ही दिन व्यतीत हुए हैं, और एक प्रकार से अभी वह अपने शैशव काल की ही पार कर रही है, पर इन छोड़े ही दिनों में उसके भीतर की गति संचरित हुई है, उसे देख कर हम यह निश्चय पूर्वक कह सकते हैं, कि वह विश्व के उच्च से उच्च साहित्य के अधिक समीकृत है। आज उसमें किशु चिरंतन रूप, अनुभूति, वेदना, और पीड़ा का चित्रण हो रहा है, वह युग के ऊपर अपनी अमिट छाप अंकित किए बिना कदापि न रहेगा।

हिन्दी कहानी का संसार दिनों दिन अधिक विस्तृत और विशाल होता जा रहा है। मानव के हृदय का सत्य आज उसमें मुखरित होने के लिए जन-जन के हृदय में स्पर्शित हो रहा है। भाँति-भाँति की संवेदनशील अनुभूतियों आज उसके अँगन में अपना पङ्क फैलाने के लिए छटपटा रही है। प्राचीनता के विषय—कविता के विषय आज उसमें हुँकार हो रहा है। व्यक्ति समाज की ईर्ष्या का आज उसके भीतर कड़ा पीठ रहा है, और ताल ठोक-ठोक कर यह घोषित कर रहा है, कि समाज व्यक्ति की उपेक्षा करके जीवित नहीं रह सकता, तात्पर्य यह, कि आज हिन्दी की कहानी में सभी प्रकार की अनुभूतियों और संवेदनाओं का चित्रण हो रहा है। इन समस्त अनुभूतियों और संवेदनाओं द्वारा सुनहित कथानियों की कथाओं का निर्धारण करना कुछ सरल काम नहीं। फिर भी हम यहाँ निवासियों की दुविधा के लिए हिन्दी के कहानी-कथकों, जो एक सम्पूर्ण सागर की भाँति हैं, कुछ कथाओं में विमर्श करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हिन्दी की सम्पूर्ण साहित्यिक रीति कसे में निहित है। यदि सम्पूर्ण साहित्यिक रीति का वर्णन करने के लिये किसी एक शब्द को लें, तो निम्नलिखित शब्दों में निम्नलिखित शब्दों का अर्थ है—

— **2000** —

Abstract

— **1998** —

1. **Introduction**

— **2010** —

मैं यह नहीं कह सकता, कि मेरा किया हुआ यह कर्मिकण्ड द्विती की कदाचित् का सर्वोत्तम और अनन्त कर्मिकण्ड होगा; क्योंकि द्विती का कदाचित्-सर्वोत्तम कर्मिकण्ड है। सामान्य है कर्मिकण्ड करने वाले सभी कदाचित् का सर्वोत्तम कर्मिकण्ड है। इसलिए मैं उपस्थित हो रहा हूँ, पर इस समय को कर्मिकण्ड करने हुए मैं यह कह सकता हूँ, कि इस कर्मिकण्ड के द्विती की कदाचित् कदाचित् का कर्मिकण्ड हो गया है। इस कर्मिकण्ड के कर्मिकण्डिक दृष्टिकोण को ही कदाचित् ही नहीं है। कदाचित् की कदाचित् का कदाचित् करने वाले सभी कदाचित् का ही कदाचित् की कदाचित् कदाचित् है।

समाजशास्त्रक मझा दिग्दी मझानी की प्रथम और सर्वोच्च मझा है । एम मझा का नाम समाजशास्त्रिक मझा इस्तिलाफ मझा मझा है, कि एममें मझाशास्त्र की

सामन्वयात्मक कक्षा आदर्शवाद का समन्वय वही बीरुल के साथ दिया गया है। वह कक्षा मुख्य रूप से व्याख्यावाद की सीमा सम्मिलित है, पर आदर्शवाद इसका अन्तिम लक्ष्य है। 'सत्य' की अन्विष्टिबद्धता करने में ही वह वास्तवी रूपका नहीं समझती, बल्कि उस बात की खोज और उसका के लिए उपरोक्ती भी बना लेती है। इस कक्षा का प्रथम उद्देश्य है। सत्य की अन्विष्टिबद्धता के साथ-साथ खोज, समझ, और वास्तु के सम्बन्धित मानवी गुणों, और आदर्शों को स्थापना करना। इस कक्षा की गहनियों में समाज के जीवन उपरी की सीमा स्थापित करना दिया है, इसलिए इस कक्षा की गहनियों का समाज में सबसे अधिक प्रसार भी हुआ है। हिन्दी के वास्तवी के इस कक्षा की गहनियों का अधिक प्रसार और प्रसार है।

बढ़ाती की एक कक्षा के निर्माण समीप प्रेमचन्दजी हैं। सर्व प्रथम समीप प्रेमचन्दजी से ही कन्धी की बढ़ाती की देखी गलतफहमी, और गलतफहमी के बाल से सुझावा और उसे एक ऐसा सुन्दर साकल प्रदान किया, जो उसके लिए सर्वथा नवीन था। सर्व प्रथम प्रेमचन्दजी से ही हिन्दी-बढ़ाती में साकल-दृष्टि के बाल का विकास किया, और उसके मन के औरत धर्मित करके एक वैज्ञानिक की भाँति उसके दृष्टी का विस्तारण किया। यद्यपि वह निरक्षरत्वका कष्ट, और कष्टों का, हिन्दू पुरुष नवीन होने के कारण वह हिन्दी के पाठकों को पुरुष का खल हुआ। उस मने-वेकानिक निरक्षरता, और साकल-दृष्टि के बाल का हिन्दी के पाठकों में सुविचार

समाप्त किया, और उसने निश्चित होकर हिन्दी कला को आभूषित हो कर दिया।

इस कला की प्रथम कदाही 'पद्म परमेश्वर' है, जो सन् १८१९ ई० में प्रकाशित हुई थी। 'पद्म परमेश्वर' के प्रकाशक जेम्सबन्धु की 'आत्मचरित' नामसे जाना। स्वर्गीय जेम्सबन्धु की इन दोनों कदाहियों ने हिन्दी की कदाही को नवीनता के लोके में डाला, और उसके नीचे एक अति ही उत्पन्न कर दी। इस कवि और नवीन शैली के प्रतिष्ठान स्वयं हिन्दी में अनेक कदाहीकारी का काम हुआ, जिनमें श्री दुल्लेरी, श्री विश्वनाथनाथ शर्मा कीर्तिधर, और 'गुदरंग' इत्यादि का नाम प्रमुख है। श्री 'दुल्लेरी' की 'उत्तम कदा वा' कदाही सम्यक्प्रमाण कदाही के लोह कदाही समझी जाती है। उसमें श्री के कवार्थ और 'आदर्श' नाम का प्रकाशनीय विषय हुआ है। श्री विश्वनाथनाथ शर्मा 'कीर्तिधर' के 'पद्म कवच' में आदर्शवाद अपनी पूर्ण प्राप्ति पर है। गुदरंग की 'शालीत' ने भी इस दिशा में अपना कामकाज अत्यन्त किया है। स्वर्गीय जेम्सबन्धु की 'पद्म' और 'आत्मचरित' में आदर्शवाद की जीवित, और आदर्श कदाही विद्यमान है।

कदाही कला की दृष्टि से इस कदा की कदाहियों को हम चारों प्रकार कदाहियों कहेंगे। चरित प्रमाण कदाहियों उन कदाहियों की कहते हैं, जिनमें चरित की प्रमाणता होती है। स्वर्गीय जेम्सबन्धु चरित-प्रमाण कदाहियों के लोह के लोह कहते हैं। उनकी 'आत्मचरित', 'उत्तम पर की वेदा', 'कीर्ति प्रमाण', 'दशवर्ष', 'बुद्धि काशी', 'आदर्श', 'दुल्लेरी नाम', और 'आदि कदाहियों' इत्यादि में चरित-विषय का अत्यन्त सुन्दर और मायिकता के साथ विकास हुआ है। जेम्सबन्धु शर्मा दुल्लेरी की सुप्रसिद्ध कदाही 'उत्तम कदा वा' में लक्ष्यविद् के चरित का विकास अपने आदर्श रूप में हुआ है। गुदरंग की कदाहियों में भी चरित-विषय की उत्कृष्टता है।

सम्यक्प्रमाण कदा का कदाहियों सम्यक् में अत्यन्त विद्वत् है। उनकी लोक-विद्या का कामकाज नहीं लोह की अतिप्रमाणता के साथ आदर्श की स्थापना है, बल्कि उनकी भाषा, और शैली को अत्यन्त तथा सम्यक् में ही उनके प्रसार में अत्यन्त प्रभावित प्रदान किया है। स्वर्गीय जेम्सबन्धु इस कदा की कदाहियों की भाषा और शैली के उत्कृष्ट है। उनके लोह की कदाहीकारी ने उनकी ही भाषा और शैली का अनुकरण किया है। यह भाषा अत्यन्त सरल, सम्यक्प्रमाण, और सरल है। इसमें अत्यन्त के अत्यन्त और अत्यन्त शब्दों के साथ ही भाषा उद्गु के प्रकाशित शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। सुप्रसिद्ध के प्रयोग में इस भाषा को और भी अधिक उत्कृष्ट गयी बना दिया है।

भावनात्मक कदा के नाम से ही इसकी कदाहियों को विशेषता प्राप्त है। इस कदा की कदाहियों को भाषा विद्या भाषा और अनुकूल है। भाषाओं और भाषात्मक कदा अनुकूलियों में अतिरिक्त और कदा का अत्यन्त प्रभाव है। वे अत्यन्त के लोह की लोह कदा ही विद्यमान हैं, और अत्यन्त के अत्यन्त

मानव-दुरूप को विद्वन्ध बनाने का प्रयत्न करती है। वे मानवार्थ और अनुभूतिरहित बोधी मानवार्थ और अनुभूतिरहित की नहीं है, उनमें संकुचि और इतिहास का संभवता भी है। वे संकुचि के क्षेत्रों के संकुचि और इतिहास के क्षेत्रों की हुई निष्कर्षणी है, और इन को मानवता से दूरा कर उसका विच्छेद करती है। मानवता और मानवता के क्षेत्रों के कारण इस कथा की कहानियों सम्बन्धित भी है। इस कथा की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि वे संकुचि होती हैं, और संकुचि के क्षेत्रों को नहीं करती हैं। इनकी ऐसी कलात्मक, और संकुचि है। कीर्ति-प्राप्ति का भी, इन कहानियों में कलात्मक रूप से प्रकट किया गया है। इन कहानियों में स्वाभाविकता, और मनोवैज्ञानिकता भी है।

इस कथा की कहानियों के उदाहरण लम्बी 'महाद' की है। लम्बी महाद की महा कहि है। इनके दुरूप में भी यह है, कि विविध क्षेत्रों का मानव का। उनमें मानवता की भाँति ही कहानी, मानव, और उपायका कथा के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शनात्मक प्रदर्शन किया। महाद की कथा में मुख्य रूप से मानव के ही रूप में। महाद इनकी कहानियों, महाद, और उपायका में भी लम्बी के रूप में प्रकट की है। महाद की की कहानियों मानव और अनुभूतिरहित है। उन्होंने अपनी कहानियों में मानव और अनुभूति को मानव से दूरस्थित किया है। इनकी कहानियों में संकुचि और इतिहास का संभवता भी है। कई संकुचि और इतिहास का संभवता है, नहीं भी मानव, अनुभूति, और मानव का क्षेत्र है। मानव, अनुभूति, और मानव की मानव मानव और भी कहानीकारों के कहानियों की है, जिनमें मानवता, जिनमें लम्बी महाद, दुरूप, कला, और महाद की कई का नाम विशेष विशेषताओं में।

कहा की कथा की ही है इस कथा की कहानियों की इन लम्बी मानव और मानवता-मानव नहीं है। इस कथा की लम्बी कहानियों में मानवता की मानवता है। मानवता-मानव कहानियों में जिनमें एक मुख्य मानवता की मानवता का मानव मानव कर कहानी कथा की विशेषता किया जाता है। लम्बी महाद की 'महाद' के क्षेत्रों में मानवता का प्रदर्शन किया हुआ है। लम्बी महाद की कहानियों मानवता-मानव कहानियों में लम्बी मानवता की है। लम्बी महाद की कहानियों में 'कला में लम्बी' में मानवता लम्बी के लम्बी किया हुआ है। लम्बी, लम्बी महाद दुरूप, और लम्बी लम्बी कला की कहानियों की मानवता की लम्बी के लम्बी मानवता की है।

निष्कर्षात्मक कथा की लम्बी कहानियों मानवता है। इनमें मानव और मानव की लम्बी तथा इनके महादों के लम्बी एक लम्बी है—एक निष्कर्ष निष्कर्षात्मक कथा है। यह निष्कर्ष लम्बी है। लम्बी लम्बी और लम्बी की मानवता का मानवता लम्बी रूप है। लम्बी लम्बी है कि इस कथा की कहानियों लम्बी के लम्बी न का लम्बी। वे लम्बी की लम्बी लम्बी और मानव की

सांकेतिक करने लगीं थी खींच ही मिलेन थी हो गई । एक हलचल—एक आंदोलन हमें ने समाज के भीतर उत्पन्न पैदा कर दिया । पर समाज के भीतर रखातिव हमें न मिला वक्त । इसका एक मात्र कारण नहीं था, कि हमने समाज के जीवन हमों का पूर्णतः अध्ययन था । 'हम' को इस कक्षा की कक्षाओं के अध्ययन है । जो अग्रज आर्य वैद, और अग्रजों वाली हमारी के इस कक्षा की कक्षाओं के प्रचार और प्रसार में अधिक कक्षागत महान की है ।

कक्षा की कक्षा की दृष्टि से एक कक्षाओं को एक अनुकूलित कक्षाओं कहेंगे । अनुकूलित कक्षाओं उन्हें कहेंगे है, जो समाज द्वारा की गायता से समाज के समाज एक और कक्षागत चिन्तों के आधार पर किसी जाती है । किन्तु में एक कक्षाओं की सर्व प्रथम दृष्टि एक की के द्वारा हुई है । जो अग्रज आर्य वैद और जो अग्रज वैद वाली हमारी के जो अनुकूलित कक्षाओं किन्तु है । एक कक्षाओं में समाज के कुटुंब और समाज एक कक्षाओं का चिन्ता नहीं कुटुंब के साथ किया गया है । हमने नहीं, कि हमने चिन्ता नहीं नहीं आकर्षक, अग्रजों, और अग्रज है, पर हमने समाज की अध्ययन का अध्ययन है । हमने कक्षागत उन कक्षाओं के लिए गए हैं, जो समाज की दृष्टि में अधिक है और अग्रज है । नहीं कारण है, कि एक कक्षा की कक्षाओं कक्षा कुछ होने पर भी, समाज के भीतर अधिक समाज न पा लगी ।

हिन्दी कक्षा-कक्षा के सांकेतिक कक्षा कक्षा विवेक समाज लगी है । एक कक्षा की कक्षाओं के कई विवेकगत हैं । हमने समाजगत है, सांकेतिक है ।

सांकेतिक हमने समाज का चिन्ता है, और सांकेतिक विवेकगत कक्षा की है । एक कक्षा की कक्षाओं की सभी कक्षा विवेकगत है, कि वे समाज के मन के साथ खेलती है—उसके द्वारा के हमों के साथ संभरता लगी है । वेनता वेनता और संभरता ही नहीं लगी, उसकी लगी की भी खेलती है, और उसके समाज की दूर लगी है । हमने वेनता है, चिन्ता है, समाज लगी है, और सांकेतिक है । वे विवेक की लगी है, पर उसके साथ ही साथ हमने दृष्टि की समाज की अध्ययन की है । वे समाज की कक्षाओं और उसके कक्षा-कक्षा के दृष्टि चिन्ता समाज की अध्ययन लगी है, पर हमने उस समाज की अग्रज और आकर्षक लगी के समाज के सांकेतिक कर देने की लगी अध्ययन की है । वे द्वारा के लगी की लगी केनता हमने कक्षागत ही नहीं अध्ययन कर लगी, पर हमने भीतर है एक समाज की अध्ययन लगी है । समाज की सांकेतिक समाज की और लगी लगी से पूर्ण लगी है ।

एक कक्षा की कक्षाओं का अग्रज अग्रज सांकेतिक समाज पर समाज की लगी लगी और समाज की चिन्ता लगी है । समाज की लगी समाज की लगी लगी है—लगी के समाज पर समाज लगी है, हमने लगी उसके समाज के भीतर लगी लगी समाज के चिन्ता लगी लगी है—एक कक्षा की कक्षाओं उन्हें

जानने और समझने में सामर्थ्य कदापि प्राप्त कर नहीं दे। एक सत में हम यह यह समझते हैं, कि हम कथा की कथाओं में निरुद्ध बन्धन-बन्धन हैं। पर उनमें जो सत्य-मयी भावना और भावना है, हमने उनमें आदर्शवाद का भी समर्थन ही रखा है। सामर्थ्यात्मक कथा की कथाओं में भी कथाओं में पुनर्प्राप्त है। इनकी पुनर्प्राप्त की हमने कभी यह मान नहीं दे, कि वे सर्वोपेक्षित हैं। सामर्थ्यात्मक कथा की कथाओं में बहुत बला में जलना समझकर कहती है, कथा में मानव के मन के भीतर बहुत बला रहती है। इनका समर्थन, इनकी भाषा, इनकी विचार—एक कुछ सर्वोपेक्षित-निक है। इनकी कथा में सर्वोपेक्षितता का अर्थपूर्ण विकास हुआ है। उन्हें विचार-प्रकाश, और विवेचना ही इनकी कथा का आधार है।

श्री वैवेकानंदी एक कथा के उदाहरण हैं। श्री वैवेकानंदी सर्वोपेक्षित हैं। सर्वोपेक्षित की ओर धृति पर निरुद्ध हो करके ही उन्होंने अपने साहित्य की रचना की है। उन्होंने समाज की सुविधा, और समाजों की सामर्थ्यात्मकता की दृष्टि से देखा है। उन्होंने समाज की सुविधा और समाजों की देखावे में अपने कथन—अपने साहित्य की ओर दिया है। उनके साहित्य में—उनके समाज में लक्ष्यता है। उनका कथन—उनकी कथा आदर्शवाद की पुनर्प्राप्ति पर निरुद्ध है। साहित्यिकता इनकी कथा का आधार है। इनकी साहित्यिकता में आदर्शवाद, और साहित्यिकता का आधार है। यह कारण है, कि श्री वैवेकानंदी की कथाओं में समाज में अधिक समाज है। समाज के दोषों के लिए उनमें जो लग है, उनमें समाज अपने ही अंत में पाया है। श्री कर्तव्य, श्री समाजिकता, श्री, और इत्यादि-सी ही इत्यादि में श्री वैवेकानंदी के मन की प्रकाश करने में अर्थपूर्ण कार्य किया है।

कहानी कथा की दृष्टि से हम कथा की कथाओं की इन चरित्र-प्रधान कथा-निर्माण कहेंगे। सर्वोपेक्षित जीवन-कथा में श्री जीवन प्रधान कथाओं में लिखी हैं। पर हम कथाओं में हमने कभी विवेकता है, उनका सर्वोपेक्षित ध्येय-प्राप्त। इन कथाओं में जीवन-विषय सर्वोपेक्षितता की पुनर्प्राप्ति मान कर निरुद्ध रखा है। श्री वैवेकानंदी ने हम समाज की कथाओं की रचना में सर्वोपेक्षित कथा का प्रारंभ की है। उन्होंने ही कहानी की इस नवीन दिशा की ओर कथित किया है, और वे ही इस दिशा के सफल और सफल साधन भी हैं। श्री कर्तव्य की कथाओं में ही इस दिशा में अपना महान् दुर्गम समाज रखा है। उनकी कथाओं में कभी कभी कथन विषय सर्वोपेक्षितता की अर्थपूर्ण रचना पर पहुँच गया है। श्री भरतजीवरण वर्मा, और श्री इत्यादि-सी ही श्री इस दिशा में कार्य किया है।

इसमें चिरंजीवित कथन है। हमने मन में अपना यह जीवन कथन रखा है, किन्तु कुछ दिनों में अपना एक नवीन कार्य हिन्दी साहित्य में किया जाने लगा है, अर्थवाद और उसी की साधना में उनका सर्वोपेक्षित भी दिया है, अर्थवाद कथा को कुछ भी मान्य है, जो कुछ भी कथित, निरुद्ध, और साधारण-विचार तथा निरुद्ध के रूप पर प्रकाशित है, वह पर आकाश करता और

हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयों की रचना करते हुए कहानियाँ भी लिखी हैं। जैसे गोपालराम गहमरी, दुर्गा प्रसाद खत्री, बी० पी० श्रीवास्तव, श्री अन्नपूर्णानन्द, श्री वृन्दावनलाल वर्मा, और श्रीपद्मलाल पुन्नालाल बख्शी इत्यादि। श्री गोपालराम गहमरी और श्री दुर्गाप्रसाद खत्री जासूसी कहानियों के रचयिता हैं। एक युग था, जब हिन्दी में जासूसी कहानियों की घूम थी। दुर्गाप्रसाद खत्री के 'चन्द्रकान्ता' नामक उपन्यास से हिन्दी कहानी और उपन्यास की प्रगति में प्रशंसनीय सहायता प्राप्त हुई है। श्री बी० पी० श्रीवास्तव और श्री अन्नपूर्णानन्द हास्य-रसमयी कहानियों के उत्कृष्ट लेखक हैं। वेदवती ने भी हास्यरसमयी कहानियाँ लिखी हैं। हास्यरसमयी कहानियों के लेखकों में श्री अन्नपूर्णानन्द, और वेदवती में विशेष स्थाविच है। इनकी कहानियों में हास्य और विनोद की कलात्मक छटा के साथ ही साथ संयमशीलता भी है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक कहानियों की रचना में अधिक सफलता प्राप्त की है। श्री पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी भावात्मक कहानियों के अच्छे लेखक हैं।

कहानी कला की दृष्टि से मिश्रित कक्षा की अधिकांश कहानियाँ कार्य-प्रधान कहानी की श्रेणी में आती हैं। गोपालराम गहमरी, और श्री दुर्गाप्रसाद खत्री की कहानियाँ इस कक्षा की पूर्ति निधि कहानियाँ हैं। श्री वृन्दावनलाल वर्मा की कहानियों में ऐतिहासिक तत्वों का चित्रण कलात्मक दृष्टि से हुआ है। श्रीपद्मलाल पुन्नालाल की कहानियों में कथानक की प्रधानता है। कथानक-प्रधान कहानियों में उनकी कहानियों का सर्वश्रेष्ठ स्थान है।

समन्वयात्मक कथा

समन्वयात्मक कथा हिन्दी कहानी की प्रथम कथा है। इसी कथा से हिन्दी-कहानी ने साहित्य और जीवन की ओर अपना चरण बढ़ाया है। इस कथा के उन्नायक स्वर्गीय प्रेमचन्दजी हैं। प्रेमचन्दजी के साहित्यिक और भी कई कहानीकारों ने इस कथा की कहानियों के प्रचार में योग दिया है। यहाँ हम उनको कहानी कला पर प्रकाश डालकर यह दिखाने की चेष्टा करेंगे, कि उनकी कहानियाँ किस प्रकार की हैं, और उनसे क्या विशेषताएँ हैं।

किसी कहानीकार की कला की परख करने के लिए हमें कुछ विशेष निर्धारित बातों पर विचार करना चाहिए। वे विशेष निर्धारित बातें इस प्रकार हैं—चरित्र प्रेमचन्द की प्रधानता, वातावरण की प्रधानता, कथानक की प्रधानता, और कार्य की प्रधानता। अब हम यहाँ कला के इन्हीं मुख्य आधारों को सामने रख कर सर्व प्रथम प्रेमचन्दजी की कहानी-कला की समीक्षा करेंगे, और यह देखेंगे, कि उनमें कला का किटना और किस रूप में विकास हुआ है।

कहानी में चरित्र की प्रधानता से तात्पर्य यह है, कि उसमें आश्चर्यक ठग से किसी सुन्दर और प्रभाव पूर्ण चरित्र का चित्रण किया गया हो। चित्रण में चरित्र के सन्पूर्ण अंगों और पक्षों की विस्तृता पर ध्यान न देकर उसके केवल एक विशेष और महत्व पूर्ण पक्ष पर ही ऐसी मार्मिकता के साथ प्रकाश डाला गया हो, कि उसके सन्पूर्ण चरित्र का चित्र सामने आ गया हो। चरित्र का चित्रण बिन साधनों के द्वारा होता है, उसमें उनकी विकास हो। कला की दृष्टि से चरित्र चित्रण के चार साधन हैं—संकेत, वर्णन, वातावरण, और घटनाओं का विकास। बिन कहानियों में इन साधनों के द्वारा अपने आप चरित्र का विकास होता है, उनमें चरित्र की प्रधानता रहती है। प्रेमचन्दजी की कहानियों में चरित्र की प्रधानता मुख्य रूप से पाई जाती है। उन्होंने अपनी कहानियों में पात्रों के चरित्र का चित्रण उक्त साधनों के द्वारा बड़ी असीमिकता के साथ किया है। चरित्र को प्रकट करने वाले उनके संकेत बड़े प्रभाव पूर्ण हैं। उनके संकेतों में चित्रमयता और ओजसविता है। उन्होंने वर्णन, वातावरण, और घटनाओं के द्वारा ही अपने पात्रों के चरित्रों का एक चित्र-सा खड़ा कर दिया है। उनके चरित्र चित्रण में एक उभयता, और एक रूपता

है। उन्होंने चरित्र के किन्तु बहू का चित्रण किया है, उसने अन्धविश्वासवाद, और अज्ञानवाद है।

वेमकन्दकी चरित्र-वर्णन कहानियों के सर्वोत्कृष्ट होकर हैं। उनकी कहानियों में चरित्र का विकास मनोवैज्ञानिकता के आधार पर हुआ है। उनके चरित्र चित्रण में यहाँ सम्वाद है, यहाँ वह आदर्शवाद की ओर उन्मुख है। उन्होंने अपने चरित्र चित्रण में तब और आदर्शवाद का सम्बन्ध बढ़ी मार्मिकता के साथ किया है। उनकी कहानियों के चरित्र सभी वर्गों के हैं, आशीरू, रूखी पत्नी, किसान, नगरूर, समीसार, मजदूर, चमार, जाड़े, खोरी, मेहरारू, पवित्र, अन्धविश्वास, विद्वान्, गरीब इत्यादि सभी उनकी कहानियों के पात्र हैं। उनके पात्रों का व्यक्तिगत रूप से कोई महत्व नहीं है। इनके पास व्यक्तिगत होने हुए भी अपने समूह का—अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके समूहों का चरित्रवाद की नींव पर खड़े होते हैं, हिन्दू उग्रता उग्रर कादर्शवाद होता है। वेमकन्दकी ने अपने चरित्र चित्रण में भारतीयता का सुख रूप से स्थान प्रसाद है। चरित्रवाद का चित्रण करते हुए उन्होंने भारतीयता की रक्षा पूरी रूप से की है। उनके समूहों चरित्र भारतीयता के वातावरण में ही चरित्रवाद और आदर्शवाद का सम्बन्ध करते हुए कहाती में कहा की खूबि करते हैं। चरित्र-वर्णनता की दृष्टि से वेमकन्दकी की 'आत्मरत्न' 'बड़े घर की बेटी', 'बोका दुलार', 'बुढ़ी साँची', 'आर्या', और 'अति अन्धवि' इत्यादि कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

कहानी में वातावरण की प्रभावता का धर्म यह है, कि उसने कहानी की रचित्वियों में से किसी एक विशेष रंग का रङ्ग पर अधिक बल दिया गया हो, अथवा किसी एक भावना की प्रभावता रहती गई हो। वातावरण के विकास का सुख कारण केवल एक भावना, या विषय को निरिचय किया गया हो, और उन्नी विषय या भावना के द्वारा कहानी को अनुपस्थित किया गया हो। किन्तु कहानियों में एक प्रकार एक विषय या भावना के ऊपर अधिक बल दिया जाता है, और वातावरण के विकास का उसे सुख आधार माना जाता है, उन कहानियों को वातावरण प्रधान कहानी कहते हैं। कहानी कला की दृष्टि से चरित्र प्रधान और वातावरण प्रधान कहानियाँ सभी अर्थों तक कहती जाती हैं। इन कहानियों में चरित्र, और वातावरण के द्वारा ही वातावरण का विकास होता है।

वेमकन्दकी की कहानियों में किन्तु अन्ध चरित्र की प्रभावता उल्लेख रूप से है, उसी प्रकार उनकी कहानियों में वातावरण का विकास प्रति रूप से हुआ है। उन्होंने अपनी कहानियों में रचित्वियों और वातावरण का चित्रण बढ़ी मार्मिकता के साथ किया है। उनके वातावरण चित्रण में ही उनके पात्रों के चरित्र निरिचय होते हैं। उनके चित्रण में लक्ष्यता है—प्रभावतावाद है। वे एक वर्ग की प्रति वातावरण या विषय के उस रूप की रङ्ग करते हैं, जो अधिक प्रभावपूर्ण है। उसी के चित्रण में—उन्नी के जीवन में उनकी कला अपनी पूर्ण स्थापना प्रति

का परिचय देती है। उनकी कला की उसके विषय में पूर्ण समझ प्राप्त हुई है। उनकी 'सुतराब का किसान'ी' नामक कहानी में सातवरण का संघर्षत्मक विकास हुआ है। यह कहानी सातवरण प्रधान कहानियों में सर्वोत्तम समझी जाती है। 'सुतराब का किसान'ी की मीठी उसकी और भी कहानियाँ हैं, जिसमें सातवरण का विकास आदर्श रूप में हुआ है।

जिन कहानियों में चरित्र चित्रण और वातावरण पर विशेष बल रखा दिया गया; वहीं चरित्रों और परिस्थितियों के संघर्ष पर बल दिया जाता है, उनमें कथानक की प्रधानता होती है। कहानी कला की दृष्टि से एक कोटि की कहानियाँ निम्नकोटि की समझी जाती हैं। देवचन्द की कहानियों में कथानक की प्रधानता बहुत कम पाई जाती है। उन्होंने अपनी कहानियों में कथानक नहीं, परिचय, संघर्ष, समाप्ति, विकास, और समुद्र इत्यादि के जीवन-मूल्य हैं। जो परमात्मक न होकर समयावृत्त हैं। उन्होंने कथा के विकास की ओर अपना ध्यान नहीं दिया है, जिससे कथानक के समाधान की ओर। यही कारण है, कि उनकी कहानियों में चरित्र, और सातवरण प्रधान रूप से उत्पन्न हो गया है, और यही उनकी कहानी कला की समझ का कारण भी है।

कहानी में कार्य की प्रधानता का कार्य यह है, कि उसमें हमें साहित्य का कार्य पर ही दिया गया हो। ऐसी कहानियाँ जल्दी और ठीकठीक होती हैं, जो कहानी कला की दृष्टि से दोन समझी जाती हैं। देवचन्द की ये एक कोटि की कहानियाँ सभी सिद्धी ही नहीं। यहाँ उनकी कहानी कला 'कार्य-प्रधानता' की शर्त नहीं पर पाई है।

देवचन्द की कहानी कला चरित्र प्रधान और वातावरण प्रधान है, उनकी कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि वह चरित्र और वातावरण के विकास के द्वारा ही अपने को प्रकट करती है। उनमें समावेवाद और आदर्शवाद का समुचित समन्वय हुआ है। वह वातावरण कहानी कला के प्रभावित होने पर भी पूर्ण रूप से मायवीर है। मायवीरता ही देवचन्द की कला का लक्षण है। उनकी कहानियों में समावेवाद, जो आदर्शवाद की ओर अभिसृत है, भारतीय संस्कृति और साम्राज्य से संबंधित है। उन्होंने अपनी कहानियों में कथन-कथन पर भारतीय संस्कृति की रक्षा की है। उनकी कहानियों में चरित्र और वातावरण का प्रबल भारतीय जीवन के अनु-कूल है। उनमें पात्रों के कथनोपकथन भारतीय संस्कृति का समर्थन करते हैं। कला की दृष्टि से उनका कथनोपकथन अत्यन्त स्वाभाविक, और उत्तम है। वे एक कुशल कथार की मीठी पात्रों के कथनोपकथन पर अपना निम्नत्व रखते हैं। उनकी कहानी कला की प्रधानता और मधुरता में उनका कथनोपकथन अधिक प्रधानत्व सिद्ध हुआ है।

अन्ततः हमें सुनिश्चित है कुछ तीन कहानियाँ मिली हैं—'सुतराब की पत्नी', 'प्रभु का पीता, और 'उसने कहा था'। इन तीनों कहानियों की सामने एक ही रूप

का। गुलेरीकी संस्कृत साहित्य के बहादुरी से। उन्होंने संस्कृत साहित्य के विभिन्न अंशों का संश्लेष किया था। वे संस्कृत साहित्य के रस में डूबे हुए थे। अतः उनकी रचनाओं में संस्कृत रस का प्रतिपक्ष होता स्वाभाविक हो है। पर गुलेरीकीने अपनी कहानी कला के रस को नई संस्कृत के साथ साहसिकता के मन्थन है। उनकी कहानियों में जो रस है, वह संस्कृत के एक अर्थात् निष्ठान का नहीं, बल्कि ऐसे कलाकार का रस है, जो मानव जीवन का सारा होने के साथ ही साथ मानव प्रकृति की दृष्टि वाला है।

गुलेरीकी की कहानी कला का आधार मानव जीवन है। वह मानव-जीवन के केवल बाह्य रूप तक ही नहीं रहती, बल्कि उसके अंदर से भी उभरे हुए होते हैं—और हुए एक समेक काली है। मानव जीवन के सांस्कृतिक दृष्टि का अध्ययन करना ही उनकी कला का मूल उद्देश्य है। गुलेरीकी की कहानी कला सांस्कृतिक जीवन का रूप है। उनकी इनके नहीं विवेचना नहीं है, कि वह रोटी और कपड़े की चिन्ता में न डलकर वह मानव रूप के उन भावों के साथ खेलते हैं, जो उनके जीवन को रोचक बनाने की सामर्थ्य रखते हैं। गुलेरी की की कहानियों के साथ और सम्बन्ध नहीं बनाते हैं, जो दुर्लभाओं और दुःखों के प्रतिबिम्ब हैं। किन्तु वे सादृश्य नहीं है—सदृशता है। वे संस्कृत के दुःख नहीं, अधिक प्यार करते हैं। वे अपने दुःखों और दुःखों की चिन्ता में मानवता का संकलन नहीं करते, अपितु दुःखों के कष्टों को दूर करने के लिए—उनके प्राचीन की बनाने के लिए प्राचीन पर भी खेल करते हैं। वे नहीं बसकर, स्थिति और जीवन का सामर्थ्य विषय उपस्थित करते हैं, नहीं उनका संस्कृत साहित्य सादृश्य की ही और रहता है। अतः हम यह कहते हैं, कि गुलेरीकी की कहानी कला साहित्य के ऊपर साहित्यिकता की स्थापना करती है।

गुलेरीकी की कहानी कला के ऊपर हास्य और व्यंग्य का अत्यन्त बड़ा भी बड़ा प्रभाव है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी कला में अपने आप रस की सृष्टि हो गई है। किन्तु उनका हास्य, और व्यंग्य वह हास्य और व्यंग्य नहीं है, जिसका मुख्य प्रभाव बनाने होता है और जो एक निरुद्धि और के निरुद्धि है। गुलेरीकी के हास्य और व्यंग्य में बहुत सीमाओं और सीमा सीमा है। उनका हास्य-व्यंग्य ही सादृश्य चिन्ताओं से बसा हुआ है। वह नहीं जो रचनात्मकता उभरने नहीं करता। उनकी कहानियाँ नहीं विवेचना नहीं है, कि वह अपने दुःखों के ही भीतर रहते हैं। उनका मुख्य प्रभाव, साधारण, और सीमाओं की निरुद्धि नहीं है; बल्कि वे, कलाप्रकृति, और समेकता है। उनसे पहले में निरुद्धिप्रभाव नहीं उत्पन्न होता; बल्कि वे के साथ सादृश्य होते हैं। उनका हास्य व्यंग्य गुलेरीकी का स्वरूप है। गुलेरीकी संस्कृत के रस में, और उनमें उदाहरण कुछ-कुछ कर मरी की। अतः उनका हास्य भी निष्ठान की प्रतिबिम्ब और ऊपर की प्रतिबिम्ब सादृश्य दृष्टि है।

कुछ लोगों का कहना है, कि गुलेरीकी की कहानी कला केवल कला की सृष्टि के लिए है, उनका मन जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे गुलेरीकी पर 'दुर्लभात्म'

का दोष भी लगते हैं, और उसका कारण यह बताते हैं, कि तुलसीदास कायम-संयम व्यक्ति थे और उसके जीवन का अधिकतम भाग बड़े-बड़े राजाओं के सामने व्यतीत हुआ था। ऐसे लोगों के सम्मुख में हमारा केवल हथका ही रहता है, कि वे जन-जीवन को विशेषज्ञताओं को नहीं जानते। जन-जीवन केवल कथाओं के विषय तक ही सीमित नहीं होता। उनका एक और पक्ष होता है, जो बड़ा यह है—कथाओं के अधिक जगह और आकर्षक होता है। तुलसीदास ने उसी पक्ष का विशिष्ट चरणी कहानियों में किया है। उनकी कहानियों में रोटी और चमड़े का नाम नहीं—समय के कथाओं का कारण नहीं, उस आंतरिक जीवन का विशिष्ट है जो जन-जन के हृदय में देवीयता जगती की सृष्टि करते समय को आदर्श और उच्च बनाता है। इसलिए हम यह कह सकते हैं, कि तुलसीदास की की कथा जनसृष्टि की ही है।

सुदर्शन नाम का एक पुत्र है सुदर्शन कहानीकार है। जैनसम्प्रदाय के किन्हीं में कहानी के लिए यहीन पुत्र को आश्रय को है, सुदर्शनकी उसी की धर्मा के जीवन की सुदर्शन विचारण करते हैं; बलिक यह कहता अधिक मात्र संगत होता कि सुदर्शनकी ने भी उसी पुत्र का सुधार किया है। जैनसम्प्रदाय की कथा से सुदर्शन की कथा प्रभावित है— इस बात से जो अवधारणें नहीं समझ की जा सकती, पर इसके साथ ही साथ यह भी अवधारणें कहा जायता, कि सुदर्शनकी सुदर्शन से सीमित है। उनकी कथा समाहित सम्प्रदाय है, पर यह सर्वथा सीमित है। उसका प्रथम जैनसम्प्रदाय की कथा के किन्तु है। जैनसम्प्रदाय की कथा उस विशाल सत्य को नहीं नहीं करता, जो अस्मात् के सत्य से से व्यक्तित्व रहता है। जैनसम्प्रदाय की कथा का अधिकतर सम्मुख जगती में सम्मुख हुआ है। पर सुदर्शनकी की कथा जगती के सम्मुख हुआ की अधिकतम सत्य से ही जगती सम्मुख स्थापित करती है। यह जगती और दुखी में भी उसी की धर्म में आहुत रहती है। मनुष्य के मनोविज्ञान में यह वह वह उच्च-उच्च मान्यता नहीं, बल्कि बहुत पूर्व उन्हीं दबाती हुई जगती के निकट पहुँचने का प्रयत्न करती है। सुदर्शनकी की 'हर जीत' कहानी उसकी सादरता और जगती जगतीकी कथा को बड़ी दृढ़ता के साथ हमारे सामने उपस्थित करती है। यह कहानी यथार्थ सुदर्शनकी की बहुत पहले की कहानी है, पर उसने उसकी जगतीजगतीकी कथा का प्रचुर रूप में विशिष्ट हुआ है।

सुदर्शनकी की कथा में आत्मन्यात्मक को विशिष्ट करने की प्रचुर शक्ति है। यही कारण है, कि सुदर्शनकी की कहानियों में आत्मन्यात्मक की प्रधानता है। आत्मन्यात्मक जगती कहानीकारों के सुदर्शनकी का प्रमुख स्थान है। आत्मन्यात्मक की सृष्टि करने से उन्होंने आत्मन्यात्मक को ही अधिक मात्रा दिया है। उनकी कहानियों का आत्मन्यात्मक आत्मन्यात्मक मानवाची की सुदर्शन पर जगती होता है, और उनकी की धर्मा में कथा तथा पुत्र भी होता है। आत्मन्यात्मक की सृष्टि करने के साथ ही साथ उनकी कथा जीवन की सम्मुख भी करती है। आत्मन्यात्मक में वह जगती जगतीका-

निकला प्रदर्शित करती है। उसकी अनौपचारिकता में सीमा है—प्रमाण राजनीति है। वह एक सूत्र दृष्टि की दृष्टि और वे सम्पूर्ण रूप से बाह्य रूपों को देखती हैं, और उनके वास्तविक वैश्व को दूर करने के लिए एक दल—एक स्वाभाविक जोड़ती है।

सुरक्षित की आवश्यकता है। अतः उनकी कला साधुनिष्ठ कला के अधिक तक हो सीमित नहीं पाती। वह सुरक्षित, और अर्थहीनता के रूप में प्रवेश करती है, और सम्पूर्ण मानव-दृष्टि में प्रविष्ट होकर, उन्हें भी एक का अनुसरण करती है। एक के लिए—हेतु के आधारों की सीमा के लिए वः दूर—दूर का गन्ता है करती है। वह उपदेश नहीं देती, कौशल आधारों के लिए छात्रों को प्रेरित करती है। उसे किसी के दुष्टा नहीं है—किसी के वैर नहीं है, पर कौशल आधारों के दृष्टि में है। उनकी 'एक सीमा' में अर्थ नैतिक आधारों की स्थापना हुई है।

कौशल की कलाओं का कथानक प्रमाण है। वह वाच, स्वर, और चरित्र के द्वारा कथानक के ही विकास में संलग्न होती है। कथानक के विकास से कौशल विद्यमानताओं की कला की स्थापना में है, कि नहीं नहीं दृष्टि में के द्वारा कौशल का एक वह सम्पूर्णता और सम्पूर्णता ही गई है। किन्तु एक सम्पूर्णता के होते हुए भी उसे कथानक के विकास में दर्शनीय दृष्टि का दृष्टि हुई है। कौशल की कला कथानक में भी नहीं प्रवेश है। वह कथानक में वे वर, प्रवाद, और सम्पूर्णता की दृष्टि करने में अद्वितीय है। उनमें द्वारा प्रवाद और स्वर के प्रचार हुआ है।

कौशल की कला की सबसे-बड़ी विशेषता उसका गद्यकथन है। उन्होंने अपने पात्रों का चरित्र चित्रण गद्यकथन द्वारा कर दिया है। उनके कालाचारों, और पात्रों के द्वारा कथानक में गद्यकथन का विकास हुआ है। उनकी कला की दृष्टि में सबसे अधिक दृष्टि हुई है। दृष्टि में कौशल की प्रभाव और प्रभावों के भी काले विकास गए हैं। कौशल की कला कथानक कथानक है, पर उसमें कथानक की प्रवेश कथानक और साधुता का अर्थ अधिक है। साधुता से कौशल की कला की अधिक सीढ़ है। दृष्टि में के द्वारा नहीं नहीं वह सम्पूर्णता ही गई है।

कौशल की कला चरित्र चित्रण की और के अन्तर्गत है। चरित्र चित्रण की प्रवेश वह कथानक की ही विशेष महत्व प्रदान करती है। चरित्रचित्रणों के विकास में उनकी पात्रों की दृष्टि-सदृश और कालाचारों का ही सम्पूर्ण दिया है, जिसमें उसे चरित्र कथानक प्राप्त हुई है। कौशल की कला अपनी दृष्टि कथानक के ही द्वारा हिन्दी-साहित्य में सर्व मान्य है।

भावात्मक कथा

साधारण कथा भावना, और अनुभूति पर आधारित है। इस कथा की कहानियों में अनुभूति की प्रधानता है। अनुभूति की प्रधानता होने के कारण इस कथा की कहानियों में मानव हृदय के सुख दुःख, दर्प विषाद और अतमान चेतन का चित्रण समवेदना और सहानुभूति के वातावरण में हुआ है। स्वर्गीय प्रसादनी इस कथा के उदात्तक है। चरहीप्रसाद हृदयेष्ट, श्री रामकृष्णदास, और श्री विन्दोदर्शकर व्यास इत्यादि ने इस कथा की कहानियों के विस्तार में योग प्रदान किया है।

स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद की कहानी कला विविध रंगी है। कहीं वह ऐतिहासिकता की पृष्ठभूमि पर विहार करती है, तो कहीं सामाजिक तत्त्वों के साथ खेलती है।

जयशंकर प्रसाद कहीं वह मानव की प्रवृत्तियों के साक्ष्य दृष्ट करती है तो कहीं-हृदय के झुंझों के साथ उलझती है। उस के विविध स्वस्व हैं - जिस प्रकार ठाँके विविध स्वस्व हैं, उसी प्रकार उन स्वस्वों में मिलमिलाने वाली उसकी भाव-व्यो-
तियों में भी विविधता है। कहीं उसकी भाव-व्योतियों करने प्रकाश के प्रेन उत्पन्न करती है, तो कहीं क्रीदार्ण को सामने लाती है। कहीं दर्प के वैभव बिखेरती है, तो कहीं उल्लास के। कहीं संयोग को सामने लाती है, तो कहीं विषय को। कहीं कथ्य और समवेदना के चित्र बनती हैं, तो कहीं अन्ध और आदर्श के। इस प्रकार प्रसादनी की कथा में भावों की विविधता और चित्रों की बहुलता है। प्रसाद की की कथा चाहे जिसकी ही विविध, और बहुलगी क्यों न हो, किन्तु उसने अपने हर एक प्रकार और रंग में कल्पना तथा काव्यत्व की रखा की है। अतः वह कहना ही पड़ेगा, कि प्रसाद की की कथा कल्पना, और काव्यमय है। कल्पना और काव्यमय होने के कारण उनकी कथा की प्रवृत्ति स्वच्छंदता की ओर है। उनकी कथा किसी बन्धन, और सीमा को स्वीकार नहीं करती। यहाँ तक, कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी वह स्वच्छंदता के साथ विहार करती है।

प्रसादनी की कथा में चेतनता, और तीव्रता का प्रधान गुण है। वह अपनी तीव्र शक्ति के द्वारा ज़ब्तकार पुरुष अतीत में प्रवेश करती है, और वहाँ एक तथा मर्मियों बंदोरे में लपलप सिद्ध होती है। वह अतीत के गर्भ से निकाल कर ऐसे-ऐसे मनोरम चित्रों को हमारे सामने लाती है, जिन्हें देख कर हृदय-विभुग्ध हो जाता है। अतीत के ये चित्र भावनाओं से उल्लसित हैं। कहीं तो ये अतीत की सामाजिकता

का विश्व प्रसिद्ध करने हैं, और वही ऐतिहासिक तथ्यों के द्वारा ही सुशोभित मान-नाओं को जन्म कराते हैं। यही समवेदना की भाँती से झँझटे हुए दलितोत्थर होते हैं, जो कही कसबा के मनोरमदलों से सुशोभित दिखाने देते हैं। उनका सबसे सँभवी ज्ञान, और उनकी अनुभूतियाँ आनन्दमयी हैं। ऐसा बात होता है, मानो उनका विशेष स्वयं विचारण भावों का प्रबल अभिव्यक्ति रहा हो।

प्रसादजी की कला मानव हृदय के दर्पों का चित्रण करने में अधिक कुशल है। वह जिस पिछी भी वर्ग के व्यक्ति के हृदय में प्रविष्ट होती है, वहाँ दूर तक उनके क्षेत्र को देखती है। उनका क्षेत्र किसी वर्ग विशेष के व्यक्ति का हृदय नहीं है। वह राष्ट्र के हृदय में भी प्रविष्ट होती है, और विश्वभारती के हृदय-पटल पर भी दृष्ट करती है। वह समाजी का भी कार्य करती है, और समाज में छात्राई व्यक्ति के साथ भी विचारण करती है। उनका विशेष रूप से किसी से भी सम्बन्ध नहीं है, किन्तु समस्त है। वह किसी एक विशेष व्यक्ति के प्रति अपनी समस्त न प्रदर्शित करते संतुष्ट मानव के हृदय की ही समस्त क्षेत्र समझती है। यही कारण है, कि छात्राई के साथ किसी वर्ग विशेष के नहीं है। उन्होंने अपने 'राज' 'राज' के विमोचन क्षेत्रों से जुड़े हैं। उनके पाठों के साथी, और गुरुत्व नहीं भी है। प्रसादजी की कला की सबसे बड़ी विशेषता यही है, कि वह मानव-हृदय के साथ विचारण करती है। मानव-हृदय के दर्पों का चित्रण करना ही प्रसादजी की कला का मुख्य कार्य है। उन्होंने यही विश्व समवेदना का चित्रण किया है, यही आनन्दमयी के साथ किया है। मनेविही पर प्रसादजी की कला का दूसरा राज्य है। वह अपने मनेविही को बहुमुखी, और कसबा के साथ देखती है। उनका संतुष्ट मानव सदैव 'राज' के साथ आनन्दमयी है।

प्रसादजी की कला में बाल्यवस्था की उपलब्धता है। अंतर्दृष्टी के द्वारा व्यक्ति और समाजवाद का विचारण करने में वह अधिक कुशल है। कदापी में यही मने विचारणी और संभावनी का रूप प्रदर्शित होता है, जो मने पाठों का चित्रण और बाल्य-वस्था में अपने साथ विचारण होता जाता है। प्रसादजी की कदापी कला बचपि ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि है, पर उनमें बाल्यवस्था का विचारण बहुत कम पाया जाता है। बाल्यवस्था के स्थान पर उनमें कलकत्ता की और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का ही अधिक प्रचार हुआ है। हाँ वह दर्पों का दर्शन करने में संकोच नहीं करती। प्रसादजी की कदापि में मने, दाभी, प्रकृति-समस्त, गुरुजी, और दोषों का भी दर्शन हुआ है। अतः वह कहना ही योग्य, कि प्रसादजी की कला बाल्य और बाल्यवस्था का चित्रण करने के साथ ही मानव-दर्पों का प्रकाश करने में भी अधिक कुशल है।

प्रसादजी की कला व्यक्ति मानव और कलकत्तावसी है। अनुभव और कलकत्तावसी के प्रति उनके भीतर अधिक मोह है। कही यही एक मोह के कारण वह कलकत्ता की वर्ग है, और उनका रूप प्रकाश हो गया है। किन्तु वह दर्पों का चित्रण नहीं

करती है। मातृकता और कल्पना के नाम कहानी के भीतर हीमूर्ध्न स्थापन करना ही वह अपनी विशेषता समझती है। यही यही प्रसादनी की कला सम्पादन और संचालित की हो गई है।

प्रसादनी की कहानियाँ कई प्रकार की हैं। उनकी संपूर्णा कहानियाँ निम्नांकित वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—ऐतिहासिक कहानियाँ, भवार्थवादी कहानियाँ, मानवमन कहानियाँ, जीवन मुक्त कहानियाँ, यमकाली कहानियाँ, भारतीयमानव कहानियाँ, सामाजिक कहानियाँ, चरित्र प्रधान कहानियाँ, आदर्शवादी कहानियाँ, और आधुनिक कहानियाँ। बिना प्रकार प्रसादनी की कहानियों के विविध रूप हैं, उनकी प्रकार उनकी कला की विविध रूप-रंगिनी है। यहाँ ऐसी साधारणकता नहीं है, उसमें यहाँ ऐसा साधारण साधारण विविधता बिना है। अपने साधारण विचारों में सर्वत्र वह केवल ही ही जाती पर विशेष रूप से ध्यान देती है—संवेदना का, और सम्पन्नता का। 'संवेदना' की की कला प्रत्येक क्षेत्र में कल्पनामयी और विवेक होता है। सुखोपलब्ध कल्पना, और संवेदना की वीची बहुत प्रसादनी की कहानियों में मिलती है, वैसी सम्पन्न बहुत रूप मिलती है। प्रसादनी की कला की सर्व दिशा का सुख का प्रभाव पड़ता है, कि वह रूप की कथापुष्टि और संवेदना की दृष्टि से देखती है। प्रसादनी ने मानव हृदय को यही यही दुखी की दृष्टि से अपनी कहानियों में अपने की दृष्टि की है।

औरत सम्पन्नता का नाम कहानीकारों ने अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। कहानी के क्षेत्र में यहाँ वह साधारण कथा के हैं, और प्रायः इन्हीं के कार्य का अनुसरण साधारणकता की करते हैं, किन्तु फिर भी एक विशेष दृष्टि से इनका अधिक महत्व है। प्रसाद कथा के ऐसे हुए जो इन्हीं कला के क्षेत्र में अपना नैतिक दृष्टिकोण रखता है। कहानी का सम्पन्न कला के स्थापित करने में वह सबसे अधिक सम्पन्न है। इन्हीं की वह क्षेत्र प्राप्त है, कि इसकी रचनाओं में कहानी और कला—दोनों अविच्छिन्न रूप से एक साथ ही दृष्टि लेकर होती है। प्रसादनी ने भी कहानी का सम्पन्न कला के साथ स्थापित करने का प्रयत्न प्रयास किया है, किन्तु कला और कहानी की ही अधिकता का प्रभाव को दृष्टियों में प्राप्त होता है, उसका परिणाम प्राप्त की की दृष्टियों में नहीं होता। प्रसादनी का ध्यान कला और कहानी का सम्पन्न स्थापित करने के साथ ही साथ विचारों की ओर भी है, किन्तु साधारण में अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का प्रयोग केवल एक ही की कार्य में किया है। यही कारण है, कि उनकी कहानियों में सबसे अधिक असाधारणता है।

साधारण की कला मानव प्रमाण है। सम्पन्न क्षेत्रों की ही बात ही नहीं, ऐतिहासिक क्षेत्र में भी उसका संपूर्णा सम्पन्न-मानव के ही साधारण पर स्थापित होता है। उनकी कला का उद्देश्य साधारण और साधारण सुधार है। वह राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं की ओर से यहाँ बन्द करने मानव-हृदय के सम्पन्न, सर्व-विचार, और सुख-सुख के ही अपना उद्देश्य करते हैं। मानवों के साधारण

माधव-हृदय से जो हृन्त उठते हैं, उन्हीं का चित्रण करना उसका लक्ष्य है। संछिन्न-दिनों होने के कारण उसमें मनोवैज्ञानिकता भी है। किन्तु उसकी मनोवैज्ञानिकता में मस्तिष्क का अंश कम, और हृदय का अंश अधिक है। उसमें एक लक्षिक की लकीर नहीं, एक कवि की कल्पना है। कल्पना और माधवभाव होने के कारण यह गद्य और हृदयहारिणी भी है।

राजकुमारदासजी की कला काव्यारण्य प्रधान है। आदि से लेकर अन्त तक वह काव्यारण्य का चित्रण करने में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग करती है। प्रकाशकी की भाँति राजसाहब का काव्यारण्य भी कवित्वपूर्ण और नाटकीय दृष्ट का है। उनकी कला में नाटकत्व की प्रचुरता है। इनकी कला माधवा, और कल्पना की शक्ति से आदर्शों की सृष्टि करना ही अपनी सार्वभौमता समझती है। चरित्र चित्रण और कटना की ओर वह बिलकुल ध्यान नहीं देती। यही कारण है, कि इनकी कहानियों में चरित्र चित्रण और घटनाओं का पूर्ण समावेश है। घटनाओं का पूर्ण समावेश होने के कारण यही कहें इनकी कला कहानी के क्षेत्र से दूरक हो गई है, और उसने गद्य-काव्य का कम भाग्य का लिया है। चरित्र चित्रण के समावेश के लक्ष्य काही लक्ष्य कर वह समाधानाधिक भी हो गई है। वह होते हुए भी राजसाहब की कला का हर प्रभाव पूर्ण है। राजसाहब की कहानी कला अपने ढंग की अकेली कला है। उसके द्वारा हिन्दी कहानी-काल में एक विशेष प्रकार की कहानियों की सृष्टि हुई है। उपकथा, आनन्द, और मनोरञ्जन इन कहानियों का उद्देश्य है। इनके द्वारा एक परंपरा का उत्पादन होता है। उस परंपरा का उत्पादन होता है, जिसे जानने, और समझने में ही मनुष्य जानना जीवन समझ कर देता है। इन कहानियों की राष्ट्रवात्मकता ही उनकी विशेषता है। उनका आनन्द और उनका मनोरंजन कलात्मिक आनन्द और मनोरंजन है। कलात्मिक और कवरीय कला का नाटकीय ढंग से उत्पादन करके आनन्द की सृष्टि करने में वह कहानियाँ अधिक कुशल हैं।

अन्तिम चरणी प्रकाश 'हृदयेक' और श्री किनोर्द शंकर व्यास ने भी माधव-प्रधान कहानियाँ लिखकर इस कथा के विस्तार में योगदान किया है।

विद्रोहात्मक कथा

विद्रोहात्मक कथा की कहानियाँ विद्रोह पर आधारित हैं। इस कथा की संपूर्व कहानियों में समाज की कटिनों और कदाचारों के प्रति एक विद्रोह का भाव जाया जाता है। यद्यपि इस कथा की कहानियाँ में स्थानिक नहीं हैं, पर इस बात से व्यर्थकार नहीं किया जा सकता कि उनमें नवचेतना और जागृति का भाव है। कहानी कला की दृष्टि से इस कथा की कहानियों की महत्त्व नहीं प्रदान किया जा सकता, किन्तु इस बात में संदेह नहीं किया जा सकता, कि इस कथा की कहानियों से समाज के कदाचारों पर प्रकाश पड़ा है, और उनके विरुद्ध लोगों के हृदय में पृथक् का भाव उत्पन्न हुआ है। श्री पारस्य वेचन शर्मा 'उम' इस कथा के उदात्तक हैं। श्री अश्वमेध भारवा जैन, और श्री चतुर सेन शास्त्री इत्यादि ने भी इस कथा की कहानियों के प्रचार-प्रसार में बड़ी प्रदान किया है।

पारस्य वेचन शर्मा 'उम' की कहानी-कला और पद्यार्थ-वादिनी है। पद्यार्थवाद के क्षेत्र में भी वह समाज के उन्हीं वर्गों की हुईती है, जिन्हें हम समाज की भिन्नता पारस्य वेचन कह सकते हैं। उसके नेतृत्वस्थ, मंदिरस्थ, कुद के काट-झों शर्मा 'उम' और बीमल कुमारी से ही अपना जन्मिधार किया है। उसमें इन कुमारी के प्रति आकर्षित-ही उत्पन्न हो गई है। उसकी दृष्टि में समाज के भीतर इन्हीं वर्गों की प्रचुरता है, और वह उन्हीं का विद्रोह करने में अपनी पार्थ-कता समझती है। विद्रोह करने में उसका ध्यान परिवर्तन की और रचनात्मक भी नहीं रहता।

उम की की कला कुलपता प्रकाश है। वह कहीं भी लक्ष्य, और सीम्ह्य का चिन्तन करने की अपनी प्रवृत्ति नहीं दिखाती। समाज की कुलपताओं में ही उसकी आसक्ति है। कुलपताई की लक्ष्य, की सम-साधक है। यही कारण है, कि उसकी की कला का क्षेत्र संकीर्ण हो गया है। यद्यपि वेम चन्द और प्रकाश ने भी अपनी कला के महार के लिए समाज की भिन्नताओं की ही अपना साधन बनाया है, पर उनकी 'कला' में ही 'विचलन' और 'मंचल' की भावना है, उसके कारण उनकी कला का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया है। किन्तु 'उम' की की कला इसके विपरीत है। 'विचलन' और मंचल की भावना का यहाँ अभाव होने के कारण वह एक सुगीन बन गई है। उसका क्षेत्र भी किसी विशेष सम्य का ही है। 'उम' की की रचनाओं

का जो आज आदर नहीं हो रहा है, उसका कारण उनकी कला की सम साम-
यिकता है ।

उम्रजी की कला घटना प्रधान है । वह घटनाओं की ओर जितना ध्यान देती है, उतना चरित्रों के विकास की ओर ध्यान नहीं देती । वह अपने भीतर पात्रों के चरित्रों का विकास घटनाओं, और पात्रों के क्रिया-कलापों के ही द्वारा करती है । वो तो चरित्र चित्रण की ओर उसकी सजगता नहीं है, पर वहाँ कहीं उसने इस ओर ध्यान दिया है, वहाँ चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिक और मार्मिक शक्ति का उसमें अभिप्राय है । उम्रजी की कला बड़ी प्रगतिशील है । वह अपने विषय का चित्रण बड़ी दृढ़ता और सजगता के साथ करती है । उसमें ओजस्विता और प्राण-प्रतिष्ठा का अपूर्व गुण है । सामाजिक विवृतियों के चित्रण में उसने जो ओजस्विता और साहसिकता प्रदर्शित की है, वह हिन्दी के किसी भी आधुनिक कहानी-लेखक में दृष्टि गोचर नहीं होती । तेज और ओज की दृष्टि से, निस्संदेह उम्रजी की कला प्रशंसनीय है । उम्र जी की कहानी कला में नाटक के तत्त्व भी पाये जाते हैं । मार्मिक कथनोप-कथनों के द्वारा वह अपने को प्रभाव पूर्ण बनाना भली भाँति जानती है । उसके कथनोपकथन नाटकीय दृष्ट के होते हैं, जो मर्म स्थल को बेचढ़क स्पर्श करते हैं ।

मनोवैज्ञानिक कथा

मनोवैज्ञानिक कथा में हिन्दी कहानी में मन के भीतर प्रवेश किया है। इस कथा के जटिलतम तिन कहानियों की रचना हुई है, उनमें मन के द्वन्द्वों का विश्लेषण है। इस कथा की कहानियों में कहानी कला में अधिक सूक्ष्म स्वरूप भी पाया गया है। सूक्ष्म स्वरूप धारण करने के कारण इस कथा की कहानी कला 'छाया' और 'शिवम्' के अधिक निकट जान पड़ती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन के माझों का विश्लेषण करना ही इस कथा की कहानियों का ध्येय है। विश्लेषण के द्वारा ही इस कथा की कहानियों में चरित्र, और कालांतर का विकास हुआ है। श्री जैनेन्द्र कुमार इस कथा के सम्पादक हैं। श्री धनकलीप्रसाद आनन्देयी, श्री धनकलीचरण वर्मा, और श्री हलाचन्द जोशी इत्यादि ने भी इस कथा की कहानियों के विस्तार में योग प्रदान किया है।

मानव अपने आप में पूर्ण होता है। वह एक होते हुए भी अनेक होता है। वह स्थिर होते हुए भी समष्टि होता है। उसमें विकास की संपूर्ण शक्ति सम्निहित होती भी जैनेन्द्रकुमार हैं। वह अपने ही विश्व के संपूर्ण गुणों, दोषों, जंगल, और जंगल मयी मानवजातों का केन्द्र होता है। विश्व का संपूर्ण विज्ञान, विश्व की संपूर्ण राजनीति, और विश्व का संपूर्ण साहित्य उसी की देन है। उसका हृदय और उसका मन अनन्त स्रोत की भाँति हैं। उसके मन के भीतर कितनी सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं, कितनी शक्तियाँ उठती हैं, और कितनी पुच्छाएँ बाधत होती हैं— वह कोई नहीं कह सकता। वह स्वयं भी अपनी शक्तियों, पुच्छाओं, और कामनाओं का इतिहास नहीं जानता। वह उसे जानने में ही अपना जीवन गुला देता है। पर फिर भी नहीं जान पाता। श्री जैनेन्द्रजी की कला मानव के मन की इन्हीं शक्तियों, और पुच्छाओं का इस जीवन में निरंतर व्यापार रहती है, और इसीलिए वह व्यक्ति की अधिक महान भी होती है। इस रूप में हम यह समझे हैं, कि वह सत्य अन्वे-षिणी है। भारतीय जीवन और दर्शन, जो हमारे समाज का शुभ है, उसे जानने रख कर जब हम जैनेन्द्रजी की कला की समीक्षा करते हैं, तब हम उनकी कला को इसी रूप में पाते हैं। जैनेन्द्रजी की कला का यह स्वरूप अधिक स्यासी है। इससे राजनीतिकवादों की अपेक्षा चिरंतन सत्य के अनुसन्धान के लिए व्याकुलता है। वह एक उस वायु के भीकें भी भाँति नहीं है, जो आता है, और जोड़ी देर तक

है। पर बाबेलेबी की कला अपने यन्त्रोपकरण में 'विशुद्ध' की भी कल्पना करती है। उनकी कला अपने व्यक्ति को—अपने काम की रंग में ही नहीं खोद देना चाहती। अपने उसे बहू से बहर निष्कलने की व्यवस्था भी है। यही यही बाबेलेबी की कला की पूर्ण धौलिकवादिनी बन गई है। यही यही उनकी कला में नीतिकवाद अपनी वास्तव्य पर है, यही उनकी भी कला में 'विशुद्ध' का सामान्य उपनिष्ठा हो गया है।

बाबेलेबी की कला मानव-हृदय की वास्तव्यता का विशुद्ध करने में अधिक विपुल है। उनकी कला सीधे की उपनिष्ठा है। पर उसका सीधे का सीधे नहीं है, जिसे हम समझ और 'सुझ' की रंग से अभिविष्ट करते हैं। उनकी कला का सीधे वास्तव्यता, और समझता से ही संबंधित है। उसका समझ समझ के बहुत कम, और सीधे के बहुत अधिक है। सांकेतिक सीधे का अधिक सीधे होने ही के कारण उनकी कला का रंग संबंधी हो गया है। यही उनकी कला का रंग संबंधी हो गया है, किन्तु अपने सुझावता, समझ और उपनिष्ठा है। अपने उनकी सुझ के कारण बाबेलेबी की बढ़ाती-कला हिन्दी-वादिनी में गया है।

बाबेलेबी की बढ़ाती कला सांकेतिक वास्तव्यता से संबंधित है। उसका अपना एक मार्ग है—एक दृष्टिकोण है। वह कला की वास्तव में देखती है। उनकी दृष्टि में सीधे के लिए समझ-हृदय में एक बहुत व्यास है। अपने मानव हृदय की उस व्यास का विशुद्ध करने में ही अपनी समझों का रंग लगाती है। मानव-हृदय की व्यास का विशुद्ध करने में यही यही वह नम्र भी हो गई है। विशुद्ध में वह पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक है। उनकी मनोवैज्ञानिकता में बलि की समझ, और सुझावता है। रंग और सीधे के लेकर मानव-हृदय में ही रंग उपनिष्ठा होती है, उनके विशुद्ध पर उनकी मनोवैज्ञानिकता अपना अधिकार रखती है।

बाबेलेबी की बढ़ाती कला अपनी सुझावता एक विशेष अवस्था, या एक विशेष बहना, या एक विशेष समझ-व्यक्ति के आधार पर विभक्त करती है। उसका व्यास बहना के विचार की ओर कम, किन्तु बहना के विकास की ओर ही अधिक रहता है। वह व्यक्ति की किसी एक विशेष बहना, स्थिति या प्रवृत्ति की ही अपनी आधार करने पर उसका संबंधी व्यक्ति अपने उपनिष्ठा बन देती है। उसे व्यक्ति के द्वारा समझ का विशुद्ध करने में समझ समझ प्राप्त हुई है। वह व्यक्ति के बहना के बिना हुए संबंधों की यही बढ़ाती के काम कोटती है। बिना हुए संबंधों के द्वारा वह एक ऐसा बहना उपनिष्ठा करती है, जो अधिक उपनिष्ठा, और समझ होता है। बहना उपनिष्ठा करने के उसके दो अपने समझ है—एक पानी के कर्म बहना, और दूसरा समझ कर्मोपकरण। पानी के कर्मोपकरण, और पानी बहना के द्वारा ही उनके बहना की उपनिष्ठा करने में उनकी कला में समझ-सुझावता प्रवृत्ति की है।

जैसे यही रहता है, कि व्यक्ति के भीतर किसी दूर, कुल्लुताली का वह व्यक्ति से व्यक्ति सम्बन्धता के साथ विचार कर ली।

दमोली की कला केवल अपनी और देखती है। उसका कार्य, उसका स्वभाव दूसरी के लिए कुछ कर देना, या कुछ कर—इस और वह मान भी नहीं देती। वह केवल कार्य करना—कुछ करना जानती है। क्या करना है—इस और मान देना उसका काम नहीं है। क्या करनेका है, क्या नहींका है, क्या कर दे, क्या करना है, और क्या मान है, क्या करना है—इसकी जानकारी करना उसका काम नहीं। उसकी दृष्टि में ब्रह्मजी के सम्बन्धित कोई भी विचार, जो दलील है, वह करनेका ही स्वभाव है, और कोई भी करनेका विचार करनेका ही स्वभाव कर करना है। ब्रह्मजी इस सम्बन्धित दृष्टि के कारण ब्रह्मजी की कला नहीं नहीं व्यक्ति सम्बन्ध ही नहीं है। ब्रह्मजी उसकी कार्यकर्ता इतनी यह नहीं है, कि वह व्यक्ति कलावैज्ञानिक बन गयी है। ब्रह्मजी इस कलावैज्ञानिकता में करनेका और करने-विचार का भी स्वभाव कर लिया है। ब्रह्मजी की कला करनेका ही करनेका ही नहीं मानती। वह इतनी दलील है, कि जो उस पर करनेका का दोष लगाता है, वह स्वयं उसे करनेका ही दलील करने का दावा करता है। ब्रह्मजी की कला का इस दलील की कोई स्वीकार करे या न करे, पर उसे केवल इतने से ही समझ है, कि वह इस प्रकार का दावा सम्बन्धित करती है।

मनुष्य के भीतर उसकी अपनी एक विशेष दृष्टि होती है। मनुष्य अपनी उस दृष्टि का अनुभव, अपनी बुद्धि के द्वारा करता है, और अपनी मान के भी करने द्वारा करता है। वह अपनी यह उसका अनुभव बुद्धि के द्वारा करता है, जो वह करनेका स्वभाव है, और उसका अनुभव विचार की और ही जाता है। विचार की दृष्टि उसके मन में 'ब्रह्म' की भावना करती है। किन्तु इसके विपरीत वह वह मान के द्वारा उस दृष्टि का अनुभव करता है, वह वह अनु-मतिमान, और अनुभव बन जाता है। देखी दलील में उसका अनुभव कार्य, मान, ब्रह्मजी और अनुभवों की और होता है। अनुभव होने के कारण इसके द्वारा में अनुभव दृष्टि की भावना होती है। उसका मन 'ब्रह्म' के दूर—कारण के कारण की भावना में होता है। जो करनेकी की कला का इस भावना में स्वभाव की परिचय नहीं है। उसकी मान के मन के उस 'ब्रह्म' की देना है, किन्तु अनुभव मान की बुद्धि और उर्ध्व से होता है। जो वैज्ञानिकों ने भी मान के उर्ध्व 'ब्रह्म' का विचार किया है। पर उनके और जो करनेकी के दृष्टिकोण में व्यक्ति सम्बन्ध है। जो वैज्ञानिकों की कला मान के मन में 'ब्रह्म' की कला की स्वीकार की करती है, किन्तु उसे स्वीकार बनाती है। जो करनेकी उनके 'ब्रह्म' की रक्षा करते हैं, और उसे विचार की और स्वीकार हैं। वैज्ञानिकों की कला में भारतीय दर्शन है, पर जो करनेकी की कला भारतीय दर्शन की स्वीकार नहीं करती। जो वैज्ञानिकों की कला भारतीय दर्शन की और की जाती है, पर जो करनेकी की केवल अनुभव ही

विषय है। श्री वैदम्भजी वधान्तवाद में किसी चिर स्तव को शोक करते हैं, किन्तु उन्हें व वधान्तवाद के साथ स्तव में ही परिचित रह जाते हैं। श्री वैदम्भजी के वधान्तवाद की पुनर्पुष्टि सामाजिकता है। किन्तु उन्हें वही भी कला औरतकला की दृष्टि से ही वधान्तवाद को देखती है। श्री उन्हें वही को कला पूर्ण रूप से भीतिकवदितो है। वह मान्य-दृष्टय के चिर स्तव को शोक से व्याकुल न होकर उसके समानो के विषय में ही अपनी वधान्तवाद समझती है।

श्री उन्हें वही की वधान्तियों की प्रकृति को है - सामाजिक और वधान्तवाद मुक्त। कला की दृष्टि में उनकी सामाजिक वधान्तियों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। उनकी सम्युक्त सामाजिक वधान्तियों की विचार-बला से प्रभावित है। उन पर कभी कलाकारों की श्रुति नहीं है। एक प्रकृति से वे समानांतर हैं। उनकी दूसरी प्रकृति की वधान्तियों में, जिनमें सामाजिक जीवन के समस्त और सामाजिक विषय हैं, कला का सम्बन्ध विचार हुआ है। एक वधान्तियों में उनकी कला धार्मिक वधान्तियों की वृत्ति से न प्रकृति पर सम्बन्धित नहीं बन गई है। वह सामाजिकता के वृत्ति से निकल कर मान्य-दृष्टय में विद्यमान करती है। मान्य-दृष्टय के प्रेम, और वधान्त को मान्य-वधान्तियों की विद्यमान ही एक वधान्तियों में उनकी कला का उद्देश्य है। प्रेम, इतिहास, श्रुति, और वधान्तियों इत्यादि वधान्तियों में उनकी कला के द्वारा प्रेम और वधान्त के सम्बन्धों का प्रदर्शन-प्रदर्शन विवेचनात्मक हुआ है। उन्हें वही कला पूर्ण रूप से मनीषात्मिक है। किन्तु उनकी मनीषात्मिकता का पूरा विचार उनकी वधान्तियों में हुआ है, जिनमें सामाजिक जीवन के समस्त विषय हैं। उनकी वधान्तियों में वधान्त की कला सामाजिक विवेचनात्मक भी है।

श्री उन्हें वही की कला वैदम्भजी की कला की मूर्ति प्रकृति को ही कथित महत्त्व देती है। पर वैदम्भ और वधान्त के सम्बन्ध में बहुत बड़ा सम्बन्ध है। वैदम्भजी का सम्बन्ध वधान्त रूप से सामाजिकता है। वह सामाजिकता-प्रकृति में ही वधान्तवाद की श्रुति करता है, और उसके भीतर किसी चिर स्तव को शोक करता है। वही कारण है, कि हम उसे सामाजिकता कहते हैं। किन्तु उन्हें वही का सम्बन्ध वधान्त रूप से भीतिक है। उनकी सामाजिकता ही उनकी विवेचना है। उन्हें वही को कला में सम्बन्धितता का श्रुति कथित है। वह सामाजिकता-प्रकृति में ही वधान्तों की श्रुति करती है। उन्हें वही को कला में वधान्तों की प्रकृति कहते हैं, इतिहास हम उसे वधान्त-प्रकृति कहते हैं। सामाजिक और वधान्तों का विचार बहुत समय से उनकी वधान्तियों में हुआ है। उनकी कला मनीषात्मिक प्रकृति से वधान्तों के विचार में ही अपनी वधान्त समझती है। वही वही मनीषात्मिकता से उसे इतना भीड़ हो जाता है, कि उसके कारण उसका स्तव को समस्त ही जाता है। सामाजिक, और वधान्तों का पूर्ण सम्बन्ध होने के कारण वही वही उन्हें वही कला सामाजिकता-प्रकृति के लिए सामाजिक श्रुति बन गई है। उनके 'वधान्त' सम्बन्ध में वह इतिहास-प्रकृति पर दृष्टिपूर्वक होती है।

अज्ञेयजी की कला जहाँ मनोवैज्ञानिक है, वहाँ उसमें नाट्यात्मकता भी है। नाटकीय ढंग से प्रभाव उत्पन्न करने में वह अधिक कुशल है। उसमें जो प्रभावोत्पादकता है, उसका कारण उसकी नाटकीय संयोजना ही है। कहीं कहीं यह नाटकीय संयोजना कुशलता की सीमा को पार कर गई है। नाटकीय संयोजना के साथ ही साथ उसमें मार्मिकता भी है। वह छिप कर शब्द-शब्द में झनझनाहट उत्पन्न करने का प्रयत्न करती है। मर्म स्थलों को स्पर्श करने में, यही कागज है, कि वह जड़ी तीव्र है।

प्रगतिवादी कथा

प्रगतिवादी कथा की कहानियों का आधार भौतिक अमान है। इस कथा की कहानियों में किसानों, मजदूरों, और शोषितों के दयनीय जीवन का चित्रण हुआ है। चित्रण में जहाँ सम्झौते पर प्रकाश डाला गया है, वहाँ उनके प्रति विद्रोह का भाव भी है, जिनके कारण गरीबों, किसानों, और मजदूरों के जीवन में समझौते की सृष्टि होती है। इन्हें और संघर्ष ही इस कथा की कहानियों का उद्देश्य है। यशपाल इस कथा के उदाहरण हैं। श्री अमृतलाल नायर, पद्मानाभ, और श्री अमृतनाथ इत्यादि में भी इस कथा की कहानियों के प्रचार में योग दिया है।

यशपाल की कलात्मकवादिनी है। वह समाज के संघर्ष में ही समाज का दर्शन करती है। समाज में जो भौतिकी है, उसकी दृष्टि में वे सब अभिजात हैं। समाज में यशपाल समाज की दोनता, बेकली, और रागद्वेष है, उसकी दृष्टि में इन सभी कारण समाज का भेद-विभाजन है। कला: वह उस भेद-विभाजन को धरत करके में अधिक समझ रहती है। भेद-विभाजन के सर्वनाश की ही वह अपना आधार मानती है। वह अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गरीबों और मजदूरों के बीच से पाप चुनती है। इसके साथ ही साथ वह देश भी पाप चुनती है, जो उस भेद-विभाजन के होते हैं। उसकी दृष्टि में सभी के चरित्र को सामने रख कर दलितों और शोषितों के हृदय में विद्रोह उत्पन्न करना ही यशपाल की कला का मुख्य कार्य है। शोषितों के हृदय के भीतर उच्च वर्ग के विद्रोह मिलने में अधिक मनोविकास वह उठा सकती है, उठाती है। शोषितों के हृदय में मनोविकास उत्पन्न करने में वह समाज, और राष्ट्र के कल्याण को और रचनात्मक भी ध्यान नहीं देती। उसका संपूर्ण ध्यान केवल व्यक्ति की ओर ही केन्द्रित रहता है। यद्यपि यह सच है, कि वह व्यक्ति में ही समाधि को देखती है, किन्तु उसके द्वारा जो कार्य होता है, उससे समाधि का नहीं, व्यक्ति का ही अधिक कल्याण होता है।

यशपाल की कहानी कला और भौतिकवादिनी है। 'रोटी' और 'पत्र' ही उसका स्वर है। उसी में वह 'शिक्षण' और 'वीर्य' का भी दर्शन करती है। 'रोटी' और 'पत्र' के लिए अपने पात्रों के मन में वह जो विकास उत्पन्न करती है, उन विकासों की ही वह 'वीर्य' समझती है। मनोविकासों को दबाकर मनुष्य को देखता बनाना उसका काम नहीं; उसका काम है देखता के मन में मनोविकास उत्पन्न करके उसे

मनुष्य के धरातल पर लाना। चरित्र, नैतिकबल, और धार्मिक आदर्शों को वह देव समझती है। वह अपना सम्पूर्ण व्यापार अपने पात्रों के भौतिक अभावों को आवार मान कर गठित करती है। उसे चिन्ता नहीं कि कहानी कला की दृष्टि से उसके भीतर संकीर्णता उत्पन्न हो गई है। उसे केवल इस बात की चिन्ता है, कि वह अपने पात्रों को मार्क्सवाद के साथे में सकलता पूर्वक ढाल रही है, या नहीं! यशपाल की कला अपने भीतर मार्क्सवाद की सृष्टि करने में अधिक सज्ज है। उसकी इस सज्जता की प्रशंसा कोई भी समोच्चक खुले शब्दों में कर सकता है।

यशपाल की कला राजनीतिकवादों के चक्र में उलझी हुई है। यही कारण है, कि उसमें सरसता, और व्यञ्जकता का अभाव है। चरित्रों के चित्रण में भी उसमें उस मनोवैज्ञानिकता का विकास नहीं पाया जाता, जिसका दर्शन हम लैनेन्स्की की कला में कर चुके हैं। अशेष की कला भी यद्यपि भौतिक वादिनी ही है, पर अर्जेंट की कला ने मनोवैज्ञानिक विरलेक्षण में बहुत दूर का रास्ता पार किया है, और वही उसकी विशेषता भी है। यशपाल की कला में उस विशेषता का भी अभाव है। यशपाल की कला का मनोवैज्ञानिक क्षेत्र बहुत ही सीमित है, अपने 'वाद' को पूर्ण रूप से विकसित करने के लिए उसने 'चरित्र' की अपेक्षा 'कथावस्तु' पर कुछ अधिक ध्यान दिया है। वह कथा वस्तु के द्वारा ही अपने चरित्र को विकसित करती हुई दृष्टि-गोचर होती है। यद्यपि वह व्यक्ति को प्रधानता देती है, पर चरित्र चित्रण में वह 'वाद' के जाल में इस प्रकार फँस जाती है, कि चरित्र की ओर विशेष ध्यान न देकर उसका ध्यान कथा वस्तु की ओर चला जाता है। यशपाल की कई कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें चरित्र का भी अच्छा विकास हुआ है।

साहित्य और उपन्यास

मनुष्य भाव मय प्राणी है। अनुभव करना, और सोचना उसका प्रकृत स्वभाव है। अनुभव, और विवेचन के साथ ही साथ संघट्ट करना भी उसकी प्रकृति का एक साहित्य कथा है। अंग है। संघट्ट करके रचा करना भी उसके स्वभाव की मुख्य बात है। जिस प्रकार मनुष्य खादि फल से चूरा और अचूरा वस्तुओं का संग्रह करता चला आ रहा है, उसी प्रकार वह अपनी अनुभूतियों और विचारों को भी, प्राणी के द्वारा व्यक्त करके उसका संग्रह करता चला आ रहा है। उसके उस अनुभूति और विचार-बोध में मिलने ही प्रकार की अनुभूतियों और विचार संघट्टित हैं। इन अनुभूतियों और विचारों के संग्रह में उसने मिलने ही सुगोष्ठी सीमाएँ बार की हैं। उसने मिलने ही उत्थाव पतन, और सुख दुःख की प्राचीनों की सीमा है। सुगोष्ठी की सीमाओं को बार करके तथा सुख दुःख की प्राचीनों को लाँच करके उसने अनुभूतियों और विचारों का जो बोध एकत्र किया है, और जिसकी वह सुगोष्ठी से रचा करता चला आ रहा है, उसके उसी बोध का नाम 'साहित्य' है।

मानव के साहित्य कपी संसार में उसकी विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों और विचार संघट्टित हैं। साहित्य के साधनों में साहित्य के संसार में संघट्टित मानव साहित्य के अंग की अनुभूतियों, और उसके विचारों का संघट्ट करके उन्हीं का बोध में विभक्त किया है—कविता, नाटक, निबन्ध, गद्य काव्य, उपन्यास और कहानी। यद्यपि इनके नाम पुष्क पुष्क हैं, और इनके स्वयं तथा शैलियों में भी विभिन्नता है, पर इन के सूत्रन का आधार एक ही है, और वह है मानव के हृदय की अनुभूति और उसकी कल्पना तथा उसका विचार। इस रूप में वह कहना सा सक्ता है, कि कविता, नाटक, गद्य काव्य, उपन्यास और कहानी इत्यादि साहित्य के अंग स्वयं और शैली में परस्पर पुष्क होते हुए भी अपने मूल में साम्य रखते हैं। स्वयं और शैलियों में विभिन्नता होते हुए भी, मानव-हृदय की अनुभूति उन्हें अपने सूत्र में एक ही गाँव से विरोध रहती है।

कथा और कहानी मानव की प्रकृति के मूल में निवास करते हैं। सृष्टि में मानव के जीवन का इतिहास वहीं से आरम्भ होता है, वहीं से कथा और कहानी उपन्यास कथा है। के इतिहास का खादि खोत भी कुछ सुताला हुआ इतिहास-गोचर होता है। 'इतिहास' के नाम पर आज मनुष्य के पास जो संघट्ट है, उसका

७

उपन्यास

विषय सूची

- १—साहित्य और उपन्यास २२४
 (क) साहित्य क्या है ? (ख) साहित्य के वर्ग, (ग) उपन्यास क्या है ? (ङ) उपन्यास का भेद ।
- २—उपन्यास के अंग २२७
 (क) कथावस्तु, (ख) पात्र, (ग) कथोपकथन, (ङ) देश और काल, (च) जीवन की व्याख्या ।
- ३—उपन्यासों के भेद २३७
 (क) उपन्यास साहित्य का वर्गीकरण, (ख) लिखित उपन्यास, (ग) साहित्यिक उपन्यास, (ङ) वैज्ञानिक उपन्यास, (च) नरित उपन्यास, (छ) कट्टा-नरित साहित्य, (ज) ऐतिहासिक ।
- ४—कथा कहानी का माचीम लक्षण २४६
 (क) कथा कहानी और साहित्य अर्थ, (ख) कथेद में कथा का लक्षण, (ग) कथाकथ, महाकाव्य और पुराणों में कथा का लक्षण, (ङ) हिंदी-देश और उपन्यास कहानी में कथा का लक्षण, (च) उपन्यास का प्राथमिक रूप—खेदा, मैत्र इत्यादि, (ज) कार्यकारी इत्यादि में कथा का लक्षण, (झ) कथा-कथ काल में कथा का लक्षण, (ञ) हिन्दी में कथा का लक्षण—बीर कथा काल, भक्ति काल, नूतन काल ।
- ५—हिन्दी उपन्यास—सादि काल २५०
 (क) सादि काल के उपन्यास पर प्रकाश, (ख) सादि काल के उपन्यासकार, (ग) इन्दा काल की, (ङ) मारुत इतिहास, (च) श्री विद्यादास, (छ) राजकुमार भट्ट, (ज) देवकीनन्दन खत्री, (झ) मोहनदास नटवरी, (ञ) बिहारी काल गोस्वामी, (ट) १० लक्ष्मीनारायण उपन्यास, (ठ) वैदना कलाराम खत्री, (ड) रामानन्द खत्री, (ण) कथित उपन्यास, (ण) सादि काल के उपन्यास पर एक दृष्टि ।
- ६—हिन्दी उपन्यास—आधुनिक काल २५७
 (क) आधुनिक काल के उपन्यास की एक भल्ल, (ख) आधुनिक काल के उपन्यासकार (ङ) भलीय देवदास, (च) लक्ष्मी नारायण नारायण, (छ) विद्या-महाशय शर्मा श्रीधर, (ज) नरसी कलार इत्यादि, (झ) कलाराम खत्री, (ञ) कलाराम खत्री, (ट) कलार देवन शर्मा उग्र, (ठ) श्री कलाराम खत्री, (ड) श्री देवन कुमार, (ण) इत्यादि, (ण) श्री विद्यामहाशय शर्मा, (ङ) श्री कलारामखत्री श्री कलार, (ण) श्री कलारामखत्री शर्मा, (ण) श्री कलारामखत्री, (ञ) भलीय देवन नारायण ।

अन्धन जाने पर पता चलता है, कि क्या और कदाभी का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन के आदि काल से है। मनुष्य आदि काल से ही क्या और कदाभी के द्वारा अपने दुःख दुःख, एवं विचार, और उपन्यास पत्र को पढ़नाओं तथा विपत्तियों को भयक करता जाता था रहा है। यही यही मनुष्य के जीवन में परिवर्तन हुआ है, यही यही उसकी क्या और कदाभी से भी परिवर्तन होता जाता था रहा है। आज प्राचीन क्या और कदाभी से का जो सम्बन्ध हमारे समक्ष है, उसका वह हम समझ सकते हैं, जो यह देखते हैं, कि उसके विभिन्न स्वरूप हैं, और उसकी भिन्न-भिन्न शैलियाँ हैं। इसका एक मात्र कारण जानना के जीवन की यह भीषण है, जो हम-समय पर उसके जीवन में गड़ी है। मानव ने अपने जीवन में उड़ी हुई भीषण के परिणाम स्वरूप ही अपनी क्या-कदाभी के सख्तों और शैलियों में भी परिवर्तन किया है।

इसका आज का उपन्यास मानव-वृत्ति और उसके जीवन में उड़े हुए परिवर्तन के भीषणों का ही एक परिणाम है। एक दिन या, जब मनुष्य अपनी भी कदा-भी से उसका हुआ था। यही यही वह शक्ति और यही भी क्या-भी के पर-उत्तर पर जाना। इसके परभाव यह सामाजिक क्रांति मिलने लगा। यहाँ से जब जाने लगा, जब शक्तिशाली और आधुनिक कदाभी तथा क्या-भी के काल में उत्पन्न गया। आज उसकी कदाभी और क्या-भी से ही उपन्यासों का स्वरूप बनता कर लिया है। आज यह उपन्यास के किन जीवन पर पैदा हुआ है, यहाँ तक पहुँचने में उसे उपन्यास की कई शैलियाँ पार करनी पड़ी हैं। आज यह उपन्यास के क्षेत्र में दृश्य दृष्टि, और मनोवैज्ञानिक है, पर एक दिन का, जब वह सामाजिक बदलावों के ही विषय में अपना समय व्यतीत करता था। उपन्यास का जो इतिहास हमारे सामने है, उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं, कि मनुष्य ने सामाजिक बदलावों को ले करके ही उपन्यास की रचना प्रारंभ की है। इसके परभाव यही यही मानव-वृत्ति में विज्ञान का प्रसार होता गया है, यही यही उसके उपन्यास में भी मनोवैज्ञानिकता प्रवेश करती गई है। आज उपन्यास पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक और विज्ञानवादी की ओर में विद्यमान है। आज उपन्यास में बदलावों का कोई महत्व देव नहीं रह गया है। आज उसकी विविध के मनोवैज्ञानिक विज्ञानवादी पर ही अधिक - बल दिया जाता है, और यही उसकी सफलता की कड़ीयों को लकड़ते जाती है।

उपन्यास रचना का मुख्य लक्ष्य मनोरंजन है। आज उसे ही मनोरंजन उपन्यास-रचना का लक्ष्य न माना जाए, पर इसमें रचनाओं को प्रवेश नहीं किया जा सकता, कि उपन्यास का लक्ष्य अपने आदि काल में उपन्यास को रचना मनोरंजन की ही आधार मान कर प्रारंभ की गई थी। उपन्यास का आज भी इतिहास उपलब्ध है, उसने यही उपाह होता है, कि उपन्यास अपने प्रारंभ काल में 'मनोरंजन' की ही लक्ष्यमान कर अपने कर पर आधार हुआ था। प्राचीन उपन्यासों में मनोरंजन के ही अन्य लक्ष्य मिलते हैं। कुछ विन्दी ही नहीं, संसार की कविक भाषा के प्राचीन

उपन्यासों में मनोरंजन के तत्वों की ही प्रचुरता मिलती है। कदापि आज का युग विज्ञान के स्वर में बोल रहा है, और विज्ञान के स्वर में बोलने के कारण आज का साहित्य भी अधिक मनोरंजनात्मक और विश्लेषणात्मक हो गया है, जिसका प्रभाव उपन्यास के जीवन पर स्पष्ट रूप से पड़ा है, पर यदि उपन्यास के जीवन में घुस कर अध्यलोचन किया जाए तो आज भी मनोरंजन के तत्व उसकी मूल में बसे हुए दिखाई देते हैं। यह तब है, कि आज के उपन्यास का ध्येय केवल मनोरंजन ही नहीं है, पर यह भी तब है, कि आज वहाँ वह जीवन की व्याख्या में निरत है, वहाँ उसमें मनोरंजन के तत्व भी मुख्य रूप में पाए जाते हैं। उपन्यास की लोकप्रियता आज भी मनोरंजन के तत्वों पर ही आधारित है।

आज के उपन्यास का ध्येय प्राचीन काल के उपन्यासों के ध्येय से बदला हुआ दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन काल में वहाँ उपन्यासों का ध्येय मनोरंजन मात्र था, वहाँ आधुनिक काल में उपन्यास मनोरंजन के साथ ही साथ जीवन के विश्लेषण की अपना मुख्य ध्येय मानता है। आज उसकी समझता, मनोरंजन के तत्वों पर नहीं, विश्लेषण के तत्वों पर आधारित है। यद्यपि वह मनोरंजन के तत्वों की उपेक्षा नहीं करता, पर आज उसका पूरा-पूरा ध्यान जीवन की दमियनों की खोजने की ही ओर रहता है। आज वह कथानक और घटनाओं के विस्तार की ओर भी अधिक ध्यान नहीं देता, आज उसका ध्यान मुख्य रूप से चरित्र के विश्लेषण की ओर रहता है, दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं, कि आज के उपन्यास का ध्येय उस मानव जीवन की व्याख्या करना है, जो विभिन्न घटनाओं, भावनाओं, स्थितियों, और आवश्यकताओं की समष्टि होता है।

उपन्यास के अवयव

उपन्यास जीवन की एक प्रतिकृति है। जीवन ही उपन्यास के र्खाने में दल कर हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। जिस प्रकार जीवन के विभिन्न अवयव या तत्त्व होते हैं, उसी प्रकार उपन्यास का संगठन भी कई अवयव या तत्त्वों के आधार पर किया जाता है। उपन्यास के अवयवों को हम निम्नांकित नामों से संबोधित कर सकते हैं—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, देश काल, और जीवन व्याख्या। उपन्यास अपने इसी अवयवों के मिल कर सम्पूर्ण होता है। उपन्यास के यह तत्त्व कितनी ही हद तक, और वास्तविकता के साथ आपस में मिलते हैं, उपन्यास अपने उठने की अधिक वास्तविक स्वरूप में सुसज्जित होता है। अतः उपन्यास की मार्मिकता को समझने के लिए उसके अवयवों का ज्ञान-प्राप्त करना अधिक आवश्यक है।

सृष्टि में जो कुछ है, मानव-जीवन का ही छेज है। मानव-जीवन का ही खेल विभिन्न रूपों में सृष्टि के कोने-कोने में फैला हुआ है। उपन्यास भी मानव-जीवन कथावस्तु का ही एक प्रतिबिम्ब है। उपन्यासकार अपनी रचना प्रारम्भ करने के पूर्व उस मानव जीवन की ही और देखता है, जो विभिन्न घटनाओं, और कार्य-कलापों का केन्द्र है। जीवन देखने में छोटा-का, और सीमा-बद्ध जान पड़ता है, पर वस्तुतः देखा जाय, तो यह सीमा रहित है। उसमें कितनी ही घटनाएँ घटती हैं। उसका कार्य-व्यापार कितना विस्तृत और रहस्यमय है। उसमें कितनी विचित्रताएँ समाविष्ट हैं। उपन्यासकार मानव जीवन के इसी किया कलापों, इसी घटनाओं, और इसी विचित्रताओं को अपने उपन्यास के लिए प्रथम सामग्री रूप में ग्रहण करता है। इसी प्रथम सामग्री को, जिसमें मानव जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापार, विभिन्न घटनाएँ, और विभिन्न विचित्रताएँ समाविष्ट होती हैं, 'कथावस्तु' कहते हैं। जीवन की इन घटनाओं और कार्य-व्यापारों में सम्मिल नहीं होता। इनमें परस्पर प्रतिफलताएँ और अनुफलताएँ भी होती हैं। पर उपन्यासकार अपने उपन्यास में इनकी संयोजना एक निश्चित योजना के अनुसार करता है। यद्यपि यह जीवन में असंभव और विश्व-कालित होती है, पर उपन्यासकार उन्हें अपने उपन्यास में एक क्रम, और शृंखला से संयोजित है। जीवन की विभिन्न घटनाओं, और असम कार्य-कलापों को शृंखला बद्ध संयोजने में ही उपन्यासकार की सफलता अर्पित होती है। जो उपन्यासकार अपनी रचना में जीवन की प्रथम रिक्त-

विषयी, और उसके कार्य-प्रणाली का विषय विद्ययी ही अधिक प्रकटता, और सम-
बद्धता के साथ करता है, वह अपने क्षेत्र में अपना ही अधिक लक्ष्य, और मनुष्य
पुरुष समझ जाता है।

सौमन्य विभिन्न घटनाओं, स्थितियों, और कार्य-प्रणाली का केन्द्र होता है। सौमन्य
की घटनाओं, स्थितियों और कार्य-प्रणाली में अत्यन्त अधिक विविधताएँ और
असमताएँ होती हैं। जब उपन्यासकार से इनकी संश्लेषण में अत्यन्त कुशलता
के साथ काम लेना चाहिए। क्योंकि उनकी संश्लेषण के अधीन पर ही उनके
अन्वेषणात्मक सौमन्य की लक्ष्यता निर्धारित होती है। उपन्यासकार को सौमन्य की घट-
नाओं, स्थितियों, और कार्य-प्रणाली की संश्लेषण में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना
अत्यन्त आवश्यक है—(१) विभिन्न घटनाओं, कार्य-प्रणाली, और असाधारण स्थितियों में
संयोजन हो। (२) घटनाओं, कार्य-प्रणाली, और स्थितियों का विषय सामाजिकता
की परिधि के अन्दर किया जाए। (३) बातों का विषय करते हुए उनकी स्थिति,
और देश काज का भी ध्यान रखना चाहिए। (४) जो और मुख्य बातों के विषय में
मुख्य रूप से उनके प्रकृत संश्लेषणों की अपनी दृष्टि में लक्ष्यता चाहिए। (५) घटनाओं
की संयोजन पर ध्यान दिया जाए। जो उपन्यासकार अपने कथाकाण्ड की संयोजनता
उन बातों की आधार मान कर करता है, इसमें संदेह नहीं, कि उनकी अन्वेषणात्मक
बला बलीहीनता पर खरी उतरती है। सौमन्य है, कि किसी-किसी आधारों की दृष्टि में
कथा काण्ड की संयोजनता में और दो-दो बातों का होना आवश्यक समझा जाए। वह
कथा काण्ड की संयोजनता और उसके कुशलता के लिए ऊपर जिन बातों की ओर निर्देश
किया गया है, उनकी उपयोजिता की ओर असाधारण नहीं कर सकता। कथा काण्ड
की संयोजनता के लिए, ऊपर जिन बातों की चर्चा की गई है, उनकी उपयोजिता की
विषय के बड़े-बड़े साहित्यकारों ने कुछ करतब से स्वीकार किया है।

उपन्यासकार अपने उपन्यास में सौमन्य की जिन स्थितियों, घटनाओं और कार्य-
प्रणाली की संयोजनता कथा काण्ड के रूप में करता है, उसे स्थितियों, घटनाओं, और
बातें कार्य-प्रणाली का सुन्दर और होता है। इस रूप में उसके
की लक्ष्यता में ही वह बड़ा का करता है, कि मनुष्य का व्यक्ति। उपन्यासकार अपने
उपन्यास में ही लक्ष्यता करता है, उनका एक साथ आधार मनुष्य ही होता है। मनुष्य
के ही सौमन्य की घटनाएँ, स्थितियाँ, और उसके कार्य-प्रणाली उपन्यासकार की लक्ष्यता
का, जिसे इन उपन्यास कहते हैं, रूप प्राप्त करते हैं। उपन्यास में जो मनुष्य का
व्यक्तिता का के साथ का अन्विष्ट स्थिति बनाता है। आधुनिक मान्यता में इसी की परिधि
की ही संज्ञा दी गई है। आधुनिक मान्यता सौमन्य का 'परिधि' के ही कार्य में
अन्विष्ट करते हैं। आधुनिक मान्यता के अन्तर्गत पर 'परिधि' शब्द इतना प्रचलित हो
गया है, कि 'मान्य' शब्द उसके प्रचलन के अन्तर्गत में ही का गया है।

उपन्यास में मुख्य रूप से परिधि की ही प्रयोजन होती है। उपन्यास की
सुन्दर दृष्टि परिधि के ही ऊपर निर्धारित करती है। उपन्यास में परिधि के लिए अत्यन्त

उक्त चरित्र के अन्तर्गत वटवृक्षों, शिबिरियों, और कार्य-व्यापारों का ही विषय होता है। अतः यह कहा जा सकता है, कि उपन्यासकार को रचना की ओरान्त चरित्र-विषय के ही ऊपर आधारीत रहनी है। जो उपन्यासकार अपने चरित्र-विषय में किसी ही व्यक्तिगत कथन और कहानी रहता है, उसकी रचना उसकी ही व्यक्तिगत कथन और प्रभाव पूर्ण होती है, अतः, कि उपन्यास चरित्र का ही एक अनुकूलि होता है, और वास्तविक अनुकूलि एक कथन एक नहीं पर कहानी, मन एक, कि उसके अन्तर्गत का दाखिले के सम्बन्ध तथा कार्य-व्यवस्था के अन्तर्गत दिया गया। अतः उपन्यासकार को चाहिए, कि वह चरित्र-विषय में मन-मन पर बहुत और लक्ष्य रहे।

वर्तमान और प्रभाव पूर्ण चरित्र उपन्यास को व्यक्तिगत और प्रभाव पूर्ण कहते हैं। अतः उपन्यासकार को चाहिए, कि वह अपने चरित्र में कभीकता और प्रभाव पूर्णता प्राप्त की, अपने जीवन-काल के उन्ने देखे चरित्रों का चुनाव करना, चाहिए, अपने कभीकता, लक्ष्य, और प्रभाव पूर्णता की। उपन्यासकार का काम केवल वर्तमान और प्रभाव पूर्ण चरित्र चुनने से ही काम नहीं चलता, उसकी कुशलता को यह बात भी है, कि अपने चरित्र को कभीकता, और प्रभाव पूर्णता की मन-मन पर लक्ष्य करें। इसे अपने चरित्र को इन प्रकार अनुकूल करना चाहिए, कि यदि वे होकर अन्य एक उसमें किसी प्रकार का सम्बन्ध न उपलब्ध हो। उपन्यासकार को अपने चरित्र के कभीकता की सामर्थ्यता पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। उसे अपने चरित्र के रूप, लक्ष्य, लक्ष्य, और लक्ष्य तथा विद्यमान हस्त-विषय के विषय में व्यक्तिगत कार्य-व्यवस्था से ध्यान देना चाहिए। उसे अपने चरित्र के मन की इन दशाओं का विषय इस प्रकार करना चाहिए, कि पठकों के मन में उनका अनुकूलन स्थापित हो सके। अतः उन्ने लक्ष्य पर देश अनुकूलन की, कि जैसे वे शिबिरियों और लक्ष्य उनके ही मन के अन्तर्गत लक्ष्य हो रही हैं।

उपन्यासकार का चरित्र विषय का कार्य व्यक्तिगत लक्ष्य होता है। उसे एक ऐसे व्यक्ति का चरित्र अपने उपलब्ध करना होता है, जिसका वह केवल अनुकूलन प्राप्त करता है। अतः उन्ने है, कि ऐसे व्यक्ति का चरित्र, जिसका उपन्यासकार केवल अनुकूलन प्राप्त करता है, कि वह लक्ष्य-कालता के साथ विषय पर लक्ष्य है। चरित्र विषय के लिए लक्ष्य रूप से ही बातों पर ध्यान देना चाहिए। एक ही बात की देश-लक्ष्य, लक्ष्य-लक्ष्य, लक्ष्य-लक्ष्य और लक्ष्य लक्ष्य, तथा लक्ष्य लक्ष्य का कार्य लक्ष्य, लक्ष्य विचार, तथा लक्ष्य विचार करने का लक्ष्य। उपन्यासकार को चरित्र विषय के लिए अपने लक्ष्य को एक-एक लक्ष्य पर लक्ष्य रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। उसे जहाँ तककी लक्ष्य दशाओं पर लक्ष्यता करना चाहिए, वहाँ तककी लक्ष्य-लक्ष्य का भी लक्ष्यता के साथ सम्बन्ध करना चाहिए। अपने चरित्र के लक्ष्य में उपन्यासकार को अनुकूलन प्राप्त करना है। तथा वह भी सम्बन्ध करता है,

उसकी साहित्यिक के लिए उसके पास केवल एक ही साधन होता है—उसकी अपनी कल्पना। उपन्यासकार के चरित्र चित्रण की तुलना कालिका उसकी कल्पना-प्रशाली पर ही निर्भर करती है। यद्यपि उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपनी कल्पना-प्रशाली को अधिक से अधिक सज्जन और स्वच्छ रूपा बनाए। स्वयं और स्वयं रूपा कल्पना के द्वारा उपन्यासकार को चरित्र के सर्व कलाओं, उसके जीवन सम्बन्धी चरित्राङ्गों, और उसके मन की गहराइयों को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए, कि उसके द्वारा पात्र के चरित्र पर सभी कीटि प्रकाश पड़ जाए। पात्र के चरित्र के विकास में उपन्यासकार को अपनी ओर से कुछ भी न करना चाहिए, बल्कि उसके कर्मों, और उसके मन की निर्यातों के द्वारा ही उसके अंतर्गत चरित्र पर प्रकाश डालना चाहिए।

यदि हम चित्र के बड़े बड़े उपन्यासकारों की कृतियों का संभव करते हैं, तो हमें चरित्र चित्रण की विविध शैलियाँ पाने हैं। उन सभी शैलियों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। एक वर्ग की हम निम्नोक्तप्रकार कह सकते हैं, और दूसरे की हम 'कार्ट' प्रकार वर्णन को संज्ञा दे सकते हैं। निम्नोक्तप्रकार वर्ग में उन शैलियों का समावेश है, जिनमें निम्नोक्त की प्रधानता होता है। इनके द्वारा उपन्यासकार अपने पात्र के जिज्ञा करता है, उसकी अति विविध और उसकी अन्तः-प्रशाली का निम्नोक्त करता हुआ चलता है। वह एक निम्नोक्त में सर्व की मान होता है, और अपनी निम्नोक्त भी अपने उपनिष्ठा करता है, दूसरे रूप में वह कहा जा सकता है, कि निम्नोक्त शैलियों के द्वारा उपन्यासकार को चरित्र अपने उप-निष्ठा करता है, उसमें उसकी भी अति होता है। दूसरे वर्ग की शैलियों के द्वारा अत्यन्त विरा हुआ चरित्र, जिसे 'कार्ट' प्रकार वर्णन करने करते हैं, अपने ही पात्र में रूपा होता है। इन वर्ग की शैलियों के द्वारा को चरित्र अपने उपनिष्ठा चित्र करता है उसमें उपन्यासकार रूपा रूप से चित्रण होता है। वह पात्र के चरित्र चित्रण में अपनी ओर से कुछ न कह कर उसके कर्मों और कर्मों के कारण ही की गहराइयों के अन्तर्गत प्रकाश रूपा अपने रक्त होता है। यद्यपि चरित्र-चित्रण की वह प्रशाली कुलम नहीं है, पर हमें यह नही, कि वह कथोक्ति है, और इनके द्वारा केवल की कल्पना, और इनके आशुर्ष की भी प्रशाली होती है।

चरित्र चित्रण की वह दूसरी प्रशाली ही आधुनिक उम प्रशाली नहीं जाती है। आज का मूल उपन्यासकार चरित्र को उपनिष्ठा करने में, आज एक दूसरी प्रशाली से ही काम होता है। वह चरित्र चित्रण में अपनी ओर से कुछ न कह कर पात्रों के कर्मों, और उसकी अन्तः निर्यातों के चित्रों को ही अपने उपनिष्ठा कर देता है। आज का उपन्यासकार चरित्र चित्रण के लिए मन के निम्नोक्त और इनकी को और अधिक अन्तर्गत दिखाई देता है। आज वह चरित्र चित्रण के लिए पात्र की आधुनिकता, अन्तर्गत, किश रूपा, और शैलि नैतिकों पर ध्यान नहीं देता।

चरित्र चित्रण में आज तककी दृष्टि एक मात्र उसके मन के दृष्टि पर केन्द्रित रहती है। वह पात्र के विचारों के दृष्टि को जानने प्रयत्न करता हुआ ही आज उसके चरित्र को हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है। एक बात को जानने रखते हुए हम यह कह सकते हैं, कि आज के उपन्यासकार की दृष्टि अधिक सूक्ष्म और आन्तरिकी है। आज वह अपनी सूक्ष्म और आन्तरिकी दृष्टि के द्वारा बहुत से ही पात्रों के मन के भीतर प्रवेश कर जाता है, और उसके विचारों दृष्टि को उसके भीतर से निकाल कर उसके चरित्र की मूर्ति को सामने प्रस्तुत करता है।

चरित्र चित्रण में कथोपकथन से अधिक महत्व प्राप्त होता है, वरन् कहा जा सकता है, कि चरित्र चित्रण के लिए कथोपकथन का आवश्यक महत्व होता है।

कथोपकथन कथोपकथन उसे कहते हैं, जो पात्र परस्पर आचरणकला के माध्यम से होते हैं। कथोपकथन को ही 'संवाद', और 'वाक्यांश' भी कहते हैं। 'कथोपकथन' और 'संवाद' एक बहुत बड़ी कला है। यहाँ यह लापरवाही है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने मन के विचारों, और भावों को एक दूसरे पर प्रकट करते हैं। मनुष्य की सारी बुद्धिबानी और उसका सारा वाचस्व उसके कथोपकथन और संवाद में ही छिपी रहती है। मनुष्य के हृदय से जो बात निकलती है, वह वा-वा पर उसके चरित्र का अंकन करती है, अतः उपन्यासकार के लिए वह अधिक आवश्यक है, कि वह अपने पात्रों की बात जोर पर सुन सके और अपने ध्यान को केन्द्रित रखे। उसे प्रत्येक विषय, और प्रत्येक अवसर पर अपने पात्रों की वास्तविक बातचीत पर अपना ध्यान निरन्तर रखना चाहिए। क्योंकि पात्रों की वास्तविक बातचीत पर ही तकलीफ का कीमती धूल का निर्धारण करती है।

पात्रों की वास्तविक बातचीत देख, बाल, और उर्वर के ही अनुसार होती चाहिए। जिस प्रसंग कम बात रहा हो, बातचीत उसी के भीतर होती चाहिए। बातचीत में आचरणकला पर पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए। बातचीत उसी ही होती चाहिए, जिसने आचरणकला हो। आचरणकला के अधिक बातचीत करने के लिए पात्रों को जो लोग अवसर देते हैं, वे 'कला' की सूक्ष्मता और सीढ़ी से हाथ जोड़ते हैं। बातचीत में 'आचरणकला' का कार्य एक दूसरे रूप में ही सम्पन्न हो चाहिए, अर्थात् बातचीत में उनकी अपनी ही प्रकृति करना चाहिए, जिसकी आचरणकला हो। ऐसा कदापि न करना चाहिए, कि कहीं जो किसी दूसरे रूपों की हो, और कुछ के निकल रहे हो दूसरे रूप। ऐसा करने से कथोपकथन की स्वाभाविकता और प्रत्यक्षता नष्ट हो जाती है। कथोपकथन में प्रसंग के साथ ही साथ विषय पर भी ध्यान रखना चाहिए। पात्रों के हृदय के निकली हुई प्रत्येक बात विषय पर प्रकट रहती हो, और उसके द्वारा देख और बाल का भी विश्व निर्मित होता हो। कथोपकथन में सीधे और सीधे का पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए। बातचीत करते समय पात्र की दृष्टि कहीं अपनी मर्त्यता के ही ऊपर रहनी चाहिए। यदि बातचीत में कभी कोच, डेप, उर्वर, और निष्ठा की विषय उत्पन्न हो जाय,

हो नहीं नी पावो को संघम की लीला के बाहर नहीं जाने देना चाहिए । ऐसे कसबों पर भी उक्त-वाक्यार्थ को अपने भावों को अपने विद्यमान में रखना चाहिए ।

कवीरकवयन में आदमी और राजा दोनों चाहिए । अर्थात् कवीरकवयन के लिए जिस भाषा और जिस कम्पों की प्रयोग किया जाय, उनमें आत्मशक्तिता न होनी चाहिए । आत्मशक्तिता तथा और कम्पों के द्वारा फिर हुए कवीरकवयन में स्वाभाविकता का समाप होना है । किन्तु दूसरा यह साधन नहीं, कि कवीरकवयन नीरस और शुष्क हो । कवीरकवयन को आत्मशक्तिता और कविता से बनाते हुए उनमें अत्यन्त सरलता का संसार करना चाहिए । कवीरकवयन में सरलता का संसार करने के लिए उनमें सरल और आकर्षक कम्पों का प्रयोग हो करना ही चाहिए, साथ ही साथ कवीरकवयन की लीला पर भी ध्यान देना चाहिए । कवीरकवयन की लीला दोहो लीली चाहिए, जिसके कवीरकवयन में आत्मशक्तिता कम्पों का प्रयोग करने के समर्थ हो । कवीरकवयन को आत्मशक्तिता करने के साथ ही साथ उसे प्रभावशाली और आत्मिक भी बनाना चाहिए । कवीरकवयन को प्रभावशाली और आत्मिक बनाने के लिए कम्पों को अत्यन्त शुद्ध को अपने विद्यमान में रखना चाहिए । कम्पों के शुद्ध से निम्नता हुआ अत्यन्त शुद्ध भावों में उठा हुआ हो । कम्पों के शुद्ध का अत्यन्त शुद्ध ईश्वर-लीला पर बहुत निकटता हो, और एक-एक कम्प का भावों का चित्र अत्यन्त बनना हो । अत्यन्त शुद्ध से आत्मशक्तिता हो, और अत्यन्त शुद्ध के लिए आत्म-शक्तिता की आवश्यकता हो ।

उपमात्म में किन कम्पों का प्रयोग आत्मिक कवयन होना है, और किनके आत्मिक चित्रण के हो उन उपमात्म की कविता की सरलता पूर्ण करने के निर्धार करने हैं, वे देश और काल देश और काल के सम्बन्धित होते हैं । सम्बन्धित ही नहीं होते । काल के देश और काल के पूर्ण करने के सम्बन्धित भी होते हैं । कम्पों के आत्मिक में अत्यन्त अत्यन्त पर भी परिवर्तन होता है, अतः अत्यन्त-अत्यन्त पर उनके जीवन में हो अत्यन्त-अत्यन्त निर्मित होता है, उनके मूल में देश और काल का ही समाप होता ही है । अतः उपमात्म की रचना में देश और काल का भी अत्यन्त महत्त्व होता है । देश और काल के मीटर के कम्पों का भावों का भावों है, किन्तु हम सामाजिकता और राष्ट्रीयता की संज्ञा देते हैं; अतः देश और काल के रूप में हम उपमात्म में उन कम्पों का चित्रण करते हैं, जो प्रत्यक्ष की संस्कृति, ऐतिहासिक, आचार विचार, अर्थव्यवस्था आदि आदि आदि के सम्बन्ध रखते हैं । हम कम्पों की कविता में रखते हुए हम देश-काल के चित्रण को ही कम्पों में निम्नता कर करते हैं—आत्मिक कम्प, और ऐतिहासिक कम्प आत्मिक कम्प में जीवन के निम्न-निम्न कम्पों को देश-उपमात्म की रचना की जाती है, अर्थात् एक कम्प में हम अपनी कथा समाप के निम्न-निम्न कम्पों से बनाते हैं । जैसे, दूरी की कविता, निम्नता, प्रत्यक्ष, अर्थव्यवस्था, कम्पों और ऐतिहासिक कम्पों । दूरी कम्पों में हम उपमात्म की भी सम्बन्धित हो जाता है, किन्तु

रचना भौतिक वैज्ञानियों के सामने पर की जाती है। दूसरे वर्ग का सम्बन्ध, जिसे भौतिक वा सांख्यिक वर्ग कहते हैं, कुछ कम से बहुत सम्बन्ध के उन वर्ग से होता है, जिसे हम कदाचित् भौतिक सम्बन्ध कहते हैं। इस वर्ग में हम जीवन के विद्यमान क्षेत्र में उपस्थित होते हैं, और उनका विषय विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत के साथ करते हैं। इस वर्ग के विषय में हम इस बात को ध्यान देने का प्रयास करते हैं, कि जीवन और कदाचित् कदाचित् है, तथा दोनों का सम्बन्ध कदा और विद्यमान सम्बन्ध है। जीवन और कदा के सामाजिक सम्बन्धों के विषय में हम विभिन्न शैलियों के साथ लेते हैं। कदा तो हम जीवन और कदा का सम्बन्ध-विषय जीवन के दृष्टिमान में अधिक विद्यमान हो सकते हैं, और कदा एक सम्बन्धों के रूप में जीवन के दृष्टिमान, तथा इन और विषय का सम्बन्ध में प्रकृति के सम्बन्धों से करते हैं, यद्यपि कदा तो हमारा विषय सामान्य होता है, और कदा सम्बन्ध के जीवन में पर लगे होकर हम अपनी रचना-शक्ति करते हैं।

देखिए कि हम दोनों ही विषयों में उत्पत्त्यकार की अधिकता करने की आवश्यकता है। यह अपनी कदा का क्षेत्र यदि फिर वर्ग से सामान्य करें, सामाजिक वर्ग से वा भौतिक वर्ग से, उससे सामाजिकता और जीवन की अनुसंधान होती चाहिए। उसके दृष्टिमानों, और वर्गों में सामान्य होता अधिक आवश्यक है। उसे अपने दृष्टिमानों और वर्गों को इस प्रकार उपस्थित करना चाहिए, कि उनसे सामान्य और सामान्य स्थापित हो लगे। दृष्टिमानों और वर्गों पर हमें अपने के साथ ही साथ उसे साक्षात्कार और विषय पर भी ध्यान रखना चाहिए। साक्षात्कार और विषय के विषय को स्पष्ट करने के लिए उसे छोटी छोटी रचनाओं, और बातों पर भी ध्यान देना होगा, यद्यपि यह, कि उत्पत्त्यकार की कदा की और की विषयों और साक्षात्कार का सम्बन्ध करना होगा। उसके सम्बन्ध को ही प्रकृतिवर्ग होती—साक्षात्कार और सामाजिक। अपनी बात प्रकृति से यह हम बातों का साथ साथ करेगा, जो वाच के जीवन से सम्बन्ध रखती है, और यह हम के सामने दिखाई देती है। सामाजिक प्रकृति के साथ यह वाच की उस प्रकृति के भीतर प्रवेश करेगा, जो सम्बन्ध है, और जिसमें विभिन्न भाषों के दृष्टिमान के भीतर प्रवेश करना होता है। यह प्रकृति के भीतर प्रवेश करना होता है, जो सम्बन्ध है, और जिसमें विभिन्न भाषों के दृष्टिमान प्रवेश करता है, जो सम्बन्ध है, और जिसमें विभिन्न भाषों के दृष्टिमान प्रवेश करता है।

है। उपन्यासकार की अपनी सृष्टि के लिए मानव की इसी प्रकृति में उन्मुख करने का मही चयन करना पड़ता है। जो उपन्यासकार विज्ञान की सर्वाधिक दूरगम दृष्टि होता है, वह सदा विज्ञानी दृष्टि किन्तु ही सर्वाधिक कल्पितिकी होती है, वह मानव प्रकृति के भीतर से उसकी ही सर्वाधिक प्रभाव पूर्ण, और ह्योत्तम सम्पत्ति चयन कर लेता है। सामग्री चयन करने में उपन्यासकार की रीतिरनुरीत्या से कम लेना चाहिये। उपन्यासकार की सृष्टि में विज्ञान की सर्वाधिक रीतिरनुरीत्या के अन्य होने, उसकी सृष्टि उसकी ही सर्वाधिक कल्पितिक और सामर्थ्य होती।

उपन्यास जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। उपन्यास-साहित्य का कम हम सम्मन करते हैं, तो उसे सारि से लेकर सादा तक जीवन के ही बात-प्रतिपाती का चित्रण जीवन की करते हैं। उपन्यास साहित्य का सम्मन करने पर हम उसमें स्वाकृष्ट विज्ञाने परिपक्व में जीवन के उच्च पाते हैं, उसके आधार पर यह हम पर बहो, कि उपन्यास की सृष्टि जीवन के ही बात-प्रतिपाती और प्रत्यापनी से होती है, तो कोई आनुक्ति की बात न होती। उपन्यास साहित्य में जीवन के सभी की प्रकृति को देख करके ही हम हम परिपक्व पर पहुँचते हैं, कि उपन्यास में जीवन की स्वाकृष्ट के लिए महान् पूर्ण स्थान होता है। उपन्यास—साहित्य में जीवन की स्वाकृष्ट करने किम कम में होती है—वही इसी प्रश्न पर प्रकाश डालना चाहता।

जीवन की स्वाकृष्ट से सम्बन्ध है, जीवन की साक्षीबन्ध, कर्मरि पर जीवन क्या है, उसका उद्देश्य क्या है, और वह किम प्रकार करने कथन तक पहुँच सकता है। उपन्यासकार यदि अपनी रचना में सदा कम से जीवन की लेकर इन प्रश्नों की विवेचना करने लगे, और इन प्रश्नों की विवेचना काका हुआ वैदिक सम्पत्ति और साक्षी पर प्रकाश डालने लगे, तो हमने समझ लगे, कि उसकी रचना वर्तमान साक्ष्य का प्रत्यय बन जाय। सदा वह जीवन की स्वाकृष्ट में वैदिक सम्पत्ति और साक्षी की सार से पूर्ण कम से उदासीन रहता है। इसके परिपक्व वह जीवन की स्वाकृष्ट के लिए जीवन के विभिन्न स्तरों से विभिन्न कथनों को चुनता है, और उन कथनों में जीवन से सम्बन्ध रखने वाली विभिन्न प्रत्यापनी, विभिन्न दृष्टान्तों, और विभिन्न कर्म-कलाओं की सार पर उनके द्वारा विभिन्न दृष्ट से जीवन की स्वाकृष्ट करता है। यह सच है, कि उपन्यासकार के इस प्रश्न से जीवन की पूर्ण कम से विवेचना नहीं हो जाती, पर उसके साथ ही साथ यह भी सच है, कि उसके इस प्रश्न के द्वारा जीवन की किसी न किसी दृष्टा पर प्रकाश डालना पड़ता है, दूसरे शब्दों में उसके इस प्रश्न के द्वारा जीवन की कोई न कोई सर्वाधिक प्रभाव चुनना पड़ता है। उपन्यासकार की केवल रचना ही उद्देश्य की है। उपन्यासकार दर्शन और साक्ष्यकार की सारि जीवन के सम्पूर्ण स्तरों की विवेचना से करने की नहीं सदा देता, वह वह उसके इस प्रश्न की ही सम्पूर्ण जीवन की प्रतिबिम्ब मान कर उसकी ही साक्षी-

की वस्तुओं को खोल-खोल कर सामने रखने में वह संयम और सन्तुलन का ध्यान रखता है। इस प्रकार वह सब को संयम और सन्तुलन की डोरी में फस कर अपने नियन्त्रण में रखता हुआ चलता है। उसके इस प्रयत्न से उसका वह 'सत्य' अपने आप आविर्भूत हो जाता है, जिसके लिए उसका प्रयत्न होता है।

उपन्यासों के मेद

ज्यों-ज्यों मानव जीवन उपलब्धि की ओर बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास की अभिवृद्धि भी होती जा रही है। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कह सकते हैं, कि ज्यों-ज्यों मानव जीवन मौलिकता के क्षेत्र की ओर अग्रसर हो रहा है। त्यों त्यों जीवन के प्रतिबिम्ब—साहित्य में कथा-कहानियों और उपन्यासों की वृद्धि भी जाती जा रही है। इसके दो कारण हो सकते हैं—(१) आज के मानव में विभिन्न प्रकार के मनोरंजन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। (२) मानव आधुनिक काल में अपने मनोरंजन को सरल से सरल स्तर के प्राप्त करना चाहता है, कहना न होना, कि कथा-कहानी और उपन्यास आधुनिक मानव की इन दोनों इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। साहित्य के और चितने अन्त्यान्त अंग है। उन सब की अनेक कथा कहानी और उपन्यास की ऐसी अधिक सरल और आकर्षक होती है। जीवन बिहनी अधिक सरलता, रोचकता, और मनोरंजन के साथ कथा-कहानी और उपन्यासों में अभिव्यक्त होता है, उतनी सरलता और रोचकता के साथ साहित्य के और किसी अंग में नहीं होता। यही कारण है, कि आज मानव प्रवृत्ति कथा कहानी और उपन्यासों की रचना की ओर अधिक है। विश्व के साहित्य में आज उपन्यासों की जो सबसे अधिकता दिखाई पड़ती है, उसके दृष्ट में मानव की यही प्रवृत्ति अभिव्यक्त है।

आज विश्व के साहित्य में उपन्यास के नाम पर जो अतुल समृद्धि पाई जाती है, उनका जब हम मन्थन करते हैं, तो यह देखते हैं, कि उपन्यासों की कई श्रेणियाँ उपन्यास साहित्य हैं, दूसरे शब्दों में उपन्यासों के कई भेद और विभेद हैं। का वर्गीकरण उपन्यास साहित्य के ठीक ठीक प्रकार को निर्दिष्ट करने के लिए हमें कुछ मुख्य-मुख्य आधारों की सामने रखना होगा। उन आधारों में कुछ के नाम इस प्रकार हो सकते हैं—तत्त्व, चरित्र, और वस्तु वस्तु इत्यादि। इन बातों को आधार मान कर जब हम उपन्यास के भेद-विभेद को निर्दिष्ट करते हैं, तो उसे कई वर्गों में विभक्त करते हैं। जैसे तत्त्व की दृष्टि से घटना प्रधान, चरित्र की दृष्टि से चरित्र प्रधान, और घटना-चरित्र प्रधान, और वस्तु वस्तु की दृष्टि से पार्थिव, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, प्रैतिहासिक इत्यादि। उपन्यास के इन सम्पूर्ण वर्गों पर जब हम सूक्ष्म दृष्टिपात करते हैं, और सरलता

सब पर सामाजिक बदलावों का बोल बिछाया गया है। 'बदलाव' के द्वारा 'उर्दू' में लिखित उपन्यासों और उपन्यासों का प्रचलन आरम्भ हुआ, और उर्दू में भी लिखित उपन्यासों तथा उपन्यास लिखे जाने लगे। उर्दू से लिखित उपन्यासों और उपन्यासों का प्रचार हिन्दी में हुआ। हिन्दी में कई उपन्यास बन्ने, देवकीनन्दन खत्री ने हम दिवा ने प्रकाश किया। उन्होंने 'चंद्रमौल' और 'चन्द्रमौल चंद्रमौल' लिख कर हिन्दी के उपन्यास-काल को लिखित मानवाली से भर दिया है। यद्यपि उन्होंने उर्दू और फारसी के लिखित उपन्यासों को प्रकाश किया था, किन्तु उन्होंने हम दिवा की प्रकाश करके हमने सब को सुना है हिन्दी में जो प्रकाश किया, उपन्यास प्रकाश उर्दू और फारसी के प्रकाश से नहीं अधिक बढ़ाकर और औरतें पूर्ण है, जो लिखित को लेकर सब तक उन्हें ही सुना था। बाबू देवकीनन्दन खत्री के लिखित उपन्यासों में हिन्दी उपन्यासों को आधुनिक में आता दिना, और के उनके उपन्यासों को हम बाबू के फारसी की गति दी गई है। बाबू देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में हिन्दी में लिखित उपन्यासों का एक नया सा प्रकाश कर दिया। लिखते ही लेकरने से उनके वय का आधुनिकता बना। लिखते ही लिखित उपन्यास लिखते गए। हिन्दी का 'उपन्यास' उपन्यास-काल लिखित उपन्यासों के भर गया। हमने ही नहीं, फारसी का मन को लिखित मानवाली से भर गया, और उन्हें फारसी और 'लिखित' ही दिखाई देने लगे।

लिखित उपन्यासों के लिखित पर सब हम मान देते हैं, जो यह देखते हैं, कि हमने लिखित नहीं, बल्कि हुआ है। 'लिखित' मानवा उपन्यासों में उपन्यास लिखित होती गई है, और लिखित लेकरने में यह पूर्ण प्रकाश की प्रकाश गई है। प्रकाश में 'लिखित' केवल 'चंद्रमौल' और 'चंद्रमौल' पर आधुनिकता था। उन्होंने लिखित प्रकाश मानवाली का प्रकाश न था। उनका सात व्यापार खत्री की हम-बाबू के ही हम ही था। किन्तु बाबू देवकीनन्दन खत्री के प्रकाश के लेकरने की रचनाओं में यह लिखित नहीं दिखाई देता। हम लेकरने में चंद्रमौल और 'चंद्रमौल' की शक्ति पर सब केवल लिखित प्रकाश मानवाली से ही प्राप्त किया है। बाबू देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में भी लिखित प्रकाश मानवाली का प्रकाश हुआ है। उनके प्रकाश की रचनाओं में जो केवल 'बाबू का प्रकाश' ही दिखाई देता है। लिखित काल के लेकरने में जो 'लिखित' मानवाली का सबसे अधिक प्रकाश प्रकाश है। लिखित काल के लेकरने में पूर्ण रूप से बाबू, और सामाजिक बदलावों के ही आधुनिकता पर हमने व्यापार की प्रकाश की है। हम लेकरने की रचनाओं में लिखित प्रकाश मानवाली से पूर्ण रूप से नहीं हुई है। हम लेकरने की रचनाओं में देखते देखते प्रकाश 'बाबू का प्रकाश' फारसी का प्रकाश प्रकाश है, जो व्यापारिक दृष्टि से लिखित सामाजिक जो हमने ही है, बाबू ही लिखित प्रकाश की है।

लिखित और लिखित दृष्टि में हम लिखित उपन्यासों का विशेष महत्व

ज होने हुए जो इस बात से आसानीवार नहीं किया जा सकता, कि उनमें शक्ति, मनोरंजन और उत्साह के लक्षों का अधिक समावेश हुआ है। आदि के क्षेत्र में वह जिसकी बदनामी गई जाती है, वह शक्ति और उत्साह की दृष्टि करती है। अतः यदि वह कहा जाय, कि जिसकी उपस्थाओं से मनोरंजन के क्षेत्र मिलने के साथ ही साथ उत्साह, वीरता, कुशलता और शक्ति के जो अन्य मिलते हैं, तो कुछ आशुति की बात न होगी। परिभाषिकों की दृष्टि से यद्यपि जिसकी उपस्थाओं का कुछ विशेष महत्व नहीं होता, पर इस बात से आसानीवार नहीं किया जा सकता, कि उनके पासों से जीवन है। जीवन होने के साथ ही साथ उनके पासों में सीधा और सीधा है, तथा उनके द्वारा ऐतिहासिक आदर्शों की शक्ति भी होती है।

साहित्यिक उपस्थाएँ उन उपस्थाओं को कहते हैं, जिनमें बहुत दूर बदनामी का विषय किया जाता था। साहित्यिक उपस्थाओं की तीन श्रेणियाँ होती हैं।

साहित्यिक उपस्थाएँ प्रथम श्रेणी के उपस्थाएँ होती हैं, जिनमें बहुत दूर बदनामी करने हुए के अपने आसीत जीवन पर प्रकाश डालता है। उनके जीवन का उद्देश्य यह होता है। यद्यपि वह उनके आसता है, परमाणु करता है, और दूसरों से जो बहुत होता है, पर उनके इन श्रेणियों के मूल में जीवनकार, दीन-दक्षिणी को स्थापना, और नीचे निरे हुए स्थितियों की उत्तर करने की आवश्यकता होती है, जिसमें शक्ति में वे उपस्थाएँ होती हैं, जिसके माध्यम प्रथम श्रेणी के उपस्थाओं से सर्वथा निर्गुण होते हैं। वे बहुत दूर, जिस और आसताओं होते हैं। दुःखित, और दुःखित उनका दीक्षा करते हैं। ऐसी और से सीधा और आसता के साथ विचार करते हैं। इन उपस्थाओं में आसता, और तीन संकेत बदनामी का जीवन सभी आमकार दूर स्थिति में किया जाता है। जिसमें शक्ति के वे उपस्थाएँ ही उत्तर के होते हैं। एक उत्तर के उपस्थाएँ जो वे होती हैं, जिनमें बहुतों और दूरों की स्थापना, सीधा दूर बदनामी, और प्रत्यक्ष शक्ति का विषय किया जाता है, और दूसरे उत्तर के उपस्थाएँ हैं, जिनमें किसी की किसी के द्वारा प्रत्यक्ष शक्ति, और जो किसी शक्ति की शक्ति के लिए विविध शक्तियों का विषय किया जाता है, और दूसरी उत्तर के साहित्यिक उपस्थाएँ हैं, जिनमें शक्ति विज्ञानमय राष्ट्रीय आदर्शों के आधार पर भी जाती है। इस उत्तर के उपस्थाओं के माध्यम देश भक्त होते हैं, जो कुछ शक्तियों का संवर्धन करते हैं।

आसता उपस्थाएँ उन उपस्थाओं को कहते हैं, जिनमें आसता और दुःखितों के साथ साथ 'दूर' और प्रत्यक्ष बदनामी की शक्तियों की तुलनाओं का प्रथम किया जाता है। आसता उपस्थाएँ साहित्यिक उपस्थाओं की शक्ति ही शक्ति, शक्ति, और प्रत्यक्ष के श्रेणियों की शक्ति के लिए होती हैं। साहित्यिक उपस्थाओं के इनमें अधिक विशेषता यह होती है, कि इनमें शक्ति का सीधा अधिक प्रकाश जाता है। इनमें बड़ी विमान दूर बदनामी का साथ जाता है, शक्ति का आसता शक्ति की शक्ति है, अतः प्रथम ही यह साहित्य, कि आसता उपस्थाओं की शक्ति दूर रूप से

हुट्टि कौशल की ही व्यापार करने कर की जाती है। बाबूली उत्पत्तियों में हुट्टि कौशल के बाबूली और वृद्ध से वृद्ध विषय देखने की मिलने। बाबूली उत्पत्तियों की कथा-कथा पूर्ण रूप से विषय व्यापार विषय, और वृद्ध के वृद्ध विषय पर ही प्रमाणित होती है। जिस बाबूली उत्पत्तियों में विद्या की अधिक वृद्ध विषय और वृद्धि होती है, वह उत्पत्ति की अधिक उत्पत्ति और वृद्धि उत्पत्ति होता है।

वैष्णववाद उत्पत्ति उत्पत्तियों की जाती है, जिसकी रचना देव की कथाओं की व्यापार करने कर की जाती है। देव की कथाओं के विषय में ही वैष्णववाद उत्पत्ति उत्पत्तियों के नाम दिया जाता है। एक रीति की यह है, जिसमें देव रीति व्यापार के अधिकारी की उत्पत्ति होती है। एक रीति के द्वारा विषय देव कथाओं में व्यापार व्यापारियों के देव, उत्पत्ति करने की उत्पत्ति, और उत्पत्ति देव पूर्ण व्यापार कथाओं पर कथा-मिलता है। एक रीति के उत्पत्तियों में 'वैष्णववाद' पूर्ण रूप से पूरी जाती है। हुट्टि-बाबूली और व्यापारिक रीतियों का व्यापार की एक रीति के उत्पत्तियों में अधिक मिलता है। वैष्णववाद उत्पत्तियों की रचना की वृद्धि रीति पर है, जिसमें व्यापार व्यापार के व्यापार देव का व्यापार विषय होता है। एक रीति के उत्पत्तियों, व्यापार-व्यापार के विषय का विषय करते हुए व्यापार के उत्पत्ति व्यापारिक कथाओं पर व्यापार होता जाता है, जिसमें व्यापार के व्यापार में पूर्ण होता है।

वैष्णववाद उत्पत्ति उत्पत्तियों की जाती है, जिसकी रचना वैष्णविक कथाओं के व्यापार करने की जाती है। एक उत्पत्तियों की विशेषता देवता देवता ही है, जिसे वैष्णविक कथाओं की व्यापारिकता के रीति में होता जाता है। एक व्यापार का, एक रीति और व्यापार में व्यापार व्यापार की व्यापार करने के लिए वैष्णविक उत्पत्तियों की रचना की जाती है, जिसमें व्यापार व्यापार उत्पत्तियों की व्यापार व्यापार व्यापारों का व्यापार होता है। व्यापारों और व्यापारिक विद्या में व्यापार के वैष्णविक उत्पत्तियों के रीति रीति में व्यापारिकता उत्पत्ति करने की है।

उत्पत्तियों के उत्पत्ति करने में वे उत्पत्ति करते हैं, जिसमें 'वैष्णव व्यापार' उत्पत्ति करते हैं। जिस प्रकार 'वैष्णव व्यापार' उत्पत्तियों के व्यापार के ही वह व्यापार ही होता है।

वैष्णव-व्यापार है, कि एक व्यापार के उत्पत्तियों में व्यापार की व्यापारिकता होती है, उसी प्रकार 'वैष्णव व्यापार' व्यापार के ही एक व्यापार के उत्पत्तियों का विषय व्यापार ही होता है, व्यापार 'वैष्णव व्यापार' उत्पत्तियों उत्पत्तियों की जाती है, जिसमें व्यापार की व्यापारिकता होती है। 'वैष्णव व्यापार' उत्पत्तियों में व्यापार व्यापारों की ही व्यापार व्यापार करने दिया जाता है। उत्पत्तियों की रचना में 'वैष्णव' के व्यापार व्यापार व्यापारों का ही व्यापार व्यापार होता है। वैष्णव व्यापार उत्पत्तियों में 'वैष्णव' का व्यापार व्यापार व्यापार होता है। व्यापार व्यापार उत्पत्तियों में जिस प्रकार व्यापार व्यापार और व्यापारिक होती है, उसी प्रकार वैष्णव व्यापार उत्पत्तियों में व्यापार की व्यापारिकता और व्यापारिकता व्यापार की जाती है। व्यापार व्यापार उत्पत्तियों में व्यापार की

घौर कापनी तुल्य खींचते जाती है । इस कोटि के उपन्यास साहित्य से लेकर अंत तक परिवर्तन होता होता है । उनकी घटनाओं और निमित्तों में अत्यंत परिवर्तन हुआ जाता है । घटनाओं और निमित्तों में परिवर्तन होने के कारण उनके पात्रों के साथ भी घटो-बढ़ते रहते हैं । अतिरिक्त उपन्यासों के पात्रों की संविदा इनके पात्रों के तुल्य स्थिर नहीं रहते । यद्यपि उनके तुल्यों में परिवर्तन नहीं होता, पर घटनाओं और निमित्तों में परिवर्तन होने के कारण वे घटो-बढ़ते अत्यंत हैं । घटनाओं और निमित्तों को परिवर्तन होता-हो इस कोटि के उपन्यासों के पात्रों के तुल्यों को स्पष्ट करता है । घटनाओं और निमित्तों को परिवर्तन होता-हो के कारण उनके तुल्य भी परिवर्तनमान बन जाते हैं ।

इस कोटि के अकथ्यत काविक सिगुद्ध और मनोवैज्ञानिक होते हैं। सिगुद्ध इस कार्य में, कि उनकी कथा-कथु के भीतर जो 'कल्प' विहित होता है, उनकी कवि व्यक्ति उनमें व्यक्ति कथमता के साथ होती है। 'कल्प' की अभिव्यक्ति के सिद्ध इस कोटि के उपमावादी में ही उनकी में प्राप्त किया जाता है, किन्तु हम आंतरिक और बाह्य मान्य कर सकते हैं। आंतरिक मान्य के द्वारा कल्प की अभिव्यक्ति के सिद्ध कथावादी के भीतर प्रवेश करने उनकी प्रविष्टों की कोश कर नामने प्राप्त किया जाता है, और विचार पूर्ण उनकी के द्वारा कल्प पर प्रकाश डाला जाता है। बाह्य मान्य करना कल्प की कल्पने सीमा में रहते हैं, और इसे कथित कल्प में विकास की और समुद्र करते हैं। इस अन्तर हम यह यह करते हैं कि इस कोटि के उपमावादी की कथावादी में एक साथ ही दो दो उनकी का कथावैश्व होता है—विशेषण और वर्णन विशेषण के उनकी के द्वारा उनकी के आन्तरिक संज्ञान में होने हुए प्रथम कहते हैं, और उनके कथित पर प्रकाश करने के साथ ही साथ कल्प की अभिव्यक्ति भी होती है। वर्णन के द्वारा कथनावली और विविधों का विकास होता है, किन्तु कथित की विवक्षित होने में सहजता मिलती है। कथा वादी के भीतर, इन तरीकों ही प्रकार के उनकी का संवादन अधिक महत्त्वपूर्ण कोश में प्राप्त किया जाता है। कथनीय एक कथने की शिष्टता में ही, दोनों उनकी की एक कर 'कथा वादी' की रचना करने हुए कल्प की और अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

इस थोटी से उल्लासों में जीवन की गति होकरा सुन्दर बन भी देखी जाती है। जिस प्रकार जीवन परिचित होता रहता है, उसी प्रकार इस थोटी से उल्लासों के साथ में भी परिवर्तन होता रहता है। यद्यपि भीतर निमित्तों से इनके साथ में परिवर्तन हो होता ही है, समय के परिवर्तन का भी इन पर अधिक प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार समय-समय से उत्तरांतर होता है, उसी प्रकार इनकी यद्यपि भीतर परिवर्तन में भी परिवर्तन होता जाता है। अतः समय की गति के साथ ही साथ यद्यपि भीतर परिवर्तन का भी विकास होता जाता है। अतः यद्यपि उल्लासों में समय की गति का प्रभाव यद्यपि भीतर परिवर्तन के विकास पर नहीं पड़ता। अतः यद्यपि उल्लासों में समय ही परिवर्तनशील रहता है, किन्तु समय में परिवर्तन होता रहता

है। यही कारण है, कि भारतीय समाज उपन्यासों में, उनका अंत अधिक आचार्य ढंग से होता है। किन्तु अपने-आपसे सापेक्ष उपन्यास समय-समय पर हिन्दी होने के कारण उनके अन्त में कट्टरता होती है। उनकी कट्टरताओं और चरित्रों का अंत एक ऐसी स्थिति और सहायक से होता है, जिसके द्वारा कट्टरताओं और चरित्रों को संतुष्ट करना पर अपने आप ही प्रकाश पड़ जाता है। जिस समाज की लेकर आदि में कट्टरताओं और चरित्रों को दृष्टि की गई थी, वह समाज 'अंत' में अपने आप कुछ-सी दुरी दिखाई देती है। उपन्यासकार कट्टरताओं और चरित्रों का एक प्रकार अंत करता है, कि समाज का समुचित रूप से समझाया हो जाता है।

आर्थिक कारण सापेक्ष उपन्यास अनुसृष्टि-प्रधान होते हैं। इन उपन्यासों में समुच्च स्वाचार अनुसृष्टियों के ही आधार पर चलता है। सभी प्रायः अनुसृष्टियों के ही द्वारा मिश्र-मिश्र दृष्टियों का अङ्गुन करते हैं। अतः वह कहा जा सकता है, कि एक कोटि के उपन्यासों में कट्टरता स्वतः की 'समृद्ध' रूप से अनुसृष्टि-वा होती है। जिस प्रकार भारतीय समाज उपन्यासों में एक विस्तृत सीमा के भीतर कट्टरताओं का विस्तार किया जाता है, जिस प्रकार इन उपन्यासों में जीवन के विभिन्न स्तरों की लेकर भौतिक-भौतिक के रूप विभिन्न करते हैं, उस प्रकार का विचार कार्य-कारण सापेक्ष उपन्यासों में नहीं मिलता, इन उपन्यासों में 'कट्टरता स्वतः' के विस्तार की उपेक्षा विचारों के के साथ प्रतिपाद, और दृष्टियों का ही विचार विशेष रूप से मिलता है। यही कारण है, कि इन कोटि के उपन्यासों के पात्रों के समुच्च कार्य-कलाप एक निश्चित सीमा के ही भीतर होते हैं। समुच्च स्वाचार विचारों, के साथ प्रतिपाद, और भावनाओं के दृष्टियों पर ही आधारित रहता है। अतः से लेकर अंत तक विचारों का अन्त ही इन कोटि के उपन्यासों में मुख्य रूप से देखने को मिलता है।

ऐतिहासिक उपन्यास इन उपन्यासों की कहते हैं, जिसकी समाज इतिहास के सभी के आधार पर ही जाती है। यद्यपि वह उपन्यास मुख्य रूप से कट्टरता प्रधान ऐतिहासिक होते हैं, पर इनकी विशेषता यह होती है, कि इनमें देश और काल का विचार विशेष रूप से किया जाता है। देश और काल का विचार कट्टरता ही इन कोटि के उपन्यासों का मुख्य स्वर होता है। देश और काल के विचार के रूप में इनमें किसी विशेष काल का रूप की समर्थति, सर्वोत्तम, समाज नीति और जीवन विधि पर भी प्रकाश डाला जाता है। ऐतिहासिक उपन्यास दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास के होते हैं, जिसकी कथा बहुत मुख्य रूप से देश और काल से संबंधित होती है, और जिसके पात्र भी ऐतिहासिक होते हैं। इन कोटि के उपन्यास विस्तृत रूप से ऐतिहासिक बने जाते हैं। द्वितीय कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों में कथा कट्टरता देश और काल से संबंधित होती है, किन्तु उनके पात्रों में फलना का समिश्रण होता है। इन कोटि के उपन्यासों की इन ऐतिहासिक ईमानदारी यह कहते हैं। अतः के लिए भी कट्टरताप्रधान सभी, के मध्य अन्तर और विचार की सीमा की सीमा। यह-कुं-मान कुछ ऐतिहासिक

उपन्यास है, किन्तु निराद की पंथिनी उस क्षेत्र में नहीं जाती। कारण, कि उसके पासो में कल्पना का क्षेत्र है। अतः हम उसे ऐतिहासिक वैज्ञानिकता ही उपन्यास की संज्ञा देते।

ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निर्मित होने पर भी इतिहास नहीं होते। इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासों में अधिक अंतर होता है। इतिहासकार के वर्णन में यहाँ बुद्धि की प्रभावता होती है, यहाँ ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी रचना में बुद्धि के तथ्यों के साथ ही साधन रूप में तथ्यों का भी उपयोग करता है। इतर के तथ्यों का उपयोग करने के कारण उसकी बुद्धि बरत और आत्मभ्रमों होती है। इतिहासकार की भाँति वह केवल वास्तविक वस्तुओं और तथ्यों का वर्णन ही नहीं करता, बल्कि उस पर अपनी कल्पना का रंग भी बिखरता है। वह इतिहासकार के तथ्यों और वर्णनों की अपनी कल्पना के रंगों में ढाँकता है, और उन्हें एक नवीन रंग के रत्ना कर सामने प्रस्तुत करता है। किन्तु इसका वह तात्पर्य नहीं, कि उपन्यासकार इतिहास के तथ्यों की अवहेलना करता है, या अपनी कवि के अनुसार उनमें परिवर्तन करता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी बुद्धि में कल्पना का आशय प्रकट करने पर भी ऐतिहासिक तथ्यों के विषय में सम्पूर्णता से ध्यान नहीं देता। यही ऐतिहासिक उपन्यासकार की सबसे बड़ी विशेषता भी है। नीरस और शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों की सजीव तथा आत्मभ्रम बना देना ही ऐतिहासिक उपन्यासकार का मुख्य काम है। ऐतिहासिक उपन्यासकार सजीव, बरत और आत्मभ्रम तथा मनोरंजन कायारण्य से ही उस रंग की कवि-व्यक्ति करता है, जो इतिहासकार के पृष्ठों में निहित होता है।

उपन्यास के इन बहुत प्रकारों के अतिरिक्त कुछ और भी प्रकार के उपन्यास मिलते हैं। जैसे प्राकृतवादी उपन्यास, और भाव-प्रधान उपन्यास इत्यादि। प्राकृतवादी उपन्यास इन उपन्यासों की कहते हैं, जिसमें वास्तविकता और पदार्थों को आधार मान कर मन विषय किया जाता है। इन उपन्यासों में उपन्यासकार का ज्येष्ठ मुख्य काम से वास्तविक विषय की ओर रहता है। विषय करते हुए इस बात पर किंचित ध्यान भी ध्यान नहीं दिया जाता, कि उसके जीवन और समाज का हित होता या नहीं। मन और पदार्थ विषय ही इस क्षेत्र के उपन्यासों का ज्येष्ठ होता है। हिन्दी-साहित्य में 'उष', भी इलायन्द जोशी, भी चन्द्रसेन झाँसी, और भीमसेनदेवर पाठक इत्यादि ने इस प्रकार के उपन्यासों की रचना में यत्तिष्ठि प्राप्त की है। भाव-प्रधान उपन्यासों में मुख्य काम से भाव की प्रधानता होती है। इस क्षेत्र के उपन्यासों में साहित्य के क्षेत्र का एक भाग यहाँ की ही व्यवस्था पाई जाती है। लकीर-बचसङ्कर-महाद और चन्दोप्रसाद 'इन्दुनेश' के उपन्यास ही क्षेत्र के उपन्यास हैं।

कथा-कहानी का प्राचीन स्वरूप

मनुष्य अपने जीवन के आदिमाल में ही कथा-कहानियों की कथा बनाता आ रहा है। कथा कहानी का इतिहास अविच्छिन्न प्राचीन है। कथा-कहानी के इतिहास की कथा कहानी प्राचीनता पर सब हम विचार करते हैं, तो उसका मूल और मूल्य-मूल्य कोट मानव-जाति की प्रकृति में खिंचा हुआ पाते हैं। दूसरे

हामी में उसका इतिहास उठाना ही प्राचीन है, जिसका मानव का जीवन। जिस प्रकार मानव के जीवन का इतिहास अविच्छिन्न प्राचीन होने के कारण अविच्छिन्न अन्तर्गत और प्रकृत है, उसी प्रकार कथा-कहानी का इतिहास भी अविच्छिन्न अन्तर्गत और प्रकृत है। प्राचीन कथा कहानी का भी इतिहास हमारे सामने उपलब्ध है, उसके ही बातों का बड़ा प्रभाव है। एक तो यह बात होता है, कि कथा कहानी का इतिहास अविच्छिन्न प्राचीनता है, और दूसरी बात यह मान्य होती है, कि मानव जीवन की प्रकृति के साथ ही साथ कथा कहानी की भी प्रकृति हुई है। जिस प्रकार प्रकृति की दिशा की ओर बढ़ने में मानव जीवन में कई परिवर्तन पार की हैं, उसी प्रकार प्राचीन कथा-कहानी की भी, अपने साथ के स्वरूप की कारण करने में विविध रूप धारण करने पड़े हैं। विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य में कथा कहानी की प्रकृति का यही रूप दिखाई देता है। प्राचीन सभी भाषाओं के साहित्य में कथा कहानी की प्रकृति एक ही रूप से हुई है। कथा-कहानी की प्रकृति के रूप में संसार की भाषाओं के साहित्य में अलग-अलग है, उसका साम्य साहित्य के किसी और क्षेत्र के विकास कम से नहीं है। जिस प्रकार पश्चिमी भाषाओं के साहित्य में कथा कहानी का प्राचीन स्वरूप दंत कथाओं की ओर लक्षित हुआ है, उसी प्रकार पूर्वी भाषाओं के साहित्य में भी कथा-कहानी का प्राचीन स्वरूप दंत कथाओं, और लोक कथाओं के रूप में दिखाता है। पश्चिमी, और पूर्वी-दोनों ही देशों की भाषाओं के साहित्य में कथा कहानी की प्रकृति की एक ही रूप से हुई है। एतलें बात होता है, कि कथा-कहानी के एक मानव प्रकृति के भीतर निवसमान हैं।

जिस प्रकार विश्व की भाषाओं के साहित्य में कथा कहानी का प्राचीनतम स्वरूप मिलता है, उसी प्रकार भारतीय के प्राचीन साहित्य में भी कथा-कहानी का प्रति प्रतिफल में कथा प्राचीनतम स्वरूप देखने को मिलता है। विश्व के का स्वरूप अन्वय्य देती की लोभ्या भारतीय की प्रकृति अविच्छिन्न

कहावियों में कुछ भी ऐसी है, जो वाक्यों की सौकुशल-विनय प्रकृति पर संभव्य अक्षतरी है, कुछ ऐसी है, जो वाक्यों के रूप में हैं, और कुछ ऐसी हैं, जिनमें नीति और आदर्शों का प्रतिपादन किया गया है। इन कथा-कहावियोंमें सबसे अधिक विषय की बात यह है, कि हमारे पास मनुष्य के अतिरिक्त पशु और पक्षी भी हैं। इन कथा-कहावियों में मनुष्य, और पशु-पक्षियों के जीवन का अत्यंत उंचीयता उजाहित किया गया है। इन कथा-कहावियों के बर्णन नीति, और कभी कभी मानवी आदर्शों पर प्रकाश पड़ता है, यहाँ यह बात भी ध्यान दी जाती है, कि मनुष्य के समान पशु-पक्षियों में भी कुछ कुछ के अनुभव की सुविधा, और विशेष कथा विचार के उदय होते हैं।

इन कथा-कहावियों में कुछ ऐसी हैं, जो वाक्यों के रूप में हैं। इन सभी सभी वाक्यों को हम साहित्य कला का उपन्यास कह सकते हैं। जैसे—दीना मैना, मैना उपन्यास का मार्ग—पक्षी, और मिनामन पक्षी इत्यादि। इन वाक्यों में कुछ रूप—दीना मैना में कवि का नाम के उपन्यासों की भाँति उपन्यास और मैना, इत्यादि अत्यंत शक्तिशाली नहीं मिलता, पर इस बात से अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि उसमें उपन्यास के उदय निहित है। इन वाक्यों का स्वभाव हम छोटी-छोटी कहावियों के जैसा है, किन्तु इन नीति और उपदेश को कहावियाँ कहते हैं। इन वाक्यों का संघन करने के साथ होता है, कि जिस रूप में इन वाक्यों का मिलान हुआ है, उस रूप के मनुष्य ने अपनी उपन्यास शक्ति को प्रकृति इन वाक्यों को प्राप्त कर चुका है।

इन वाक्यों के प्रभाव के कथा-साहित्य पर जब हम विशेषता करते हैं, तो इस बात का प्रतिपादन और भी उद्घाटन के साथ होता है। इन वाक्यों के प्रभाव कादम्बरी इत्यादि का कथा साहित्य ही नहीं के विस्तार है। इस वर्ग की में कथा का उदय यह है, जिसमें छोटी छोटी कथाएँ और कहावियाँ हैं। विशेष रूप में ऐसी कथाएँ हैं, जो साहित्यिक दृष्टि में मिली गई हैं। यद्यपि इन कथाओं की ऐसी साहित्यिक और सांस्कृतिक है, पर उसमें औपन्यासिक कला के अनुभव स्वयं प्राप्त होते हैं। इसकुमार पणित, काव्य रत्ना, और कादम्बरी इत्यादि ऐसी ही कथाओं के रचनाएँ हैं। काल के उपन्यास का स्वभाव हम रचनाओं में निश्चय पूर्वक नहीं मिलता, पर हमें यह नहीं भिन्न करता, कि इनकी रचना में औपन्यासिक कला अधिक मात्रा में काम कर रही है। 'कादम्बरी' को पढ़ कर हम बात को सीधे सी ध्यात करती हैं, कि हमें औपन्यासिक कला नहीं है। कोई स्वीकार नहीं हो ले करे, पर इन रचनाओं के इस बात पर निश्चय हम के प्रभाव पड़ता है, कि काल के हिन्दी उपन्यास का साहित्य और इन्हीं रचनाओं के द्वारा है विद्यमान है।

यह सभी रचनाएँ संस्कृत भाषा में हैं। क्योंकि संस्कृत ही भारत की प्राचीन भाषा है। संस्कृत भाषा जब पठनीय होती हुई, और उसके रचना पर प्रकृत कथा

अप्रभंश काल में अप्रभंश भाषाओं का काल आता, इन कथा-कहानी के कथा का स्वरूप बीजन्त में भी पकड़ा जाता। पाकृत और अप्रभंश भाषाओं में सर्वप्रथम पद्य की सृष्टि होने के कारण कथा कहानियाँ भी पद्य के रूप में ही लिखी गईं। क्योंकि इन नवीन भाषाओं में पद्य का विकास अनुचित रूप से न हो गया था। इन भाषाओं में पद्य-बद्ध ओ कथा-कहानियाँ मिलती हैं, उनमें ऐतिहासिक, नाट्यिक, और जैन मूलक हैं। हिन्दी का जन्म अप्रभंश से हुआ है। हिन्दी में भी पद्य का जन्म बहुत पुराना हुआ है। अतः हिन्दी वा शायद ही भी कथा और कहानियों का प्रागैतिहास स्वरूप पद्य के ही रूप में मिलता है।

हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ बीर राधा काल से होता है। बीर राधा काल में मुख्य रूप से दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ आई जाती हैं—बीरता मूलक, और शृंगार हिन्दी में कथा का मूलक। बीर राधा काल में इन प्रवृत्तियों की छेदन स्वरूप—बीर राधा कई कथात्मक कान्यों की रचना की गई। इन कथा-काल, भक्ति काल, जैन कालों में प्रचल्य काल और मुख्य दोनी ही हैं। और शृंगार काल यद्यपि वह नहीं कहा जा सकता, कि वह कथात्मक काल उपन्यास है, पर वह अध्ययन कहा जा सकता है, कि इन कान्यों के भीतर की कथाएँ सम्पन्न हो रही हैं, उनमें उपन्यास के तत्त्व अवश्य विद्यमान हैं। 'भक्ति काल' में भी इसी प्रकार के कथात्मक कान्यों की रचना हुई है। 'भक्ति काल' के जैन आध्यात्मिक काल आचना महत्व पूर्ण स्थान रखते हैं। यदि इन जैन आध्यात्मिक कान्यों की पद्य के लीचे में दास दिया जाय, तो उनमें सम्पन्न उपन्यास के तत्त्व निहित मिलाने देते हैं। रीति काल भी पद्य का ही युग था। रीति काल में भी कथा कहानियाँ पद्यों के रूप में ही लिखी गई हैं।

हिन्दी उपन्यास का साहित्यिक इतिहास उस समय से प्रारम्भ होता है, जब से उसके पद्य का आविर्भाव हुआ है। पद्य के जन्म के साथ ही साथ हिन्दी-साहित्य में उपन्यास का भी जन्म हुआ है। पर इस काल से कालोत्तर, नहीं किता जा सकता, कि उपन्यास की प्रवृत्ति हिन्दी में उसके जन्म के समय से ही विद्यमान है।

हिन्दी उपन्यास—आदि काल

हिन्दी उपन्यास का साहित्यिक इतिहास हिन्दी में काल के काल के साथ के प्रारंभ होता है। हिन्दी में काल का काल होने पर फिर प्रचार साहित्य के साधारण लोगों का उद्भव और विकास हुआ है, उसी प्रकार उपन्यास का भी काल और उसका विकास हुआ है। काल और उपन्यास का अतिरिक्त संबंध है। साहित्य के लोगों में काल और कहानी एक ऐसा काम है, जिसका उद्भव और विकास काल के विकास में सर्वथा सम्बंध है। काल कहानी और उपन्यास का बहुत बड़ा हिस्सा है, और कालों के आधार पर होता है, उन्हें काल की सबसे अधिक अवस्था होती है। काल के विकास में उनके समयों को और भी, उनका काल एक नहीं हो सकता। यही कारण है, कि किसी भी काल के साहित्य में उपन्यास का आधिकारिक उसी समय होता है, जब वह में काल का उद्भव होता है। हिन्दी में भी उपन्यास का आधिकारिक इसी विभाग के आधार पर हुआ है। आधिकारिक ही नहीं हुआ है, बल्कि विकास में भी इसी विभाग की प्रभावता देखने को मिलती है, क्योंकि काल की नीति ही हिन्दी उपन्यास का विकास भी काल के विकास के साथ ही साथ हुआ है।

हिन्दी उपन्यास के काल से लेकर और आज तक उपन्यास की भी सामग्री प्राप्त होती है, और काल के लेकर आज तक की समय अवधित हुआ है, उसे हम हिन्दी उपन्यास के इतिहास के संदर्भित करते हैं। सुविधा और समझ को दृष्टि से हम उसे दो भागों में विभक्त करते हैं—आदि काल और आधुनिक काल। आदि काल सन् १८५० से प्रारंभ होता है, और सन् १९१८ तक चलता है। आधुनिक काल सन् १९१८ के प्रारंभ हुआ आज का काल है, जो अभी अपनी गति पर है। कई समय हम हिन्दी उपन्यास के आधिकारिक पर दृष्टि रखते हैं, और यह देखते हैं, कि उनके भीतर फिर प्रचार के उपन्यासों की रचना, और फिर के साथ हुई है।

हिन्दी उपन्यास का आदि काल यह काल है, जब हिन्दी उपन्यास का काल हुआ है। इस काल में हिन्दी उपन्यास में काल लेकर उपन्यासों तथा कहानियों आदि काल के हुए चलता चलता है। इस काल में उसकी कुछ गति भी उपन्यास पर हुई है। इस काल में फिर उपन्यासों की रचना हुई है, उन्हें हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—सौमिक और आधुनिक। सौमिक उपन्यासों में अधिकतर ऐसे उपन्यास लिखे गये हैं, जिसमें

उपन्यासों की प्रधानता है; दूसरे रूप में किन्हीं इस कहना प्रचलन प्रचारात् कदा कदाये है। इन उपन्यासों में लिखितों, काव्यही, कथोपनिषद्, चमत्कारिक, और कौटुक विषय मान लीये का अधिक सम्बन्ध है। चमत्कारिक और विचित्र पूर्ण उपन्यासों से ही इन उपन्यासों का गठन हुआ है। विचित्र और चमत्कार उत्पन्न करना ही इन उपन्यासों का एक मात्र उद्देश्य है। इन चमत्कारिक उपन्यासों के बीच में कोई कोई ऐसे भी उपन्यास मिलते हैं, किन्हीं इस ऐतिहासिक और वीरशक्ति उपन्यास कह सकते हैं। पर इन उपन्यासों की संख्या बहुत ही कम है। आदिवाह के उपन्यास कालों की प्रगति मुख्य रूप में लिखितों, काव्यही, चमत्कारिक, और कौटुक विषय उपन्यास लिखने की ओर ही गयी है। अनुपमलिख उपन्यासों में भी इसी प्रकार के उपन्यास अधिक मिलते हैं। इस युग में संस्था, और कथोपनिषद् के अधिकतर ऐसे ही उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी साहित्य में हुआ है, किन्हीं इस लिखितों और काव्यही उपन्यास कह सकते हैं। कुछ अनुवादों में ऐतिहासिक और वीरशक्ति उपन्यासों की भी सामान्य उपलब्ध करने का प्रयत्न किया है।

आदि काल में हिन्दी उपन्यास में कम से कम यही प्रगति के विकास की ओर अपना चरण बढ़ाया है। हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही साथ उपन्यास में आदि काल के भी यही सीमा के साथ उपलब्धि की है। यही यही गद्य उपन्यासकार परिपुष्ट हुआ है, यही यही सीमा का प्रान उपन्यास की रचना में प्रगति होता गया है। आदिवाह के प्रारंभ से लेकर अब तक सेकड़ों ऐसे उपन्यासकार हुए हैं, किन्हीं उपन्यास की रचना में योग दिया है। यहाँ इन जनमें से कुछ प्रमुख उपन्यासकारों, और उनकी कृतियों पर संक्षेपमय रूप से प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे—

द्वैपायनदाहर्षी ने वर्ष प्रथम हिन्दी में 'पानी केतकी की कहानी' लिखी। इसके पूर्व लालू दास, और वरह मिश्र ने संस्कृत की कई कथात्मक पुस्तकों का अनुवाद 'द्वैपायनदाहर्षी' हिन्दी में किया था, पर मौलिक कहानी उपलब्ध करने का लेख 'द्वैपायनदाहर्षी' की ही है। उनकी यह कहानी वेम के लक्ष्मी पर आधारित है। कथन प्रकटी माना बहुत ही आचारात्, और विचित्रलिखित है, किन्तु उसके नीहार कथात्मक गुण निहित हैं। अतः 'पानी केतकी की कहानी' की ही यदि इन हिन्दी का प्रथम उपन्यास मान लें, तो अनुचित न होगी। इसके परचात् उर्दू और फारसी की कई कथा-कहानियों का हिन्दी में प्रचार हुआ, किन्हीं 'पद्मार्थ दर्शक', 'मिलता सा है तीन घर' और 'सानी बहार' इत्यादि का मुख्य स्थान है। इन कथा कहानियों में किसी से लेख की प्रधानता थी, जो किसी से कथोपनिषद् थी। किसी किसी का गठन चमत्कारिक और विचित्र पूर्ण रूपों के आधार पर हुआ था। हिन्दी में काव्यही और लिखितों उपन्यासों का शीत इसी कथा-कहानियों से उद्बलित हुआ है।

मनमोहन इन्दिराचंद हिन्दी गद्य के कर्मदाता हैं। उपन्यास की ओर भी उनका पूर्ण स्थान था। कथन उनके द्वारा किसी मौलिक उपन्यास की रचना नहीं हो सकी

बीनालयाग गहमरी की औपन्यासिक कल्पना दो चर्चों में किल्ला की या कपटी है—मौलिक, और अनुवादित। देवकीनंदन काली ने अपने विविध उपन्यासों के मोलालयम गहमरी द्वारा वेनारी की की भाषा बहाई की, उसमें मोलालयम गहमरी में अपने बालूरी उपन्यासों के द्वारा एक और भाषा बिछाई है। देवकीनंदन काली की भाषा नहीं वेनारी की भाषनाओं के परिपूर्ण है, नहीं गहमरीकी के प्रवाद में बुद्धि के सब पाद आते हैं। काली का प्रवाद एक मात्र साम्यकारिणता के ऊपर निर्भर है, पर गहमरी के प्रवाद में साम्यकारिणता और अनिर्णयता के साथ ही सब बुद्धि के बीछल पूर्ण लग भी हैं। गहमरी के प्रवाद में बुद्धि के दृष्टन और किल्ला पूर्ण तरंगों का लेला सुंदरता के साथ देखने की विचित्रता है। गहमरीकी में दर्शनी बालूरी उपन्यासों की रचना की है। उनके बालूरी उपन्यासों पर कौनसे बालूरी उपन्यासों की क्षण है। उन्होंने कौनसे बालूरी उपन्यासों का अनुवाद भी हिंदी में उपनिषद किया है। उन्होंने बालूरी उपन्यासों के प्रचार के लिए 'बालूरी' नाम का एक पत्र भी प्रकाशित किया था।

बिन्दोरीलाल मोलानी ने छोटे बड़े मिठा कर ६५ उपन्यासों की रचना की है, जिसमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं—विदेवी, लकीर सुलुम या सुलुम कुमारी, बिन्दोरीलाल मोलानी दूरवहायरी या आदर्श रमणी, सर्ववशता या आदर्श बाबा बाबा, रमिका देवम, लीलावती या आदर्शकली, रामकुमारी, उपनिषदी या कुटीरवाहिनी, और बिंदे की लाल। उनके उपन्यासों के विषय की देखते हुए हम उन्हें तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—सामयिक, ऐतिहासिक और शिष्टिमी। ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा सामयिक उपन्यासों की रचना में उन्हें अधिक उपलब्धता प्राप्त हुई है। उन्होंने अपने सामयिक उपन्यासों में समाज की विकृति की चित्रण करते हुए उसे आदर्श की ओर ले जाने का प्रयत्न किया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यास साधारण कौटुंबिक के हैं। शिष्टिमी उपन्यासों में उन्होंने अपने पूर्व की परम्परा का गौरव किया है।

हिन्दी साहित्य में बिन्दोरीलाल मोलानी पहले उपन्यासकार हैं, जिनकी रचनाओं में सामयिक विषय के रूप में जीवन की अविच्छिन्नता हुई है। सर्व प्रथम उनकी ही रचनाओं में, बिन्दो न किसी बहाने जीवन की परिधियों की तुलनाओं का प्रयत्न किया गया है। एक दृष्टि से बिन्दोरीलाल मोलानी का रचना उनके पूर्वकी उपन्यासकारों में सर्वोत्तम है। उन्होंने उपन्यास के क्षेत्र में, पूर्ण रूप से उस परंपरा का उपलक्षण किया है, जो कम एक पाली का पाली थी। यद्यपि वेम कथाओं के क्षेत्र में वे भी अपने पूर्वकी उपन्यासकारों की पंक्ति ही तीन पाठनाओं की ही लेखक उसके हुए दिखाई देते हैं, पर हमसे संदेह नहीं, कि उनकी अविच्छिन्नता में कौशलता के साथ मिलते हैं। उनकी कथावस्तु, उनकी वर्णन शैली, उनके पात्र और उनके भाषा के संज्ञान—सबका अनुक्रम एक लकीर आकाशवाणी में हुआ है।

उस वातावरण में हुआ है, जिसने जीवन का सार सुंझा होता हुआ सुनाई देता है।

४८ श्रीगोपालिन्द उपाध्याय स्वयं उल्लेखस्वरूप नहीं थे, पर उन्होंने इस क्षेत्र में भी प्रवास किया है। उनके जीवन उल्लेख्य साहित्य व्यक्तित्व हैं—देव हिंदी का सार, १० श्रीगोपालिन्द उपाध्याय मैत्रिक का जीवन और अवस्थिति पूरा। इन उपाध्यायों में उन्होंने जिसका साहित्य भ्रम भाषा की मिलचुकाता पर दिया है, उसका जीवनसाहित्य लोगों के निश्चय पर नहीं। कदा जीवनसाहित्य कदा की दृष्टि से उनकी इन रचनाओं का साहित्य महान नहीं है।

मेहरा लक्ष्मणराय स्वामी ने कई उपदेशात्मक उपाध्यायों की रचना की है, जिसमें हिन्दू धर्म, आदर्श धर्म, और जिसके का सुख का साहित्य महान रूप में स्थान मेहरा लक्ष्मणराय है। इन उपाध्यायों में जीवनसाहित्य लोगों की अवस्था स्वामी उपदेश के रूप में साहित्य मिलते हैं। कदा उपाध्याय कदा की दृष्टि से इनका स्थान निम्न कोटि का ही उदया है।

ब्रह्मलक्ष्मणराय ने 'जीवसाहित्य', 'प्रासादिक' और 'प्रासादिक' साहित्य उपाध्यायों की रचना की है। इनके उपाध्यायों में स्वामी की प्रभावशाली है। उन्होंने ब्रह्मलक्ष्मणराय साहित्य, और स्वामी की साहित्य भ्रम न देकर केवल स्वामी की ही अपने उपाध्यायों का साधारण रचना है। कदा इनके उपाध्यायों में भी जीवनसाहित्य कदा के रूप बहुत कम मिलते हैं।

साहित्य के उपाध्याय के द्वितीय भाग में वे रचनाएँ आती हैं, जो दूसरी भाषाओं में अनुवादित होकर हिंदी साहित्य में उपस्थित की गई हैं। अनुवादित अनुवादित उपाध्याय कृतियों की हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—देव-साहित्य, सामाजिक, और मिलित। उपाध्याय। इन रचनाओं की कुछ भाषाएँ संस्कृत, मैत्रिकी, संस्कृत, और मराठी आदि हैं। भारतीयों के समकालीन उपाध्यायों में साहित्य संस्कृत, और मराठी भाषाओं की प्रभावशाली का अनुवाद दिया है। भारतीयों के उपाध्याय, देवसाहित्य स्वामी के समय में संस्कृत और मैत्रिकी उपाध्यायों का अनुवाद हुआ है। अनुवाद कृतियों में साहित्य साहित्य, उपाध्याय, प्रभाव साहित्यसाहित्य, जीवनसाहित्य उपाध्याय, साहित्य प्रभाव स्वामी, साहित्यसाहित्य स्वामी, उपाध्याय, और साहित्य स्वामी रचनाएँ का महानुपाय स्थान है।

साहित्य में उपाध्याय भाषाओं की हिन्दू कृतियों का हिंदी में अनुवाद हुआ है, उनके द्वारा हिंदी के उपाध्याय साहित्य को दो लाभ हुआ है। एक तो यह, कि उनके द्वारा हिंदी-साहित्य में जीवनसाहित्य अनुवादित हुआ है। केवल और दूसरी में भी उपाध्याय के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण आते हैं, और दूसरा यह, कि उनसे भाषा के परिमार्जन, मूल्य, और प्रचार में साहित्य साहित्य प्राप्त हुई है। इन दोनों ही दृष्टियों से उपाध्याय अनुवादित कृतियों का महान रूप में स्थान है। हिंदी के उपाध्याय

उन पर क्लृप्त कालने का प्रयत्न दिखाई देता है। इसके विपरीत हिंदू पात्रों का उत्कर्ष पंग-पंग पर दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है, कि इन उपन्यासों का एक ध्येय यवन शासकों के आत्माचारों, और उनके कथाचारों का एक मात्र चित्रण करना ही था; परिणाम स्वरूप उपन्यासकारों का ध्यान केवल एक इसी बात के चित्रण में केंद्रित दिखाई पड़ता है। कथावस्तु और चरित्र का विकास इन उपन्यासों में भी नहीं मिलता। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने आदि काल में इस कोटि के उपन्यासों के निर्माण में विशेष संलग्नता दिखाई है। ब्रजनंदसहाय ने 'भाव प्रधान' उपन्यास लिखे हैं। ठाकुर जगमोहनसिंह के 'श्याम स्वप्न' में भी भाव की ही प्रधानता मिलती है। इन उपन्यासों में चरित्र के प्रति पूर्ण रूप से उदासीनता दिखाई पड़ती है।

हिन्दी उपन्यास—आधुनिक काल

हिन्दी उपन्यास के द्वितीय युग को आधुनिक काल कहते हैं। आधुनिक काल को १९१८ ई० से प्रारम्भ हुआ मानते हैं, जो अब तक चल रहा है। आधुनिक आधुनिक काल काल को हम हिन्दी-उपन्यास की उत्पत्ति का काल भी कह के उपन्यास को सकते हैं। आदि काल में हिन्दी के जिस उपन्यास में एक प्रसक्त कल्प पारस्य किया था, उसने आधुनिक काल में प्रत्येक प्रकार से पूर्ण उत्पत्ति की है। आदि काल में हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक युग था। आदि काल में, उसने कल्प पारस्य किया था, और कल्प पारस्य करके चलते तथा आगे बढ़ने का प्रयत्न किया था। उसकी गति केवल घटना-प्रधान उपन्यासों तक ही सीमित थी। उसका लक्ष्य एक मात्र मनोरंजन था। विस्मय और कमलकार पूर्ण घटनाओं का संसार बना कर मनुष्य के मन में कुतूहल और विस्मय उत्पन्न करता ही उसे प्रिय था। कुतूहल उत्पन्न करने में वह स्वाभाविक और कल्पनात्मक—कभी सीधे ही से काम लेता था। वह बात नहीं, कि वह मनुष्य के मन के विकारों से दूर था—इर्ष, मैम, विवेक, उत्साह, निराशा, और आशा इत्यादि का विषय उसमें भी मिलता है, किन्तु मिलता है कल्पनात्मकता, और कल्पनात्मकता की छाया में। कल: जीवन के लिए उसका कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य के मन के इन विकारों, और उन्हें भी का उसमें चित्तवत् संबंध विस्मय पूर्ण घटनाओं से है, उसका जीवन से नहीं, बल्कि वास्तविक बात तो यह है, कि जीवन से उनका संबंध किंचित मात्र भी नहीं है। परिणाम स्वरूप आदि काल के उपन्यासों में जीवन की भूलक कहीं भी देखने की नहीं मिलती। आदि काल के उपन्यासों में या ही उपदेश की तरफ उठती हुई दिशाई देती है, या तिलिस्मी, ऐषाणी और जादूशी का काज बिछा हुआ मिलता है। आदि काल की रचनाएँ उपदेश और तिलिस्मी तक ही सीमित हैं।

आदि काल हिन्दी-उपन्यास का शैशव काल था। शैशव काल की गति ही आदि काल में रचनाएँ की हुई हैं। आदि काल की रचनाओं पर स्पष्टतः शैशवत्व की छाप दिखाई पड़ती है। आधुनिक काल हिन्दी उपन्यास का युवा और प्रौढ़ काल है। इस युग में हिन्दी उपन्यास प्रत्येक प्रकार से परिपुष्ट हुआ है। आदि काल की बीमारी से निवृत्त कर, इस युग में उसने पूर्ण रूप से जीवन के क्षेत्र में प्रवेश किया

है। हिन्दी-उपन्यास को जीवन के क्षेत्र में जाने का क्षेत्र सर्वोच्च प्रेमचन्दजी को है। कई प्रथम प्रेमचन्दजी ने ही जीवन और हिन्दी-उपन्यास का परिचय एक-दूसरे के कराया। यद्यपि वे हिन्दी उपन्यास को जीवन के क्षेत्र में लाकर केवल उसके बाह्य स्वरूप पर ही ध्यान, और सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं के विचार में ही उन्होंने अपना ध्यान लगाया कर दिया, किन्तु उन्होंने इस क्षेत्र में जो कुछ भी किया, वह महान् और अमूर्तनीय है। आज के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार उसकी रचनाओं के संबंध में जो भी खतरा बताएँ, पर वह विनिवारण कर से बड़ा का समझ है, कि हिन्दी उपन्यास का प्रथम आगम किस जीवन पर पड़ा है, उसके भीतर सर्वोच्च प्रेमचन्दजी की रचनाएँ ही कुटी हुई हैं।

सर्वोच्च प्रेमचन्दजी और उनके सहयोगियों ने सामाजिक समस्याओं को ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। उनकी कथा-कथु में सामाजिक समस्याओं के ही सार आधिक मिलते हैं। चरित्र और घटनाओं का विकास उनकी रचनाओं में प्रमुख कर से मिलता है। उनकी रचनाओं में चरित्र के द्वारा ही कथा-कथु का विकास हुआ है। यद्यार्थ बहुत ही आभास्य है। चरित्र को विकसित करने में प्रेमचन्दजी और उनके सहयोगी मन के भीतर अधिक ध्यान तक नहीं प्रवेश कर गये हैं, पर उन्होंने मन का प्रदर्शन प्रत्यक्ष किया है। प्रेमचन्द और उनके सहयोगियों के परभाव पर सर्वोच्च प्रकार की रंग मंच पर पाएँ, जब उन्होंने हिन्दी उपन्यास को भाषा के क्षेत्र में इतर दिया। उन्होंने हिन्दी उपन्यास पर मान की तुलिका देखते हुए कमसे कमराई और यथार्थ का समझन किया है। सर्वोच्च प्रकारकी के परभाव हिन्दी उपन्यास में महान् परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इस परिवर्तन का एक मात्र कारण नहीं जीवन की समस्या है। हमने इस परीक्षित धुन में, हिन्दी उपन्यास पूर्ण रूप से जीवन के क्षेत्र में उतरा हुआ दिखाई पड़ता है। पहले कहीं वह सामाजिक समस्याओं की दृष्टि पर उतरा था; वहीं जब वह व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का समाधान जीवन में पड़ता है। आज उसकी दृष्टि में समझ की महत्ता नहीं, व्यक्ति का जीवन है। आज वह व्यक्ति के जीवन की समस्याओं को ही प्रमुखता प्रदान करता है। इतना ही नहीं, आज उसका लक्ष्य मनुष्य का मन, और उसका अंतर्मंगल है। आज वह चरित्र विषय में मन के इन्हीं की अपना आधार बनाता है। आज उसके विचार की दृष्टि भी बदली हुई है। आज उसके विचार में चरित्र की नहीं, मनो-वैज्ञानिकता की प्रधानता है। आज वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन के इन्हीं और विचारों की देखता है, और मन के इन्हीं का विचारों को ही आधार मान कर जीवन की समस्याओं की प्रत्यक्षता का प्रयत्न करता है।

आधुनिक युग के उपन्यास साहित्य की रचना में सर्वोच्च महत्त्व लेखक को दे रहे हैं। इन लेखकों में कई ऐसे लेखक हैं, किन्हीं हिन्दी उपन्यास की रचना आधुनिक मात्र जीवन और प्राण का संसार किया है। आधुनिक युग के उपन्यासकार सर्वोच्च प्रेमचन्दजी से प्रभाव होता है। सर्वोच्च प्रेमचन्द

को ये ही साधुनिक युग की नींव डाली है। साधुनिक युग के उपन्यास में कितनी प्रगति आई जाती है, उनकी कर्ष प्रथम अलक लगीन जेमसन्दरी की रचनाओं में ही दिखाई पड़ती है। सारा साधुनिक उपन्यासों की कृतियों का सम्बन्ध इस स्थानी जेमसन्दरी को ही मानते हैं।

समीन जेमसन्द साधुनिक युग के सारा है। साधुनिक युग के उपन्यासों में की विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं, उनकी साधु जेमसन्दरी के ही द्वारा हुई है।

समीन जेमसन्द जेमसन्द को ही हिन्दी उपन्यास की उस धारा की नींव की नींव डालने में समर्थ हुए हैं, जो उनके पूर्व जेमसन्द और विजय एक ही नींव की नींव पर ही के पूर्व हिन्दी में कितने उपन्यास लिखे गए थे, उनका जीवन की स्वाभाविकता के कोई संकेत नहीं था। उनमें जीवन के इन इन्दी का निर्वात ज्ञात है, जिनके कारण जीवन निर्वात सुधारित रहा करता है। उनके पूर्व के उपन्यासों में कल्पना की एक देखाई—एक विचार दिखाई पड़ता है, जिसका न ही कोई कार्य है, और न ही कोई उपलब्धि है। जेमसन्दरी के पूर्व के उपन्यासों के साथ ही दो नई नई धाराएँ हैं, या रास्ता और रीति हैं। ऐतिहासिक और उपदेशात्मक उपन्यासों में भी रास्ता रूखों और बलियों का ही विचार मिलता है। रास्ता रूखों, और बलियों के कठिनाई समाप्त में हुए कर्म के जीवन की रहते हैं, इससे अलक एक सादि रास्ता के उपन्यासों में नहीं मिलती।

सर्व प्रथम जेमसन्दरी ने ही हिन्दी उपन्यास का संकेत स्वाभाविकता के साथ स्थापित किया। सर्व प्रथम उन्होंने ही मानव जीवन का विचार हिन्दी उपन्यास में किया। सर्व प्रथम उन्होंने ही समाज के उस वर्ग का विचार हिन्दी उपन्यास में किया जिसे हम दलित, और उपेक्षित वर्ग कहते हैं, दूसरे साम्राज्य में सर्व प्रथम उन्होंने ही उपन्यास में किसानों, गरीबों, मजदूरों, और उपेक्षितों के दुख-सुख का विचार किया। उन्होंने विचार के साथ ही उन परिस्थितियों पर भी विचार किया, जिनके कारण समाज में नीचिरी और कुटुम्बों की उत्पत्ति हुई है। उन्होंने केवल विचार ही नहीं किया है, बल्कि उनके दुखों के विचार के लिए सुविधाएँ भी हैं ही हैं। एक और उन्होंने किसानों, गरीबों, मजदूरों, और रीतिओं के दुख-सुख का विचार किया है, दूसरी और उन्होंने समाज, रीति, रीति-नियमों, केवल मजदूरों, और गरीबों के विचार पूर्व जीवन पर भी ध्यान दिया है। एक प्रकार उन्होंने रीति-नियमों और संस्कृति-रूपों की नींव के साथ ही जीवन अपने उपन्यासों का संगठन किया है। उन्होंने रीति की नींव के मनुष्यों के जीवन पर प्रकाश डाल कर नहीं कुशलता के साथ उन निकली, और विचारों की सामने उपलब्ध किया है, जिनके कारण समाज की कलहता, और निर्मलता अपने जीवन की नींव पर गई है। उन्होंने किसानों, और विचारों पर प्रकाश डालने हुए समाज की आदरों की और के जाने का प्रकाश किया है। उनके उपन्यासों में एक और स्वाभाविकता और समाज का विचार है, दूसरी और आदरों की प्रकाश है। उनकी स्वाभाविकता और उनके समाज में आदरों की विचार

है। उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिकता, तथा और कहीं का सम्बन्ध भी जीवन के साथ किया है।

सोमवंशी की उल्लासों में सेवा करने, बरदान, प्रेमदास, प्रेमदुर्मि, बाबा बन, कर्तदुर्मि, निर्मला, प्रियता, कल, और जीवन इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं। उल्लासों के साहित्यिक प्रभावों ने वेदों का धर्मियों की भी रचना की है। उनकी कहानियों के भी कई उदाहरण प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें [पंच प्रहस, प्रेमदास, सोमदुर्मि, प्रेमदास, रामकेशव ५ भाग, अति कथा, प्रेमदास, राम सुमन, और अन्य वरुण इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं।

'सेवा करने' सोमवंशी का प्रमुख उपन्यास है। इसके पूर्व उनका एक छोटा उपन्यास 'सेवा' प्रकाशित हुआ था, जिसमें विनयाश्री की दमोदर सेवा का विवरण था। 'सेवा' का विवरण और परिभाषित करना 'सेवा करने' है। 'सेवा करने' का निर्माण सामाजिकता की प्रेरणा पर किया गया है। इसकी कथावस्तु देश की जनता पर आधारित है। कथावस्तु में ऐसे लोगों का समावेश है, जिनसे देश की सुख-आशी के प्रभाव पूर्ण और अधिक विषय बनते हैं। पात्रों में कल्याण, सुमन, विदुलदास, और रामा इत्यादि मुख्य हैं। प्रमुख पात्र के रूप में 'सुमन' का ही नाम दिया जा सकता है। सुमन के ही जीवन की कथा-विस्तार का उपन्यास की रचना की गई है। यदि वे लेकर जहाँ तक 'सुमन' के जीवन के साहित्यिक विषय मिलते हैं; पात्रों का चरित्र विवरण विशेषता की विधि, और कथावस्तु में किया गया है। सभी पात्र समाज पूर्ण हैं, और समाज पूर्ण कथावस्तु में समाज पूर्ण तथा कथार्थ विषयों की पूर्ण बनते हैं।

'बरदान' सोमवंशी का द्वितीय उपन्यास है। 'बरदान' की रचना 'सेवा करने' के पहले हुई थी। बहुत कथावस्तु 'सेवा करने' के बरदान हुआ। 'बरदान' में उपन्यास कथा के दो रूप गढ़ी मिलते, जो 'सेवा करने' में ज्ञात होते हैं। 'बरदान' में 'सेवा करने' के विनयाश्री की कथा देखने की मिलती है। 'बरदान' का वह कथाव 'प्रेमदास' में मिली सीति पूर्ण हो जाता है। 'प्रेमदास' सोमवंशी की वह कृति है, जिसमें उनकी अतिमा और जीवनसाथि कथा का पूर्ण विवरण देखने की मिलता है। 'प्रेमदास' की रचना के अनुसार की प्रेमदासों की वह कथावस्तु ज्ञात हुई, जिसके अनुसार वे हिन्दी-साहित्य में सुख-सुखों के लिए काम बन गए हैं। 'प्रेमदास' का निर्माण किसानों की समस्याओं को लेकर हुआ है। जैसे— किसानों की गरीबी, बर्बादों के उन पर आधारित, दुर्मि के दमर्द, और बर्बादों की लूट इत्यादि। यदि वे लेकर अन्य एक कथावस्तु का निर्माण दृष्टी रखते हैं हुआ है। कथावस्तु को बनाने वाले सभी तथा अधिक समाज पूर्ण और साहित्यिक हैं। परिणाम स्वरूप कथावस्तु अधिक साहित्यिक और समाज पूर्ण है। पात्रों में मया-राहु, प्रेमदास, रामदास, और प्रेमदास इत्यादि मुख्य हैं। जो पात्रों में भी कई विषयों का बार-बार नाम आता है। जैसे—विनयाश्री, रामा और रामा

ही करने भी वह भारतीय संस्कृति के अतिरिक्त और नहीं है। पूरे उपन्यास में, उनका चरित्र होम, त्याग, और सेवा के ही विद्युत स्फोट है।

'रजनीति' के बरबाद 'आत्मकल्प' के दर्शन होते हैं। 'आत्मकल्प' की कथा-कथु के हाथीदल्लेह विहारी, और जलपाखी के तत्व हैं। उसकी कथा के मूल में तुलसीदास की भावना है। विद्यादास के सिद्धांत का भी आत्मकल्प में प्रतिबिम्बित हुआ है। आत्मकल्प के चित्र भी आत्मकल्प की कथाकथु में मिलते हैं। पात्रों में देव प्रिया, कथावा महानंद, और अजीतानंद का महानंद पुरुष स्थान है। कल्पों इस उपन्यास में भी त्रैलोक्यी में 'आदर्शवाद' की ही कथा लक्ष्य माना है। आत्मकल्प में उनका लक्ष्य (अधिक विस्तृत दिखाई देता है। आत्मकल्प में उनकी ईश्वरता, और आत्मकल्पों के द्वारा विन्दु तुलसीदास देवता की कृपा कथने का प्रयत्न किया है। हिन्दू और मुसलमानों की देखभाल तथा मानवता के गुण में प्रतिबोध करने के उद्देश्य के ही उन्होंने अपनी कथाकथु में तुलसीदास के सिद्धांत की प्रवृत्ति लक्ष्य है।

'आत्मकल्प' के 'बर्बाद' 'निर्मला' और 'प्रतिष्ठा' के दर्शन होते हैं। वह दोनों ही लक्ष्य माना है, और आत्मकल्प (विहारी) की मान कर लिये गए हैं। 'निर्मला' में विदुषी विद्या के तुलसीदास का और 'प्रतिष्ठा' में त्रैलोक्यी का दर्शन का प्रतिबिम्बित चित्र है। इसके बरबाद 'गहन' का निर्माण हुआ है। 'गहन' की कथाकथु की तुलसीदास कल्प है। 'गहन' में त्रैलोक्यी की प्रतिष्ठा और उनकी आत्मकल्प कथा का विचार उपन्यास के साथ हुआ है। 'गहन' की कथाकथु अतिरिक्त तुलसीदास, नई तुलसी, और उपनिषद् हैं। कथाकथु का आधार मानव चरित्र की दुर्बलता है। कथाकथु में प्रतिबिम्बितों की उपलब्धता, और मानव चरित्र की दुर्बलता-दोनों के ही तत्व साथ साथ लगे हुए हैं। दोनों का ही संतुलन कथाकथु में नहीं किया के साथ किया गया है। पात्रों में कथावा, रमानाथ, और देवीदीन कथावा का प्रमुख स्थान है। 'गहन' और उपन्यास के चरित्र विचार में आत्मकल्प का बहुत उल्लेख है। आत्मकल्प उपन्यासों की प्रतिष्ठा की 'गहन' का लक्ष्य भी आदर्श है। 'गहन' में त्रैलोक्यी की प्रतिष्ठा भी प्रतिबोध रूप में मिलता है, की आदर्श की और समुच्च है।

'रजनीति' में भी आदर्शवाद का ही प्रत्यक्ष चित्र है। 'रजनीति' की कथा-कथु में भी आत्मकल्प और उपन्यास दोनों का समन्वित हुआ है। 'त्रैलोक्यी' का अतिरिक्त उपन्यास 'गोदान' है। 'गोदान' की कथाकथु में त्रैलोक्यी की भावना के साथ लगे हुए हैं। पात्रों की भावना के साथ ही साथ उनमें आत्मकल्प की भावना के साथ भी लगे हुए हैं। 'गोदान' की कथाकथु का संकलन उपन्यास और उपन्यास के आत्मकल्प में हुआ है। उपन्यास और उपन्यास के अतिरिक्त चरित्रों की, गोदान की कथाकथु में अतिरिक्त है। पात्रों में देवी, अमिता और तुलसीदास कथावा का महानंद पुरुष स्थान है। पात्रों का चरित्र विचार त्रैलोक्यी के आदर्शवाद में हुआ है। सभी चरित्र-चरित्रों में प्रतिबिम्बित और कथाकथु है। इस उपन्यास में भी त्रैलोक्यी में त्रैलोक्यी की

है। जैनसम्प्रदायी को इस क्षेत्र में अधिक सम्मिलित जगह हुई है। उन्होंने एक कुशल मनोवैज्ञानिक की भाँति ही अपनी चरित्र प्रमाण कथासंग्रह का संकलन किया है। चरित्र प्रमाण कथासंग्रह का संकलन करते हुए उन्होंने समुदाय के मन की सांसारिक और वास्तव दोनों ही स्थितियों को ध्यान में रखा है। यही कारण है, कि उनकी इस प्रकार की कथासंग्रह में समन्वितवादप्रथा स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती है। भाषा प्रमाण कथासंग्रह यह है, जिसने भाषा की प्रभावशाली है। जैनसम्प्रदायी ने महान्वय रूप से भाषा प्रमाण कथासंग्रह के आधार पर उपन्यासों की रचना नहीं की है। उनके फरमा प्रमाण और चरित्र प्रमाण कथासंग्रहों में ही कहीं-कहीं भाषा की प्रभावशाली का गई है। यहाँ कहीं ऐसे भी स्थल मिलते हैं, जहाँ चरित्र, चरित्र, और भाषा-शैली का ही समन्वय कुशलता के साथ हुआ है।

जैनसम्प्रदायी को भाषा का दुष्प्रभाव जगह कभी-कभी है। जैनसम्प्रदायी कभी-कभी भाषा में अधिक प्रयोग के। वे भाषा समान और प्रकृति के समान भाषा के। उनके उपन्यासों में विविध शब्दों के विविध प्रयोग हैं। जैनसम्प्रदायी की सबसे अधिक सामान्य-भाव और निकटता है। उनके इन भाषा में जो कभी-कभी हुआ है, वह अधिक सामान्य, संवर्धित, और विविध कथा प्रमाण का अनुकूल है। भाषा के 'सांसारिक कभी-कभी भाषा सामान्यता को देख कर हमें यह भी इस बात का आभास हो जाता है, कि जैनसम्प्रदायी की दृष्टि नहीं दूर गतिशील थी। उनकी दृष्टि की दृष्टि में विविध शब्दों के विविध प्रयोग वाले समुदाय विचार करते हैं। जैनसम्प्रदायी सबसे पहले-पहले थे, और उनके रचना दृष्टि तथा मनोभाव की गति के प्रतिबिम्ब थे। उनके उपन्यासों के कभी-कभी भाषा में उनकी यह कुशलता अनुकूलता स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। सामान्यता, और कुशलता उनके कभी-कभी भाषा की विशेषता है। यहाँ कहीं साहित्य की 'विधि' में, उनके कभी-कभी भाषा का प्रभाव, उदाहरण, उदाहरण के बाहर निकल गया है। यहाँ कहीं साहित्य में ही भाषा की उनके द्वारा से दूर गया है। किन्तु यहाँ पर ऐसा हुआ है, यहाँ कभी-कभी भाषा के प्रभाव में सम्प्रदाय अलग हो गई है, और चरित्र के विकास में भी कभी-कभी अवधिगत हो गया है।

चरित्र विकास के क्षेत्र में जैनसम्प्रदायी अपने दृष्टि के समान उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों की प्रकृति विशेषता उनका चरित्र विकास ही है। चरित्रों का विकास चरित्र विकास उनके रचनाओं में अधिक प्रभावशाली के साथ हुआ है। उनके चरित्र सभी शब्दों के हैं, जो अधिक ईमानदार, संयमी, और आदर्शवादी हैं। ऐसे भी चरित्र हैं, किन्हीं कथाओं की विविधता का आदर्श विचार कथा का विकास है। पर इन चरित्रों की उपस्थिति करने का प्रयोग यह है। जहाँ उनकी उपस्थिति की मन में आदर्शवाद की प्रकृति करता है। जैनसम्प्रदायी ने अपने चरित्रों के चरित्रों को उपस्थित करने में आदर्शवाद का ही प्रयोग किया है, क्योंकि उन्होंने चरित्रों के चरित्रों में 'आदर्श' की दृष्टि कथाओं की प्रकृति पर ही किया है। 'आदर्श' की दृष्टि करते हुए वे यहाँ भी कथाओं का विकास नहीं करते। उनके साथ समाधि

साहित्य के नाम से ही साहित्यिकता की सीढ़ियाँ बनाए जाते हैं। उनके चरित्रों में स्वाभाविकता और अनुकूलता है। उनके पास समय और विधि का अधिक ज्ञान रहता है। साहित्यिकता का अभाव अधिकतर साहित्यिकता के नाम से ही दिखाई देता है। उनके चरित्र साहित्यिकता के अनुसार ही अपने स्वभाव की रचना करते हैं। यही कारण है, कि उनमें स्वाभाविकता, रोचकता और अनुकूलता प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है।

संस्कृतिकता की कमी को अपने चरित्रों की अनुकूलता नहीं दिखाई देती। उन्होंने अपने किसी भी चरित्र के नाम से अपनी अनुकूलता नहीं प्रकट की है। यद्यपि उनके चरित्रों में सभी चरित्रों के प्रतिनिधित्व है, पर उनकी साहित्यिक और अनुकूलता किसी भी नहीं है। उन्होंने एक साहित्यिक-साहित्यिकता की सीढ़ि का विचार एक ही साहित्यिकता पर किया होकर किया है। उन्होंने जिस नाम की जिस रूप में अपना और समझा है, उसका विचार उन्होंने उसी रूप में किया है। यही कारण है, कि वे अपने चरित्र विचार में कई तरीकों में दिखाई देते हैं, क्योंकि यही उन्होंने विचारक के रूप में चरित्र पर प्रभाव डाला है, यही निर्देशक के रूप में, यही प्रभावकारी के रूप में और यही प्रभावकारी के रूप में भी। इस प्रकार चरित्र-विचार में उन्होंने अपने विभिन्न रूप प्रकटित किए हैं। चरित्र के विचार के लिए उन्होंने जिस व्यक्ति के नाम लिया है, उनमें प्रभाव है—संस्कृत, संस्कृत, साहित्यिकता, और साहित्यिकता का विकास। संस्कृत को प्रभावकारी रूप में प्रभावकारी का उन्होंने अधिक साहित्यिकता प्रकट किया है। उन्होंने अपने चरित्र का विकास संस्कृत, साहित्यिकता और साहित्यिकता के साहित्यिकता संस्कृत तथा साहित्यिकता के द्वारा ही किया है। संस्कृत उनके चरित्र के विचार में बहुत कम साहित्यिकता प्रकट है। यही यही उन्होंने चरित्र के विकास में संस्कृत के नाम किया है, यही उनके चरित्र में साहित्यिकता प्रकट हो गई है।

साहित्यिकता का विकास संस्कृतिकता की कमी की प्रकटता है। संस्कृतिकता के विकास के लिए ही प्रकटता है। उनके चरित्रों में साहित्यिकता के विकास की विचार प्रभावकारी रूप में दिखाई देती है। वे विचार अधिक साहित्यिकता और विचार पर प्रभाव देते हैं, उसका और किसी भी नाम पर प्रभाव नहीं देते। उनके चरित्रों और साहित्यिकता का विकास बहुत प्रभावकारी साहित्यिकता के ही अभाव पर प्रभाव है। चरित्र के विकास में ही प्रभावकारी रूप से साहित्यिकता के प्रभाव प्रकट है। यही कारण है, कि उन्होंने साहित्यिकता के निर्माण में यही साहित्यिकता और अनुकूलता से नाम लिया है। यही यही साहित्यिकता के रूप में भी उन्होंने साहित्यिकता का विचार किया है। यही यही उन्होंने साहित्यिकता के विकास में अपनी साहित्यिकता प्रकट की है, यही उनके चरित्रों के विकास में साहित्यिकता का नाम है, यद्यपि उनके चरित्र प्रभावकारी और साहित्यिकता ही प्रभाव है।

संस्कृतिकता प्रभावकारी प्रभावकारी का हिन्दी साहित्य में अधिकतर प्रभाव है। उन्होंने साहित्यिकता और साहित्यिकता के रूप में एक प्रभावकारी रूप की साहित्यिकता की है। साहित्यिकता और

सर्गीर बसावहार नाटक के क्षेत्र में, उसके द्वारा कीर्णान्वित किन्तु दुष्सा प्रचार मुक्त हो जाय हिन्दी साहित्य में जगना वैभव बिखेर पाये है । उनमें सर्वश्रेष्ठतम अविनाश भी । जिस प्रकार उन्होंने 'काव्य और नाटक के क्षेत्र में अपनी पुनर्जागरणकारी अतिभाषा-शक्ति का परिचय दिया है, उसी प्रकार उन्होंने कन्नड़ी और उडुप्पाय के क्षेत्र में भी अपनी अविनाश के 'काव्य-विभूति' निर्मित किए हैं । यद्यपि उपमासम्पन्न के रूप में उनकी भाषना का क्षेत्र अविनाश विस्तृत नहीं है, पर उन्होंने जो कृतियाँ उनकीका की हैं, औपन्यवस्तिक दृष्टि से उनका बहुत कम नहीं कहा जा सकता । उन्होंने अपनी कल्प संभवतः रचनाओं के ही द्वारा हिन्दी के 'उपमा-साहित्य' में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है ।

'बसवर्ण' में तीन उपमाओं की रचना की है— 'कन्नड', 'उडुप्पा', और 'दोनावरी' । इन कम कम से तीनों की समीक्षा करेंगे । 'कन्नड' की कथावस्तु का निर्माण बौद्ध की बुद्धमूर्ति पर ही हुआ है । 'कन्नड' की कथावस्तु की इस सामयिक का कहते हैं, पर उसमें बौद्ध के विभिन्न गुणों का दूर है । अपनी इस ही कथावस्तु में 'दोनावरी' के बौद्ध के विभिन्न रूपों का समन्वित किया है । इसी बात की हम इस कम से भी कह सकते हैं, कि 'कन्नड' की कथावस्तु में बौद्ध के विभिन्न रूपों से जोड़े हुए अपने स्वर की ओर पहुँचने का प्रयत्न किया है । 'कन्नड' की कथावस्तु में एक ही ओर नहीं बौद्धिकता के लिए राम है, वहाँ उसमें काव्यात्म्य के प्रति अनुपम भी मिलता है, उसमें वहाँ साक्षात्किन्तुत्तरों और 'दुर्लभाचार्य' हैं, वहाँ उसमें बुद्धाचार्यो दक्षिण-कोण का भी समन्वित है । उसमें वहाँ मानव की मानव के प्रति पुष्टा है, वहाँ उसमें मानव का मानव के प्रति प्रेम और उदारता के विषय भी है । हिन्दू-मुसलिम 'देवता' के विषय भी, मानवता, और ईश्वरता के आधार पर 'कन्नड' की कथावस्तु में पाए जाते हैं । इस प्रकार 'कन्नड' की कथावस्तु में कई चीजों का समन्वित हुआ है, जिससे कथावस्तु रोचक और आकर्षक बात होती है । मनीषिकारी का 'उपमा-वस्तु' भी 'कन्नड' की कथावस्तु में देखने को मिलता है । ईश्वर, विचार, प्रेम, प्रेम, विज्ञान, और कथना इत्यादि मनीषिकार 'कन्नड' की कथावस्तु में सामान्यता के साथ जोड़े हुए दिखाई देते हैं । कथावस्तु का विकास सामाजिक दृष्टि से हुआ है । विचार में गति और कम है, परिष्कार लक्ष्य आदि से लेकर आगे तक कथावस्तु के विकास की आवश्यकता ही दक्षिणोन्मुख होती है ।

'कन्नड' के पात्रों में जगदीश्वर निरञ्जन, राम, विष्णु, ब्रह्मा, बंटी, लोको, और विष्णोरी इत्यादि मुख्य हैं । अपने दन्ती पात्रों की विभिन्न विधियों में बात कर, लेखक ने अपनी रचना का निर्माण किया है । जो बात जिस विधि में है, वह उसका वास्तव दक्षिणोन्मुख होता है । अपनी बात अपनी अपनी विधियों, और वास्तव-कथा का जोड़ जोड़ विचार करते हुए दिखाई देते हैं । लेखक के प्रेम प्रति पात्रों की पूर्ण रूप से उदात्तमूर्ति है । अपनी बात मिल कर उस लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए दिखाई देते हैं । जिसकी ओर बढ़ना लेखक का इरादा है । 'कन्नड' के सभी पात्र यद्यपि

वादी है। उसमें व्यक्तिगत स्वार्थों की भावना है। वे विवाद देते मात्र ही सामाजिक सम्झना पर भी सुले हुए हृदय के विचार करते हैं। वे समाज की समस्याओं पर विचार करते हुए एक नये मार्ग-दर्शक नई दिशा का आविर्भाव करते हैं। वे उस समूह को प्रेरितियों और विप्रेतियों के प्रति आलोचना प्रसार करते हैं, जिसके कारण सामाजिक जीवन की प्रति में अपरोध उत्पन्न हो गई है, कारण जिसके कारण समाज के जीवन की पार कुपित हो गई है। इस रूप में हम कह सकते हैं, कि कंचाल नए विचारों और नवीन चेतनाओं का केन्द्र है। किन्तु इसका यह कदापि तात्पर्य नहीं, कि उसमें अधार्मिकता की भावना है। लेखक की यह चालें सभी भिन्न-वस्तु है, कि उसमें अधार्मिकता के क्षेत्र के जीवन ही यह कर नवीन चेतनाओं, और नए विचारों की संस्था में स्थापना की है।

'कङ्काल' विभिन्न मनोविचारों के केन्द्र है। उसमें दर्प, विवाद, शोक, प्रेम, विद्रोह, और सहाय्य—आदि विचार स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं। अल्प और कदाह के बीच भी कङ्काल से स्थान-स्थान पर मिलते हैं। अल्प और कदाह के बीच ही हमने अधिकांश मिलते हैं, कि उनके कारण कङ्काल की अल्प कृतक उपन्यास मान लिया जाय तो आधुनिक न होनी। कुमार और संवेदना के चिन्तों की भी कंचाल में बनी नहीं है। स्थान-स्थान पर विद्रोह के बीच भी कंचाल के पुरी में मिलते हैं। समाज के पानी और उसकी विप्रेतियों के प्रति स्थान-स्थान पर चेतनाओं, और कदाह के बीच भी दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार आदि से लेकर अन्य तक विभिन्न प्रकार के मनोविचारों के बीच कंचाल में मिलते हैं। इसी चिन्तों में मिल कर कङ्काल की संवेदना, और उसकी उपरोक्तता की पूर्ण मान्यता बना दिया है।

विचारों की दृष्टि से 'कङ्काल' के समाज में दो मत बिना किए जा सकते हैं। कुछ लोग 'कङ्काल' की पटना 'कंचाल समाज' उपन्यासों से कर सकते हैं, और कुछ लोग उसे 'चरित समाज' उपन्यासों की श्रेणी में ले सकते हैं। वास्तव में यदि ऐसा मान तो 'कङ्काल' में चरित, और चरित दोनों का ही बहुविध रूप में विकास हुआ है। कंचाल की दूसरी पटना में ही, जो और लोग-लोग पटनाओं तक का समावेश किया गया है। यद्यपि लेखक ने मूल कथावस्तु में उपन्यासों की मिलाने और जोड़ने में अधिकांश चरितों वर्णित की है, पर फिर भी उपन्यासों के आविर्भाव के कारण देते सभी पर मूल कथा के प्रभाव में केवल उपन्यास ही गया है। जिस पटना पर मूल कथावस्तु अपने आधुनिक रूप में है, वहीं उसके विकास का सामाजिक प्रति से पताला हुआ दिखाई पड़ता है। 'कंचाल' में भिन्न भिन्न पात्र अलग अलग स्थितियों के हैं, दूसरे रूपों में कंचाल के पात्र एक मिलित स्थिति के हैं। 'कंचाल' के कथाकार को कुछ विविध प्रकार के पात्रों का चरित चित्रण करना ही इस मान्य होता है। यही कारण है, कि कंचाल में पात्रों के चरितों का विकास प्रमुख रूप में हुआ है। यद्यपि 'कंचाल' में पटनाओं का भी आधिपत्य है, पर लेखक कथावस्तु रूप में मुख्य चरित के विकास की ओर ही दिखाई पड़ता है। अतः

कल की कल्पना कल्पनार्थ की ओर अधिक दृष्टि रखती है। वे अपने-अपने कल्पनार्थ के भाषी के ही बनते हैं। यही कारण है, कि योगनन्दजी की कल्पना असादमी के उल्लासों से कल्पनार्थ के अन्तर्भावक बिना अधिक घने पड़ते हैं। यह होने पर भी असादमी की कला योगनन्दजी की कला से बहुत कुछ दान ले रहा करता है।

असादमी की कला में उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। उनकी कला की विशेषताओं की समीक्षा हम निम्नलिखित अवस्थाओं से आधार मानकर करेंगे कथानक, पात्र, मानसिक दृष्टि, दृष्टि वर्णन, भाव प्रकृति, और भाषा की सरलता असादमी के उल्लासों की कथा बहुत जीविक है, उसका चरित्र और संकल्प असाधारणिकता की दृष्टि में एक कर दिया गया है। उसका अन्त एक एक मति से अपने चरित्रा द्वारा दिखाई देता है। उसके चित्रण में एक रूप और एक समग्रता है। न ही उसमें कहीं अधिक विस्तार पाया जाता है, और न कल्पना। कथावस्तु का विकास, और उसका आधान-रूप सर्वत्र एक रूप से ही हुआ है। असादमी ने कथा वस्तु के विकास में वैज्ञानिकता के साथ दिया है। उनकी कथा वस्तु में आदर्शों की भी योग है। असादमी के उल्लासों की कथावस्तु का संकल्प प्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन से है। उनकी कथावस्तु जीवन की एक इतिहास है, जिसमें विभिन्न मनोविचारों के अन्त बिना राह पड़ते हैं। उन्होंने अपनी कथावस्तु में जीवन की समस्याओं पर सर्वत्र दृष्टि से विचार किया है। वे अपने विचार किसी विशिष्ट से आधार मान कर प्रकट नहीं करते। उनकी कथावस्तु में उस एक मानवता के ही एक ही रूप है, जिसकी दृष्टि अधिक तीव्र और दूर गमिनी है।

८. असादमी के पात्र अधिक सम्प्रेषणी हैं। यदि वे एक वर्ग के हैं, पर उनकी दृष्टि में विचारकता और कला ही मान्य है। वे अपने-अपने कल्पना मानवता की ही एक भूमि पर पड़ते हैं। उनके विचार-कलाओं में जीविकता, और आदर्शवाद है। वे आदर्शवादी, कला, और योगनन्दजी के भाषी से उद्भवित हैं। वे अपने जीवन उल्लास, और विचारकता रखते हैं। पात्र सुन्दर, सीधे, अनोखे और युवा प्रेम का निर्धार वे उल्लास की ही दृष्टि से करते हैं। वे युवा के पात्रों और युवाओं की जीन नहीं, अपने पात्रों पर भी आश्चर्य नहीं रखते अपने पात्रों और युवाओं पर असादमी चाहते हुए उन्हें जीवन का अनुभव दिलाते हैं। असादमी ने अपने पात्रों के चरित्रों का चित्रण नहीं मरोहता, और कुशलता के साथ किया है। उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए, उनके मानसिक दृष्टिों की ही आधार माना है। यदि वे विकास के लिए उनकी दृष्टि मन के अन्तों पर ही फिर दिखाई देते हैं। असादमी अपने-अपने उल्लासों में मानसिक दृष्टिों का चित्रण नहीं मानसिकता के साथ हुआ है।

असादमी की कला दृष्टिों के वर्णन में अधिक निरुप है। उनके उल्लासों में ही प्रकार के रूप मिलते हैं। यह एक ही वर्णनी, और युवा मानव जीवन। प्रकृति

उपन्यासी दृष्टी में आकृति, नाम और स्वर इत्यादि के दृश्य हैं। मानवीय दृष्टी में जीवन, और समाज के दृष्टी को सामान्य चाहिए। दोनों ही प्रकार के दृष्टी का विचार उनकी कला के द्वारा सामर्थ्यवत्ता के साथ हुआ है। यद्यपि उपन्यासी नम्र के रहनेवाले थे, किन्तु उनके द्वारा जो सामाजिक चित्र बने हैं, उनमें उनका आत्मनः साथ साथ कलावत्ता है। उपन्यासी की कला विविध भाषों का सूक्ष्म काम में लड़ी विद्युत् है। उनके भाषों में कला और वाक्य के उन्मत्त हैं। उन्होंने जीवन की विभिन्न समस्याओं को आलोचनात्मक भाषों में दृष्ट करके ही की है। यही कारण है, कि उनके चित्र अधिक आकर्षक, और दृश्य वास्तव हैं।

उपन्यासी के उपन्यासों की भाषा भी अधिक कला और सुधीमत्ता है। यद्यपि उपन्यासी में भी उनकी भाषा कलावादी के बहुत जगह पर उलझी है, पर उसमें वह विशिष्टता नहीं है, जो वाक्यों की भाषा में है। उपन्यासी ने अपने उपन्यासों की भाषा की बहुत कुछ औपन्यासिकता के लिये में साधने का प्रयत्न किया है। उनके उपन्यासों का परिष्कार साथ-साथ उनकी भाषा में दिखाने देता है। उनकी भाषा अधिक सरल ही है ही, साथ ही वह अधिक जीवंत, पूर्ण और उपन्यासी की है। उन्होंने अपनी भाषा में सुधारों का भी प्रयत्न किया है।

विद्वन्मन्दराय अपनी 'बीहिक' आधुनिक काल के सुप्रसिद्ध उपन्यास और लेखक थे। जेम्सबंदी ने उपन्यास रचना के लिए जो मार्ग निर्दिष्ट किया था, उसके समीप विद्वन्मन्दराय अपनी 'जेम्सबंदी' में उपन्यास-कला में किल काटती 'बीहिक' की रचना की थी, बीहिककी बहुत कुछ उनकी आदमी के रूप पर चले हुए दिखाई देते हैं। यहाँ, यहाँ कथानक और चरित्र विषय इत्यादि उपन्यास के सम्यक् व्यवस्था की परिपुष्टि उन्होंने जेम्सबंदी के सिद्धांतों की आधार मान कर की है। यही कारण है, कि उनके उपन्यासों और कहानियों की विवेचना करते हुए लोग उन्हें जेम्सबंदी की कला का प्रमाण मानते हैं। किन्तु हमने यह कार्य कराने में विफलता पाकर, कि बीहिककी अपनी एक कृष्ण नहीं थी। बीहिककी अपनी रचनाओं में जेम्सबंदी के सिद्धांतों और उनके आदमी की रक्षा अवश्य की है, पर उनमें कई बीहिक विशेषता भी हैं। बीहिककी दृश्य को संयमित करने में उसे विद्युत् है। दृश्य का संयम विद्युत् अधिक उनकी रचनाओं में मिलता है, उनका जेम्सबंदी की रचनाओं में नहीं है। जेम्सबंदी की रचनाओं में लचीली की सुलझता है; और किन्तु कथानक भी उनकी रचनाओं में लया जाता है। पर बीहिककी केहे में पात्रों के ही अपनी रचना का संसार बसाते हुए दिखाई देते हैं। बीहिककी जेम्सबंदी की लीति देता और समाज की विभिन्न समस्याओं के आल में लड़ी ललझते, वे जीवन के संप्रसारण पर दिखाई देते हैं, और उनके एक विशिष्ट जंग की लेकर, मोक्ष दृष्ट में औपन्यासिकता के मार्ग पर चलते हैं।

बीहिककी ने दो उपन्यासों की रचना की है—'बी' और 'मिथ्या'। 'बी'

की कथावस्तु पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध रखती है। उसमें पारिवारिक जीवन के दृष्टान्त पूर्ण, और साक्षरक जुड़े हुए हैं। उन कथनों में माँ की आत्मात्म केरना, और कष्टमय पिता इत्यादि मुख्य हैं। कथावस्तु का उद्देश्य है, माँ के आदर्श जीवन को साधने प्रेरित करना। लेखक की कथावस्तु के लक्ष्य में सम्मिलित बातें हुई हैं। कथावस्तु का विषय भी सामाजिकता के साथ जुड़ा है। पात्रों में स्त्री, कुलीनता, सावित्री, और रामचंद्र इत्यादि मुख्य हैं। उसी बात आदर्शवादी है, और लेखक के लक्ष्य में उद्देश्य है। पात्रों के चरित्र चित्रण में सामाजिकता के साथ किया गया है। सावित्री और कुलीनता के चरित्र-चित्रण में आदर्श की पराकाष्ठा दिखाई जाती है। वेदव्यासी का चरित्र-चित्रण भी, सामाजिक और कथारहित चरित्र में हुआ है।

कीर्तिशाली का दूसरा उपन्यास 'मिशारिणी' है। 'मिशारिणी' की कथावस्तु एक मिशारिणी के जीवन के सम्बन्ध रखती है। जिसमें स्वयं, बरगुला और आदुराज के लक्ष्य जुड़े हुए हैं। कथावस्तु पद्यों में दर्शाती है, पर वह अधिक साक्षरक और दृष्टान्त पूर्ण है। कथावस्तु का विषय सामाजिकता, और सम्मिलित के साथ जुड़ा है। कथावस्तु में स्वयं-स्वयं पर ऐसे चित्र मिलते हैं, जो अधिक साक्षरक, और दृष्टान्त हैं। पात्रों में 'कल्लो' और रामनाथ आदि का मुख्य स्थान है। 'कल्लो' उपन्यास की सारिणी है, जो एक मिशारिणी है। 'कल्लो' के चरित्र में माँ द्वारा की विचारवादी के साथ ही बातें आते और बरगुला के चित्र हैं। 'रामनाथ' आधुनिक काल का युवक है, उसके चरित्र में उद्देश्य और भी साक्षरक हैं।

कीर्तिशाली अपने एक के अकेले उपन्यासकार हैं। उनकी उपन्यास कला उस पारिवारिक जीवन की कथा आधार रखती है, जो सभी प्रकार की उच्चलिनी का केन्द्र है। कीर्तिशाली ने अपनी पारिवारिक कथावस्तु में पारिवारिक जीवन के ही चित्र चित्रित किए हैं। उनकी पारिवारिक कथावस्तु में पारिवारिक जीवन के विभिन्न चित्र मिलते हैं, जो बड़े उद्देश्य पूर्ण, लेखक, और दृष्टान्तवादी हैं। उनके 'माँ' नामक उपन्यास में भी पारिवारिक जीवन का ही आदर्श चित्र मिलता है। पद्यों 'मिशारिणी', पारिवारिक जीवन के बाहर की बातें हैं, पर उसमें भी जीवन के वे मूल्यमय चित्र मिलते हैं, जिनमें हम स्वयं, अनुभव, और बरगुला की रचना में अभिविष्ट करते हैं।

कीर्तिशाली अपनी कथावस्तु के चुनाव में अधिक सत्य और सच दिखाने देते हैं। वे अपनी कथावस्तु के लिए ऐसे चित्रों का चुनाव करते हैं, जिनमें उनका पूर्ण परिचय है। उनके चित्र और उनकी कथावस्तु पर कथा पूर्ण दृष्टान्तवाद काट पड़ता है। वे अपनी कथावस्तु की अपनी विनयक में रखते हैं। उनके कथनों में उनकी कला और सुसज्जता दिखाई पड़ती है। उनकी कथावस्तु का विषय एक गति और कम से होता है। वे अपनी कथावस्तु में साक्षरक कथावस्तु का उद्देश्य नहीं करते। उनकी कथावस्तु अपने आप में पूर्ण होकर चलती है।

पक्षी काण्ड है, कि उनकी कथावस्तु के प्रसार में कहीं विचित्रता नहीं दिखाई पड़ती। उनकी कथावस्तु का प्रसार असीम रूप से ही बढ़ता हुआ चलता है।

कथावस्तु के प्रसार की असीमित रचना के लिए श्रीधरजी कुछ युक्तियों से भी काम लेते हैं। उनकी एक युक्ति तो यह है, कि वे अपने असीमित पात्राओं का समावेश नहीं करते, और दूसरी युक्ति यह है, कि वे पात्रों के अन्तर्-बीड़े कर्तव्यों को उत्प्रेषित करके कथा-प्रसार के मार्ग में अवरोध उत्प्रेषित नहीं करते, उनकी रचनाओं में साथ ही सीमित संस्कार में ही मिलते हैं। वे अपने पात्रों से ही अपनी रचना का आधार बनाते हैं। उनके पात्र जीवन के सातवह पर चढ़े होकर उनकी रचोढ़ा करते हैं। यद्यपि उनके पात्रों का सम्बन्ध जीवन के किसी विविध वर्ग के होता है, पर वे इस विविध वर्ग के द्वारा ही कल्पना जीवन को क्षुब्ध करते हैं। उनके पात्रों में लक्ष्मी और कलकत्ता का कल अन्धक है। उनके पात्र कृषिपति से दूर—सालता और सादरी की स्थिति में ही जीवन के विषय रचते हैं। उनके द्वारा रचे हुए जीवन के विषय अन्धक आत्मिक और अन्धकोलाहलक हैं।

श्रीधरजी के उपन्यासों में पात्रों का चरित्र चित्रण अधिक स्वाभाविकता के साथ हुआ है। चरित्र चित्रण में उन्होंने स्वाभाविकता पर ही अपने ध्यान को केंद्रित रखा है। उन्होंने चरित्र चित्रण में कई प्रभावितियों के काम लिया है। सभी प्रभावितियों में उन्हें अधिक उपलब्ध प्राप्त हुई। चरित्र के चित्रण के लिए उन्होंने दो साधनों से काम किया है—पात्रों की बातचीत, और उनकी रचना बहान। उन्होंने पात्रों की बातचीत और उनकी रचना बहान द्वारा ही उनके चरित्रों के चित्र उत्प्रेषित किए हैं। जो और प्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार के पात्रों के चरित्र-चित्रण अधिक आकर्षक और प्रत्यक्ष पुरा हैं। प्रत्यक्ष चरित्रों की अनेकता चित्रों के चरित्र अधिक लक्ष्मी से आकर्षित हुई है। प्रत्यक्ष पात्रों के चरित्रों पर परिनिष्ठाओं का अन्तर्गत चित्रित होता है। पात्रों के आन्तरिक चरित्रात्मक, और संवादों में स्वाभाविकता तथा अनुकूलता है। चरित्रात्मक में आन्तरिकता और संभव का ध्यान रखा गया है। चरित्रात्मक और संवाद छोटे छोटे तथा सुगठित हैं। चरित्रात्मक और संवादों में सुगठित तथा स्वाभाविकता पर भी अधिक बल दिया है।

श्रीधरजी के उपन्यासों के यक्ष्मा नाटकीय उपन्यासों के अन्तर्गत की जाती है। इसका कारण यह है, कि उनके उपन्यासों में आदि से होकर अन्त तक नाटकीय कला का ही दृष्टि देने का ही मिलता है। उनके उपन्यास नाटकीय रूप से प्रारम्भ होते हैं, और नाटकीय रूप से उनकी समाप्ति भी होती है। उनके पात्रों के चरित्रात्मक और संवादों में भी नाटकीय रूप का अन्तर्गत है। उनके पात्र नाट्य के से पात्र बात करते हैं, जो अपनी नाटकीय को अधिक सीमित और संकीर्ण रखते हैं। इस प्रकार उनके उपन्यासों में नाटकीय रूप अत्यन्त रूप से पाद करते हैं। श्रीधरजी ने एक नाट्य की भी रचना की है, जो कई बार अभिनीत हो चुका है।

अरुंधती प्रसाद 'दुर्लभ' कथित उपन्यासकार थे। उनका जीवन अत्यन्त में ही ही

सबाह में बलि और कमावका है। कबानि सुबन कमावका में कई घटनाओं का समावेश किया गया है, पर सभी घटनाएँ सुबन कमावका का भाग की तरह होती हैं। अतः कमावका के सबाह में कहीं भी विविधता नहीं दिखाई पड़ती। पात्रों की दो श्रेणियाँ हैं। पात्रों की एक श्रेणी तो यह है, जो किसी विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, और दूसरी श्रेणी के पास वे हैं, जिनमें अपनी विशेषताएँ हैं। प्रथम श्रेणी के पात्रों में सोइनकाव, तुलकाव, दलपति, और सहनेका इत्यादि शामिल हैं। विशेष श्रेणी के पात्रों में चिमुनसिंह और तुलकावसिंह इत्यादि लोगार आते हैं। दुईके और और स्वामिनी हैं। इनमें अन्तर्निहित और आन्तर्निहित की भावना की प्रकटा है। लोगों में चिमुली पाँचवाँ है। उनमें चिमुली से उनका इसका-एन प्रतीत होता है। जो पात्रों में हाथ, केमली, और आनखी का स्थान प्रमुख है। हाथ आदमी की है। वेन के क्षेत्र में उनका साथ बहुत और आर्याम है।

बर्माकी का दूसरा उपकाव 'विपदा की राखियाँ' है। विपदा की राखियों की कथावस्तु ऐतिहासिक होते हुए भी ऐतिहासिक नहीं है। इसका कारण यह है, कि इसकी कथा बहुत से कई कहानियों की घटनाओं का समावेश किया गया है। आधी कई कहानियों की घटनाओं की लेकर उन्हें एक रूप में रूँवा गया है। अतः इसकी कथावस्तु में ऐतिहासिक कथों का समावेश प्राप्त होता है। इसकी कथावस्तु का दूसरा पहलू को आधार मानकर संगठित की गई है। अन्तः के रूप में, विभिन्न भाग की घटनाओं का संगठन कहीं कदाचित्त के साथ किया गया है। घटनाओं का संगठन देवी देवी बहुतों और कदाचित्त के साथ किया गया है, कि कथावस्तु के सबाह में कहीं भी आवश्यक उपस्थित नहीं होता। कबानि कथावस्तु का संगठन विभिन्न भाग की घटनाओं के द्वारा है, पर आधुनिक और कदाचित्त के कारण कथावस्तु एक भाग की प्रतीत होती है। कथावस्तु में वेन, आन और सुद के साथ जुड़े हुए हैं। वेन के साथ अधिक मात्रा में पाद आते हैं। वेन का उनमें बच्चा और बहावक के साथ होते हैं।

सुबन रात्री में कुंकरसिंह, अलीमदान, देवीसिंह, बीचसिंह, कबानि रात्री, और मायसिंह इत्यादि का नाम आता है। सुबन रात्री में कुंकरसिंह का प्रमुख स्थान है। कुंकर की इसका प्रथम नाम है। जो पात्रों में 'कुंकर' के अर्थ की कथावस्तु है। 'कुंकर' और कुंकर-लोनों के आदमी प्रथम कथा के बिना 'विपदा की राखियों' में मिलते हैं। वेन 'सुबन' घटनाएँ इन दोनों के बीच-बिचों में ही संभव पड़ती हैं। बीच-बिचों का विपदा कहीं कदाचित्त और सामानिकता के साथ हुआ है। स्थान स्थान पर 'कला और कलात्मक' के अन्तर्गत बिच मिलते हैं। कबानि कथा का अंत प्रमुख की स्थिति में हुआ है, पर कथा के भीतर की आदमी बिच रहे हैं, उनमें सुबन में आनन्द, सुद और संतोष का ही संभाव होता है।

बर्माकी का तृतीय उपकाव 'पानी की रानी सदासिंह' है। इस उपकाव में बर्माकी के दो रूप दिखाई पड़ते हैं—इतिहासकार के, और उपकावकार के इति-

हलधर के रूप में उन्होंने इलाहाबाद के आँखबार पूर्ण खान के पीछा उल्लेख किया है, और उनके पीछा से वैसाखिन्द ऐतिहासिक इलाकों को आकर निवास करने का प्रारम्भ प्रभाव किया है। उन्होंने लखनौ नदी के बीकन के संक्षेप में भी तथा अपने उपनिषद् लिखते हैं, उनसे इतिहास के पूर्ण पर एक नया आलोचक पड़ता है। 'बादलों की घाटी' को इतिहास के इलाकों से ही हमारे का प्रभाव किया गया है। इससे इतिहास के लक्षण हमारे प्रभाव के साथ उत्पन्न का पद है, कि उनके लक्षण उपन्यास के साथ हम के पद हैं। यही कारण है, कि इन उपन्यास में कर्माधी की जीवन-विकासता उत्पन्न होने की शक्त होती है। उनके इन उपन्यास को यदि हम वर्तमानकाल कहें तो उपन्यास ही होता। क्योंकि आदि के लक्षण और एक लक्षण लखनौनदी का वर्णन विषय उत्पन्न ही उत्पन्न होता है। उपन्यास की मुख्य धारा कर्माधी की लखनौनदी है। ऐलक के उत्पन्न इन कृति में लखनौनदी के जीवन-विकास की नई प्रभावपूर्ण रूप से वर्णित किया है। वर्तमान-काल में वर्तमान उत्पन्न के साथ उत्पन्न है, जिसमें आकर्षण और उत्पन्न की आकर्षण काल के साथ उत्पन्न है।

'दुर्गादिन नू' की कर्माधी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी कथा बहुत का आकार वर्णित इतिहास है, पर इसके वर्तमानकाल का आकार है। कथावस्तु में 'दुर्गादिन नू' वर्तमानकाल ऐसी कथाओं का उत्पन्न किया गया है, की कथा-वस्तुओं पर आधारित है। कथा कथावस्तु ऐतिहासिक होने हुए की वर्णित उत्पन्न होती है। कथावस्तु का उत्पन्न उत्पन्न माँ, उत्पन्न, और बीकन के उत्पन्न के किया गया है। कथा वस्तु के उत्पन्न, और बीकन के उत्पन्न-विकास है, जिसके कारण कथा वस्तु में जीवन-विकास, और वर्तमानकाल उत्पन्न हो गई है। धारा में जीवन वस्तु उत्पन्न, उत्पन्न, उत्पन्न, उत्पन्न, उत्पन्न का उत्पन्न उत्पन्न है। दुर्गादिन नू, उत्पन्न उत्पन्न, उत्पन्न और उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न के उत्पन्न में ऐलक की कथा-वस्तु उत्पन्न होती है। 'कथावस्तु' की उत्पन्न की ऐतिहासिक उत्पन्न के ही आकार पर उत्पन्न है। कथावस्तु की कथावस्तु में कई वर्तमानकाल उत्पन्न उत्पन्न है, जिसमें कथावस्तु, उत्पन्न, उत्पन्न, और उत्पन्न उत्पन्न है। कथा वस्तु उत्पन्न और वर्तमानकाल है। उनके विकास में उत्पन्न और वर्तमानकाल है। धारा में उत्पन्न-विकास, उत्पन्न, उत्पन्न, उत्पन्न और उत्पन्न उत्पन्न है। 'कथावस्तु' मुख्य वर्णित है, जिसके विकास में ऐलक की उत्पन्न की उत्पन्न और उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न है। उत्पन्न-धारा में उत्पन्न-विकास, उत्पन्न, उत्पन्न, उत्पन्न और उत्पन्न उत्पन्न है। 'कथावस्तु' उत्पन्न वर्णित है, जिसके विकास में ऐलक की उत्पन्न की उत्पन्न और उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न है। उत्पन्न-धारा में उत्पन्न-विकास, उत्पन्न, उत्पन्न, उत्पन्न और उत्पन्न उत्पन्न है।

कर्माधी के द्वितीय बीकन के उत्पन्न उत्पन्न है, जिसके साथ इन उत्पन्न है— उत्पन्न, उत्पन्न, उत्पन्न की उत्पन्न, उत्पन्न-विकास, उत्पन्न-विकास की उत्पन्न, और उत्पन्न उत्पन्न है। इन उपन्यासों की उत्पन्न का आकार उत्पन्न-विकास उत्पन्न है। जिसमें 'उत्पन्न' की उत्पन्न की उत्पन्न-विकास का प्रभाव किया गया है, की जिसमें उत्पन्न-विकास की उत्पन्न की जीवन-विकास का आकार उत्पन्न गया है। वर्तमान इन उत्पन्न-विकास

उपन्यासों में भी वर्गीकी की औत्पन्निकता तथा के समन्वय देखने को मिलते हैं, किन्तु उनकी कला का विकास अधिक विरल। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में दुष्का है, उनका सामाजिक उपन्यासों में नहीं। सामाजिक उपन्यासों में उनकी कला में वह औत्पन्निकता नहीं दिखाई पड़ती, जो ऐतिहासिक उपन्यासों में दिखाई पड़ती है। ऐसा लगता है, कि सामाजिक उपन्यासों के विकास में उनकी कला की समिकता नहीं है। उनकी 'कला' जो कुन्दल खंड के खंडाहरी के विचार कड़ी है, और उनकी सादरी में पूर्णतः दुरे समझेले और बड़े कुन्दलों के बीचवर्ती कथाओं और कथा-रिक्तों के विकास में ही उनकी मन कला है।

वर्गीकी ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। उनकी कला ऐतिहासिक दृष्टि से ही कला समितार कती है। ऐतिहासिक दृष्टि से कला समितार करने में उनकी कला अधिक प्रवीण है। उनकी कला ने अपनी कथाकल्प के लिए कुन्दलखंड के खंडाहरी में परिष्कार करके उनके अंतर से अधिक-वर्तनी निकाली है। वर्गीकी की कला में, कुन्दल खंड के खंडाहरी में कुली ने बरती के नीचे लड़ी हुई अधिक-वर्तनी को बाहर निकाला है, और उन्हें जो प्रोत्साहन प्राप्त किया है। उनकी कला ने इन अधिकों के प्रकाश की—उनके कालीन की, अपने बर्तनी में दात कर खंडाहरी के समस्त उपनिषद किया है। उनका प्रकाश और दृष्टि है, मानिक है, और जीवन तथा कालि के मर हुआ है। वे अधिक हैं—कुन्दल खंड के खंडों की कथाओं विनये खंडा, बाह्य, देश, जीवन, दुष्कर्म, ज्ञान, और ज्ञान के खंडों को विन है। वर्गीकी ने कुन्दलखंड के खंडों के और कला इतिहास के दृष्टि में प्रवेश करके बड़े परिष्कार से इन कथाओं का प्रकाश किया है। वह कथाओं के खंडाहरी हैं, जो अपने पुन के जीवन, ज्ञान, और देश के जीवन को प्रकाश करती हैं। इसके अतिरिक्त जीवन, ज्ञान, और देश के लिए भी वह कथाओं अधिक जीवन दृष्टि है। वह दृष्टि रती में जीवन और कालि का प्रकाश करती है, तथा देश और ज्ञान के सामने उनके खंडों का जीवन दृष्टि विन एक कर उसे खंडा की और दृष्टि के लिए अधिक करती है।

वर्गीकी की कला केवल इतिहास के एक विविध पुन ही ज्ञान नहीं देखी, उनकी दृष्टि खंडों के बड़े पर बड़ी विराटता के साथ प्रमती है। उसे खंडों के प्रकाश-रिक्त में बड़ी बड़ी रक्त समितारों मिलती है, दृष्टि खंडों में उसे बड़ी बड़ी जीवन दृष्टि विन मिलती है, वह उन्हें प्रकाश के रूप में खंडाहरी है। उसने प्रकाश काज के इतिहास के भी अपने लिए कथाओं जुनी है, और अन्य काज के जीवन दृष्टि विन की भी उसने बहुत किया है। साधुलिक काज के भी उसने खंडाहरी दृष्टि विन लिए हैं। इस प्रकार कथाकल्प को खंडों में उनकी कला की दृष्टि अधिक दृष्टान्वित दिखाई पड़ती है। यद्यपि उनकी कथाकल्प ऐतिहासिक जीवन की ही विचार करती है, पर उनकी कला ने उसने कथाकाज का समितार करके उसे अधिक प्रकाश, समितार, और दृष्टि प्रकाश करा दिया है। एक और उनकी कथाकल्प में बड़ी ऐतिहासिक दृष्टि है, बड़ी दृष्टि और उसने कथाकाज के ज्ञान को बड़े दृष्टि है। इस प्रकार उनकी

कला में अपनी कलाकृत्य में ऐतिहासिक उन्नी, और आधुनिक विविधताओं का संयोग नहीं कुशलता के साथ स्थापित किया है। नहीं कारण है, कि उनकी कृतियों की कलाकृत्य में अधिक आधुनिक और ऐतिहासिक दोनों का संयोग हो गया है।

वर्गीय की कला में अपनी कलाकृत्य का अभिव्यक्ति कई प्रकार के भाव-उन्नी से किया है। उनकी कलाकृत्य में वीरता, पराक्रम, शक्ति, और उत्साह के विभिन्न अभिव्यक्ति हैं। वीरता, उनकी और ऐतिहासिक के विभिन्न से भी उनकी कलाकृत्य उद्घाटित है। वर्ग और वर्ग के विभिन्न भी उनकी कलाकृत्य में मिलते हैं। वर्गीय की कला में अपने ऐतिहासिक और-वर्गीय के बीच की उद्घाटना भी नहीं वर्गीय-वर्गीय के साथ की है। वीरता, पराक्रम और पराक्रम की वीरता में उनकी वीरता की तुल्यता कलाकारों अधिक संयोग प्राप्त होती है। उनकी कला में नहीं वीरता और पराक्रम के लोक-वर्गीय विभिन्न के संयोग का सुझाव है, नहीं वह वीरता के तुल्यता और आधुनिक विभिन्न की अभिव्यक्ति करने में भी अधिक दृष्ट है। उनकी आधुनिकता कला की वीरता नहीं विवेचना है। इस प्रकार के बीच वर्गीय भावनाओं के आधुनिक विभिन्न ऐतिहासिक उत्पत्ति की कलाकृत्य में बहुत कम उद्घाटन होते हैं। वर्गीय की कला अपने वर्गीय प्रकार के उद्घाटनों में, किन्हीं आधुनिक उत्पत्ति करते हैं, आधुनिक उत्पत्ति की अपनी कलाकृत्य का अभिव्यक्ति करते हैं। आधुनिक कलाकृत्य के साथ ही अपने आधुनिक वीरता भी मिलती है।

वर्गीय की आधुनिकता कला नहीं कलाकृत्य के विभिन्न और संयोग में प्रतीत है, नहीं आधुनिक विभिन्न में भी उनकी अधिक कुशलता देखने को मिलती है। उनके दोनों ही प्रकार के उत्पत्ति से विभिन्न संयोग में ही साथ साथ करते हैं। उन्होंने अपने उत्पत्ति में उनके ही वर्गीय की स्थापना दिया है, किन्हीं वर्गीय की उनकी कलाकृत्य की आवश्यकता है। नहीं कारण है, कि उनके आधुनिक विभिन्न में सामाजिकता है। उन्होंने वर्गीय के आधुनिक विभिन्न पर सुझाव देने से अपने व्यक्त की केन्द्रित करता है। उनके साथ ही प्रकार के हैं। उनके दृष्ट प्रकार के वर्गीय की इस दृष्ट दृष्टि ऐतिहासिक और वर्गीय प्रकार के वर्गीय की कुशलता ऐतिहासिक वह करते हैं। उनके साथ दृष्ट और आधुनिकता के विभिन्न अभिव्यक्ति करते हैं, और वर्गीय और पराक्रम के। उन्होंने अपने वर्गीय के दोनों प्रकार के विभिन्न की स्थापना के बीच में दाखा है। उनका प्रत्येक विभिन्न सामाजिक, दृष्ट वर्गीय, और आधुनिक आधुनिक है। वहकि उनकी कला की मुख्य वर्गीय के आधुनिकता में भी आधुनिक कलाकृत्य प्राप्त हुई है, पर ही वर्गीय के आधुनिकता में उनका अधिक विकास देखने को मिलता है। की वर्गीय के आधुनिकता में वर्गीय की कला की आधुनिकता उत्पत्ति है।

वर्गीय की कला नहीं आधुनिकता है। वह अपने वर्गीय पर वीर वीर कलाकृत्य अभिव्यक्ति करते हैं। की नहीं साथ, किन्हीं वह आधुनिक आधुनिकता ही वर्गीय की ही, संयोग की वीरता में दाखा नहीं पाता। वर्गीय की वीरता, और पराक्रमता पर भी उनकी कला का दृष्ट अभिव्यक्ति है। साथ ही करते हुए वर्गीय की अपनी मर्यादा

और शक्ति का दूरा-दूरा व्यापन करता है। सब चीजें हैं वे समान, और अनुकूलता का भी व्यापन करते हैं। वे उसकी ही बात चील करते हैं, बिनाही उन्हीं का व्यवसाय होता है। उनकी बात चील में लक्ष्य का पूर्ण रूप से समावेश होता है। उनमें बाह्यीकरण का प्रत्येक क्षण लक्ष्य को ही दृष्टि में रख कर बाहर निकलता है। उनके बाह्यीकरण में एक विशेष 'कला' देखने को मिलती है। उसे हम आदर्शीय 'कला' कह सकते हैं। पात्रों के बाह्यीकरण में 'आदर्शीय कला' होने के कारण उनकी रोचकता, और प्रभावोत्पादकता अधिक उच्चतर बन गई है।

एक प्रकार की कला की औपन्यस्तिकता पात्रों के सभी प्रकार परिपुष्ट है। अपनी परिपुष्टता ही के कारण वह किसी दिन हिन्दी के उपन्यास-काल में कलाशिक्षा बनने का रही है। कला की एक परिपुष्टता ही के कारण समीक्षक सब कलाओं को हिन्दी का 'कालर सार' कहते हैं।

संक्षिप्त रूप से 'उप' सामाजिक कथाकार है। उन्होंने कई उपन्यासों की रचना की है, जिनमें भद्रहीनों के सुदृढ़, दिल्ली का दलाल, कुदुसा की बेटी, संक्षिप्त रूप से 'उप' की विद्वत्ता की ही लेकर अपने उपन्यासों की कथावस्तु का गठन किया है। उनकी औपन्यस्तिक कला सामाजिक विद्वत्ता के लिए उप-निष्ठ करने में ही अपनी कलात्मिकता समझते हैं। उनकी 'कला' को 'समाजवाद' के अधिक डेरा है। समाजवाद का विषय उपनिष्ठ करने में वह मान, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के निर्माण के उस की लक्ष्य कर जाती है। कथोक्ता, और सुनिश्चित उनकी कला की प्रभाव विशेषता है।

सुदामाचरण सैत ने सामाजिक विद्वत्ता की ही आधार मान कर अपने उपन्यासों की रचना की है। उनके उपन्यासों में दिल्ली का व्यवसाय, दिल्ली का कला, सुदामाचरण सैत सैत दूध, मातर लक्ष्य, प्रेमसमय और नई इत्यादि अधिक अधिक हैं।

सैतकुमार सुनिष्ठ कथाकार है। प्रेमसमय के आधार रही वह कथाकार है, जिन्होंने हिन्दी-उपन्यास काल में एक नई दिशा को स्पष्ट किया है। वह नई सैतकुमार दिशा है, मान की मनोवैज्ञानिकता के लक्ष्य में सभी प्रकार टाकना। सभी प्रेमसमय बहुत पहले मान-काल में मनोवैज्ञानिकता की स्थापना कर चुके थे, पर सामाजिक समस्याओं के सुधार में अधिक प्रभाव होने के कारण इसकी मनोवैज्ञानिकता अधिक स्पष्ट न हो पायी थी। एक काल को भी सैतकुमार ने ही पूर्ण किया है। सब सैतकुमार की ही इन मान-काल में मनोवैज्ञानिकता की स्थापना का भेद देते हैं। भी सैतकुमार की मनोवैज्ञानिकता का आधार व्यक्ति की प्रभाव है। वे अपने उपन्यासों में व्यक्ति को समस्याओं की ही अधिक महत्व देते हैं। सभी एक हिन्दी की उपन्यास कला कथि के जीवन की ही लेकर, व्यक्ति की भी सैतकुमार इसे व्यक्ति के जीवन-काल पर मान है। व्यक्ति के जीवन-काल

तब पर आदि के कारण उपनिषद् का पढ़ने के अधिक स्थान, विचार, धर्म और सुखानिष्ठ बन गया है। उसमें हमने एक उल्लेख करने में जो विश्व सामने उपनिषद् फिर है, उनमें भीतर, और समाज का हृदय सुश्रुति की ओर है।

श्री वैश्वदेवी ने कई उपनिषद् की रचना की है, जिनमें पञ्च, उपनिषद्, सुनीत, महापञ्च, महापञ्च, और अन्तर्गत सभी शास्त्रों अधिक प्रसिद्ध है। 'पञ्च' वैश्वदेवी की का प्रथम उपनिषद् है। 'पञ्च' की कथाकथा कई कौशल के साथ संश्लेष की गई है। उपनिषद् का नाम उपनिषद् है, पर वह सामाजिक और आधुनिक समाज की के समाज में होती हुई अपने हृदय की ओर आगे बढ़ती है। समाज और सुश्रुति समाज की कथेक कथाओं के बिना उसमें बने है। ऐसा कहना है, सभी वह सुश्रुति और समाज समाज की कथेक कथाओं की साथ देकर उपनिषद् निदान सामाजिकता में ही खोजती है। समाज में अधिक समाज धर्म, और सामाजिक है। उसमें हृदय और सुश्रुति के कथेक हृदय धर्म हुए हैं। हृदय और सुश्रुति के हृदयस्थान जिनके के कारण समाज में मार्मिकता अधिक बढ़ गई है। सभी में बड़ी, काय मन, और विचार शास्त्र का प्रमुख स्थान है। सभी का धर्म विश्व निवारों के आधार पर बिना गया है। सभी के निवारों में समानता के साथ ही प्रमाणित है। शास्त्रिकता और सामाजिकता ही उनके निवारों का हृदय है। उनके हृदय का 'मन' बलात्की, और व्यापारों में धर्मिकता की मायना है। उनके जीवन के एक एक समय धर्मिकता के बिना नहीं है। वे अपने जिन बलात्की, और व्यापारों में बिना निवारों काय, और जीवन की ओर में समाज दिखाई बढ़ते हैं।

'उपनिषद्' की वैश्वदेवी का प्रमुख उपनिषद् है। इसकी रचना उन्होंने की हृदय काय के साथ संश्लेष करने में की है। इसमें वैश्वदेवी का अधिक अर्थ नहीं है। इसमें हमने उनका एक कथा के दर्शन नहीं होते, जिनमें 'पञ्च' में सभी कायों की हृदय का जिन का। 'सुनीत' की वैश्वदेवी की खोजती हुई है। सुनीत की समाज में अन्तर्गत, और अन्तर्गत हुई है। समाज का संश्लेष कई सभी के बिना गया है, जिनमें पञ्च में, उपनिषद् में, सभी का जीवन, और सामाजिक काय हृदय है। सभी सभी में सामाजिक सभी की ही समाज मिलती है। सभी सुनीत की समाज की 'धर्म' काय के सामाजिक काय में जिन काय की आधुनिक न होती। समाज में सामाजिक सभी की समाज होने ही के कारण समाज एक समाज की दिखाई बढ़ती है। सभी में सुनीत, उपनिषद्, और अन्तर्गत शास्त्रों हृदय है। सभी का धर्म विश्व शास्त्रिकता की आधार मान कर बिना है। सभी के धर्म विश्व में शास्त्रिकता का अधिक समाज होने के कारण काय अधिक शास्त्रिक में बन गई है। सभी के धर्म विश्व, और समाज के निवारों में विश्वेश्वर की समाज दिखाई बढ़ती है; परन्तु समाज 'सुनीत' में धर्म, और समाज का समाज सामाजिक काय में नहीं ही गया है।

'पञ्च' में आधुनिक सभी की समाज है। समाज की समाज समाज-

विस्तार की आवश्यकता का साक्षर हुई है। इसकी कमानाहु में वह साम्यवादिता और अ-वैज्ञानिकता नहीं है, जिसे हम 'कुलीया' में देख चुके हैं। इसके विपरीत हमें जीवन की वास्तविकता है। 'जगत्-धर्म' में भी जीवन की वास्तविकता के ही चित्र मिलते हैं। 'जगत्-धर्म' में विचारों के लक्ष्य उल्टे पड़े हैं। 'जगत्-धर्म' में उनकी कला का दार्शनिक रूप पुनः दिखाई पड़ता है। जगत्-धर्म में दार्शनिकता में उनकी जीवनवादिता की आकांक्षा-एक का स्थान है।

श्री बेनेन्द्रजी की जगत्-धर्म कला अधिक संवेदित और व्यापक हुई है। वह जगत्-धर्म कलाकृत के लिए समाज के भीतर प्रवेश करती है। समाज के भीतर स्थिति उसे साक्षर प्रिय है। इसमें स्थिति की समस्याओं से ही जगत्-धर्म कलाकृत का अभिव्यक्ति किया है। इसमें स्थिति की समस्याओं की दृश्य, और बुद्धि—दोनों की ही महत्त्वता से पराजित का प्रभाव किया है। उसके प्रभाव में दृश्य और बुद्धि-दोनों के ही सभी का संघर्ष साथ साथ दिखाई देता है; परिणाम स्वरूप उसके प्रभाव में बड़ी बुद्धि की दीक्षा और शुद्धता का समन्वय हुआ है, बड़ी उसमें दृश्य की सरलता और जीवनता भी है। इस प्रकार बेनेन्द्रजी की कला में जगत्-धर्म कलाकृत में दृश्य और बुद्धि के सभी का संघर्ष बड़ी कुशलता के साथ स्थापित किया है। उनकी कला में विचार-प्रवृत्ति है। वह जगत्-धर्म और कलाकृत के विस्तार की ओर 'मानव न देख' चित्रन और विस्तारण की ओर ही अधिक ध्यान देती है। यही कारण है कि उनके जगत्-धर्म में जगत्-धर्म का समाज बना जाता है। केवल एक मुख कला का विचार करना ही उनकी कला की दृष्टि है। वह कला के विकास और विस्तार के लिए मुख कला के दार्शनिक कलाओं का समन्वय नहीं करती। वह जगत्-धर्म कलाकृत के विकास में चित्रन और विस्तारण के सभी की ही अधिक महत्त्व देती है। वह कलाकृत के विकास के लिए जीवन के प्रत्यक्ष महत्त्व में प्रवेश करती है, और बुद्धि के बुद्ध कलाओं के प्रति आदर मात्र रखती हुई समुदाय सभी को एकत्र करती है। वह जीवन की दृष्टि की बुद्धिगत संकेतों और चित्रों की आकांक्षा के ही देवता है। वह जगत्-धर्म कलाकृत के विकास के लिए जीवन के प्रत्यक्ष संकेतों पर ही अपने ध्यान की केन्द्रित रखती है। उनकी कलाकृत में जीवन के प्रत्यक्ष संकेतों से ही जीवन की दृष्टि का रूप प्राप्त किया है।

श्री बेनेन्द्रजी की कला प्रत्यक्ष में ही महत्त्वता का दर्शन करती है। वह कला में ही जीवनता का आन्तरिक भाव है। यही कारण है, कि इसमें अपने लिए—अपने व्यक्तित्व के लिए स्थिति की चुन है। उसके साथ साथ समाज के ही प्राप्ति है, पर के देखे जा रही है, जिसके कारण समाज काव्यवित है—जिसकी ओर समाज काव्य-उत्कर्ष से देखता है। श्री बेनेन्द्रजी की कला व्यक्ति के महत्त्व की प्रवृत्ति है। कला के रूप में उन्होंने व्यक्ति के जीवन की समस्याओं पर ही प्रकाश डाला है। समस्याओं पर प्रकाश डालने की उनकी ऐसी मनोवैज्ञानिक है। उन्होंने अपनी मनोवैज्ञानिकता के दार्शनिक रूपों का भी समन्वय किया है। उन्होंने स्थिति के

कला को उठाने, खाने काकाशु से ठीक किया है। 'विद्यार्थि' से भी विद्यार्थी का ही प्रतिपादन किया गया है। 'ब्रह्म' से वेद की समझावों के विषय है।

श्री विद्यापदादिक गुण में चार उपन्यासों की रचना की है—श्रीद, अष्टाव, आर्षाद्या, भारी, और कुल-रत्न। श्रीद उनका प्रथम उपन्यास है। इसमें कथावस्तु की विस्तृत जानकारी जीवन के सम्बन्ध रखती है। कथावस्तु में नारी-वर्णन गुण-वर्णन के कारण श्रीद के विशेष विषय है। यहाँ में शोभा-पम, रसपम, शरीरी और भिद्योरी का प्रमुख स्थान है। दूसरा उपन्यास अष्टाव आर्षाद्या है, जिसकी कथावस्तु का संवत्सर विभिन्न व्यक्तियों के मन के स्थानों से किया गया है। कथावस्तु में वेद-व्यास, व्यासना, पुत्रा और द्विजा तथा ब्रह्मन्-हारादि के माधुर्य-गुणों का वर्णन है। यहाँ में 'रसना' और रासनाका का प्रमुख स्थान है। 'नारी' गुणकी की शरीरी कृति है, जिसमें कई शारीरिक-व्यवस्था का वर्णन है। 'नारी' की कथावस्तु में नारी-वर्णन के शक्ति-विषय है। यहाँ में बहना का प्रमुख स्थान है।

प्रधानपदावस्तु श्रीव्यास रासनाक कथावस्तु है। इसमें अष्टाव उपन्यासों का विचार-व्यवस्था के उन व्यक्तियों के किया है, जिन्हें हम नई समझा के व्यक्तित्व कहें। श्री प्रधानपदावस्तु कहते हैं, और जो वेदों में विचार करते हैं। इनके द्वारा श्री वारण-काली उपन्यास इसी व्यक्तियों के जीवन की वस्तुओं, और इसी के द्वारा वेद-वस्तु की समझाओं की समझ-विषय का वर्णन है। इनके उपन्यासों में विद्या, विद्या, विद्या, अष्टाव, और चार की और प्रमुख है। 'विद्या' की कथावस्तु विचार के शक्ति के कारण पर-व्यवस्था की गई है। कथावस्तु में तीन-व्यवस्था के विभिन्न-व्यवस्था का वर्णन है, जो वेद-व्यवस्था, वेद, और शक्ति-विषय है। माधुर्य-व्यवस्था के संवत्सर में वैद्यविद्या के नाम किया गया है। अष्टाव-व्यवस्था विभिन्न-व्यवस्था के है, पर उसकी संवत्सर-कथावस्तु में इस प्रकार की गई है, कि वेद-वस्तु में ही-व्यवस्था है, और वेद-व्यवस्था का ही-व्यवस्था का वर्णन है। यहाँ में माधुर्य-व्यवस्था, कुल-व्यवस्था, कुल-व्यवस्था, विद्या-व्यवस्था, शरीरा, शरीरा, अष्टाव, और विद्या-व्यवस्था का प्रमुख स्थान है। यहाँ द्वारा बहना-व्यवस्था के है, पर वेद-व्यवस्था-व्यवस्था के शक्ति भी-व्यवस्था रखते हैं। यहाँ के अष्टाव-विषय में अष्टाव की व्यवस्था दी गई है। अष्टाव-व्यवस्था है, और अष्टाव की और विशेष-व्यवस्था से उपन्यास विचार-व्यवस्था है।

श्रीव्यासव्यवस्था का दूसरा उपन्यास 'विद्या' है। विद्या की कथावस्तु का संवत्सर-व्यवस्था-व्यवस्थाओं की व्याख्या का वर्णन किया गया है। 'विद्या-विद्या' की व्यवस्था-व्यवस्था की कथावस्तु की प्रमुख व्यवस्था है। 'विद्या-विद्या' की व्यवस्था के सम्बन्धित-विषय ही-व्यवस्था में वर्णन करते हैं। 'विद्या' श्रीव्यासव्यवस्था की शरीरी कृति है। विद्या की कथावस्तु का संवत्सर-व्यवस्था की शक्ति-व्यवस्था का वर्णन किया गया है, जिसमें वैद्यविद्या-व्यवस्था की शक्ति-व्यवस्था के विषय है। दोनों व्यक्तियों के वैद्यविद्या-व्यवस्था

में समाप्त है, जिससे कलाकर्म के अन्त में शिथिलता दिखाई पड़ती है। पात्रों में 'काली शिवा' का चरित्र अधिक कलात्मकता के साथ चित्रित किया गया है।

श्रीमदस्त्रीचरण कर्मा गणेशाय नमः । उनके तीन उल्लास प्रदर्शित हुए हैं—विज, श्रेष्ठा, देवि देवि शम्भो, और तीन सर्व । 'विज श्रेष्ठा' की कथाएँ

अविद्याबली चमक
बगी

हथेली का सम्बन्ध, किन्तु सम्बन्ध की समझना अधिक है। क्या बहुत रोचक और रोचक नहीं है। उसमें वाच-पुष्प के अर्थ का विवेकन नहीं सम्मिलित के साथ किया गया है। वाचों में विषय क्षेत्र, कुलपति, और बीच गुण का परिणाम है। वाचों के परिणामविषय में विचारों की ही प्रभावता ही नहीं है। लेकिन का सम्बन्ध परिणाम-विषय की और प्रमुख रूप से वाच का है। 'हीन वर्ग' वर्गों की हथेली हथेली है। इसकी कथा का अर्थ का साधुनिक जीवन के कई हथेली के विषय गया है, जिसमें वाच-पुष्प सम्बन्ध का प्रभाव, विषय-विषय और 'हीन वर्ग' वर्गों के साथ प्रभाव है। लेकिन ने क्या-क्या का सम्बन्ध वाच-पुष्प सम्बन्ध के प्रभाव की ही प्रभाव कर में गया है, पर वह प्रभाव सम्बन्ध है का गुण—इसका समझना क्या-क्या में नहीं ही गया है। क्या-क्या रोचक और प्रभाव नहीं है। उसमें जीवन और मूर्ति के अर्थ है। पर वाचों में जीवन और मूर्ति का सम्बन्ध है। वाचों में सम्बन्ध-विषय की भाषा भी अधिक है। वाचों के परिणाम-विषय में विचारों की वाच-विषय का भी बहुत कम अर्थ सम्बन्ध गया है। कई वाच देखे हैं, की अपनी विषय के दूर-दूर सम्बन्ध कार्य-प्रभाव करते हुए दृष्टिकोण होते हैं। 'हिंदू मेरे रसों' वर्गों की मूर्ति-वर्णन हथेली है। इसकी क्या-क्या के साधुनिक जीवन के अर्थ लगे हुए हैं, जिसमें कुछ का सम्बन्ध सम्बन्ध के और कुछ का प्रभाव के हैं। साधुनिक जीवन के विषय-विषय वाचों की बीच कर क्या-क्या की रोचक बनाते का प्रभाव किया गया है। क्या-क्या के साधुनिक जीवन को एक अलग दिशाई वह नहीं है, पर वाचों में सम्बन्ध-विषय का सम्बन्ध है। 'हीन वर्ग' के वाचों की भाषा ही 'हिंदू मेरे रसों' के साथ की सम्बन्ध-विषय और सम्बन्ध-विषय दिशाई नहीं है।

एशिया/एशियाई सादर/कदी कथाकार है। इनके द्वारा की प्रख्यात शिखर है—‘आमरीम, बहारा, पुरुष और गरी, दुर्भाग्य, जानी क्या, और योकी राक्षस/राक्षसि’ टीवी। ‘आमरीम’ की कथाकार में जीवन के कई कठोर का सम्भव है। लेखक के कालों में ही ‘ऐकरी’ की एक दिवस/कथा कहानी का रेश लेखक धर्म और समाज के अन्तर्गत कथे पिछे कोलकर रख देने की कोशिश की गई है। काल में ‘आमरीम’ की कथाकार कुछ दली प्रकार की है। कथाकार के साहित्यिक शोध, साहित्यिक समाल, और साहित्यिक वर्ग के अन्तर्गत एशियाई विभिन्न उम्र शिखर है, जो दो शिखरों के अन्तर्गत-दली के दिखाने देती है। कथाकार के संसार में लेखक की कथाकार/कथाकार दिखाने देती है। कथाकार में सन्तान-सन्तान पर ऐसे शिखर

चित्र मिलते हैं, जो हृदय में कोलाहल उत्पन्न करते हैं। पात्रों में 'बेला' और 'बिजली' प्रमुख हैं। शेष पात्रों की अपेक्षा 'बेला' और 'बिजली' के चरित्र-विकास के लिए की गई है। 'बेला' और 'बिजली'—दोनों का चरित्र अधिक द्रष्टा-त्मक और तुलनात्मक है। 'पुरुष और नारी' में प्रेम की समस्या का विषय किया गया है। यह प्रेम की समस्या कई राजनीतिक और सामाजिक तथ्यों को दर्शा करती हुई चलती है। प्रेम की समस्या के चित्रण के मार्ग में पुरुष और नारी के जीवन और उसके प्रेम सम्बन्धी अनेक मार्मिक चित्र मिलते हैं, जो हृदय को आश्लेषित कर देते हैं। पात्रों में 'सुधा' और 'अर्जुन' इत्यादि का प्रमुख स्थान है। 'सुधा' के चरित्र का विकास अत्यधिक स्वाभाविकता के साथ हुआ है। उसके चरित्र में गंभीरता, वास्तविकता, संयम, और आदर्श हैं।

श्रीमन्मन्मथप्रसाद वाजपेयी यथार्थवादी कथाकार हैं। उन्होंने अपने जीवन, और संसार में चारों ओर जो कुछ देखा है, और जो कुछ जाना है, उसी को अपने कथा-श्री भगवती प्रसाद सूत्र में अभिव्यक्त किया है। उनकी अब तक की कृतियाँ वाजपेयी सामने आ चुकी हैं, उनसे पदीभाव होता है, कि उनकी कला मौलिकता के अंगिन में लालसाओं और आकांक्षाओं के साथ खेलना ही अधिक पसंद करती है। उनकी 'कला' व्यक्ति को सुखोपभोग की ओर प्रवृत्त वेग से मोड़ती है। इस रूप में हम यह कह सकते हैं, कि उनकी कला वास्तवों को उन्मेषित करती है। अब तक उनकी कई कृतियाँ सामने आ चुकी हैं, जिनमें प्रेम पथ, आतिमा, पिपासा, पतिला की शायना, निम्नस्थ, और गुप्तधन इत्यादि मुख्य हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कई श्रेष्ठ कथाकार हैं, जो इस समय उपन्यास साहित्य की संवर्द्धना में लगे हुए हैं। इन कथाकारों में श्री अश्वय, श्रीवृषपाल, श्रीधर्मकांत त्रिवाड़ी 'गिराला', श्रीगोविंद वल्लभ 'पन्थ' श्रीठाकुर श्रीनारायणसिंह, श्रीगिरिजादत्त गुप्ता 'गिरीश', श्रीसर्वदानन्द वर्मा, श्रीअनूपलाल मंडल, श्रीनरेन्द्र प्रसाद 'नागा', श्री उपेन्द्रनाथ 'अरु', श्री कदम्बविपाटी, और श्रीश्रीकारनाथ 'शरद' इत्यादि का मुख्य स्थान है।

८

नाटक

विषय सूची

१—नाटक और उसका विकास	१८७
(अ) नाटक का जन्म, (आ) नाट्यकला का विकास	
२—प्राचीन नाट्यकला का स्वरूप	१९४
(इ) दृश्य काव्य, (ई) उपकरण और रूपक, (उ) नाटक, (ऊ) प्रकरण, (ए) भाषा, (ऐ) प्रहसन, (ओ) डिम, (औ) व्यायोग, (अं) सम्यकार, (अः) अङ्ग, (क) वीथी, (ख) ईहामृग, (ग) उपरूपक के भेद, (घ) नाटिका, (ङ) श्रोतक, (च) प्रकरणिका, (छ) सहक। (ज) रूपक के उत्पन्न-वस्तु, (झ) अर्थ प्रकृति और उसके भेद, (ञ) स्थिति और उसके भेद, (ट) दृश्य वस्तु और सूच्य वस्तु, (ठ) अघोषक्षेपक और उसके भेद, (ड) पात्र, (ढ) रस, (ण) अभिनय, (त) वृत्ति, (थ) रूपक का प्रारम्भ।	

३—हिन्दी नाटक-काल का इतिहास

६०६

(२) कीर नाट्य काल, (३) मॉडि काल, (४) रीति काल, (५) आधुनिक काल,
(६) हिन्दी नाटक के इतिहास का वर्गीकरण, (७) भारतेन्दु काल के पूर्व, (८)
भारतेन्दु काल, (९) उत्तर काल, (१०) प्रसार काल, (११) आधुनिक काल ।

४—हिन्दी नाटक-काल का वर्गीकरण काल

६०७

(१) मुख्य विधात्मक काल, (२) विधा, (३) उद्देश्य, (४) शैली, (५) नाटक
के लक्ष्य, (६) दुर्भाव और दुर्भाव, (७) दुर्भाव का विशेषांक ।

५—हिन्दी नाटक—भारतेन्दु के पूर्व

६०८

(१) भारतेन्दु के पूर्व का नाटक साहित्य, (२) अनुरोध, (३) सम्यक्ता, (४)
इसमान नाटक, (५) प्रकाश चन्द्रोदय, (६) सङ्गठन, (७) मॉडि, (८)
राजाधर महानाटक, (९) कल्याणनाटक, (१०) नानाधर उदयार्ति, (११) कल्याण
सुन्दर ।

६—हिन्दी नाटक—भारतेन्दु काल

६०९

(१) भारतेन्दु इतिहास, (२) भारतेन्दु इतिहास की नाटककाल, (३) भार-
तेन्दु की नाटककाल के लक्ष्य, (४) श्री विद्याधर, (५) उद्देश्य, (६) राजा
धर की नाट्य, (७) नानाधर मह, (८) प्रकाशनाटक विधा, (९) राजा-
धरनाटक, (१०) प्रकाश ।

७—हिन्दी नाटक—उत्तर काल

६१०

(१) नवीनता का उद्देश्य, (२) उत्तर काल के नाटककाल, (३) नवीनता प्रकाश,
(४) नवीनता मह, (५) कल्याण नाटक काल, (६) इतिहास ।

८—हिन्दी नाटक—प्रसार काल

६११

(१) नवीनता का उद्देश्य, (२) प्रकाश की नाटक-साहित्य, (३) प्रकाश की
नाटककाल, (४) प्रकाश की रचनाई और नाटक के लक्ष्य, (५) श्री कल्याण
नाटक काल, (६) नवीनता की नाटककाल, (७) नवीनता के नाटक और नाटक के
लक्ष्य, (८) रीति नाटककाल, (९) रीति की नाटककाल, (१०) रीति के नाट्य
के नाटक के लक्ष्य ।

९—हिन्दी नाटक—आधुनिक काल

६१२

(१) आधुनिक काल, (२) आधुनिक काल के नाटककाल, (३) रीति नाटक
काल, (४) नवीनता की नाटककाल, (५) नवीनता के नाटक और नाटक लक्ष्य,
(६) श्री उद्देश्य मह, (७) नवीनता की नाटककाल, (८) नवीनता के नाट्य में
नाटक के लक्ष्य, (९) श्री लक्ष्यनाटक विधा, (१०) विधा की नाटक लक्ष्य,
(११) विधा की नाटककाल, (१२) विधा के नाटक और नाटक के लक्ष्य, (१३)
श्री इतिहास में, (१४) रीति की नाटक-साहित्य, (१५) रीति की नाटककाल,
(१६) रीति के नाट्य में नाटक के लक्ष्य ।

नाटक, और उसका विकास

नाटक और नाट्य में 'नट' शब्द समाहित है। 'नट' शब्द संस्कृत 'नट्' शब्द से बना है। 'नट' शब्द का अर्थ है खेल करने वाला। 'नट' की ही मूलि 'नाटक' नाटक क्या है? और 'नाट्य' शब्द भी 'नट' शब्द से ही बना है, जिसका अर्थ है सांत्विक धारों का प्रदर्शन। प्राचीनकाल में सात्विक धारों के प्रदर्शनकारी ही 'नट' कहलाते थे। फलतः कित्त साहित्य का सम्बन्ध इन नटों से होता था, अथवा जिसमें सात्विक धारों के प्रदर्शन की बात होती थी, उसे नाटक कहते थे। 'नाटक' मधीन शब्द है। अति प्राचीनकाल में 'नाटक' के स्थान पर 'रूपक' शब्द का ही अधिक प्रयोग होता था, और 'नाटक' को 'रूपक' का ही एक भेद माना जाता था। संस्कृत के नाट्य साहित्य में, जिसकी प्राचीनता, रत्नावलीय है, रूपकों की ही अधिकता मिलती है। 'रूपक' के कई भेद हैं। प्राचीन काल में 'नाटक' की मधुना भी 'रूपक' के भेदों के अन्तर्गत ही की जाती थी, किन्तु नाटक रूपक का एक ऐसा अंग है, जिसका रूपक उससे बहुत मिलता जुलता है। कतः नाटक 'रूपक' का भेद होने पर भी उसी के समान माना जाता रहा है। आज जो 'नाटक' का प्रयोग 'रूपक' के ही अर्थ में स्वतन्त्र रूप से किया जा रहा है, वरद् कहना तो यह चाहिये, कि आज साहित्य के अन्तर्गत नाटक ही नाटक है, और उसका स्रोत 'रूपक' विद्युत या ही गया है।

'कना रोपायु रूपक' को रूपक कहते हैं; दूसरे रूपों में 'रूपक' यह है, जिसमें रूप का आरोप विषा जाता है। 'नट' का अभिनय करता था, उस वह किसी व्यक्ति का रूप बना करके उसके अनुसार ही आचरण करता था, और उसी के समान चेष्टाएँ भी किया करता था। उसके रूप और उसकी चेष्टाओं में दृढी कुशलता होती थी, कि वह अत्यधिक स्वाभाविक की जात होती थी। जो नट अनुकरण करने में कितना ही अधिक कुशल होता था, उसके अभिनय में उसनी ही अधिक स्वाभाविकता जाग्रत होती थी। 'रूपक' में अनुकरण की ही विशेषता थी। नाटक का आधार भी अनुकरण ही था। अतः मौलिक परिभाषा के आधार पर 'नाटक' और 'रूपक' में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है।

प्राचीन काल में साहित्य में 'रूपक' की महत्त्व पूर्ण अवधारणा हुई थी। संस्कृत का प्राचीन नाट्य-साहित्य रूपकों की रचना से मरा पड़ा है। संस्कृत साहित्य के

किन्तु जो व्यवस्थाओं में, उसके द्वारा के मीटर के लंबाई के रूप में बार-बारियों को निकाली होती है। क्या नहीं का समझ, कि हमने अपने जीवन-संघर्ष में किसी अनुभूति को या संभवतः किया होगा। विकासवादियों का कहना है, कि उनकी अनुभूतियों के आधार पर नाटक का काम हुआ है।

विकासवादियों के मत के अनुसार नवीं नवीं मानव संस्कृति की लोढ़ी पर उत्तर बढ़ता गया है, नवीं नवीं उनकी अनुभूतियों को परिष्कृत, और उत्पत्तिशील करती रही है। अनुभूतियों के परिष्करण के परिणामस्वरूप हमने अभी माना दोषों में अपने जीवन का महीन स्तर प्राप्त किया, यहाँ नाटकशास्त्र के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण मर्यादा की स्थापना की। हमने समझे नहीं, कि आदि काल में नाटकशास्त्र मानव के जीवन तक ही सीमित थी, किन्तु अब अपनी प्रगति के साथ ही हमने माना का आधिकार किया और वह जिससे-वर्द्धित गया, तथा अपनी अनुभूतियों को साहित्य के क्षेत्र में प्रतिबिम्बित करने लगा, उस नाटक का संबंध साहित्य से भी स्थापित हो गया। साहित्य के सम्बन्ध में नवीं नवीं प्रगति के साथ ही मानव नाटकशास्त्र का भी सम्पूर्ण रूप, और आज वह अपनी प्रगति सीखता है ही विश्व के साहित्य में इस जीवन 'पूरा' वह पर आधीन है।

किन्तु जिसकी आस्था वैराष्ट्रिक विचारों में है, वे विकासवादियों को एक कलित और आधार होने क्या की सीखार नहीं करते। वैराष्ट्रिक विचारों में आस्था रखने वाले नाटक की भी एक पैर मानते हैं। परन्तु नि नाटक की पैर के सम्बन्ध में श्रुति है। उन्होंने नाटकशास्त्र के ऊपर समझ-झणों की रचना की है। उनका समझ-झण अधिक प्राचीनतम है, दूसरे शब्दों में उसे समझ-झणों का आदि समझ कहा जा सकता है। परन्तु नि हमने समझ 'कम' में नाटक की उत्पत्ति देखी बताई है। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक वैराष्ट्रिक कथा का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—'एक युग के अन्तिम होने, और पैर के प्रारम्भ में एक बार देवताओं ने मनुष्यों के साथ आकर मार्गना की, कि वे देवताओं के मनोरंजन के लिए ऐसे हाथर उपस्थित करें, जिससे देवतायें मुक्त के दिनों में भी अधिक आनन्द प्राप्त कर सकें। देवताओं की मार्गना पर, अधिक लोग-विचार के परभाव मनुष्यों ने एक पैर की रचना की, जिसे नाटकवेद कहते हैं। इस लंबी पैर की रचना में उन्होंने सभी पैरों के सम्बन्धों की हैं। उन्होंने 'आनन्द' के महीनकमन, 'आनन्द' से गायन, 'मनुष्य' से अभिनय कला, और 'आनन्द' से एक प्रकार नाटकवेद की निर्माण की है। विद्वत्कर्मी ने इसके लिए एक पैर का निर्माण किया। मन्वन्त आनुवंशिक में लोढ़ा, और ही मार्गों में आनन्द प्राप्त करने किया। इसी प्रकार मन्वन्त किन्तु में भी भार नाटक क्षेत्रों की है। इस प्रकार देखी बतायी, और युद्धों के परिणामों से नाटकवेद क्षेत्रों के सम्बन्धों, और मनोरंजन के लिए युद्धों पर अपनी ही हुआ। परन्तु नि एक संघम पैर के प्रभाव आचार्य माने जाते हैं। वर्तमान हमने ही अपने ही-ही युद्धों को नाटकवेद की शिक्षा दी और उनके द्वारा उनका अभिनय भी किया।

साहित्य के काम के सम्बन्ध में ऊपर लिखी पीछाछिछ कथा का उल्लेख किया गया है, उसका कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है। उसके केवल इतना ही मूल्य चलता है, गद्यकथा का कि भाष्यकथा का इतिहास कवि प्राचीन है। क्योंकि उस विद्यालय कथा के द्वारा उसका सम्बन्ध वेदों से जोड़ा गया है। वेद भाष्योप नीमन के सादि होता है। भारतीय विचारों और कथारों वेदों से ही निम्नलिखित हुई हैं। गद्यकथा के बीच भी वेदों से पार जाते हैं। आग्नेय में यम, यमी, और पुत्राया तथा उर्वशी के बीच कपोलकथन मिलते हैं, जिसमें गद्यकथन है। इन्द्र, अग्नि, सूर्य, उर्वर, और यम इत्यादि देवताओं के रूप में देखे जाते हैं। आग्नेय में मिलते हैं, जिसमें गद्यकथन का उल्लेख है। आग्नेय कीर्ति विद्या के दृष्ट है। आग्नेय में संश्लेष काष्ठ के काष्ठ ही काष्ठ कथन का भी उल्लेख है। वेदों से मूल मूल चलता है, कि वैदिक काल में भारतीय कालों देव दूषोत्तम, कर्मिक यमों, और आहु-परिचरों के समस्त की-कड़े का कहते हैं, और काल में मिल कर जाते गते तथा कर्मिक किय कहते हैं। वैष्णवपुर, लेवी, वा० इति, और वा० गिरमे इत्यादि विद्वानों विद्वानों से भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।

अ. १२२ दिग्गों के महापुत्र, भारतीय काल में मूल कालों की प्रत्यक्ष कथने तथा उसकी कथुति के लिए संश्लेष और गद्यकथा का विशेष रूप से कायेकन किया जाता था। विशेषतः 'लोको' से भी एक स्थान पर एक कथा का उल्लेख किया है, कि भारतीय काल में लोकप्रियता के लिए संश्लेष, काष्ठ, और कर्मिक के विशेष कायेकन हुआ करते हैं। उनके विद्वानों के अनुसार गद्यक की उर्वरा उर्वरी संश्लेषी और वाणी के परिचर कथन हुई है। इन विद्वानों विद्वानों के 'विचारों' में कई एक पार है, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। इसी उल्लेख में वही काष्ठविद्यालय के मत का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। काष्ठविद्यालय के महापुत्र भारतीय गद्यक की उर्वरा कठ-पुत्रिणी के रूप से हुआ है। इसमें कथन नहीं, कि कथन, और कथन, की बात-वार्तालाप से वह प्रभावित होता है, कि भारतीय काल में भारत में कठ-पुत्रिणी का रूप होता था। महापुत्र में भी कठ-पुत्रिणी के रूप का उल्लेख मिलता है। पर भारतीय गद्यक की उर्वरा कठ-पुत्रिणी के रूप से हुआ है—यह बात कथन में नहीं जाती। भारतीय काल ही यह है, कि भारतीय गद्यक के उर्वर और उनके विचार की मूल विचार में न ही लोकिक और सामाजिक कथनों की प्रभावता है, और न कठ-पुत्रिणी के रूप की ही मूल्य है। इससे देव सादि काल में भारतीय और कथनियों के रूप में मिलता रहा है। इससे देव के जीवन का प्रत्यक्ष देव भारतीय भाष्यकों से होता-होता है। काल-भारतीय गद्यक के उर्वर और विचार में भी भारतीय कथनों, और वैदिक कथन कथनों की ही प्रभावता है। वेदों के वह कथन कथन भी होती है।

सामाजिक, महापुत्र, और पुत्रों के भी भारतीय भाष्यक की प्राचीनता धिरेत होती है। सामाजिक के कई कथनों पर गद्यकों का उल्लेख मिलता है।

'सामान्य' में जो 'रट' शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है। 'द्विविध नाट्य' में रामकथोत्पन्न के उल्लेख में 'बीरेर (बागिहार)' शब्दों के छोटे जाने का वर्णन है। 'कविपुराण' में भी कवि और दूर्य काव्यों की विवेचना मिलती है। इन सबों का कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है, क्योंकि इनके पास के संबंध कोई ऐतिहासिक निश्चय का कदाचित् नहीं उपलब्ध हो सका है। इनसे जो केवल हमें ही पता होता है, कि भारतीय नाटकशास्त्र गिर प्राचीन है, और वेदों में कुछ रूप से उल्लेख होना मिलता है।

किन्तु वैदिक काल में नाटकों की रचना भी हुई थी, इस बात का कोई शङ्का नहीं मिलता। भारतीय नाटक साहित्य की शुरुआत की ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध है, जबसे हमें पता था कि कवि प्रथम भारतीय नाटकों की रचना वास्तुवि के समय में हुई। वास्तुवि का समय ई० के पूर्व प्रायः १५०० वर्ष माना जाता है। वास्तुवि में अपने अक्षरार्थ में दो रट शब्दों के सम्बन्ध में बर्णन की है, जिसके नाम ब्रह्मादय और विद्याविन हैं। वास्तुवि के समय में वेद उपाख्यो पहले भारतीय में अपने महानाम में नाटकशास्त्र का उल्लेख करते हुए 'कौशल' और 'कविचरण' की बर्णना की है।

किन्तु विद्वानों ने अनेक अनुसंधान करने के पश्चात् यह निश्चय किया है, कि भारतीय नाटकशास्त्र का विकास इसके बहुत पूर्व ही हो चुका था। प्रमाणों में यह सब से नाटकों के सामान्य की बात का उल्लेख है। सामान्य में भी कविप्र और कविप्रताओं के कई उल्लेख मिलते हैं। जबसे अनेक महत्त्वपूर्ण बात ही दूसरी शताब्दी के बाद पता चला, अथर्ववेद, ई०, और अथर्ववेद अथर्व नाटकशास्त्रों का कवि-नाम है। इन नाटकशास्त्रों की रचनाओं में नाटकशास्त्र का भी विवेक और उल्लेख स्पष्ट मिलता है, जबसे यह सब सब के सामान्य होता है, कि भारतीय नाटकशास्त्र का विकास इसके बहुत पूर्व ही हुआ था। बीहड़नी लोगों में भी नाटकशास्त्र के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बातें मिलती हैं। ब्रह्मसंहिता के 'विद्या विद्या' में दूर्य रंगशास्त्र का उल्लेख किया गया है, जो 'कौशलवि' में बनी हुई थी, इसी नाम से ही भिन्न, जो, जिसका नाम अथर्ववेद, और दुर्गादय का, अथर्ववेदों के बाद करने और नाटक देखने के सम्बन्ध में प्रामाण्य दूर्य की बात मिली नहीं है। वेद अथर्ववेदों में भी, जिसका समय ई० के १५०० वर्ष पूर्व है, यह बात के नाटक देखने की बात का उल्लेख है। नाटक शुनि के उल्लेख-क्यों से भी इस बात का पता चलता है, कि इसके पूर्व भारतीय वास्तुवि में कई महत्त्वपूर्ण नाटकों की रचना हो चुकी थी। क्योंकि उन नाटकों का सम्बन्ध करने के पश्चात् ही नाटक शुनि में अपने अथर्ववेदों की रचना की थी। नाटक शुनि में अपने नाटक शास्त्र में सर्व 'कथुलम्बन' और 'विदुष्य' नामक दो नाटकों का उल्लेख किया है।

इन सब बातों से यह सब के यह सामान्य होता है, कि भारतीय नाटकशास्त्र का

इतिहास फिर आनीत है। आज की ऐतिहासिक तथ्य हमारे संमुख हैं, वे इस बात पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं, कि आज से लगभग छह सप्ताह पूर्व हमारे देश में राज्य कला का मशीन बौद्धि विफल हो चुका था।

किन्तु कुछ विदेशी विद्वानों की आस्था इसके विपरीत है। उनका कथन है, कि भारतीय राज्यकला का उद्गम और उसका विकास दूसरी राज्यकला की प्रेरणा के द्वारा है। वे अपने इस कथन के प्रमाण में भारतीय गद्यकों में लभ्य हुए 'व्यनिका' शब्द उपनिषद् करते हैं। वे इस शब्द की सामने उपलब्ध तथ्य के वह कहते हैं, कि 'व्यनिका' कबरी कबाली लोगों के भारतीय राज्यकला के अर्थ की गई है। किन्तु इसी प्रमाण की वे आगे 'संस्कृत' शीर्षक विवरण में विदेशी विद्वानों के इस मत का खंडन किया है। उनका खंडन उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—“कुछ लोगों का कहना है, कि भारतीय में व्यनिका कबरी कबाली लोगों के गद्यकों से ही गई है, किन्तु तुमने वह शब्द कुछ कम के लभ्य हुए 'व्यनिका' भी दिया। अक्षरशेष में 'वैदिक सौदा व्यनिका व्याख्यानकारियों कला' तथा इसाबुल में 'अन्योन्याय परम्परा प्राणि सौदा व्यनिका विचारकारियों'। इसमें 'व' से नहीं, किन्तु 'व' से ही 'व्यनिका' का उपनिषद् है। 'व्यनिका' से संस्कृत का व्यनन होता है। 'व्य' का अर्थ वेग और शक्ति से है। अब 'व्यनिका' उस मत को कहते हैं, जो संस्कृत से संस्कृत का विग्रह का सके।”

इतिहास से भी इस बात का प्रतिपादन होता है, कि भारतीय राज्यकला का दूसरी कला का कुछ भी प्रभाव नहीं है। भारतीय राज्यकला अपनी मौखिक कला है। उसका उद्गम अपने ही क्षेत्र में हुआ है और अपने ही क्षेत्र के साधनों तथा उपकरणों के उसका पूर्ण विकास हुआ है। आज की ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं, उन्हीं तथ्य कहता है, कि भारत पर ब्रिटिश का शासनवा ईसा के पूर्व वर्ष १२६-२५ से हुआ था। इससे पूर्व भारतीय और चीनी के संबंध तथा चीन-भारतवा की कोई बात इतिहास में नहीं मिलती। किन्तु उन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों से इस बात का भी तथ्य कहता है, कि ब्रिटिश के शासनवा के बहुत पूर्व भारतीय साहित्य में राज्यकला का विकास हो चुका था, भारतीय राज्यकला और लोक कला में अनेक मौखिक परम्परा थी है। लोक राज्यकला में लोक संस्कृति का बीच निहित है। पर भारतीय राज्यकला भारतीय संस्कृति और साम्राज्य के प्रमाणित है। दूसरी राज्यकला जीवन की दूर तक करके अपने आधार का सूचन करती है। मानव जीवन कैसा होना चाहिए—दूसरी राज्यकला इस और प्यान नहीं देखी। भारतीय राज्यकला मानव जीवन की ही शक्ति मानकर अपनी प्रमाण का सूचन करती है। दूसरी गद्यकों में अनेक को प्रमाणता होती है। उनके अर्थों से दुःख और विपदा की भावना सुख का से गई जाती है। पर भारतीय राज्यकला अर्थ और एक-प्रमाण होते हैं। भारतीय गद्यकों में 'हुआ' और विपदा के किन्तु कोई स्थान नहीं होता। भारतीय गद्यकों की दृष्टि 'हुआ' और

आनन्द की ही ओर रहती है। यूनानी नाटक वहाँ यथार्थवादी होते हैं, वहाँ भारतीय नाटक आदर्श की ओर उन्मुख होते हैं।

इस प्रकार भारतीय नाटक पूर्ण रूपेण मौलिक है। उसका जन्म और उसका विकास अपने ही देश के तत्त्वों के आधार पर हुआ है। अपने ही देश के तत्त्वों से उसका पालन पोषण हुआ है। उसके प्रसाधन में भी, अपने ही देश के तत्त्वों की कृपा सन्निहित है।

प्राचीन नाट्यकला का स्वरूप

पहले इस बात का उल्लेख किया जा चुका है, कि प्राचीन जर्मों के मतानुसार काव्य के दो भेद हैं—अव्य काव्य और दृश्य काव्य। अव्य का समन्वय केवल भवशे-दृश्य काव्य मिश्रित हो जाता है। अव्य काव्य के भीतर जो लोकोत्तर आनन्द किया जाता है, यह पद और मूल करने ही प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु दृश्य काव्य का संबंध भवशेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय—दोनों से ही होता है। विशेषतः उसका अधिक समन्वय चक्षुरिन्द्रिय से ही अधिक होता है। चक्षुरिन्द्रिय और दृश्य काव्य का वारंवारिक अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। चक्षुरिन्द्रिय का संपूर्ण व्यापार 'रूप' पर ही आधारित होता है। दृश्य काव्य में भी रूप की भावना की मुख्यता होती है। दृश्य काव्य में दर्शक-रंगमंच के द्वारा 'रूप' का ही अनुभव करता है। इस कथानुसार में वाणी और वाचिणी की अनुकृति की प्रधानता होती है। अनुकृति में दृष्टि की केन्द्रित और प्रसन्न रहने के लिए ही वाणी के 'रूप' की व्यवस्था की जाती है। दृश्य काव्य में 'रूप' की भावना की प्रधानता होने ही के कारण उसे 'रूपक' की संज्ञा दी गई है। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए, कि रूपक में केवल अनुकृति की प्रधानता होने से ही यह संवृत्त हो जाता है। वास्तव में बात यह है, कि रूपक में अनुकृति के साथ ही काव्य वास्तविकता और स्वाभिव्यक्ति दोनों भी चाहिए। इसका कारण यह है, कि रंगमंच पर अभिनेता के द्वारा जिस 'रूपक' की संवेचना की जाए; दूसरे शब्दों में जो अभिनेता जिस काव्य, उसे देख कर दर्शक के हृदय में यह प्रतीति उत्पन्न हो जाए, कि वह जो कुछ देख रहा है, सत्य है—वास्तविक है। इस प्रतीति से ही दर्शक के हृदय में उस रस की निष्पत्ति होती है, जो दृश्य काव्य के भीतर समाविष्ट रहता है।

रस दृश्य काव्य का एक उपकरण है। 'रस' और 'रस्य' भी दृश्य काव्य के उपकरण हैं। प्राचीन आचार्यों ने नाट्य शास्त्र को तीन भागों में विभाजित किया उपकरण, और वा—नाट्य, रस और रस्य। कहा जाता है, कि तदनंतर रूपक भावान् शिव ने उसके दो भेद और बढ़ा दिए—टीका, और काव्य। इन सबसे यह जुड़े हैं, कि वाटक दृश्य काव्य के अंतर्गत है। दृश्य काव्य का उपकरणों में विभक्त है—(१) अभिव्यक्ति, (२) वास्तविकता की प्रतीति, (३) रस का उद्देक, (४) रस्य, (५) रस, (६) संगीत, और (७) कथोपकथन। प्राचीन

नाट्यकारी ने हस्त कला के लक्ष उपकरणों की दृष्टि से स्थावर उनके दो क्षेत्र किए हैं—कर्म, और उपकरण । कर्म में वह की प्रभावता होती है, कर्म वह कार्यभार और कला समझा जाता है, की स्थावर होता है । 'कर्म' में वह की विधिति 'पुत्र' और 'पुत्र' इत्यादि उपकरणों के दो भाग होती है । जिस प्रकार विद्या-प्रमाण वह की परिपुष्टि में प्रधान होता है, उसी प्रकार 'पुत्र' और 'पुत्र' की प्रमाणता से ही 'कर्म' में वह की विधिति होती है । उपकरण की प्रकृति कर्म के पुनर्ग होता है । 'कर्म' में वह की प्रभावता होती है, वह उपकरण 'प्रमाण' प्रमाण होता है ।

कर्म का अर्थ कर्म, नाम, और वह के आधार पर विभाजित है । प्रमाण में कर्म, नाम, और वह की दृष्टि से ही कर्म के लक्ष क्षेत्र बताए हैं, जिसके नाम वह कर्म के क्षेत्र आधार हैं—(१) नाटक, (२) प्रमाण, (३) नाम, (४) प्रमाण, (५) विद्या, (६) व्यापक, (७) उपकरण (८) कीर्ति, (९) कर्म, और (१०) ईश्वर ।

यह कर्म का एक क्षेत्र है । नाटक कला के सभी उपकरण, विद्या, और वह नाटक के सम्बन्धित होती हैं । इसी प्रकार पूर्ण प्रकृति के ही नाटक नाट्यकारी के 'नाटक प्रकृति' इसी क्षेत्र की है । इसका विचार ऐतिहासिक कलाओं के आधार पर विभाजित है । नाटक इसका क्षेत्रगत होता है । इसमें कर्म के लक्ष क्षेत्र होते हैं । प्रमाण कर्म कर्म की 'कर्म' कला होती है ।

इसका विचार ऐतिहासिक और आधुनिक कलाओं के विभाजित है । नाटक और कर्म होता है । नाटक कला कला, और कर्म होता है । 'कर्म' में प्रमाण इसका क्षेत्र क्षेत्र बताए हैं, जिसके नाम कर्म, विद्या और कर्म हैं ।

इसका अर्थ कर्म के आधार पर विभाजित है । नाम एक ही क्षेत्र होता है । यह कर्म का क्षेत्र क्षेत्र होता है । प्रमाण कर्म के लक्ष क्षेत्र बताए हैं । इसका नाम कर्म कर्म की दृष्टि करता है, जिसका आधार 'पुत्र' और 'पुत्र' का क्षेत्र होता है ।

यह एक ही क्षेत्र का होता है । कला कर्मकर्म और वह कर्म कर्म के क्षेत्र प्रमाण होता है ।

इसकी कला का आधार ऐतिहासिक और प्रमाण होता है । यह कर्म कर्म का क्षेत्र होता है । 'कर्म' और 'कर्म' के नाम की कर्म क्षेत्र वह की दृष्टि सम्बन्धित विद्या बताए हैं ।

कला ऐतिहासिक और ऐतिहासिक कला कला की दृष्टि प्रमाण होता है । यह व्यापक कर्म के क्षेत्र क्षेत्र बताए हैं । इसकी कला ऐतिहासिक होती है, जिसका कर्म क्षेत्र कर्म और

ये इसके बीच में ही का उत्प्रेक्षित शब्द है, जिसके नाम इस प्रकार हैं—बीज, बिन्दु, फलक, अक्षरी, और कार्य। बीच नाटक का प्रमुख अंग होता है। नाटक के फल की सम्भावना बीच के ही बीज काव्यनिष्ठित होती है। जिस प्रकार बीच में फल होता रहता है, उसी प्रकार बीच में 'नाटक का फल' निश्चित रहता है। संक्षेप रूप में बीच उसे कहते हैं, जो कथा के फल का प्रमुख हिस्सा होता है, और जिसका विस्तार क्रम-क्रम से कथा की व्यापार-वृत्तिका के साथ होता जाता है। 'बिन्दु' उसे कहते हैं, जो 'बीज' के संकुचित होने और वृद्धावस्था के आसपास होने पर, उपरिष्ठ काव्यसाहित्य, और विशेषतः काली की अवस्थिति रहता है। 'आविकारिक' के साथ साथ साथ उस फलने वाले अवस्थित कथा के प्रयोग की 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। आन्तिका कथा जब कुछ ही दूर चल कर यात्रा हो जाती है, तब उसे 'अक्षरी' की संज्ञा दी जाती है। 'कार्य' उस कथाय काव्य को कहते हैं, जिसकी दृष्टि के निमित्त आविकारिक कथु के विधानों, सम्पूर्ण प्रयोगों के आरम्भ और आसपास का प्रयोग करता है। कार्य की प्रवृत्तिका की अवस्थिति रहने के लिए इसके अन्त में कार्य की बीच सम्प्रदाय होती है—आरंभ, प्रथम, आन्तिका, निवृत्ति, और प्रत्यक्ष। आरंभ उसे कहते हैं, जिसमें किसी अवस्थित फल की आन्तिका के लिए आरंभ होता है। आन्तिका फल की आन्तिका के निमित्त बिन्दु होने वाले फल की 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। फल आन्तिका की कथा का सम्प्रदाय का नाम सम्प्रदाय है। फल-आन्तिका के पूर्व निवृत्ति की 'निवृत्ति' और फल प्रत्यक्ष होने की अवस्था की 'प्रत्यक्ष' कहते हैं।

अगर इस बात का उपेक्षित शब्द का प्रयोग है, कि फल कथु-कथा के साथ ही साथ और भी उसके अवस्थित दूसरी कथाएँ उसके बीच की स्थिति होती हैं। फल अन्त और कथा और इन दोनों अवस्थित कथाओं के प्रथि-पूर्वक प्रथि अन्त में ही स्थिति कहते हैं। फल का अवस्थित फल होता है। इस फल-आन्तिका के लिए फल में विविध प्रयोगों और कथाओं का संवेदन शब्द जाता है। प्रथि में प्रयोग और कथाएँ प्रथि होती हैं, पर फल का अवस्थित फल ही होता है। फल में ही फल अवस्थित की स्थिति के लिए सम्पूर्ण प्रयोगों, और कथाओं का प्रथि कथा के अवस्थित अवस्था है, वही अवस्थि के नाम से विख्यात है। अवस्थि के बीच में है—कथु, अवस्थि, कार्य, निवृत्ति, और निवृत्ति। किसी कथा की आरंभ नाटक अवस्था के अवस्था से जब वहाँ होते बीच की अवस्थि होती है, जो अवस्था नहीं, और कथा का अवस्था होता है, जो वहाँ 'कथु अवस्थि' होती है। 'अवस्थि' अवस्थि वह है, जिसमें बीच अवस्थित होता है। अवस्थि अवस्थि में बीच की अवस्था फल अन्त, और फल अवस्था रहती है। कार्य अवस्थि उस स्थिति का नाम है, जिसमें बीच का विस्तार और ही अवस्थि बढ़ जाता है। 'वर्ष' अवस्थि में आन्तिका और प्रत्यक्ष समय अवस्थि-वर्षों का प्रथि रहता है, फल अवस्था में उन अवस्थाओं की अवस्था अवस्था विस्तार अवस्था है, जो फल-आन्तिका की और अवस्था होने के लिए बिन्दु

जाते हैं। गर्भ सन्धि से इन बच्चों का विकास, और इन बच्चे का ये विद्यालय जाता है। 'विमर्श' सन्धि से बाल का और भी अधिक विकास होता है। इसमें 'निरवस्था' और बच्चों का खेल होता है। इस सन्धि में राज-शास्त्र के बालों में खान, सोय, मर, और कुछ इत्यादि बाजारों बाने जाते हैं। इन बच्चों के कारण यह सन्धि भी जाया नष्ट हो जाती है। इसे 'अनर्था' सन्धि भी कहते हैं। 'निर्वेद्य' सन्धि उसे कहते हैं, जिसमें अन्धिये फल की प्राप्ति हो जाती है, और बन्धु' विद्याभार्य सात हो जाती है। निर्वेद्य सन्धि में ऊपर की जाती सन्धियों में अधिक बनी जाती का खेल मिल जाता है।

बन्धु में दो प्रकार की बाने जाती है। एक को 'द्वय बन्धु' और दूसरे को 'सुख बन्धु' कहते हैं। जिस बाने का अर्थार्थ बंध वर विद्या जाता है, और जिसका द्वय बन्धु और विद्या बाना आनन्दन होता है, उसे 'द्वय बन्धु' कहते हैं। 'सुख बन्धु' उस बाने को कहते हैं, जिसकी बंध वर सुखना सात हो जाती है। द्वय बन्धु के अन्तर्गत का बाने जाती है, वे बानों में विद्या होती है। किसी भी नाटक में बंध के लेकर एक एक बंध हो सकते हैं। बहुत बन्धु-बन्धु कर होते हैं। सभी बंध वरानर बन्धु और कुछ कुछ के होते हैं। दो बानों के बीच में एक बंध तक का समय लक्षित रहता बाह्य। यदि बाधकता इसके अधिक का समय विद्याभा जाइता हो, तो उसे बाधक, कि वह बन्धु कर एक बंध का उसके बंध कर दे, और दूसरी को इसके सुचित कर दे।

दो बानों की बानाओं के बीच में जो समयान्तर होता है, उसकी व्याख्या सुखना देने के लिए आनीय बाधकों में एक विद्या बानित विद्या है। उस विद्या बाधक-बन्धु को 'अन्तर्गत' कहते हैं। अन्तर्गत बंध वरानर और उसके बंध का होता है—(१) विमर्शक, (२) प्रवेद्यक, (३) सुखिक, (४) अन्तर्गत, (५) अन्तर्गत। 'विमर्शक' उस बन्धु की रीति का द्वय को कहते हैं, जिसके द्वारा पूर्व बन्धु और अन्धिये में होने वाली बानाओं को सुखना हो जाती है। इस सुखना का आकार दो बानों का अन्तर्गतन होता है। 'विमर्शक' बाने की बाधक के आरंभ में जाता है, और बाने दो बानों के बीच में भी का सकता है। 'प्रवेद्यक' का है, जिसके द्वारा विमर्शक की बाने हो पूर्व बन्धु और अन्धिये में बाने वाली बानाओं को सुखना हो जाती है। विमर्शक और 'प्रवेद्यक' में यह अन्तर है, कि प्रवेद्यक में जो सुखना हो जाती है, उसकी बाना विमर्शक की होती है, और सुखना देने बाना बाधक की विमर्शक की होता है। प्रवेद्यक में सुखना आरंभ में न लेकर दो बानों के बीच में हो जाती है। सुखिक के द्वारा वेद्यक के बाने में किसी राज्य की सुखना हो जाती है। बाने बाने एक बंध के बाध, उसकी बाना वर बाध करते जाते हैं, और वर सुखना बहुत आरंभ होता है, तो कुछ बाधक उसके बानित हो जाते हैं। इसे 'अन्तर्गत' कहते हैं। अन्तर्गत के रज बंध वर बाने के अन्तर्गत विद्या विद्या बाने बंध की बाना बानाई जाती है। अन्तर्गत में

शब्द के अन्त में बाहर आने वाले पाशों के द्वारा शब्द की कला की रचना हो जाती है ।

समक में पाश का अधिक महत्व प्राप्त होता है । समक पाशों के द्वारा ही हमने सामयिक समक को प्राप्त किया है । 'समक' में पाश उन्हीं आते हैं, जो किसी का नाम समक प्राप्त करने के लिये उसकी आवश्यकता का समझाती या अनुभव करते हैं । पाशों के द्वारा ही अधिक समकता से बात लेना चाहिए । नाम जिसका अनुभव करने हो, उसका सर्वोत्तम अधिकार उनके अनुभव में जाना चाहिए । अनुभव करने वाले पाश के कार्य और उसकी पाशों तथा वेच पूरा हवादि से सादर्य उनका होता चाहिए । सादर्य समक का अर्थ है—जिस समक के पाशों में किसी ही अधिक सादर्य होता है, उसमें उसका ही अधिक एक और अधिकता होता है ।

पाश के ही प्रकार होते हैं—अन्तः, और अन्तः। अन्तः पाश के ही 'मानक' भी कहते हैं । मानक का अधिक महत्व प्राप्त होता है । 'मानक' की कला आदि से लेकर समक एक समक के ही द्वारा समक होती है । मानक के ही एक प्रति होती है, और वही सर्वोत्तम यही का उपयोग होता है । मानक कलाकाट का मुख्य अंग होता है । उसमें विनोदता, अनुभव, दृष्टि, विनोदता, समक, सादर्य-पाश, कलाकाट, सादर्य, दृष्टि, विनोदता, सादर्य विनोदता, विनोदता, लीनविनोदता, और विनोदता हवादि पाशों का होता समकसमक माना जाता है ।

मानक की दृष्टि के मानक के पाश में होते हैं—वीर्यपाश, और ललित, और ललित, और ललित । 'वीर्यपाश' मानक में उद्योग प्रमुख रूप से होती है । वह अधिक कलाकाट, विनोद, दृष्टि, विनोदता, और वही-ललित में एक का एक माना होता है । वीर्यपाश और ललित 'वीर्यपाश' मानक है । वीर ललित कलाकाट होता है । वीर्य मानक मुख्य रूप से उसमें पाई जाती है । वह ललितपाश और विनोदता माना होता है । 'दृष्टि' दृष्टि दृष्टि है । 'वीर्यपाश' ही ललित की मानता होती है । वह का ही मानक का मान होता है । 'मानकी मानक' का 'मानक' दृष्टि दृष्टि है । 'वीर्यपाश' का मुख्य उसके मान के ही अर्थ है । वह मानक ललित, ललित, ललित, ललित, ललित, और ललितपाश होता है । मुख्य की अन्तः उसमें एक ललित होती है । 'वीर्य' और 'विनोद' दृष्टि दृष्टि है ।

अन्तः पाशों के सादर्य और ललित के प्रति समकता आदि की दृष्टि में एक का मानक के ही पाश में होता है—अनुभव, ललित, ललित, और ललित । अनुभव मानक उसे कहते हैं, जो एक 'मानक' होता है । 'ललित' दृष्टि ललित होता है । वह ललित मानता होता है । ललित ललित के प्रति उसका सर्वोत्तम मानक होता है, ललित एक ललित के प्रति ही उसका एक पूर्ववत् बना जाता है । 'ललित' ललित का मानता होता है । ललित के लिए का एक ललित में अनुभव ललित है,

किन्तु कुछ रूप के ज्ञान साधिकाओं के भी उत्पन्न सम्भव होता है। 'रूप' सम्बन्धी होता है। वह उत्पन्न रूप के लक्ष के चर्चों को पर्याप्तित करती है।

राज्याचार्यों के दन्दे की तीन-तीन मीठी में विभक्त किया है—मेर, मध्य, और करम । इनके की तीन-तीन वेद बजाए गए हैं—विष्णु, अद्विष्णु, और हिम्यविष्णु । इस प्रकार राज्य के कुल दश वेद होते हैं । स्वयं से राज्य के अद्विष्ट उल्लेखी मन्त्राचार्य के लिए ब्रह्म और भी पाए होते हैं । वेते—अभिनायक, और तीन सर्वे नायक । नायक के प्रति इन्दी की 'अभिनायक' आते हैं । 'पीठ मर्द' उसे कहते हैं, जो अद्विष्टि कथा का नायक होता है । यह राज्य का मित्र होता है । इनके अति-विश्व नायक के सर्वेभवाचार में प्रधानता देने वाले और भी नायक होते हैं, जिनके कुल दश वेद बजाए गए हैं—सुंसार प्रधान, जर्ब विन्दा । हार, संसार प्रधान, चर्म प्रधान, जन्म-पुर प्रधान, और दंत प्रधान । सुंसार प्रधान के तीन वेद हैं—विद, वेद, और विद्वत् । विद्वत् राज्य का सेवक होता है । 'वेद' उसका दल और विद्वत् उसका मंत्री/कर्मचारी होता है । 'जर्ब' विन्दा प्रधान होता है । 'दंत प्रधान' दुष्टों के विनाश में प्रधानता प्रदान करता है । 'चर्म प्रधान' उसकी और प्रीतिश हारानि होते हैं । 'जन्म-पुर प्रधान' विजयें होते हैं । संसार प्रधान दूर होते हैं । कभी कभी प्रथम पांच की का सब आरम्भ उनके उनके समान ही हुए पांच और बीगलता के साथ जारी करता है । ऐसे प्रथम पांच को 'विद्वत्' कहते हैं ।

कवच में कवच की प्रति प्रतिष्ठा का भी महत्व पूर्ण स्थान होता है। वायु-
कर्मों के वायु के भी कई क्षेत्र और उपवेद विद्य हैं। 'वायुविद्या' वायु की कर्मों
की कहते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—वसवीया, वसवीया, और सामान्य।
वसवीया उठे कहते हैं, जो वायु विद्या, और सामान्य होती है। यह करने प्रति की
की कर्मों वसवीया कहते हैं। 'वसवीया' उठे कहते हैं, जो दूसरे गुण से प्रेम करती
है। सामान्य किसी एक के प्रेम नहीं करती। यह वेदना होती है। वसवीया, वसवीया,
और सामान्य की अकृति और उपवेद गुणों के अनुसार अनेक क्षेत्र और उपवेद भी
विद्य गत हैं।

‘रक्ष’ नामक का लक्षण उत्पन्न है। यह एक ऐसा लक्षण है, जो स्वयं में प्राण का संसार करता है, अतः स्वयं के क्षेत्र में स्वयं काचित्त प्रकट है। गच्छाचरों में

एक दूसरी परिभाषा इस प्रकार बताई है—'एवारी मान वह विमान, अनुमान, और संघारी मानों के पुनः दोहरावपूर्ण परिचयवाचक को कहते हैं, जब उसके प्रत्यासादन से सुदृढ़ता, और स्थिरों के हृदय से ही आनन्द-कोल उत्पन्न होता है, उसे 'एव' कहते हैं। यह को आत्मनिष्ठ रूप से स्वयंसे के लिए मान, विमान, अनुमान और संघारी मान का समग्रता अधिक आवश्यक है।

बुद्ध के मन में तरह तरह के विचार उत्पन्न होते हैं। मन के विचार की ही श्रम रहते हैं। स्थानी भाव बढ़ है, जो क्षणिक से लेकर प्रायः सब मन के मीठे बना रहता है। स्थानी भाव के क्षणिक मन में क्षीय जो भाव होते हैं, जो क्षणिक,

मान होता है। एक वस्तु की हानि, अर्थात् वस्तु का नाश, घेस पाव का भिर निघेस, और सर्व हानि हानादि से बड़ी खोह मान की वस्तुनिष्ठ होती है, वही वस्तु रस होता है। 'खोह' इच्छा रसायी मान है। जब जब जान द्वारा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, तब रस रस की उत्पत्ति होती है। 'निघेस' अथवा 'घम' इच्छा रसायी मान है।

नाटक में नाटकीय वस्तु अतिरिक्त नहीं है। अभिनय एक ऐसी कला है, जिसके द्वारा नाटकीय वस्तु को अभिव्यक्ति होती है। दूसरे हन्दी में अभिनय उस अभिनय साधन की कहते हैं, जिसके द्वारा नाटकीय वस्तु वास्तविक अर्थात्व्यक्ति की ओर पहुँचाई जाती है। प्राचीन आचार्यों ने अभिनय के चार प्रकार बताए हैं—वाचिक, भाविक, आचार्य, और शालिल। 'वाचिक' अभिनय उसे कहते हैं, जो शब्दों की सहायता से द्वारा संवर्धित किया जाता है। वाच्य के द्वारा पूर्ण किया जाने वाला अभिनय 'भाविक' कहा जाता है। वेद-शास्त्र के द्वारा अभिनय का नाम 'आचार्य' है। मलय, रोमांच, कर, रोद, आदि, और इतने हानादि अवस्थाओं का अनुकरण 'शालिक' अभिनय है।

हृदि का दार्ष्टिक सर्वोपलब्ध अवस्था एक है। काल में पाव हानादि की विशेष वस्तु, काला मान करते हैं, उसके उन्ही वस्तुओं अथवा भावों के करने के द्वारा हृदि को 'हृदि' कहते हैं। मान क्षेत्र में हृदि का अधिक महत्व पूर्ण मान है। 'हृदि' के ही द्वारा काल में 'एव' उत्पन्न होता है। दार्ष्टिक-वर्णन के अभाव के समयावृत्त हृदि ही उत्पन्न का अनुभव करता है। अतः हृदि में हृदि को मान की माताओं के नाम से संबोधित किया है। हृदि को चार प्रकार की होती है—वाच्य, भाविक, आचार्य, और शालिक। 'वाच्य' के संबंध में वाच्य के लिए निम्न मत है। निम्न साधनमात्र के समयावृत्त 'वाच्य' हृदि में सभी रस का वर्णन है। अतः हृदि इसमें केवल 'वचन' और 'वाच्य' का संचार मानते हैं। भारतीय दार्ष्टिकवादी केवल 'वाच्य' रस पूर्ण सभी में ही 'वाच्य' हृदि का व्यवहार होता मानते हैं। आचार्यों के समयावृत्त इसकी उत्पत्ति शब्दों के द्वारा है। इसमें ऐसी बातें होती हैं, जो मन-बुद्धि पर और अन्त-बुद्धि होती हैं। इसकी भाषा ही परिष्कृत होती है। इसका सम्बन्ध 'वचन' अथवा 'भाषा' से होता है। इसीलिए इसकी 'वाच्य' हृदि कहते हैं। इसमें शब्दों की उत्पत्ति होती है। यथोक्त, वाच्य, महत्त्व, और आचार्य इसके चार भेद हैं। 'शालिक' की उत्पत्ति शब्दों से है। इसमें शब्द, वचन, दार्ष्टिक, और वचन इत्यादि वाचिक भावों का वर्णन विशेष रूप से होता है। 'वाच्य' रस इच्छा प्रमुख रस है। पर 'वचन' और 'वाच्य' का भी कुछ-कुछ पुरा पुरा है। वाचिक रूप में वृत्त भी पाया जाता है। अतः ऐसी ऐसी ही शब्दों की अधिकता होती है, जो संवेधित होती है। अज्ञान, वाच्य, और परिष्कृत उसके भेद हैं। 'आचार्य' का संबंध वाच्य से है। इसमें कुछ, वचन, वाच्य, मान, इत्यादि मानवीय, कल कला, और सर्व हानादि शब्दों दिखाई जाती है।

इसका एक रीत है। पशुपुत्रासन, बकेट, लंबित, और कवचात इसके चार भेद हैं। कौटिली का सामान्य कथन यह है। इसमें राज, नीच, मूढ़ता, दामन, और रति की अधिकता है। मित्रों के अभाव और उनकी संख्या की इसमें अधिक होती है। इसमें अधिकतर निराश वर्द्धन, और आनन्ददायक अकारों का ही अधिक वर्णन किया जाता है। 'मूढ़ता' और 'दामन' इसका मुख्य रस है। गर्म, गर्म मूर्ख, गर्म-कोट, और गर्म गर्म इसके चार भेद हैं। गर्म में रति की प्रथम करने के विभिन्न राज-परिहास करके देवी कीर्तन की जाती है, जो विदित होती है, और जिससे रति के द्वारा की कुछ पट्टनके की जायका नहीं होती। 'गर्म मूर्ख' उसे कहते हैं, जो सामान्य नायिकाओं का प्रथम निराश कुछ और रस की स्थिति में होकर जित्त मन की रस में होता है। यहाँ नहीं देखा किचित्त रस उत्पन्न हो जाता है, जिससे यहाँ का कारण कुछ सोचे से भाव हो, वह गर्म स्त्री' कहलाता है। साधक के कुछ व्यक्तित्व की गर्म गर्म कहते हैं।

कनक रति स्थान में अभिनीत किया जाता है, उसे रसवाला कहते हैं, और जिस विशेष स्थान पर अभिनीत किया जाता है, उसे रसवर्ण कहते हैं। रसवर्ण' पर कनक का आरम्भ नाटकीय कला की अभिनीत करने के पूर्व प्राचीन आचार्यों के कुछ कल्पों का विधान स्थापित किया है, जिन्हें पूर्व रस कहते हैं। पूर्वरस के कई वर्ण होते हैं, जिनमें दूधमान, गंधी, रस दाम, रसवर्ण, और साहित्य का मुख्य स्थान है। नाटक के प्रधान परिचालक की दृष्टिकार कहते हैं। दृष्टिकार कथित दृष्ट, कुशल, और विद्वान होता है। कथित नाटक के संचालन का दृष्ट जहाँ के हाथ में होता है। एरोलिट उसे दृष्टिकार कहते हैं। जब प्रथम मलाका कला पर नाट्यकार्य की दृष्टना ही जाती है। इसके बाद नाटक और नायक रस रस पर रखाते हैं, जो अपने नाच-गानों के स्थापना की टीक कहते हैं। साध-वर्णि आरंभ होने के साथ ही साथ दृष्टिकार उपलब्ध होता है, और रस रस के ऊपर मुख्य विशेषता है। इसके साथ ही साथ उसका दृष्ट कला की रहता है, जो कला कला और इन्द्रियता शिष्ट रहता है। दृष्टिकार अपने की कला से विभिन्न करता है और इन्द्रियता कला साधक करने दृष्टिकार कुछ शक्ति पाठ करता है। उक्त शक्ति कला की जोड़ी' कहते हैं। इसके पश्चात् नाट्यकार्य द्वारा होता है। इसे रसवाला' कहते हैं। रसवाला सामान्य रूप में दृष्टिकार इन्द्रियता की कदना करता है। फिर रति वर्द्धन की प्रथम करने के शिष्ट कला किया जाता है। पश्चात् दृष्टिकार विद्वान से नहीं करता कुछ प्रथमान करता है। इसके पश्चात् नाटक की नाट्यविज्ञान की शक्ति करने के शिष्ट 'स्थानक' उपलब्ध होता है। वह देवताओं की कदना के साथ नाटक आरंभ करता है। 'मार्ग' दृष्टिकार का चरित्रपत्नी होता है।

हिन्दी नाट्यकला का इतिहास

हिन्दी साहित्य में नाट्यकला का प्रारंभ कब से हुआ—इस प्रश्न का उत्तर ठीक ठीक बताने के लिए हमें हिन्दी-साहित्य की प्रगति और उसके कम-विकास पर ध्यान देना होगा। हिन्दी साहित्य के विकास की दृष्टि में उसे चार कालों में विभक्त किया गया है—बीर भाषा काल, भक्तिकाल, ऐतिहासिक काल, और आधुनिक काल। हिन्दी चारों कालों के समकाल में प्रवेश करके हमें हिन्दी नाटकों के अगम का पता लगा कर उसके विकास पर विहंगम दृष्टिकोण लेनी है।

हिन्दी साहित्य का उद्भव बीरभाषा काल से होता है। बीर भाषाकाल का समय स. १०५० से स. १३०५ तक माना जाता है। बीरभाषा काल से पूर्व संस्कृत और बीर भाषा काल प्राकृत का प्रारंभ था। ईसा की सातवीं सताब्दी में हर्ष वर्धन के शासन काल में संस्कृत का अन्तर्द्वेष काल समाप्त हो गया था। देश की राजनीतिक परिस्थिति में अस्त-व्यस्तता उपलब्ध हो चली थी। हर्षवर्धन के शासन की समाप्ति के पश्चात् देश छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों में पारस्परिक द्वेष और कलह की आगि बराबर प्रज्वलित रहा करती थी। देश की इस अनैक्यता से लाभ उठाकर इसी समय कुलमानों के आक्रमण भी हुए। कुलमानों के आक्रमण के कारण देश की स्थिति और भी अधिक विपन्न हो गई; कलह स्वरूप कुलमानों का आधिपत्य और आतंक चारों ओर स्थापित हो गया।

देश की राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव साहित्य के ऊपर भी पड़ा, जो अधिक स्वाभाविक ही था। प्रकृत और संस्कृत का यह पतन काल था। हिन्दी और विंगल चारणों की बोली में अगम प्रारंभ कर रही थी। हिन्दी का उस समय को स्वरूप था, वह चारणों तक ही सीमित था। हिन्दी भाषा का साहित्य उस समय अपने शैशव में प्रवेश कर रहा था। राजपूत राजाओं के दरबारों में, चारण कवियों के द्वारा यह सुविध किया जा रहा था। चारण कवि अपने आत्मचरितों के बीरता पूर्व्य कर्मों की प्रशंसा किया करते थे। कभी-कभी वे कुछ स्थलों में आकर भी उत्साह बढ़ाया करते थे। बीर भाषा काल में साहित्य के नाम पर भी कुछ सुविध किया गया, वह गीत और काव्य के रूप में था। चन्द्रवरदाई का पुष्पीराम राजा इस काल का एक प्रधान काव्य है। नाट्यकला की दृष्टि से इस काल का कुछ भी महत्व नहीं है।

इस अर्थ में नाटक और उसकी रचना को किसी प्रकार का कुछ भी प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हो सके।

और भाषा काल के अन्तर्गत अब पुनः काव्यमयि दुष्का, जो अपनी सद्गुण-विशेषों के कारण 'भक्ति काव्य' के नाम से विख्यात है। भक्ति काव्य सं० १३०५ से भक्ति काव्य सं० १००० तक माना जाता है। भक्ति काव्य में राजनीतिक स्वतन्त्रतापूर्व अवस्था पर भी। मुसलमानों के आक्रमण की शीघ्री देश के भीत-कोने में फैल गई थी। हिन्दू जनता एक प्रकार से निर्धन और निर्धनता बन गई थी। इनसे हिन्दू जनता के भीतर वैराग्य, और दुःख की भावना उत्पन्न नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ, कि जनता देशभक्तिपूर्ण हो उठी, और उसमें भक्ति का प्रचार हुआ। परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य में भक्ति सम्प्रदायी रचनाओं की वृद्धि हो गई। कबीर, रामदास, पद, और मोक्षमयी तुलसीदास इसी काल के प्रमुख कवि हैं। इसी काल में मुसलिम सरकारों 'मोक्षमार्गित मानस' की रचना हुई, किन्तु नाटक की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा था। कविता मोक्षमार्गित मानस के नाटक के लक्ष्य लक्ष्य का तो ध्यान करते हैं, किन्तु वह ही नहीं है, कि इस सर्वोच्च काल में भी किसी प्रकार नाटक की रचना नहीं हो सकी।

भक्ति काव्य के अन्तर्गत रीति काव्य मानने उपरिष्ठ हुआ। रीति काव्य को प्रचार काल भी कहते हैं। रीति काव्य बहुत कुछ रीति का पुनः था। सामान्यतया रीति काव्य मुसलमानों की मुद्र-विषय इस पुनः में दाख हो चुकी थी। इनका लक्ष्य भी धर्म के, देश में शांति की स्थापना की था रही थी। रामदास, और तुलसीदासों के द्वारा ही से विस्तार विस्तार होता रहा। दरवाजे में कविता और कविता का रंग बन रहा था। रामदास और विस्तार विषय कालों को प्रचार करने के लिए सामान्यतया रचनाओं की शक्ति की था रही थी। इस पुनः की साहित्यिक विशेषता साहित्यिक रचनाओं तक ही सीमित है। इसमें कविता नहीं, कि विद्यापीठ, और देश द्वारा विद्यापीठ इसी पुनः में उत्पन्न हुए और उनके द्वारा साहित्यिक साहित्य की अन्तर्गत पूर्व अवधि हुई, पर इस पुनः में भी नाटक-रचना की ओर किसी का ध्यान साहित्यिक न हुआ। तुलसीदासों के द्वारा कविता और विस्तार द्वारा विस्तार कविता की प्रथम अवस्था दिया गया, किन्तु नाटक की किसी प्रकार का प्रोत्साहन प्राप्त न हुआ। उर्दू के क्षेत्र में भी जो कवि कविता के लक्ष्य काल में भी, नाटक-रचना की ओर से पूर्ण उपरिष्ठता थी। किन्तु नाटक के लक्ष्य जनता के भीतर विद्यमान थे। संस्कृत साहित्य में तो नाटकों की रचना हो ही चुकी थी, और इस काल में भी किसी न किसी रूप में उस अवस्था को रखा हो रहा था। हिन्दी के रीति काव्य में ही रीति काव्य के कई संस्कृत कविता में संस्कृत में नाटकों की रचना थी, किन्तु विद्यापीठ, साहित्य, साहित्य, और सर्वोच्च मन्त्र नाम विशेष उपरिष्ठ-मय है। जनता के भीतर कविताओं के रूप में हीम कोरि के रूपों का प्रचार था, पर साहित्यिक दृष्टि-से यह पुनः भी नाटक-रचना की ओर से पूर्ण उपरिष्ठ ही रहा।

इस युग में भी नाट्य-रचना की और किसी का ध्यान न गया। यह युग भी नाटकशास्त्र से सम्बन्ध ही रहा गया।

पश्चिमाञ्चल के अन्धकार-मोक्षकाल का उदय हुआ, जिसे आधुनिक काल कहते हैं। आधुनिक काल का उदय वर्ष १८५० से माना जाता है। इस युग में देश की आधुनिक काल प्रागैतिहासिक परिस्थिति में पुनः प्रवेश करती। इस युग में कुलकर्णी के शासन का समय हुआ, और उनका शासन खैरपुरी में प्रारम्भ हुआ। खैरपुरी खैरपुरी का प्रभाव देश में बहुत जगह, जो खैरपुरी भाषा और वाङ्मय संस्कृति का प्रभाव भी देश की जनता के ऊपर होने लगा। खैरपुरी शिक्षा का यही यही प्रचार होने लगा, इस समय खैरपुरी साहित्य का समय, और आधुनिकता का जन्म हुआ। खैरपुरी साहित्य और समाज के प्रचार के कारण देश में एक नई भाषा और चेतना का उदय हुआ। कहना न होगा, कि खैरपुरी साहित्य में नाटकों की रचना बहुत पहले ही शुरू की। कम-से-कम प्राचीन आचार्य खैरपुरी के संदर्भ में आई, वह उनमें से नाटकों की रचना की जाने लगी। सर्व प्रथम मराठी और गुजराती में नाटकों की रचना की गई। उसके पश्चात् बंगाल में नाटक लिखे गए। बंगाल के नाट्य रचना की प्रवृत्ति ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया, और हिन्दी में भी नाटकों की रचना की जाने लगी। सर्व प्रथम हिन्दी-साहित्य में भी नाटक लिखे गए, वे बंगाल के नाटकों के अनुवाद थे। इसके पश्चात् संस्कृत के नाटकों के अनुवाद भी हिन्दी में हुए। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य में नाट्य कला का जन्म हुआ, और समय के साथ ही साथ वह विकसित होने लगी। आज हिन्दी-साहित्य में नाट्यकला का भी अत्यन्त विविध क्षेत्र है, और उसमें एक से एक अनेक महान् पुरुष मौलिक रचनाएँ ही रही हैं।

कुछ लोग हिन्दी नाटकों का जन्म रामलीलाओं, और रासलीलाओं से ही मानते हैं, पर यह लोगों की धारणा है। रासलीलाओं और रामलीलाओं के हिन्दी नाट्यकला को प्रेरणादायक बनाने का प्रयत्न हुआ, पर यह निश्चित रूप से, कि उनका जन्म खैरपुरी शिक्षा और समाज के प्रचार और प्रसार के ही कारण हुआ है। हिन्दी नाटकों के जन्म के मूल में खैरपुरी साहित्य की नींव पड़ना है। खैरपुरी साहित्य की प्रेरणा से हिन्दी नाटकों का ही जन्म हुआ, पर इसके विकास के मार्ग में कई बाधाएँ आने लगीं, जिनके कारण कुछ दिनों तक हिन्दी नाटकशास्त्र का विकास यथोचित रूप से न हो सका। हिन्दी नाटकों के विकास में सबसे बड़ी बाधा रंग-कलाओं का प्रभाव था। संस्कृत नाटकों के शासन-युग में देश के भीतर की प्रेरणाएं आने लगीं, वे कुलकर्णी के शासन से आने लगीं थीं। खैरपुरी के शासन पर कुछ प्रेरणा-दायक रचनाएँ लिखी गईं। सर्व प्रथम कलकत्ते में एक प्रेरणा-दायक का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् बम्बई, और कलकत्ते में कई प्रेरणा-दायक बनने लगे। जयपुरी इतिहासकारों ने कलकत्ते के प्रेरणा-दायक का अन्वेषण किया था। कलकत्ते के प्रेरणा-दायक की रचना कर हिन्दी की विन्यासप्रणाली पर उन्हें अनेक प्रभाव हुआ था, और उन्होंने उसी से

प्रेमिष्ठ होकर हिन्दी के क्षेत्र के गौतम संन्यासार्थ स्थापित करने का प्रयत्न किया था।

दूसरी बात, जो हिन्दी-भाषी के विचार-धारा में थी, योग्य और सदाकारी सम्मिलितों तथा सम्मिलितों का समारोह था। यह बात नहीं थी, कि समारोह में देशी लोगों का सम्मेलन था, किन्तु सब बातों से यह है, कि उस समय समारोह की स्थिति ऐसी थी, कि समारोह कुल और समारोह के क्षेत्र में लोगों पर प्रभाव होने की ओर का प्रयत्न समारोह में। प्रत्यक्ष होने की ओर के ही बात समारोहियों, और समारोहियों के सम्मिलित कला का प्रदर्शन करते थे। समारोहियों के सम्मिलितों, और सम्मिलितों के समारोह के ही समारोह समारोह इतिहास के पूर्व हिन्दी साहित्यिक साहित्य का सम्मिलित नहीं हुआ। हिन्दी में सब साहित्य का समारोह, ही समारोह इतिहास की में सब समारोह होकर, समारोह की इन सम्मिलितों की दूर किया। समारोह समारोह नहीं साहित्य में साहित्य के रूप में सम्मिलित किया। इस प्रकार समारोह लोगों की सम्मिलित सब से प्रेरित होने प्रभाव किया। हिन्दी हिन्दी साहित्य सम्मिलितों का समारोह हुआ। साहित्य सम्मिलितों में भी, समारोह होने की ओर के ही बातों की सम्मिलित थी, पर समारोह लोगों के मत में सम्मिलित समारोह समारोह हुआ, और समारोह समारोह सम्मिलित कला की ओर सम्मिलित होने लगे।

समारोह इतिहासों के पूर्व हिन्दी साहित्य का समारोह हुआ था। इनके समारोह के पूर्व समारोह के साहित्य 'समारोह' का समारोह हिन्दी में ही हुआ था। पर इस साहित्य का समारोह की ओर से सम्मिलित प्रभाव नहीं है। समारोह ही इस देश साहित्य था, जो सम्मिलित कला का समारोह है। पर यह समारोह था। समारोह में हिन्दी साहित्य का विचार समारोह कला के ही समारोह होने हैं। समारोह इतिहासों की ही हिन्दी साहित्य के सम्मिलित, विचार, और समारोह का समारोह मत है। इन हिन्दी-साहित्य के विचार-समारोह की समारोह में इस पर उनके विचार-इतिहास की सम्मिलितों में विचार कर सकते हैं:—

(१) समारोहकाल के पूर्व	[१९०१-१९१५]
(२) समारोहकाल	[१९१५-१९२५]
(३) समारोहकाल के उपर	[१९२५-१९३५]
(४) प्रसारकाल	[१९३५-१९४५]
(५) समारोहकाल	[१९४५-.....]

समारोहकाल के पूर्व का समारोह १९०१ से लेकर १९१५ तक समारोह जाता है। इस काल का समारोह सम्मिलित है, कि हिन्दी साहित्य ने इसी काल में समारोह समारोहकाल किया। इस काल में साहित्य और सम्मिलित दोनों ही समारोह के पूर्व के साहित्य का समारोह हुआ। इस काल की सम्मिलित सम्मिलितों में सम्मिलितों के समारोह, और समारोह समारोह 'समारोह' का 'समारोह' का समारोह समारोह है। साहित्य साहित्य में समारोह का समारोह समारोह और

केन्दु काल में कई जगहवला नाटककारों का काम हुआ, और उनके द्वारा मेह नारकों का प्रचलन भी हुआ । मारोलेन्दु काल की तीन नाटककारों में अपनी रचनाओं में गौरवशक्ति बनाने का प्रयत्न किया है, उनमें श्री निवासदास, महीनारायण चौधरी, इन्द्र नारायण मिश्र, जगन्नाथदास, केदारनाथ शर्मा, हरिऔध, और रामाचरण मोसामी इत्यादि का मुख्य स्थान है । श्री निवासदास, महीनारायण चौधरी, इन्द्र नारायण मिश्र, और केदारनाथ शर्मा उनके समकालीन थे । कदापि मारोलेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन कलाकारों के द्वारा उनका नाटकों की रचना नहीं हो सकी, पर इसमें समझें नहीं, कि उन्होंने मारोलेन्दु की भावनात्मक को समझ करने में प्रयत्नशील कहाँ कहाँ प्रयत्न की । इस युग की रचनाओं में 'हरिऔधजी' के प्रमुख विषय और 'कविमयी गौरव' का महान् पूर्ण स्थान है । रामाचरण मोसामी का भीहाना भी इस युग की श्रेष्ठ कृति है ।

मारोलेन्दु काल के नाटकों की तुलना की दृष्टि से इन निम्नलिखित कलाओं में विभक्त करते हैं—सामाजिक, प्रेम प्रधान, देश प्रेम सम्बन्धी, शरीरकामी, प्रहसन और आधुनिक । सामाजिक रचनाओं में चार्लस बिंसेन, और कुरियरी भाषा का महान् पूर्ण स्थान है । इस काल में श्री सामाजिक नाटक किये गए, वे बाल-विवाह, दहे विवाह, चार्लस, और श्री जीवन की समस्याओं पर आधारित हैं । इन नाटकों में नाटक के लक्ष्यों का विचार जगहों में ही प्राप्त प्राप्त है, पर इन पर नवीन युग के विचारों की छाया है । नाटकशास्त्र की दृष्टि से अधिक महान् पूर्ण न होते हुए भी विचारों की दृष्टि से वे अधिक उपलब्धी हैं । मारोलेन्दु काल में प्रेम प्रधान नाटकों की रचना मुख्य रूप से हुई है । मारोलेन्दु हरिश्चन्द्र की सर्व प्रेम वाली है । उनके रचनाओं में प्रेम के साथ सम्बन्ध रूप से घने घाते हैं । नाटकशास्त्र के क्षेत्र में मारोलेन्दु की ही प्रेम प्रेम के प्रदर्शन हैं । उनके 'विद्याकुन्द' नाटक में प्रेम के लक्ष्यों का विचार अधिक सुन्दरता के साथ हुआ है । चन्द्रावली नाटिका भी परमोच्च प्रेम का सुन्दर दर्शाते हैं । श्री निवासदास की 'रक्षणीर मनोहरी' में श्री प्रेम की भावनाएँ जगहों हुई मिलती हैं । प्रेम प्रधान नाटकों में 'दुखान्त' और 'दुखान्त' दोनों ही प्रकार के नाटक मिलते हैं । 'रक्षणीर मनोहरी' दुखान्त है । 'दुखान्त' नाटकों में अधिकतर सामाजिक चरित्रों का ही आशय किया गया है ।

देश प्रेम सम्बन्धी नाटकों में 'जगत दुर्दशा' का मुख्य स्थान है । मारोलेन्दु की ने अपने कई नाटकों में देश प्रेम सम्बन्धी भावनाओं का विषय किया है । उनकी इस प्रकार की भावनाओं ने साहित्य के अन्यत्र एक नई दिशा का निर्माण किया है । शरीरकामी रचनाओं में कमलाचरण का 'अदृष्ट नाटक' उल्लेखनीय है, जो इस प्रकार के मौलिक है । मारोलेन्दु काल में कई ऐसे कलाकार हुए हैं, किन्हीं प्रहसनों और प्रेम साहित्य की सुन्दरता के साथ रचना की है । मारोलेन्दु ने सर्व प्रहसन साहित्य की रचना की है । अधिकतर प्रहसनों की रचना सामाजिक विषयों

पर हुई है। प्रहसनो में ऐनबीनन्दन का 'एक एक के तीन तीन', बालकृष्ण भट्ट का 'बैरा नाम, बैरा परिनाम' अथवा नाटकाल मिश्र का 'अलिखीत काल' किरीटेशाह बीकानरी का 'भोजन चोरा' और विद्यानाथ का 'महात्म्येन नमो' अपना महान् पूर्ण स्थान रक्ता है।

भारतेन्दुनाथ सम्पुटित रचनाओं के लिए भी अतिशय प्रसिद्ध है। इस काल में बेला, कौन्सेली, और लोहना के कई नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ।

भारतेन्दुनाथ हिन्दी नाट्य-रचना का प्रथमकाल है। इस काल के उत्तम मना कलाकार भारतेन्दु इतिवन्धनी ही हैं। भारतेन्दु इतिवन्धनी नाटक-रचना के क्षेत्र में एक विशाल-विशुद्ध कर कहे जायेंगे होते हैं, जहाँ ही वागर्थ आकर मिलती है— एक लोहना नाट्य शास्त्र के सिद्धांतों की, और दूसरी वागचाल्य नाट्य शास्त्र के सिद्धांतों की। भारतेन्दुकी ही वाग्य रचनाओं में दोनों ही सिद्धांतों का एक सम्मेलन या दृष्टिकोण होता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में पूर्ण कथेष्ट न ही भारतीय नाट्य परम्परा का वास्तव किया है, और न कहीं कद करके वागचाल्य सिद्धि का ही अनुसरण किया है। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में दोनों के सम्मेलन के वास्तव एक नवीन प्रकृति प्रकट होती हुई दृष्टि कोण होता है। उनके अनुसर्तों क्षेत्रों में ही उनके विधि-धर्म पर चल कर उनके कद-चिह्नों का अनुसरण किया है। भारतेन्दुनाथ में मौलिक और सम्पुटित-दोनों ही प्रकार के नाटकों की रचना हुई। मौलिक नाटकों में कई ऐसे नाटक हैं, जो नाट्य कला की दृष्टि के सुन्दर करे का समर्थ हैं, पर फिर भी यह बात कम है, कि इस युग में किसी ऐसे नाटक की रचना नहीं हुई, जिसे प्रत्येक दृष्टि से सर्वोत्तम कहा जा सके। सम्पुटित नाटकों में कई ऐसे नाटक अत्यन्त सज्जे उपलब्ध किए गए, जिसका नाट्य साहित्य में महान् पूर्वा स्थान है। इन मौलिक और सम्पुटित नाटकों में हिन्दी साहित्य की एक नई प्रकाश की। इनके द्वारा मौल्य की प्रकृति सुसंस्कृत हुई, और लोग नाटक-रचना के क्षेत्र में एक नवीन दिशा का निर्माण करने लगे। यह बात है, कि इस युग में सर्वोत्तम मौलिक नाटकों की रचना नहीं हुई, पर उसके साथ ही साथ यह भी सत्य है, कि इस युग में ही हिन्दी के सर्वोत्तम मौलिक नाटकों की शीघ्र प्रती। उड़ी शीघ्र के परि-क्षाम काल ही ही 'प्रकाश युग' की शक्ति हुई है।

उत्तरार्ध १९२५ के आरंभ होता है। उत्तर काल काल प्रकटता और कौन्सेली का युग है। इस काल में 'जयभक्त' आदीशान हुआ, और लार्थीनाथ के उत्तरार्ध लिख नवीन रंग में वागचाल्य आदीशान का रूप प्रकट हुआ। इसका प्रथम देश की विपत्ति और प्रकट के विचारों पर भी अतिशय प्रकाश। अहिंस की इन आदीशानों के प्रकाशित हुए किताबें यहाँ, परिशालन मकर्य नाट्य-कला में भारतेन्दुकी में जो परम्परा स्थापित की थी, उसमें परिवर्तन उपलब्ध हुआ। यह परिवर्तन उत्तर काल के ऐतिहासिक, प्रेम प्रकाश, और अत्यन्त प्रमुख नाटकों में लब्ध रूप से दृष्टिकोण होता है। उत्तरार्ध में प्रमुख रूप

के तीन प्रकार के नाटकों का प्रचलन हुआ—वीरशक्ति, ऐतिहासिक, और समाज दृष्टक। वीरशक्ति नाटकों में 'महर्षीर बलि', 'नन्दमकली', प्रसारणी हल कन्दारहल, और बहोनाथ महर्षी द्वारा रचित 'कुम्भवन यज्ञ' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वीरशक्ति नाटकों में कई ऐसे भी नाटक मिले पाए, जिनमें राम, और हनुमान् राजा की भावनाएँ हैं। ऐतिहासिक नाटकों में साहित्याम का 'कुम्भधर्म', श्री कृष्णधर्म हल का 'वेदांगि उदाल', बहोनाथ महर्ष का 'कन्दारहल', और तुलसीदास काविक बलि है। समाज प्रचार नाटकों में जिन कथकों का 'विहीनोदय' अथवा विहीन स्थान रखा है।

उत्तरकाल में मौलिक नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत, वैजना, और अंगरेजी साहित्यकारों ने अद्विष्ट रचनाएँ भी अपने आप हैं। अद्विष्ट रचनाओं में उत्तर राज-शक्ति, 'सुन्दरिणी', और 'नानाधर्म' काविक महत्त्वपूर्ण हैं।

'प्रसारकाल' वर्ष १८१६ से प्रारंभ होता है। प्रसारकाल अन्तर्गत का युग था। द्वितीय महाभारत समाप्त हो गया था। अंगरेज शासकों की नीति के कारण देश 'प्रसारकाल' के भीतर विहीन की भावना कायम हो उठी थी। राजा लालिब केन्द्र का, देश के कोने कोने में, उदय हो रहा था। इसका प्रभाव साहित्य के उत्तर में पड़ा। साहित्य के अन्तर्गत की राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। नई रचनाएँ, नवीन विचारों, और नवीन साहित्यों में साहित्य के भीतर प्रवेश किया; वह स्वयं स्वयंभूत, सुन्दर, और प्रभावशाली ने कम कारण दिया। नाटक युग में भी विचारकाली अतिरिक्त उत्पन्न हुआ। अंगरेजी साहित्य के अतिरिक्त सर्वत्र के अपने के कारण नाटक-काल में नई कला ने कम प्रवेश किया। वह नई कला बहुत कुछ राष्ट्रवाद का भाव से प्रभावित थी। इसके अन्तर्गत ऐसे नाटकों की शक्ति हुई, जिनमें बुद्धि की प्रभावशाली थी। प्रसारकाल में मुख्य रूप से ऐतिहासिक और समाज दृष्टक नाटकों की रचना हुई है।

नाटककाल की शक्ति से प्रभाव का अतिरिक्त अर्थ है। हिन्दी की नाटक कला में इस युग में अपने की अतिरिक्त अर्थ का प्रवेश किया है। एक और ती उत्तरी नाटकेन्दु इतिहासकारों की परंपरा का निर्माण किया है, और दूसरी और उत्तरी नाटककाल के अर्थ का अर्थ कर अपने भीतर नवीनता की कम दिया है। इस शक्ति से वह कला अत्यन्त न होना, कि प्रसार काल अतिरिक्त प्रचार की नाटक शक्तियों का संगम है। प्रसार काल में नई और युवावी शक्तियों ने एक साथ मिल कर हिन्दी नाटककाल का अतिरिक्त अर्थशक्ति दृष्ट के किया है। प्रसार काल की रचनाओं की बार कालों में विचार दिया था कहा है—वीरशक्ति, ऐतिहासिक, समाज दृष्टक, और अद्विष्ट। वीरशक्ति नाटकों में विहीनोदयों की 'सुन्दरिणी', श्री विहीनोदय की 'विहीनोदय', और वीरशक्ति नाटक काल की 'नानाधर्म' का प्रमुख स्थान है। ऐतिहासिक नाटकों में प्रसारणी के नाटक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके अतिरिक्त 'राम' का महाभारत काल, वैजनाधर्म का 'कर्मका', निरिष्ट का 'प्रचार

प्रतिष्ठा', उदयराजपुर मठ का निवासस्थान, और सेठ गोविन्ददासजी का 'दुर्ग' कान्हा विविष्ट स्थान प्रकाश है। समस्त मूलक नाटकों में भी लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक अधिक महत्व पूर्ण हैं। गढ़वाली की रचना में भी श्री- श्री- श्रीवास्तव, राम और श्री सुदर्शन की रचनाओं में अधिक सुलझावित भाव की है। कानूचित रचनाओं में द्विवेन्द्रदासदास, देवदासिनी, भवभूति और बालकृष्णदास आदि कलाकारों की कृतिओं का अनुवाद अधिक महत्व पूर्ण है।

आधुनिक काल १८२५ ई० से प्रारम्भ होता है। विचारों की दृष्टि के नए काण्ड अधिक महत्व पूर्ण है। इस काल में देश की राजनीतिक परिस्थितियों ने विचार का आधुनिक काण्ड का कारण बना, और इसी काल में देश की जनता जाति की नए समझना की पूर्ण हुई, जो जातियों से देश के हृदय में आकुलता का भाव उत्पन्न कर गये थे। देश की इस राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर भी पूर्ण रूप से पड़ा है। हिन्दी का भाव्य क्षेत्र की सबसे पूर्ण रूप से प्रभावित हुआ है। इस काल में जो नाटक लिखे गए, उनमें विचारों और रचनाओं की प्रधानता है।

आधुनिक काल के नाटकों की भी हम चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं— वैयक्तिक, ऐतिहासिक, मेम मूलक, और समस्त मूलक। वैयक्तिक नाटकों में सेठ गोविन्ददासजी का कर्मभ्य, उदयराजपुर मठ का 'चम्पा', चम्पा, काल विमल, जगज्जोषा, और विद्याविजय का अनुक प्रकाश है। ऐतिहासिक नाटकों में उदयराजपुर मठ द्वारा रचित काल का विद्रु पदम, गोविन्द कल्याण द्वारा रचित रामकृत, कान्हापुर का विद्रु, उदयराजपुर द्वारा रचित जगज्जोषा, इतिहास में ही द्वारा रचित रक्षा बालन, विद्या कान्हा, प्रविष्टीय, और अन्य बहुत सारे लिखे गये हैं। मेम मूलक नाटकों में कान्हा काल के 'प्रकाश' और प्रदीपकारी नाटकों में 'कर्म' की 'ज्योत्स्ना' का महत्व पूर्ण प्रकाश है। समस्त मूलक नाटकों में भी लक्ष्मीनारायण मिश्र की 'दाम', श्री गोविन्द कृतम पदम, श्री सुदर्शनदास वर्मा, और उदयराजपुर 'कर्म' के नाटकों की रचना की जाती है।

आधुनिक काल में रचनाओं नाटकों की भी महत्व पूर्ण रचना हुई है। हिन्दी में रचनाओं नाटकों का काम रंगमंचों और निराला के ही वर्गों के कारण हुआ है। आधुनिक रचनाओं नाटककारों में श्री कुम्भीराम, श्री रामकृष्ण वर्मा, श्री उदयराजपुर मठ, श्री पूर्वीनाथ वर्मा, श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र, और श्री सुदर्शन दास आदि का महत्व पूर्ण प्रकाश है।

हिन्दी नाट्यकला का वर्तमान स्वरूप

भिड़ल्ले पृष्ठों में हम नाट्यकला के प्राचीन स्वरूप का विवेचन कर चुके हैं। अब हम यहाँ हिन्दी नाट्यकला के वर्तमान-स्वरूप के विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। हिन्दी नाट्यकला का वर्तमान स्वरूप, प्राचीन स्वरूप से अधिक भिन्न है। हिन्दी नाट्यकला के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह निश्चित होता है, कि काल-काल युग प्रगति की ओर अग्रसर हुआ, वही-वही हिन्दी नाट्यकला के स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया है। हिन्दी नाट्यकला का वर्तमान स्वरूप युग की आवश्यकताओं के पूर्ण रूप से प्रभावित है। युग की प्रवृत्तियों में ही आधुनिक नाट्यकला का स्वरूप दल पर आधारित हुआ है; दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं, कि आधुनिक नाट्यकला का वर्तमान रूप युग की आवश्यकताओं का ही एक प्रतिबिम्ब है, जिस प्रकार आज भारतीय युग की आवश्यकताओं में कई देशों की संस्कृतियों, और उसकी कुसम विविधताओं का समावेश हुआ है, उसी प्रकार हिन्दी नाट्यकला के वर्तमान स्वरूप के गठन में कई देशों की नाट्यकलाओं ने अपना प्रभाव डाला है। इसमें कोई-सी नहीं, कि हिन्दी नाट्यकला के वर्तमान स्वरूप के दल में प्राचीन भारतीय नाट्यकला की ही भावना है, पर इसमें भी सन्देह नहीं, कि आज हिन्दी नाट्यकला का जो भवन खड़ा हुआ है, उसके निर्माता और अभिचार में विविध देशों की नाट्यकलाओं ने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

हिन्दी नाट्यकला के वर्तमान स्वरूप को जानने के लिए हमें नाट्यकला के उन लोगों पर विचार करना होगा, जो स्वरूप का संकलन करते हैं। वे ही नाट्यकला के स्वरूप विधापक स्वरूप का संगठन करने वाले कहे जाते हैं, किन्तु उनमें तत्त्व भी प्रमुख और सर्वोच्च है, उनके नाम इस प्रकार हैं—विषय, उद्देश्य, शैली, और नाटकीय तत्त्व। हिन्दी नाट्यकला के वर्तमान स्वरूप के संकलन में इन्हीं तत्त्वों का अधिक-अधिक योग है। अतः हिन्दी नाट्यकला के वर्तमान स्वरूप को जानने के लिए हमें स्वरूप का संगठन करने वाले तत्त्वों पर आवश्यकानुसार ध्यान देना होगा। इन्हीं तत्त्वों के दर्पण में हम यह देख सकते हैं, कि हिन्दी नाट्यकला का वर्तमान स्वरूप किस प्रकार का है, और उसके भीतर कितनी क्रांति तथा कितना प्रभाव है।

आज हम जिस युग में निवास करते हैं, वह अधिक परिवर्तित है। आज के

तुम पर विधान की दृष्टि कर ले जाय है। आत्म के मनुष्य की प्रवृत्तियों दृष्टि कर ले लिये।

विधान की ही और पञ्चसूत्र जस्त होती है। अतः आत्म का वाङ्मय भी विधान के अधिक सम्बन्धित है। आत्म के वाङ्मय में बिना उन्नीस प्रवृत्तियों से क्या वास्तव किया है, उनके कल्प का एक मात्र कारण विधान ही है। कविता, कथानी, उपन्यास, और नाटक इत्यादि वाङ्मय के सभी जनों को विधान में सम्मिलित और सम्मिलित किया है। नहीं हम केवल नाटक को ही लेते, क्योंकि यही हमारा दृष्ट विषय है। आत्म का वास्तव-वाङ्मय तुम की ही आत्मसंज्ञाओं में दृष्टा हुआ है। आत्म इका विषय आन्तरिक नाटक-वाङ्मय की मूर्ति केवल वीरगायिक कथाओं तक ही सीमित नहीं रह गया है; बल्कि आत्म उसके भीतर तुम की आत्मसंज्ञाओं के अनुरूप विविध विषयों का समावेश हो रहा है। आत्म की नाट्यकला के विषयों की हम विस्तारित करें। वे विभक्त कर सकते हैं—वीरगायिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, और प्रतीकवाचक इत्यादि। वीरगायिक विषय वे हैं, जो युद्धों के लिए करते हैं। वीरगायिक विषय दो प्रकार के होते हैं। एक ही वे हैं, जिसका सम्बन्ध जीवमरणाधी की जीवन-कथाओं से है, और दूसरे प्रकार के वीरगायिक विषय वे हैं, जो जीवमरणाधी के जीवन से सम्बन्धित हैं। आन्तरिक नाट्य में वीरगायिक विषयों पर ही नाटकों की रचना की जाती थी। आत्म कला बहुत कम जीव वीरगायिक कथावाची की नाटकों की रचना के लिए प्रवृत्त करते हैं। यही कारण है, कि आज कल वीरगायिक नाटकों का तुमका बहुत अल्प मात्रा में होता है।

ऐतिहासिक नाटक उन्हें कहते हैं, जिसकी कथावाचक इतिहास से ली जाती है। अधिकतर कथावाचक ऐसे काल से ली जाती हैं, जिसे हम आनुवंशिक की दृष्टि से राष्ट्र का उत्कर्ष मानते हैं। कभी-कभी राष्ट्र के अन्तर्गत तुम से भी हम कथाओं को चुन लेते हैं, जो उस अन्तर्गत तुम में अन्तर्गत का कल्प करती हैं, कथावाचक-कथा में जिसके द्वारा राष्ट्र के जीवन का विषय हमसे उपस्थित होता है। आनुवंशिक नाट्य में, अधिकतर ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई है। सर्वोच्च कथावाचक मर्याद, की दृष्टान्तवाचक कथा, और भी इतिहास के ही इतिहास ने ऐतिहासिक नाटकों के जीवन में अधिक सुलभाति प्राप्त की है। सामाजिक नाटकों में समाज की समस्याओं का विषय होता है। समाज की समस्याओं के रूप में आज समाज के भीतर अनेक कुपरीक्षा प्रचलित है। जैसे—नशीबी, ब्रह्म-विवाद, बाल-विवाद, देवदास प्रथा, और मर्यादा इत्यादि। इनके अतिरिक्त आज समाज के भीतर और भी कई सार्वजनिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। जैसे—विवाह की समस्या, नारी जीवन की समस्या, दम्पत्य जीवन की समस्या, शिक्षा की समस्या, और विधान तथा मर्याद की समस्या। सामाजिक नाटकों में इनकी समस्याओं का विवरण किया जाता है, और अन्तर्गत एक दृष्ट—एक विधान को हमें का प्रवृत्त किया जाता है। हम नाटकों में समाज की समस्याओं का ही विवरण होता है, इसलिए हमें 'उपन्यास प्रवृत्त' नाटक भी कहते हैं। राजनीतिक नाटक उन्हें कहते हैं, जिसकी रचना आनुवंशिक वास्तविक

के क्षेत्र में व्यवस्थित 'वादी' को लेकर की जाती है। उन वादी में कुछ के नाम इस प्रकार हैं—गोपीबन्ध, पंडीबन्ध, चाम्पबन्ध, सन्तबन्ध, और कस्तुरिबन्ध इत्यादि। साहित्यिक गद्यवादी में जीवन और प्रकृति की व्याख्या की जाती है। पारम्यिक गद्यवादी की रचना धर्म से सम्बन्ध रखने वाली कथाओं को लेकर की जाती है। प्रायोगिक गद्यवादी में मानव हृदय के मानवीयत्व, मनसा, जीवन, मौन, और इत्यादि का विवेक गूढ़ात्मा इत्यादि में किया जाता है।

उद्देश्य का गद्यवादी में गूढ़त्व पूर्ण व्यापक होता है। गद्यवादी अपने उद्देश्य को ही दृष्टि में रख कर अपने गद्यवादी के लिए कथात्मकता का प्रयत्न करता है, और उसकी

उद्देश्य पूर्ति के लिए आवश्यक पर विशेष गूढ़ता है। साहित्यिक काल

में, उद्देश्य की दृष्टि से रस कर तीन प्रकार के गद्यवादी की रचना की जाती है; पहले गद्यवादी में उद्देश्य की दृष्टि से साहित्यिक काल के गद्यवादी को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, और सामाजिक प्रयत्न। सांस्कृतिक गद्यवादी में मानवीय संस्कृति के उत्कर्ष की प्रशंसा करने वाले विद्वत् साहित्यिक काल होते हैं। वेद वेदिक, राम, और जर्नीय कथावादी गद्यवादी में सांस्कृतिक गद्यवादी के प्रयास में अधिक प्रयत्न प्रयत्न की है। वैज्ञानिक गद्यवादी में समाचार, वैज्ञानिक, धर्म, जीवन, राष्ट्र प्रेम, मानवीय संस्कृति, और गूढ़त्व इत्यादि सभी का उत्कर्ष प्रशंसा किया जाता है। सामाजिक प्रयत्न गद्यवादी में समाज की उन समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है, जिनके कारण समाज जीवन सर्वाधिक अक्षयित हो रहा है। जो अक्षयित समाज विषय, और वेद वेदिकवादी इत्यादि में समाज प्रयत्न गद्यवादी के विचारों में अधिक प्रयत्न प्रयत्न की है।

साहित्यिक काल में गद्यवादी रचना का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया है। साहित्यिक काल की गद्यवादी प्रकाश पर साहित्यिक की गद्यवादी ने अधिक प्रयत्न डाला है। जीवन-

वैज्ञानिक, वैज्ञानिक, और साहित्यिक इत्यादि गद्यवादी के संदर्भ में

जाने के कारण हिन्दी के गद्यवादी की प्रकृति में अधिक परिवर्तन हुआ है, और के गद्यवादी के क्षेत्र में अपनी विविधता का जीवन देने लगे हैं। विद्वत् प्रकाश का विषय, और उद्देश्य की दृष्टि से विविध प्रकार के गद्यवादी की रचना हो रही है, जो प्रकाश का गद्यवादी के क्षेत्र में विविध प्रकार की वैज्ञानिक की गद्यवादी हो रही है। वैज्ञानिक की दृष्टि से साहित्यिक गद्यवादी को इन काल वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—(१) सांस्कृतिक प्रयत्न, (२) जीवन प्रयत्न, (३) समाज प्रयत्न, (४) संवाद प्रयत्न, (५) उद्देश्य प्रयत्न, (६) गद्यवादी प्रयत्न, (७) मानवीय, और (८) वैज्ञानिक गद्यवादी। सांस्कृतिक गद्यवादी अपने कालों में, जिसमें सांस्कृतिक का काल पर अधिक प्रकाश डाला है। जीवन प्रयत्न गद्यवादी में जीवन विषय की प्रयत्न होती है। समाज प्रयत्न गद्यवादी में प्रयत्न और विज्ञान कालों की और जीवन व्यापक दिया जाता है। संवाद प्रयत्न गद्यवादी में गद्यवादी प्रकाश की संवादी के द्वारा ही प्रकृति और प्रकाश दिया जाता है। भाषा और वैज्ञानिक की विविधता की संवाद प्रयत्न गद्यवादी की

विशेषता होती है। उद्देश्य प्रधान नाटकों में उद्देश्य की निश्चि की धीर ही ध्यान केंद्रित रहता है। प्रतीक प्रधान नाटकों में साधारण दृश्य की भावनाओं के विषय विविध बिन्दु होते हैं। बहिष्काल्य पद्य-बद्ध होते हैं। भाव-भाव्य के व्यक्तता की प्रधानता होती है।

विश्व प्रसार स्तर की कार्यकला प्राप्त हो है, सभी प्रकार नाटक की कार्यकला नाटक के स्तरों में ही निहित होती है। नाटक के उच्च नाटक के द्वारा के ही समान नाटक के स्तर होते हैं। प्रायः के ही समान नाटक के उच्च नाटक के

मीलन शक्ति संश्लेषित करते हैं, और उनके कथक तथा कथन कराते हैं। नाटक के स्तरों की इन विशेषताओं की ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते हैं, कि नाटक के स्तर हम विशेषताओं की कहते हैं, जो प्रायः और शक्ति के समान नाटक के मीलन संश्लेषित होते हैं, तथा किन्तु द्वारा उनके कार्य-कारण में निश्चि प्राप्त होती है।

आधुनिक नाट्यकला की विशेषता करने पर हम उनके स्तरों की कुछ बातों में विचार कर सकते हैं—(१) कथानक, (२) कथु विधान, (३) चरित्र चित्रण, (४) कथोप-कथन, (५) दृश्य कला, और (६) उद्देश्य। कथानक वह कथु है, जिससे आधार पर नाटक की रचना की जाती है। कथानक वह प्रकार के होते हैं। जैसे—पौराणिक,

ऐतिहासिक, आधुनिक, आधुनिक, आधुनिक, आधुनिक, और आधुनिक आधुनिक। कथु विधान वह विधि है, जिसके द्वारा कथानक की कथाओं को रचा कर उन्हें एक-दूसरे में बद्ध किया जाता है। इसकी बीच ऐतिहासिक विधानों की गई है, जिसके नाम हम प्रमाण है—नाटक प्रधान कथु विधान, कथना प्रधान कथु विधान, कथोपकथन कथु विधान, और दृश्यानुकूल कथु विधान।

चरित्र चित्रण नाटक का दूसरा स्तर है। आधुनिक काल में चरित्र चित्रण पर अधिक धन दिया जाता है। नाम के चरित्र चित्रण के ही द्वारा आधुनिक काल के नाटकों में नाटकीय कला का विकास किया जाता है। आधुनिक काल में, नाटकों की लक्ष्यता पूर्ण रूप से चरित्र चित्रण पर ही निर्भर करती है। जो नाटककार चरित्र चित्रण की कला में विद्वान ही अधिक कुशल होता है, उसकी रचना में कथानक के उद्देश्य ही अधिक लक्ष्य मिलते हैं। चरित्र चित्रण में कुछ ऐतिहासिक से नाम दिया जाता है—

आधुनिक द्वारा चरित्र चित्रण, प्राचीन द्वारा चरित्र चित्रण, उच्च प्राचीन द्वारा चरित्र चित्रण, आधुनिक-प्राचीन द्वारा चरित्र चित्रण, उच्च आधुनिक द्वारा चरित्र चित्रण आधुनिक प्राचीन से सम्बन्धित प्राचीन द्वारा चरित्र चित्रण और कार्य-कारण द्वारा चरित्र चित्रण। चरित्र चित्रण के पद-कार्य नाटक का वह स्तर मानने जाता है, जिसे कथोपकथन कहते हैं। प्राचीन में प्रत्यक्ष की बात चीन होती है, उनी का नाम कथोप-कथन है। कथोपकथन में दो ऐतिहासिक से नाम दिया जाता है, जिसमें एक की उद्योग-मित्री, और दूसरी की आधुनिकमित्री कहते हैं। कथोपकथन की उद्योगमित्री ऐतिहासिक है, जिससे कथानक की रचित प्राप्त होती है। कथोपकथन की आधुनिकमित्री ऐतिहासिक के दृष्टि की रचित में विकास होता है। कथोपकथन के द्वारा कथानक में रचित प्रधान

सोच साहित्य में भी अत्यन्त, सुन्द, और महत्त्व की ही मायना की प्रभावशाली है। कविता, कहानी, नाटक, और उपन्यास इत्यादि साहित्य के सभी क्षेत्रों में भारतीय कल्पना अत्यन्त, सुन्द और विचित्र के साथ ही विचारण करती हुई दिखाई देती है।

'दुस्वप्न' का 'विशेषाचार्य' नाटक राष्ट्रवात्त संस्कृति की देन है। राष्ट्रवात्त संस्कृति 'दुस्वप्न' और नीतिशक्त पर आधारित है। उपन्यास और नीतिशक्त पर आधारित होने के कारण उनमें दुस्वप्न, अन्धकार, विद्या, सुन्दता, और अन्धकारों तथा अन्धकारों की प्रभावशाली है। 'उपन्यास' और नीतिशक्तों होने के कारण राष्ट्रवात्त जीवन अत्यन्त अत्यन्त और नीतिशक्त 'दुस्वप्न' है। राष्ट्रवात्त जीवन का केन्द्र बिन्दु है नीतिशक्त अन्धकार। राष्ट्रवात्त जीवन नीतिशक्त अन्धकारों की ही जीवन का केन्द्र बिन्दु मान कर, जीवन के पक्ष पर अन्धकार होने का प्रभाव कर रहा है। अन्धकार अन्धकार उनमें प्रतिबिम्बित है, अन्धकार है, विद्या है, दुस्वप्न है, और पर दुस्वप्न की भावना की है। अन्धकार का वही जीवन उनके साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हुआ है, और ही रहा है। भारतीय साहित्य में वही जीवन दुस्वप्न की जीवन प्रकृति की भावना हुआ है, वही अन्धकार के साहित्य में नीतिशक्त अन्धकारों की वृत्ति के लिए विद्या, उद्योग, दुस्वप्न, अन्धकार, नाटक, अन्धकार, और अन्धकार अन्धकार इत्यादि का ही प्रभाव देखने को मिलता है। अन्धकार, उपन्यास, नाटक, कहानी, और अन्धकार इत्यादि साहित्य के सभी क्षेत्रों में वही, विद्या, और जीवन की भावना की ही देखने को मिलती है। अन्धकार के साथ ही नाटककारों में दुस्वप्न, अन्धकार, विद्या, उद्योग, अन्धकार, अन्धकार, और विद्या की भावनाओं की ही दुस्वप्न का ही अन्धकारों में स्थान दिया है। उनके नाटकों का अन्धकार ही अन्धकार और विद्या की ही विचार में हुआ है। अन्धकार से अन्धकार अन्धकार अन्धकारों में 'दुस्वप्न' और विद्या की ही भावना मिलती है। हिन्दी की साधुशिक्ष नाटकशास्त्र पर अन्धकार की नाटकशास्त्र का अन्धकार अन्धकार के प्रभाव रहा है। एक और अन्धकार की नाटकशास्त्र का प्रभाव और अन्धकार रहा है, और दुस्वप्न और अन्धकार के कारण भारतीय संस्कृति का प्रभाव अन्धकार ही देना में अन्धकार ही रहा है। अन्धकार अन्धकार हिन्दी में अन्धकार नाटकों की भी वृत्ति होने लगी है, की भारतीय नाटकशास्त्र के ही नहीं, भारतीय जीवन के भी परभाव में नहीं आते। इस प्रकार के नाटकों का हिन्दी साहित्य में क्या प्रभाव होगा, यह दुस्वप्न कहा नहीं जा सकता, किन्तु यह स्पष्ट है, कि अन्धकाराधिकार के साथ पर वे अन्धकार अन्धकार अन्धकार अन्धकार हैं, यह भारतीय जीवन और नाटकशास्त्र के विचार है। अन्धकार अन्धकार के अन्धकार अन्धकार, राष्ट्रवात्त दृष्टि से ही जीवन पर विचार दिया गया है। राष्ट्रवात्त नाटककारों की ही नहीं और अन्धकार अन्धकार का भी अन्धकार अन्धकार और अन्धकार मिलता है।

हिन्दी नाटक— भारतेन्दु के पूर्व

भारतेन्दुजी के पूर्व के हिन्दी-नाटक का काल १६४३ से लेकर १८६६ ई० तक माना जाता है। विद्वानों ने ज्ञान बँट करने के पश्चात् हिन्दी नाटक का प्रारम्भ भारतेन्दुजी के सचदवीं शताब्दी के अन्तिम पूर्वार्द्ध में माना है। हिन्दी पूर्व का नाट्य नाटक अपने प्रारम्भ से लेकर भारतेन्दु काल तक उस साहित्य की भाँति दिखाई देता है, जो पुष्पी के भीतर से निकल रहा हो। इस काल के नाटकों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है— अनुदित और मौलिक। अनुदित नाटकों में अधिकतर नाटक संस्कृत के ही हैं, जिसके विषय या तो वीरयुद्धिक हैं, या ऐतिहासिक और काव्यनिक। इन नाटकों में भारतीय नाट्य परम्परा का परिचालन किया गया है। मौलिक नाटकों के विषय भी वीरयुद्धिक ही हैं। कुछ ऐसे भी मौलिक नाटक इस काल में लिखे गए हैं, जो सामयिक हैं, और जिनमें सुधार की भावना की प्रधानता मिलती है। नाट्यकला की दृष्टि से इन नाटकों को विशेष महत्त्व नहीं प्रदान किया जा सकता। इनका महत्त्व तो केवल इतना ही है, कि यह अपने उद्भव से हिन्दी नाट्य इतिहास की पुँचली रेखा की स्पष्ट बनाते हैं, और उसके चित्र की पूर्ण होने में सहायता प्रदान करते हैं।

हिन्दी में नाटक का जन्म संस्कृत से ही हुआ है। किस प्रकार हिन्दी का जन्म काव्यरस रूप में संस्कृत से हुआ है, उसी प्रकार हिन्दी नाटक का प्रारंभ भी संस्कृत अनुदित नाटकों के ही आधार पर हुआ है। नाट्य रचना के नाम पर सर्वप्रथम हिन्दी में जो नाट्य साहित्य सामने आया है, वह संस्कृत से अनुदित है। सर्व प्रथम संस्कृत के ही नाटकों का हिन्दी में रूपान्तर हुआ है। रंगना और औमरेजी के नाटकों का अनुवाद उसके बहुत पीछे हुआ है। अतः हम हिन्दी के नाटकों का प्रारंभ संस्कृत से ही हुआ मानते हैं। भारतेन्दु काल के पूर्व हिन्दी में कई नाटकों का अनुवाद हुआ था, जो भाव, भाषा, और कला की दृष्टि से सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं।

वह कुँवरकुँवाचारी के ग्रन्थ का अनुवाद है, जो संवत् १६६३ में बनारसी

एक जैन के द्वारा अनुदित हुआ है। यह टीति संस्कृती जैन काव्य है, जिसमें नाटक लघुकाव्य के भी साथ मिलते हैं।

इन्द्रासन नाटक संस्कृत के अनुवाद का अनुबाद है, जो हर्षवर्धन उपनाम 'धर्म' द्वारा संवत् १५२० में अनुदित हुआ है। यह पद्यमय है। अनुबाद में संस्कृत इन्द्रासन नाटक का मूल लघुकाव्य रूप के नहीं था मकर है।

प्रबन्ध आर्येन्द्र संस्कृत के प्रबन्ध आर्येन्द्र का अनुबाद है। इसका अनुबाद कई स्थितियों के द्वारा हुआ है। सर्वश्रेष्ठ अनुबाद बीरपुर श्रीराम महाशय आर्येन्द्र सिंह अर्चन आर्येन्द्र द्वारा है, जो संवत् १५०० के आस पास हुआ है। प्रबन्ध आर्येन्द्र पद्य-पद्य मय नाटक है। कुछ लोगों ने इसका अनुबाद केवल काव्य के रूप में ही किया है।

सकुण्डला संस्कृत के साकुण्डला का अनुबाद है। इसका अनुबाद राजासुन्दर साकुण्डला सिंह जी के द्वारा वर्ष १८६१ ई० में हुआ था।

अनुदित नाटकों के अतिरिक्त भाषाकेन्द्र काव्य के पूर्व कई टीलिक नाटक भी लिखे गए थे। यद्यपि आर्येन्द्र का टीलिक से टीलिक नाटकों में विशेषता नहीं टीलिक-टीलिक बीरपुर टीली, पर इनमें अनेक नहीं, कि इनके द्वारा हिन्दी नाटककला के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है, और वे एक लड़ी को हलक बनते हैं, जिससे हिन्दी नाटककला की बीरपुर बन रही है। यहाँ हम उनमें से, कुछ पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

पद्मानन्द महानाटक की रचना कछोरकमल के रूप में रामचरितमानस के आधार पर की गई है। इसके रचयिता का नाम आकाशरंजीत है। यह विशेष रूप से पद्मानन्द महानाटक बीरपुर में है। इसका रचना काव्य संवत् १५५० के आस पास माना जाता है।

कदलीमकर की रचना संवत् १८०२ के आस पास हुई थी। इसकी रचना कदली बीरपुर लड़ीरूप में की कदलीमकर के आधार पर की है। यह काव्य के रूप में है। कदलीमकर इसमें टीलिक और बीरपुर विशेष रूप से पाई जाती हैं।

आर्येन्द्रमकरित नाटक के रचयिता अरिजयन्ती हैं। इसकी रचना का काव्य इसी उल्लेखनीय अरिजयन्ती के मध्य में मकरित मकर है। इसमें टीलिक लड़ीरूप और बीरपुर आकाशरंजीत मकर की रचना का वर्णन है।

आनन्द सुकुण्डला टीली नरेण लकीरि विरचित है, का लिखा हुआ है। इसका रचनाकाल संवत् १८०० ई० के आस पास माना जाता है। यह राम चरित पर आनन्द सुकुण्डल आधारित है, और पद्य-पद्य लिखा है।

इस प्रकार भाषाकेन्द्र काव्य के पूर्व कई टीलिक नाटकों की भी रचना हुई थी। यह बहुत ही विचित्रोक्ति के नाटक थे। नाटककला की दृष्टि से इनका स्थान अतिरिक्त आकाशरंजीत और टीली का। नाटक की इनमें एक भी टीली विशेषता नहीं दिखाई पड़ती, किन्तु पर विशेषकर विचार का कहे। यह अविचार्य रूप में ही है। कुछ टीली भी

हैं, जो गद्य में लिखे गए हैं। किन्तु इनका गद्य ब्रजभाषा का गद्य है, जो पद्य के ही समान शान्त होता है। अतः भाषा और शैली की दृष्टि से भी इन नाटकों का कोई महत्व नहीं है। इनका महत्व तो केवल इतना ही है, कि इनसे हिन्दी नाट्य-साहित्य के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है, और हिन्दी नाट्य साहित्य की उस लड़ाई को जोड़ने में यह सहायता भी प्रदान करते हैं, जो अपने क्षेत्र में चारों ओर फैली हुई है।

हिन्दी नाटक—भारतेन्दु काल

भारतेन्दु काल १८६७ से १९०४ ई० तक माना जाता है। इस काल विशेष के निर्माता या संस्थापक स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ही हैं। इस काल विशेष में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी हिन्दी नाटक कला में वह स्वल्प योगदान किया है, जिसे हम नाटककला का वास्तविक स्वल्प कह सकते हैं। सर्व प्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने ही ऐसे नाटक उत्पन्न किये, जिनमें नाटककला का वास्तविक स्वरूप देखने को मिलता है। कालः हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी को ही हिन्दी नाटककला का वास्तविक जनमदाता मानते हैं। भारतेन्दुजी के पूर्व हिन्दी में भी नाटक लिखे गए थे, उनमें संस्कृत नाट्य परम्परा का पालन किया गया था। पर भारतेन्दु के आधिपत्य के पूर्व कुछ बदल चुका था। जौगरेजी का छात्र भारतवर्ष में स्थापित हो चुका था। जौगरेजी भाषा और साहित्य का भी प्रचार करने-कने होने लगा था। जौगरेजी नाटककला के प्रभाव का प्रकाश भी हिन्दी-साहित्य के ऊपर पड़ने लगा था। तब बंगला की नाटककला ने भी हिन्दी साहित्य को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था। बंगला में माइकेल मधु दत्तमध, और दीनबन्धु इत्यादि कई एक ऐसे नाटककारों का जन्म हो चुका था, जिन्होंने नाटक-जगत में अधिक सुसमाधि प्राप्त की थी, और जिनकी नाटककला के हिन्दी-साहित्य को अधिक प्रभावित भी किया था। भारतेन्दुजी, नाट्य रचना के क्षेत्र में परिचय करने पर जौगरेजी और बंगला दोनों ही नाटककलाओं से अधिक प्रभावित हुए थे। उनके पूर्व हिन्दी नाटक जगत में संस्कृत की वो नाट्य परम्परा प्रचलित थी, इसमें सन्देह नहीं कि उसी को आधार मान कर उन्होंने अपनी नाटककला के भवन का निर्माण किया, पर इसमें भी सन्देह नहीं, कि उनके भवन निर्माण में जौगरेजी और बंगला की कलाओं का सहयोग है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी की उस नाटककला में, जो सभी तक संस्कृत की नाट्य परम्परा की बंधोती में ही आबद्ध थी, महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। उन्होंने उसमें जौगरेजी और बंगला की नाटककलाओं का समावेश करके उसे नए रसि में ढाला, और गति प्रदान की। उन्होंने कला के साथ ही साथ भाव और कथावस्तु के चुनाव में भी कुछ नवीनताओं को महत्व दिया। उन्होंने विषयों में भी परिवर्तन किया, और अपने नाटकों के पात्रों के मुख से ऐसे वाक्य निकलवाए, जो नवीन जीवन, और नवीन चेतना का संदेश देते हैं।

जहाँ बैंगला और छोटे-से राष्ट्रिय की नाटककलाओं की नवीनताएँ भी मिश्रित हैं। इस प्रकार उन्होंने अपनी नाटककला को युग के लक्ष्य से दृष्ट कर उठे प्राकृतिक, और जीवन के अनुकूल बनाने का सर्वोत्तम प्रयत्न किया है।

मार्गोन्मुखी के नाटकों की रचना करने के पूर्व वह पुस्तिका का निर्माण किया, जिसका नाम 'नाटक' है। इस पुस्तिका में उन्होंने नाटक के स्वरूप, और उसके विद्यार्थी की विशेषताएँ करने योग्य की हैं। वह पुस्तिका उनके प्राज्ञ विद्यार्थी, और उनकी नाटककला पर अनुचित रूप से प्रभाव डालती है। अतः उनकी नाटककला की समझने के लिए इस पुस्तिका में वर्णित विद्यार्थी, और कला के स्वरूपों पर ही ध्यान देना होगा। उन्होंने अपनी इस पुस्तिका में जीवन के सम्बन्ध रखते पाँचे विषयों और नाटकों की ही नाटकीय कला के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने हृष्ट, उन्मा, राग, और नर्तक इत्यादि को सर्व प्रभावित किया है। कठ-पुस्तकियों के लेख, हस्त लेखों की मधुरता, और मार्गोन्मुखी तथा लेखों के लक्ष्यों की उन्होंने शुद्ध कौशल माना है। उन्होंने उनकी नाटकों की कला विषय में ध्यान दिया है जो नाटकीय कलाओं से संलग्न है। काल विषय को उन्होंने दो वर्गों में विभक्त किया है। एक वर्ग में उन्होंने उन नाटकों को रखा है, जिसमें मार्गोन्मुखी नाटक नाट्यकला के अनुसार सभी को निर्मित है, और दूसरे वर्ग में उन्होंने उन नवीन नाटकों को रखा है, जिसमें हस्तों की प्रभावशीलता का ध्यान किया गया है। गीतों की दृष्टि से भी उन्होंने नाटककला के दो वर्ग किए हैं। एक वर्ग में जो उन्होंने उन नाटकों को किया है, जिसमें काल माना में गीत गाए जाते हैं। ऐसे नाटकों की ही वे 'नाटक' की संज्ञा देते हैं। द्वितीय वर्ग में वे उन नाटकों को लेते हैं, जिसमें प्रचुर मात्रा में गीत होते हैं। ऐसे नाटकों की वे 'गीत-नाटक' की संज्ञा देते हैं। नाटकों के संत की दृष्टि से भी उन्होंने नाटककला को तीन वर्गों में विभक्त किया है—संयोगीत, विशेषीत, और मिश्र। संयोग की रीति में कथित होने वाली कथा को वे संयोगीत मानते हैं। इसी प्रकार मिश्र कथा का संत विशेष की स्थिति में होता है, उसे वे विशेषीत मानते हैं। जिसमें दोनो दशाओं का विचार होता है, वे उसे 'मिश्र' की संज्ञा देते हैं। उन्होंने प्राचीन नाट्यकला के छोटी नाट, प्रस्तावना, निर्माण, विशेष, संभवना, और संभवना इत्यादि से अपनी नाटककला को दूर ही रखा है। प्राचीन नाट्यकला के समाप्ति को उन्होंने हस्त के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने नाटकों की रीति, भाषा, और कलात्मकता से भी परिचित किया है। इस प्रकार उन्होंने प्राचीनता से नवीनता की मिला कर एक नई कला को जन्म दिया। उनके दीर्घकालीन नाटकों में इसी नई कला का विकास देखने को मिलता है। उनके युग के सभी लेखकों ने भी उनकी कला का अनुसरण और अनुमान किया है।

मार्गोन्मुखी की नाटककला पर विचार करने के पश्चात् जब हम उनकी नाटककला के सभी पर विचार करेंगे, और वह देखेंगे, कि नाटककला के मार्ग में उन्हें

भातलेन्दुजी की कितनी सज्जनता बात हुई है। नालकला के मूल तन्त्रों में नालकला के तन्त्र किन उपकरणों को प्रयुक्त कर के रचाया गया है, उनके साथ इस प्रकार है—कण, मण्ड, पाद, पंखा, देवकला, कपिल, और रत्न। सर्व प्रथम हम नाटक के मूल उपकरण का विचार करेंगे। भातलेन्दुजी ने दो प्रकार के नाटकों की रचना की है। संप्रति, और मौलिक। उनके संप्रति नाटकों में उनकी अपनी कथा की मौलिकता नहीं है। अतः उनकी कथा पर विचार करते हुए उन पर ध्यान देना उचित न होगा। उनकी कथा की मौलिकता उनके मौलिक नाटकों में ही पाई जाती है। कथा की दृष्टि से उनके मौलिक नाटकों पर ध्यान हम विचार करते हैं, तो उनमें तीन प्रकार की कथाएँ पाते हैं—वीरकथन, ऐतिहासिक, और आत्मकथन। सत्य हरिश्चन्द्र की कथा वीरकथन है, जो अधिक सरलतापूर्ण, और शिक्षाकारक है। नील देवी की कथा में इतिहास के तन्त्र हैं। भातलेन्दुजी का आत्मकथन है। कथाओं की कथा को हम 'मायात्मक कह सकते हैं। भातलेन्दुजी ने कथा की दो कतों में प्रवेश किया है—कथाओं की अधिकता के तन्त्र में, और भाषा की अधिकता के तन्त्र में। सत्य हरिश्चन्द्र, नील देवी, कपिल मयरी, और विष्णु विष्णु-वीरकथन की कथा में कथाओं की अधिकता है। 'कथाओं' काय प्रथम भाषिक है। भाषा की दृष्टि से भातलेन्दुजी के सभी नाटकों की कथाएँ नहीं सीधे और सीधे के साथ दूसरे की नहीं होती हैं, उनकी कथाओं में नहीं प्रभावमयता है, नहीं मनोरंजनता भी है। उनकी कथाएँ सीधे के विपरीत दोनों के 'दोहर' होती हैं। कपिल, मयरी, कपिल, विष्णु, और वीरकथा सत्य हरिश्चन्द्र के विषय उनकी कथाओं में मिलते हैं। उन्होंने अपनी कथाओं में विविध प्रकार के सीधे के तन्त्रों का सम्मिश्रण नहीं प्रदर्शित के साथ किया है।

भातलेन्दुजी ने कथा का कथन करने दृष्टि से किया है। यद्यपि कथा सीधे में उन्होंने प्राचीन सीधे प्रथम का ध्यान दिया है, पर उन्होंने अभीष्ट का भी समावेश किया है। प्राचीन सीधे प्रथम के अनुसार उनकी कथाओं के सीधे में तीन प्रयोजनों से काम लिया गया है—कथा, उपाय, और विषय। सत्य हरिश्चन्द्र की कथा सीधे प्रथम प्रयोजनों के अनुसार की गई है। कथाओं, भाषा सीधे, कपिल मयरी, और 'ऐतिहासिक विषय' विषय में उपाय प्रयोजनों का ध्यान दिया गया है। नीलदेवी में विषय प्रयोजनों है। भातलेन्दुजी ने अपनी कथा सीधे में नहीं प्राचीन प्रयोजनों से काम लिया है, नहीं उन्होंने उनमें अपनी विविधता का भी समावेश किया है। उन्होंने सीधे और 'भाषा सीधे' इत्यादि में कथा के साथ में सीधे से काम लिया है। सत्य हरिश्चन्द्र और कथाओं इत्यादि में नहीं उन्होंने सभी की प्रयोजनों से काम लिया है, नहीं उन्होंने अपनी सज्जनता का परिचय दिया है। कथाओं की प्रयोजनों में उन्होंने प्राचीन प्रथम का ध्यान न करके 'कथा' की सीधे नहीं के विपरीत से सम्मिश्रण से काम लिया है। प्राचीन प्रथम की कुछ अपने कथाओं सीधे प्रयोजनों, सीधे प्रयोजनों, और सीधे की विविध

को लम्बेनि कर्त्ताः लोभ्याः को है । इस प्रकार लम्बेनि अपनी बहुत बोलचालों में प्राचीन और नवीन-दोनों ही विधियों का पालन किया है । उनकी बहुत बोझा अधिक मात्रा कीम जाकर्त्तव्य है । वे अपनी बहुत बोझा में मूल क्या पर ही अधिक गह देखें हुए दिखाई पड़ते हैं । उनकी बहुत बोझा में उनकी मूल क्या कर्त्तव्य प्रभाव पूर्व रूप में दिखाई पड़ती है । वे अपनी मूल क्या में प्राचीनिक कलाओं को बहुत कम स्थान देते हैं । यही कारण है, कि उनकी मूल क्या का प्रभाव सर्वत्र अधिष्ठित और अशुद्ध रूप से महत्त्व हुआ दिखाई पड़ता है । उनकी मूल क्या में वस्ति और शोक मिटा है । वह 'पल' की प्रति के लिए नहीं कुशलता के साथ वातावरण तैयार करता हुई आगे बढ़ती है । पल प्रति के तावत आपनों को कैसीने, और दूसर करने में भी उनकी दृष्टता दिखाई पड़ती है ।

मार्गोन्मुखी के मारपी की दो कमें के निमित्त किया जा सकता है। एक वर्ग के उनको के कृतिर्षी मानते हैं, जिन्हें हम मारक कहते हैं। दूसरे वर्ग के हम उनको उन कृतिर्षी की संज्ञा, जिन्हें बदलन कहते हैं। मारक और बदलन-दोनों के बाकी में अतिशय भेद है। उनके मारपी के पाप या तो पक्का है, या देखता है, या कम और अल्प है। उच्चकालीन शिक्षित मनुष्य भी उनके मारपी के पाप के रूप में मिलते हैं। बदलनों में उनके सभी पाप साधारण निमित्त के हैं, जो प्रकाश की हैं, और सामाजिक विकृतिर्षी के सामक हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, कि उनके बाकी की दो श्रेणियाँ हैं। एक की हम उनमें की, और दूसरे की साधारण में की की संज्ञा दे सकते हैं। उनके उच्च श्रेणी के पाप तीन श्रेणियों, जन्मापत्ति, मारक कृतिर्षा, कर्तृत्व में, और वैदिकी शिक्षा द्वारा न मरति द्वारा में मार करते हैं। साधारण में की के पाप अन्तर्गत सभी इत्यादि बदलनों में मार करते हैं। मार्गोन्मुखी के इनके बाकी का परिणाम अत्यन्त मारपी की ही दृष्टि से किया है। प्रकाश उनके सभी पाप साधारण की हैं, और मार्गोन्मुखी के ही कुछ कहते हैं। उनके पाप कम, मरति, और कम की और अत्यन्त उच्च शिक्षा देते हैं, जहाँ उनमें जीवन के सम्पूर्ण तथ्यों की और सम्पूर्ण नहीं पाया जाता। इस रूप में हम यह कह सकते हैं, कि उनके पाप आदि से केवल कम कम जीवन की एक ही दृष्टि में केवल एक करते हैं। मार्गोन्मुखी के अपने बाकी के परिणाम-विषय में सम्पूर्ण के प्रकाश नहीं किया है। उनको दृष्टि प्रकाश के परिणाम-विषय में केवल कम कम एक ही श्रेणियों यह कहें हैं। उनको दृष्टि प्रकाश के उच्च सम्पूर्ण में प्रकाश नहीं हो नहीं है, जिसे प्रकाश का श्रेण कहते हैं। यही कारण है, कि उनके परिणाम-विषय में सम्पूर्ण प्रकाश का सम्पूर्ण प्रकाश है। यह होने हुए भी उनका परिणाम-विषय अत्यन्त सम्पूर्ण, और सम्पूर्ण है। उनके परिणाम-विषय में सम्पूर्ण प्रकाश का प्रकाश है। उनके सभी पाप कम और सम्पूर्ण के प्रकाश है।

बापतेनुकी के बाबी की हमने टी. सेविनी में बिल्क सिध है—उध श्री
कावाय। उनकी सब सेही में भी कई वर्ष के बाब है। सेवि—राम, गीन,

श्रुति, स्मृति, कर्तु और पंडित तथा विद्वान् इत्यादि। इसी प्रकार साधारण श्रेणी के वाणी में भी कई वर्ग के नाम मिलते हैं। भारतेन्दुजी के सभी नाम अपनी ही शक्ति, और मर्मदा के पीछर बढ़ते हैं। उनके संसारी, और संसारी से उनकी यह संबंध का नाम दिखाई पड़ता है। उनका प्रत्येक नाम अपनी मर्मदा, और सिद्धि के ही साधन बन बीज करता है। उनके वाणी से सब बीज करते हुए एक बात का पूर्ण ध्यान पड़ता है, कि वे क्या हैं, और उनकी बात बीज मिलने का ही रही है। उनके नाम सब बीज करने की शक्ति में अधिक बड़ा नाम बढ़ते हैं। वे एक ही तरह के करने हुए के सभी की शक्ति नहीं करते; वरन् के इसके लिए विविध सुविधाओं से काम लेते हैं। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है, उनके वाणी के संसारी से बहि-लगा और रहस्यान्वितता पड़े जाती है। उनके नाम करने संसारी से नहीं विविध शक्तियों से काम लेते हैं, यहाँ के संसारी और सादरी का भी अधिक ध्यान रखते हैं। अलङ्कारिक, नमस्कारिक, और दार्शनिक स्थलों पर भी उनके नाम करने संसारी की बरतना के ही शक्ति से चलते हैं।

भारतेन्दुजी के सादरी में देव और काल का पूर्ण रूप के विपक्ष पाया जाता है। उन्होंने अपने सादरी में एक और दार्शनिक कथाओं का विचार करने सादरी के दार्शनिक सादरी की सब दिखाई है, और दूसरी और उन्होंने अपने हुए के समाज की विविधियों पर साधारण बात पर उसे अपने सादरीक शक्ति की साधारण की साधारण सादरी की है। उन्होंने कई, इतिहास, और नीति का विचार भी अपनी एक-सादरी में किया है। उनकी एकसादरी में साधारण सादरी और संसारी के विषय भी मिलते हैं। उन्होंने अपने एकसादरी में अपने समय की उन समस्याओं पर भी साधारण सादरी है, किन्हीं एक विदेशी शक्तिता बढ़ते हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, उनकी एकसादरी देव और काल का प्रतिनिधि हैं।

समिति की दृष्टि से भारतेन्दु के सभी सादरी समिति की का सकते हैं। उनके सादरी में समिति के एक साधन साधन में मिलते हैं। भारतेन्दुजी समिति कला के मर्मदा से। वे सादरी के साथ ही सब सुमुख समिति की भी है। समिति कला में उनकी सादरीक शक्ति की। उन्होंने संसारी और सादरी रंग सभी का मर्मा शक्ति कला कला का। उन्होंने समिति कलाओं सादरीक और सादरीक सादरी कला कला यह सब साधनी तरह समिति की, कि किसी सादरी के रंग रंग पर कला साधनी कला साधनी कला का सकता है। समिति की साधनी एक कला की उन्होंने अपने सभी सादरी की साधनी की है। उनके सभी सादरी की साधनी सादरीक और सादरीक मर्मा है। उन्होंने अपने मूल कथाओं में सादरीक कथाओं का समावेश नहीं किया। उनकी कथाओं की साधनी करने वाले उनके नाम सादरीक शक्ति और संसारी के साधनीक हैं। उनके वाणी की साधनी साधनी देव है, किन्तु कला साधनी साधनी रंग-मर्मदा पर समिति कला का सकता है। समय की दृष्टि से भी उनके सादरी अधिक लम्बी नहीं बढ़े का सकते। फिर भी उनके किसी-किसी सादरी में संसारी, साधनी-साधनी और

कविताओं की अधिकता पाई जाती है। 'रत्न इतिवृत्त' इसका प्रभाव है। 'रत्न इतिवृत्त' का सम्मिश्र 'काट-छोट' के बिना नहीं हो सकता। इसी प्रकार उनके कुछ और नाटकों में भी सम्मिश्र की दृष्टि से काट-छोट की आवश्यकता प्रतीत होती है।

मारोलेखों में अपने नाटकों में एक ही योजना भी प्रयुक्ता पूर्वक की है। उनके नाटकों में सक्ति, प्रेम, कर्म, वात्सल्य, और आनन्द इत्यादि सभी की ही कल्पनाएँ मिलती हैं। उनके नाटक काल के ही सभी से भेद भेद हैं। 'चन्द्रावली' में शृंगार रस की प्रधानता है। रत्न इतिवृत्त में नीर, अद्भुत, कर्म, और रीति इत्यादि सभी का अच्छा हुआ है। 'लोहरेनी' की रचना भी एक में हुई है। मारलेखों में नीर और कर्म का संघर्ष मिलता है। कर्मों में नीर और 'पेरिनी' द्वारा 'विना न भक्ति' में शक्ति और प्रेम का परिणाम मिलता है।

मारोलेख काल में कई अन्य नाटककार भी हुए हैं, किन्तु मारोलेखों के एक पर चल कर नाटक साहित्य की अभिवृद्धि में प्रत्यक्ष योगदान दिया है। उन नाटककारों में श्री निवासदास, श्री प्रेमचन्द, श्री सोमनाथ प्रसाद, पद्मावत सोमनाथ, नीर, सोमनाथ, कालकृष्ण भट्ट, सोमनाथ, रामोदर साहू, पद्मावती, प्रतापनाथ-पद्म मिश्र, पारिष प्रसाद, कालिकावत, पद्मावती, रामकृष्ण वर्मा, रामचन्द्र भट्ट, कालिकावत, और 'द्वितीय' इत्यादि का सुन्दर स्थान है। यहाँ मारोलेख काल के कुछ प्रमुख नाटककारों की नाटक-रचना और उनकी कला पर प्रकाश डालने की हम चेष्टा करेंगे।

श्री निवासदासों में चार नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों के नाम इस प्रकार हैं—प्रकाश चरित, लता सोमनाथ, सोमनाथ स्वर्णरत्न, और लक्ष्मीरत्न। श्री निवासदास सोमनाथ। प्रकाश चरित वीरचरित कथा के आधार पर लिखा गया है। इसमें कथोक्तकथन की अधिकता और कथा के प्रसार में वैचित्र्य है। प्रकाश और लता भी इसकी विशेषता है। लतासोमनाथ की रचना भी वीरचरित कथा के ही आधार पर हुई है। इसमें भी कथा और चरित्र का वैचित्र्य देखने को मिलता है, पर अन्त में नहीं, किन्तु प्रकाश चरित में। इसे 'प्रकाश चरित' से सम्बद्ध कहा जा सकता है। 'लक्ष्मीरत्न' में सोमनाथों के नाम प्रथम नाटक है। इसमें कथोक्तकथन में शृंगार के साथ ही साथ नीर रस की भी योजना मिलती है। कथोक्तकथन और चरित्र चित्रण में लेखक की कुशलता दिखाई पड़ती है। इसका काल कुछ की स्थिति में हुआ है। इसका एक ही 'प्रकाश' प्रेम प्रभाव नाटक कहेंगे। 'लक्ष्मीरत्न' की कथा इतिवृत्त से ली गई है। कथा चरित्र चित्रण, और प्रकाश-लीनी की दृष्टि से इसमें वैचित्र्य पाया जाता है।

प्रेमचन्दों में चार नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों के नाम इस प्रकार हैं—मारल सोमनाथ, प्रकाश रामकृष्ण, चरित्रल लक्ष्मी, और लक्ष्मीरत्न। 'मारल सोमनाथ' की रचना मारोलेखों के 'मारल' के आधार पर की गई है। इसकी कथावस्तु में सामाजिक और राष्ट्रीय सभी का सम्मिश्रण किया

गया है। कथाकथु, बाबा, चरित विभव, और कविमय इत्यादि की दृष्टि के दृष्टमें दुर्दशा के ही तथ्य मिलते हैं। एक का भी निर्वाह दृष्टमें नहीं हो सक्त है। 'चरण रामचरण' की कथा रामायण से ली गई है। कथा रोचक है, और आकर्षक है। कथोपकथन में कथामाया का प्रयोग किया गया है, जो सत्यम्ब है।

राधाकल्याण लोकगीतों में सात-आठ छोटे-छोटे कथनों की रचना की है। उनकी रचनाओं में लड़ी चंद्रावली, समरसिंह राठीर, और भी दासका बहुत पूर्ण स्थान है।

राधाकल्याण 'लड़ी चंद्रावली' की रचना ऐतिहासिक कथा के आधार पर की गयी है। इसकी बहुत बारी चंद्रावली है, जिसमें बीता और साहज की भावनाएँ हैं। चंद्रावली का चरित विभव बीता, भाव और साहज की रीति में हुआ है। लड़ में दुःख का कारणरूप का भाव है। लड़ा वह दुःखमय भाव है। समरसिंह राठीर में भी ऐतिहासिक कथा का ही संवरण हुआ है। समरसिंह इसका प्रमुख चरित है, जो कालिक चौर, बाढ़ी, और ल्याही है। लोहामा की रचना लुहामा की कथा की संवर की गई है।

बाबाकल्याण मनु के नाटक दो कथों में विभक्त है—चतुर्मासिक और वीथिक। उनके चतुर्मासिक नाटकों के नाम इस प्रकार हैं—बाबाकली, और दमिहा। वह दोनो बाबाकल्याण मनु ही संस्था से प्रेरित हैं। वीथिक नाटकों के नाम इस प्रकार हैं—रमणीय लखन, पैतु लहर, और लैला बाल, पैला वीथियाम। रमणीय लखन की रचना वैरागिक कथा के आधार पर की गई है। इसकी रचना में संस्कृत की प्राचीन भाषा जगन्नाथ का बहुत किया गया है। कथा और संवाद दोनों अधिक रोचक तथा आकर्षक हैं। 'पैतु लहर' की कथा भी दुःख के ही ली गई है; किन्तु उसमें लखनवीन सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का समुचित भी प्रकाश के साथ किया गया है।

प्रधानमन्त्रिय मित्र में कई नाटकों और प्रहसनों की रचना की है। इसके नाटकों और प्रहसनों में भाव लुहारा, कलि औरुध, कलिप्रभाव, लुहारी लुहारी, प्रधानमन्त्रिय मित्र लड़ी लड़ीर का बहुत पूर्ण स्थान है। 'भावरलुहारा' मित्र बाबाकल्याण कीट का एक कथ है। इसकी रचना उन्होंने लखनवी दमिहानाटों के 'भावरलुहारा' नामक नाटक के आधार पर की की। 'कलिभील' एक नाटक है, जिसमें लखनवीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के विषय विषय मिलते हैं। इसमें कथो कथुओं, और लखनवादीयों की लोहारा भी देखने की मिलती है। 'को संवर' में लखी की लुहाराओं के सामाजिक विषय है। 'कलिप्रभाव' में कलिप्रभाव के प्रभाव का विषय लीया गया है। 'लुहारी लुहारी' व्यवसायिक प्रहसन है। 'लड़ी लड़ीर' की कथा दमिहा के ली गई है।

बाबाकल्याणदास ने तीन नाटकों की रचना की है—लुहारी लुहारा, बाबाकली, और लुहारा प्रभाव। लुहारी लुहारा लखनवी नाटक है। इसकी कथा सामाजिक

राधाकृष्णदास चलो को 'पूजा'मि मानकर तैयार की गई है। इसमें एक हिन्दू विप्लव के मार्मिक और दुःखजन्य जीवन के चित्र है। 'पद्मावती' की कथा इतिहास के पृष्ठों से ली गई है। 'पद्मावती' उस कथा की प्रमुख पात्री है। 'पद्मावती' के चरित्र का चित्रण त्याग, वीरता, प्रेम, और उत्साह की स्थिति में हुआ है, जो कथा के अनुरूप है। अन्योन्य पात्रों की स्थिति और उनकी वास्तविकता में भी अनुकूलता और समझता दिखाई पड़ती है। 'जहायगु प्रताप' इनकी सर्व श्रेष्ठ रचना है। इसकी कथा इतिहास के पृष्ठों से ली गई है, किन्तु कथा में कल्पना का भी समावेश हुआ है। इसकी प्रमुख विशेषता यही है, कि इसमें ऐतिहासिक और काल्पनिक कथा सम-साथ चलती है। कथा अधिक विस्तृत होने पर भी स्पष्टता और प्रवाह पूर्वक है। पात्रों के चरित्र में स्वाभाविकता, और अनुकूलता है। कई प्रकार के चरित्र हैं, जो अपने अनुकूल ही कार्य-स्वाचार करते हैं। त्याग, उत्साह, प्रेम, देश प्रेम और बलिदान के मार्मिक चित्रों ने नाटक को प्रासंगिक बना दिया है। भाषा और शैली भी औद्योगिक तथा प्रायः संचारित्वी है।

भारतेन्दु काल में नाटकों के साहित्यिक ग्रहणों की रचना भी हुई है। ग्रहणों की रचना के लिए प्रायः सामाजिक और राजनीतिक गुराहों को ही प्रेरण किया ग्रहण गया है। सामाजिक गुराहों में बहु विवाह, बाल विवाह, मादक द्रव्य सेवन, ब्रह्म विवाह, दूध खीरी, खैरैली कैशन, दीनों ग्राहकों की लोलाचों, और देशा समन इत्यादि को लेकर दायर रसात्मक और व्यंग्यात्मक रचनाएँ की गई हैं। इसी प्रकार राजनीतिक विषयों पर भी ग्रहण लिखे गए हैं। स्वर्ण भारतेन्दु काल में भी ग्रहणों की रचना की है। उनके मुख के लेखकों में वं. प्रभाष नारायण मिश्र, वं. बालकृष्ण भट्ट और देशकी नन्दन शिवाजी इत्यादि ने ग्रहण और व्यंग्यात्मक रचनाएँ लिखने में अधिक सुकृपाति प्राप्त की है।

हिन्दी नाटक—उत्तर काल

भारतेन्दुजी के पश्चात् के इस काल को हम उत्तरकाल कहते हैं। कुछ लोगों ने इसे 'संविधान' के नाम से भी अभिहित किया है। यह काल १८०२ के १८१५ नवीनता का उदय ई० तक माना जाता है। वयपि इस काल की अवधि बहुत अल्प है, पर हिन्दी नाट्यकला के इतिहास में यह समय अधिक महत्व का समय माना जा सकता है। यही वह समय है, जिसकी सीमा पर पहुँच कर हिन्दी नाट्यकला ने सर्वथा एक नवीन रूप धारण किया है। इसमें संदेह नहीं, कि भारतेन्दुजी ने नई नाट्यकला को जन्म दिया था, और उसके विकास के लिए उन्होंने प्रयत्न भी किया था, पर वह नहीं कहा जा सकता, कि उनकी नाट्यकला प्राचीन परम्परा से सर्वथा टूट ही चुकी थी। उनके 'कल्प हरिश्चन्द्र' में प्राचीन परम्परा की अनेक साध-साध देखने को मिलती है। उन्होंने अपनी नाट्य कला में प्राचीनता के साथ ही साथ नवीनता को भी अवश्य स्थान दिया था। अँगरेजी और बँगला साहित्य की नाट्यकलाओं का अध्ययन करने के पश्चात् ही उन्होंने अपनी कला के स्वरूप का संगठन किया था। उनकी कला में अँगरेजी और बँगला की कलाओं का संमिश्र साध-साध दिखाई पड़ता है। उन्होंने नाट्यकला के विश्व स्वरूप का संगठन 'क्या था, उनके पश्चात् उनके युग के लेखकों ने भी उसी का अनुसरण किया। उन्होंने भी भारतेन्दुजी के द्वारा प्रवर्तित मार्ग पर चलकर अपनी रचनाओं का अभिप्राय किया।

भारतेन्दुजी के साधर्मिक-काल से ही देश में परिवर्तन की लहरें उठने लगी थी, और उस परिवर्तन के परिणाम स्वरूप देश के कोने-कोने में एक नवीन जीवन का झुलझा फुटने लगा था। इस नवीन जीवन के परिणाम स्वरूप ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने साहित्य के अत्यन्त क्षेत्र में नवीनता को जन्म दिया। भारतेन्दुजी के पश्चात् तो देश में चारों ओर जीवन जागृति का स्वार का उत्थान हो गया। राजनीति और समाज दोनों ही क्षेत्रों में नवीन-विचारों की आँधियाँ उठ चहीं। राजनीतिक क्षेत्र में बंगमंग, और देश की स्वाधीनता को लेकर देश के कोने-कोने में आन्दोलनों का सूत्र पात हुआ। आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप देश में चारों ओर नवीन विचारों की आँधियाँ चलने लगीं। सामाजिकता के क्षेत्र में भी क्रांति उठ लड़ी हुई।

जैयरेजी कम्पना, और हिन्दी के नाटक सम्राट के भीतर यह यह विचार उत्पन्न हुआ। ईसाई मिशनरियों ने भी नवीन विचारों के प्रचार में सहायता दी। ईसाई, परिणाम स्वरूप प्राचीन परंपराओं के प्रति सम्राट के भीतर विद्रोह उत्पन्न हो गया। कार्य सम्राट, यह सम्राट और फ्रांसीस इत्यादि विचारों ने अतिरिक्त में नाटक सम्राट को नवीन योजनाएँ प्रदान की। सम्राट के भीतर प्रत्येक क्षेत्र में, जीवन का एक नया आयोजन दिखाई देने लगा।

राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में नवीन विचारों की भी शीघ्रियों उठी, उत्तम प्रमाण साहित्य के उत्तर भी पड़ा। जीवन में उत्तम नवीन विचारों के प्रचारों के कारण साहित्य के भीतर भी नवीन विचारों ने प्रवेश किया। जैयरेजी, और ईसाई इत्यादि विचारों के संघर्ष में सामने के कारण हिन्दी साहित्य में भी नवीन वक्तव्यों ने काम किया। कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास—इत्यादि सभी क्षेत्रों में प्राचीन परंपराओं, और शैलियों के स्थान पर नवीन परंपराओं और शैलियों ने काम करना किया। विषय, उद्देश्य, और भाव के साथ ही भाषा साहित्यिक की शैलियों की बदली। भाषा के स्तर, और स्वरूप में भी परिवर्तन उत्पन्न हुआ। इन परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप ही साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक और आधुनिक का काम हुआ। कविता, उपन्यास, और कहानी की शैली ही नाटक के क्षेत्र में भी यह विचारों से प्रभावित किया। नए विचारों के परिणाम स्वरूप नाटक के विषयों में परिवर्तन हुआ। पहले वहीं पौराणिक नाटक विशेष रूप से लिखे जाते थे, वहीं अब मानव समाज के लिए जीवन की विविधता की ओर दृष्टिगत किया जाने लगा। इतना ही नहीं, अब जीवन विषय के भीतर भी प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगे। पहले वहीं नाटकों में पर्वतों, और पर्वतों के विचारों की प्रभावना रहती थी; वहीं अब जीवन समस्याओं की ओर ध्यान देने लगे। विशेषण, और वर्णन-विशेषता की ओर भी दृष्टि दृष्टि लोगों का ध्यान आकृष्ट होने लगा। भाषा, और शैली अब भाषा के अनुसार ही नवीनता के लक्ष्य में बढ़ने लगी। इस प्रकार नए विचारों के परिणाम स्वरूप नाटक के क्षेत्र में आधुनिक परिवर्तन हुआ। इन परिवर्तनों का एक साथ कारण जैयरेजी साहित्य का संघर्ष है। नवीन-नवीन हिन्दी साहित्य जैयरेजी साहित्य के संघर्ष में आता गया है, नवीन नवीन नवीन व्यवस्थाओं का प्रचार होता गया है। हिन्दी की इन नवीन और परिवर्तित व्यवस्थाओं की जैयरेजी नाटककारों की कलाओं ने अधिक प्रभावित किया है। कई ऐसे नाटककार हैं, जो जैयरेजी नाटककारों की कलाओं से अधिक प्रभावित माने जाते हैं।

आलोचकों के अनुसार के मत में, जिसे हम उत्तर काल कहते हैं, कई नामांकित नाटककारों का साहित्यिक हुआ है। इन नाटककारों में स्वयंसेवक प्रचारक, उत्तर काल के आलोचक मह, साहित्यिक, की कृष्णचरणदास शर्मा, और नाटककार विश्व कृष्णों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन काल में पौराणिक नाटकों के साहित्यिक अनुचित प्रचारों की सामने आई है। अनुचित

रचनाओं की इतिहास करने वाली में ज्ञाना बीरगान, कम बागवत, किरण, और बदायुन्द् का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ज्ञाना बीरगान ने संस्कृत और खैरोली के कई मास्त्रों का अनुवाद किया है। कम बागवत 'कविरान' के द्वारा संस्कृत के मास्त्र अनुवादित हुए हैं। बदायुन्द् कवियों के द्वारा भी संस्कृत के ही मास्त्रों का अनुवाद हुआ है। अनुवादित मास्त्रों में कमनाथयन्द् 'कविरान' के मास्त्र सर्व श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

रानी कमनाथ प्रसादी का साहित्यिक उत्तर काल में ही हुआ था। कवि: कवि: उनकी मास्त्रकला विचार की और बढ़ रही थी। उत्तरकाल में उनकी एक ही कवनाथ प्रसाद रचना सामने आ रही थी, जिसका नाम कमनाथयन्द् है। ज्ञाना प्रसादी के मास्त्रों को पूर्ण विवेचना नहीं हो सकी, क्योंकि ज्ञानादी सर्व एक काल-विशेष के, जिसे प्रसाद काल कहते हैं, विचारक हैं। 'कवनाथयन्द्' उनकी प्राथमिक कृति है। इसमें ज्ञानादी की एक मास्त्र साहित्य और इतिहास की कला दिखाने पड़ती है, जिसमें उनकी के कम विविध हैं।

कवनाथयन्द् कवनाथ कलाधर है। उन्होंने कविता और मास्त्र के क्षेत्र में प्रसादीय किया है। उ-का ही मास्त्र साहित्य इतिहास है, जिसका नाम 'कुम्भक दहन', कवनाथयन्द् और कुम्भकदहन' है। कुम्भक दहन की कथा पौराणिक है। मास्त्र में साहित्य के क्षेत्र काल कम कथा के प्रसाद का संस्कार कवनाथिकला के साथ हुआ है। कवियों के जीवन विषय में भी कथा की कथा, और उनके साहित्यों की रचना की गई है।

की कुम्भकदहन कवि कुम्भकदहन मास्त्रकला है। उत्तर काल में उनकी भी साहित्यिक ही हुआ था। उत्तर काल में उनकी एक ही रचना सामने आ रही थी, जिसका नाम 'कवनाथयन्द् प्रसाद' है। कवनाथयन्द् प्रसाद पौराणिक कृति है, इसकी कथा में इतिहास के कवियों के साथ ही साथ कला के भी साथ मिलते हैं। कवनाथयन्द् कवियों की प्राथमिक कृति है, पर इसमें उनकी मास्त्र साहित्य मास्त्रकला कलाधर ही दिखाने पड़ती है।

साहित्यिक में 'कुम्भकदहन' की रचना की है। इसकी कथा पौराणिक है। कथा में कवनाथिकला के साथ है। कविता विषय में कथा के साहित्यों की रचना की गई है। विषय कवनाथों में 'कवनाथयन्द्' की रचना की है। 'कवनाथयन्द्' की कथा कवनाथिक है, जिसमें कवनाथिक साथ है। उत्तर काल में मास्त्रों के साहित्यिक कवनाथों की भी रचना हुई है। प्रसादीय की रचना करने वाली में कवनाथयन्द् का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उत्तर काल के प्रसादीय में उनकी 'कुम्भक की उन्मेषकाली' नामक प्रसाद कवनाथयन्द् पूर्ण कला रचना है।

सिद्धि प्राप्त—सुख सुख

[illegible]

मित्रता किता, वह समाज ही नहीं दुर्लभ, मात्र दिव्यो के आनन्द-सुखिता में उसका सदा के लिए एक अन्तर्गत स्थान बन गया ।

प्रसादजी किन्हीं-साहित्य के सुप्रसिद्ध गायकभार हैं। उनके गायनों के नाम इस प्रकार हैं—सजजन, बरवासाथ, गज्यभी, सजजन गजु, बनमेन्द का नादगज, एक प्रसादजी का बूँद, कल्याणजी परिवार, जगदीश्वर, विद्याज, जगन्नाथ, वास्य साहित्य, सत्य सुख, और चंद्रमुख। 'कल्याण' प्रसादजी की प्रारम्भिक कृति है। इसकी रचना महाभारत की एक कथा के आधार पर की गई है। इसके निर्माण में प्राचीन गायन विधि का प्रयोग किया गया है। इसमें गीतों और श्रवण की भी स्थान दिया गया है। 'जगदीश्वर' प्रसादजी का दूसरा प्रकाशित संग्रह है। इसमें प्रसादजी की कला प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ती है। इसमें गान्धी गाथा, सुखार और प्रसाद की योजना नहीं है। इसके निर्माण इसमें नवीन रूप मिलते हैं। इसकी कथा भी ऐतिहासिक न होकर ऐतिहासिक ही है। इसके कर्तों के संज्ञाओं, और भाषा में भी परिवर्तन के बिना मिलते हैं। 'कल्याण परिवार' प्रकाशित गायन है। इसकी कथा इतिहास के इस काल की है, जिले हमें प्रसादगत काल कहते हैं। प्रसादगत और चंद्रमुख इसके बहुत कालों में से हैं। कवि इसकी भाषा, शैली, और शब्दांशों में नवीनता के रूप मिलते हैं, किन्तु यह यही कथा का काल, कि वह प्राचीन गायन गायन के जितने सुख है। नवीनता का इतिहास की शक्ति इसका भी प्रत्यक्ष साक्ष्य है, जो नवीन रूपों में मिलता है। इसकी कथा की प्रभाव के ही की गई है।

राज्य की क्या इतिहास से जो गई है। इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं—एक प्रारंभ में साहित्य शैली में और दूसरा उनके वर्णानुसार। प्रारम्भ के संस्करण में प्राचीन राज्य शैली के मिहानों का वास्तव चित्रण क्या है। सर्वोच्च इनमें भी मजबूती, और मजबूत वास्तव है। उनके वर्णानुसार के संस्करण में सर्वोच्च का वास्तव चित्रण क्या है। उनके वास्तव में वास्तविक, एवं सर्वोच्च और प्रमाण्य वर्णानुसार इतिहास है। राज्य की क्या वास्तविकी की और अनुसृत है। क्या की इति में एक वर्णानुसार की वास्तविकी का चरित्र चित्रण क्या है। क्या प्रमाण्य वर्णानुसार, और विविध भाषाओं के वर्णानुसार है। इतिहास के विविध प्रमाण्य चित्रण क्या के वास्तविकी के साथ चित्रण है। एक और वर्णानुसार की चरित्र चित्रण में वास्तविकता का चित्रण दुष्कर है, वर्णानुसार और क्या में ऐतिहासिक वास्तव की वास्तविकता क्या की गई है। चरित्र चित्रण की वास्तविकता, क्या की ऐतिहासिकता, और लक्ष्य की प्रति—क्या चित्रण 'वास्तव' पर वास्तविकता की वास्तविकता है। 'वास्तव' की वास्तविकता और वास्तविकता, और वास्तव की वास्तविकता के वास्तव पर क्या की गई है। वास्तविकता की वास्तविकता में वास्तविकता और वास्तविकता की वास्तविकता के दो वास्तविक चित्रण चित्रण है। वास्तविकता के चित्रण वास्तविकता के चित्रण है, वे वास्तविकता की और वास्तविकता के वास्तविकता के चित्रण वास्तविकता के चित्रण है, वे वास्तविकता की और वास्तविकता के वास्तविकता के चित्रण वास्तविकता के चित्रण है।

है। यद्यपि कथा ऐतिहासिक है, पर उसमें कल्पना के तत्व बड़ी कुशलता के साथ फैली हुई हैं। कथा को इस प्रकार बहुत दिना गया है, कि उसके लक्ष-जोन राजनीति, और समाज पर भी प्रभाव पड़ता है। कथा में प्रचार और आकर्षण है। पात्रों के चरित्र चित्रण में भी सामान्यता से काम लिया गया है। पात्रों में 'वैद्यमानन्द' का चरित्र अतिशय प्रभावपूर्ण, और आकर्षक है। 'विद्याल' से उसीन सैली के आचरणों के लिए घर घर चेष्टा की गई है। इसके अलावा, चरित्र चित्रण को और संवाद इत्यादि सब में मनोरंजन के तत्व मिलते हैं, पर फिर भी किसी न किसी रूप में 'विद्याल' से जांचोखा कीकरी हुई दिखाई पड़ती है। 'हृदय राग' की चरित्रिक व्यवहारवादा इतना प्रभाव है।

'अन्ततः राग' में पूर्ण रूप से मनोरंजित का वास्तव किया गया है। यही वह वास्तव कृति है, जिसमें पूर्ण रूप से जांचोखा का अन्त दिखाई पड़ता है। अन्ततः राग में ही साठक की मनोरंजित चरित्रों साठक के रंग रंग पर प्रतिबिम्बित हुई हैं। इतना पूर्ण रूप मनोरंजन व्यवस्था की ही है। व्यवस्था में ही सर्व प्रथम ऐसे साठकों की रचना की, जिसमें वास्तविकता की मनोरंजित चरित्रों का विकास हुआ है। व्यवस्था में सर्व वास्तविकता की मनोरंजित चरित्रों चरित्रों की, और उसी के अनुसार चरित्रों के अपने साठकों का निर्माण किया। सर्व प्रथम मनोरंजित चरित्रों के पूर्ण रूप से पूर्ण रूप के 'अन्ततः राग' में होते हैं। अन्ततः राग की कथा इतिहास के घुड़ों से की गई है। कथा का क्षेत्र अतिशय विस्तृत है। उसमें विविध घटनाएँ और चरित्रों हैं। फिर भी लेखक ने कथा की संयोजन बड़ी कुशलता के साथ की है। यद्यपि कथा में विविध घटनाएँ और चरित्र-वर्णन हैं, पर कथा का प्रभाव बहुत कम से बहुत हुआ दिखाई पड़ता है। पात्रों में अन्ततः राग प्रमुख है। अन्ततः राग के चरित्रों और भी बड़ी-बुद्धि की बात है, जो अपने प्रभावपूर्ण चरित्रों से कथा की वास्तव-व्यवस्था को बढ़ाते हैं। पात्रों के चरित्र चित्रण में अन्ततः राग का प्रभाव हुआ है। पात्रों के पात्रों, और कथा में भी प्रभावप्रमत्ता है। सभी पात्र हृदय के स्तर में होते हैं। और किसी गूढ़ रहस्य का उद्घाटन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। 'अन्ततः राग' की कथा महाप्रभाव के की गई है। कथा निर्माण, चरित्र, रंग, व्यवस्था और रंग के साथ से अन्ततः राग है। कथा का विकास और विस्तार अनुकूलता की विधि में हुआ है। कथा अपने मूल उद्देश्य और लक्ष्य की ओर निरंतर से आ-कर होती है, उसमें सामान्यता, और अनुकूलता है। पात्रों में अन्ततः राग, चरित्र, रंग, और चरित्रवादा इत्यादि का प्रभाव पूर्ण रंग है। चरित्रवादा साठक की प्रमुख चरित्र है, जो सील और सीलन की प्रति प्रति है। 'अन्ततः राग' में अन्ततः राग चरित्रों के विकास की ओर अतिशय प्रभाव दिखाई देते हैं। अन्ततः राग में अन्ततः राग चरित्रों चरित्रों के विकास की ओर अतिशय दिखाई देती है, अन्ततः राग और चरित्र के विकास की ओर लगी है। यही कारण है, कि पूर्ण के साठकों की अन्ततः राग अन्ततः राग की कथाप्रभाव और चरित्र चित्रण में प्रतिबिम्ब

बना गया है। इनकी कोशिका में भी अत्यन्तानिष्ठा के नाम दिया गया है।

‘कामना’ सत्य और नीति का प्रति है। इसकी कथावस्तु कहना तो आसानी से है। कथावस्तु का सुझाव कुछ के कर्णों से किया गया है। कथावस्तु के सुझाव में दोहरे स्तर होते हैं, जिसके द्वारा होता, कि कथावस्तु पर गोपीजी के आरोहणों का अधिक प्रभाव है। गोपीजी और उनके आरोहणों से सम्बन्ध रखने वाले स्तर कथा में अधिक परिभाषा में मिलते हैं। कथा प्रभाव पूर्ण और दार्शनिकता की ओर उन्मुख है। पात्रों में लम्हेर, विरोध, लीला, लालसा और कथला इत्यादि गुण हैं। इस मादक में सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि इसमें ममोहृषियों की राग बना कर उनकी के द्वारा कथा के स्तर और उनके अन्तिम उद्देश्य की प्रकट करने की चेष्टा की गई है। मादक में साहि के लेखक अन्य एक ममोहृषियों के ही कार्य-प्रकारों का विषय किया गया है। ममोहृषियों के मन में रागी का एक उद्देश्य है, और वह उद्देश्य है सत्य का विमर्श करना। सभी राग करने हुए उद्देश्य की ही सामने एक बार सत्य का उद्घाटन करते हुए सत्य की ओर बढ़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। पात्रों के चरित्र चित्रण और कथा की संवेदनशीलता की देखते हुए इसे प्रतीकात्मक मादक की संज्ञा दी जा सकती है। इसकी भाषा, इसके संसार, और इसके चरित्र चित्रण साहि पर में प्रतीक देती का ही अनुमान किया गया है। यहाँ तक विचारों की गम्भीरता, भाषा की सहजता, और संकीर्णता का प्रभाव है, कामना एकसीटि की रचना है, पर चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ‘कामना’ की सफल रही कथा का सम्यक। ‘कामना’ के चरित्र चित्रण में प्रकृति की उत्तमता है। अभिनय की दृष्टि से भी ‘कामना’ के चरित्र आभासिकता के दूर हैं।

‘सत्य गुप्त’ ऐतिहासिक प्रति है। इसकी कथावस्तु में इतिहास के प्रभाव हैं। कथावस्तु के संवेदन में सुदृढता से काम लिया गया है। कथावस्तु का संवेदन इस दृष्टि से किया गया है, कि उसमें चरित्र और पूर्व-दोनों ही की कलाओं का सम्बन्ध हो गया है। कथा प्रभाव पूर्ण और विविध मज्जाओं से परिपूर्ण है। विविध घटनाओं से परिपूर्ण होने पर भी कथा-वस्तु की सम्यक्ता साहि के लेखक अत्यन्त एक गयी की भी बनी रहते हैं। कथा में चरित्र चित्रण है, जो दृश्य की आरोहित कर देते हैं। कथा का विकास सामाजिक सत्य कथनों के अनुसार हुआ है। साहि के लेखक अन्य एक दृष्ट मादक मादकीय सत्य कथनों के सँघे में ही कला हुआ दिखाई देता है। कर्माचार, चरित्र प्रकृति, संविषी का निर्वाह और पर की कोशिका सत्य गुप्त में प्रती प्रभाव से हुई है। कथनों के निर्वाह में भी सत्य कथनों के निर्वाहों से ही काम लिया गया है। ‘सत्य गुप्त’ में एक और यहाँ मादकीय सत्य कथनों के निर्वाह होते हुए हैं, यहाँ दृश्य और उसमें मादकीय सँघे के विमर्श की चरित्र होते हैं। कथा, पात्र, संसार, सत्य, और एक की कोशिका में मादकीय सत्य कथनों के निर्वाहों पर चरित्रों के साथ ही काम मादकीय सँघे का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार

‘रम्य गुण’ में पूर्ण और वाहवाह—ऐसी ही नायकताओं का सम्भव सुन्दरता के साथ हुआ है। ‘रम्य गुण’ का सुलभ वाच रम्य गुण है, जो विविध सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं का एक केन्द्र बिन्दु का है। प्रसादजी ने ‘रम्य गुण’ के चरित्र को ही केन्द्र बिन्दु मान कर ‘रम्य गुण’ की नाटकीय वस्तुओं का विकास किया है। ‘रम्यगुण’ की कथा इतिहास के पृष्ठों से ली गई है। इसकी कथा में इतिहास के उन्नीस के साथ ही साथ काल के भी उन्नीस हैं। कालों में ‘रम्यगुण’, वाचस्पति, और कर्मेतिहास का बहुत पूर्ण स्थान है। रम्यगुण और वाचस्पति के चरित्र में वही सफ़ाई है, वही कर्मेतिहास के चरित्र में कठिनाई दिखाई पड़ती है। साथ यह कहा जा सकता है, कि प्रसादजी की रम्यगुण में, चरित्र चित्रण में रम्य गुण की कमेन्स कम सफलता प्राप्त हुई है। रम्यगुण का कथा प्रसाद जी रम्य गुण की कमेन्स दिखाई दिखाई पड़ता है। ‘रम्य स्वामिनी’ एक नाटिका है, जिसकी कथा इतिहास के पृष्ठों से ली गई है। कथा में भीष्म और सुनभिराज की वसन्तवासी के चित्र हैं। कालों में रम्य स्वामिनी, रम्यगुण और रम्यगुण इत्यादि का महान् पूर्ण स्थान है। ‘रम्य स्वामिनी’ के चरित्र में कमेन्समें ही का विकास हुआ है। रम्यगुण के चरित्र का चित्र कमेन्समें ही विविध में लीखा गया है।

प्रसादजी के नाटक साहित्य पर प्रभाव डालने के पदचाल का हम प्रसादजी की नायकता पर प्रभाव डालेंगे। प्रसादजी की नायकता पर प्रभाव डालने के लिए

प्रसादजी की रम्य गुण उनके नाटक साहित्य पर दृष्टि डालना होगा। नायकता प्रसाद के नाटक साहित्य का चित्र का हम देखते हैं, ही यह पाते हैं, कि उनकी नायकता का विकास कम कम से हुआ है। उनकी कला उन रचनाओं में, जिनमें हम प्रारंभ काल की रचना करते हैं, एक परीक्षा के रूप में पाई जाती है। ऐसी रचनाओं में कला, कमेन्समें परिष्कार, सामाजिक, कमेन्समें, और रम्य जी का नाम दिया जा सकता है। इन रचनाओं में उनकी कला का अंशुर उनका हुआ दिखाई पड़ता है। रम्य जी की रचना करने के पदचाल प्रसादजी ने ही वर्ष तक किसी नाटक की रचना नहीं की। ऐसा बात होता है, कि प्रसादजी की वह कला की रम्य जी में अंशुरित हुई थी, कि नहीं के अधिक गुण और विकसित हुई है। उनकी कला और विकास का समय विद्यालय, और कमेन्स में ही था—वाच दिखाई पड़ता है। रम्य जी की रचना करने के पदचाल ही नहीं एक हीन रहने पर प्रसाद जी ने विद्यालय की रचना की है। विद्यालय में ही उनकी कला का महान् हुआ प्रभाव पाते हैं। विद्यालय में ही उनकी रचना का वह काल प्रारंभ होता है, जिसे हम उनकी रचनाओं का विकास कला कहते हैं। इस विकास काल में ही उन्होंने के नाटक किये हैं, जिनके कारण उन्हें हिन्दी की नायकता के रूप में कमेन्स प्राप्त हुई है।

प्रसादजी के नाटक साहित्य में उनकी अपनी मौलिक कला दिखाई पड़ती है। उन्होंने अपने नाटकों में कमेन्स अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। यद्यपि उनकी

कहा भारतीय साहित्यकला की ही कल्पना मूल माननी है, पर उसमें राष्ट्रवाद्य वैयक्त, और वाणी मात्र कलाओं का भी समावेश पाया जाता है। सूक्ष्म रूप में उनकी रचनाओं में द्वितीयक चार कलाओं का सम्मेलन पाया जाता है—संस्कृत की प्राचीन नाटककला, परिचय की नाटककला, रचना की नवीन नाटककला, और वाणी की-विशेष की नाटककला। प्रत्यक्ष की आधुनिक रचनाओं में, जिन्हें हम परीक्ष्य काल की रचनाएँ कहते हैं, संस्कृत की प्राचीन नाटककला का आधुनिक रूप है। इन रचनाओं में कथन, प्राग्निचय, कथाओं परिलक्ष, और कथागत का उपलब्ध किताब का समझ है। प्राचीन संस्कृत नाटकों की भाँति इन रचनाओं में भी नर्तक, कथक, साक्षात् कथक, और नर्तक इत्यादि की योजना की गई है। इसमें किसी किसी में प्राचीन कथाओं का विवेक भी मिलता है। 'प्राग्निचय' में प्राचीन विविधों का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से निर्यात गया है। वह नहीं कहा जा सकता, कि प्राग्निचय काल की रचनाओं में प्रत्यक्ष की कला पूर्ण रूप से प्राचीन विविधों से रहित हो चुकी है, पर वह समझ कहा जा सकता है, कि उनकी प्राग्निचय काल की रचनाओं की कला नवीनता की ओर उन्मुख है। 'कथागत परिलक्ष' और 'प्राग्निचय' की कथा-वैयक्त में उनकी पूर्ण नवीन कला कायम देखने की मिलती है।

परीक्ष्य काल के के नाटकों में संस्कृत की प्राचीन नाटककला के 14 ही कलाय राष्ट्रवाद्य वैयक्त की नाटककला का भी सम्मेलन हुआ है। उन्होंने राष्ट्रवाद्य कला के अनुसार ही अपनी कथाकला में वैयक्त कथाओं का समावेश किया है, जिसमें परिचयविशेषों का संघर्ष है। उन्होंने कथागत वाणी की कल्पना तो की है, पर उनके कथागत पात्र वैयक्त के ही रूप में प्रकट हैं। इस प्रकार राष्ट्रवाद्य नाटककला-वैयक्त की दृष्टि में यह उनके ही उन्होंने वैयक्तिकार की कल्पना देने का प्रयत्न किया है। उनके वाणी के सम्मेलनकला और वीरवाणी में प्राचीन नाटक वैयक्त का समझ भी दिखाई देता है। प्राचीन नाटककला के अनुसार उनके वैयक्तिक, और राष्ट्रवाद्य कथागत में उनकी का साक्षात् देखने की मिलती है। वह बात स्पष्ट है, कि परीक्ष्य काल के इन नाटकों में प्रत्यक्ष की नई कला की दृष्टि कथागत नहीं मिल सकती है, पर उनके साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है, कि उनके इन नाटकों में ही उनकी उस कला का समझ ही हुआ था, जिसका निर्यात साक्षात् कथन, और परीक्ष्य इत्यादि में देखने की मिलती है।

परीक्ष्य काल के कथागत प्रत्यक्ष में हम अपने निर्यात रूप में प्रवेश किया है, हमें उनकी कला में वैयक्तिकीय परिलक्षित हुआ है। उनकी यह परिचित कला साक्षात् कथन, राष्ट्रवाद्य, परीक्ष्य और कथागत में दिखाई पड़ती है। उनकी यह कला की इन उनके निर्यात रूप की कला कह सकते हैं। उनकी यह कला दृष्टिगत पुष्ट, और दृष्टिकथनी है। उनकी यह कला प्राचीन परम्परा से युक्त है। कहीं कहीं 'कथागत' के रूप में उनकी कलागत साक्षात् देखने की मिलती है। उनकी यह कला

सर्वथा गरीब है। उनकी इस कला में वास्तविक मादककला के लक्षण अधिक संख्या में मिलते हैं। उनकी यह कला अधिक सम्पद्धिहीन, और संवर्धन है। उनकी यह कला सम्पद्धिहीन के द्वारा ही अपने चरित्रों का विकास करती है। उनकी यह कला चरित्रचित्रों और कानों के द्वारा ही ही अपने विकासशील है, और इनकी तथा चित्रों के द्वारा ही ही अपना सर्वोत्तम करता है। प्रसारकी के विकास मात्र के मादकी में खास से लेकर मात्र एक सम्पद्धन चरित्रों के ही चित्र मिलते हैं। उनके यह मादक सम्पद्धन मादककला के ही सम्पद्धन होते हैं, और सम्पद्धन मात्रा-कला में ही उनकी कला ही होती है। उनके इस मादकी को न किशकल सम्पद्धन कहा जा सकता है, और न 'सुप्रा' मादकी में ही उनकी सम्पद्धन की जा सकती है। उनके मादकी का नाम भी 'सुप्रा' और 'सुप्रा' के ही रूप में हुआ है। उनके मादकी के नाम में 'सुप्रा' और 'सुप्रा' का एक सम्पद्धन रूप दिखाई पड़ता है। इस प्रकार इस मादकी में खास से लेकर मात्र एक उनकी कला सम्पद्धिहीन है।

प्रसारकी की मादककला पूर्ण रूप से वैयक्तिक है। यद्यपि उन्होंने अपनी कला के विमर्श में संकलन की मादक, मादक, और संकलन तथा उनकी मादककलाओं के कलाकारों की हैं, पर उनकी कला में कोई देशी विविधताएँ हैं, जो उनकी अपनी हैं। उनकी कला की विविधताओं में सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि उनकी कला खास से लेकर मात्र एक सम्पद्धिहीन है। मादक के नाम में भी उनकी कला का सम्पद्धन अपनी एक सम्पद्धन विशेषता रखता है। यहाँ और इनके के विमर्श में भी उनकी कला की विशेषता देखने को मिलती है। एही की विशेषता में भी उन्होंने विशेषता से ही काम लिया है। एही की विशेषता में एक और बड़ी मादकीय विशेषता का प्रारम्भ दिखा गया है, यही दूसरी और मादककला विविधता भी मिलती है। मादकीय सम्पद्धन और मादककला विविधता के मादक में भी उन्होंने अपनी मादककला एक-एक और सम्पद्धन चरित्र के काम लिया है।

अब इस प्रसारकी के मादकी के उन सभी पर विचार करेंगे, जिन्हें मादक का नाम मिले है। मादकी के सभी में बहुत रूप के विमर्शित चरित्रों का सम्पद्धन प्रसारकी की होता है—कलाकार, सम्पद्धन, चरित्र, विमर्श, सम्पद्धन, सम्पद्धन और सम्पद्धन, देश कला, जो यह। अब हम यह देखेंगे, कि मादक के नाम प्रसारकी की सम्पद्धन में इस सभी का विकास कितना और किस प्रकार हुआ है। दूसरे सभी में हम सभी की सभी पर प्रसारकी की सम्पद्धन कितनी करीब होती है।

प्रसारकी मादकीय संस्कृति के सम्पद्धन युग की है। मादकीय संस्कृति का प्रारम्भ उनके नाम में बहुत रूप में सम्पद्धन हुआ था। मादकीय संस्कृति में भी प्रारम्भ संस्कृति जिन्हें अधिक मिल थी। कला उन्होंने अपनी सम्पद्धन के लिए मादकीय संस्कृति के सभी मात्र के सभी में हुए सभी की सम्पद्धन मिलती है। उन्होंने अपनी सम्पद्धन के लिए सम्पद्धन ईदुने में वैयक्तिक कला से लेकर मादकीय सम्पद्धन तक के मादकीय

मिलते हैं; जबकि उनकी कमाई से वे भिव भी मिलते हैं, जिन्हें हम आदर्श भिव कहते हैं, और इसके साथ ही साथ वे भी भिव मिलते हैं, जिन्हें हम आधुनिक भाषा में कमाईवादी भिव कहते हैं। इस बात को यदि मैं एक बार हम यह यह कहते हैं, कि कमाई के व्यवस्था से उनका दृष्टिकोण अधिक विस्तृत और उच्च शक्ति को बना है।

आधुनिकता में भारतको ने दो शक्तियों के साथ दिया है। उन्होंने बहुत विचार के लिए, अपनी कला में भारतीय और आधुनिक—दोनों ही शक्तियों को समान दिया है। उन्होंने भारतीय शैली के द्वारा कई कार्यों की व्यवस्था की, जैसे प्रकृति, और जीवन की वास्तविक प्रतीक दिया है, वहीं भारत के जीवन आदर्शों, संस्कृति, और विचारों के समान बनाने की शक्ति उनके आधुनिक शैली का भी समान दिया है। आधुनिक, दृष्टि, व्यवस्था, और समग्रता में एक ही के उनकी आधुनिकता में दोनों ही शक्तियों जुड़ी हुई हैं। एक और उन्होंने भारतीय शैली के द्वारा व्यवस्था, नियंत्रण, और व्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित करके उनके जीवन की शक्ति को बनाया का प्रदान किया है, और दूसरी और आधुनिक शैली के द्वारा जीवन, संस्कृति, ज्ञान, और कुछ तथा आदर्श के द्वारा उनमें व्यवस्था का स्थापन की है। इस प्रकार उनकी बहुत व्यवस्था में एक और शक्ति, ज्ञान, जीवन और ज्ञान के साथ हैं, और दूसरी और उनमें ज्ञान, ज्ञान, व्यवस्था, और ज्ञान के साथ भी मिलते हैं। इस प्रकार भारत को ने अपने बहुत-विचार में दो शक्तियों को समान करने के अपनी बहुत-विचार की शक्ति इनमें पूर्ण और आधुनिक बना दिया है।

भारतको ने अपने भारत के व्यवस्था का स्थापन किया है, जिसे हम भारतीय इतिहास का अनुभव प्राप्त करते हैं। भारतीय इतिहास में आधुनिक, व्यवस्था, और समग्रता का समान प्राप्त करने के लिए वे उनमें और व्यवस्था का स्थापन किया है। इस आधुनिकता में भारतीय जीवन के सभी, व्यवस्था, कला, और ज्ञान इत्यादि दोनों में समग्रता उत्पत्ति की थी। इस बात के भारतीय जीवन के जीवन का विकास व्यवस्था पर हुआ था। भारतको के सभी के जीवन में जीवन का यह विकास एक ही दिशा में मिलता है। व्यवस्था के साथ, ज्ञान के साथ ही, और ज्ञान प्रदान जीवन की व्यवस्था का स्थापन दिया है। उनके व्यवस्था, और ज्ञान में व्यवस्था है। ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान, और ज्ञान में भी वे व्यवस्था का व्यवस्था नहीं करते। वे भी कुछ सोचते हैं, जो कुछ करते हैं—उन्होंने उस व्यवस्था और जीवन नहीं करते हैं। वे प्रत्येक विचार में अपने जीवन के अधिक व जीवन दूसरी के जीवन के ही अधिक शक्ति विचार किया करते हैं। उन्हें अपने ज्ञानों का उच्च शक्ति समान नहीं हुआ, ज्ञानों विचार उन्हें दूसरी के ज्ञानों की शक्ति है। ज्ञानों और शक्तियों के ज्ञान उनके दूसरी में व्यवस्था और ज्ञान की शक्ति का स्थापन है। ज्ञानों की उच्च शक्ति और विचार के व्यवस्था में ज्ञान और व्यवस्था को जीवन का स्थापन देना ही वे व्यवस्था का स्थापन है। वे व्यवस्था पर जीवन और व्यवस्था

का चित्र निर्मित करते हैं। कदाचित् वा चित्र निर्मित करने में वे सदाश और देश की सीमा से बाहर निकल कर विश्व के क्षेत्र में भी विचारण करते हैं; दूसरे शब्दों में देश और स्वभाव की मजल की चिन्ता के साथ ही साथ उनके हृदयों में विश्व के कल्याण की भी चामत्ता मिलती है।

प्रसादजी के सभी नाम पूर्ण रूप से आदर्शवादी हैं। किन्तु उनका आदर्शवाद व्यवहारिकता की प्रभुत्व पर आधारित है। उनके नाम नहीं आदर्शों चिन्तों की दृष्टि करते हैं, वहाँ वे व्यवहारिकता की ओर भी देखते हैं। उनके नाम व्यवहारिकता की दृष्टि में रहते हुए आदर्शों चिन्तों का निर्माण करते हैं। उनके नामों का परिण आदर्शों और व्यापारों चिन्तों को एक समष्टि है। उनके नामों के परिणामों नहीं दुःख है, बही पार भी है। नहीं वैयक्त है, बही दानवता की है, नहीं विराट है, बही आराधना भी है। नहीं दुःख है, बही दुःख भी है। इस प्रकार उनके नामों में विपत्तियों, दशाओं, मनोविषयों, और व्यापारों का अद्भुत सम्मिश्रण पाया जाता है। उनके नाम बड़े शब्दों और दुःखवाची भी हैं। वे शब्दों का दमन भी करते ही हैं, मनोविषयों का दमन करने में भी अचिन्त कुशल है। वे नहीं दूसरों की दुर्गतिवाची पर दृष्टि रखते हैं, नहीं उनकी दृष्टि उन मनोविषयों पर भी पड़ती है, जो उनके उनके हृदय में इतना सन्ताना पाती हैं। वे दूसरों की दुर्गतिवाची भी मने ही हिता लें, पर अपनी दुर्गतिवाची पर बड़े शब्दों के साथ प्रकाश करते हैं।

प्रसादजी के नामों में दो प्रकृति के नाम हैं। एक तो सदा प्रकृति के हैं, और दूसरे दृष्ट प्रकृति के हैं। उनके सदा प्रकृति के नाम सीधे खाते हैं, जो बड़ी शायनी से अपने विचारों को व्यक्त करते हैं। किन्तु उनके दूसरे प्रकार के नाम भी दृष्ट प्रकृति के हैं, बड़े रहस्यमय हैं। वे अपने मन के विचारों को बड़ी चतुराई के साथ छिपाते हैं। वे मन के हन्तों से रोते हैं, और अपने इन्द्रियमय विचारों के इन्द्रियमय चित्र भी बनाते हैं। उनके इन्द्रियमय विचारों के कारण ही उनके व्यक्तित्व की महत्ता उत्पन्न होती है। प्रसादजी के सभी प्रकार के नामों की हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—वैयक्त, दानव, और मनुष्य। 'वैयक्त' के वैयक्तिक, कर्मोन्मत्त के मानव के कर्म मान, दानवों के सुनिष्कर्म, कर्मों का, के मनमाने हुए और चन्द्रमण के हाँस्यमय भावि देते नाम हैं, जो वैयक्त की अँधुनी में जाते हैं। कर्मण वैयक्त, विषय और शक्ति मिथु दानवों नामों की समस्त दानव वर्ग में भी आ सकती है। इनके वैयक्त वर्ग के सभी नाम शारीरिक, चित्तिक, अन्तःशरीर और बाह्य भाषा के वैयक्त हैं। सदा वर्ग के नाम चन्द्रमण हैं, जो अपने ही नामों की चिह्न से समर होते हैं।

प्रसादजी के नामों का तीसरा वर्ग यह है, जिसे मनुष्य वर्ग कहते हैं। उनके मनुष्य वर्ग के नामों में दुःख और अर्थ दोनों ही हैं। दुःख नामों में चन्द्रमण, कर्मण शत्रु, मर्त्य, शर्मण, चन्द्रमण, जन्म, शत्रु, दानव, कर्मण, और वैयक्त इत्यादि का दुःख स्थान है। जो नामों में मनुष्य शर्मण, वैयक्त, दानव, और

वाल्मीकि, बाद में उनके उस कल्पलोक पर भी प्रभाव डालते हैं, जिसमें उनके व्यक्तित्व की निर्माण करने वाले विचार दिये गये हैं। प्रवादों के संवादों में यहाँ दण्ड की लोका है, यहाँ उनकी विविध और वातावरण की अनुकूलता की चर्चे जारी हैं। प्रवादों के प्रयोगकर्तों में विविध, और वातावरण के अनुकूल ही दण्ड की संरचना होकर चले जाती है। विविध और वातावरण के कारण यहाँ उनकी कल्पना दिखाई पड़ती है, जो यहाँ उनकी के कारण सबसे लोका का देव दृष्टा हुआ दण्ड-सोचर होता है। यहाँ उसमें कोय, और आवेग दिखाई पड़ता है, जो यहाँ अनुकूल और अनुकूल के दर्शन होते हैं।

प्रवादों में अपनी संवाद योजना में जिस भाषा के काम किया है, वह अधिक प्रभावशाली है। 'विशाल' के संवादों में व्यापकता भाषा मिलती है; किन्तु उसमें सुभाषितों की अधिकता मिलती है। 'विशाल' की ही व्यापकता भाषा उनके अन्य वाद्यों के संवादों में नहीं मिलती। उन्होंने अपने अधिवास वाद्यों की संवाद योजना में प्रभावशाली भाषा का ही प्रयोग किया है। अनुभाविकी और दण्डिकी के संवादों की योजना एक ऐसी भाषा में हुई है, जिसे हम विविध, और वातावरण के अनुकूल भाषा कह सकते हैं। किन्तु प्रभावशाली, अनुकूल, और अनुकूल हुआदि की संवाद योजनाओं में भाषा की अनुकूलता पर ध्यान नहीं रखा गया है। इन वाद्यों के संवादों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसे हम विशाल भाषा कह सकते हैं। भाषा की विशालता के अतिरिक्त यहाँ यहाँ उनके संवादों में विभिन्न दृष्टों का भी प्रयोग मिलता है। यहाँ उन्होंने विभिन्न दृष्टों का प्रयोग किया है, यहाँ उनकी संवाद योजना और भी अधिक अद्वितीय हो गई है। यहाँ यहाँ उनकी संवाद योजनाओं में सभी-सभी अनुकूलों की चर्चे जारी हैं। यहाँ यहाँ उन्होंने भारतीय वाद्यों के दृष्ट पर प्रभावशाली का भी प्रयोग किया है।

प्रवादों के वाद्यों में देव वाद्यों का विभिन्न प्रभाव पूर्वक किया गया है। उनके सभी वाद्यों में ऐसी दृष्टि है। उन्होंने जिस वाद्यों की चर्चा इतिहास के जिस वाद्यों की की है, उसमें उस वाद्यों की दण्डिकता, सामाजिक, और दण्डिक वाद्यों की विविधता का विवरण दिया है। इस प्रकार का विवरण उनके सभी वाद्यों में मिलता है। वह भी योजना की उनके वाद्यों में प्रभावशाली के साथ मिलती है। एक की योजना में उन्होंने भारतीय वाद्यों का प्रयोग किया है। उनके वाद्यों में हीर एक की प्रभावशाली मिलती है। प्रभाव की योजना उनके वाद्यों के साथ में की गई है। हीर और प्रभाव के अतिरिक्त उनके वाद्यों में हीर, अनुकूल, और प्रभाव हुआदि एक भी यहाँ यहाँ मिलते हैं।

प्रवादों के वाद्यों में हीर प्रभावशाली हैं। उनके संवादों में ध्यान की कुरा है। उन्होंने अपने संवादों में ध्यान, और हीर योजना के ही दण्ड करने की चेष्टा की है। प्रभाव शाली की दृष्टि में उनकी योजना प्रभाव दीव पूर्व है। उन्होंने अपने वाद्यों में प्रभावशाली के अतिरिक्त संवादों में हीरों की योजना दिया है, जो प्रभावशाली की दृष्टि के

बर्माबी की नहीं है। ऐतिहासिक उपन्यासों की नॉलि ही उन्होंने ऐतिहासिक नाटक उपनिवेश करते हिन्दी-नाटकका के विचार में सहायता प्रदान की है। नाटकका के क्षेत्र में पहले ज्ञान उनकी की रचना सामने आई, उसका नाम 'सेनापति उग्राल' है। 'सेनापति उग्राल' का प्रकाशन सम्बन्ध १९५६ में हुआ था। यह एक ऐतिहासिक कृति है। इसमें बर्माबी की नाटकका संकुचित होती हुई दिखाई पड़ती है। कल्पि नाटकका की दृष्टि से इसमें ऐसे तत्व नहीं हैं, जिसकी साहित्य प्रशंसा की जा सके, पर 'इसमें' उच्च और निम्न के तत्व अवश्य मिलते हैं। 'सेनापति उग्राल' के प्रकाश बर्माबी नाटक-रचना के क्षेत्र में प्रथम ही घर। लगभग १६ वर्षों तक के इस क्षेत्र में प्रकाश पड़ कर उपन्यासों की रचना करते रहे। इसके प्रकाश उसका अन्तः प्रकाश मात्र रचना की और आकाश हुआ, और वे प्रकाश मात्र रचना में प्रथम हुए। 'सेनापति उग्राल' को छोड़ कर उनकी रचना उनकी रचनाएँ इसी काष्ठ की हैं। यही कारण है, कि बहुत से लोग बर्माबी की प्रकाश काष्ठ का कलाकार नहीं मानते, और उनका स्थान बर्माबी काष्ठ में निश्चित करते हैं।

बर्माबी का दूसरी घर मात्र रचना के क्षेत्र में आता, वह सुगहरी का के बहुत हुआ था। हिन्दी मात्र क्षेत्र में कई कला, कई शैली, और कई भाषा का क्षेत्र विकसित हो चुकी थी। प्रकाश की विकसित नाटकका सामने का चुकी थी। मात्र और प्रकाश के काष्ठ में उनकी रचनाएँ उपनिवेश और हिन्दी नाटक-काष्ठ की काष्ठकित कर चुकी थी। प्रकाश के साहित्य और कई नाटकका की काष्ठकित हो चुका था, जिसमें सेट मोडिफ़ाई और रं. लक्ष्मीनाथका जिस काष्ठकित का नाम उपनिवेश है। काष्ठ बर्माबी की कला की काष्ठ हुईका नहीं था। उसके काष्ठकित काष्ठ काष्ठ और काष्ठ क्षेत्र था। उसमें इसमें काष्ठ काष्ठ। उनकी कला में, काष्ठ काष्ठ विविध की काष्ठ क्षेत्र, की हिन्दी नाटक काष्ठ में उपनिवेश की। पर छोटे हुए की उनकी कला के काष्ठ दृष्टि के काष्ठकित की काष्ठ का काष्ठकित। उनके काष्ठ नाटकों के काष्ठ ऐतिहासिक हैं। उनकी कला में ऐतिहासिक के काष्ठों से ही काष्ठ क्षेत्र काष्ठ काष्ठकित किया है। उनकी कला का काष्ठ ऐतिहासिक होने के काष्ठ काष्ठ काष्ठ काष्ठ है।

बर्माबी के काष्ठ नाटकों का काष्ठकित काष्ठ का काष्ठ है। उन्होंने काष्ठकित की दृष्टि में काष्ठ करते ही काष्ठ नाटकों की रचना की है। काष्ठ और काष्ठ की काष्ठ में की उन्होंने काष्ठकित काष्ठ का काष्ठ काष्ठ काष्ठ काष्ठ काष्ठ है। उनके नाटकों में काष्ठ काष्ठ के काष्ठ काष्ठ काष्ठ नहीं मिलते। उनके काष्ठ छोटे छोटे हैं। की काष्ठ काष्ठ है, उनका काष्ठ काष्ठ काष्ठ के काष्ठ काष्ठ है, कि काष्ठ काष्ठ की काष्ठकित में काष्ठ नहीं उपनिवेश होती। काष्ठ की काष्ठ काष्ठ, और उनके काष्ठों में भी काष्ठ-काष्ठकित की काष्ठ की काष्ठ है। काष्ठ काष्ठ के काष्ठ हुए काष्ठ काष्ठ काष्ठ है, कि बर्माबी की नाटकका काष्ठ काष्ठकित है। काष्ठ, काष्ठ, काष्ठ, और काष्ठ काष्ठ

है। हिन्दू में उसका अधिकतम दुर्बल और विविध है। उनमें न विविधों का संघर्ष है, और न विचारों की द्वन्द्वता, परिष्कार लाने कर्माधी की सामर्थ्य कर्माधी में जगमग दृष्टिगत नहीं है।

कर्माधी के लक्षणों में अधिपत्यात्मकता के लक्षण बहुत कम में मिलते हैं। उन्होंने अधिनय की दृष्टि से ही अपने लक्षणों का निर्माण किया है। उनको बहुत बौद्धिक अधिनय की अनुपलब्धता में ही प्रतिष्ठित की गई है। उन्होंने बहुत विधान में परम्परात्मकता का अनुशासन किया है। परम्परात्मक रीति के अनुसार ही उन्होंने अपने लक्षणों में कर्माधी, और दूसरों की स्थापना की है। परम्परात्मक रीति के अनुसार ही उनके लक्षणों में स्वयं-संकेतों की स्थापना की की गई है। उन्होंने व्यवहारिक कर्माधी बहुत बौद्धिक की शक्तता के लक्ष्य में दृष्टिकोण का प्रयोग किया है। उन्होंने कर्माधी बहुत बौद्धिक की सामर्थ्य, और प्रमाण पूर्ण बनाने का भी प्रयोग किया है। दूसरों उन्होंने कर्माधी अनुप-बौद्धिक के सामर्थ्य, और रीति-संकेतों की शक्तता का उपयोग किया है।

कर्माधी के लक्षणों की दो श्रेणियाँ हैं—ऐतिहासिक और सामाजिक। शक्तः उनके पास भी दो प्रकार के हैं। उनके एक प्रकार के पास ही वे हैं, जो उनकी ऐतिहासिक कर्माधी में मिलते हैं। उनके दूसरे प्रकार के पास उनकी सामाजिक कर्माधी में पाए जाते हैं। ऐतिहासिक कर्माधी के पास विविध वर्गों के हैं। जैसे—राजा, म्यान्मारी, अधिकारी, कर्माधी, राज्य, प्रदेश, राज्य, और योनी चमार इत्यादि। इन ऐतिहासिक लक्षणों में जो एक वर्ग के पास हैं, उनके परिधि का विकास सामाजिक दृष्टि से हुआ है। उनमें दृष्टि, और परिधि हीलता है। वे परिधि-परिधि से लक्ष्य मानते हैं, और लक्ष्य की कर्माधी अनुपलब्ध बनाते हैं। संसार और जीवन की विविधता की अनुपलब्ध बनाने में ही वे अपनी शक्तियों की दृष्टिगत पाते हैं। ऐतिहासिक लक्षणों में ही इन वर्ग के पास हैं, वे परिधि-विकास में ही हीलता की रीति में आगे नहीं निकलते। उनके वर्ग के अनुसार ही उनका परिधि भी है। इसी प्रकार सामाजिक कर्माधी में भी दो प्रकार के पास मिलते हैं, जिनमें इन एक प्रकार के लक्षणों की उपलब्ध वर्ग का, और दूसरे प्रकार के लक्षणों की विविध वर्ग का पास बढ़ सकते हैं। सामाजिक कर्माधी के उपलब्ध वर्ग के लक्षणों में भी परिधि-विकास नहीं दिखता, बल्कि ऐतिहासिक लक्षणों की भाँति उनमें कर्माधी नहीं मिलती। निम्न वर्ग के लक्षणों में किसी प्रकार का सामर्थ्य नहीं है।

कर्माधी के लक्षणों में उपलब्ध लक्षणों की भाँति नहीं पास भी मिलते हैं। उनके लक्षणों में उपलब्ध लक्षणों की भाँति ही दो वर्ग के हैं, जिनमें इन एक लक्षणों का, और दूसरे की निम्न वर्ग का बढ़ सकते हैं। उनके उपलब्ध वर्ग के लक्षणों में सामर्थ्य का सम्बन्ध उपलब्ध नहीं है। उनके उपलब्ध लक्षणों में निम्न प्रकार संघर्ष हीलता दिखता नहीं है, हील इसके निम्न ही लक्षणों में हीलता, उपलब्ध, और अनुपलब्ध मिलती है। उन्होंने अपने लक्षणों की लक्षणों में हीलता की दृष्टि का

के रक्त की है। भारतीय संस्कृति के अनुसार ही उनके सभी काम मनुष्य, और विशेषतः मनुष्य की शक्ति पर निर्भर करते हैं, और जीवन की स्थितियों के संघर्ष करने के लिए उन्हें प्रेरित करने हैं। यहाँ की प्रकृति का स्वरूप ही प्रकृति के साथ संबंधित है। उनमें न किसी प्रकार का रक्त है, और न कृत्रिम कृत्रिम रूप ही। उनके साथ कृत्रिम रूप के कृत्रिम रूपों न बन कर बहने लगते हैं ही रहते हैं। उनकी आर्थिक शक्ति के ही कृत्रिम दिशाई बढ़ती है। जीवन की स्थितियों के संघर्ष करने की उनमें जो भावना है, उसका एक साथ साथ उनकी ही आर्थिक शक्ति ही है।

कर्मों के करने वाले के संघर्षों और उनके कर्मोपकरण पर रक्त के साथ करने वाले को प्रेरित करता है। उन्होंने सभी के संघर्षों, और कर्मोपकरणों की कड़ी की सीमा और सीमा से बाहर नहीं जाने दिया है। संघर्षों के लिए उनका लक्ष्य उनके सामने रखा है। संघर्षों के द्वारा उन्होंने अपने साथ उद्देश्यों की पूर्ति की है—सभी के लिए पर प्रकाश प्रकाश है, आंतरिक मान बल होते हैं, कर्म कर्मोपकरण बढ़ती है, और प्रकाश तथा निमित्त का भी रक्त प्रकाश है। सभी उद्देश्यों को सामने रख कर उन्होंने संघर्षों की योजना की है, और अपनी योजनाओं के उन्हें कृत्रिम प्रकाश की प्राप्त हुई है। उन्होंने अपनी संघर्ष योजना को कृत्रिम से कृत्रिम प्रकाश बनाने की चेष्टा की है। प्रकाश के साथ ही साथ उनकी योजना के प्रकाश और मनुष्य की मिलती है। उनके साथ साथ में सब चीज करते हुए एक दूसरे की सीमा सुरक्षित की लेते हैं। उनमें कर्म-विचार की रोग है। एक दूसरे के विचार रक्त की उपस्थिति करता है। इस प्रकार उनकी संघर्ष योजना के आर्थिक रूपों का समावेश हुआ है। उनकी संघर्ष योजना के सभी की विविधता की मिलती है। सभी उनकी प्रकृति उपस्थित है, जो सभी रक्त है। सभी उनमें उत्साह के लिए प्रेरणा है, जो सभी रक्त की प्रेरणा है। उन्होंने अपनी संघर्ष योजना के अनुसार ही भाषा का भी प्रयोग किया है। उन्होंने सभी विचार भाषा की प्रतिभाषना की है, सभी उनके अनुसार ही भाषा का भी प्रयोग किया है। उनके प्रत्येक प्रकार के साथ की भाषा प्रकाश, गती हुई और सामाजिक है।

यहाँ की है ही प्रकार के साठवों की रचना की है—ऐतिहासिक और आधुनिक। पूर्व की और, इस मनुष्य, जीवन, और सभी की सभी रक्त ऐतिहासिक साठव है। ऐतिहासिक साठवों में पूर्व की और और इस मनुष्य कृत्रिम प्रकाश पूर्व है। 'पूर्व की और' का अर्थ करने पर बात होता है, कि उनमें सामाजिक एकता, समाजवाद, अर्थवाद, और कर्मवाद का सभी चीज विचार हुआ है। यदि के लिए सब एक ही प्रकार की प्रकाश मिलती है, जो सामाजिक जीवन पर सभी चीज प्रकाश प्रकाश है। सभी प्रकार 'इस मनुष्य' की प्रकाश की सामाजिक जीवन का विचार उपस्थित करती है। इन सभी की सामने रख कर हम पर पर रखते हैं, कि सभी के ऐतिहासिक साठवों में प्रकाश और प्रकाश की योजना प्रकाश के साथ

साधक: उसके विचार में जो कला खली है, वह विचार प्रधान हो गई है। कर्त्तव्य, सेवा-धर्म, कुलीनता, और सभी इत्यादि में उसके विचार-व्ययान कथानकों का विकास अधिक व्यापकिकता के साथ हुआ है।

यसु घोषणा की दृष्टि में हम चेहरे की कला को अधिक व्यापकिकता वह कहते हैं। उन्होंने अपने मादलों को सतु घोषणा में अधिक व्यापकिकता और सज्जता से कार्य किया है। सतु घोषणा में अधिकिकतायकता की उन्होंने प्रभावित रहा की है। अधिकिकतायकता की दृष्टि में एक करके ही उन्होंने अपने मादलों में खंसी, और दहली की घोषणा की है। दहली की घोषणा में उन्होंने दो खंसी से कार्य किया है। किसी किसी मादक से ही उन्होंने खंसी से दहली का कार्य की किया है, क्योंकि उनके किसी किसी मादक में केवल सज्ज ही सज्ज है, दहली एक की नहीं है। दहली के शिर मादक भिन्ने, बड़ा काले बीन, और कुछ काले इत्यादि का नाम किया का करता है। फिर मादलों में उन्होंने दहली का विधान किया है, उनमें खंसी, और दहली में अधिकिकतायकता कार्य खली है। उनके दहली-विधानों में अधिकिकतायकता, और व्यापकता गई जाती है। उन्होंने दहली के विधान में कथानक की गरि और उसके प्रभाव पर प्रत्यक्ष कर के प्रदान दिया है। उन्होंने दहली का विधान एक प्रकार किया है, कि उनकी कथा की कथायकता विचार कायी रखते हैं। एवं, कुलीनता, यदि कुछ, कर्त्त, प्रभाव, और कथोरी खंसी इत्यादि में ही प्रभाव के दहली विधान मिलते हैं।

चेहरे की कला विचार प्रधान है। वह सज्जताओं की ही लेकर चलती है, और कार्य एक दहलीयों की ही लेकर चलती रहती है। क्योंकि उनकी कला में अधिकिकतायकता के साथ है, और वह अपनी सतु घोषणा तथा एवं खंसी में अपनी एक विशिष्टता का परिचय अधिकिकतायकता के साथ देती है, पर फिर भी विचारों में प्रत्यक्ष करने के कारण कई कार्ययकता खली की और प्रत्यक्ष प्रदान नहीं का करता है। वह तो मानना ही रहेगा, कि कथानक की कार्ययकता कार्य-व्यापारों के विचार में ही दिखाई पड़ती है। चेहरे की विचार्य मादकयकता एक और के प्रदायीन दिखाई पड़ती है। उनकी कला का प्रदान कार्य-व्यापारों की और नहीं है। प्रत्यक्ष भिन्ने, कुछ काले, बड़ा काले बीन, और कथोरी काले इत्यादि के कार्य-व्यापारों का प्रदान रूप के कथानक प्रदान करता है। किन्तु दहली वह प्रत्यक्ष नहीं है, कि चेहरे की कला कार्य-व्यापारों की कला में कार्ययकता है। कार्य-व्यापारों के प्रति उनमें प्रदायीनता प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है, पर वह अधिकिकतायकता रहेगा, कि उनकी कार्य-व्यापारों के विचार की कुशलता है। दहलीय प्रत्यक्ष कुलीनता, कर्त्त, योनी का कथोरी इत्यादि मादलों की शिर का करता है। इन मादलों में कार्य-व्यापारों के विषय कथोरी व्यापकिकता के साथ खंसी रह है। केवल मादलों में कार्य-व्यापारों के प्रति उनकी कला की प्रदायीनता ही दिखाई पड़ती है।

चेहरे के मादक दो प्रकार के हैं—देखिकतायक और व्यापकिक। कथानकों की

ऐतिहासिकता और सामाजिकता की दृष्टि में रखते हुए उनके पात्रों की भी ही भौत्ती की का बकती है। उनके इस प्रकार के पात्र तो ये हैं, जो ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक पात्रों में राजा, कन्या, दरबारी, सेनापति, और इसी प्रकार के अन्य लोग हैं, जिसका सम्बन्ध या तो राजकुलों के हैं, और या सामान्य-जनताओं के। दूसरे प्रकार के पात्रों में ऐसे नागरिक हैं, जिसका सम्बन्ध आधुनिक समाज, आधुनिक राजनीति, आधुनिक विद्या, और आधुनिक सामान्य-जनता से है। जैसे—विनिमय, कमीशन, व्यापारी, और पचीस हस्तपि। इस प्रकार के सामाजिक पात्रों में विभिन्न व्यक्तियों का ही समावेश हुआ है। यद्यपि उनके सामाजिक पात्रों में कहीं और जगह भी पाए हैं, पर इस प्रकार के पात्रों की उनके सामाजिक नाटकों में बहुत कमी है। केटकी के जीवन और उनके भावों को देखते हुए यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनकी दृष्टि इस प्रकार के पात्रों की ओर गई ही नहीं; बल्कि इसके विपरीत उनके कानों पर दृष्टि बाँटने से इस बात का पता चलता है, कि वे प्रायः इस प्रकार के पात्रों के ही वर्णन में अधिक रहे हैं। उनके नाटकों में इस प्रकार के पात्रों की ही कल्पना दिखाई पड़ती है, उसका कारण उनकी चिन्ता है। उनके कभी नाटक विचार प्रवाह हैं। कदा उन्होंने अपने पात्रों का चुनाव भी इसी दृष्टि से किया है। पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर भी केटकी की चला का ध्यान नहीं का गया है। उनकी कला इस क्षेत्र में भी विचारों की से करके ही अधिक मजबूत दिखाई पड़ती है। किन्तु इसका यह कारण नहीं है, कि उनके पात्रों के चरित्रों का विकास नहीं हुआ है। यद्यपि केटकी की कला ने चरित्र चित्रण की और विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया है, पर उनके नाटकों में चरित्रों का विकास यथार्थ रूप में हुआ है। इसका कारण उनके पात्रों की कल्पना है। उनके पास हम ही अपने चरित्र की उपनिवेश करते हैं, और उसे जाने भी बढ़ते हैं। उनके पात्रों में आदर्शवादी और यथार्थवादी दोनों ही प्रकार के पात्र हैं। उनके दोनों ही प्रकार के पात्र कहीं और कहीं हैं। उनके पात्रों की भाषा विभिन्न प्रकार की है, कर्णार्द्र को फिर वर्य का पात्र है, वह इसी वर्य की भाषा में करते भी करता है। इस प्रकार उनके नाटकों में कई प्रकार की भाषा मिलती है। कुछ हिन्दी भी मिलती है, और बहुत ही सामान्य हिन्दी भी। साहित्यिक भाषा भी मिलती है, और असाहित्यिक भाषा भी दिखाई पड़ती है। ऐसी ही भाषा उनके नाटकों में मिलती है, जिसे हम मिश्रित भाषा कह सकते हैं। कभी प्रकार की भाषाओं को देखते हुए हम उनकी भाषा को सरल और सामाजिक भाषा कह सकते हैं।

अब हम केटकी के नाटक समूह पर विचार करेंगे। सर्व प्रथम हम उस उम्र की केटकी के, जिसे सम्मान्य करते हैं। यथार्थ की दृष्टि से हम केटकी के नाटकों की केटकी के नाटकों की लीन लीन में विभक्त कर सकते हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक, नाटक के रूप में, साहित्यिक, और सामाजिक। कर्णार्द्र और कर्णों में वीर-द्विज-कथा का समावेश हुआ है। पौराणिक कथाओं में उन्होंने ऐसी कथाएँ चुनी

है, जिन्हें भारतीय संस्कृति के आदर्शों का परीक्षा कक्षा का समझा है। उनके कर्तव्य के एक भाग में औद्योगिकी के जीवन से सम्बन्धित क्या है, और दूसरे भाग में औद्योगिकी के जीवन के सम्मुख रखने वाली। औद्योगिकी के जीवन से सम्बन्धित क्या में कर्तव्य और मर्त्यादा-वास्तव के मर्मिम धित है। कर्मात्मक का उद्देश्य कर्तव्य और मर्त्यादा-वास्तव के बिना ही हो रहा करता है। क्या में ऐसे लक्ष्यों का समावेश हुआ है, जो उनके उद्देश्य की पूर्ति में लक्ष्यका प्रधान करते हैं। क्या का विकास लक्ष्य और उद्देश्य की दृष्टि में ही रहा कर किया गया है। औद्योगिकी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली क्या में मर्त्यादा-वास्तव के कर्तव्य को लक्ष्य और मुख्यता प्रधान की गई है। क्या में कर्तव्य वास्तव के मार्ग में मर्त्यादा की लक्ष्यता की गई है। कर्तव्य की लक्ष्यता प्रमाणित करना ही क्या का उद्देश्य है। क्या के विकास में उद्देश्य की रक्षा की गई है। 'कर्म' की क्या की दुःख से ही की गई है। 'कर्म' की क्या सम्यक्त्व है। हमने क्या की कुछ महान् दृष्टि सम्यक्त्व की कुछकालों की चेष्टा की गई है, जिसमें कुमारी के जीवन काष्ठान और निष्ठ कर्म में जीवन महर्षि की सम्यक्त्व प्रमाण है।

कर्मात्मक की दृष्टि से दूसरे प्रकार के उनके वास्तव में हैं, जिन्हें हम ऐतिहासिक करते हैं। ऐतिहासिक वास्तवों में ईर्ष्या, कुलीनता, दण्ड गुण, और राज्य की महान् दृष्टि स्थान है। ईर्ष्या की क्या कर्तव्य प्राप्त की है। ईर्ष्या लक्ष्य दृष्टि क्या का नायक है। क्या का विकास ईर्ष्या और राज्य की ही बरिषी द्वारा हुआ है। राज्य की ईर्ष्या की महान् है, जो विख्या है। क्या में वादि से लेकर अन्य एक विख्या विख्या की ही कर्मात्मक की ही लक्ष्य मिलते हैं। ईर्ष्या की क्या में 'विख्या विख्या' की सम्यक्त्व की ही मुख्यकालों का प्रधान किया है। 'कुलीनता' में लक्ष्य प्राप्त की क्या का संस्कार है। कुलीनता की क्या का विकास 'कुलीनता' और 'अकुलीनता' की सम्यक्त्व की लेकर किया गया है। 'दण्डगुण' का कर्मात्मक सम्यक्त्व के 'वास्तव वास्तव' का है। दण्ड गुण की ही वास्तव की महान् है। 'दण्डगुण' की क्या सम्यक्त्व है। हमने कर्मात्मक में देव, और राष्ट्रीय सम्यक्त्व की मुख्यकालों की चेष्टा की गई है। 'देवद्वार' की क्या में देवद्वार के जीवन के विषय हैं, जिसमें विद्यार्थी की मायका की मह्यता है।

कर्मात्मक की दृष्टि से हमने दोसरे प्रकार के वास्तव में हैं, जिसकी रचना सामाजिक कर्मात्मक के आधार पर हुई है। इन वास्तवों में बड़ा बारी और, बारी का बारी, सेवाभाव, कर्मात्मक, गुण कर्म, और 'वास्तव विवेक' आदि मुख्य हैं। बड़ा बारी और के कर्मात्मक में 'बारी' की सम्यक्त्व पर प्रधान वास्तव गया है। 'बारी' और 'बारी' की क्या में लक्ष्य जीवन की सम्यक्त्वों के विषय हैं। 'देवद्वार' की क्या के विकास में गौरीवाद का योग है। 'वास्तव' के कर्मात्मक का निर्माण लक्ष्य और प्राचीन संस्कृति के लक्ष्यों के द्वारा है। लक्ष्य और प्राचीन संस्कृति के संस्कार द्वारा ही कर्मात्मक की लक्ष्य मह्यता गया है। 'गुण कर्म' और 'वास्तव विवेक' की क्या के

विकास में राष्ट्र की सर्वोच्च समझौतों के साथ जुड़े हुए हैं। इस प्रकार देशों के सभी नाटकों की कथाओं में समझौतों का ही अन्तर्गत वाला भाग है। उन्होंने समझौतों की दृष्टि से ही अपने कथाओं का निर्माण किया है। उनमें सभी प्रकार के कथाओं का विकास समझौतों के ही विवेचन के माध्यम से हुआ है। पर उनका यह विवेचन न ही कथित माध्यम है, और न उनमें मनोवैज्ञानिकता का ही समावेश हुआ जाता है। समझौतों के विवेचन में वे उनके भीतर प्रवेश न करके, उनके बाहर बन कर ही अपने को केन्द्रित करते हैं। कुछ लोगों में हम हम बात की उनके कथाओं का कुछ भाग है। उनके नाटकों के कथाओं में जो अन्तर्गत और अन्तर्गत है, उसका एक माध्यम नहीं है, कि समझौतों के विवेचन में उन्होंने अपनी जगह की मनोवैज्ञानिकता के कुछ लोगों को दूर ही रखने का प्रयत्न किया है।

नाटक के सभी में दूसरा भाग भाग का होता है। राष्ट्र की दृष्टि में वह हम देशों के नाटकों पर विचार करते हैं, वह हम यह देखते हैं, कि हम देश में उनकी क्या सबसे अधिक महत्ता के विकास है। देशों में अपने नाटकों में राष्ट्र-संस्था अधिक महत्ता के साथ की है। उनकी राष्ट्र-संस्था पर राष्ट्रवाद की ही ध्यान है। राष्ट्रवाद की ही में जो विशेष रूप से वे हमेशा के अधिक प्रभावित हैं। सभी, हमारे, और हम संकेतों के विकास में उन्होंने प्रायः हमेशा की ही ही ही ही किया है। उन्होंने सभी, हमारे, और हम संकेतों के विकास में निरंतर रीति के साथ किया है, उनके साथ उनके सभी, हमारे, और हम संकेतों में साथ और अनुभूति दिखाई पड़ती है। सभी अनुभूति और साथ के साथ उनके साथ अन्तर्गत में सभी की न ही अनुभूति नहीं ही सभी है। एक और सभी, हमारे, और हम संकेतों के अन्तर्गत विकास में उनके नाटकों की माध्यमता की अधिकता की है, जो दूसरी और उनकी कथाओं में उनमें प्रायः और जीवन-संघर्ष का विकास किया है। कथाओं की कथाओं को सुझाते रखने के लिए ही उन्होंने अपनी आधिकारिक कथाओं में प्रायः कथाओं का साथ बहुत कम लोगों में किया है। सभी सभी आधिकारिक कथाओं में प्रायः कथाओं दिखाते हैं, सभी सभी महत्ता के साथ मिलती है, कि वे एक ही ही ही हैं, परिणाम समझ देते सभी में जो उनकी कथाओं के विकास में साथ नहीं अनुभव हो सभी है। कथित माध्यम, हमारे, और विशेषों के साथ में ही उनकी कथाओं के विकास में अन्तर्गत नहीं है। इस प्रकार यदि के लिए साथ एक अधिक सभी, हमारे, और हम संकेतों के बीच में उनकी कथाओं का अधिक रूप के विकास हुआ है।

राष्ट्र संस्था के अन्तर्गत हम उस साथ पर विचार करने, जिसे साथ करते हैं। देशों के सभी नाटक अन्तर्गत और विकास हुआ है। उन्होंने अपने सभी नाटकों में, किसी न किसी समझ पर ही प्रभाव करने का प्रयत्न किया है। उनके नाटकों में अन्तर्गत की नहीं, विचारों की ही अन्तर्गत है। अपने नाटकों के अन्तर्गत ही उन्होंने सभी की संस्था की ही है। उनके सभी नाटकों के साथ जो लगे, शिक्षित,

बुद्धिवादी, और उच्च वर्ग के व्यक्ति हैं। उनके सभी भाषी के पास अपनी पुस्तक-श्रम और अपनी विवेचना शक्ति है। किसी बात का विषय की विवेचना करते हुए उनके भाषी को समझ, समझ, और राष्ट्र की पूरी पूरी विवेका पड़ती है। वे ऐसी बातों की बड़ी विवेचना के साथ सामने के जालीदार कर देते हैं, जो पुस्तक के विपरीत होती हैं, और पुस्तक के विपरीत होने के कारण किसी समझ और राष्ट्र की प्रति होने को सम्भावना होती है। उनके सामाजिक और राजनीतिक समझको के पास दो इस बात का समझ रहते ही है, पौराणिक और ऐतिहासिक भाषी में भी पुस्तक के अनुसार ही आदमी की मानने और न मानने की भावना दिखाई पड़ती है। इन भाषी की देखते हुए इन सब सब कहते हैं, कि वेदों के मादमी के सभी साथ बुद्धिवादी और अनुभव हैं। उनके भाषी में हिन्दुओं की प्रति के कई प्रकार के साथ बाद करते हैं, सभी तरह उनके भाषी में कुछ ऐसे साथ हैं, जिन्हें हम आदर्शवादी कह सकते हैं, कुछ ऐसे हैं, जिन्हें समझवादी कहा जा सकता है, और कुछ ऐसे भी हैं, जो समय और समय के अनुसार ही समझ देन की कहते हुए दिखाई पड़ते हैं। ऐसे भाषी की समझवादी समझ अधिक होता। सभी भाषी में साथ सभी आदर्शवादिनी और समझ-समझ हैं।

वेदों के सभी भाषी की अपनी अपनी भाषा है। उन्होंने अपने भाषी के संवादी और समझवादी में उनकी के अनुसार भाषा का भी अपनी विवेका है, परिणाम अपने उनके मादमी में कई प्रकार की समझ विवेका है, जिसे हम हिन्दी, अहिन्दी और विभिन्न भाषा कह सकते हैं। उनकी कुछ हिन्दी संस्कृत मित्र और साथ न उनकी के परिपुष्ट है। संवादी में उन्होंने सामान्यतः वेदों के साथ विवेका है। सभी संवाद छोटे हैं, और सभी-सभी संवादों का विपुल रूप भी विवेका है। सभी सभी संवादों के विपुल रूप समझ कर विवेका है, सभी नीलकण्ठ उल्लेख की गई है। छोटे छोटे भाषी में संस्कृत उनके छोटे संवाद विभिन्न संवाद, वरत, और साथ के सभी के परिपुष्ट हैं।

वेदों के सभी मादक समझ और विचार सुलभ हैं। उन्होंने अपने मादकों के समझों में केवल उनकी भाषी पर रक्त दिया है, जो समझात्मक है, समझा किन्ते हम सभी के समझा साझा के में समझता मिलती है, परिणाम अपने उनके मादकों के समझा देन और साथ का विविध नहीं बन सकते हैं। उनके समझा संस्कृति और जीवन के केवल एक ही क्षेत्र को चुनकर रह गए हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक मादकों की विशेषता उनके सामाजिक मादकों में देन और साथ का विवेका समझा के साथ हुआ है। पौराणिक और ऐतिहासिक मादकों के क्षेत्र में सभी उनकी समझा देन और साथ के एक ही क्षेत्र को चुनकर रह गई है, सभी सामाजिक मादकों के क्षेत्र में समझा जीवन पर भी प्रति साझा है। सामाजिक मादकों में उनकी समझा की प्रति विपुल क्षेत्र में समझी हुई दिखाई पड़ती है। सामाजिक मादकों में हम देन और साथ की एक ही विवेका की समझा में न समझा कर सभी प्रकार की समझाओं पर विचार

करती है। अतः हम यह कह सकते हैं, कि उनके सामाजिक नाटकों में देश और काल की योजना सफलता के साथ हुई है।

गीत नाटक का एक प्रमुख लक्ष्य है। गीत के ही द्वारा नाटक में काव्य के लक्ष्यों की रक्षा होती है। गीत से नाटक में सरसता, और मधुरता भी उत्पन्न होती है। नाटकों में गीत का स्थापन एक कला है। सेठजी इस कला में निपुण दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने अपने नाटकों में गीतों की व्यवस्था में समय, अनुकूलता, और स्वाभाविकता को महत्व दिया है। उनके वही पात्र गाते हैं, जिन्हें गाना चाहिए। कहीं कहीं उनके देसे भी पात्र गाते हैं, जो अधिक आदर्शवादी हैं। जैसे—सीता और राधा इत्यादि। उनके गीत कहीं तो अधिक बड़े हैं, और कहीं छोटे। बड़े-बड़े गीतों में उलना आकर्षण नहीं है, जितना छोटे गीतों में है। उनके छोटे गीत अधिक सरस और भावमय हैं। गीतों की व्यवस्था में एक ही बात खटकती है, और वह है गीतों की अधिक संख्या। प्रकाश, और 'सुख किसमें' को छोड़ कर उनके सभी नाटकों में अधिक संख्या में गीत मिलते हैं। गीतों की व्यवस्था में उन्होंने समय और अनुकूलता का ध्यान रखा है, पर यह होते हुए भी कहीं कहीं गीतों की अधिक संख्या अस्वचि कर प्रतीत होती है।

सेठजी ने अपने सभी नाटकों का निर्माण अभिनय की दृष्टि से किया है। यही कारण है, कि उनके नाटकों में अभिनयात्मकता है। उनके सभी नाटक सरलता पूर्वक रंग मंच पर खेले जा सकते हैं। कथानक, वस्तु, पात्र, संवाद, संगीत इत्यादि प्रत्येक दृष्टि से उनके नाटक अभिनेय हैं। रस योजना में सेठजी की कोई निश्चयन प्रणाली नहीं है। उनके नाटकों में विभिन्न रस मिलते हैं, जिनमें शृङ्गार, वीर, अद्भुत, शांत, और करुण के नाम का उल्लेख प्रमुख रूप से किया जा सकता है।

हिन्दी नाटक—आधुनिक काल

आधुनिक काल प्रसाद युग के पश्चात् १९१४ ई० से प्रारम्भ होता है। प्रसाद काल में हिन्दी की नाट्यकला अपनी मौजूदा पर पहुँची हुई दिखाई पड़ती है। विषय,

आधुनिक काल उद्देश्य, कथानक, पात्र, चरित्र चित्रण, शैली और भाषा-प्रत्येक क्षेत्र में उसकी अपनी मौजूदा दिखाई पड़ती है। प्रसाद काल में जो रचनाएँ प्रस्तुत हुई हैं, उनमें कला की शुद्धता और विपुलता है। उनमें देश काल और संस्कृति का प्रतिबिम्ब होने के साथ ही साथ जीवन का भी प्रतिबिम्ब है। उनके निर्माण में भारतीय नाट्य परम्परा के साथ ही साथ पश्चात्य शैली को भी स्थान दिया गया है। भाषों की विविधता भी उनमें मिलती है। प्रेम, कसबा, सदास, हर्ष, संयोग, विशेष, उत्साह, और बोरला इत्यादि मनोविकारों के उनमें उल्लाह पड़क बिज मिलते हैं। आधुनिक काल प्रसाद-युग की विशिष्टताओं पर ही आधारित है। आधुनिक काल में प्रसाद युग की विशिष्टताएँ तो हैं ही, साथ ही उसकी अपनी कुछ विशेषताएँ भी हैं। आधुनिक काल पार्श्वार्थ कला से अधिक प्रभावित दिखाई पड़ता है। यद्यपि पार्श्वार्थ नाट्यकला का प्रधान प्रसाद युग की रचनाओं पर भी पड़ा था, पर उतना नहीं, जितना आधुनिक काल की रचनाओं पर उसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। आधुनिक काल के कई एक ऐसे कलाकार हैं, जिनकी रचनाओं को पार्श्वार्थ कला ने अधिक प्रभावित किया है। कुछ ऐसे भी कलाकार हैं, जो पार्श्वार्थ कला को ही अपना आदर्श मान कर नाट्य-रचना के मार्ग पर चल रहे हैं। आधुनिक काल में समस्या प्रधान नाटकों के निर्माण की अधिकता में पार्श्वार्थ कला का ही अधिक हाथ है। आधुनिक काल में एकान्त नाटकों की भी अधिक रचना हुई है। एकान्त नाटकों की रचना के मूल में भी पार्श्वार्थ कला का ही प्रभाव अन्तर्निहित है।

आधुनिक काल को इन दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं—प्रथम उत्थान और द्वितीय उदयान। आधुनिक काल के प्रथम उत्थान में तीन प्रकार की रचनाएँ हुई हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक, और समस्या मूलक। पौराणिक कलाकारों में सेठ गोविन्ददास और उदयशङ्कर भट्ट इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक नाटकों के प्रयोगों में सेठ गोविन्ददास, श्री उदयशङ्कर भट्ट, श्री गोविन्द बल्लभ

नाट्य, श्री उनेन्द्रनाथ 'अर्ध' और श्री इमिङ्गुन्ड डैली इत्यादि का महान् पूर्ण स्थान है। समस्त मूलक नाटककारी के श्री वं० लक्ष्मी नारायण मिश्र, श्री योगिन्द्र ब्रह्म पन्त, श्री इन्द्रनाथ झाज वर्मा, और श्री उनेन्द्रनाथ अर्ध का नाम उल्लेखनीय है। प्रथम उन्माद में एकांकी नाटकों की भी अधिक संख्या में रचना हुई है। एकांकी नाटकों के रचयिताओं में श्री सुमेश्वर, श्री कलेश्वरसिंह द्विवेदी, श्री रामकुमार वर्मा, श्री उदयशङ्कर मल्ल, श्री योगिन्द्रराज वेद, और अर्ध ने सुप्रसिद्धि प्राप्त की है।

प्रथम उन्माद की शक्ति द्वितीय उन्माद में भी तीन प्रकार के नाटक मिले गए हैं—वीर्याधिक, ऐतिहासिक, और समस्त मूलक। द्वितीय उन्माद १९४२ से प्रारंभ हो-र अब तक चल रहा है। द्वितीय उन्माद के भी प्रायः सभी कलाकार हैं, जो प्रथम उन्माद के हैं। इन कलाकारों की जो रचनाएँ १९४२ के पदचर्य प्रकाशित हुई हैं, इनकी समुदाय द्वितीय उन्माद में भी जाती है। प्रथम और द्वितीय उन्माद की रचनाओं में बहुत कम अंतर है। द्वितीय उन्माद में देश की गलतफहमी बढ गई है। अतः द्वितीय उन्माद में कुछ ऐसी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें राष्ट्रीय समस्याओं पर अधिक गलतफहमी के साथ प्रचार बोला गया है। द्वितीय उन्माद में अधिकतर समस्त मूलक रचनाओं की ही निर्माय हुआ है। द्वितीय उन्माद में वीर्याधिक रचनाएँ बहुत कम प्रकाशित हुई हैं। प्रथम उन्माद की शक्ति द्वितीय उन्माद में भी एकांकी नाटक अधिक संख्या में मिले गए हैं।

साधुनिक काल के निर्माण में कई महत्त्व की कलाकार योग दे रहे हैं। इन कला-कारी में श्री इन्द्रनाथ झाज वर्मा, कैप्ट योगिन्द्रराजकी, श्री योगिन्द्र ब्रह्म पन्त, श्री साधुनिक काल उदयशङ्कर मल्ल, श्री वं० लक्ष्मी नारायण मिश्र, श्री वं० के नाटककार रामकुमार वर्मा, श्री इमिङ्गुन्ड डैली, उनेन्द्रनाथ अर्ध, कलेश्वरसिंह बह्वेदी, श्री कलेश्वरसिंह द्विवेदी, श्री उम, श्री सुदर्शन, श्री सुमिश्र-मन्मथ पन्त, श्री विवेकी द्वि, श्री पुष्पलाल इत्यादि का महान् पूर्ण स्थान है। श्री इन्द्रनाथ झाज वर्मा, और श्री योगिन्द्रराजकी के नाटकों की विशेषता इस प्रकार का है कि वे बहुत हैं। यहाँ अब हम उन नाटककारों की बातें कहेंगे जो विशेषता करेंगे, जो साधुनिक काल में अपना महान् पूर्ण स्थान रखते हैं। वास्तव रामकुमार वर्मा, श्री उदयशङ्कर मल्ल, और श्री 'अर्ध' इत्यादि ने एकांकी नाटकों की रचना में अधिक सुप्रसिद्धि प्राप्त की है। अतः हम 'एकांकी' उन्माद में ही इनकी रचनाओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश करेंगे। यहाँ हम केवल उन्ही नाटककारों की रचनाओं की समीक्षा करेंगे, जिनमें मुख्य रूप से नाट्य रचना के क्षेत्र में ही अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

श्री योगिन्द्र ब्रह्म पन्त सुप्रसिद्ध नाटककार हैं। उन्होंने निम्नलिखित नाटकों की रचना की है—कर्मण्यो श्री योगिन्द्र, रामकुमार, कर्मण्यो, कर्मण्यो श्री योगिन्द्र, कर्मण्यो

की ऐतिहासिक वास्तव्य का हिन्दू, सिन्दूर मिन्दी, और कसबि । विष्णु की दृष्टि से
 पंच
 इस इनके नाटकों को तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—
 पौराणिक, ऐतिहासिक, और सामाजिक । 'वसन्तला' और कसबि की रचना पौरा-
 णिक कथाओं के आधार पर हुई है । 'पञ्चकुण्ड' और 'कसबि' का सम्बन्ध ऐति-
 हासिक युद्धों के लिए गया है । खंभूर की केटी, और सिन्दूर मिन्दी के कथानवी का
 निर्माण सामाजिक तथ्यों से हुआ है । इन और ऐसी की दृष्टि से भी इनके नाटक तीन
 वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं— नाटक, आम नाटक, और उपलब्ध । पञ्चकुण्ड, खंभूर
 की केटी, सिन्दूर मिन्दी और कसबि नाटक हैं । 'वसन्तला' और कसबि का हिन्दू
 नाटक माना है । खंभूर की केटीही उपलब्ध है ।

कथनों की रचनाओं का अध्ययन करने पर यह बात होना है, कि उनकी कला की
 प्राचीन नाटक वास्तव्य के प्रति आलोचना है । आधुनिक कला में, हम अपनी नाटक
 कला की कला में पायी और अपने पक्ष देना है, हम भी उनकी
 नाटकवादी कला प्राचीनता के मोड़ का परिधान नहीं करते । कसबि-
 दुर का हिन्दू, वसन्तला और पञ्चकुण्ड में उनका यह मोड़ स्पष्ट रूप से देखा जा
 सकता है । उन्होंने अपने इन नाटकों में प्राचीन वास्तव्य विधि का पालन नहीं
 आत्मगता के साथ किया है । जैसे—कसबिदुर का हिन्दू में महाभारत के साथ
 नाटक का आशय, स्वयं कथन, और पञ्चकुण्ड तथा खंभूर की केटी में स्वयं
 कथन, और नाटक कथन का कई स्थानों में अभाव । पात्रों के चुनाव में भी उनकी
 कला प्राचीन वास्तव्य विधि का ही अनुसरण करती हुई दिखाई पड़ती है । पात्रों में
 की प्रमुख पात्र हैं, इनके पात्रों का निर्धारण उन्होंने प्राचीन सिद्धांतों की ही आधार
 मान कर किया है । इनके नाटकों के प्रमुख पात्र आदिशङ्कर, लक्ष्मण की हैं, दूसरे
 कथनों में इनके कथनों के साथ सभी नाटक का ही और साहित्य है, या परिधान
 है । जैसे—कसबिदुर का हिन्दू या उपलब्ध, और 'वसन्तला' का कर्षाहित्य इत्यादि ।
 सिन्दूरमिन्दी के पात्रों के चुनाव में भी उनकी कला प्राचीन वास्तव्य से अधिक प्रभावित
 दिखाई पड़ती है ।

हिन्दू दृष्टि यह स्पष्ट नहीं है, कि उनकी कला पूर्ण रूप से प्राचीन परंपरा के
 ही सीधे से टूटी हुई है । इसमें कोई शक नहीं, कि उनकी कला अपने निर्माण के लिए
 प्राचीन परंपरा से उपलब्ध होती है, हिन्दू इसमें भी कोई शक नहीं, कि उनकी कला
 पर उस प्राचीन कला का भी प्रभाव है, जो वास्तव्य कला से अधिक प्रभावित है ।
 उनकी बहुत सी कला पर स्पष्ट रूप से वास्तव्य कला का प्रभाव दिखाई पड़ता है ।
 यही, और कथोपकथाओं के प्रदर्शन में उन्होंने वास्तव्य ऐसी के ही काम किया है ।
 वास्तव्य कलाके अनुसार ही उनकी कला का मुख्यतः ऐसी विशेष वह विधायि की और
 नहीं है । वह यह के लिए है 'उत्' को विष्णु व कथने अपने उद्देश्य की और ही
 बहुत ही दिखाई पड़ती है । नाटक के प्रकार विविध कथोपकथाओं का संघर्ष वास्तव्य
 विधि के ही अनुसार हुआ है । अन्तर्गत, और दृष्टि की वास्तव्य में भी वास्तव्य ऐसी

का ही अनुसरण किया गया है। सीते की योजना पर पाली 'रंग मंच' का रंग है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, कि पाली की कला आर्यों परमेश, पञ्चाल परमेश, और पाली कला की एक समष्टि है।

पाली की नाटक रचनाओं में नाटक के तन्त्रों का विकास सभारण्ड रूप में हुआ है। इसका यह तात्पर्य नहीं है, कि उनकी रचनाएँ साधारण कोटि की हैं। उनकी पाली के नाटक रचनाएँ उच्चतम कला हैं, पर उनके द्वारा किसी विशेष और नाटक-तन्त्र का या अभिव्यक्ति नहीं हो सका है। कथानक की दृष्टि से उनकी रचनाओं को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—ऐतिहासिक, ऐतिहासिक, और सांसारिक। 'पञ्चाल' और पञ्चाल की रचना ऐतिहासिक कथा के आधार पर हुई है। पञ्चाल की कथा भारतीय पुराण की है। कथा का विस्तार व्याख्यात्मकता के साथ हुआ है। 'पञ्चाल' के कथानक में कहीं कहीं ऐसे ही तन्त्र मिलते हैं, बिना के कारण कथा-प्रकार में ऐतिहासिक उत्पत्ति हो गया है। 'पञ्चाल' की कथा की ऐतिहासिक है। पञ्चाल में भी कथा के कथानक की रक्षा की गई है। 'पञ्चाल' और पञ्चाल का द्वितीय ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर विभिन्न हुआ है। पञ्चाल की कथा पञ्चाल, और पञ्चाल-तन्त्र की कथा है। कथा साधारण है, उनके रूप, और ऐतिहासिक के आधारों पर है। कथा का कथानक सांसारिकता और पञ्चाल की विधि में हुआ है। 'पञ्चाल' का द्वितीय कथा की कथा उच्चतम के दृष्टि उच्चतम के जीवन की कथा है। कथा में ऐतिहासिक तन्त्रों के साथ ही साथ कथानक के भी उच्च है। 'पञ्चाल की कथा' और 'पञ्चाल' की रचना सांसारिक कथाओं के आधार पर हुई है। 'पञ्चाल की कथा' के कथानक में पञ्चाल के पञ्चालियों के विषय हैं। कथानक के विस्तार में उच्चतम की रक्षा की गई है। 'पञ्चाल की कथा' की कथा नारी जीवन की कथा की लेकर चलती है।

पाली के नाटक अभिव्यक्ति हैं। उनके कई पाली का लक्ष्य के साथ अभिव्यक्ति की हुआ है। उनके नाटकों में जो अभिव्यक्तिमत्ता मिलती है, उसका एक साथ कारण उनकी पञ्चाल-योजना है। उनकी पञ्चाल योजना अभिव्यक्ति और साधारण है। उन्होंने ज्यों, और दृष्टों का स्थापन पञ्चाल तन्त्रों के अनुसरण किया है। ज्यों और दृष्टों के स्थापन में उनकी पञ्चाल विचारों पड़ती है। उन्होंने ज्यों और दृष्टों का स्थापन कथा की कथानकता की दृष्टि में रख कर किया है। ज्यों और दृष्टों के स्थापन में उन्होंने विश्व रीति के साथ किया है, उनके कारण उनका कथानक अधिक प्रभावपूर्ण बन गया है। उन्होंने अपने कथानक के रीति और रीतिमयी तन्त्रों की कई भागों में विस्तार किया है, परिणाम स्वरूप उनका प्रत्येक तन्त्र, और प्रत्येक दृष्ट कथानक के रीति तन्त्रों से प्राप्त करना हुआ दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार उनके कथानक के लक्ष्यतन्त्र विषय की अधिक शक्ति और दृष्ट में सामने आती हैं।

पाली के नाटकों में दो प्रकार के पात्र पाए जाते हैं। उनके एक प्रकार के

वाणी को हम उच्च सेवकी का, और दूसरे प्रकार के वाणी का भिन्न सेवकी का पाठ बन सकती हैं। उच्च सेवकी के वाणी में, नाटक का मुख्य उद्देश्य प्राचीन गद्य विधि के अनुसार बिना है। प्राचीन गद्य विधि के अनुसार उनके नाटकों में जीम प्रकार के नाटक पाए जाते हैं—और ललित, वीरराज्य, और गद्य। 'अन्तर्गत' का भिन्न में उच्च और ललित को सेवकी में जाता है। 'अन्तर्गत' के अन्तर्गत में वीरराज्य के मुख्य मिश्रण हैं। 'अन्तर्गत' के अन्तर्गत को 'गद्य' कहा जा सकता है। दुसरी को भौति ही उनके को वाणी को भी उच्च और मध्यम दो सेविका हैं। वैसाजिने, गद्य, और ललित इत्यादि की मध्यम उच्च वाणी में को का सकता है। मार्गिकी और ललित सेवी मध्यम कोरि के पाठ हैं। वाणी के चरित्र का विचार सुधारण और अन्तर्गतता के साथ नहीं हो सकता है। पाठ उच्चकोरि के अन्तर्गत हैं, पर उनके चरित्रों में कोई आदर्श की बात नहीं दिखाई पड़ती। उनके पाठ अपना भी चरित्र सामने उपस्थित करते हैं, उसके उनकी विशेषता नहीं प्रकट होती। वे अन्तर्गत सुधारण रंग मंच पर ही पाए जाते हैं। अतः हम उन्हें आदर्शवादी न कह कर मध्यमवादी ही कहेंगे। उनके वाणी में अन्तर्गत और उच्च-अन्तर्गत का भी समान वैधान को मिलता है। उनके पाठ अन्तर्गत उच्च-अन्तर्गत को हुए ललित उच्च के ही अपना कार्य-प्रकार करते हैं।

गद्यों के वाणी के संवादों, और अन्तर्गत-गद्यों में भी विशेषता के लक्षण नहीं पाए जाते। उनके संवाद सेवी साधारण, और अन्तर्गत-विधि हैं। साधारण ही ही हुए जो उनके संवादों को सेवी को मध्यम 'गद्य' कहा जा सकता है। अन्तर्गत अन्तर्गत संवाद सेवी में, चरित्र को लक्ष करने के लिए लक्षण कथनों का भी प्रयोग बिना है। कई स्थानों में अन्तर्गत बार-बार 'अन्तर्गत कथनों' से कार्य किया है। ऐसे स्थानों पर उनकी संवाद सेवी अन्तर्गत-विधि बन गई है। सेवी के प्रयोग में भी कहीं कहीं अन्तर्गत-विधि देखने को मिलती है। संवादों को नाटक, आचार्य, और मातृगद्य हैं। समय होते होते, और भाव पूर्ण है।

अन्तर्गत की रचनाओं में देश काल की योजना का अभाव है। उनके नाटक जीम प्रकार के हैं—वीरराज्य, वीरराज्य, और ललित। उनका चरित्र भी प्रकार का नाटक देश और काल के बिना को नहीं भौति नहीं प्रकट करता। उनके लीनों ही प्रकार के नाटक मध्यमों और ललितों में लक्ष दिखाई पड़ते हैं। उनमें ललित ललित, अन्तर्गत, अन्तर्गत और ललित के चरित्रों का समान ही मिलता है। अन्तर्गत नाटक भी देश और काल को नहीं नहीं करते। अन्तर्गत नाटकों में सुधारवादी अन्तर्गतों की प्रधानता है। 'रंग योजना' को लीन भी सेवी का अन्तर्गत विशेष रूप के नहीं दिखाई पड़ता। वे रंग योजना के देश के नाट्य-रंग सेवी का अन्तर्गत करते हुए भाव पड़ते हैं; अन्तर्गत लक्षण उनके नाटकों में चरित्र विशेष रूप का अन्तर्गत नहीं हो गया है। अन्तर्गत, और, अन्तर्गत और अन्तर्गत रंगों का संवाद उनके नाटकों में अन्तर्गत के साथ हुआ है। देशकाल और रंगों की दृष्टि के नहीं

उनके नाटकों में समाज है, वही उनके अभिनय के लक्ष्य अधिक-परिमाण में मिलते हैं। पंजाबी में अभिनय के लक्ष्यों को अभिवृद्धि के लिए माध्यम के कई लक्ष्यों की अपेक्षा की है। उन्होंने अभिनयशास्त्रज्ञों की दृष्टि के लिए ही अपनी कला को संतुष्टि देने से बचाया है, और उसे एक ही निष्कर्षता से दूर रखा है। अभिनयशास्त्रज्ञों की अभिवृद्धि के लिए ही उन्होंने अपने लक्ष्यों और संवेदनों की कलशों के लक्ष्यों में डाला है, और उसे अभिनयशास्त्रज्ञों के लक्ष्यों से दूर रखने का प्रयास किया है। यही कारण है, कि उनके नाटकों में अभिनय के लक्ष्यों की अधिकता है। उनके नाटकों में अभिनयशास्त्रज्ञों का मुख्य कारण उनके कथानक की कलशता है। उनके नाटकों का कथानक अधिक सरल और असाधारण है। उन्होंने मुख्य कथानक में छोटी-छोटी कथाओं का समन्वय अधिक परिमाण में नहीं किया है। उन्होंने कथानक में दो-तीन घटनाओं की दृष्टि की है, जिससे कथानक अधिक रोचक और आकर्षक बन गया है। उनके लक्ष्यों और लक्ष्यों के लक्ष्यों में अधिक ध्यान और अदृष्टता है। रंग संकेत भी उनके नाटकों में मिलते हैं। वही और असाधारण के लक्ष्यों की उन्होंने ध्यान की कोशिश रखा है। उनके नाटकों के लक्ष्यों में वही अधिक अभिनयशास्त्रज्ञ है, और वही ही पाया जाता है। इसके विपरीत उनके नाटकों का चरित्र अधिक सरल, और व्यावहारिक है। उन्होंने लक्ष्यों की योजना में भी व्यावहारिकता की महत्व दिया है।

श्री उदयराक्षस गुरु ने कई शायरी की रचना की है। उनके शायरी के नाम इस प्रकार हैं—संवा, समर विजय, विजयशक्ति, राक्षस, सुविजय, राक्षस विजय, कल्याण, श्री उदयराक्षस कल्याण कल्याण, और कल्याणशरी। मधुरी ने कई शायरी की रचना की है। उनके शायरी नामों के नाम इस प्रकार हैं—मलय संवा, विजयशक्ति, राक्षस, राक्षस शरीर, कल्याण, मेघदूत, और विजयशक्ति। उनके शायरी नामों के कई संग्रह की प्रकाशित हुई है, जिसके नाम इस प्रकार हैं—सुविजय शायरी, श्री वा दूरव, कल्याण का कल्याण, कल्याण पुत्र, दूर विजय, कल्याण और कल्याण।

महत्वा की मायमत्ता के कर्मी की मानने के लिए हम उनकी हकी कुतिली की समीक्षा करने । निम्न की दृष्टि से हम उनकी कुतिली को पार करे में निम्न कर महत्वा की समीक्षा करते हैं—वीपक्षिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, और साक-मायमत्ता नीतिक । यथा और समर निम्न की समीक्षा वीपक्षिक समीक्षा के आधार पर हुई है । निम्नानिम्न, दायर, मुक्ति-मय, और सम-निम्न में ऐतिहासिक समीक्षा समीक्षा है । समीक्षा और समीक्षा-समय में सामाजिक समीक्षा है । 'समिन्धारी' में सामाजिक समीक्षा का समीक्षा है ।

आइसी की गठबन्धन के इमे को सब मान लेते हैं। उनकी गठबन्धन का दृष्टि सब तो यह है, की उनकी निष्पक्षद्विष्ट, दाहक, कालि कालि विषय-व्यापि कृतिओं से मिलता है। उनकी कला के दृष्टि सब की दृष्टि आर्थिक सब यह समझे हैं। उनकी

कला अपने इस रूप में वास्तव-वच पर चरमता सीखती हुई आज बढ़ती है। कथानक, पात्र, चरित्र चित्रण, और संवाद इत्यादि सभी क्षेत्रों में उसके जो कार्य दिखाई पड़ते हैं, उनमें उसका 'अन्तर्भाव' ही मान बढ़ता है। उनकी कला का दूसरा स्तरन यह है, जो कथला, मुक्ति-वच, और वाच-विषय इत्यादि बातों में मिलता है। इस स्तर को हम उनकी कला का विकसित रूप कह सकते हैं। उसमें कला में इस रूप में जो कार्य प्रगट हो रहा है, उसमें उसके विशेषता दिखाई पड़ती है।

महर्षी की कला में उनकी अपनी मौलिकता नहीं है। उनकी कला कहीं तो भारतीय परम्परा से प्रभावित है, और कहीं वाद-वादन कला से। 'विक्रमोद्धार' में १०८८ वर्ष के भारतीय परम्परा का प्रत्यक्ष चित्रण मिला है। 'सुन्दर' और 'सगर' विषय हास्य-मोहनों में स्वतन्त्र कथन के प्रयोग द्वारा भारतीय विधि के ही प्रति साक्ष्य प्रदात हो पाते हैं। इसी प्रकार उनके सभी पर भी भारतीय परम्परा का ही प्रभाव लक्षित होता है। सभी के चरित्र चित्रण में उनकी कला विदेशी पात्र का अवलम्बन करती है। बहुत प्रेम-वच के क्षेत्र में भी उसमें विदेशी विचारों का ही प्रत्यक्ष चित्रण है। सभी और हास्य के विधान में उसमें विदेशी ही विधि प्रगट की है। मनोविश्लेषण के चित्रण पर भी विदेशी कला का प्रभु है। महर्षी के नाटकों का चरित्र भी विदेशी प्रकृति के ही अनुसार हुआ है। उनके अधिकांश नाटक दुःखान्त हैं।

महर्षी के पात्र तीन प्रकार के हैं—वीरपक्षि, ऐतिहासिक, और सामाजिक। इनमें वीरपक्षि पात्र उच्चस्तर पर हैं, जो चरित्र चित्रण, और आदर्शवादी हैं। ऐतिहासिक पात्रों में अधिकतर ऐसे लोग हैं, जिनका सम्बन्ध उनके युग-व्यवस्था से है। सामाजिक पात्रों में ऐसे भी पात्र मिलते हैं, जिनमें हम 'सामान्य वर्ग' का पात्र कह सकते हैं। विचार की दृष्टि से इनके पात्र दो प्रकार के हैं—आदर्शवादी और नकारवादी। वीरपक्षि और ऐतिहासिक नाटकों में इनके पात्र आदर्शवाद का ही अनुसरण करते हैं। सामाजिक नाटकों में इनके पात्रों में नकारवादी रूप का प्रदर्शन होता है। यद्यपि इनके वीरपक्षि और ऐतिहासिक पात्र आदर्श का अनुसरण करते हैं, पर उनमें अधिकतर नहीं दिखाई पड़ता। इनमें जीवन और प्रकृति का भी अभाव है। आदर्शवादी पात्रों की संख्या उनके नकारवादी पात्र अधिक जीवन के प्रतिरूप है। इनके नकारवादी पात्रों में प्रकृति कोलता भी नहीं मिलती है। सभी के चरित्र चित्रण में महर्षी की कला की कथला मात्रा हुई है। सभी के चरित्र चित्रण के लिए उनकी कला में कुछ सीमा का अवलम्बन किया है, उसमें अनुकूलता, और सामाजिकता है। इनके पात्रों की कल्पना, उनके मनोविश्लेषण का प्रदर्शन, उनके कार्य, और उनके संवाद इत्यादि में अनुकूलता और स्वाभाविकता के साथ अधिक मिलते हैं। महर्षी की कला को नहीं पात्रों के चरित्र चित्रण में कथला मात्रा हुई है, नहीं पात्रों के सम्बन्ध में उनकी दो-दो-दो नहीं भी दिखाई पड़ती है। एक ही बात, कि इनके पात्र कथला कथनों का अधिक प्रयोग करते हैं, और दूसरा यह, कि वे नहीं भी अधिक हैं। नहीं नहीं उनकी कला इन दोनों नहीं से अपने की कला

के ही अनुशासन की गई है, जहाँ-तु-हम-मादकी-में-जान-समझ-नहीं-है। ये-ले-पाक-के-ही-मिले-ही-पर-अन्त-में-हम-एक-दूसरे-के-हैं। हम-मादकी-में-अन्त-मिल-हो-के-मिल-करने-के-लिए-जान-भी-मिल-गया-है। हमने-मिल-कर-ही-अन्त-मिल-कर-अन्त-मिल-की-जान-मिल-है।

मनुष्य के मनुष्य में ही प्रभार के पाप पाए जाते हैं। उनके एक प्रकार के पापों को इन उपबर्गीय, और दूसरे प्रकार के पापों को सामान्य वर्गीय कह सकते हैं। उपबर्गीय पाप इनके भौतिक, और वैज्ञानिक मायों में मिलते हैं। भौतिक, दण्ड, पाप, पाप, और पंचमूलिक इत्यादि इसी प्रकार के पाप हैं। सामान्य मायों में सामान्य वर्गीय पापों का समावेश है। इस प्रकार के पाप समाज में मिलते हैं। कर्मों कर्मों विधि के अनुसार उनके पाप विभिन्न पदों का व्यवसाय करते हैं। उपबर्गीय पाप, जो वैज्ञानिक और भौतिक व्यवसायों में मिलते हैं, मायवीय वर्गमा में समाहित हैं। इनमें मुख्य को समाज का सामान्य वर्गमा की ही दृष्टि में एक का को माना है। मुख्य को दृष्टि में उपबर्गीय पाप को भौतिक में विभक्त किए जा सकते हैं—भौतिक, और प्रकृत, और भौतिक। भौतिक, दण्ड, पाप, पाप, और पंचमूलिक इत्यादि को समाज भौतिक में ही का सकते हैं। विज्ञान में और प्रकृत के दृष्टि में। भौतिक, दुर्घट, वैज्ञानिक और समाज इत्यादि में भौतिक के दृष्टि मिलते हैं। सामान्य वर्गीय पाप, जो सामान्य कर्मों में मिलते हैं, समाज वर्गीय हैं। इन पापों का व्यवसाय कर्म, और कर्मों का व्यवसाय है। मायों पापों में अधिकतर सामान्यता के ही क्षेत्र में दिखाई पड़ते हैं। मुख्य पापों को व्यवसाय वर्गीय पापों में समाज दृष्टि को व्यवसायों का विचार व्यवसाय के पाप हुआ है।

मनुष्यों की संवाद योजना को धरती में विभक्त है। उनकी संवाद योजना का एक रूप ही यह है, जो उनकी आध्यात्मिक रचनाओं में मिलता है। उनकी संवाद योजना का यह रूप आध्यात्मिक-वैज्ञानिक है। उनकी मानों की अनेकता हमें ही ही आध्यात्मिक मान्यता दिया गया है। हमें ही ही मिलता है जो उनके आध्यात्मिक है, उनके जीवन की आध्यात्मिक समीक्षा, और जीवन का भी है। उनकी संवाद योजना का दूसरा रूप उनके वैज्ञानिक-मान्यता की रचनाओं में मिलता है। संवाद योजना का यह रूप, उनकी रचनाओं के ही मुख्य विचारों और व्याख्यात्मक है। हमें विचारमय, और अतीत-वर्तमान की ही समीक्षा मिलता है। आध्यात्मिक-वैज्ञानिक हमें संवाद, और वैज्ञानिक-वैज्ञानिक हमें विचारमय रूप मिला है, और आध्यात्मिक-वैज्ञानिक हमें मिलता है। हमें विचार, समीक्षा, जाति, यह, और जाति की ही मान्यता दिया गया है; हमें हमें ही ही यह रूप मिला है, कि उनकी संवाद योजना का यह द्वितीय रूप आध्यात्मिक-वैज्ञानिक, और आध्यात्मिक है।

मध्यरी के नाटक देश और काल के बिना की सुभावस्था के साथ सामने प्रस्तुत करते हैं। उनके गैरस्थित नाटक कहीं पुराण काल के जीवन पर प्रकाश डालते हैं, कहीं ऐतिहासिक नाटक अपने युग की स्पष्ट करने में पीछे नहीं रहते। उनके शैली

भाषी का चरित्र विपन्न भी इसमें सामाजिकता के साथ नहीं हुआ है। साहित्य के चरित्र को इसमें दिखाने की चेष्टा की गई है। इसके विपरीत लोक चित्रों की सामाजिक दृष्टि से उच्च स्तर में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। 'संस्कार' की कथा भारतीय इतिहास के सुन के साथ ही गयी है। कथा का मुख्य पात्रक सुन सेनापति चित्तावन है, जिसके चरित्र में त्याग, देश प्रेम, साहस, और पुनर्वास के लक्ष्य प्रचुर रूप में मिलते हैं। यद्यपि विभिन्न समस्याओं के बीच से कथा सामाजिकता के साथ जाने बढ़ती हुई दिखायी देती है, पर इस कथा में कुछ ऐसी समस्याएँ मिलती हैं, जिनसे सामाजिकता का वास्तविक उत्पन्न कर दिया है। जैसे—दीनो, वैष्णवी, और राजाओं की समस्याओं के बीच। दीनो और राजाओं के बीचों में सामाजिकता उत्पन्न हो गयी है। समस्या ऐतिहासिक कृति है। इसकी कथा भारतीय इतिहास की एक प्रमुख कथा है, जिसकी लेकर बाह, बरबसि, गुदाब, भी हर्ष, जैमचन्द, और बीरदेव इत्यादि संस्कृत के लेखकों ने रचनाएँ की हैं। साहित्यिक काल में राजाओं ने भी रचना के रूप में इसका सुन्दर किया है। जिसकी भी कथा में ऐतिहासिक कालों के साथ ही साथ कल्पना का सहितत्व भी है। इसके दो संक की कथा की ऐतिहासिक कालों के आधार पर मण्डित हुई है, पर लेखने का कथा में कल्पना का समावेश है। सामाजिक और साहित्यिक दोनों ही कथाओं का सहितत्व सामाजिकता के साथ हुआ है। यद्यपि सुन कथा में सामाजिक कालों का समावेश साहित्यिक कथा में हुआ है, पर कथा के प्रसार में कथा-कथा है। उदात्त साहित्य का मुख्य पात्र है। उदात्त के चरित्र में चित्तावन है। 'दशमवेध' की कथा चरित्र काल की कथा है। कथा में साकमरु, दिला, देश प्रेम, और राजा तथा संस्कृत इत्यादि के ही साथ साथ हुए हैं। इसी कालों के कथा का संवदन हुआ है। कथा एक विशेष सुन की संस्कृति पर प्रकाश डालती है। चरित्र, बीरदेव, गुदाबराज और बाहुदेव आदि इनके साथ हैं। भाषी में गुदाबराज बाहुदेव का चरित्र साहित्य सामाजिकता के साथ विकसित हुआ है। साहित्य के उदात्त के अनुसार इसमें जीवन के लक्ष्य भी मिलते हैं।

राजाओं जिसकी भी सामाजिक कृति है। इसकी कथा का संवदन सर्वसाधारण काल की सभी समस्याओं की लेकर किया गया है। कथा चरित्र और प्रसार हुई है। चरित्रों का चित्रण भी साहित्य सामाजिकता की विवक्ति में हुआ है। भाषी में राजा-पति, निरवकाश, गुलाबीर, और राजाओं इत्यादि का प्रचुर स्थान है। 'संसार' में समाज की समस्याओं के साथ ही साथ सामाजिक समस्याओं की भी विवेचना की गई है। यही-यही ही सामाजिक समस्याओं की विवेचना की ही प्रयुक्तता मिलती है। जिसकी भी कृति सामाजिक कृति प्रचार का सहित है। प्रचार के सहित की कथा में कई सामाजिक लक्ष्य प्राप्त होते हैं, जिसमें देश प्रेम, राज्य प्रेम, लोक के हितों, और साहित्यिक के रूप में प्रचार के लक्ष्य प्रचुर हैं। इन सामाजिक कालों के आधार पर ही जीवन की समस्याओं और प्रेम की चरित्रों की कथाओं में

की चेष्टा की गई है। पात्रों में रामलाल, सुभाष, और बालगो इत्यादि का स्थान पूर्व स्थान है। कथानक का संघटन सामाजिकता के साथ हुआ है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी सामाजिकता के बहुत तत्व मिलते हैं। 'सुखि का सहाय' भी सामाजिक कृति है। 'सुखि के सहाय' में भी डेम और नारी जीवन की ही समस्याओं के चित्रण हैं। कथा अनात्मन और सजीव है। कथा का विकास सामाजिकता पूर्वक उद्देश्य की दिशा में ही हुआ है। आशा, उमाशङ्कर, और रामरत्न मुख्य पात्रों में से हैं। पात्रों के चरित्र चित्रण में भी उद्देश्य की रक्षा की गई है। 'उमरौरी' में डेम की समस्याएँ हैं। कथानक का संघटन डेम के ही तत्त्वों से हुआ है। कहीं-कहीं डेम के तत्व स्वयं न होकर अन्तर्गत रहते हैं; परिणामतः कहीं कहीं कथानक में ऐतिहासिकता का भाव है। पात्रों में राम, लालन, रंभा, नरेन्द्र, और रामरत्न इत्यादि का मुख्य स्थान है। पात्रों का चरित्र चित्रण आधुनिकता के नाट्यरस में हुआ है। कहीं-कहीं पात्रों के चरित्र चित्रण में इस प्रकार की कठिनाई भी का ली गई है, जिससे उनकी सामाजिकता पर संदेह भी उत्पन्न होता है। 'किन्दूर की होली' में डेम, और चित्रण की समस्या के चित्रण हैं। कथानक के संघटन में चरित्र डेम के ही तत्व बहुत रूप में मिलते हैं, पर उनके साथ रामा, लालन, रंभा, और मित्रता इत्यादि के तत्व भी लगे हुए हैं। पात्रों में राजकीश, इन्द्रधनु, सुभाष, और मनीषाशङ्कर का मुख्य स्थान है। नाटक में कथानकों की आविष्टता होने के कारण पात्रों के चरित्र का विकास सुन्दरता के साथ नहीं हो सका है। कथानकों को लेकर रहने लक्ष्मी-लक्ष्मी भिन्न रह है, कि नाटक की नाट्यमूल्यता का ह्रास का हो गया है। 'आधीरात' में भी सामाजिक समस्याओं के ही चित्रण हैं। पात्रों में माधवजी और राधिकाशङ्कर इत्यादि मुख्य हैं। 'आधीरात' में भी लक्ष्मी-लक्ष्मी, और चित्रण की सुन्दरता है; परिणाम स्वयं न ही पात्रों के चरित्र का विकास हो सका है, और न कथानक ही अधिक प्रभाव डालती बन सका है।

मित्रता की नाटक सम्बन्धि पर प्रकाश डालने के अन्तर्गत अब हम उनकी नाटक कला की विशेषता करेंगे। मित्रता बुद्धिवादी व्यक्ति हैं। वे जीवन में अधिक कष्ट की मित्रता की बुद्धि के ही बर्तने के लीकते हैं। नाटक स्वयं के क्षेत्र में ही नाट्यमूल्यता उन्होंने बुद्धिवाद का ही पक्ष पकड़ा है। उनकी नाटककला के सम्बन्ध में पहली बात जो कही जा सकती है, वह यह है, कि उनकी कला बुद्धि-वादिनी है। बुद्धिवाद के क्षेत्र में उनकी कला वास्तविक कला के अधिक सम्बन्धित है। वास्तविक कला में भी हमें उनकी कला में उनकी कला को अधिक प्रभावित किया है। उन्होंने अपनी कला के अन्तर्गत वास्तविक कला के ही आधार पर किया गया है। पर वह काल में संकीर्ण नहीं किया जा सकता, कि उन काल में की काला है, वह पूर्व कालेय मातृगोत्र है। इस प्रकार उन्होंने अपनी कला में नाट्य-लक्ष्य और वास्तविक-लक्ष्य की पात्रों का सम्बन्ध किया है। उनके अधिष्ठान नाटकों में उनकी इसी बुद्धिवादिनी कला के दर्शन होते हैं। उनके सभी नाटक कथानक और

विचार दृष्टांत है। सामाजिक नाटक से सम्बन्धनों को तो करके पकड़ी ही है, ऐतिहासिक और नीतिव्यक्त नाटकों से भी सम्बन्धनों के ही विवेचन की प्रवृत्ति मिलती है। ऐसा लगता है, कि विवेचन और सर्ववैज्ञानिक विश्लेषण इनकी प्रथा की आधिक्य दिया है। यहाँ यहाँ दृष्ट होना से आशय का कम प्रभाव कर दिया है। यहाँ यहाँ इनकी कला विवेचन के क्षेत्र में आशय कम ही गई है, यहाँ उसमें आशयता उत्पन्न हो गई है। ऐसे कलाओं पर नाट्यशास्त्र का दृष्ट भी दिखाई देता है।

मित्र भी की कला नाट्यशास्त्र कला से अधिक सम्बन्धित है। इनकी कला से बुद्धि और विवेचना के तन्त्रों की प्रभावता है। बुद्धि और विवेचना के क्षेत्र में अधिक प्रवृत्ति के कारण इनकी कला नाटक के कई आवश्यक तन्त्रों की और प्रभाव नहीं दे पाती है। 'रंग मंच' की दृष्टि से यदि हम इनकी कला पर दृष्टिगत करते हैं, तो इसमें शीघ्रता पाले है। इनकी कला से दृष्ट सर्वत्र रंग मंच की कल्पना की है। रंग मंच पर बार बार यहाँ का विवेचना और उदाहरण इनकी कला की दिया नहीं है। यही कारण है, कि इनके नाटकों में दृष्टों का विवेचन नहीं है। बुद्धि का प्रभाव, विन्दु की हीनता, आशयता, आशयता, दृष्टावश्यक, कलात्मक, नाटक की हीनता, और मंच पर प्रभाव इनकी नाटकों में शीघ्र ही दृष्ट का प्रभाव भी देते हैं। दृष्टों का विवेचन न होने के कारण यहाँ का उदाहरण और विवेचना बार बार नहीं होता। दृष्टों का विवेचन न होने के कारण यहाँ का प्रभाव प्रभाव भी विवेचित विवेचन के अनुसार नहीं होता। विवेचनात्मक विवेचनात्मकता की प्रथा नहीं होती। ऐसी प्रभाव से मित्र की की कला से वह एक ऐसा प्रभाव है, जो उनके रंग मंच पर प्रभाव नहीं देना सफल।

यै कह चुका है कि मित्रों की कला से विवेचना के दृष्ट अधिक है। वह आदि से लेकर अंत तक सम्बन्धनों के प्रभाव से ही उनको हुई दिखाई देती है। सम्बन्धनों की प्रभाव वह सर्व-विशेषी प्रभाव देती है। सर्व-विशेषी के विद्वत् वह प्रभाव भी प्रभाव देती है। सर्व-विशेषी और विवेचना के विद्वत् वह प्रभाव कलात्मक से शीघ्र सम्बन्धनों की भी प्रभाव देती है। यहाँ यहाँ इन शीघ्र सम्बन्धनों से सम्बन्धनों का कम प्रभाव कर दिया है। यहाँ यहाँ से शीघ्र सम्बन्धनों सम्बन्धनों की प्रभाव देती है। सम्बन्धनों में उनको हुई होने के कारण उनको प्रभाव सर्व-विशेषी और सम्बन्धनों की और विवेचना प्रभाव नहीं दे पाती है। प्रभाव प्रभाव यहाँ उनके नाटकों में 'विवेचन' की प्रवृत्ति मिलती है, यहाँ उनमें सर्व-विशेषी और सम्बन्धनों के विवेचन के प्रति प्रभाव दिखाई देती है। प्रभाव विवेचना का प्रभाव है, कि यही नाटकों में उनकी प्रभावता केवल विवेचनात्मक ही वह नहीं है।

विवेचनी की कला यहाँ सम्बन्धनों और सर्व-विशेषी के प्रति उदाहरण दिखाई देती है, यहाँ विवेचनात्मक की और वह अधिक प्रभाव प्रभाव देती है। विवेचनात्मक की और उनमें विवेचनात्मक के प्रभाव दिया है। उनके विवेचनात्मक का प्रभाव सर्व-विशेषी है। उनमें सर्व-विशेषी की ही प्रभाव प्रभाव कर प्रभाव प्रभाव के विवेचना

प्रेमीकी के लक्षण निम्न की दृष्टि से तीन कौनों में विभक्त किए जा सकते हैं—
वीर्यात्मिक, ऐतिहासिक, और सामाजिक । लक्षण निम्न इनका वीर्यात्मिक लक्षण है ।

प्रेमीकी की लक्षण, लक्ष्य, कथन, विषय-वस्तु, प्रतिरोध, लक्ष्य-वस्तु,
लक्षण-वस्तु निम्न, उद्देश्य, विषय-वस्तु और प्रथम कौटुम्बिक दृष्टि-
हासिक दृष्टि के आधार पर की गई है । कथन और लक्ष्य सामाजिक कृतियों हैं ।
लक्षण-वस्तु की कथा प्रत्यक्ष से ली गई है । कथा का विषय सामाजिकता के लक्षण
दुखा है । कथा में अतिरिक्त और अतिरिक्त के अन्तर्गत विषय हैं, जिससे कथा
में वस्तुतः की अभिवृद्धि हुई है । 'कथन' प्रेमीकी के ऐतिहासिक लक्षणों में सर्व
श्रेष्ठ समझा जाता है । इसकी कथा प्रथम काल की कथा है । कथा का उद्देश्य भारत की
वीर्यात्मकी संस्कृति के विषयों की प्रस्तुत करना है । कथा का विषय सामाजिकता के
लक्षण उद्देश्य की दिशा में दुखा है । लक्ष्य-वस्तु, विषय-वस्तु, प्रतिरोध, कौटुम्बिक,
लक्ष्य-वस्तु, विषय-वस्तु, विषय, लक्ष्य-वस्तु, और 'उद्देश्य' की कथाएँ ऐतिहासिक
के दृष्टि से ली गई हैं । यह कथाएँ अन्तर्गत के ऐतिहासिक के ली गई हैं । इन कथाओं
का विषय कौटुम्बिकता की दृष्टि से विषय-वस्तु है । कौटुम्बिक लक्षणों के विषयों
की लक्षण करने के लिए इन कथाओं में कथना का भी समावेश किया गया है ।
कथाओं का विषय सामाजिकता के लक्षण दुखा है । कथाएँ निम्न प्रकार से ली
हैं, उद्देश्य-वस्तु और विषय-वस्तु के लक्षण दिखते हैं । कथाएँ अपने लक्षण, और उद्देश्य-
विषय से लक्षण हो सकी हैं—यह निम्नोक्त कथा का लक्षण है । कथन और लक्ष्य की
लक्षण में सामाजिक लक्षणों का योग है । 'कथन' की कथा वीर्यात्मिक से प्रभावित है ।
'लक्ष्य' की कथा में सामाजिक लक्षण के विषय हैं ।

प्रेमीकी की कथा पर प्रथम का प्रभाव है । उन्होंने अपनी कथा की प्रथम की
मात्राओं के लक्षण से लक्षण है । उनकी कथा प्रथम की मात्राओं की प्रथमों में
प्रेमीकी की लक्षण लक्षण है । उनकी कथा में लक्षण-वस्तु की मात्रा
लक्षण-वस्तु लक्षण का लक्षण निम्न कथानकों का प्रभाव किया है । उन्होंने
अपने लिए ऐसे कथानकों चुने हैं, जिसमें भारतीय संस्कृति के विषय हैं । कथाओं के
प्रथमों में उन्होंने अपनी एक विशेष दृष्टि का परिचय दिया है । उन्होंने इन कथाओं
में केवल उनकी लक्षणों की लक्षण किया है, जो लक्षण, उद्देश्य, लक्षण, लक्षण, और लक्षण
के विषय प्रभावित करते हैं । इन कथानकों के लक्षण लक्षणों की लक्षण लक्षण दिया है,
जो कौटुम्बिक लक्षणों के विषयों लक्षण हैं । उनके लक्षण पर वह उन लक्षणों की
लक्षण है, जो कौटुम्बिक लक्षणों के लक्षण लक्षण लक्षण हैं । इन लक्षणों की लक्षणों में
उन्होंने कथना के लक्षण किया है । इन प्रकार इन लक्षण लक्षण हैं, कि कथानकों के
लक्षण में प्रेमीकी की कथा ऐतिहासिक लक्षण और कथना के लक्षण लक्षण लक्षण
लक्षण है । प्रेमीकी के लक्षणों की लक्षण लक्षण का लक्षण लक्षण है, कि उन्होंने अपने
लक्षणों के ऐतिहासिक कथानकों की कौटुम्बिकता के लक्षण से लक्षण है, और इन
प्रकार लक्षण लक्षण लक्षण की मात्रा लक्षण लक्षण लक्षण है ।

कथानक की सीढ़ि संवादों के क्षेत्र में भी डोमीनी की कला की अपनी विशेषता है। जिस प्रकार उनकी कला कथानक के क्षेत्र में सर्वोत्तम राष्ट्रीयता का पूरा पूरा भाव रखती है, उसी प्रकार संवादों के क्षेत्र में उसने अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। कथाओं के अनुक्रम ही डोमीनी के संवाद की है। संवादों के भीतर ऐसे जोर है, जो सर्वोच्च राष्ट्रीयता के चिन्तों को स्पष्ट करते हैं। संवाद की ऐसी भाषा के अनुक्रम ही स्पष्ट और यथार्थ की होती दिखाई पड़ते हैं। कथों के अनुक्रम ही कड़ी की वह सीढ़ि दिखाई देती है, और कहीं उसमें यथार्थता का वेग धक्का खाता है। डोमीनी ने अपने संवादों से ही काम लिया है। कथों की उसमें संवाद भाषा के मन के पलों को उजाड़ करते हैं, और कहीं उसमें दृष्टि पाठों के चरित्रों पर प्रकाश पड़ता है। इन दोनों ही योजनाओं में डोमीनी की कला की अधिक सरलता स्पष्ट हुई है।

डोमीनी की भाव्यकला अधिकतर सादृश्यता का ही परिचय देती है। वह न की विशेष रूप से सादृश्यता कला का ही अनुकरण करती है, और न सादृश्य परंपरा के ही सीढ़ि चौकती है। उसने अपने विश्व रूप नवीन धारा बनाया है, जिसे हम सादृश्य और सादृश्य परंपरा के बीच का मार्ग कह सकते हैं; दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं, कि डोमीनी की कला में सादृश्यकलापुस्तक दोनों ही शैक्तियों के काम किया है, पर उनकी सामाजिक चिन्ता में भी नहीं है। कथों और दृष्टियों के विस्तार में उन्होंने सादृश्य कला से काम लिया है। उनके साथ सभी सादृश्य में कथों और दृष्टियों का विस्तार सादृश्य कला के ही अनुसार हुआ है। कथों और यथार्थताओं के अद्वैत में भी उनकी कला ने सादृश्य शैली की ही प्रवृत्ति किया है। रक्षा व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, कृषि, और अन्य भंग में प्रवृत्ति कथनों के प्रयोग द्वारा उसके सादृश्य परंपरा की भी पुष्टि की है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, कि उनकी कला सादृश्यतादिनी है। वह सादृश्य कला और सादृश्य परंपरा से प्रभावित होने पर भी किसी ने अपनी सामाजिक नहीं रखी।

अब हम डोमीनी के सादृश्य कला की समीक्षा करेंगे। कथानक की दृष्टि से उनकी समीक्षा तीन वर्गों में विस्तार की जा सकती है—साहित्यिक, ऐतिहासिक, और डोमीनी के सादृश्य साहित्यिक। डोमीनी साहित्यिक से अधिक प्रभावित काम में सादृश्य के लक्ष्य कहते हैं। उन्होंने अपने कथों की प्रचार के कथानकों के विस्तार में साहित्यिक के विस्तारों की ही दृष्टि से रखा है। साहित्यिक के विस्तारों की प्रतिपादन करने वाली कथाएँ उन्होंने अपने कथों के प्रचार के कथानकों की मूल कथाओं में जोड़ी है। इन कथाओं को जोड़ने में उन्होंने कथानक से काम लिया है। इन कथाओं में कथित कथाओं के जोड़ने के कारण नहीं इनके ऐतिहासिक सादृश्य में ऐतिहासिक कथों पर बड़ा बड़ा प्रभाव है, वहीं दृष्टियों के कारण से साहित्यिक जीवन के अनुक्रम बन गई हैं, और उनकी सभी विस्तार बढ़ गई है। डोमीनी के साहित्यिक कथानक की साहित्यिक के विस्तारों की पुष्टि करते हैं। कथानक के क्षेत्र में डोमीनी

समावेश है। देश और काल की योजना की दृष्टि से भी प्रेमीजी एक सफल नाटक-कार कहे जा सकते हैं। उनके प्रायः सभी नाटक अपने युग और काल की स्थितियों पर पूरा-पूरा प्रकाश डालते हैं। अभिनयात्मकता भी उनके नाटकों में प्रचुरता के साथ मिलती है। उनके प्रायः सभी नाटक रंग मंच पर सफलता के साथ अभिनीत किये जा सकते हैं।

आधुनिक काल के नाट्यकारों में और कई ऐसे कलाकार हैं, जो इस समय नाट्य साहित्य के निर्माण में प्रशंसनीय योग दे रहे हैं। उन सभी नाटककारों के नामों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इन नाटककारों में कुछ ऐसे कलाकार हैं, जिन्होंने एकांकी नाटक-रचना के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। अतः हम एकांकी स्तंभ में ही उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालेंगे।

६

एकांकी

विषय सूची

- १—एकांकी का जन्म और उसका विकास ६८१
 (अ) संस्कृत एकांकी कला-वैदिक काल, (आ)—एकांकी नाटक और भरतमुनि,
 (इ) संस्कृत में एकांकी के जन्म का कारण, (ई) संस्कृत में एकांकी के भेद,
 (उ) छोटरेजी में एकांकी कला ।
- २—एकांकी और उसके तत्त्व ६८५
 (अ) हिन्दी में एकांकी नाटक, (ए) एकांकी नाटकों के प्रकार के कारण,
 (ऐ) एकांकी क्या है ? (ओ) एकांकी के तत्त्व ।
- ३—हिन्दी में एकांकी ६९९
 (अ) हिन्दी एकांकी की प्राचीन कहानों, (आ) हिन्दी के प्राचीन एकांकी का स्वरूप, (आः) बैलू की दृष्टि से हिन्दी के एकांकी, (इ) टेक जीक की दृष्टि से हिन्दी के एकांकी, (इः) विशय की दृष्टि से हिन्दी के एकांकी, (ग) बादों की दृष्टि से हिन्दी के एकांकी ।
- ४—हिन्दी एकांकी—भारतेन्दु काल ६९५
 (ग) भारतेन्दुकाल-मुख्य प्रवृत्तियाँ, (घ) भारतेन्दु और उनके अनुकर्त्ता,
 (ङ) भारतेन्दु इतिवचन्द्र और एकांकी ।
- ५—हिन्दी एकांकी—प्रसाद युग ७०२
 (च) प्रसाद काल-पूर्वादि, (छ) स्वर्गीय कवशंकर प्रसाद, (ज) उत्तरादि काल,
 (झ) डा० रामकुमार वर्मा, (ञ) वर्मा जी के नाटकों पर एक प्रकाश, (ट) वर्मा जी की कला, (उ) वर्माजी के एकांकी नाटकों में नाटक के तत्त्व, (ड) सेठ मोहिन्दरदास, (ड़) सेठजी की एकांकी कला, (घ) गदगुदरदास कवशजी, (व) कवशजी की की एकांकी कला, (ष) श्री सुवनेश्वरप्रसाद, (द) श्री सुवनेश्वर की एकांकी कला ।
- ६—हिन्दी एकांकी—आधुनिक काल ७१३
 (प) आधुनिक काल-एक कलाक, (न) आधुनिक काल के कलाकार-श्री उदय-शंकर मह, (प) मह जी की एकांकी कला ।

एर्कांकी का जन्म और उसका विकास

हमारा ज्ञान का साहित्य एर्कांकी नाटकों से खींच प्रोत्त है। जिस प्रकार ज्ञान के उपन्यास जगत में छोटी छोटी कहानियों का अधिक महत्व प्राप्त स्थान है, उसी प्रकार ज्ञान के नाटक-जगत में एर्कांकी कला अपना महत्व पूर्ण स्थान रखती है। छोटी छोटी कहानियों की भाँति ही एर्कांकी कला भी जीवन के एक किसी प्रभाव पूर्ण स्थिति को स्पष्ट करती है, और उसी के द्वारा एक ही क्षण में जीवन का एक ऐसा मार्मिक चित्र उल्लिखित कर देती है, जो अधिक हृदय रोपक होता है। एर्कांकी की कला को एक ही क्षण में प्रभाव के लक्ष्यों को एकत्र करना होता है, अतः उसका काम बड़ी सरलता का होता है। वहाँ उसका काम अधिक समझता का होता है, वहाँ वह अधिक प्रभाव पूर्ण और मार्मिक भी होती है। क्योंकि उसका प्रभाव करने एक ही क्षण में उन लक्ष्यों को एकत्र करने के लिए होता है, जो हृदय को एकत्रने में बड़े लौह होते हैं। एर्कांकी कला की इस विशिष्टता ने ही आज उसे मानव हृदय के साक्षात् की स्वभाव-विवारिणी बना दिया है।

हिन्दी में ही नहीं संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में आज एर्कांकी की धून है। ऐसा लगता है, कि एर्कांकी के भीतर ऐसे लक्ष्यों की प्रचुरता है, जो मानव हृदय को स्वभावतः अधिक प्रिय होते हैं। यदि ऐसी बात न होती तो विश्व के सम्पूर्ण मानव हृदय को एर्कांकी की कला इस रूप में—एक मात्र पर विनम्र न करती। हिन्दी के क्षेत्र की भी एर्कांकी की कला ने विनम्र कर रखा है। दिनों दिन हिन्दी के क्षेत्र में उसकी माँग बढ़ती ही जा रही है, और माँग बढ़ने के कारण हिन्दी के क्षेत्र में शनैः शनैः उसका विकास बढ़ता जा रहा है। एर्कांकी की जिस कला ने हिन्दी जगत को विनम्र रखा है, उसका जन्म और विकास किस प्रकार हुआ—इस बात का ज्ञान प्राप्त करना अधिक आवश्यक है। आज हिन्दी में एर्कांकी की जो कला अपना पक्ष पसार कर उसके समान पर उद्गार मार रही है, उसके जन्म के मूल में संस्कृत और अँगरेजी के एर्कांकी नाटकों की कला है। अतः हिन्दी की एर्कांकी कला के जन्म और उसके विकास को जानने के लिए संस्कृत और अँगरेजी की एर्कांकी कलाओं के जन्म, तथा उनके विकास पर विवेकपूर्ण दृष्टि डालनी होगी।

पहले हम संस्कृत एर्कांकी नाट्यकला पर विचार करेंगे। संस्कृत के आदि कथ

में हैं। वेदों का सम्बन्ध करने से कहा चलता है, कि वैदिक काल में छोटे छोटे संकुट दलोंकी जाटों का प्रचार था, जो यसादि और धर्मिक व्यवस्था बना-वैदिक काल पर दृष्टा करते थे। यह मानक संवत्सरात्मक होते थे। इनमें केवल तीन ही बात होती थी—यजमान, सोम पिबेता, और सन्तुष्ट। यह बातों का समझ कि संकुट को दलोंकी बना का समय इन संवत्सरात्मक जाटों के हुआ है, पर यह विचार पूर्वक कहा जा सकता है, कि वैदिक काल में इस प्रकार के संवत्सरात्मक जाटों का प्रचार था। वैदिक काल के अन्तर्गत के साहित्य में भी ऐसे जाटों का अस्तित्व मिलता है। साहित्य में भी अपने अन्तर्गत राज्य में विशाल और अत्यन्त दंड से नागरिकों के मनो का उपशान्त किया है।

संस्कृत के दलोंकी जाटों का संकुट पर इतिहास अत्यन्त के समय से मिलता है। संकुट में अत्यन्त नागरिकता के प्रथम और सादि आचारों को दलोंकी जाटों करते हैं। अत्यन्त में स्वयं और उपकरण के २२ में और अत्यन्त फिर है, जिसमें बड़े होते हैं, जिसकी अत्यन्त दलोंकी जाटों के अंतर्गत की जा सकती है। उनके नाम इन प्रकार हैं—मातृ, श्व, वीर्य, मातृ, श्व, मातृ, श्व, उपकरण, वीर्य, श्व, वीर्य, और विशालिका। वे सभी स्वयं, और उपकरण के वेदों में से हैं। इनमें एक ही श्व होता है, इतिहास इनकी अत्यन्त दलोंकी जाटों में भी जा सकती है। वर्ष प्रथम अत्यन्त में ही एक प्रयोग किता था। अत्यन्त प्राप्त होने पर बड़े-बड़े इनका प्रचार की गया, और वे अत्यन्त में जा गए। संस्कृत में इन दलोंकी जाटों की भी अत्यन्त 'मातृ' के ही अंतर्गत की जाती है।

यहाँ इस बात पर भी विचार करना आवश्यक होता, कि वे भीम के कारण थे, जिन्हें अत्यन्त होकर दलोंकी बना की दृष्टि की गई। संस्कृत के अत्यन्त राज्य-संस्कृत में दलोंकी के साहित्य का अत्यन्त करने पर कहा चलता है, कि दलोंकी समय का कारण का समय भी उनकी कारणों के हुआ है, जिन कारणों के अत्यन्त का समय हुआ है। अत्यन्त और अत्यन्त की बात अत्यन्त की अत्यन्त में है। अपनी इस अत्यन्त के कारण अत्यन्त में अत्यन्त बना की दृष्टि की है। दलोंकी बना की दृष्टि के अंतर भी अत्यन्त की बड़ी अत्यन्त दिखाई देती है। अत्यन्त बड़े अत्यन्त के होते हैं, और उनके अत्यन्त में तीन-चार बड़े के समय की अत्यन्तता होती है। जाटों के अत्यन्त में अत्यन्त पापी की अत्यन्तता होती है, और विशाल अत्यन्त का एक श्व भी अत्यन्त पड़ता है। अत्यन्त में अत्यन्त अत्यन्त के अंतर्गत होते हैं, और बड़े अत्यन्त अत्यन्तों में अत्यन्त पड़ता है। अत्यन्त में दोते अंतर्गत भी हुआ करते हैं, जिसके पाप अत्यन्त का अत्यन्त करने के लिए वही अत्यन्त अत्यन्त होते हैं, और वही अत्यन्त अत्यन्त ही। अत्यन्त अत्यन्त में दलोंकी जाटों का समय देते ही अंतर्गत के अत्यन्त हुआ है। अत्यन्त अत्यन्त है, अत्यन्त के साथ ही अत्यन्त दलोंकी बना की भी बड़े हुए, अत्यन्त अत्यन्त में अत्यन्त अत्यन्त की अत्यन्त और अत्यन्त

बहुत दिनों तक प्रचार था । इसके पश्चात् धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों युग बदलता गया, एकांकी नाटकों के रूप में भी परिवर्तन होता गया । बीसवीं शताब्दी में जब नाटकों का प्रचार बढ़ा, और मनुष्यों की कार्य-व्यस्तता के कारण वे उनके लिए अनुप-युक्त प्रमाणित होने लगे, तब स्थिति और आवश्यकताओं पर दृष्टि रखते हुए आधु-निक एकांकी नाटकों की सृष्टि की गई । पहले एकांकी नाटकों में ऐतिहासिक भावों की प्रधानता होती थी । धार्मिक भावों के आधार पर भी उनका निर्माण किया जाता था । काल्पनिक कथाओं में प्रेम सम्बन्धी भावों की प्रधानता होती थी, जिनमें इत्सा, पद्म्यन्त्र, हिंसा, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या, और द्रोह इत्यादि के तत्त्व अधिक होते थे । पर इधर इंग्लैंड और विनेरो के प्रभाव से अँगरेजी के एकांकी नाटकों में नवीन परिवर्तन हुआ है । पहले वहाँ अँगरेजी के एकांकी नाटकों में भावुकता की प्रधानता होती थी, वहाँ अब अँगरेजी के एकांकी यथार्थवादी पृष्ठभूमि पर जीवन की समस्याओं को लेकर लिखे जाते हैं । आज के एकांकी नाटकों में हृदय के तत्त्वों की नहीं, बुद्धि के तत्त्वों की प्रधानता होती है । अँगरेजी के इन्हीं समस्या प्रधान बुद्धिवादी एकांकी नाटकों का हिन्दी की एकांकी कला पर भी प्रभाव पड़ा है । इन्हीं के प्रभाव वश, आज हिन्दी में भी बुद्धि तत्त्व प्रधान एकांकी नाटक लिखे जा रहे हैं, और दिनों-दिन उनका विकास भी होता जा रहा है ।

एकांकी और उसके तत्त्व

आज हिन्दी साहित्य में एकांकी नाटकों की रचना की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से प्रवृत्त है। साहित्य के अन्वयान्व खगों की नौति हो, आज एकांकी हिन्दी में एकांकी नाटकों की रचना में भी लोगों ने विशेष प्रगति की है।

नाटक हिन्दी में एकांकी नाटकों का जन्म किस प्रकार हुआ—यह विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न की लेकर लोगों ने दो प्रकार के मत निश्चित किए हैं। कुछ लोगों का मत है, कि हिन्दी साहित्य में एकांकी नाटकों का जन्म संस्कृत के द्वारा हुआ है। इसके विपरीत कुछ लोगों का कथन यह है, कि हिन्दी में एकांकी नाटकों का जन्म अँगरेजी के द्वारा हुआ है। दोनों मतों की सत्यता को साबित के लिए हमें यह देखना होगा, कि हिन्दी के एकांकी नाटक शैली, टेक्नीक, और पात्रों की योजना इत्यादि में किससे अधिक आदर्श रखते हैं—संस्कृत के एकांकी नाटकों से, या अँगरेजी के एकांकी नाटकों से। संस्कृत और अँगरेजी के एकांकी नाटकों पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तो यह देखते हैं, कि हिन्दी के एकांकी नाटक अँगरेजी के एकांकी नाटकों के अधिक निकट हैं। जिस प्रकार की शैली, कल्पना, पात्र, और टेक्नीक इत्यादि अँगरेजी के एकांकी नाटकों से मिलते हैं, उसी प्रकार की शैली, कल्पना, पात्र योजना, और टेक्नीक हिन्दी के एकांकी नाटकों में भी मिलते हैं। इसके विपरीत संस्कृत के एकांकी नाटकों से हिन्दी के एकांकी नाटक अधिक दूर दिखाई देते हैं। अतः यह कहना पड़ेगा, कि हिन्दी में एकांकी नाटकों का जन्म अँगरेजी एकांकी नाटकों के आकार पर ही हुआ है। अँगरेजी एकांकी नाटकों की शैली पर ही हिन्दी के एकांकी नाटक खिन्ने या रहे हैं। बंगला और मराठी इत्यादि भाषाओं के एकांकी नाटकों ने भी हिन्दी के एकांकी नाटकों की प्रभावित किया है।

एकांकी नाटकों का आज अधिक महत्व है। संसार की सभी भाषाओं में आज एकांकी नाटकों का प्रचार बढ़ता जा रहा है। हिन्दी साहित्य में भी दिनों दिन एकांकी एकांकी नाटकों नाटकों के क्षेत्र में उन्नति होती जा रही है। एकांकी के प्रचार नाटकों के इस प्रचार और विकास के भीतर उनका महत्व का कारण दिखा हुआ है। एकांकी नाटक जीवन की एक प्रभाव पूर्ण स्थिति या दृष्टा की ओर अपने कार्य-व्यपार की रचना करते हैं। वे जिस स्थिति या

कल की लेकर चलते हैं, उसमें ऐसे प्रभाव पूर्ण कल मिले पाते हैं, जो हृदय पर बड़ी सज्जता के साथ प्रभाव डालते हैं। एकांकी नाटकों में हृदय की प्रभाव पूर्ण भावनाओं और चित्त की आशा प्रवृत्तियों का सखीसह अनुसरण के साथ होता है। यही कारण है, कि एकांकी नाटकों में मानव-हृदय की आकांक्षित करने की अधिक शक्ति होती है। आज के मानव समाज में एकांकी नाटकों के प्रचार और प्रसार का एक और भी कारण है। आज के मनुष्य का जीवन अधिक संघर्षपूर्ण है। आज का मनुष्य पीछे जगत पर विजय प्राप्त करने की कामना में दिन रात संघर्षित रहता है। आज उसकी समस्याओं का भिन्न-तरा अधिक बढ़ गया है, और वह दिन रात उसी की पूर्ति में जुटा रहता है। कल आज उसके पास समय का अभाव है। समय का अभाव होने के कारण आज वह अपने जीवन की सम्पन्न उपरोक्त अनुभूतियों को वेत बनाता या रद्द है, कि जिससे उनके उपरोक्त में उनके समय की कमी हो। मनुष्य की इसी अभिरक्षा में साहित्य के सर्वोत्तम छोटी छोटी कहानियाँ, और एकांकी नाटकों को प्रथम दिया है। आज एकांकी नाटकों का भी अधिक प्रचार हो रहा है, उनके मूल रूप में मनुष्य की यही अभिरक्षा मिली हुई है।

एकांकी क्या है—यहाँ इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। एकांकी एक काल का होता है। किन्तु इसमें के ही एक एकांकी की परिभाषा के सम्बन्ध में एकांकी क्या है। वास्तविक ज्ञान यही मान्य कर सकते हैं। एकांकी की परिभाषा की हीन हीन ब्रह्म के लिए इसे सुलभ विचार करना होता है। एकांकी की परिभाषा के सम्बन्ध में लोगों के विभिन्न विभिन्न मत हैं। कुछ लोगों का कहना है, कि नाटक के साहित्य रूप की ही एकांकी कहते हैं। इससे निगूँठ कुछ लोग यह भी कहते हैं, कि नाटक और एकांकी में बहुत कम अंतर होता है। पर इस प्रकार के मती में कोई वास्तविकता नहीं दिखाई पड़ती, क्योंकि नाटक और एकांकी की प्रकृति पर विचार करने पर दोनों में अधिक अंतर दिखाई पड़ता है। नाटक और एकांकी के वास्तविक अन्तर के अंतर ही होता ही है, उसके सांख्यिक अन्तर और प्रकृति में भी अंतर होता है। हम जिसे नाटक कहते हैं, उसमें नाटक के सभी लक्षण पाए जाते हैं। इसके विपरीत एकांकी नाटक में नाटक के सभी लक्षण नहीं मिलते। नाटक में जीवन की पूर्ण रूप से विवेचना कम बढ़ भी जाती है। उसमें कई काल होते हैं, और हरक भी अधिक होते हैं। नाटक में जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, घटनाओं, और सर्व-व्यापारी के चित्र होते हैं। इसके विपरीत एकांकी नाटक में केवल एक ही काल होता है। इसमें जीवन की केवल एक ही समस्या प्रभाव पूर्ण बनना या नाटक पूर्ण विवेक्ति की विवेचना की जाती है। एकांकी नाटक क्या है—एक सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के मते का उल्लेख कर देना अनुचित न होता। जो अनुसंधानकर्ता कलामी एकांकी नाटकों के अन्त प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—एकांकी नाटक का सुनिश्चित एक लक्षण होता है।..... केवल एक ही घटना, परिस्थिति या समस्या प्रकट होती है।

है। वह अपनी इस प्रमाण पूर्ण कण्ट्रीब्यूशन के द्वारा अपने रचना-क्षेत्र में वर्यत होता है, और वह अपने उस उद्देश्य को पूर्ण कर लेता है, जिसके लिए उसका प्रयत्न होता है।

कण्ट्रि का एक उद्देश्य होता है—एक सत्य लेता है। कण्ट्रि का सम्पूर्ण प्रयत्न—उसकी सम्पूर्ण योजना अपने उस उद्देश्य उस सत्य के ही लिए होती है। कण्ट्रि को अपने उद्देश्य और सत्य तक पहुँचने में कई कलवाची को पार करना होता है। वास्तव के साधारणों से उनमें पार कलवाची को कुशलता प्रदान की है, जिसके नाम इस प्रकार हैं—अविद्या, अन्धकार, भ्रम सीमा, और भ्रम। अविद्या अज्ञान और भ्रम को कहते हैं। इस कलवा में कलवाकार मार्ग से सम्पूर्ण करने वाली कुशल वाली की परिचय वाद्यों को देता है, साथ ही वाद्यों के मन से विहास और विहास में अज्ञान कर देता है, जिससे उनका मन अज्ञान तक वाद्यों से दूर रहता है। अन्धकार कलवा वह है, जो अविद्या के वाद्यों वाली है। इस कलवा में विहास और भ्रमों का संघर्ष होता है। विहास विहास और भ्रमों के संघर्ष द्वारा ही इस कलवा में कण्ट्रि योजना को प्रति प्रदान की जाती है। इस कलवा की इन दृष्टियों वाद्यों की कुशल कलवा भी वह करते हैं। क्योंकि इसी कलवा में कलवाकार की कुशलता और उसकी सम्पूर्ण देखने की विहास है। इसी कलवा में वाद्यों के बीच उनके उस मार्ग की प्रतिष्ठा होती है, जिसकी प्रतिष्ठा उनके सम्पूर्ण क्षमता को साक्षीकृत करती है। अविद्या कलवा में उनके मार्ग के ही सम्पूर्ण भावों का प्रयत्न विहास होता है। इस कलवा में मन विहास और दृष्टि सम्पूर्ण वाद्यों का प्रयत्न करता है। इसके साथ ही साथ इस हीनरी कलवा में सत्य और उद्देश्य ज्ञान के लिए उनकी प्रति प्रतिष्ठा का भी पार पार जाता है। वास्तव हीनरी के दृष्टियों वाद्यों में वह हीनरी कलवा, जिसे कलवा हीनरी की कलवा कहते हैं, दो कलों में मिलती है। एक कल की एक कलवा सामाजिक, और दूसरे कल की कलवा कल कहते हैं। सामाजिक कल में भावों का उत्कर्ष दिखाना जाता है। कलवा कल का निर्माण वाद्यों के उत्कर्ष द्वारा किया जाता है। कलवा कलवा की कलवा की कलवा कहते हैं। इस कलवा में वाद्यों की सम्पूर्ण कलवाओं का विश्व विहास पूर्ण दृष्टि से सत्य ही जाता है।

कण्ट्रि के विहासों को कहते अविहास करने का कार्य वाद्यों के द्वारा होता है। कण्ट्रि में ही पार सत्य विहास रहता है, वह वाद्यों के द्वारा ही सम्पूर्ण विहास करता है। दृष्टियों वाद्यों में वाद्यों की संख्या पार का बीच से अधिक नहीं होती। पार का बीच ही पार दृष्टियों वाद्यों की सम्पूर्ण विहासों की प्रति करते हैं। दृष्टियों वाद्यों में अधिक वाद्यों की योजना करने से उनकी वाद्यों की कलवा का दृष्टि होता है। दृष्टियों वाद्यों में वाद्यों की दृष्टि ही है, अविहास भी होता है। कण्ट्रि अविहास की योजना विहास विहासों में ही जाती है। अविहास की योजना उस सत्य की जाती है, वह वा ही कण्ट्रि का कलवा कलवा की सम्पूर्ण होती है, और वा उसमें हीनरी के वाद्यों

जिस कलाकार में निरौल्लाह खानि मिलती हो अधिक होती है, वह भाषों के चरित्र-विशेष में उद्योग हो अधिक करता होता है :

संवाद और कथोपकथन का दर्जा भी अधिक उन्नत पूर्ण स्थान है । संवाद एक ऐसा उपाय है, जो दर्जाओं के लक्षण को बताता है, और उसे कथलता के निम्नतम बुनियाद है । दर्जाओं में जो विविधता, जो सीढ़र, और जो सम्बन्ध होता है, उसके विचार में संवाद का अधिक हाथ होता है । चरित्र और कथानक का विकास दर्जाओं में संवाद के ही द्वारा होता है । कथानक की कल्पनाएँ, जैसे जैसे, कालक्रम, उत्कर्ष और अवसर्ग आते हैं, संवाद के द्वारा सामने आती हैं । यही कारण है, कि विद्वानों में संवाद की दर्जाओं की शायदा और उसके मातृ की रूप में स्वीकार किया है ।

दर्जाओं का संवाद जिस प्रकार का होता चाहिए—यही यहाँ विचारणीय प्रश्न है । जिस संवाद का दर्जाओं के जीवन में उद्योग अधिक महान है, उसकी योजना में कलाकार को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । दर्जाओं के संवाद का बहुत कुछ उसकी प्रभावशालिता है । संवाद की रचना इस प्रकार करनी चाहिए, कि वह दर्जाओं और पात्रों की अपनी और खींच ले । खींच हो न ले, वरन् उन्हें अपने में रखा ले । संवाद में ऐसी शक्ति होनी चाहिए, कि वह अपने उद्देश्य और एक भाग का पूरा पूरा प्रभाव दर्जाओं के हृदय पर डाल दे । संवाद अधिक बढ़ा न होना चाहिए । जो कुछ करना हो, उसे सीधे ही दर्जाओं में प्रभाव पूर्ण रूप से करना चाहिए । भाषी की प्रवृत्त करने के लिए ऐसे दर्जाओं की चुनना चाहिए, जिनमें जोड़े हो में अधिक भाषी को प्रवृत्त करने की शक्ति हो । पात्रों और चरित्र-सहित का होना शक्ति आवश्यक है । संवाद का एक एक शब्द लक्ष्य हो, और भाषी का चित्र अभिन्न करता हो । संवाद योजना में कथानक और चरित्र के विकास पर पूर्ण रूप से ध्यान देना चाहिए । संवाद योजना का प्रत्येक शब्द चरित्र और कथानक पर अपनी छाप लगाता हो, तथा दोनों के विकास के लिए भावुर बढ़ाकर उद्योग करता हो । संवाद योजना सज्ज और स्पष्ट भी होनी चाहिए ।

संवाद योजना की नीति ऐसी का भी दर्जाओं के जीवन में अधिक महान है । ऐसी ही वह शक्त है, जिसके द्वारा कलाकार भाषी को व्यक्त करता है । उद्योग ही यही, वरन् ऐसी के भीतर ही कथानक और चरित्र की कथलता छिपी रहती है । ऐसी को देख करने ही हम वह जान सकते हैं, कि जिस कलाकार में विद्वानों समझता है, पर ऐसी का कोई रूप विरिक्त नहीं किया या उभरा । कर्तृनि-जिह्वे सेलक होती है, तुच्छ तुच्छ शक्ति होने के कारण उसकी अपनी कथल-कथन होती भी होती है । फिर जो विद्वानों ने दर्जाओं की शीर्षों की हो क्यों के विचार किया है—विचार की शीर्षों, और उद्घाटन की शीर्षों । विचार की शीर्षों यह है, जिसमें पटना और चरित्र की प्रभावशाली होती है । इस शीर्षों के मातृ में

यह भी और बहिनो का विवाह अपनी चरम सीमा तक पहुँचता है। दूसरी हीली में, जिसे उद्धारन की हीली कहते हैं, बिनारी की प्रधानता होती है। इस हीली के द्वारा बिनारी की बहिर्मुखी प्रकृति है, और उनका उद्धारन होता है। यह हीली व्यापकमान्य होती है। इन दोनों हीलियों को ही आधार मान कर हिन्दी में ही उद्धार के एखांकी गानों की शृंखला हुई है, जिनमें एक को 'निष्कामान्त', और दूसरे को 'संघर्षात्मक' कह सकते हैं। निष्कामान्त एखांकी में है, जिनमें यज्ञा कई प्रकार की हो सकती हैं, और साधनों का संघर्ष करता हुई साधन की ओर बढ़ती है, और गानों तथा गानों की विराट् श्रेणीय होती है। वेद वेदिकप्रदात और गान-उद्धारन वर्ग के एखांकी गानक इन्हीं श्रेणियों के संलग्न होते हैं। संघर्षात्मक गानक में है, जिनमें पापों का दण्ड होता है। जो सुन्दरकर के एखांकी गानों की प्रकृति इस हीली में की जा सकती है।

एखांकी का अन्तिम रूप उद्देश्य है। उद्देश्य अपनी अपनी शक्ति के अनुसार भी हो सकते हैं। आधारका रूप से वेद प्रेम, वेद शक्ति, मान्यता, बहिर्मुखिता, काम विषय-सम्बन्ध, विश्व-सम्बन्ध, और जीवन की समस्तताओं में सम्मिलित होने वाले उद्देश्य प्रकृति सम्बन्ध होते हैं। उद्देश्य वेद होना चाहिये, जिसमें समाज, वेद, और जीवन की शक्ति प्राप्त हो। यहाँ तक हो सके, उद्देश्य की आधारों की ही प्रकृति पर विचार करना चाहिये। यदि उद्देश्य में यथार्थता की प्रकृति हो तो उसे इस प्रकार प्रकृति करना चाहिये, जिससे समाज और जीवन में सुखता न उत्पन्न हो। अन्तःकार का काम है अपनी एखांकी के द्वारा मान्य की प्रकृति की प्रकृति बनाना, और उनके बहिर्मुखी उद्धार उद्धार। अन्तःकार की अपनी जीवन के इस प्रकृति, साधन की ही मान्यता तक कर अपने गानों का उद्देश्य को निर्दिष्ट करना चाहिये।

हिन्दी में एकांकी

आज हिन्दी-साहित्य में एकांकी की सफल रचना हो रही है। आज एकांकी के क्षेत्र में ऐसे कलाकार जागे जाते हैं, जिनकी रचनाओं में विरघ-साहित्य के ठाव प्रचुर हिन्दी एकांकी को रूप में मिलते हैं। आज हिन्दी में कितने प्रकार की एकांकी प्राचीन कहानी की रचना हो रही है, और उनमें विकास के कितने तत्व मिलते हैं—इस पर प्रकाश डालने के पूर्व हमें यह जान लेना आवश्यक है, कि हिन्दी में एकांकी नाटकों का जन्म कब से हुआ है। एकांकी नाटकों के जन्म की कहानी की जानने के लिए हमें भारतेन्दु युग की स्थितियों पर ध्यान देना होगा। भारतेन्दु युग के पूर्व किस प्रकार नई चेतनाएँ भारत में फैलीं, किस प्रकार समाज के जीवन में जागरूकता का संचार हुआ, और किस प्रकार छँवरेकी शिक्षा का प्रभाव भारतीय जीवन पर पड़ा—इन बातों पर भी ध्यान देना होगा। विद्वज्जो अध्यापों ने कई बार इन सतों पर मज़ी भाँति प्रकाश डाला था। कुछ है। यह भी बताया जा चुका है, कि छँवरेकी साहित्य का सर्व प्रथम प्रभाव बँगला साहित्य पर पड़ा था। सर्व प्रथम बँगला साहित्य में ही ऐसी रचनाओं की अभिव्यक्ति हुई थी, जिन पर छँवरेकी साहित्य का प्रभाव पड़ा था। एकांकी नाटकों की सृष्टि भी सर्व प्रथम बँगला में ही हुई थी। बँगला के ही नाटकों की देख कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी के मन में हिन्दी में भी एकांकी नाटकों के निर्माण की प्रेरणा उत्पन्न हुई थी। भारतेन्दु बाबू ने बँगला और छँवरेकी के नाटकों का अध्ययन भी किया था। किन्तु भारतेन्दु बाबू ने जिन एकांकी नाटकों की रचना की, उनमें उन्होंने संस्कृत की नाट्य-परम्परा का ही पालन किया है। भारतेन्दुजी के पश्चात् उनके युग के सभी लेखकों ने भी संस्कृत की प्राचीन नाट्य-परम्परा का ही पालन किया है। पर इस बात से अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि नये दृष्ट के एकांकी नाटकों का जन्म भारतेन्दु युग में ही हो चुका था। भारतेन्दु और उनके अनुयायियों की रचनाओं में कहीं कहीं एकांकी की नवीन शैली की झलक देखने को मिलती है।

भारतेन्दुजी के युग के पश्चात् यह युग हमारे सामने आता है, जिसे द्वितीय युग कहते हैं। द्वितीय युग का प्रारम्भ होने के पूर्व समाज और जीवन में नई चेतनाएँ व्याप्त हो उठी थीं। राष्ट्रीय समस्याओं से देश का कोला-कोला आन्दोलित

हो गया था। लैंगिक शिक्षा और साहित्य के प्रचार के क्षेत्र के प्रत्येक क्षेत्र में नई-नई मान्यताएँ बनने लगी थीं। लैंगिक शिक्षा और साहित्य के प्रचार के कारण हिन्दी के राज्य साहित्य के क्षेत्र में भी नई मान्यताओं ने जन्म पाया था। नवीन मान्यताओं के प्रतिकूल संस्था ही हिन्दी में साधुनिक एकांकी नाटकों की सृष्टि होने लगी। सर्व प्रथम श्री श्री- श्री- श्री रामायण, श्री चण्डिका उदार, श्री रामचंद्र विद्यापी, श्री सुदर्शन, श्री उषा, और श्री हरिश्चंद्र चर्मा इत्यादि लेखकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इसके पश्चात् रामचंद्र चण्डिका, श्री, श्री सुन्दरेश्वर, और श्री लाल्लू इत्यादि कलाकारों ने एकांकी के क्षेत्र में बड़ा हुन भी रचना की। एकांकी का नही पुनः राज्य हिन्दी साहित्य में परम्परा और प्रविष्ट हो रहा है।

हिन्दी एकांकी के काम और विकास का जो चित्र उभर दिना गया है, उसके बराबर कहा है, कि हिन्दी एकांकी का काम भारतीय के जीवन में हुआ था। हिन्दी एकांकी के प्राचीन एकांकी को काम देने का बीच भारतीय बच्चे की ही एकांकी का अन्तर्गत है। भारतीय बच्चे ने फिर हिन्दी एकांकी को काम दिया था, उनके अन्तर्गत ही उभर उभर चलन-विचल हुआ। हिन्दी दुम के अन्तर्गत भारत में वयसि हिन्दी के साहित्यिक एकांकी का काम हो हुआ था, और उसके प्रति भी उल्लेख हो चुके थी, पर फिर भी उस पर अन्तर्गत की बात थी। भारतीय बच्चे, और हिन्दी बच्चे के उस समय तक, जब तक हिन्दी के एकांकी के साहित्यिकता का रूप नहीं बनाया गया था, हिन्दी के एकांकी का अन्तर्गत बना था—वही ही बात पर उभरता चलता है। हिन्दी का प्राचीन एकांकी बहुत छोटे साकार का होता था। उनके बच्चे की ही अन्तर्गत होती थी। उल्लेख विषय का जो चित्र उभर होता था, या ऐतिहासिक और या वैज्ञानिक। दुखार की मानता उनमें बहुत कम के होती थी। कला की दृष्टि के वह प्राचीन रूप ही होता था। न उनके एक-दोनों की अन्तर्गत होती थी, और न इनकी का ही विकास था। उनके अन्तर्गत रूप, नानी, और नानी-बच्चे तथा अन्तर्गत का उनमें विकास होता था। जीवन की अन्तर्गत की उभरता को ही अन्तर्गत न था। प्राचीन साहित्य की अन्तर्गत अन्तर्गत होता था। न उनके प्रति होती थी, और न जीवन। अन्तर्गत विकास पर भी बहुत कम अन्तर्गत दिना जाता था, प्राचीन अन्तर्गत 'रस' परियोजना की ओर केन्द्रित रहता था। प्राचीन अन्तर्गत अन्तर्गत में अधिक अन्तर्गत का अन्तर्गत अन्तर्गत था। प्राचीन की बात अन्तर्गत में अन्तर्गत और अन्तर्गत की अन्तर्गतता पर बहुत कम अन्तर्गत दिना जाता था। अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत में। अन्तर्गत की भी अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत थी। अन्तर्गत के अन्तर्गत में विकास था।

आधुनिक एकांकी का समय इसके विस्तृत विभिन्न है। आधुनिक एकांकी जीवन के हरिक विस्तृत है। आधुनिक एकांकी का एक मात्र लक्ष्य जीवन की सच्चा-

शैली की दृष्टि से हिन्दी के दर्शनी स्थायी का विषय है। भाषा, शैली, और विधान में की आधुनिक दर्शनी प्राचीन दर्शनी से सर्वथा भिन्न है। वाच, चरित्र, संवाद, कथा इत्यादि क्षेत्रों में आधुनिक दर्शनी ने एक नया सफल प्राप्त किया है। जब हम हिन्दी के आधुनिक दर्शनी की कई दृष्टियों से समझने की कोश करते हैं, तब प्रथम हम शैली की दृष्टि से आधुनिक दर्शनी को समझते हैं। शैली की दृष्टि से हिन्दी का दर्शनी सार्वभौमिक है, जिसके नाम एक प्रकार हैं—एक शैली के दर्शनी, समीप शैली के दर्शनी, संवादात्मक शैली के दर्शनी, कल्पनात्मक शैली के दर्शनी, भाषात्मक शैली के दर्शनी, मौखिक शैली के दर्शनी, प्रदर्शनात्मक शैली के दर्शनी, आलोचनात्मक शैली के दर्शनी, समस्त विधान शैली के दर्शनी, चरित्र-विशेष शैली के दर्शनी, संवाद-विशेष शैली के दर्शनी, और सार्वभौम शैली के दर्शनी। सार्वभौम शैली के दर्शनी से है, जिसके अन्तर्गत ही प्रथम किया जाता है, शिष्टता, कि आचार्य्य होता है। इस शैली के नाटकों में सार्वभौम और सार्वभौम पर अधिक मान दिया जाता है। सार्वभौम आचार्य्य यहाँ का 'सर्वभौम' इसी शैली के अन्तर्गत आता है। समीप शैली के नाटकों से है, जिसके विधानों की समीपता रहती है। आलोचनात्मक शैली पर इसके पर, और विधानात्मक सार्वभौम इसी शैली के अन्तर्गत आते हैं। आचार्य्य में 'सर्वभौम' की रचना इसी शैली में की है। संवादात्मक शैली के दर्शनी नाटकों से है, जिसमें हमने की कथा के सार्वभौम कथन की भाषा दूसरी ही निभाती है। इस शैली के नाटकों में संवाद, सार्वभौम, और वाच, वैधान भी होता है। कल्पनात्मक में 'कल्पना' की रचना इसी शैली में की है। भाषा-त्मक शैली के दर्शनी नाटकों की प्रकृति भी कहते हैं। इन नाटकों में 'भाषा और विधान' की प्रधानता रहती है। जो सार्वभौम-सर्वभौम यहाँ का 'सर्वभौम कथा आचार्य्य' इसी शैली में किया गया है। भाषात्मक शैली के दर्शनी नाटकों में सार्वभौम और आधुनिक की प्रधानता होती है। इस शैली के दर्शनी नाटकों में वाच की अधिकता होती है। जो अन्तर्गत आता है 'विधानात्मक' इसी शैली में किया गया है। मौखिक शैली के दर्शनी मौखिक होते हैं, जो सार्वभौम और आधुनिक की प्रधानता मान कर लिखे जाते हैं। जो अन्तर्गत आता है 'मूल्य संवाद' की रचना इसी शैली में की है। आलोचनात्मक शैली के नाटकों से है, जिसमें सार्वभौम और आधुनिक की प्रधानता मान कर अन्तर्गत की पूर्ण रूप दिया जाता है। 'प्रदर्शनी' का एक दृष्ट इसी शैली के अन्तर्गत आता है। आलोचनात्मक शैली के दर्शनी नाटकों में सार्वभौम की आलोचना होती है। इस शैली के नाटकों सार्वभौम रूप से सार्वभौम आलोचनाओं की और संकेत करते हैं, और सर्वभौम सार्वभौम की ही अधिकता में सार्वभौम सार्वभौम आते हैं। इस शैली के नाटकों की ही यहाँ में विधान किया गया है—विधानात्मक, और आधुनिक। विधानात्मक शैली के नाटकों में सर्व और आधुनिक शैली के नाटकों में आधुनिक की प्रधानता होती है। सार्वभौम सार्वभौम शैली के दर्शनी नाटकों

में वर्तमान जीवन की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया जाता है। साथ ही साथ उन पर विचारों का प्रकाश भी डाला जाता है। आधुनिक तरीकों के एकंदी नाटकों में किसी 'आदर्श' जीवन का चित्रण किया जाता है। इस प्रकार के एकंदी नाटक परम्परागत होते हैं। हेन्रि मोरियसदासजी ने अविचार विमर्श की रचना इसी तरीके में की है। संसारवाचक होती के एकंदी नाटक में हैं, जिनमें समाज की संसार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे—हेन्रि मोरियसदासजी का 'अनुभव'। परन्तु प्रथम होती के एकंदी नाटकों में परम्पराओं के लक्षणों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार के नाटकों के तीन रूप मिलते हैं—तथ्य मूलक, आदर्श मूलक, और व्याख्या मूलक। तथ्य मूलक में ऐसी और तुनी हुई बातों की ही सामने प्रस्तुत किया जाता है। आदर्श मूलक में 'आदर्श' चित्रण की ही ओर ध्यान दिया जाता है। वह आदर्श कई प्रकार का होता है, जिसका समाज इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाज, और चरित्र इत्यादि के होता है। व्याख्या मूलक में वैचारिक या ऐतिहासिक समस्याओं का चित्रण सामाजिक दृष्टिकोण से किया जाता है, जिसमें व्याख्या की प्रमुखता रहती है।

रूप, रंग, और तकनीक की दृष्टि से भी हिन्दी में कई प्रकार के एकंदी पाये जाते हैं। इस दृष्टि से हम इन हिन्दी के एकंदी पर विचार करते हैं, जो हम उन्हें ऐकनिक की तीन वर्गों में बाँटा हुआ पाते हैं, जिनके नाम इस प्रकार दृष्टि से हिन्दी हैं—वास्तविक एकंदी, सीधे प्रथम एकंदी, काल्पनिक के एकंदी एकंदी, एकंदी वैचारिक और उपलब्धीय एकंदी। वास्तविक एकंदी उन्हें कहते हैं, जिनमें विभिन्न तरीकों की एक कथा रूप में सुँबा गया हो। जो काल में वास्तव हो, और जिसका अर्थ ही एक ही दिया की ओर हो। जैसे—एकंदी का 'सुर सुन इस दृष्टि की दृष्टि।' सीधे प्रथम एकंदी नाटकों में सीधे पात्र की प्रस्तुत होती है। वह सीधे पात्र मूल समाज के प्रथम वर्गों के काल्पनिक होता है, और कथा की प्रस्तुत करने की दृष्टि से एक 'केंद्र बिन्दु' के रूप में स्थापित किया जाता है। जैसे—जोसेफ सायमर का 'सायमर जीवन।' काल्पनिक एकंदी नाटक में हैं, जो वास्तव और उसी समाजों से सम्बन्ध रखते हैं। सायमर सायमर वर्गों का 'सायमर' इसी में ही का एकंदी नाटक है। एकंदी वैचारिक उन्हें कहते हैं, जिसमें किसी बड़े या तुलने नाटक की एकंदी के रूप में परिवर्तित किया जाता है। उपलब्धीय एकंदी उन्हें कहते हैं, जिनमें उपलब्धी के कारण प्रेरणा होती है।

विषय की दृष्टि से भी हिन्दी में कई प्रकार के एकंदी पाये जाते हैं। विषय की दृष्टि से हिन्दी के एकंदी नाटकों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—वैचारिक, ऐतिहासिक, समाजिक, राजनीतिक, काल्पनिक, दृष्टान्तक, और काल्पनिक। वैचारिक एकंदी नाटक में हैं, जिनकी रचना तुलने की कथाओं

के आधार पर की जाती है। इस प्रकार की रचनाओं में प्राचीन कल्पना, और संस्कृति के उत्कृष्ट चित्र होते हैं। जैसे—आमर रामकुमार वर्मा का रामायणी गीता। ऐतिहासिक नाटकों के लिए कथानक इतिहास के पृष्ठों से लिया जाता है। इन कथानकों में भूत-काल के यौग्य चुनकर चित्र होते हैं। बा० रामकुमार वर्मा का 'विचारों' इसी श्रेणी का एकानकी है। सांस्कृतिक एकानकी गारुडी में नमः की कल्पनाओं या कथानकों के चित्र होते हैं। जैसे—श्री जयप्रकाश मल्ल का 'जो का हृदय'। सांस्कृतिक एकानकी गारुडी में देखे चित्रों का चित्रण किया जाता है, जिसका सम्बन्ध वर्तमान सांस्कृतिक जीवन, स्थिति और विचारों से होता है। इस प्रकार के एकानकी गारुडी में कला का अभाव और प्रचार-प्रसार की प्रभावशाली होती है। सांस्कृतिक नाटकों की रचना सांस्कृतिक भावों की दृष्टान्त पर की जाती है। बा० रामकुमार वर्मा ने इस प्रकार के नाटकों में अधिक कल्पना प्रयुक्त की है। वर्तमानक एकानकी गारुडी में दैनिक जीवन की व्यवस्था चरनाओं के चित्र होते हैं। मनो-वैज्ञानिक नाटकों में विचारों की प्रभावशाली होती है। इन नाटकों में विचारों का दिग्दर्शन मनोवैज्ञानिक आधार पर बताया जाता है।

'बादों' की श्रेणी के दो हिन्दी एकानकी के कई वर्षों के लिए का सकते हैं। इन वर्षों में मुख्य रूप से हैं—आदर्शवादी एकानकी, न्यायवादी एकानकी, समाजवादी एकानकी, 'बादों' की श्रेणी में आदर्शवादी एकानकी, साम्यवादी एकानकी, और आदर्श के हिन्दी के बादों एकानकी। आदर्शवादी एकानकी उन्हें कहते हैं, आदर्श की प्रचार का होता है। इस की और दृष्टि के माय के प्रेरित होता है, और दूसरा दृष्टि की कल्पना के प्रेरित होता है। प्रचार प्रसार के आदर्श का केन्द्र-बिन्दु किसी ऐतिहासिक या सांस्कृतिक महापुरुष का जीवन प्रेरित होता है, या किसी ऐसे व्यक्ति का के भी जीवन की भी आधार बताया जाता है, जिसने दुष्टों का सामोकाई किया। मिलाता है, और द्वितीय प्रकार का आदर्श कथा और जीवन की विविध समस्याओं की लेकर खड़ा किया जाता है। इस आदर्श में मनुष्य की कल्पनाओं की अवस्था और अनुपस्थित करने की शक्ति अवशिष्ट रहती है। वेद-वेदिककालों के एकानकी गारुडी में प्रभाव, और दो श्रेणीय श्रेणी के एकानकी गारुडी में द्वितीय प्रकार के आदर्श की दृष्टि है। न्यायवादी एकानकी के हैं, जिसमें जीवन की सामाजिक स्थिति, दुर्बलताओं, और कुप्रथाओं के चित्रण के भी काय करते हैं। इन गारुडी में आदर्श, अन्धकार और कला के लिए कोई स्थान नहीं रहता। इन गारुडी का एक मात्र जीवन की दुर्बलताओं और कुप्रथाओं के विरोध की कल्पना अवशिष्ट रहता होता है। न्यायवादी एकानकी प्रारंभ प्रकार के होते हैं—आदर्शवादी एकानकी, मनोवैज्ञानिककालक न्यायवादी, शक्ति न्यायवादी, और बुद्धिवादी न्यायवादी। आदर्शवादी एकानकी उन्हें कहते हैं, जिसमें जीवन के विरोध की और से आदर्श का माय होता है। मनोवैज्ञानिककालक न्यायवादी

बादी नाटकों में कार्य-कारण की परम्पराओं का उद्घाटन किया जाता है। अति यथार्थवादी नाटक उन्हें कहते हैं, जिनमें मात्र चित्र होते हैं। बुद्धिवादी एकांकी नाटकों में सामाजिक रुढ़ियों पर कलात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला जाता है। प्रगतिवादी एकांकी नाटकों का सम्बन्ध मार्क्सवाद से है। इन नाटकों में कार्य की आधार मान कर गरीबी, मजदूरी, शोषण और दलितों के जीवन-चित्रों की सामने उभरित किया जाता है। कलावादी एकांकी नाटकों में आनन्द, सौन्दर्य, और शाश्वत भावों की प्रधानता होती है। डाक्टर रामकुमार वर्मा का 'आदल' इसी कोटि का एकांकी नाटक है। कुछ लोग 'कलावाद' से 'आदर्श' और यथार्थवाद का पुट भी मानते हैं। डाक्टर रामकुमार वर्मा के 'पुष्पोत्पत्ति की शैली' में कला, और आदर्शवाद का अभिव्यक्त है। इसी प्रकार उनके 'आदिमित्र' में कला, और यथार्थ का सम्बन्ध हुआ है। अभिव्यञ्जनवादी एकांकी नाटक कलावादी नाटकों की ही श्रेणी में आते हैं। अभिव्यञ्जनवादी नाटकों में भी सौन्दर्य के भावों की प्रधानता होती है। कलावादी नाटकों में सौन्दर्य शब्द, शैली, और कार्य में सन्तुलित न होकर केवल शब्दों द्वारा ही अभिव्यक्त होता है। पर अभिव्यञ्जनवादी नाटकों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति शब्द, शैली, और रूप के ही द्वारा होती है। प्रभाववादी एकांकी नाटकों में 'कला' के प्रभाव की प्रमत्ता दिखाई जाती है। इस प्रकार के नाटकों में मानव आकृति और प्रकृति के सम्बन्ध रखने वाली किसी भी विश्व वस्तु का अधिक प्रभाव मार्मिक रूप से दिखाया जाता है। इस प्रकार के एकांकी नाटकों में कार्य की व्यञ्जकता के स्थान पर प्रभाव की अभिव्यक्त की ही प्रधानता रहती है। श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सुखम विदी' में प्रभाववादी भालक मिलती है।

हिन्दी एकांकी—भारतेन्दु काल

हिन्दी एकांकी के इतिहास को हम तीन कालों में विभक्त करते हैं—भारतेन्दु काल, प्रसाद काल और आधुनिक काल। हिन्दी एकांकी के जन्मदाता भारतेन्दुजी भारतेन्दु काल— ही हैं। अतः हिन्दी एकांकी के जीवन का प्रारम्भ मुख्य प्रवृत्तियों भारतेन्दु काल से ही माना जाता है। भारतेन्दु काल सं० १६६० से प्रारम्भ होकर संवत् १९८४ तक चलता है। इस काल में हिन्दी एकांकी ने जन्म लेकर अरुणा चरण विकास की ओर बढ़ाया है। इस काल के मुख्य कलाकार स्वयं भारतेन्दुजी ही हैं। इस काल की रचनाओं की अब हम समीक्षा करते हैं, जो उनकी तीन चरणों पाते हैं—राष्ट्रीय नैतिक विचार धारा, सामाजिक यथार्थवादी धारा, और पौराणिक आदर्शवादी धारा।

राष्ट्रीय नैतिक विचार धारा के अंतर्गत हम उन एकांकी रचनाओं को लेते हैं, जिनमें राष्ट्रीय भावनाओं की वादृति के लिए प्रयत्न किया गया है, अथवा ऐसे विषयों को एकांकी का रूप दिया गया है, जो राष्ट्रीयता की दृष्टि से जीवन और जाति के प्रतीक समझे जाते हैं। भारतेन्दुजी इस धारा के उदाहरण हैं। उनकी 'भारत दुर्दशा' और 'भारत जननी' इस वर्ग की सफल रचना है। श्री रामचरण गोस्वामी की 'भारत माता', और श्री रामकृष्ण वर्मा के 'भारतेश्वर' की भी हम इस भाव धारा की सफल कृति कह सकते हैं। इसी भाव धारा के अंतर्गत हम उन रचनाओं को भी ले सकते हैं, जिनमें इतिहास के गौरव पूर्ण कथानकों के द्वारा देश के जीवन में नीरता, ग्राह्य, और शक्ति को उद्बुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। भारतेन्दुजी की नीलदेवी, काशीराम खत्री के तीन ऐतिहासिक रूपक, श्री रामकृष्ण वर्मा की 'पद्मावती' और 'वीर नारी' इत्यादि रचनाएँ इसी श्रेणी की हैं। इन रचनाओं में ऐतिहासिक कथाओं की छोट से देश के मोतर देश के प्रति प्रेम उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।

सामाजिक यथार्थवादी भाव धारा के अंतर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जिनमें सामाजिक कदियों और कुसूक्तियों के चित्र अंकित किए गए हैं। इस भाव धारा के भी उदाहरण भारतेन्दुजी हैं। 'भारत दुर्दशा' इस भाव-धारा की उनकी श्रेष्ठ कृति है। सं० प्रतापनारायण मिश्र का कलिकौतुक, काशीनाथ खत्री का काल विधवा संताप, अविनाश भाव का कलियुग और श्री, तुषा किशोरीलाल गोस्वामी की 'भारत चंदे'

भाषेन्दु काव्य के दर्शनों गद्यकों को इस तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—
 मौलिक, अनुवादित, और प्रदत्त । जैमिनीयों, यजुर्वे, भारत दुर्योध, और
 मोक्षदेवी उनकी मौलिक कृतियाँ हैं । 'भारत काली' जनक विजय और रावण
 विजय उनकी अनुवादित रचनाएँ हैं । 'कंधेर गरी' और 'वैदिकी दित्त दित्त न
 मन्ति' और विजय विजयमय उनकी प्रदत्त हैं । जैमिनीयों की रचना में गद्य की
 भाषा की भाषा मिलती है । इसमें जीवन के सामाजिक विषयों को उपस्थित करने का
 प्रयास किया गया है । इसमें सुबक सुबक भाव दृश्य हैं । इसकी रचना संस्कृत
 की प्राचीन भाषा के आधार पर हुई है । 'यजुर्वे' जैमिनीयसंस्कृत है । इसमें
 विजय काव्य के संस्कृत विषयों को मिलते हैं । 'भारत दुर्योध' भाषा पठक है,
 हिन्दी भाषा प्राचीन भाषा के अनुसार हुई है । इसमें पद्यमयिक कवयिताओं
 के विषय मिलते हैं । मोक्षदेवी गीत काल है, इस पर कंधेकी को कला की छाप है ।
 इसमें जीवन, देव अथवा, और मुक्तिपथ के विषय मिलते हैं ।

भारत काली वैजय के भारत काल का भाषात्मक है । इसमें भारत की दुर्य-
 धाकी के विषय हैं, साथ ही देव में भी भाषा के भी विषय इसमें मिलते हैं । इस
 पर कंधेकी की दर्शनों कला की छाप है । जनक विजय की रचना संस्कृत के कवि
 जीवन के एक भाषीय के आधार पर हुई है । यद्यपि यह अनुवादित है, पर इसमें
 मोक्षदेवी गीत की मौलिक भाषा है । यहाँ को इसमें गद्यपद्य है । यहाँ में
 कंधे का अर्थ प्राचीन है, जो मौलिक भाषा है । यहाँ यहाँ की संस्कृत
 गद्य का है । यहाँ की भाषा इसमें भी मौलिक है । 'भारत दुर्योध' काल
 है, जो 'भारत कालीय' के लिये काल का अनुवाद है । इसमें यहाँ की
 भाषा है । भाषा में यहाँ के भाषिक और भाषाओं के भी कुछ कुछ भाषा
 मिलते हैं ।

'कंधेर गरी' प्रदत्त है । इसमें कुछ का दृश्य है । इसमें जीवन के मौलिक
 विषय यहाँ न है । कला भाषा है, कि भाषेन्दुकी ने इसकी रचना एक दिन में की
 की । 'विजय विजयमय' की कला ऐतिहासिक है, जिसे काल रत्न के लिये में कला
 गया है । इसमें केवल एक भाषा संस्कृत है । यहाँ भाषा भाषा भाषा
 गद्यपद्य का भाषा और उसके आधार को काले उपस्थित कला है । 'वैदिकी
 दित्त दित्त न मन्ति' में गीत भाषा, भाषाभाषा, और यहाँ भाषा की कृतियों के विषय
 मिलते हैं ।

भाषेन्दुकी के दर्शनों गद्यकों का कवय करने में भाषा होता है, कि उन्होंने
 अपने गद्यों में तीन भाषाओं की रचना की है—संस्कृत की प्राचीन परम्परा का
 'कंधे', कंधेकी की भाषाभाषा का 'कंधे', और कंधेकी भाषाभाषा के प्रभावित
 भाषा की भाषाभाषा का 'कंधे' । उनके गद्यों और दर्शनों गद्यों में कंधे
 भाषाओं का भाषा भाषा है । भाषेन्दुकी के काल में 'दर्शनों' भाषा की भी है

स्वतन्त्र बस्तु नहीं थी। उन दिनों संस्कृत का 'रूपक' ही एकाली का पर्यायवाची था। ज्ञाता उन दिनों एकाली के स्थान पर 'रूपकों' की ही रचना शुरू है। भारतेन्दुजी के पश्चात् उनके अनुयायियों ने भी उसी के पन्थ का अनुसरण किया है। भारतेन्दुजी के पश्चात् एकाली के क्षेत्र में जिन रचनाओं का निर्माण हुआ है, उनमें भी एक आदर्श की ही रचा की गई है।

हिन्दी एकांकी—प्रसाद युग

प्रसाद काल सं० १९०५ से प्रारम्भ होता है। प्रसाद काल को हम दो वर्गों में विभक्त करते हैं—प्रसाद काल पूर्वार्द्ध, और प्रसाद काल उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध के अन्त-

प्रसादकाल—पूर्वार्द्ध गीत हम उन रचनाओं को मानते हैं, जो द्विवेदी काल में हुई थीं। एकांकी के विकास की दृष्टि से हम द्विवेदी काल की रचनाओं को प्रसाद काल में ही मानने के लिए विवश हैं; क्योंकि द्विवेदी काल की रचनाओं का अन्तर्ना कोई स्पष्टान्व साहित्यिक नहीं है। एकांकी के विकास की दृष्टि से इस काल को हम श्रीदाम का काल कहेंगे। क्योंकि इस काल में एकांकी की विवेक गति नहीं प्राप्त हो सकी है। भारतेन्दुजी ने एकांकी का भी बीड़ा लगाया था, और जिसका वास्तव-पोषक उनके सहयोगियों के द्वारा हुआ था, उसे इस काल में विशेष प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हो सका। इसके तीन मुख्य कारण थे—एक तो यह, कि अभिनव कला का प्रचार कम था, दूसरा यह, कि रंग मंचों का अभाव था, और तीसरा यह, कि पछे-छिछे लोगों की अभिनव की ओर से आस्था थी। परन्तु एकांकी नाटकों का आर्थिक प्रचयन न हो सका। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं, कि इस काल में एकांकी नाटकों की रचना बिलकुल हुई ही नहीं। भारतेन्दु काल में एकांकी नाटक की भी धारा निकली थी, उसका मन्द प्रवाह इस काल में भी प्रवाहित होता रहा। इस काल के एकांकी निर्माताओं में स्वर्गीय जयशङ्कर प्रसाद, श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री जी० पी० श्री वास्तव, श्री लुदर्शन, श्री हरिशङ्कर शर्मा, श्री कल्याणचन्द्र चारुधर, और श्री मेनचन्द्रजी शर्मादि का महत्त्व पूर्ण स्थान है।

यह सच है, कि इस काल में हिन्दी के एकांकी को विशेष प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हो सका, पर उनके साथ ही साथ यह भी सच है, कि इस काल में ही हिन्दी एकांकी को यह वरदान प्राप्त हुआ, जिसकी शक्ति से वह आगे बढ़ सका, और उन्नति की सीढ़ियों पर चढ़ने में सफल हो सका; दूसरे शब्दों में इसी युग में प्रसादजी का आधि-पत्य हुआ है, जो स्वयं इस युग के उच्चाधिकार कहे जाते हैं। इसी युग में प्रसादजी की वे रचनाएँ सामने प्रस्तुत हुईं, जिनमें प्रथम बार एकांकी की नई कला का दर्शन हुआ। प्रसादजी के पूर्व एकांकी की कला का कोई निश्चित और स्थिर स्वरूप न था। कितने कलाकारों ने, सबका अपना पृथक्-पृथक् मार्ग था। सर्व प्रथम प्रसादजी ने ही

हिन्दी की रचनाओं को एक नियम, लक्ष्य प्रदान किया। इसका ही मही, उन्होंने इसे परिभाषित किया, और कुछ के लोचों से इसका मत जोड़े एक नए रूप से सामने उपस्थित किया। प्रत्यक्ष की रचनाओं में उनकी कला का वह जीवन रूप अभी भी विद्यमान है।

पूर्वार्द्ध काल में कवि कई कलाकारों से अपनी रचनाओं से दर्शकों के संस्पर्श को करने का प्रयत्न किया है, पर हम उनमें केवल 'असादकों' को ही रचनाओं पर समीक्ष कर चुके हैं। प्रस्ताव यह है। क्योंकि एक ही प्रस्तावों इस पुस्तक के अन्तर्गत प्रकाशित हैं, और दूसरे केवल अपनी ही रचनाओं में विचार के से उत्पन्न मिलते हैं, जिससे हिन्दी के दर्शकों को अधिक लाभ प्राप्त हो सके है। प्रस्तावों में कई दर्शकों गहराई की रचना की है, जिसके साथ इस प्रकार है—
 'अज्ञान', 'अज्ञान' की परिचय, 'अज्ञान' की परिचय, और 'अज्ञान' की रचना अन्तर्गत १९६७ के अन्तर्गत हुई थी। दर्शकों के बीच में प्रस्तावों की यह प्रथम रचना है। इसमें प्रस्तावों की कला का यह रूप नहीं दिखाई पड़ता, की उनकी पहचान की रचनाओं में दिखाई पड़ता है। इस पर कार्यकर्ता पुस्तक की सफलता का है। इसमें प्रस्ताव, नहीं, और प्रस्तावित वाक्यों की व्यवस्था है। 'अज्ञान कथन' का प्रयोग भी इसमें कई स्थानों पर किया गया है। अतः इस बात से अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि इसकी रचना में प्राचीन कथन का योग है। पर इसके साथ ही साथ यह भी कहा जा सकता है, कि इसकी भाषा, शैली, और गति पर नवीनता का पुट है। प्रस्तावों की दूसरी रचना 'अज्ञान' है, जिसका अन्तर्गत अन्तर्गत १९७९ के अन्तर्गत हुआ था। 'अज्ञान' में प्रस्तावों की कला परिचित दिखाई पड़ती है। इसमें प्रस्ताव की कला पर नवीनता का अन्तर्गत है। इसमें उनकी कला नवीनता की और सुन्दरी हुई भाव पड़ती है। कवि 'अज्ञान' में भी उन्होंने 'अज्ञान' की और 'अज्ञान' की रचना किया है, पर 'अज्ञान' की साथ इसमें नहीं बात नहीं, अज्ञान और प्रस्तावित वाक्यों की योजना नहीं है। 'अज्ञान' की रचना अन्तर्गत १९६८ के अन्तर्गत हुई थी। इसके अन्तर्गत में एक ही कथा की महत्व दिया गया है। इसकी रचना में कई और पुष्पों-पुष्पों की शैली की महत्व मिलती है। अज्ञान का यह गति नन्दा है, जिसकी रचना अन्तर्गत १९६८ में हुई थी। इसमें भी शैली और अन्तर्गत विचार मिलता है।

एकदशी के पौष में अष्टादशी की भक्त रचना की अधिक संख्या प्राप्त है, वह यह स्पष्ट है। 'एक सूट' अष्टादशी उत्सव एकदशी है। हिन्दी के रामायणकी का कहना है, कि यही वह रचना है, जिसे हिन्दी की प्रथम 'एकदशी रचना' देने का शौभाग्य प्राप्त है। अष्टादशी में एकदशी रचना सम्बन्ध १८८५ के आस पास की थी। एकदशी रचना में श्री गौरी और नया विधान का योग मिलता है। आस पास हिन्दी के नवीन कला में एकदशी विविधताओं से कलमें विभूषण का रचना है, उसका प्रथम दर्शन एक सूट में ही मिलता है। 'एक सूट' के ही एकदशी की नवीन कला का

कोय उपन्यास हुआ है। कावः 'एक घूँट' का हिन्दी के दक्खी के इतिहास में अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। 'एक घूँट' के महात्मा ही हिन्दी की दक्खी-कला का प्रभाव भारी और से विस्तार और उपलब्ध हुआ दिखाई पड़ता है। 'एक घूँट' के महात्मा ही दक्खी के क्षेत्र में उन कलाकारों का आधुनिक हुआ है, जिन्होंने प्रवाद काव के उपपाई का अपनी दक्खी से महत्वपूर्ण गहरा किया है।

प्रवाद काव के पूर्वाह्न में दक्खी की जिस नवीन कला में अन्य शिवा का, उल्लेख किया उपपाई काव में अन्य काव से दिखाई पड़ता है। उपपाई काव में उपपाई काव हिन्दी की दक्खी कला पूर्ण काव से नवीनता के ही रंग काव पर दिखाई देती है। शिव, कलाक, कला, काव, उद्देश्य, और कला इत्यादि सभी इतिहासों से वह अधिकतर रंग काव पर दिखाई पड़ती हुई काव पड़ती है। भाषा, शैली, और ऐक्यिक—इत्यादि क्षेत्रों में पूर्ण अनेक उपपाई काव का प्रभाव पड़ता हुआ है। उनके मीटर प्रवेश करने पर हम अन्यतः उस पर तीन कलाओं का प्रभाव देखते हैं—बैंगला की दक्खी कला का, बीरारी की दक्खी कला का, और बीरारी से मिलित एक नवीन मौलिक कला का। बैंगला की दक्खी कला बीरारी के प्रभावित है। उपपाई काव के कई कलाकारों में बैंगला के ऐक्यिक से ही प्रभाव की मीटर काव की है। इन कलाकारों में ही प्रभावों उपलब्ध की है, उन पर अन्य काव से बैंगला के ऐक्यिक का प्रभाव है। उन्होंने अपने मातृ की वे बंगाली मातृ की काव पर ही ऐक्यिक काव, अर्थात् काव, स्थान और कार्य की व्यवस्था की है। इस काव के कुछ कलाकारों में बीरारी के ऐक्यिक से भी प्रभाव पड़ता है। उन्होंने बीरारी के दक्खी के कुछ पर ही अपने मातृ की कलाक, अर्थात् काव, और प्रवाद इत्यादि की योजना की है। कुछ कलाकारों में एक नवीन कला का आभाव शिवा है, जिसे हम उनकी मौलिक कला कह सकते हैं। उनकी इस कला का व ही बीरारी की कला का प्रभाव है, और व बंगाली की कला का। उनकी यह कला बीरारी और बैंगला की कला की विशिष्टताओं से कुछ होने पर भी सर्वथा नवीन है।

उपपाई काव में कई पड़ती कलाकारों का आधुनिक हुआ है, जिन्होंने अपनी महत्वपूर्ण स्थानों के हिन्दी के दक्खी के आधार की करने का प्रभाव किया है। इन कलाकारों में का- रामकुमार वर्मा, गेड गोविन्दराव, भी लक्ष्मणराव अग्रणी, भी सुमनस्य, भी कुर्रिय, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार और भी अनेक इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि हम सभी कलाकारों में दक्खी साहित्य के निर्माण के महत्वपूर्ण योग दिया है, पर हम नहीं उनकी व्यवस्था पर प्रवाद कावों, किन्हीं कला में प्रतिनिधित्व के अन्य हैं।

उपपाई काव के कलाकारों में का- रामकुमार वर्मा का अधिक महत्वपूर्ण

हुई बलवती है। उनको ऐतिहासिक कलाओं के सभी मान आदर्शवर्ती है, जो अपने कालों के जीवन के क्षेत्र में समस्त विद्वों की रचना करते हैं। उन्होंने अपनी ऐतिहासिक कलाओं में राष्ट्रीयता और संस्कृति मिश्रण की भर पूर रखा की है। राष्ट्रीयता, और संस्कृति मिश्रण की रक्षा के लिए उन्होंने अपने कालों में कई कालों का संयोजन किया है। उनका कथानक, उनकी कला जीवन, उनका जीवन विचार, उनकी संनद्ध जीवन, और उनकी भाषा तथा उनको लेखी उनके इसी उद्देश्य की पूर्ण करने में सफल है। कर्मीकी के दूसरे वर्ग के नाटक सामाजिक हैं। सामाजिक नाटकों की कथा सामाजिक है। इस नाटकों में भी उनकी कथा का उद्देश्य आदर्श विचारों की ही स्तुति करना है; पर इनमें उनका समस्त यथार्थवाद की भूमि पर से होता है। इस नाटकों में वह यथार्थवाद के मार्ग से ही आदर्शवाद की ओर बढ़ती हुई दृष्टीबद्ध होती है। का-० कर्मी के अपने सामाजिक नाटकों के संबंध में स्वयं एक स्थान में लिखा है—'वेरी कला जीवन के यथार्थ से उद्भूत होकर अपनी आदर्श की स्तुति करने में प्रयत्नशील रही है। वो जो जीवन ही एक विद्यालय नाटक है, और यदि हम कुछ दृष्टान्तों तक सीमित रहे तो उस विद्यालय नाटक की चरम सीमा की देखने में हमें ही कहेंगे, किन्तु न तो लेखक और न दर्शक या पाठक दृष्टान्तों का, एक दृष्टान्तों के उल्लेख तक सीमित रहने का विरोध कर सकते हैं, यद्यपि उनके दोष जीवन की मेरी बलवती मजबूत सामान्य है। उन इस जीवन नाटक की कटुदृष्टि हम तक नहीं हो सकती, जब तक अपनी सामाजिक या अनुभव से कुछ ऐसी बदलाओं की स्तुति न कर दें, जो उस काम का निश्चित निष्कर्ष की ओर गति होता कर सकें। जीवन के सामाजिक प्रतिपक्ष की एक कला देना, अथवा उसी रखा में सुधार ला देना ही मेरी नाटक रचना का अनुष्ठान उद्देश्य रहा है। अपनी इस कला का प्रयोग मैं सामाजिक नाटकों में विशेष विरोध के साथ कर सका हूँ। कर्मीकी की तीसरे वर्ग की रचनाएँ दार्शनिक प्रत्यक्ष हैं। इन रचनाओं के कथानकों में सामाजिक तथ्य हैं, जिन पर हमें एक का पुर है। साहित्यिक वर्ग की रचनाओं में बदला और अनुभूति की प्रधानता है। सामाजिक रचनाएँ सामाजिक कलाओं के आधार पर लिखी गई हैं, जिनमें परमोन्नत चरित्रों के चित्र मिलते हैं। राष्ट्रीय वर्ग की रचनाओं में राष्ट्रीय मानों का विचार मुख्य रूप से हुआ है।

कर्मीकी की नाटक संग्रह पर प्रकाश डालने के सम्बन्ध में हम इन उनकी नाटक कला पर विचार करेंगे। कर्मीकी के केवल पाँचों नाटकों की ही रचना की है।

कर्मीकी कला: उनकी कला पर कर्मीकी की ही दृष्टि से विचार करना की कला होना। कर्मीकी की कला पर विचार की कला का अर्थ है,

उनकी रचनाओं कला विचार की ही कला के लक्ष्य में होती हुई है। पाठ, रंग, संकेत, संलाप, दृश्य परिवर्तन, लेखी और भाषा इत्यादि सभी क्षेत्रों में उनकी कला सर्वथा वास्तव्य कला के ही रूप पर चलती हुई दिखाई पड़ती है। कर्मीकी वास्तव्य कला के प्रयत्न आशय हैं, पर हमारा वह आशय नहीं, कि उन्होंने अंत

अपना अनेक नव मानव जीवन की रक्षा के लिए ही उभरी है। उसके अनेक कार्य में मानव जीवन की परमोन्नतता का ही प्रयत्न किया जाता है। उनकी सत्ता अपनी इस विविधता के कारण आज भूमि-भूमि आदर की पाँवपड़ी बन गई है।

बर्माकी कुशल एकाकी साठसठार है। एकाकी के क्षेत्र में उनका स्थान सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य में उन्होंने सबसे अधिक एकाकी की रचना की है। यही नहीं, हिन्दी बर्माकी के एकाकी साहित्य में वे ही सर्व स्रेष्ठ एकाकीकार भी हैं। उनका साठसठार में साठसठार एकाकी साहित्य हिन्दी में जारी और पैसा हुआ है।

के समय उनके एकाकी साहित्य का जारी और अधिक आदर है, और प्रेम है। क्या की दृष्टि के उनके एकाकी साहित्य की इन छः श्रेणियों में विभाजित कर चुके हैं—ऐतिहासिक, सामाजिक, राज्य सत्तात्मक, साहित्यिक, वैयक्तिक, और राष्ट्रीय। ऐतिहासिक रचनाओं की क्या इतिहास के पृष्ठों के ही गई है। इन रचनाओं में देश के गहरी चित्र मिलते हैं। देश के चित्रों के साथ ही साथ वह कथाई और भी अनेक मानवी अनुभूतियों के चित्र बनाती हुई जाती है। इन रचनाओं के साथ सादरता है, जिसमें सभी संवेदनी विविधताएँ हैं। वह अनेक क्षेत्र में विविधताओं के ही चित्र बनते हैं। इनकी विविधताएँ देश और उसकी संस्कृति की हैं। सामाजिक रचनाओं की कथाई सत्तात्मक है। इन रचनाओं में देश के चित्रों की प्रभावता है। वह इन देशवासी चित्रों की सृष्टि, और उनका साथ ही जीवन और आचार के ही देश के सत्ताई हुआ है। वैयक्तिक रचनाओं की क्या प्रभावों के ही गई है। इन रचनाओं में आदरों के चित्रों की प्रभावता है। रचनाओं का विकास करने समय, और उद्देश्य के ही अनुक्रम हुआ है। इन रचनाओं में भी देश का साथ मिलता है, जिस पर सादरता का विकास है। 'राज्य सत्तात्मक' रचनाओं की कथाई सामाजिक है। इन रचनाओं में सामाजिक जीवन के चित्र मिलते हैं, जिस पर राज्य और जीवन का प्रेम है। साहित्यिक रचनाओं की कथाई सत्तात्मक है। इन रचनाओं में परम्परा का समय, और मान्यताओं की प्रभावता है। मान्यताओं की प्रभावता होने के साथ वह कथाई सामाजिक ही गई है, और वह साथ ही साथ सत्ताई है। राष्ट्रीयता रचनाओं की कथाई देश प्रेम पर आधारित है।

समाज की दृष्टि के बर्माकी सत्ता सत्तात्मक है। उनके रचनाओं का एक उद्देश्य है 'आदर' के सुंदर चित्र बनाना। उनके रचनाओं का विकास सभी मानवी प्रभाव के साथ उद्देश्य की दिशा में हुआ है। उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने रचनाओं में विभिन्न प्रकार की सामग्रीएँ एकत्र की हैं। उन्होंने अपने रचनाओं में देशी रचनाओं का समावेश किया है, जिससे उनके उद्देश्य-पूर्ति में अधिक सहायता मिलती है। उनके सभी साथ और-बाकिर ही उनके साथ अधिक सहयोग करती हैं। उन्होंने समाज की प्रभावपूर्ण और मानवी कमाने के लिए उसके

हल्का है, जो विक्षिप्त है, और उथला है । इन बातों के कारण भी सादरों के ही विद्युत् बनते हैं ।

बर्मीशे ने बापों के चरित्र विषय में अधिक जानकारी के आशय लिया है । बापों का चरित्र विषय करते हुए उनका आशय तथा करने लक्षण और उद्देश्य की ओर दिशाई देता है । उन्होंने अपने लक्षण और उद्देश्य को दाहिने पैर करने की करने बापों का चरित्र विषय किया है । चरित्र विषय में उन्होंने इन्द्रजित्त की ओर का अनुसरण किया है । उन्होंने बड़ी सहायकता के साथ अपने बापों के हृदय के भीतर प्रवेश करके उनके विचारों की समझने और समझने का प्रयत्न किया है । अपना का उनके हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है, और उसके कि प्रभाव के परिणाम उनके मन में उत्पन्न होते हैं—इन बातों पर उनका ध्यान-ध्यान आशय रहता है । वे करते 'बापों के सम्बन्धों में ही नहीं प्रवेश करते, बल्कि उनके साथ जीवन में बापों और प्रभाव लता है; उनमें यह, कि वे अपने बापों के चरित्र विषय के लिए उन लक्षणों की ओर बड़ी संतुष्टता के साथ करते हैं, किन्तु द्वारा चरित्रों का चित्र बना करता है । उनके चरित्र-विषय में उनकी यह संतुष्टता साथ साथ दिशाई प्रकटी है । उन्होंने अपने बापों के चरित्रों का चित्र उनके विचारों की दृष्टि में ही देखा किया है । चरित्रों के चित्रों को लक्ष्य करने के लिए वे विचारों का हृदय देता करते हैं, और हृदय के ही द्वारा अपने उन बापों के चरित्रों को लक्ष्य करते हैं, जो मैत्रि चरित्र के साथ पर प्रभाव लक्षण की ओर ही आकर्षण-आकर्षण दिशाई प्रकटी है । बर्मीशे की अपनी इस दृष्टि में बहुत पूर्ण संतुष्टता प्राप्त हुई है । वे अपनी इस दृष्टि के द्वारा अपने बापों का देखा चरित्र उपनिषद् कर रहे हैं, जो अधिक व्यापक होने के साथ ही साथ प्रभाव पूर्ण भी है ।

चरित्र विषय में बापों के चरित्र-विषय के अतिरिक्त जीवन का विशेष महत्व होता है । बापों का संवाद ही यह संवाद है, किन्तु उनके विचारों की अभिव्यक्ति होती है । बर्मीशे ने अपने बापों के चरित्रों को लक्ष्य करने के लिए उनके संवादों पर अपना ध्यान करने के विषय-विषय प्रकटी है । उनके बापों के संवादों में बापों की योग्यता और गुण प्रकटी है । उनके साथ अपनी योग्यताओं, और गुणों के ही अनुसरण बात भीत करते हैं । उनकी बात भीत में लक्षण और उद्देश्य-विधि का ध्यान-ध्यान आशय दिशाई है । वे अपने संवादों में देखा प्रभाव का उपनिषद् करते हैं, जो अपने विधि में लक्षण होने के साथ ही साथ उन्हें अधिक और प्रभाव पूर्ण भी बनाती है । बर्मीशे कि प्रभाव अपने बापों के संवादों पर आशय रखते हैं, उनकी प्रभाव उनके आशय उनकी भाषा पर भी रहता है । संवादों के अनुसरण ही वे भाषा का महत्व करते हैं । भाषा के महत्व में उनका विशेष आशय भाषा की ही ओर रहता है । वे अपनी भाषा में लक्ष्य देते ही हृदय का उपनिषद् करते हैं, जो बापों की भाषिकता की बढ़ाने के साथ ही साथ बापों की सुन्दरता के लक्ष्य में रहते हैं । उनकी भाषा के साथ भाषिक हृदयों से बने हुए अधिक महत्व है । उनके छोटे छोटे भाषा में बापों की सम्पूर्णता

हीनता, और मिलिशियों के कुलम दलाली। इसी प्रकार की और भी विविध सामाजिक विवृतियों पर डेराही की कला में अपनी छाप काटी है। डेराही की कला में देशों के मन में इन्हीं सामाजिक विवृतियों का निवेदन किया है। निवेदन में उसका लक्ष्य आदर्श सुझा है। यद्यपि वह उपदेशात्मक नहीं है, पर आदर्श की ओर वह संकेत अवश्य करता है। उसका कल्प विवृतियों के प्रति 'दुष्टा', और शीघ्र खत्म करना है। इसमें संदेह नहीं किता का कथन, कि डेराही की कला की अपनी लक्ष्य और उद्देश्य सिद्ध में सफलता प्राप्त हुई है।

डेराही की कलाओं की कला विचार सुलभ है। यद्यपि वह समाजवादी पर प्रभाव डालने काय विचारों की सम्मिलन में प्रवेश नहीं करता, फिर भी वह की कला ही वहीना, कि उसमें विचारों के मनो की ही प्रभावना है। उसकी विचार सुलभ रचनाओं में लोकशासन, ईद और होली, मायन मन, और मैत्री का महत्व पूर्ण स्थान है। इन गानों में सामाजिक विवृतियों के सामाजिकता दूर विचर मिलते हैं। विवृतियों के विचार में समाजवादिता का अवलम्बन सिद्ध रखा है। यहाँ विवृतियों समाज का अवलोकन कर जाता है, यहाँ उसमें सामाजिकता दिखाई पड़ती है। इसमें विवृतिय यहाँ विचार में उपदेश की प्रवृत्ति है, यहाँ उसमें समाजवादिता उसका हो गई है। यहाँ यहाँ डेराही की कला आदर्श के लक्ष्य में की जाता ही गई है। यहाँ यहाँ वह आदर्श के आदर्श में भी गई है, यहाँ वह उपदेशात्मक बन गई है।

इतिहास के क्षेत्र में डेराही की कला में देशी समाजवादी की प्रवृत्ति दिखाई है, जिसमें भारतीय जीवन और उसकी महानताओं के परामर्शक विच है। इन कलाओं में कुछ कथार्थ इस प्रकार की भी है, जो विवृतियों के सम्मान करता है। ऐतिहासिक और विवृतियों के सम्मान — ऐसी ही प्रकार की कथार्थ भारतीय संस्कृति के परामर्शक विचों की हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार सामाजिक कथाओं का उद्देश्य समाज की विवृतियों की प्रस्तुत करना है, उसी प्रकार इन कथाओं का उद्देश्य भारतीय जीवन, और जीवन के परामर्शक विचों को उपस्थित करना है। इन विचों में किसी में भारतीय संस्कृति की परामर्शकता है, तो किसी में जीवन की प्रवृत्ति, किसी में समाज की उपस्थिता है, तो किसी में समाज, और इतिहास की उपस्थिता। इन प्रकार इनके संक्षेप ऐतिहासिक कथानक राष्ट्रीय सेवा, और समाजवादियों को प्रस्तुत है। इनके ऐतिहासिक कथाओं में गानों में 'आलोचक की विवृतियों', विचारों का समा समाज, भारतीय और समाज, और 'कथानुमाती' इत्यादि का महत्व पूर्ण स्थान है। 'आलोचक और विवृतियों' की कथा संस्कृति की उपस्थिता प्रस्तुत 'जब जहाँ' के आचार पर देश की गई है। 'भारतीय और समाज' की कथा की परामर्शकता पर ही आधारित है। 'विचारों का समा समाज' की कथा समाज परामर्श द्वारा प्रवृत्ति 'विचारों परामर्श' के आचार पर समाज की गई है। 'कथानुमाती' की कथा समाज परामर्श द्वारा

दुरु, उसमें विभिन्न समस्याओं का विवेचन किया है। समस्याओं का विवेचन करते हुए उनका ध्यान लैंगिक आधारों की ओर ही लगा दिखाई देता है। गैरबीबी कला कहीं भी आधारों का परिचय नहीं करती। जिस प्रकार वह 'मोरीझुमों' में आधारों का वर्णन बहुत कर पाती है, उसी प्रकार ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों में भी वह आधारों का ही गुण खोजी है। गैरबीबी के ऐतिहासिक नाटकों के सभी पात्र आधारवादी हैं। इन नाटकों के कथानकों में आदि से लेकर आग तक आधारों के ही चित्र मिलते हैं। सामाजिक नाटकों में कहीं कहीं उनकी कला पर आधारों का रंग सज्जन बहुत कम है, पर इन नाटकों में भी उनका बहुत लैंगिक आधारों की ओर ही दिखाई पड़ता है। सामाजिक नाटकों में भी गैरबीबी की कला में लैंगिक आधारों/चित्रों की रचना की है।

गैरबीबी की कला वास्तव्य कला के प्रमाणित है। उन्होंने अपनी कला का निर्माण वास्तव्य कला के ही आधार पर किया है। उन्होंने वास्तव्य कला के ही आधार पर अपनी नाटकों में 'ऐक्यत्व' का प्रयोग किया है। उन्होंने 'मोरीझुमों' में वास्तव्य कला के 'ऐक्यत्व' के प्रयोग में कहीं कुछलता दर्शित की है। इसमें उनकी मौलिकता और उनका नाटकीय चतुर्ध्व की दृष्टि की मिलता है। इनो प्रकार का नाटकीय चतुर्ध्व उनके सभी नाटकों में मिलता है। उनके सभी नाटकों में कर्म-मर के सभी की प्रकृति है। उनके नाटकों का कथानक अभिनय के सभी की ओरता हुआ जाने पड़ता है। उनके नाटकों के कथानकों के विकास में कमद्वलता है। उनके नाटकों के कथानक बहुत की उरों की भीति उठते और गिरते हुए पड़ते हैं। उनमें कीद्वलता और विजय उल्लस करने वाले चित्र सभी संख्या में मिलते हैं। वे अपने कीद्वलता और विजयजनक चित्रों के नाटकों तथा दर्शकों के मन के बहुत में ही भीति होते हैं, और अन्य तक भीति हुए पड़ते हैं। उनके पात्र आधारवादी हैं, पट्टर हैं, और कटुध्वी हैं। वे कहीं कृद्वलता के साथ कथानक के लैंगिक की दृष्टि करते हैं। उनके लैंगिक और कथानकनी में उनकी कृद्वलता और कृद्वलता वाच-वाच दिखाई पड़ती है। 'नाटकीय कीद्वलता' की गैरबीबी के नाटकों में प्रकृति रूप में मिलता है। गैरबीबी की कला 'नाटक' की सर्वादा की सभी भीति सम-अती है, और सम-सम पर उनका ध्यान रखती है। कहीं कारण है, कि उनके सभी नाटक अभिनेता हैं।

गैरबीबी की कला में दर्शकों के क्षेत्र में एक और नया प्रयोग किया है। वह प्रयोग है, 'उपक्रम', तथा 'उपसंहार'। गैरबीबी के दर्शकों नाटकों की ओर कर 'उप-क्रम', और 'उपसंहार' का प्रयोग और किसी के नाटक में कहीं पाया जाता। 'उपक्रम' में गैरबीबी की कला नाटक का एक बहुत परिचय नाटकों की पहले ही बात देती है। 'उपसंहार' के प्रयोग दर्शकों के परिचय सह किए करते हैं। गैरबीबी की कला का लैंगिकनी की अधिक महत्व देती है। आज संकलन के लिए ही उनमें करने दर्शकों

से सर्वथा विपरीत ही पाते हैं। ऐसा लगता है, कि उनकी कला को भारतीय विचार-भारा में जीवन के सत्त्व प्राप्त ही नहीं होते। यही कारण है, कि उनकी कला में जहाँ भारतीय जीवन के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ती है, वहाँ पाश्चात्य जीवन के प्रति आसक्ति भी प्रगट होती है। इस आसक्ति के कारण कहीं-कहीं उनकी कला का स्वरूप अधिक अस्पष्ट, और अस्वाभाविक हो गया है। विचारों के क्षेत्र में ही नहीं, अभिनय के क्षेत्र में भी उनकी कला पाश्चात्य शैली का ही अनुगमन करती है।

वस्तु, पात्र संयोजना, चरित्र चित्रण, संलाप, कथा संयोजना, रंग संकेत और टेक्नीक इत्यादि सभी क्षेत्रों में वे इन्सेन, शा, और ग्लासबर्दी से ही अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं।

हिन्दी एकांकी—आधुनिक काल

आधुनिक काल सं० १९२५ से आरम्भ होता है। आधुनिक काल की इस सी-
 मारे में विभक्त करते हैं—आधुनिक काल प्रथम अन्तान, और आधुनिक काल
 आधुनिक काल— द्वितीय अन्तान। प्रथम युग में नई दौलतों के नाटकों का
 एक मूलक आविर्भाव हो चुका था। अन्तर्गत वर्ष नई दौलतों के
 विचारों से। डा० रामकुमार वर्मा और गेड गोविन्ददास इत्यादि की रचनाओं में
 एकांकी काल में यह युग की स्थापना की थी। प्रथम युग में ही श्री सुमनेश्वर की
 रचनाओं में एक नई दिशा का संकेत मिला था। आधुनिक काल के प्रथम अन्तान
 में श्री सुमनेश्वर की और श्री रचनार्थ कायने आई। उनकी रचनाओं की लेखन
 एकांकी के क्षेत्र में एक विस्तारवाद की कड़ा हुका, विशेष एकांकी काश्चित्त के अन्तर्गत
 किं सहायता प्राप्त हुई। इसी दिनों काशी के 'द्वे' में अन्तर्गत एकांकी कांच प्रका-
 शित किया। इसी एकांकी के अन्तर्गत में काशीप्रकाशित लेख प्रकाशित किए गए,
 और साथ ही विभिन्न कलाकारों की साहित्य और अन्तर्गत रचनार्थ की प्रस्तुत की
 गई; विविध अन्तर्गत एकांकी की और विशेष रूप से लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ,
 और योंही ही दिनों में एकांकी की धूम मच गई। इसी दिनों एक और श्री अन्तर्गत
 की रचना सामने प्रस्तुत हुई। इस रचना की इस दिशा में एक कदम बढ़ाते हैं। यह
 काल ऐतिहासिक द्वारा प्रकाशित किए जाने के अन्तर्गत के विशेष रूप। इसी दिनों
 एकांकी नाटकों की दौलत से विभिन्न है।

आधुनिक काल का द्वितीय अन्तान सं० १९२२ से आरम्भ होता है। द्वितीय
 अन्तान में एकांकी की कला में और भी अधिक गहराई में प्रवेश मिला है। द्वितीय
 अन्तान में उठने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन के बापों का विशेषन बढ़ी प्रस्तुत के
 साथ किया है। प्रथम और द्वितीय अन्तान में विभिन्न कलाकारों की कृतिओं में एकांकी
 के क्षेत्र की साहित्य और अन्तर्गत बनाया है, उनमें डा० रामकुमार वर्मा, गेड गोविन्ददास,
 श्री उद्भवशङ्कर मह, श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, श्री हरिप्रसाद जेठी, श्री गणेश प्रसाद
 द्विवेदी, श्री उदयप्रसाद 'सूर्य', श्री समीप प्रसाद मल्ल, श्री मन्मथप्रसाद वर्मा,
 श्री विष्णु प्रसाद, और श्री अर्धेन इत्यादि का अन्तर्गत युग स्थापन है। यहाँ इस
 कुछ विशिष्ट कलाकारों की कृतिओं पर विचार प्रकाश करने की चेष्टा करेंगे।

एकलौखी नाटक' में संघर्षीय नाटकों में मिलता है। इन नाटकों में उनकी कला सामाजिक तथ्यों से ही जनता के विचार काशी है। इन नाटकों में उनके विभिन्न सामाजिक समस्याओं को लेकर कथा-रूप का निर्माण किया है। इन नाटकों में उनकी कला पर संकाय: बौद्धिकारी विचार भाव का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन नाटकों में इनने उनकी कला का जो स्वभाव मिलता है, उसे इस सामाजिक स्तर पर करते हैं। उनके अपने संसार, और केवल त्यों को प्रभावता है। यही-यही संकायों के सामाजिकता को दिखाई पड़ती है। वह होने हुए तो उनकी कला के इस रूप में, प्रचुर मात्रा में विचार के स्तर मिलते हैं। उनकी कला का दूसरा स्वरूप इन 'को का दूर' में संघर्षीय नाटकों में मिलता है। इन नाटकों में उनकी कला 'वैचारिकतादिनी' के रूप में दिखाई पड़ती है। इन नाटकों में-उनकी कला का भाव प्रचुर रूप में समाज की विपत्तियों को और का-। दुखा दिखाई पड़ता है। यहाँ सामाजिक विकृति के विषय में उनका कुछ-कुछ भाव कादर्श को और भी बढ़ा है, पर प्रत्यक्ष रूप से उनका स्वरूप 'वैचारिक' विचार को और ही, दिखाई पड़ता है। उनकी कला का यह रूप अधिक सामुहिकतापूर्ण है। सामुहिकतापूर्ण होने के कारण इनमें अत्यंत और प्रचुरता भी कायम है। इन नाटकों में संकायों, और अतिरिक्त विचार में अतिरिक्त की अनेक दृश्य की दृष्टियों से अधिक नाम दिया गया है। उनकी कला का तीसरा स्वरूप 'समाज का स्तर' और 'युग विचार' में संघर्षीय नाटकों में मिलता है। इन नाटकों में समाजवाद को प्रमुख भाव पर सामाजिक समस्याओं की चिन्ता-धना की गई है। इन नाटकों में उनकी कला और समाजवादियों के रूप में प्रचुरता की सामाजिक प्रवृत्तियों के संसार प्रवेश करती हुई दिखाई पड़ती है। 'युग विचार' के नाटकों में वह सर्वाधिक कलात्मक और सामुहिकतापूर्ण बात होती है। उनकी कला का प्रचुर रूप यह है, जो उनके जीवन-मूल्यों में मिलता है। उनकी कला का यह रूप अधिक सामाजिक है। अपने इस रूप में उनकी कला सामाजिक भाव-वैचारिक के विचार अतिरिक्त करने में अधिक प्रचुरता दिखाई पड़ती है। इस रूप में उनके सामाजिक भावों में बात अतिरिक्त प्रभाव करने और अपने उद्देश्य में अत्यंत प्रवृत्ति किया है।

प्रचुरता की कला की तथ्यों में अत्यंत हुई है—सुविचारितों के रूप में, और समाजवादियों के रूप में। उनके सामाजिक, सामाजिक और सामाजिक नाटकों की कला सुविचारितों की है। इन नाटकों में उनकी कला में सुविचार को ही आधार मान कर अपने कार्य प्रचुरता का विचार किया है। सुविचार का अधिक सामाजिक प्रभाव करने के कारण इन नाटकों में वह अधिक समाजवादियों को बन गई है। उनकी कला का दूसरा रूप, जिसमें भाव की प्रधानता है, उनके जीवन-मूल्यों में मिलता है। उनकी कला का यह रूप भाव से अत्यंत है। उनकी कला अपने इस रूप में उन तथ्यों को सामाजिक प्रभाव बनाती है, जिसका वैचारिक दृश्य से अधिक है। यही कारण है, कि उनकी कला के इस रूप में दूर की दृष्टियों का अधिक प्रभाव मिलता है। उनकी

बाला का यह सब शक्तिशाली व्यक्तित्व, गहरा, खोल खुल भी है। अभिनय की दृष्टि से जो हम बहुतों को बाला को समझ नहीं पाते हैं। जीति जात्यो को जेद कर उनके साथी मनुष्यों से अभिनय के संविधान बना करते हैं।

साधुनिक काल के एकलौकीयता में वं० लक्ष्मीनारायण सिंह भी चढ़ना महत्व पूर्ण समझ सकते हैं। क्योंकि इनका कुलव श्रेष्ठ गारक है, वर दम्पति एकलौ के वं० लक्ष्मीनारायण सिंह से भी बड़ि पाता की है। दम्पति कई एकलौ गारकी

मित्र की रचना की है, जिसमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं—
लोकमान, इन्द्र के बहू पर एक दिन, कावेरी में कलह, बलहीन, सारी का रंग,
स्वर्ग में विजय, सारीक वन, कीर्तव्यी, विद्विषा, और दशममेव । इन नाटकों
की रचना में कोई प्रकार के उल्लंघन हुए हैं, जिसमें वाचनिक, शैक्षणिक, ऐति-
हासिक और सामाजिक तथ्यों की प्रयोजनता है ।

विश्वकी कानूनी दृष्टि के समूचे दृष्टिकोण हैं। मारवा की शक्ति उनमें दृष्टिकोण मारवा की शक्ति के लक्ष्यों से ही सम्मान स्थापित करते हैं। उनकी दृष्टिकोण कला की विश्वकी की दृष्टि शक्तिशाली बन सकते हैं। उनकी दृष्टिकोण कला में दृष्टिकोण कला सम्मान, सम्मानित, प्रशस्त, और शक्तिशाली के सम्मानित दृष्टि करते हैं। शक्ति की शक्ति पर कल कर उनके शक्ति शक्ति शक्ति सम्मानों को प्रशस्त का दृष्टि किया है। उनकी कला में शक्ति और शक्ति की शक्तिशाली की शक्ति की शक्ति है। उनकी दृष्टि शक्ति की शक्ति पर दृष्टि का सम्मान दृष्टि करते हैं। शक्ति में वह शक्तिशाली के सम्मान के सम्मान दृष्टि करते हैं। शक्ति और शक्ति का शक्ति सम्मान दृष्टि करते हैं। शक्ति की शक्ति की शक्ति पर दृष्टिकोण का दृष्टि भी दिखाई सकते हैं। पर दृष्टि उनकी कला की 'शक्तिशाली' कला की शक्ति के शक्तिशाली शक्ति पर दृष्टि, शक्ति उनकी कला शक्ति सम्मान और शक्ति की शक्ति सम्मान दिखाई सकते हैं, उनमें दृष्टि शक्ति का ही दृष्टि करते हैं। शक्ति यदि दृष्टि उनकी कला की शक्ति और शक्ति के सम्मानित शक्ति ही शक्तिशाली न होनी। उनकी कला का शक्ति सम्मान के शक्ति के सम्मान शक्ति दृष्टि है, पर उनमें शक्ति 'शक्तिशाली' की ही दिखाई सकते हैं। उनकी कला पर शक्ति की कला का शक्ति सम्मान है। यदि वह भी शक्ति शक्ति, ही शक्तिशाली न होनी, कि शक्ति शक्ति बन करके शक्ति के शक्तिशाली की 'कला' का शक्तिशाली किया है। किन्तु उस कला के शक्ति में शक्ति सम्मान शक्ति की ही दृष्टि है। दृष्टि शक्ति शक्ति की कला के शक्ति में शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति पर शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति का शक्तिशाली किया है।

सांख्यिक काल के दार्शनिकोंमें से भी जैन-मतवाच 'अद्वय' का महत्त्व पूर्ण स्थान है। 'अद्वय' में साठक और दार्शनिकों साठक दोनों की ही रचना की है। उनके साठक की जैन-मतवाच का नाम इस प्रकार है—अथ अद्वय, सर्व की अद्वय, 'अद्वय' अद्वय वेदा, वेद, उद्भव, वेद, अद्वय अद्वय वेदा, अद्वय और अद्वय। 'अद्वय' में साठक की अद्वय दार्शनिकों के बीच के अद्वय अद्वय

है, कि उन्होंने अपनी कला के सफल को लेकर अपने में परिचय और त्याग के भाव किया। उन्होंने हिन्दी की 'कला' का अध्ययन किया, और इसके साथ ही साथ उन्होंने परिचय की कला का भी अध्ययन किया। परिचय के कई कलाकारों की कृतियों का उन पर काफी प्रभाव पड़ा। इन कलाकारों में मैटर लिक, भूष भर्मा, श्री लाल, निरख, और पैरी इत्यादि का नाम महत्व पूर्ण है। 'अरकली' ने अपनी कला के अध्ययन निवारण में अपनी परिचय की कलाकारों की कला के अध्ययन प्रारंभ की है। यदि हम यह भी बड़े से आनुवंशिक न देखें, कि उनकी 'कला' में हम परिचय की कलाकारों की 'कला' की अपनी एक प्रदर्शक जान कर अपने साथ-साथ ही अपना भी है। कलाकार, परिचय विचार, उद्देश्य, भाव और ऐक्यता इत्यादि क्षेत्रों में उन्होंने परिचय की आदर्शों का ही परिपालन किया है।

अरकली की कला पञ्चांगवादियों है। उसमें कल्पना का अभाव, और वास्तविक समावाहरी के परिलेख को विशेष आधिकार है। समावाहरी का विरोध करने में वह विषय के अलग प्रवेश करती है, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विषय के एक एक पहलु पर ध्यान से दृष्टि डालती है। विषय को समुद्र करने में वह विचारों का आश्रय लेती है। विचारों में हम अलग करके किसी परिचय के विषय पहुँचाना उनकी कला की अधिक विषय है। उनकी कला केवल विरोध ही नहीं करती, बल्कि वह विषय की आलोचना भी करती है। विरोध और आलोचना-हीनी प्रवृत्तियों में एक साथ मिल कर उनकी कला की अधिक मायिक बना दिया है।

अरकली की कला में पञ्चांगवादियों को प्रत्यक्ष अभाव दिया है, पर वह स्वीकार करने में सक्षम नहीं तथा का समता, कि उसमें व्यक्तता की प्रवृत्ति है। पञ्चांगवादियों के मार्ग पर चलते हुए उसमें अनेक क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र प्रतिभा और प्रवृत्ति का परिचय दिया है। कला, भाव, परिचय विचार, संवाद और ऐक्यता इत्यादि क्षेत्रों में उनकी अपनी मौलिकता दिखाई पड़ती है। ऐक्यता के क्षेत्र में ही अरकली की कला में अपनी मौलिकता बड़ी कुशलता के साथ प्रदर्श की है। 'ऐक्यता' के क्षेत्र में उनकी कला विविध रंगों दिखाई पड़ती है। उन्होंने अपने दूसरी नाटकों में विविध 'ऐक्यता' का प्रयोग किया है। उसके सभी प्रकार के ऐक्यता रंगों में वह के लिए उपयुक्त है।

सर्वमान्यता के एकलोकियों में श्री आनंदीशचन्द्र मजूमर, विष्णु प्रभाकर, सम्पूर्णता करीना, श्री रामचन्द्र तिवारी, श्री भाग्य भूषण कल्याण, और श्रीराम शर्मा 'राम' इत्यादि का भी नाम उल्लेखनीय है।

१०

निबन्ध

विषय सूची

- १—निबन्ध क्या है ७२५
(अ) निबन्ध की परिभाषा-विद्वानों के विचार, (आ) निबन्ध-उत्पत्ति भाषा और शैली ।
- २—हिन्दी में निबन्ध का जन्म और उसका विकास ७२८
(इ) अँगरेजी में निबन्ध का जन्म, (ई) हिन्दी में निबन्ध का जन्म, (उ) प्रबन्ध और निबन्ध, (ऊ) हिन्दी निबन्ध और भारतेन्दु ।
- ३—हिन्दी निबन्ध— भारतेन्दु काल ७३२
(ए) हिन्दी निबन्ध-भारतेन्दु जी के पूर्व (ऐ) हिन्दी निबन्ध भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र, (ओ) भारतेन्दु काल के निबन्धकार, (औ) पं० बालकृष्ण भट्ट, (अं) पं० प्रताप नारायण मिश्र, (आः) भारतेन्दु काल के अन्य निबन्धकार ।
- ४—हिन्दी निबन्ध—द्विवेदी काल ७३६
(क) द्विवेदी काल में हिन्दी निबन्ध कला, (ख) पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, (ग) द्विवेदी काल के निबन्धकार-पं० माधवप्रसाद मिश्र, (घ) बालमुकुन्द शुभ, (ङ) मोतीलाल राम राहमती, (च) पं० गोविन्दनारायण मिश्र, (छ) बाबू रघुनाथ सुन्दरदास, (ज) पं० चन्द्रशेखर शर्मा-गुप्तोद्गी, (झ) पं० जगन्नाथप्रसाद और पं० द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, (ञ) करदार पूर्वाभिष्ट, (ट) पं० वसन्तिशंकर शर्मा,
- ५—हिन्दी निबन्ध—आधुनिक काल ७४५
(ड) पं० रामचन्द्र शुक्ल, (इ) आधुनिक काल के निबन्धकार, (द) प्रेमचन्द, (ध) जयशंकर प्रसाद, (ढ) गुलाबराय, (ण) बहुधत्तात पुष्पात्तात बख्शी, (न) विद्योती हरि, (प) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, (न) जैनेन्द्र कुमार, (ब) दोष निबन्धकार ।

निबन्ध क्या है ?

निबन्ध सख्त साहित्य का प्रकार है। गद्य साहित्य में जो कुछ रहता है, वह सब का सब निबन्ध होता है, वह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह अवश्य कहा जा सकता है, कि निबन्ध में गद्यकारिता के लम्बे प्रचुर रूप से विद्वानों के विचार अंतर्निहित रहते हैं। निबन्ध की शक्ति गद्य के और भी कई अंग होते हैं, जैसे—उपमा, नाटक, और कहानी इत्यादि। पर निबन्ध के भीतर गद्य के जितने लक्षण अंतर्निहित रहते हैं, उनमें उसके और किसी अंग में नहीं होते। कहानी, उपमा, और नाटक इत्यादि में गद्य के साथ कहानी, उपमा, और नाटक की कलाएँ भी विद्यमान रहती हैं, पर निबन्ध में गद्य के साथ केवल गद्य ही होता है। यही कारण है, कि निबन्ध में गद्य कला का विकास पूर्ण रूप से होता है। फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि निबन्ध का अन्त एक विशिष्ट अंग होता है। निबन्ध पूर्ण रूप से गद्य होते हुए भी आधार प्रकार, स्वल्प, और कुछ अर्थ में सामान्य प्रकार के 'गद्यों' से सर्वथा भिन्न होता है।

'निबन्ध' के इस सभी अंग परिचित हैं। प्रतिदिन हम सब निबन्ध पढ़ा भी करते हैं। पर निबन्ध क्या है—यह प्रश्न साधारणजनों की तो कोई बात ही नहीं, बड़े बड़े विद्वानों के लिए भी एक खटि पड़ेगी या है। निबन्ध के साहित्य में आज निबन्धों की अपार सम्पत्ति पाई जाती है। निबन्ध-साहित्य में आज निबन्ध-साहित्य के अनेक विद्वान् रचयिता भी पाए जाते हैं, पर निबन्ध क्या है—यह प्रश्न आज भी विकास की एक कस्तुरी बना हुआ है। संसार के विद्वानों ने निबन्धों के ऊपर अपने को लक्ष्य कर रखा है, उनमें साम्य नहीं दिखाई पड़ता। जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ॰ हेनरिक वॉल्फ ने 'निबन्ध' के ऊपर विचार प्रकट करते हुए लिखा है—'निबन्ध मानविक जगत का एक विशिष्ट बुद्धि विस्तार है, इसलिए वह कोई नैतिक और नियमित रचना न होकर एक सम्भवतः और अपरिपक्व विचार संग्रह होता है।' जर्मनी के एक दूसरे विद्वान ने निबन्ध की परिभाषा के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—'निबन्ध किसी विषय विशेष या किसी विषय के अंश पर एक साधारण कलेक्रेमणी रचना है, जिसमें प्रारम्भ में अपरिपूर्णता भी भ्रमना रहती थी। किन्तु अब उसका प्रयोग एक ऐसी रचना के लिए किया जाता है, जिसकी

परिधि के अतिरिक्त अपने घर में किसी आत्मा की दृष्टि एवं अभिव्यक्ति नहीं है ।' हिन्दी के प्रमुख विद्वान् बाबू रामचन्द्रदासजी ने 'विकल्प' के ऊपर निम्नलिखित संक्षेपित प्रगट की है—'विकल्प में विकल्प की विभिन्न ऐसी अवस्थितिक सम्भावनाओं की ओर ध्यान । वैदिक विचारों की शुद्धता और शुद्धता की दूर करने के लिए विकल्प केवलकों का यह प्रचार प्रचार है, जिससे वह वास्तविक के दृश्य की धारणा और बना रहने । ऊँची वैदिकता पूर्ण रूपका वास्तविक बनना कला की दृष्टि से आवश्यक होता है ।' आचार्य पं० रामचन्द्रदासजी ने विकल्प के ऊपर अपने विचार इस प्रकार प्रगट किए हैं—'आधुनिक वास्तविकता के अनुसार विकल्प उसी की कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तिगत व्यक्ति व्यक्तिगत विशेषता हो । बात ही ठीक है, यदि ठीक तरह के कल्पों का । व्यक्तिगत विशेषता का यह अर्थगत नहीं है, कि उसके अर्थगत के लिए विचारों की शुद्धता नहीं हो न बात का बात शुद्ध कर कल्प-कल्प के बीच ही बात, बातों की विविधता दिखाने के लिए ऐसी कल्प-वैकल्य की बात, जो उसके अर्थगत के अर्थगत या बीच सम्मान्य रूप से कोई सम्मान्य ही न रहे, सम्मान्य बात से सम्मान्य बातों की भी सम्मान्य, या अर्थगतियों के से सम्मान्य करने चाहें, विकल्प लक्ष्य लक्ष्य दिखाने के लिए और शुद्ध न हो ।'.....'लेखकों इस एक बात और एक बातों से सम्मान्य है । अपने अपने व्यक्तिगत सम्मान्य के अनुसार किसी का मन किसी सम्मान्य रूप पर दीखता है, किसी का किसी पर । वे अपने मन एक दूसरे से बने हुए, नहीं के अंतर की नहीं के सम्मान्य, पारों और एक बात के मन से बने हैं । सम्मान्य या अर्थगतिक केवल कल्पों में सम्मान्य विचारों के अर्थगत के लिए अर्थगतों कुछ सर्वत्र सुधी की सम्मान्य कर किसी और बीच सम्मान्य है, और बीच के अर्थगत में नहीं नहीं सम्मान्य । यह विकल्प केवल सम्मान्य मन की दृष्टि के अनुसार सम्मान्य कल्प के द्वारा और सुधी सुधी, सम्मान्यकों पर विचारता कला है । यदि उसके अर्थ सम्मान्य व्यक्तिगत विशेषता है । अर्थ सम्मान्य सुधी की वैदिक-वैदिक वैदिक ही विकल्प विकल्प केवलकों का अर्थगतिक निर्दिष्ट करते हैं । एक ही बात की वैदिक किसी का मन किसी सम्मान्य-रूप पर दीखता है, किसी का किसी पर । इसी का नाम है एक ही बात की विकल्प विकल्प अर्थगतिक के वैदिक । व्यक्तिगत विशेषता का रूप सम्मान्य नहीं है ।'

विकल्प की परिभाषा के सम्मान्य में ऊपर से ऊपर के मत उद्धृत किए हैं । एक प्रकार के मत वैदिकों विचारों के हैं, और दूसरे प्रकार के मत हिन्दी के विकल्प-उद्धरण आचार्यों के हैं । वैदिकों विचारों के जो मत नहीं मान्य और ऐसी उद्धृत किए गए हैं, वे ऐसी ही सर्व सुमान्य हैं । इन विचारों के विकल्प के सम्मान्य में जो विचार लक्ष्य किए हैं, बात के विकल्प उनके विचारों के विकल्प हैं । इस बात की सम्मान्य करने में वैदिक नहीं किता का सम्मान्य, कि बात के विकल्पों का रूप इन वैदिक विचारों के विचारों में सम्मान्यित है, यह बात ही यह बात की निम्नलिखित रूप से नहीं सम्मान्य है, कि बात निर्दिष्ट कला

अपनी प्रौढ़ता पर है। प्राचीन विद्वानों ने निबन्ध के सम्बन्ध में अपने जो मत व्यक्त किए हैं, वे आज के निबन्धों पर लागू नहीं होते। स्वर्गीय डा० रवामसुन्दर-दास, और आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लजी के विचार आज की निबन्ध कला पर वास्तविकता के साथ प्रकाश डालते हैं। उनके विचारों ने आज के निबन्धों का स्वरूप और उनकी शैली तथा उनका गुण अपने लम्ब के साथ खड़ा हुआ है।

वर्तमान काल में निबन्ध कला ने अधिक उन्नति अर्जन की है, पर जहाँ तक उसकी परिभाषा का प्रश्न है, वह अपने प्राचीन और मध्यम-योगों की स्वरूपों में एक सा है। निबन्ध मञ्जुलिखित विचारों के एक समूह को कहते हैं। निबन्ध में विषय का प्रतिपादन एक परिधि के ही भीतर किया जाता है। अतः विषय की अधिक प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए विचारों को अधिक परिपुष्ट और उद्येकनामय बनाने की आवश्यकता रहती है। निबन्ध में विचारों को एक सीमा के ही भीतर व्यक्त किया जाता है। निबन्ध की भाषा और शैली पर भी निबन्धवा रचना अधिक आवश्यक होता है। निबन्ध की भाषा और शैली को भी एक सीमा-एक परिधि के ही भीतर करने व्यापार की रचना करनी पड़ती है। अतः निबन्ध की भाषा और शैली को भी अधिक उद्येकक और प्राणमय बनाने की आवश्यकता है। निबन्ध की भाषा और शैली जितनी ही प्राणमय होगी, उतना ही निबन्ध के भीतर विचारों की प्रभाव पूर्वाता में अभिवृद्धि होगी। भाषा और शैली के प्राणमय से यह तात्पर्य नहीं है, कि निबन्धों की भाषा दुसूढ़ और अलङ्कार युक्त हो, वरन् इसका तात्पर्य तो यह है, कि भाषा और शैली अधिक से अधिक सजीव होनी चाहिए। सजीवता के साथ ही साथ उसमें सरलता का गुण भी होना चाहिए। भाषा और शैली की सजीवता तथा सरलता निबन्धों का अपना एक विशिष्ट गुण है।

हिन्दी में निबन्ध का जन्म और उसका विकास

हिन्दी निबन्ध के इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तो इस बात का पता चलता है, कि हिन्दी में निबन्ध का जन्म अँगरेजों के आगमन के पश्चात् ही हुआ अँगरेजी में निबन्ध है। इसी बात को दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार भी कह सकते हैं, कि हिन्दी में निबन्ध का जन्म अँगरेजी के प्रभाव के कारण हुआ है। अतः हिन्दी निबन्ध के जन्म और उसके विकास पर प्रकाश डालने के पूर्व अँगरेजी निबन्ध के जन्म पर एक प्रकाश डालना समीचीन ही होगा। अँगरेजी में आज निबन्धों का अत्युत्तम संसार है। अँगरेजी में आज एक से एक बढ़कर बढ़कर महारथी निबन्ध लेखक हैं, जो अपनी रचनाओं से विश्व-साहित्य को आंदोलित कर रहे हैं। इन लेखकों में बेकन, स्ट्रॉट्स, एड्डीसन, मोल्डस्विथ, ईबालिट, कालाहिल, रस्किन, होइंट, चार्ल्सलेथ, वाल्टर रेले, और स्टोकेन्सन इत्यादि का महत्व पूर्ण स्थान है। इन निबन्ध लेखकों की आदि कही कहीं से प्रारंभ होती है—यहाँ हमें इसी बात पर प्रकाश डालना है। अँगरेजी के निबन्ध साहित्य के इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तो उसके आदि मोत पर मिक्सेल मीटिंग को देखा हुआ पाते हैं। मिक्सेल मीटिंग एक कांथीनी विद्वान था, और यही निबन्ध का जन्मदाता माना जाता है। सर्व प्रथम इसी ने ऐसे मध्य की रचना की थी, जिसे निबन्ध कहना सभ्यता है। मीटिंग ने ही सर्व प्रथम अपने लेखों का संग्रह 'एसेइज' के नाम से प्रकाशित किया था। इस शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम उसने ही 'साहित्यिकता' के अर्थ में किया था। यह बात सत्य है, कि मीटिंग के निबन्ध की परिभाषा जिस शब्दों में बताई है, उसके वे शब्द आज के निबन्ध की परिभाषा के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते, पर इसके साथ ही साथ यह बात भी सत्य है, कि उसके उन शब्दों में आज के निबन्धों की परिभाषा का मूल खोत छिपा हुआ है। मीटिंग ने 'आत्म चरित' विषय की निबन्धों में अनिवार्य बलाया है, किन्तु आज निबन्धों की सीमा इसकी परिधि से बहुत आगे बढ़ गई है। आज निबन्ध 'आत्म चरित' से ही सीमित न होकर विविध विषयों के क्षेत्र में बुद्धि और प्रतिभा का महत्व पूर्ण ग्यहार बना हुआ है।

हिन्दी में निबन्ध का जन्म अँगरेजी के निबन्धों ही के प्रभाव के कारण हुआ है। यह बात नहीं, कि हमारे देश के साहित्य में निबन्धों का प्रचलन नहीं था।

हिन्दी में निरन्ध्र संस्कृत साहित्य का एक ही अर्थ रखते हैं, जब उसमें का अर्थ निरन्ध्र के कई ऐसे शब्दों में मिलते हैं, जिनकी रचनाओं में निरन्ध्र शब्द का प्रयोग पूर्णतः के साथ हुआ है। यह बात सच है, कि उसकी भाषा, शैली, और निरन्ध्र निरन्ध्र में अर्थ के निरन्ध्र की ही अन्तर्भाव नहीं है, पर इसके साथ ही साथ यह बात भी सच है, कि इन निरन्ध्रों में निरन्ध्रशब्दों में पूर्ण रूप से अन्तर्भाव है। अतः उक्त बात है, कि संस्कृत में 'निरन्ध्र' होने पर भी उसका अर्थ हिन्दी पर नहीं नहीं पड़ता। इसके अर्थ में केवल एक ही बात नहीं का अर्थ है, और यह यह कि संस्कृत के उन शब्दों में अन्तर्भाव की भाषा अर्थिक थी, जिसने उसका अर्थ अर्थ अन्तर्भाव में बहुत कम था। संस्कृत के उन निरन्ध्रों में अन्तर्भाव का भी अर्थ था। इसके अन्तर्भाव संस्कृत अर्थों अन्तर्भाव पर भी थी। उसका अर्थ अन्तर्भाव एक अर्थ के अर्थ का ही अर्थ था। अतः संस्कृत के निरन्ध्रों का अर्थ हिन्दी साहित्य पर न पड़ सका। हिन्दी में निरन्ध्र का अर्थ अन्तर्भाव के निरन्ध्रों के अर्थ के ही अर्थ हुआ है। हिन्दी के निरन्ध्र अन्तर्भाव पर जब हम बात करते हैं, तो यह बात सच रूप से लगने लगती है, कि हिन्दी में निरन्ध्रों की अन्तर्भाव अन्तर्भाव का अर्थ में अन्तर्भाव अन्तर्भाव होने के अन्तर्भाव से ही होने लगती है। हिन्दी के निरन्ध्रों का अर्थ अन्तर्भाव, और अन्तर्भाव की ही अन्तर्भाव के ही निरन्ध्रों के अन्तर्भाव अन्तर्भाव है। अतः यह बात अन्तर्भाव अर्थ से नहीं का अर्थ है, कि हिन्दी में निरन्ध्र शब्द का अर्थ और उसका अर्थ अन्तर्भाव के ही निरन्ध्रों के अर्थ हुआ है।

हिन्दी के अन्तर्भाव पर जब हम अर्थ करते हैं, तो यह देखते हैं, कि हिन्दी में निरन्ध्रों का अर्थ बहुत अर्थ के हुआ है; अन्तर्भाव, अन्तर्भाव, और अन्तर्भाव का अर्थ होने पर भी बहुत अन्तर्भाव 'निरन्ध्र शब्द' अन्तर्भाव अन्तर्भाव में न का अर्थ थी। इसका अर्थ अन्तर्भाव है, और यह यह, कि निरन्ध्र अन्तर्भाव में अन्तर्भाव अन्तर्भाव, अन्तर्भाव, और अन्तर्भाव की अन्तर्भाव अन्तर्भाव है, अन्तर्भाव, अन्तर्भाव, और अन्तर्भाव अन्तर्भाव के अर्थ यह अन्तर्भाव नहीं लगने वाली। यही अर्थ है, कि अन्तर्भाव की अन्तर्भाव अन्तर्भाव में निरन्ध्र शब्द का अर्थ अन्तर्भाव, अन्तर्भाव, और अन्तर्भाव अन्तर्भाव के अर्थ के अन्तर्भाव ही हुआ है। अन्तर्भाव और अन्तर्भाव के अन्तर्भाव निरन्ध्र के अर्थ हिन्दी में भी निरन्ध्र शब्द का अर्थ बहुत अर्थ के हुआ है। अन्तर्भाव अन्तर्भाव हुआ है, जब अन्तर्भाव और अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव ही अर्थ है। अन्तर्भाव, अन्तर्भाव, और अन्तर्भाव अन्तर्भाव तो हिन्दी के अर्थ के साथ ही अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव है, पर अन्तर्भाव निरन्ध्रों का अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव ही था, जब तक, कि वह अन्तर्भाव नहीं हो गई थी, और जब तक अन्तर्भाव के अन्तर्भाव में अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव नहीं किया था।

यह बात नहीं, कि निरन्ध्र की अन्तर्भाव ही अन्तर्भाव अन्तर्भाव में नहीं थी। अन्तर्भाव के अन्तर्भाव से यह बात अन्तर्भाव अन्तर्भाव ही है, कि अन्तर्भाव के अन्तर्भाव में अन्तर्भाव है

‘प्रबन्ध’ और निबन्ध बहुत पूर्व से ही हिन्दी के ‘निरन्ध’ की कल्पना विद्यमान थी। यद्यपि साहित्यिक निरन्धों का पूर्ण रूप से आकार था, पर निरन्ध शब्द अपने स्थान पर विद्यमान था। वह ‘निरन्ध’ शब्द ही संस्कृत से प्राप्त हुआ था। संस्कृत में ‘निरन्ध’ के लिए प्रबन्ध का प्रयोग वर्णित है। संस्कृत का ‘प्रबन्ध’ ही हिन्दी के ‘निरन्ध’ के रूप में प्रयुक्त हो गया। यद्यपि संस्कृत के प्रबन्ध और निबन्ध में कहीं कहीं समानता आता है, पर हिन्दी में कुछ दिनों तक ‘प्रबन्ध’ और ‘निरन्ध’ दोनों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में होता था। संस्कृत के साधारण के अलावा ‘प्रबन्ध’ एक रचना को कहते हैं, जिसमें किसी एक विचार या विषय का अधिकतम सम्बोधन पूर्वक किया गया हो। इसके अधिकृत निरन्ध एक रचना की कहा जाता है, जो वैज्ञानिक अभिव्यक्ति का साधन हो, तथा जो वैज्ञानिक और सत्य हो, तथा किसी व्यक्ति का प्रधानता हो। ‘प्रबन्ध’ और निबन्ध में मौखिक माध्यम होने हुए भी हिन्दी में कुछ दिनों तक दोनों का प्रयोग एक ही अर्थ में होता रहा। कौमोरी के साधन की स्थापना के पश्चात् जब हिन्दी कौमोरी के संघर्ष में आई, तो हिन्दी में ‘निरन्ध’ शब्द में एक नया अर्थ आया। वह संस्कृत के प्रबन्ध शब्दार्थ से पूर्ण रूप से पृथक् होकर कौमोरी के ‘रहे’ शब्दार्थ के रूप में व्यवहृत होने लगा। आज हिन्दी में निबन्ध का अर्थ कौमोरी के ‘रहे’ के ही अर्थ के रूप में व्यवहृत किया जाता है। कौमोरी के ‘रहे’ के आकार प्रसार, और गुण-अर्थ के समान ही हिन्दी के ‘निरन्ध’ का आकार प्रसार और गुण-अर्थ में होता है। इसीलिए तो सभी सम्बोधनों में एक बात से इस बात की स्वीकार किया है कि हिन्दी के निरन्ध के रूप और विचार के दृष्ट से कौमोरी के निरन्धों का ही अर्थ सम्बन्धित है।

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु काल नवीन हुए का काल माना जाता है। हिन्दी के एक और नव-काल में भारतेन्दु काल से ही नवीन भावनाओं का उदय हुआ हिन्दी निबन्ध है। हिन्दी साहित्य में इसे सभी ओरों का एक कहते हैं, और भारतेन्दु प्रबन्ध रूप और विचार भारतेन्दु काल से ही हुआ है। भारतेन्दु इतिवचन हिन्दी सभी ओरों का के सम्बन्ध में माने जाते हैं। भारतेन्दु इतिवचन में जिस प्रकार हिन्दी सभी ओरों के रूप की अन्य विचार उसमें उदयमान, कान्ति, मातृ, और आशीर्वाद इत्यादि साहित्य के सभी की दृष्टि की, सभी प्रकार सभी के सभी द्वारा निरन्ध का बीदा भी ऐसा गया। हिन्दी साहित्य में सर्व प्रथम भारतेन्दु इतिवचन से ही ऐसे निरन्धों की कल्पना, जिसमें कौमोरी के ‘रहे’ के रूप मिलते हैं। यद्यपि उन्होंने उच्चकोटि के निरन्धों की रचना नहीं की, किन्तु इस बात से सम्बन्धित नहीं किया या समझा, कि उन्होंने ही हिन्दी निरन्ध के बीदे की स्थापना। उन्होंने हिन्दी निरन्ध के बीदे की केवल स्थापना ही नहीं, बल्कि उसके विचार और उनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रबन्ध भी किया। उनके प्रबन्धों, और उनकी उद्देश्यों से उनके रूप में ही सभी प्रकार निरन्ध के सभी का आधिपत्य हुआ, जिसमें

बड़ी नारायण चौधरी, जाला भी निवासस्थान, पं० मोकिन्द नारायण मिश्र, पं० खोशाराम, पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० अविनाशचन्द्र व्यास, पं० बालकृष्ण भट्ट, और पं० केशवराय भट्ट इत्यादि का महान् पूर्ण स्थान है।

भारतेन्दुजी ने जिस निबन्ध के पीछे जो लगाया था, उनके सहयोगियों ने उसे पक्कित और पुष्किल बनाने के लिए उसे सार और पानी दिया। हिन्दी निबन्ध का वह गौरव बाल था। इस समय वह पीरे-पीरे आये बढ़ता सीख रहा था। कलः उसका क्षेत्र बहुत ही सीमित था। भारतेन्दु इतिवृत्त और उनके सहयोगियों ने निबन्ध रचना के लिए बिन विषयों को चुना था, उनमें अधिकतर तीन प्रकार के विषय थे—सामाजिक, आतु संबंधी, और वर्ष वर्ष स्नेहार्थ संबंधी। अधिकतर निबन्ध पदों और स्नेहार्थों पर ही लिखे गए हैं। इन निबन्धों में भी विचारों की कटुता और वर्णन की कविता नहीं जाती है। इनके लेखकों ने विचारों और भावों की ओर बहुत कम ध्यान दिया है। उनका ध्यान शब्दों की ओर बहुत अधिक दिखाई देता है। किसी किसी निबन्ध लेखक ने जो शब्दों का 'अनुप्रास' रक्षक करने में अपनी प्रतिभा का अद्भुत प्रमाण प्रस्तुत किया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इन लेखकों के संबंध में अपने जो विचार व्यक्त किए हैं, उसके उनकी विमति, और उनके रचन का वास्तविक चित्र सामने आ जाता है। देखिए—'बहुत से लेखकों का यह हस्त रहा, कि कभी कलमबार नकीली करते, कभी उपमाएँ निकालते, कभी नाटक से उदाहरण देते, और कभी कविता की आलोचना करते, और कभी कभी इतिहास और पुराणों की बातें सामने लाते।' इस प्रकार हम आज के निबन्ध लेखकों का कथना कोई विविधित लक्ष्य नहीं था। विशिष्ट लक्ष्य न होने के कारण उनके निबन्धों की कला का स्तर निम्नस्तरीय अत्यन्त-अल्प दिखलाई पड़ता है। उनके निबन्धों में न संकीर्णता है, और न व्यवस्था है; फिर भी उनके निबन्धों का मूल्य है, और वह इसलिये है, कि उनके निबन्ध हिन्दी के निबन्ध साहित्य के इतिहास को सुस्पष्ट करने में अधिक सहायता पहुँचाते हैं।

हिन्दी निबन्ध—भारतेन्दु काल

हिन्दी निबन्ध के इतिहास, और उसके सर्वाधिक विकास को ठीक ठीक समझने के लिए हम उसे तीन कालों में विभक्त करते हैं—भारतेन्दुकाल, द्वितीयकाल, और हिन्दी निबन्ध मार-काव्यनिक काल। हिन्दी निबन्ध के अग्रदूत भारतेन्दु केन्दु जी के पूर्व हरिश्चन्द्र जी हैं। सर्व प्रथम उन्होंने ही हिन्दी निबन्ध को बहुरूप दिया, जिसे हम निबन्ध कह सकते हैं। यही कारण है, कि हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी से ही हिन्दी निबन्ध के इतिहास का प्रारंभ मानते हैं। पर इतना यह सत्य नहीं है, कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के पूर्व हिन्दी निबन्ध का अस्तित्व ही नहीं था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के पूर्व स्वामी दयानन्द का आधिभारत ही युवा था। स्वामी दयानन्द जी के द्वारा कार्य समाज की प्रतिस्थापना भी हो चुकी थी। कार्य समाज के विद्यार्थी और प्रचारकों की ओर से हिन्दी में निबन्ध भी लिखे जाने लगे थे। इन निबन्धों का उद्देश्य केवल वर्ग प्रचार, और धार्मिक शिक्षाओं का संजन संजन होता था। इनमें न साहित्यिकता थी, न उनकी भाषा और शैली का ही श्रेष्ठ उदाहरण होता था। इस प्रकार के निबन्धों के प्रकाशन से पं० भट्टा राम प्रसन्नोरी ने सर्वाधिक प्रशंसा प्राप्त की है।

सर्व प्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने ही हिन्दी निबन्ध को नियम और व्यवस्था के अधीन लाया। उन्होंने निबन्ध में साहित्यिकता का समावेश किया, और हिन्दी निबन्ध उसमें मनोवैज्ञानिकता का भी प्रचार किया। बिहार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भाषा, और शैली-प्रत्येक दृष्टि से उन्होंने हिन्दी निबन्ध को एक नया जीवन प्रदान किया। उन्होंने हिन्दी निबन्ध की गतिशील बनाने के लिए तीन वर्ष प्रकाशित किए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—कवि वचन दूषा, हरिश्चन्द्र चन्द्रका, और वातवीचिनी। इन वर्षों में भारतेन्दु जी ने विभिन्न विषयों पर लेख प्रकाशित किए। उन्होंने सर्व विभिन्न विषयों पर महत्वपूर्ण निबन्धों की रचना की। उन्होंने अग्रगण्य लेखकों को भी निबन्ध-रचना के लिए प्रोत्साहित किया। कहना न होगा, कि उनके प्रोत्साहन से कई निबन्ध लेखकों का आधिभारत हुआ, जिन्होंने हिन्दी निबन्ध कला को अग्रसर करने में प्रयत्नशील योग दिया। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के प्रयत्नों से ही हिन्दी निबन्ध कला विश्व-भाषाओं की सादृश्य की पार करती हुई उच्चता के क्षेत्र की ओर जाने बंद नहीं है।

भारतीय दृष्टिकोणों के विभिन्न विषयों पर विमर्शों की रचना की है। उनके मादलों में भी विमर्श कला का आनुभावी हुआ है। उन्होंने कई आख्यानों की भी रचना की है। इतिहास के अन्तर्ग भी उन्होंने कई गणेशप्राप्तक विमर्श लिखे हैं। उन्होंने हारम और अन्य संबंधी लेखों की भी रचना की है। उनके विमर्श दृष्टिकोण कला और ५ में संश्लेषित है। उनके विमर्शों का एक ही एक समान नहीं है, जो उनकी चार प्रकार की होती पाते हैं—परिचयगतक होती, मायागतक होती, गणेशप्राप्तक होती, और अन्तर्गतक होती। परिचयगतक होती का विषय इतिहास संबंधी लेखों में मिलता है। माया दृष्टि रचनाओं में मायागतक होती मिलती है। माया कवनी, अन्तर्गतक, और माया दृष्टि हारमि मादलों में इसी होती का विकास हुआ है। परिचयगत और ऐतिहासिक विमर्शों में गणेशप्राप्तक होती का आविर्भाव हुआ है। अन्तर्गत और अन्तर्गत लेखों में अन्तर्गतक होती मिलती है।

सैली की दृष्टि से ही नहीं, भाषा की दृष्टि से भी भारतेन्दुजी के निबन्धों में नवी-
रक्त मिलती है। भारतेन्दुजी के पूर्व जगन्नाथ, बरत मिश्र, हनुमानदास शर्मा,
श्रीराम लाल हनुमन्त आदि की भाषा का प्रचार था। भारतेन्दुजी ने इस क्षेत्र की
से, प्रथम काव्यी भाषा का प्रचार किया। उनकी भाषा कहीं कहीं है, जिसमें संस्कृत
के सबसे हुए लक्षण शब्दों के साथ ही साथ 'आधी, और आधी, के भी प्रचलित
शब्द पाए जाते हैं। इन्होंने अपनी भाषा की शक्ति के अधिक व्यावहारिक और
वर्णन करने का प्रयत्न किया है। उनके भाषा की व्यवहारिक भाषा का विकास
कई हस्तप्रत के साथ हुआ है। निम्न की भाषा में उस प्रकार की व्यावहारिकता
नहीं पाई जाती। निम्न की भाषा में संस्कृत के लक्षण शब्दों का प्रयोग अधिक
मिलता है, जिससे प्रभाव और शक्तिप्रतिष्ठा में कहीं कहीं भाषा उपरिष्ठ हो गई है।
यह कहीं हुए भी इस प्रथम भाषा के भारतेन्दुजी के निम्न की भाषा के वास्तविक
प्रभाव को प्रकट किया है।

भाषाविद्वानों ने हिन्दी विषय के किन्तु बीरे की सराफा कर, उसे राष्ट्रिय और प्रसिद्ध बनाने में पं० प्रताप साहयस्य मिश्र, पं० बालकृष्ण शर्मा, डाक्टर कमलभाषा आठ मोहनसिंह, बड़ी सहाय्य दीवानी, साहब की निराला, के विशेषकर बरिष्ठ कविचार्य आठ, पं० सुभाष चिन्मयी, और पं० रामचन्द्र मोहनजी शर्मादि ने अग्रणीय योग प्रदान किया है। यद्यपि इन सभी कृत्यों में अपनी भाषा और शैली के द्वारा हिन्दी विषय कला की महान पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है, किन्तु इनमें पं० बालकृष्ण शर्मा, और पं० प्रतापसाहयस्य मिश्र की सेवाएँ प्रमुख हैं। अतः इन नहीं इनकी के द्वारा विशेष रूप से प्रशंसा प्राप्त कर भाषाविद्वानों को समस्त करेंगे।

महोदय काका के निर्वासन क्षेत्रों में थे- महाकृष्ण महो का कविक मूल्य इस'

स्थान है। मारोतेदुखी के अन्तर्गत वं० बालकृष्ण मधुकी के अन्तर्गत के द्वारा हिन्दी वं० बालकृष्ण निम्न कला को अधिक बल और जीवन प्राप्त हुआ है। यह मधुकी ने हिन्दी विकास कला को दो स्तरी में जीवन प्रदान किया है—प्रकार के रूप में, और निम्न-प्रकार के रूप में। उनका प्रकार का रूप अधिक शुद्ध और उन्नत है। उन्होंने अनेक कठिनायियों के होते हुए भी सर्वोत्तम वरीय रूप हिन्दी-शरीर का प्रकाशन और सम्पादन किया। हिन्दी शरीर के द्वारा उन्होंने 'हिन्दी निबंध' कला को अधिक उत्तम प्रदान की। उन्होंने हिन्दी-शरीर में विविध विषयों पर लेख प्रकाशित किए। उन्होंने सर्व हिन्दी शरीर में विविध विषयों पर लेख लिखे। उनके निबंधों का अर्थ एक सत्य है। उनके निबंध छोटे-छोटे विषयों पर बड़े मार्मिक दृष्टि का लिखे गए हैं। छोटे-छोटे विषयों को निबंध का रूप देने में उन्होंने अद्भुत कार्य प्रदर्शन किया है। उनके निबंधों का एक संक्षेप 'साहित्य सुन्दर' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

हीरो और भाषा की दृष्टि के भी मधुकी के निबंध बड़े मार्मिक हैं। उनके निबंधों में दो हीरो प्रियेय रूप के पाई जाती हैं—परिचयनात्मक हीरो, और भाषात्मक हीरो। सामाजिक विषयों पर लिखे गए और उन्नत मार्मिक निबंधों में हीरो-भाषात्मक हीरो का स्थान हुआ है। अतः पूर्ण लिखे गए साहित्यिक निबंधों में भाषात्मक हीरो पाई जाती हैं। उनकी भाषात्मक हीरो अधिक आकर्षक, और प्रभाव प्राप्त हुआ है। इसी हीरो के निबंधों के कारण मधुकी को निबंध-कला में अधिक सुप्रसिद्धि प्राप्त हुई है। भाषा की दृष्टि के भी मधुकी का अपने समकालीन निबंधकारों में सर्वोत्तम स्थान है। उनकी भाषा बड़ी विभ, और संवत् है। उनके निबंधों में दो प्रकार की भाषा पाई जाती है। एक प्रकार की भाषा है समुद्र के तट पर समुद्रों की प्रभावना है, और दूसरी प्रकार की भाषा है समुद्र के तट पर समुद्रों के नाम ही नाम जैसे-जैसे, दारुण, और बरती समुद्रों का भी योरा मिलता है। उन्होंने अपनी भाषा में सुशरीर और सुशरीर का भी प्रयोग किया है।

मारोतेदुखी के अन्तर्गत हुए निबंध के लीदे को वं० अन्तर्गतप्रकार निम्न के द्वारा अधिक बल और जीवन प्राप्त हुआ है। वं० प्रकाश प्रकाश निम्न मारोतेदुखी वं० प्रकाश प्रकाश के निम्नकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते प्रकाश निम्न हैं। मधुकी की भाँति ही निम्न ने भी निबंध कला को दो स्तरी में प्रोत्साहन प्रदान किया है—प्रकार के रूप में, और निबंध लेखन के रूप में। प्रकार के रूप में उन्होंने प्रकाश, हिन्दुस्थान, भारत जीवन, और प्रोत्साहन पद इत्यादि वरीय का प्रकाशन किया। 'प्रकाश' में उनके निबंधों का प्रकाशित हुआ करते थे। उनके निबंधों का विषय सामाजिक, सांस्कृतिक, और राष्ट्रीय होता था। वे अपने मार्मिक और सामाजिक विषयों को लेकर सर्व रूप विनोद पूर्ण निबंध लिखा करते थे।

निम्न की निम्नकार का अर्थ एक विशिष्टता रखता है। यह नि

उन्होंने संकीर्ण विषयों पर निबन्धों की रचना नहीं की है, पर उनके निबन्धों में एक विशिष्टता पाई जाती है। वह विशिष्टता है, उनका व्यंग्य और हास। हास और व्यंग्य पूर्ण निबन्धों की रचना के लिए ही उन्हें हिन्दी के निबन्ध-कला में सुचीति प्राप्त है। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, और राजनीतिक विषयों पर व्यंग्य पूर्ण निबन्धों की रचना की है। उनके निबन्धों के कुछ अंग एक प्रकार हैं—हीरो, विक्कट, देवीकालि, पुत्र राम, सुन्दर, बंगाली, कन्दरी की कथा, कावेय न नुके, कटीला ले न नुके। इसी प्रकार के और भी बहुत से नाम, और वाचस्पति विषयों पर उन्होंने निबन्ध लिखे हैं। उनके निबन्धों में जो दो विषय का विशेषान मिश्रण है, और न माफी की संकीर्णता ही भलाई देती है। उनके सभी निबन्ध वर्तमानक हैं, किन्तु पर हास और व्यंग्य का पुत्र है। हास और व्यंग्य के द्वारा उन्होंने अपने निबन्धों को अधिक प्रभावपूर्ण और मार्मिक बना दिया है।

भास्कर कान्ति के निबन्धकारी में हीरो और भावा की दृष्टि से निबन्धों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। निबन्धों के विषयों में ही प्रकार की हीरो पाई जाती है—संकीर्ण विचारामय, और हास एवं व्यंग्य पूर्ण। संकीर्ण विचारामय हीरो का विकास उन निबन्धों में हुआ है, जिनके विषय-विशिष्टता और विचारपूर्ण है। इस हीरो में निबन्धों की अधिक स्पष्टता नहीं प्राप्त हो सकी है। हास का यह है, कि वह हीरो निबन्धों की प्रकृति के विपरीत थी। निबन्धों विशेषी समाज के स्थिति में। उनकी पूर्ण हीरो जिते हास एवं व्यंग्य पूर्ण हीरो नहीं है, उनकी प्रकृति के अनुकूल थी। अतः इस हीरो में 'उन्हें अधिक स्पष्टता प्राप्त हुई है। उनके धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयों के निबन्ध हीरो हीरो में हैं। उनकी इस हीरो के दो रूप मिलते हैं—एक रूप ही यह है, जिसमें हास और विरोध की अधिकता है और दूसरा रूप यह है, जिसमें व्यंग्य और कटाक्ष के रूप हैं। इस हीरो के दोनों ही रूपों का निर्माण उनके निबन्धों में अधिक स्पष्टता और सुरक्षित के साथ हुआ है। हीरो के अनुकूल ही निबन्धों की भाषा भी है। निबन्धों में अपने निबन्धों की रचना का वाचस्पति के लिए की है। अतः उन्होंने अपनी भाषा में संकीर्ण नामों का अधिक उपयोग किया है। उनकी भाषा में सरली, पारसी और लैंग्वेज के प्रभावदा शब्द भी मिलते हैं। उन्होंने अपनी भाषा में समाज में प्रचलित कथाओं और सुझानों का अधिक उपयोग किया है। उनकी भाषा का समाज के लिए उपयुक्त हो है, पर वह शुद्ध नहीं है। उन्होंने भाषा की शुद्धता की ओर बहुत कम ध्यान दिया है। उनकी भाषा में व्याकरण और विराम इकोन व्यवस्था काल्पनिक दृष्टि से पाई जाती है।

भास्कर कान्ति के निबन्धों में न- नही नामावली पीछरी, काता भी निबन्धकार, हासुर कर्मोद्धारि, न- अभि-कादर प्रभाव, कान्तिप्रभाव, और कांति प्रभाव भास्कर कान्ति के सभी निबन्धों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। नही नामा-वली निबन्धकार नही पीछरी में समादर और निबन्धकार के रूप में

निबन्ध कला का गृ गार किया है। यह आनन्द कादम्बिनी के सम्पादक थे, और प्रायः इसी में निबन्ध लिखा करते थे। इन्होंने नाटकों की भी रचना की है। उनकी भाषा और शैली अधिक कला पूर्ण तथा विलक्षण है। उन्होंने अपनी भाषा में अनुप्रासित शब्दों की हाट लगाने में भी अपने ध्यान को केन्द्रित रखा है। लाला श्री निवासदास की भाषा में बोलचाल के शब्द मिलते हैं। इन्होंने अपनी शैली को अधिक व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया है। डाकुर अमरमोहनसिंह की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता मिलती है। पं० अम्बकादत्त व्यास, रामाकृष्णदास, और कार्तिक प्रसाद खत्री ने भी गद्य में पुस्तकें लिख कर निबन्ध कला को किसी न किसी रूप में प्रोत्साहन प्रदान किया है।

हिन्दी निबन्ध—द्विपेदी काल

हिन्दी निबन्ध का द्वितीय काल द्विपेदी काल है, जिसके प्रारम्भ पर महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। मारलेन्दु काल में हिन्दी निबन्ध में कम प्रारण्य करते जाते काल में द्विपेदी काल में हिन्दी का प्रयत्न किया था। मारलेन्दु काल में उसका क्षेत्र बहुत निबन्ध कला ही सीमित था। अधिकांश निबन्धकारी ने वर्तमानक शैली के क्षेत्र में ही अपनी प्रविष्टि का दर्शन किया है। इनकी भाषा में केवल शब्दों का ही बाहुल्य पाया जाता है। कुछ ऐसे ही निबन्धकार मारलेन्दु काल में हुए हैं, जिन्होंने समझाए कुछ शब्दों का ढेर एकत्र करने में ही अपनी कला का प्रयोग किया है। मारलेन्दु काल के निबन्धकारों की दृष्टि निबन्ध के विवेचन की ओर बहुत कम रही है। भाषा की शुद्धता, और वैज्ञानिकता की ओर भी उन्होंने बहुत कम ध्यान दिया है। मारलेन्दु काल के इन कालों की पूर्ति द्विपेदी काल में हुई है। द्विपेदी काल में निबन्धकाल ने अपने पग की छाये बढ़ाया है। मारलेन्दु काल में नहीं वह सामाजिक और धार्मिक विषयों की ही लेकर ब्याप्त दिखाई पड़ती है, नहीं वह द्विपेदी काल में राजनीति, साहित्य, अर्थ, पुस्तकत्व इतिहास, अर्थ, और विज्ञान आदि विषयों के क्षेत्र में भी प्रदर्शन करती है। द्विपेदी काल में वह विषय के बाहर ही चलन न लगा कर उसके भीतर भी प्रवेश करती है। द्विपेदी काल में उसके दृष्टि विवेचन, और विश्लेषण की ओर दिखाई पड़ती है। शैली और भाषा के क्षेत्र में भी द्विपेदी काल की द्वितीय निबन्ध कला में परमोन्नति की है। द्विपेदी काल में शैली अधिक परिष्कारित, व्यवहारिक, और प्रभावशाली तथा प्रविष्टि करती है। द्विपेदी काल में निबन्ध की शैली की प्रवृत्ति आज की ओर अधिक उन्मुख हुई है। उसके वैज्ञानिकता में भी सम्बोधन किया है। द्विपेदी काल में निबन्ध की भाषा में अधिक परिष्कारित और संतोषजनक हुआ है। मारलेन्दु काल में निबन्धों की भाषा में जो कुरियों की, उनके पूर्ण रूप से सुधार द्विपेदी काल में हुआ है। द्विपेदी काल में केवल भाषा की कुरियों की ही दूर नहीं किया गया, बल्कि भाषा के भीतर वैज्ञानिक सुधी का भी सम्बोधन किया गया। भाषा की अधिक शुद्ध, शुद्ध, और परिष्कारित भी बनाया गया। विचार, शैली, और भाषा-सम्बन्ध दृष्टि से द्विपेदी काल द्वितीय निबन्ध कला का 'वीरन दास' काल माना जा सकता है।

विश्व प्रसार मानवीयदृष्टी से विश्वभू के पीढ़े को समग्र रूप से नष्ट मान लिया है, उसी प्रकार पं० महावीर प्रसाद जी ने उस पीढ़े को भीषण और प्राण देकर क्षयित पं० महावीर कहकर माना है । पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने प्रसार द्विवेदी विमर्श के पीढ़े को नष्टकार, और कुछ क्षणों के लिए कुछ क्षणों और प्रफल किये हैं । उन्हीं के प्रकाशों के परिणाम स्वरूप आज द्विवेदी विमर्श का पीढ़ा अपने क्षेत्र में, अपनी विशिष्टता के साथ अद्वितीय रहा है । यहाँ मान्य है, कि हम द्विवेदीजी को कुछ निर्भीक मानते हैं । द्विवेदीजी ने उन स्वतन्त्र पुष्टियों को दूर किया, जो भारतीय काल में विमर्श प्रसार के स्वाद थीं । द्विवेदीजी के पूर्व विमर्श की हीनता हीनता थी । कुछ ही विषयों पर विमर्श-प्रकार की काही थी, और उनकी कुछ ही हीनता ही थी । द्विवेदीजी ने विषयों के क्षेत्र का विस्तार किया, और उन विषयों के अनुसार ही उनकी हीनता को नष्ट करने की निश्चित की । उन्होंने उन हीनता को खोज, प्रसार, और अनुसार से भी परिपूर्ण किया । उन्होंने हीनता में मानों के उन्मेष की उत्पत्ति उत्पन्न की । इसका ही नहीं, उन्होंने उनकी विशिष्टता और विमर्श का कुछ भी नष्ट किया । इस प्रकार उन्होंने हर एक प्रकार के हीनता की परिपूर्णता, और परिपूर्णता बनाया । हीनता की भीति ही उन्होंने माना का भी नष्ट किया । उनके पूर्व माना का पीढ़े अद्वितीय नहीं था । जिसने विमर्श-प्रसार से, कम की अपनी अपनी भाषा थी । लड़ी लड़ी का पीढ़े विशिष्टता उत्पन्न न था । माना में अनुविष्टों की भी प्रसार थी । द्विवेदीजी ने लड़ी लड़ी के प्रसार की निश्चित करने, और माना को परिपूर्णता करने के उद्देश्य से 'मानवता' में दोनो विमर्शकारों की काही-प्रकार की अपनी प्रारम्भ कर दी, जो भाषा के क्षेत्र में काही-प्रकार की काही करने थे । एक और उन्होंने विमर्श-प्रकार की पुष्टि प्रकाश प्रदर्शन की, और दूसरी और उन्होंने माना के कुछ प्रसार की भी उन्मेषता करना प्रारम्भ कर दिया । द्विवेदी जी के हम प्रकाशों के परिणाम स्वरूप लैकनी और विमर्शकारों का मान माना की प्रसारता की और प्रसारित हुआ । ये माना के क्षेत्र में अद्वितीय और मानवता की काही काही करने लगे । द्विवेदीजी की काही-प्रकारों के अन्तर्गत हीनता में दोनो माना जिसने कहे, जो स्वाभाविक की दृष्टि से कुछ ही हीनता ही थी, कम ही उनमें वैज्ञानिक उन्मेष का भी समावेश होता था । इस प्रकार द्विवेदीजी के प्रकाशों के लड़ी लड़ी में एक प्रसार प्रारम्भ किया, और माना परिपूर्णता तथा प्रसार हुई ।

हिमेलीनी ने केवल माया और शैली के क्षेत्र में ही सुधार लदी किया, बल्कि उन्होंने विषयों के क्षेत्र का भी विस्तार किया। हिमेलीनी के पूर्व समाज, यहाँ और राजनीति संबंधी विषयों पर ही विषयों की रचना की जाती थी। इन विषयों के विषय में जो, केवल उनके पास समाज का ही ज्ञान रहता था। हिमेलीनी ने "बदलती" के द्वारा विषयों का विस्तार किया। उन्होंने समाज में विभिन्न विषयों पर लेख प्रकाशित करना आरंभ कर दिया। वे "बदलती" में दूसरों के विभिन्न विषयों को लेखते हैं, साथ ही स्वयं भी विभिन्न विषयों पर लेख लिखते हैं। हिमेलीनी

बैंगला, और मराठी भाषा के वक्ता-विचारों से विभिन्न निरन्धों के लेख वर्णित भी किया करते थे। इस प्रकार के वर्णित निरन्धों के द्वारा वर्णित हिन्दी के लेखकों में, विभिन्न निरन्धों पर लेख और निरन्ध लिखने की शक्ति भी उत्पन्न हो। हिन्दी की के इन लेखकों का परिचय हमें इसी भाषा, और कल्प-कल्पनक द्वारा। छोटे ही दिनों में हिन्दी साहित्य का दोन विभिन्न निरन्धों के लेखों से कर गया, और साथ ही उसकी विभिन्न निरन्धक रूप बनाने, और इस अधिमान की बहुत समझी जाती है।

हिन्दी की 'निरन्ध' साहित्यिक जीवन भाषा और लेखों के निर्माण तथा प्रकार में ही उत्पन्न रहा। जिनमें निरन्ध-रचना का समय बहुत कम प्राप्त हो सका। उन्होंने जिन निरन्धों की रचना की है, उनमें की उनका उद्देश्य 'निरन्ध रचना' नहीं, भाषा और लेखों का निर्माण ही है। यही कारण है, कि निरन्ध-रचना के क्षेत्र में उन्हें अधिक प्रसक्ति प्राप्त नहीं हो सकी है। किन्तु इसका यह कार्य बदलने नहीं है, कि हिन्दी की निरन्ध-रचना की प्रतिक-प्रतिक का समय था। हिन्दी की निरन्धों के समय में जिन निरन्धों की रचना की है, अथवा जिन निरन्धों की रचना में उनका उद्देश्य 'निरन्ध-रचना' है, उनमें हमने निरन्ध-रचना का विचार नहीं उद्घमरता के साथ हुआ है। उनका 'कवि और कविता' शीर्षक निरन्ध इसी प्रकार का है। 'कवि और कविता' की शक्ति ही हिन्दी की और भी उत्कृष्ट निरन्धों की रचना की है। उनके 'निरन्ध' निरन्धों की इन तीन शक्तियों में विभक्त कर सकते हैं—साहित्यिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, और जीवन परिचय समझी। उनके सभी निरन्ध निरन्ध पूर्ण, संयत, और सुगठित हैं। उन्होंने अपने निरन्धों के निरन्ध के अनुसार ही उनमें लेखों और भाषा का भी प्रयोग किया है। उनके निरन्धों के लक्ष्य निरन्ध, रचना रचना, साहित्य जीवन, आध्यात्मिक, और सुगठित आदि नाम से वर्णित हुए हैं।

हिन्दी की निरन्धों का यह रूप उत्पन्न करते हैं, तब उनमें तीन प्रकार की शक्तिर्षा पाते हैं—परिचयगतक, आलोचनात्मक, और संवेद्यतात्मक। इन विज्ञान लेखकों निरन्धों में परिचयगतक शीर्षक का निरन्ध हुआ है। यह शीर्षक अधिक सरल और स्वाभाविक है। आलोचनात्मक शीर्षक इन निरन्धों में पाई जाती है, जिनकी रचना लेखकों की शक्तियों को करता और साथ। तथा शीर्षक के परिचयगत के उद्देश्य से भी गई है। यह शीर्षक सम्पूर्ण और जीवन पूर्ण है। यही यही इन शीर्षकों में जगत का भी गुरु है। संवेद्यता पूर्ण निरन्धों में संवेद्यतात्मक शीर्षक वर्णित हुई है। इस शीर्षक में निरन्ध-आदि रचना और निरन्ध पूर्ण है। इनकी शक्तिर्षा की संवेद्यता यह शीर्षक अधिक सुदृढ़ और सम्पूर्ण है। हिन्दी की निरन्धों में अपनी सभी शक्तिर्षा में वरत भाषा की ही वरत देने का प्रयत्न किया है। उनके आलोचनात्मक और संवेद्यतात्मक निरन्धों की भाषा में संयुक्त के उत्तम रूप कुछ अधिक अथवा मिलते हैं, किन्तु यही भी उनकी भाषा की उत्तमता और सुनोक्ता वर्णित दिखाई पड़ती

बड़ी है। भाषा की सीमा ही उनकी सीमा की अधिक व्यावहारिक और व्यावसायिक है। सीमा का अर्थ उनके विशालों में सर्वत्र मिलता है। भाषा की और अधिक शक्ति होने के कारण यही यही उनकी सीमा में सम्भाव्यता उत्पन्न हो गई है।

ही बालमुकुन्द तुलु हिन्दी भाषा के परम्परागत नमूने हैं। विशाल भाषा की, उन्होंने ही कभी के रूप की है—लेखक के रूप में, और लेखक के रूप में। अथवा बालमुकुन्द तुलु के रूप में उन्होंने 'माला गिर', और 'बालागली हाथी' यही का अर्थ दिया है। लेखक के रूप में उन्होंने कई महत्वपूर्ण विषयों पर विशालों की रचना की है। उनके विशालों का एक संवाद 'तुलु विशालागली' के नाम से प्रकाशित हुआ है। तुलु की के विशालों का विशाल सामाजिक, और राजनीतिक है। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर ही बलपूर्वक दुई भाषा में अनेक विषयों की रचना की है। उनके विशालों में 'विशाल हाथी का विशाल' सामाजिक प्रकाश है। राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रियता की उनके विशालों में अनेक विषय प्रकाश हुआ है।

तुलु की सबसे ऊर्ध्व के क्षेत्र में है। हिन्दी के क्षेत्र में आने पर ही उनकी भाषा पर ऊर्ध्व का प्रभाव पड़ा। ऊर्ध्व के प्रभाव के ही कारण उनकी भाषा बलपूर्वक और प्रकाशित हुई है। उन्होंने अपनी भाषा में अपनी और अपनी के व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग बलपूर्वक किया है। अनेकों के शब्दों का प्रयोग भी यही यही उनकी भाषा में मिलता है। भाषा की सीमा ही उनकी सीमा की ऊर्ध्व से प्रभावित है। उनके विशालों में इस ही प्रकार की सीमा की है—परिचयात्मक, और साहित्यिक-आत्मक। परिचयात्मक सीमा उनके अधिकतर विशालों में मिलती है। इन सीमा में छोटे छोटे भाषा हैं, जो भी सीमा हैं। इन सीमा में उन्होंने अनेक और अनेक प्रकार भाषा का प्रयोग किया है। अनेक विषयों के विशाल साहित्यिक-आत्मक सीमा में मिले गए हैं। इन सीमा के विशालों की भाषा में अनेक के अनेक शब्दों की अधिकता मिलती है।

नेपालभाषा बलपूर्वक अनेक तुलु रूप से विशाल लेखक नहीं थे, पर कभी कभी सामाजिक पर परिचयात्मक में विशाल दिया करते थे। उनके विशालों में अनेक-अनेक साहित्यिक नमूने अनेक-अनेक विशाल प्रकाश हुआ है। उनके विशालों में एक अनेक विशालता नहीं मिलती है। वे अपनी अनेक भाषा की विशालता अनेक से अनेकों के समाने प्रकाश करते थे। उनके विशालों की भाषा यही बलपूर्वक, प्रकाश और अनेक-अनेक है।

नेपाल भाषागत विशाल प्रविभागीय विशालता में। उन्होंने सामाजिक, और साहित्यिक विषयों पर विशालों की रचना की है। उनके विशालों पर अनेक के ने-नेपाल भाषागत ऊर्ध्व निर्माण, भाषा और दली की सीमा की भाषा विशाल है। वे विशाल मिलते समय भाषा और दली की सीमा की ही अनेक नाम पर विशाल मिलते थे। उन्होंने अनेक विषय 'अनेक' की सीमा पर

हिन्दी में 'बसि और विरह' के नाम से एक पुस्तक का विमर्श करना भी पारंपरिक था। पर वह पुस्तक पूर्ण न हो सकी। इस समय उसके को विरह मिलते हैं, उनके उनकी भाषा का पता लगता है। उनकी भाषा कम कम पुस्तक और समाज अनुपस्थित है। उसके संस्कृत के उत्तर सुनने को बहुत है। उनके विमर्श का एक संकेत 'बसि विरह' के नाम से प्रकाशित हुआ।

हिन्दूों का ल के विरासतकारों में बन्धु-सम्बन्धसुन्दरदासजी का साहित्य महत्व पूर्ण स्थान है। बन्धु-सम्बन्धसुन्दरदासजी ने साहित्य-क्षेत्र में तीन कर्मों में सुशोभित वाता बन्धु-सम्बन्धसुन्दरदास जी है—कवय प्रयोगों के लाल में, विरासतकार के रूप में, और सुलोक कव्यादक के रूप में। अंक प्रयोगों के रूप में उन्होंने महत्व पूर्ण र्कर्मों की रचना की है। उनके र्कर्मों में 'समाधि विज्ञान', और 'साहित्यशास्त्र' का स्थान सर्वोपरि है। विरासतकार के रूप में उन्होंने साहित्य के विभिन्न कर्मों पर लेख लिखे हैं। उनके विरासतों का विषय कला, वास्तव, कविता, और साहित्यिक विचार हैं। उनके विरासतों में उनके सम्बन्धन की सम्मोक्षा और सम्बन्धितता पाई जाती है। उनके विरासत साहित्य उल्लेखों के और साहित्य का महत्व है। सम्बन्ध के रूप में उन्होंने विभिन्न सुलोकों का सम्पादन किया है। उनकी सम्पादित सुलोकों सर्वोच्च कक्षाओं में पाई जाती हैं।

क्यू रसमकुन्दराजी के निम्नी में दो प्रकार की होती गई जाती है—
विचारामय, और मनेषकुन्दराजी । विचारामय होती का उदय भावा-विमान सभी
विचार पूर्व निम्नी में हुआ है । इस होती में निम्न के अनुसृत ही होते होते
समय मिलते हैं, जो अविद्य भाव पूर्व काय कहते हैं । यही यही कामरूपका-
कुमार लगे लगे बाकी का भी प्रयोग हुआ है । इस होती की भाषा में समस्त के
विश्व लक्षण सभी की प्रकृत्य मिलती है । मनेषकुन्दराजी होती का विचार मने-
षका सभी निम्नी में हुआ है । विचारामय होती की अवेद्या पर होती लक्ष्य
और व्यापारिक है । इसमें एक कुन्दराजी और अनुसृत कायामय की भीति निम्नी
की लक्ष्य करने का प्रयोग किया है । क्यू रसमकुन्दराजी में होती के अनुसृत ही
भाषा का प्रयोग किया है । उन्होंने सभी निम्नी पर ही निम्नी की रचना की है ।
अतः उनकी भाषा में अविद्य भाषा और विचार पूर्व है । उनकी भाषा में लक्ष्य
के लक्षण सभी की प्रकृत्य मिलती है । निम्नी सभी सभी का प्रयोग भी उन्होंने लक्ष्य
के रूप में अपनी भाषा में किया है । उनकी भाषा के दो रूप हैं—एक रूप
ही वह है, जो उनके सभी में मिलता है, और दूसरा रूप वह है, जो उनके निम्नी
में प्राप्त होता है । सभी की भाषा अविद्य आदिनिष्ठ और निष्कृत्य है । निम्नी में
लक्ष्य और अविद्य भाषा का प्रयोग हुआ है ।

एन. बालगुप्त, राजीव गुप्तेरी प्रकाशित विषयबद्ध हैं। कृपया उन्होंने चोरे ही के विषयों की रचना की है, पर उन चोरे विषयों के ही विषय बालगुप्त में उनका

पं० चम्पूवर आरत पूजा' तथा वह गया है। हिन्दी साहित्य में तुलसी
 रामों तुलसी की योग्यता में प्रसिद्ध है—कदाचित्तर के रूप में, संवादक
 के रूप में, और निरन्धकार के रूप में। कदाचित्तर के रूप में उन्होंने अत्यन्त कदा-
 मित्रों की रचना की है। 'उत्तम कदा का' उनकी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कदामित्रों में
 एक कदाचित्तर कदाचित्तर है। संवादक के रूप में उन्होंने 'कदाचित्तर' का संवादक
 कदाचित्तर के साथ किया था। कदाचित्तर में उनके संवाद और भाषा पूजा
 निरन्ध प्रकाशित हुआ था। उनके निरन्धकार का अन्त कदाचित्तर के द्वारा
 ही सम्पन्न उपलब्ध हुआ था। तुलसीदास के निरन्धों का निरन्ध साहित्यिक, साहि-
 त्यिक, और कदाचित्तरात्मक है। उनके निरन्धों में 'कदाचित्तर' अपने रूप का एक
 अत्यन्त पूजा निरन्ध है।

तुलसीदास के निरन्ध में। संस्कृत का अध्ययन उन्होंने संतोष के साथ
 था। अतः उनकी भाषा में संस्कृत के अत्यन्त सुन्दर शब्दिक संवाद में मिलते हैं।
 पर संस्कृत के निरन्धों में तुलसीदास की उन्होंने अपनी भाषा की शब्दिक साहित्यिक कला
 का प्रकाश किया है। अतः उन्होंने गुरु और कदाचित्तर शिष्यों का ही विवेचन किया
 है, पर उन्होंने एक विवेचन में अत्यन्त भाषा का ही उपयोग किया है। उनकी भाषा
 की ही में एक ही-ही कला होती है। भाषा की शक्ति ही उनकी ही ही शक्ति
 कदाचित्तर, साहित्यिक, और साहित्यिक है।

पं० कदाचित्तरात्मक कदाचित्तर, और पं० कदाचित्तरात्मक कदाचित्तरों में ही निरन्ध
 रचना में तुलसीदास का योग्यता है। पं० कदाचित्तरात्मक कदाचित्तरों में अत्यन्त और कदाचित्तर

पं० कदाचित्तरात्मक पूजा' निरन्धों की रचना की है। उनके निरन्धों में
 कदाचित्तरात्मक साहित्य का अध्ययन है। पं० कदाचित्तरात्मक कदाचित्तरों
 और पं० कदाचित्तरात्मक में विभिन्न निरन्धों पर निरन्धों और प्रकाशों की रचना की
 प्रकाश कदाचित्तरात्मक है। उनके निरन्ध निरन्धों के लिए अत्यन्त उपयुक्त है।

हिन्दी भाषा के निरन्धकारों में कदाचित्तर पूजाश्रितों का अत्यन्त शब्दिक साहित्य के
 साथ किया जाता है। अतः उनके अत्यन्त ही ही निरन्ध मिलते हैं, पर उन ही

कदाचित्तर पूजाश्रित ही निरन्धों में उन्होंने हिन्दी निरन्ध कला में अपना
 एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। उनके निरन्धों के साथ एक प्रकार है—कदाचित्तर

का अन्त की रचना, कदाचित्तर, साहित्य की रचना, कदाचित्तर और वेद, तथा कदाचित्तर
 और वेद। इन निरन्धों की हम ही कदाचित्तरों में निरन्ध कर सकते हैं—निरन्ध कदाचित्तर, और

भाषा कदाचित्तर। कदाचित्तर, साहित्य की रचना, और कदाचित्तर और वेद में निरन्धों
 की प्रकाशता है। कदाचित्तर का अन्त की रचना, और कदाचित्तर में कदाचित्तर की रचना

रचना के निरन्धों में कदाचित्तरों के ही ही निरन्ध अत्यन्त संवाद,
 भाषा पूजा, और कदाचित्तरात्मक है। कदाचित्तरों के ही ही निरन्धों में उनकी निरन्धों

कदाचित्तर का निरन्ध साहित्यिकता के साथ हुआ है। पूजाश्रितों के निरन्धों में ही
 प्रकाश की ही ही कदाचित्तर है—कदाचित्तरात्मक, और निरन्धरामक। उनकी कदाचित्तरात्मक

दोली अधिक सज्ज और सुसज्ज है। बिहार पूर्वी दिक्पथों के विचारालम्ब दोली का विकास हुआ है। वर्णालम्ब दोली से यह अधिक सज्ज और सुसज्ज है। उसकी दोली हो प्रकार की दोलियों अधिक स्वावधारिक और अवधारिक हैं। दोली को अधिक हो उसकी भाषा की अधिक सज्ज और स्वावधारिक है। उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत के सज्ज सुन्दरी के साथ ही साथ उर्दू और फारसी के सबसे सुन्दरी का भी प्रयोग किया है। दोली को अधिक हो उसकी भाषा के भी दो रूप मिलते हैं—वाचालम्ब और सज्ज। वर्णालम्ब दोली के दिक्पथों में सज्ज भाषा का प्रयोग हुआ है। विचारालम्ब दोली के दिक्पथों में सज्ज भाषा का प्रयोग हुआ है।

२- रघुनाथ दुर्गा द्वितीयका के सुयोग विचारालम्ब से - उन्होंने हिन्दी-भाषा में तीन रूपों में सुयोग का प्रयोग है—दोलाकार के रूप में, काशीका के रूप में, ३- रघुनाथ दुर्गा और विचारालम्ब के रूप में। दोलाकार के रूप में उन्होंने बिहारी के दोली को दोला की है। काशीका के रूप में उन्होंने बिहारी काशी की दुर्गाका काशीका काशीका, विचार, और वाचालम्ब के साथ की है। विचारालम्ब के रूप में उन्होंने साहित्य के अधिकारी, और वाचालम्ब बिहारी पर भी विचारों की रचना की है। उनके दिक्पथों के तीन सज्ज अवधारिक हुए हैं—दोलाकार, रघुनाथ, और हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्थानी। उनके सभी विचारों में उनकी अपनी विशिष्टता मिलती है। उन्होंने अपने दिक्पथों में दिक्पथों का विशेषात्मक रघुनाथका रूप से रखा है।

दुर्गा की दोली दो प्रकार की है—वाचालम्ब, और वर्णालम्ब। उनकी वाचालम्ब दोली के दो रूप हैं। एक रूप ही यह है, जो उनके वाचालम्ब दोली में मिलता है, और दूसरा रूप यह है, जो उनके दिक्पथों में रखा जाता है। दोली की वाचालम्ब दोली दुर्गाका है। दुर्गा की अपनी इस दोली के अपने-अपने दोलाकार है। यह यह सज्ज साथ ही सज्जि न दोली, कि हिन्दी में दुर्गा की दोली दुर्गाका दोली की नींव जाती है। उनकी इस दोली पर उर्दू की दोली की छाया है। उनकी दूसरी प्रकार की वाचालम्ब दोली, जो उनके दिक्पथों में मिलती है, रघुनाथ और विचारालम्ब है। वर्णालम्ब दोली का विकास वाचालम्ब और दुर्गा साहित्यिक दिक्पथों के दिक्पथों में हुआ है। यह दोली अधिक सज्ज और रघुनाथ गुण गुण है। इनमें सभी सभी सज्ज और सज्ज का भी गुण मिलता है। दुर्गा की भाषा की दो प्रकार की है। एक को हम विचारालम्ब हिन्दी कह सकते हैं, और दूसरी को उर्दू रघुनाथका हिन्दी। 'रघुनाथ काशी' की वाचालम्ब में उर्दू रघुनाथका हिन्दी मिलती है। दिक्पथों की भाषा में उर्दू हिन्दी का प्रयोग हुआ।

हिन्दी निबन्ध—आधुनिक काल

आधुनिक काल हिन्दी निबन्ध का स्वर्ण काल कहा जा सकता है। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने हिन्दी निबन्ध के जिस चौड़े को जीवन प्रदान किया था, और जिसे परिपुष्ट बनाने के लिए उन्होंने परिश्रम पूर्ण साधना की थी, वह आधुनिक काल में ही परलपित, पुष्किल, और फल सुक हो गया है। आधुनिक काल में निबन्ध के उस चौड़े में एक से एक सरल और सुन्दर फूल लगे हैं, जिनकी मुरझि से हिन्दी साहित्य का कोना-कोना खीरमिल हो उठा है। उसमें केवल फूल ही नहीं लगे हैं, उसने रस भी दिए हैं, जो कमूक्ष्य होने के साथ ही साथ अधिक रस सुक भी है। निबन्ध का खीरम और उसका रस उसके विचार, भाषा, और शैली की सुन्दरता, संगठन, तथा मनोवैज्ञानिकता है। आधुनिक काल में हिन्दी के निबन्ध ने सुन्दरता, संगठन, और मनोवैज्ञानिकता की दिशा में प्रगतिशील उन्नति की है। आधुनिक काल में विषय की दृष्टि से उसका क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हुआ है। आधुनिक काल में ऐसे महान् पूर्ण विषयों पर निबन्धों की रचना की गई है, जिन पर अभी तक किसी का ध्यान नहीं था कदा था। 'मनोविचार' संबंधी विषयों पर निबन्ध इसी काल में लिखे गए हैं। इसी काल में कार्य, समाज, राजनीति, नागरिक, साहित्य और कला के विभिन्न अंगों पर विभिन्न प्रकार के निबन्धों की रचना की गई है। भाषा और शैली के क्षेत्र में भी आधुनिक काल में अधिक उन्नति की गई है। आधुनिक काल में भाषा की अधिक मात्र-पर्यक्त बनाने का प्रयत्न किया गया है। उसमें मनो-वैज्ञानिकता का भी सम्भार किया गया है। भाषा की शक्ति को शैली के क्षेत्र को भी विस्तृत किया गया है। आधुनिक काल में कई प्रकार की शैलियों आविर्भूत हुई हैं। आधुनिक काल की शैलियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि उनकी प्रकृति अन्त-मुखी है। वे भाषा की अधिकगमना की ओर कितना अधिक ध्यान देती हैं, उतना विषयों के वर्णन की ओर नहीं। आधुनिक काल की शैलियों में संकेतिकता, और साक्ष्यिकता भी विशेष रूप में मिलती है।

आधुनिक काल का प्रारम्भ हम आचार्य पं० रामचंद्र शुक्लजी से मानते हैं। शुक्लजी ने ही हिन्दी निबन्ध कला को आधुनिकता का स्वरूप दिया है। शुक्लजी ने पं० रामचंद्र शुक्ल ही सर्व प्रथम ऐसे निबन्धों की रचना की, जिसे हम नवीन प्रकार के निबन्ध कह सकते हैं। 'मनोविचार' संबंधी विषयों पर सर्व प्रथम शुक्लजी

से ही विचारों की रचना की। तुलसीदास के 'मनोविचार' संस्कृति विरम्य हिन्दी के विरम्य साहित्य की सद्गुण संरक्षि है। विचार, भाव, भाषा और शैली-संवेग इति से इन विचारों का सम्बन्ध विशिष्ट स्थान है। इन विचारों की रचना का तुलसीदास ने हिन्दी साहित्य की विधा ही बढ़ा दी। मनोविचारों के साहित्यिक उन्मेष विविध विचारों पर भाव पूर्ण निर्माण की रचना की है, जिसमें लघु-परिचय की सुन्दरता मिलती है।

तुलसीदास तुलसीदासों के विवेचनात्मक हैं। उनके विचारों में उनकी सद्गुणता भाव-साधन दिखाई पड़ती है। उन्होंने अपनी लेखनी में बहुत शक्ति और विचार एकत्र करके विविध विचारों को विचारों के रूप में रखा है। उनके विचारों का संग्रह 'विचारमणि' के नाम से प्रकाशित हुआ है। 'विचारमणि' के विचारों की इन दो भागों में विचार का एक है—भाषात्मक और लघु-परिचय। भाषात्मक भागों में वे विचार बताते हैं, जो उल्लास, कोप, दुःख और मग्न इत्यादि मनोविचार संस्कृति विचारों पर लिखे गए हैं। लघु-परिचय भागों के विचारों की प्रकाश के हैं। एक प्रकार के लोके हैं, जो लघु-परिचय के विचारों पर लिखे गए हैं, और दूसरे प्रकार के हैं, जो विचारों रचना लघु-परिचय के लघु-परिचय विचारों पर की गई है। दोनों ही भागों के विचार बड़े ही भाव पूर्ण और प्रभावशाली हैं। इनमें विचारों का कला का प्रभाव प्रकाश हुआ है। विचार, भाषा और शैली की दृष्टि से भी वे साहित्यिक हैं।

तुलसीदासों के सभी विचारों में कई विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनके विचारों की पहली विशेषता यह है, कि उनमें विचारों की एक स्पष्टता मिलती है, उनके विचार साहित्यिक व्यवस्थित और सद्गुणित दिखाई पड़ते हैं, दूसरी विशेषता यह है, कि उनके 'सद्गुण' विचारों पर उनके साहित्य की कला है। उन्होंने अपने विचारों के विचारों की अपनी व्यवस्था के ही रूपों में रखा है, तीसरी विशेषता यह है, कि उनके भाव, भाव, और विचारों के भी एक विशेषता है, चौथी विशेषता यह है, कि उनके साहित्य और भाव के सभी का सम्बन्ध हुआ है; परिचय सम्बन्ध नहीं उनके विचारों की सम्बन्ध है, नहीं सभी की सम्बन्ध की है, पाँचवीं विशेषता यह है, कि उनके भाव और शैली की सम्बन्धता मिलती है, छठी विशेषता यह है, कि उनके सभी विचार विचार-परिचय हैं, जो विचारों शैली में लिखे गए हैं; साहित्यिक विचारों की एक रूप में रचना का दिया गया है, और फिर इसके लघु-परिचय, साहित्य और सभी के साथ विचार का साहित्यिक विचार गया है, सातवीं विशेषता यह है, कि उनके विचारों का साहित्यिक नहीं तुलसीदास के साथ विचार गया है, आठवीं विशेषता यह है, कि उन्होंने विचार की रचना करने के लिए उनमें 'कला' का भी सम्बन्ध किया है, और सभी विशेषता यह है, कि उनके भाषा उनके विचारों के सद्गुण है। एक प्रकार तुलसीदासों के विचारों की तुलसी विशेषताओं से तुलसीदासों के विचार-साहित्य में अपना सद्गुण स्थान रखते हैं।

आर्यो वैदिककाल की हिन्दी के उपभक्त ब्रह्मण्ड हैं। उन्होंने सुवन कन से उपभक्त के क्षेत्र में ही सुकीर्ति प्राप्त की है। पर उनके द्वारा कुछ विषयों और क्षेत्रों की ज्ञान-रचना भी हुई है, किन्तु उनकी रचना की विशिष्टता दिखाई नहीं पड़ती है। जैनग्रन्थ की वे कविर्भाव विमल साहित्यिक विषयों पर मिलते हैं। उनके सभी विराह विषयोंमूलक हैं। अतः उनके विराहों में विवाहात्मक हीनता का विकास हुआ है। उन्होंने अपने विराहों में विश्व भाषा का प्रयोग किया है, पर भाषा उनके उपभक्तों की भाषा से मिली है। इस भाषा में, उपभक्तों की भाषा की संस्कृत संस्कृत के समान रूप में साहित्य मिलते हैं।

समस्त कवयित्री ब्रह्मण्ड की सुवन क्षेत्र कविता, नाटक, बहाली और उपभक्त का। उन्होंने सुवन कन से कविता और नाटक के क्षेत्र में ही अपनी रचना की सुवन-कवयित्री ब्रह्मण्ड - सदा प्रदर्शित की है। पर उन्होंने कुछ उपभक्त विराहों की भी रचना रचना की है। उनके विराहों की हम इन तीन क्षेत्रों में विमल पर सकते हैं—साहित्यिक भाषा के विराह, भूमिका सम्बन्धी विराह, और साम्प्रदायिक संस्कृत विराह। उनके साहित्यिक विराह 'विवाहात्मक' से संस्कृत हैं। इन विराहों की भाषा और हीनता में उपभक्त कन के साहित्यिक दिखाई पड़ता है। भूमिका सम्बन्धी विराह भूमिका के रूप में मिलते हैं। इन विराहों में प्रत्यक्ष की सम्बन्ध हीनता और उनकी प्रतीति का विकास हुआ है। इनकी भाषा और हीनता कविता हीनता से प्रभावित है। 'साम्प्रदायिक' का प्रभाव उनके भाषा के प्रभाव हुआ है। 'साम्प्रदायिक' में संस्कृत विराह साहित्यिक हैं, जो उपभक्त के हैं। इन विराहों का स्थान 'साम्प्रदायिक' विराहों से साहित्यिक है। इनमें प्रत्यक्ष की सुवन के साहित्यिक रूप में दर्शन होते हैं। भाषा और हीनता का विराह भी इन विराहों में उपभक्त पर हुआ है।

की सुवाचनार्थ उपभक्तों के विराहकार हैं। उन्होंने सुवन पूर्ण रूपों की रचना की है। अपनी की रचना के साथ ही साथ उन्होंने उपभक्तों के विराह भी लिखे की सुवाचनार्थ हैं। विराह की दृष्टि के उनके विराहों की हम दो क्षेत्रों में विराह कर सकते हैं—साहित्यिक, साहित्यिक, साम्प्रदायिक, साहित्यिक, और क्षेत्रों सुवाचन। उनके विराहों का संस्कृत उपभक्त ब्रह्मण्ड और समाज और साहित्य के नाम से प्रभावित हुआ है। उनके सभी विराहों में उनकी अपनी विशिष्टता नहीं मिलती है। उनके सभी विराह भाषा, भाषा और हीनता की दृष्टि के साथ पूर्ण रूपों में मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से उनके विराहों को यहाँ से विराह फिर कर सकते हैं—साम्प्रदायिक और विवाहात्मक। उनके दोनों ही प्रकार के विराहों का प्रभाव करने पर हमें दो प्रकार की साहित्यिक मिलती है, किन्तु इन साहित्यिक, और साम्प्रदायिक हीनता की संज्ञा से सकते हैं। उनके साहित्यिक विराहों में साहित्यिक हीनता का विकास हुआ है। इन हीनता में उनके साहित्यिक विराह उपभक्त हुए हैं। उनकी इन हीनता की इन साम्प्रदायिक हीनता भी-कह सकते हैं। उनकी सुवन हीनता साम्प्रदायिक है, किन्तु

विचारों के साथ ही साथ शब्दों का भी-कर्मबन्ध बाध जाता है। उनकी दृष्टि हीनो के समान छोटे छोटे, गम्भीर गूँथ, और अधोलोमल है। उनकी हीनो में कहीं कहीं हस्य और व्यंग का छुर भी बाध जाता है।

हीनो की भाँति ही भी तुलानात्मकता के निकम्बों की भाषा ही दो प्रकार की है—एक संस्कृत के लक्षण शब्दों से युक्त, और दूसरी व्यावहारिक विषयों संस्कृत के लक्षण शब्दों के साथ ही साथ उर्दू और आधुनिकतासुधार शैलीयों के समुद्र भी प्रयुक्त हुए हैं। आलोचनात्मक शैली के निकम्बों में प्रथम प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है। यह भाषा संस्कृत के लक्षण शब्दों से युक्त है, जिसमें कहीं कहीं उनकी विशदता भी उत्पन्न हो गई है। व्यावहारिक शैली के निकम्बों में दूसरी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है। यह भाषा अधिकांशतः और सुयोग्य है। भाषा की प्रत्यक्ष पूर्ण बनावट के लिए भी तुलानात्मकता में उनकी संस्कृत की उक्तियों और मुहावरियों का भी प्रयोग किया है।

भी बहुमतात्त तुलनात्मकता कभी उत्पन्न होती के निकम्बधार है। जिसमें रचना के क्षेत्र में उन्होंने अधिकांशतः अपने किया है। हिन्दी साहित्य में वे दो कर्मों में भी बहुमतात्त तुलना प्रसिद्ध है—अन्वयार के रूप में और निम्नधार के रूप में।

लाल कर्मों अन्वयार के रूप में उन्होंने साहित्य, कला, और आलोचना शैलीयों विषयों पर बहुत पूर्ण शब्दों की रचना की है। निम्नधार के रूप में उनकी सेवार्थ प्रभाव है। उन्होंने विविध विषयों पर निम्नधार की रचना की है। उनके निम्नधार के विषयों में साहित्य, कला, इतिहास, दर्शन, और सामान्य ज्ञानादि विषय मुख्य हैं। उनके निम्नधार में उनकी अपनी विशेषता गई जाती है। उनके कहीं निम्नधार अधिकांशतः पूर्ण हैं, जिसमें उनकी आधुनिक शैलीयों, और प्रत्यक्ष हीनता काट-काट भलपत्ती है। वास्तविक निम्नधार कला की हिन्दी निम्नधार कला में कर्मबन्ध करने का श्रेष्ठ कर्मशैली की ही है। कर्मशैली में ही हिन्दी साहित्य में ऐसे निम्नधार की रचना करने में तुलनात्मकता की है, जो मान, भाषा, शैली, और आकार प्रकार में शैलीयों के निम्नधार के निम्नधार-मुद्रों हैं। कर्मशैली के निम्नधार का प्रत्यक्ष 'प्रकाश परिभाषा' और 'दृष्टि' के नाम से प्रकाशित हुआ।

कर्मशैली के निम्नधार में दो प्रकार की शैली गई जाती है—आधुनिकता, और आलोचनात्मक। उनकी दोनों ही प्रकार की शैलीयों अधिकांशतः एक ही प्रमाण पूर्ण है। उनकी शैलीयों में आधुनिकता का निम्नधार कर्मबन्ध के साथ हुआ है। उनकी शैलीयों में कर्मशैली, आधुनिकता और निम्नधार भी कर्मबन्धता में अधिकांशतः गई जाती है। कर्मशैली में कर्मशैली दोनों ही प्रकार की शैलीयों के निम्नधार में प्रत्यक्ष भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा संस्कृत के लक्षण शब्दों से युक्त है। कहीं कहीं आधुनिकता कर्मशैली पर उन्होंने संस्कृत के लक्षण शब्दों के साथ ही साथ उर्दू, और उर्दूय शब्दों का भी प्रयोग किया है।

निम्नधारिक कई कर्मों में प्रसिद्ध है—अन्वय के रूप में, अन्वयार के रूप में, निम्न-

कार के रूप में, और नाटककार के रूप में। कवि के रूप में उन्होंने भी रचनाएँ विद्योतीहिरी की हैं, उनमें 'और कहलई' का आध्यात्मिक महत्त्व पूर्ण स्थान है। सम्राट् के रूप में उन्होंने लामेदार कविता, और 'इतिहास लेखक' का सम्पादन किया है। उनके द्वारा कई पुस्तकें भी संपादित हुई हैं, जिनमें 'ब्रजभाषा की कविता' मुख्य है। नाटककार के रूप में उन्होंने बौद्ध इतिहास और जयसिंहजी नाटिका की रचना की है। 'संस्कृत' और 'अंग्रेजी' उनके नव कालों का लक्षण है। निराला का केवल दो 'विद्योतीहिरी' में आध्यात्मिक लक्षणों का स्थान है। उन्होंने साहित्यिक और दार्शनिक विषयों पर महत्त्वपूर्ण निबन्धों की रचना की है। आध्यात्मिक और साहित्यिक विषयों पर जो उन्होंने निबन्ध लिखे हैं। उनके निबन्धों का संग्रह 'साहित्य विहार' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

विद्योती, रिश्री के निबन्धों में दो प्रकार की शैली पाई जाती है—आध्यात्मिक और विचारधार्मिक। उनकी आध्यात्मिक शैली के दो रूप मिलते हैं—एक रूप तो यह है, जो उनके 'साहित्य विहार' के निबन्धों में मिलता है, और दूसरा रूप यह है, जो 'अंग्रेजी' में पाया जाता है। 'अंग्रेजी' में इन शैली का जो रूप पाया जाता है, वह साहित्यिक आध्यात्मिक है। उनके दूसरी शैली, जो विचारधार्मिक है, दार्शनिक निबन्धों में मिलती है। उनके दोनो ही शैलीयों आध्यात्मिक मान पूर्ण और सत्य हैं। उन्होंने अपनी दोनो ही शैलीयों में निबन्धों का व्यवस्थान बड़े ही आकर्षक ढंग से किया है। शैली की दृष्टि से उनके भाषा की दो प्रकार की हैं—छन्द साहित्यिक और आध्यात्मिक। छन्द साहित्यिक भाषा संस्कृत के लक्षण सम्यो के पुनः है। आध्यात्मिक भाषा में संस्कृत के लक्षण सम्यो के साथ ही साथ उर्दू के भी लक्षणों का प्रयोग हुआ है।

डा० कृष्णरी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के वर्तमान निर्बन्धनों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके निबन्धों में उनकी समनवीकृता, और सम्पादनशीलता पाई

ज० इसरी प्रसाद जाती है। उनके निबन्धों को इन दो श्रेणियों में विभक्त द्विवेदी कर सकते हैं—विचारधार्मिक और आलोचनात्मक। उनके

विचारधार्मिक निबन्धों की प्रकार के हैं। एक प्रकार के उनके विचारधार्मिक निबन्ध में हैं, जिनकी रचना खोजी खोजी जाती की आचार मान कर की गई है। इन निबन्धों में उनकी अनुभूति और विचार-धर्मिता का विशाल साहित्यिक सम्पीरण के साथ हुआ है। द्वितीय प्रकार के उनके विचारधार्मिक निबन्धों में आलोचना और आलोचना से सम्बन्ध रखते बाकि विषयों पर लिखे गए हैं। आलोचनात्मक निबन्धों की भी दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—एक छन्द साहित्यिक और दूसरा आलोचनात्मक निबन्धों। छन्द साहित्यिक रूप के अंग्रेजी उन निर्बन्धों की रचना की जाती है, जो साहित्य के विभिन्न लक्षणों पर दार्शनिक ढंग से लिखे गए हैं। आलोचनात्मक रूप के निबन्धों में रचनाओं की आलोचना की गई है। द्विवेदीयों के इन निबन्धों का संग्रह 'विहार और विहार' और 'आलोचना के पुनः' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

आलोचना, सम्राज्य, और जीवन के संबंध रखते वाले विषयों पर निम्नो की रचना की है। डा० पीतंबर कृष्णदास कुशीन निम्नप्रकार से। उन्होंने आलोचनात्मक निम्नो की रचना की है। पं० कलकरीदास कलुर्वेदीजी ने राजकीय, समाज, और साहित्य सम्बन्धी विषयों पर निम्न लिखे हैं। पं० हरिचन्द्र वर्मा इतन और एवं पूर्ण निम्नो के उत्कृष्ट लेखक हैं। उन्होंने इस प्रकार के निम्नो की रचना में अधिक महत्त्वपूर्ण किया है। चिन्ता, और समाज संबंधी विषयों पर भी उन्होंने निम्न लिखे हैं। श्री कलकरीदास कलुर्वेदी निम्नो निम्नो के लेखक हैं। उन्होंने साहित्य और आलोचना सम्बन्धी विषयों पर निम्न लिखे हैं। चिन्ता पूर्ण निम्नो के उत्कृष्ट में डा० पीतंबर वर्मा ने अधिक महत्त्व प्राप्त की है। उन्होंने साहित्य, समाज, आलोचना, और इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर निम्न लिखे हैं। उनके सभी विषयों के निम्नो में उनकी अपनी निम्नलिखित लिखाई पढ़नी है। भाव, भाषा और शैली का सुव्यवस्थित समग्र उनके निम्नो में विशेष कर ले देखने की मिला है। डा० रामकुमार वर्मा ने उच्चकोटि के निम्नो की रचना की है। उनके निम्नो का विषय साहित्य और आलोचना है। उन्होंने अपने निम्नो में, विषय का अधिकारन करता, और समुदाय के साथ किया है। कला, साहित्य, और समुदाय शैली में निम्न-रचना करते में उन्होंने अधिक कर प्राप्त किया है। बीमारी महर्षिजी वर्मा का साहित्यिक निम्नप्रकारों में उत्कृष्ट रचना है। उन्होंने समाज और की जीवन सम्बन्धी विषयों पर आकर्षण निम्नो की रचना की है। समाजवादात्मक विषयों के जीवन में वे अपने हस्त की हिन्दी में अपने ही लेखिका हैं। पं० हनुमान् बोहो के साहित्य, समाज और आलोचना सम्बन्धी विषयों पर उत्कृष्ट पूर्ण निम्न लिखे हैं। पं० गंगाधरदास रायचौध और पीतंबर वर्मा ने भी साहित्य और आलोचना सम्बन्धी विषयों पर निम्न लिखने में सुकीर्ति प्राप्त की है।

